आचार्यश्री गणेशीलालजी म.सा.
का जीवन-चरित्र

आद्य सम्पादक देवकुमार जैन

प्रस्तुत सस्करण के सम्पादक मुनि गौतम

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

समता भवन रामपुरिया मार्ग बीकानेर – 334005 (राज)

• पुस्तक
आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा का जीवन–चरित्र
आद्य सम्पादक देवकुमार जैन

प्रस्तुत सस्करण सम्पादक
मुनि गौतम

• अर्थ-सौजन्य
पीतलिया परिवार सिरयारी (राजस्थान)
भारत बिल्डिग काच्छीगुडा हैदराबाद (आ प्र)
एव
स्व श्रीमती उमरावबाई मूथा चैन्नई

❖ प्रकाशक
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ
समता भवन रामपुरिया मार्ग बीकानेर (राज)
दूरभाष 0151 2544867 0151 3292177
2203150 (Fax)

मूल्य 125/

सस्करण प्रथम दिसम्बर सन् 1970
सस्करण द्वितीय (सशोधित परिवर्धित) नवम्बर सन् 2006

प्रतियाँ 2100

• मुद्रक
तिलोक प्रिंटिग प्रेस बीकानेर
दूरभाष 9314962475 (M)

जिस समय साधु स्थानको को मठ की तरह अपनी सपत्ति समझने लगे थे वस्त्र और पात्र की मर्यादाएँ भग हो चली थी अनाचार-वर्जन के पाठ मात्र शास्त्र की शोभा बने हुए थे पचम आरे की आड़ मे अपनी कमजोरी को छुपाया जा रहा था ऐसे विषम समय मे एक क्रान्तिपुरुष का उदय हुआ उनका नाम था - क्रियोद्धारक पूज्य आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा ।

पूज्यश्री हुक्मीचदजी म सा ने आगमों का गहराई से पारायण किया। पारायण ही नहीं आगमानुसार जीवन जीया। साधुत्व उनका सर्वस्व था। साधुत्व और निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा हेतु उन्होने सर्वस्व बलिदान कर दिया।

वही आचार क्रान्ति की मशाल आचार्य शिव उदय-चौथ-श्रीलाल-जवाहर को हस्तान्तरित होती हुई आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के हाथों मे आई। आचार्यश्री गणेश ने अपने सक्षम हाथो मे उस आचार-क्रान्ति की मशाल को थामा ही नहीं उसमे स्नेह डालकर और चिरजीवी बनाया।

आचार्यश्री कदम दर कदम सजग रहे और चिन्तन करते रहे कि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रज्वलित आचार क्रान्ति की मशाल निरन्तर जलती रहे एव अधिकाधिक प्रज्वलित होकर तीर्थङ्कर देवों के मार्ग को प्रकाशमान करती रहे।

मा‍न सम्मान पूजा-प्रतिष्ठा की भावना से कोसो दूर रहकर आचार्यश्री ने अप्रमत्त जीवनयापन किया और श्रमण भगवान महावीर की पावन परम्परा को गतिशील रखा।

वे जीवन-भर विष-पान करते रहे। पर समाज को अमृत बाटते रहे। स्वय कटकाकीर्ण राह पर चलते रहे पर अन्य पथिको के पथ पर फूल बिखेरते रहे। वे स्वय पर कष्टों के पहाड गिरने पर भी सदैव मुस्कराते रहे पर दूसरो के तनिक कष्ट को देखकर भी अनुकम्पित हो उठते। उनकी अहैतुकी करुणा दया जन जन को आकृष्ट किये बिना नहीं रहती।

व्यवहार से मृदु-सरल व्यक्ति सिद्धान्तों के प्रति कठोर नहीं रह सकता और सिद्धातवादी व्यवहार से विनम्र-सरल नहीं रह सकता परन्तु पूज्यश्री इसके अपवाद थे। पूज्यवर वज्र से कठोर थे तो मक्खन से मृदु भी थे।

आचार एव अनुशासन मे वे कठोर थे तथा व्यवहार मे अत्यन्तमृदु उनके जीवन का हर कोण मधुर स्निग्ध और सौरभयुक्त था। ऐसे महामहिम शान्तक्रान्ति के अग्रदूत पूज्य आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी म सा का जीवन इस ग्रन्थ मे आलेखित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्व मे सन् 1970 मे सघ द्वारा प्रकाशित हो चुका है जिसका सम्पादन देव कुमार जैन ने किया था। लम्बे समय से यह अनुपलब्ध था इसकी माग बराबर बनी हुई थी परन्तु इसके सशोधन परिवर्धन और सम्पादन की आवश्यकता महसूस हो रही थी। यह महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व पडितरत्न श्री नेमीचद्रजी म सा एव कविरत्न श्री गौतममुनिजी म सा को सौंपा गया। दीर्घ अनुभवी श्रद्धेय मुनिवृन्द ने इस उत्तरदायित्व को बखूबी निभाया अत सघ उनका हृदय से आभारी है।

जीवन ग्रन्थ के प्रकाशन मे दानवीर पीतलिया परिवार सिरयारी (राजस्थान) भारत बिल्डिग काच्छीगुडा हैदराबाद (आ प्र) एव स्व श्रीमती उमराव बाई मूथा चैन्नई ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। उनका यह सहयोग सहकार अभिनदनीय-अनुकरणीय है। आशा है भविष्य में उनका सहयोग सदैव इसी प्रकार सघ को उपलब्ध रहेगा।

ग्रन्थ-प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है फिर भी स्खलना सभव है। स्खलना की ओर सकेत प्राप्त होने पर भविष्य में सुधार का लक्ष्य रहेगा।

दिव्यात्मा का दिव्य-भव्य जीवन दिव्य भव्य रूप में प्रकाशित कर सघ गौरवान्वित है। इस ग्रन्थ से किसी एक का भी जीवन रूपान्तरित हुआ तो प्रकाशन प्रयोजन सार्थक समझा जायेगा।

शान्तिलाल साड
सयोजक
साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर (राज)

शान्त क्रान्ति के श्रीगणेशकर्ता

विश्व के सचेतन प्राणधारियो मे मानव एक श्रेष्ठ प्राणी है और श्रेष्ठता का कारण है उसकी विचारशीलता। वह विचारो से प्रेरणा लेता है और उन्हें प्रेरित भी करता है। उसके विचारों की उत्तेजना जगत् मे प्रतिशोध और विनाश का दृश्य भी उपस्थित कर सकती है और विचारो के बदलते ही समूचा जगत् बदल सकता है। अत जब मानव विचारो की इस विलक्षण शक्ति के प्रवाह को अतर् की ओर मोड देता है तो उसमे अदम्य उत्साह अनुपम शाति धैर्य एव विश्वास का विकास होता है और उनसे ऐसी परिस्थितियो का निर्माण करता है कि वह स्वय अपने लिये ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के लिये आदर्श बन जाता है।

जीवन के इतिहास में मानव एक सर्वोच्च पद है। इसमे अपने-आप को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने की एक विशिष्ट क्षमता है। जिससे वह अपने अनुभवो और स्मृति से जीवन के नये-नये पाठ सीखता है जबकि अन्य—अनेक प्राणी जो भी जीवन बिताते हैं उसे भूलते जाते हैं। उनके जीवन मे प्राप्त को भोगना ही समाया हुआ है। अकर्मण्यता या लाचारी से जब जैसा-कुछ भी प्राप्त हो गया उसमें ही सतोष कर लिया। उनमें न तो अच्छे अवसर प्राप्त करने की आकाक्षा है और न प्रयत्न करने की इच्छा है। उनका जीवन गाडी के पहिये के समान घूमते हुए समाप्त हो जाता है।

अतएव मानवजीवन ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्राणिमात्र के शाश्वत ध्येय की प्राप्ति होती है। उसमें सारासार धर्माधर्म और आत्म-अनात्म आदि तत्त्वो का निर्णय करने की बुद्धि है जिसके द्वारा समस्त बन्धनों से मुक्त होकर सच्ची और सर्वकालव्यापी स्वतत्रता एव सर्वदु खो से मुक्त होकर चिरशाति प्राप्त की जा सकती है जो प्राणिमात्र का चरम ध्येय है। इसी को परमपद परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं। इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मानव के सिवाय अन्य प्राणियों में नहीं है।

अत मानव-जीवन अपने-आप मे महत्त्वपूर्ण है और चराचर विश्व के समस्त प्राणियों को प्राप्त करने योग्य है। इसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषताए हैं जो अन्य प्राणियों में प्राप्त नहीं

होती हैं। विश्व की सस्कृतियो का जन्मदाता मानव ही होता है। इसमें देवत्व भी है और दानवता भी है योग भी है और भोग भी है। यदि सभी प्रकार की अच्छाइयो और बुराइयो को एक स्थान पर ही देखना हो तो मानव-जीवन मे देख सकते हैं।

परन्तु जब तक मानव-जीवन का उद्देश्य न समझा जाये स्वरूप का भान न हो सके जगत् जिस रूप में है उस रूप में परख न सके और शाश्वत लक्ष्य—मोक्ष का यथार्थ मार्ग ज्ञात न कर सके तब तक उसकी सार्थकता नहीं है। इसलिये प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन की उपयोगिता का सदैव विचार करता रहे।

विचार के केन्द्रबिन्दु दो हैं—एक अतर्जीवन और दूसरा वाह्यजीवन। अतर्जीवन मे वह धर्म का प्रकाश लेकर प्रवेश करता है। मानव अपने जीवन के प्रति जितनी भी धारणाए और विश्वास बनाता है वे सब उसके हैं और उनके सहारे ही बाह्य जगत् मे पदार्थो को देखने पाने की इच्छा करता है। उन्हीं के सहारे समाजो का निर्माण होता है राष्ट्र और विश्व की व्यवस्था बनती है एव महाविनाश व महाप्रलय की ओर न जाकर अधकार से प्रकार की ओर बढता है। लेकिन जब कभी भी मानव-जीवन के साथ विश्वासघात किया गया तब तब जीवन की उपलब्धिया नष्ट-भ्रष्ट होती रही हैं।

इसलिये यह सिद्ध है कि उसी मानव को महत्त्व दिया जाता है जो अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर बढता है जो सच्चाई और भलाई के अन्वेषण मे प्रगति करता रहता है। इस अन्वेपण मे जो प्रयत्नशील रहते हैं वे मानवीय सभ्यता के इतिहास मे स्थायी स्थान प्राप्त करते हैं। ऐसे मानव महापुरुष या महामानव के रूप में जनसाधारण के मानस में सदा के लिये अपना स्थान बना लेते हैं। उनकी अनुभूति मानवमात्र के हृदयपटल पर एक विशेष छाप लगा देती है।

महापुरुषो का जीवन पवित्रता और नि स्वार्थ आस्तिक्य का एक सुस्पष्ट अध्याय होता है। वे आध्यात्मिक सिद्धातो और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उनकी उपयोगिता का उपदेश देकर अपने आचार विचार द्वारा जीवन मे उनका प्रयोग कर मानवता को उत्कर्षोन्मुखी बनाने के लिये जीवित रहते हैं। उनका जीवन जनसाधारण के लिये देन है। उनके जीवन से हमें ससार रूपी सागर से तिरने की प्रेरणा मिलती है। अतएव इसी आशय को लेकर किसी कवि ने कहा है—

परिवर्तिनि ससारे मृत को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वश समुन्नतिम्।।

विश्व में उन मानवों का महत्त्व नहीं है जिन्हाने भौतिक सफलताए प्राप्त कर बडे-बडे साम्राज्यो का निर्माण किया अथवा भौतिक स्मारकों द्वारा अपने-आप को बनाये रखने का प्रयत्न किया। उन्होने अपने नाम को अमर बनाये रखने के लिये नगर बसाये दुर्ग बनाये लेकिन काल के प्रवाह और प्राकृतिक कारणों से उनका नाम शेष न रह सका। जो भौतिक सफलताओं के लिये अपनी इच्छापूर्ति मे बाधक बनने वालो का सहार करते हैं जो सभ्यता और सस्कृति का विनाश कर अट्टहास करते हैं जो दूसरो का ध्वस कर हर्षित होते हैं और विश्व की सुख-शाति को मिटा देना अपना कर्तव्य समझते हैं वे महापुरुष नहीं हैं। ऐसे व्यक्तियो का अस्तित्व शरीर मे क्षय के कीटाणुओ के समान विश्व के लिये महाभयकर होता है।

लेकिन जो आत्म-विजेता महापुरुष होते हैं वे आत्मान्वेषण के प्रशस्त पथ पर अबाध गति से चलते रहते हैं। उन्हें भौतिक सफलताए अपने लक्ष्य-ध्येय से विचलित नहीं कर पातीं और वे आध्यात्मिक जगत् का साम्राज्य प्राप्त कर आत्मानुभूति का आदर्श विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। काल उनका दास बन जाता है और उन कालविजेता मृत्युजयी महापुरुषो का जीवनादर्श युग-युग तक मानव-समाज को प्रेरणा देता रहता है।

उन महापुरुषो का युग युगान्त में भी मानव मात्र ऋणी रहा है और रहेगा। उन्होने अपने गहन आध्यात्मिक ज्ञान और तप त्याग और सयम से अनेक परीषहो एव परेशानियो का दृढतापूर्वक सामना करते हुए हिमालय की भाति अटल और अचल रहकर विश्व को सही सत्य एव शाश्वत विचार प्रदान कर इस उक्ति को चरितार्थ किया-अध्यात्म तर्क का विषय नहीं लेकिन हृदय की ध्वनि है।

महापुरुष सेना शस्त्र धन शरीर और ऐन्द्रिक विषयों पर निर्भर न रहकर मानव की मानवता और सर्वोच्च शक्ति को जगाना अपना कर्तव्य समझते हैं। अपना कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व सयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को निर्दोष बना लेते हैं और जब कसौटी पर खरेपन की परीक्षा हो जाती है तो ससीम से असीम होकर जन-कल्याण के लिये निकल पडते हैं। उनकी यह अनुभूति आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता प्राणिमात्र के प्रति भ्रातृभाव और शाति प्रेम की भावना के आदर्शों का शिक्षण देती है।

ऐसे महापुरुष ही ससार के सच्चे हितचिन्तक हैं। वे किसी निर्धन को हीरा पन्ना मोतियो का दान नहीं करते हैं किन्तु उसकी आत्मा मे ऐसी शक्ति भर देते हैं जिससे वह

बड़े-बड़े श्रीमानों की निधियों को ठुकरा सके। उनकी वाणी और उपदेश युग युग तक जनता को मार्गदर्शन कराते रहते हैं। जब तक भव्य पुरुष आत्मविकास के लिये प्रयत्नशील रहेगे तब तक उन-उन महापुरुषो की सदैव स्मृति बनी रहेगी।

ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्म-गगन मे सूर्य के समान चमकते हैं। उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते हैं जिससे पाशविकता के अधकार मे दबी हुई मानवता पुन चमकने लगती है। ऐसे महापुरुषो का जीवन ही ससार मे आदर्श की स्थापना करता है। उनके उपदेश नये ससार को घड़ते हैं और कार्य नव निर्माण करते हैं।

यदि विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखे तो उसके पन्ने-पन्ने से मालूम होगा कि उसमे कुछ थोडी-सी विभूतियो का लेखा है जिनकी विचारधारा बाह्य रूप धारण करके विश्व की प्रगति का इतिहास बन गई है।

यहा विश्व की एक ऐसी ही विरल विभूति का जीवन-इतिहास अकित कर रहे हैं जो आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के नाम से विख्यात हैं। वे जन-जन के श्रद्धेय और मार्गदर्शक हैं। वे एक सत थे। उन्होंने ससार त्याग दिया था अगुलियो पर गिने जाने वाले कुछ एक पारिवारिकजनो को त्याग दिया था लोकेषणा को त्याग दिया था गृहस्थी के प्रपचो को त्याग दिया था अडोस-पडोस में बसने वाले पुरजनो का त्याग कर दिया था कतिपय व्यक्ति विशेषो से नेह-नाता तोड दिया था। परन्तु कुछ व्यक्तियों के बदले उन्होंने विश्व के प्राणिमात्र से सम्बन्ध जोड़ लिया था। 'सत्त्वेषु मैत्री' 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना सजीव हो गई थी। ईंट-चूने से बने घर की चारदीवारियों का परित्याग कर लाखो मानवो के मनमदिर मे अपना डेरा जमा लिया था। उन्होने ससार का त्याग कर दिया था लेकिन अपने कर्तव्य से मुख नहीं मोडा था। उनकी निवृत्ति में भी प्रवृत्ति का उदार घोष था। उनकी ममता में समता का समावेश हो गया था स्नेह में रूपान्तरित हो गई थी। परिणामत उन्होंने ससार का बडे से बड़ा उपकार किया। उनका जीवन-इतिहास मानवीय जीवन का इतिहास हैं। उनका आत्म विकास जन-कल्याण का राजमार्ग हैं। उनका विचाप सास्कृतिक सुरक्षा का प्रयत्न करन वालो को प्रेरणा सूत्र है। उनका आचार साधको के लिए प्रोत्साहन है और उनका उपदेश प्रगति का शखनाद है।

हमारे चरितनायक जनवद्य श्रमण-सस्कृति के सरक्षक परमश्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री

गणेशलालजी म सा के नाम से प्रख्यात महापुरुष हैं। इन महापुरुष के जीवन को हम कितना अकित कर सकेंगे—कह नहीं सकते। हम जो लिखेगे उससे जनता को सतोष नहीं होगा और हो भी कैसे जब हमारे कहने की अपेक्षा उनका महिमायुक्त जीवन और जीवन की घटनाओं के सस्मरण उसकी अपनी मन-मजूषा मे सुरक्षित हैं। महापुरुषो का जीवन महानता का महासागर है और उसका विशद विवरण लेखनी से लिखे जाने का विषय नहीं होता है। लिखते-लिखते जब अनेक जीवन एक जीवन का सपूर्ण अकन नहीं कर सकते तो एक व्यक्ति समग्र जीवन का वर्णन करने का दावा भी कैसे कर सकता है ? फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सत्य है कि अकित अश समाज के वास्तविक मूल्यो का सरक्षण एव आत्मिक चेतना को शिक्षित करने मे सहायक होता है।

अत परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा का पुण्यस्मरण करते हुए उनके जीवन-इतिहास का श्रीगणेश कर रहा हू। इसमे जो-कुछ भी श्रेष्ठ और उत्तम है वही ग्रहण कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे। प्रमादजन्य त्रुटिया सदैव उपेक्षणीय हैं और विद्वद्वर्ग से इसकी अपेक्षा है। विज्ञेषु किमधिकम्।

स 2027 आसोज शुक्ला 2
2 अक्टूबर 1970

चरणचचरीक
देवकुमार जैन

श्रद्धा के दो प्रारभिक शब्द

मुनिश्री सुशीलकुमारजी म सा

श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी म की जीवन-गाथा के प्रकाशन का विचार बहुत ही स्तुत्य है। मेरा स्वय का विचार था कि मैं उनके मानवीय दृष्टिकोण साधनापरक जीवन एव उनके विश्व-मगलमय सस्मरणो को रेखाकित करू और किसी समय सक्षिप्त रूप में उनके दिव्य जीवन की झाँकी का अभिलेखन भी कर पाया था। किन्तु इस समय मेरी अपनी ही कार्य-व्यस्तताए लिखने मे असमर्थ करती रहीं। मुझे यह जानकर सन्तोष हुआ कि अब श्रद्धेय आचार्यश्री का जीवन प्रकाशित होने जा रहा है। मैं लेखक महोदय का आभारी हू, जिन्होंने ऐसे पवित्र विचार और एक महात्मा की जीवन-गाथा को सम्पादित एव प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया।

मैं मानता हू कि ससार में सबसे कठिन काम सस्कृति एव सभ्यता के क्षेत्र में बिखरे हुए आध्यात्मिक बीजो को वपित एव पोषित करने का है। विशेषकर जैन सस्कृति की साधना ही सबसे अधिक सहज और दुष्कर है क्योकि जिस शून्यता मे जाकर आत्मा के प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इस जगत् एव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं वही सबसे कठिन काम है। वास्तव में जिसे हम सहज कहते हैं वही सबसे कठिन होता है।

आत्मा ही हमारा मुख्य तत्त्व है किन्तु उसे ही जानना सबसे अधिक दु साध्य है। निर्विकार मन और विचाररहित अवस्था की प्राप्ति जितनी साहजिक है उतनी ही अलभ्य है। अहिसा सयम और तप की त्रिवेणी मे गोता लगाये बिना उस परमशून्य अवस्था को नहीं पा सकते और न ही आत्मा के अपने निज गुणो जो स्वत प्राप्त हैं उनको उपलब्ध कर सकते हैं।

सन्तों का जीवन साहजिक जीवन हाता है। मन की चचलता मे तो सारा ससार ही डावाडोल हो रहा है किन्तु सन्त पुरुष निर्विकार निश्चेष्ट और निश्चिन्तता से उस आत्मगुण को प्राप्त कर लेते हैं।

भारतीय सस्कृति एव सभ्यता के इस सारे प्रवाह को सन्त पुरुषो ने विवेक की मर्यादा मे इस तरह प्रवाहित किया है कि वह मनुष्य के जीवन-विकास के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हो सका है। इसीलिए सन्तो की जीवन-गाथाए लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पडती है। इससे सन्तो के देहातीत होने पर भी उनके बताए सिद्धान्त उनके जीवन की अनमोल अनुभूतिया मार्मिक प्रसग और आत्मा को उद्बोधन देने वाले सस्मरण स्थायी रूप से रह सकते हैं।

मेवाड की वीर वसुन्धरा पर जन्म लेकर इस महापुरुष ने धर्म-दीप को जिस तेजस्विता के साथ प्रज्वलित किया एव डावाडोल होती हुई भारतीय अन्तरात्मा को अहिसा एव सयम का सबल प्रदान किया वह युग-युग तक अविस्मरणीय रहेगा। साक्षात् आचार्यदेव के सान्निध्य में आने का शुभ अवसर जिन्हे प्राप्त हुआ है वे उनके गहरे प्रभाव और मार्मिक वचन को कभी भुला नहीं सके हैं। उनकी ताम्रवर्णी काया उद्दीप्त तेजस्वी ललाट मुस्कानभरा चेहरा किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकता था।

मुझे भी उनके सान्निध्य मे रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं उनके बाल-सुलभ निष्कपट जीवन सादगी और प्रेम से भरे हुये वचन कभी भुला नहीं सका। पहले ही साक्षात्कार का मेरे मन पर जो असर हुआ उसको मैं विद्युत के ए सी करट की उपमा दे सकता हू। मैं जैसे-जैसे निकट होता चला गया उनकी आत्मीयता और उनके प्रेम ने मुझे सदा के लिए अपना बना लिया। बहुत-सी बाते ऐसी थीं जिनके सम्बन्ध में मेरे और उनके विचार मेल नहीं खाते थे। वे पुराने विचारों के प्रतिनिधि माने जाते थे और मैं प्रगतिशील नये विचारों का सदा पक्षपाती। दोनो मे कितना वैषम्य किन्तु मैंने यह देखा कि उनका सरल एव सच्चा प्रेम इतना शक्तिशाली था कि विचारभेद कभी मनभेद का कारण नहीं बनते थे। मैं उनकी बात को कभी टाल नहीं सकता था।

एक बार एक तेरापन्थी सन्त ने मेरे से पूछा कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म और आपके विचारों मे पूर्ण समानता है या कुछ अन्तर है ? मैंने कहा कि बहुत-से विचारो मे बिल्कुल भी मेल नहीं खाता तो तपाक से वे सन्त बोल उठे 'तो ये आपके उपाचार्य कैसे और आपका सगठन कैसे चलता है ? मैंने कहा बुद्धि बेचकर अनुशासन का नियम भारतीय सस्कृति ने कभी पनपने नहीं दिया। वैचारिक स्वतन्त्रता और आचार की मर्यादा ही हमारी सयम-साधना की शर्त रही है। हम अपने विचार प्रकट कर सकते हैं और नितान्त स्वतत्र रूप से सोच सकते हैं किन्तु हम करते वह हैं जो हमारे अनुशास्ता का आदेश होता है। अनुशास्ता हमारे उपाचार्य हैं। उनके आदेश मे और आज्ञा में सारा सगठन चलता है किन्तु प्रजातत्र की तरह विचार-स्वतत्रता का अपहरण नही किया जाता है। मुझे खयाल है वे साधु सकपका-से गए किन्तु उन्हे अन्तरात्मा मे प्रसन्नता हुई। मैंने कहा कि महात्माओ के जीवन मे सच्चरित्रता और निर्भयता ही सब से दिव्य गुण होते हैं और आप यह मानते ही हैं कि भयग्रस्त जीवन कभी सच्चरित्र नही होता और कोई दुश्चरित्र निर्भय नही होता। इसका एकमात्र कारण आसक्ति है। आसक्ति से भय पैदा होता है और भय से मानवीय सद्गुणो का नाश हो जाता है। वैराग्य से निर्भयता का सूत्रपात होता है और वही सच्चरित्रता एव वैचारिक स्वतत्रता में कारणभूत होता है।

मैं उपाचार्यश्री मे देख रहा हू कि उन्होंने कभी भी वैचारिक स्वतत्रता का विरोध नहीं किया क्योंकि वे सच्चे वैराग्यवान सत पुरुष थे। मुझे उनक सात्त्विक सान्निध्य से जो अनुभूति प्राप्त हुई है और मेरे मानस पर जो उनका उज्ज्वल चित्र खिचा है वह सगठन को बनाए रखने मे काफी सहायक है।

मुझसे उस सत ने उपाचार्यश्रीजी म की विशेषताओ की जानकारी चाही तो मैंने कहा कि उनके तप पूत जीवन मे ब्रह्मचर्य की ऊर्जस्विता एव सत्य की अगाध श्रद्धा का अलौकिक समिश्रण हुआ है। उनके व्यक्तित्व की स्निग्ध शालीनता और सयम साधना के प्रति अडिग निष्ठा प्रत्येक आगन्तुक पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। राष्ट्र-प्रेम एव राष्ट्र-कल्याण की मगल-भावना उन्हे परमपूज्य जवाहराचार्य से प्राप्त हुई एव विश्वप्रेम तथा मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा वीतरागता के निरतर चितन से उद्भूत हुई है। उनमें वैराग्य की जो अटूट भावगगा बह रही है उसी ने उन्हे गभीर होत हुए भी सरल कठोर सयमी होते हुए भी सहिष्णु, परम-विरक्त होते हुए भी अनुशासनप्रेमी और आत्मतत्त्ववेत्ता होते हुए भी समाजहितैषी बना दिया है।

सत कहने लगे कि अनुशासन और सगठन कैसे चलता है ? क्या उसमें विघटनकारी लोग नये-नये प्रपच नहीं करते ? जब कभी गुटबदिया सगठन के सामने खडी हो जाती हैं तब उपाचार्यश्री क्या करते हैं ? मैंने कहा कि हमारे उपाचार्यश्री सगठन के बहुत हामी हैं किन्तु सगठन का रथ अनुशासन के पहियो पर चलता है और कभी-कभी सगठन के हित मे कडे अनुशासन की बात की जाती है या व्यवस्था से अनुशासनार्थ कोई कार्रवाई करनी पड़ती है तो मैं देखता हू कि उनके चारो ओर भी दुरभिसधिया होने लग जाती हैं। ऐसे अनेक प्रसग उनके जीवन के साथ लिपटे पडे हैं। कितने ही सतजन एव श्रावक समुदायो का उन्हे कोपभाजन बनना पडा है। किन्तु वे मानते हैं कि जब तक सगठन में पक्षपात नहीं आता है और व्यक्तिगत स्खलनाओं की छिछालेदार न कर आत्मशुद्धि की बात ही की जाती है तब तक सयम-साधक और सगठन दोना ही सुचारु रूप से चलते रहते हैं। किन्तु जब किसी सगठन में पक्षपात घुसता है बुराइयो को शुद्ध करने की अपेक्षा छिपाने की बात की जाती है तब मानसिक सद्भाव विकृत होने लगता है।

यह बात 1956 के प्रारम्भ की है। उसी समय थली प्रदेश में मुझे वे सत मिले थे और उनसे गम्भीर विचारणा हुई थी। किन्तु उसके बाद तो कितने ऐसे प्रसग आये हैं जिन्होंने सारे सगठन को झकझोर दिया जिसका कुछ स्वरूप आपको इस जीवन गाथा में पढ़ने को मिलेगा।

मैं मानता हू कि आचार्यश्री गणेशलालजी म आध्यात्मिक महल के खम्भे की तरह थे। उनके स्वल्पकालिक जीवन ने समग्र मानवजाति के सामने जिन अनावृत सत्य के द्वारों को उद्घाटित किया है और अनेकातात्मक समन्वय पद्धति का मार्ग प्रशस्त किया है यह उनकी अमर देन है। खादी-प्रेम और वीतरागता की साधना दोनो का समन्वय ही उनका राष्ट्रोपहार है। वैराग्य की उत्कट भावना एव सगठन-प्रेम ही साधु-समाज के लिए उनका प्रेरक सदेश है। अनुशासन और सच्चरित्रता ही साधु-सगठन के प्राण हैं। अगर विषय-विरक्ति और आत्महित साधु जीवन से निकल जाता है तो वह ससार पर कलकरूप है। जितना जल्दी उसे धो दिया जायेगा उतना ही लाभ है। आचार्यश्री गणेशलालजी म दृढ अध्यवसाय के महाप्राण व्यक्ति थे। जो भी कार्य उन पर डाला गया और जिस कार्य को उन्होने हाथ मे लिया उसे सत्सकल्प की तरह पूरा करने मे जुटे रहे। दिवगत आचार्यश्री गणेशलालजी म की प्रतिछवि प्रतिच्छाया एव प्रतिकृति वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म मे आभान्वित पाकर मन गद्गद हो जाता है। आशा है कि दिवगत आचार्यदेव की श्रमण-सगठन के निमित्त ठोस योजनाए एव विश्वकल्याण की भावनाए साकार रूप लेगी और मानव जाति उनके पदचिह्नों पर चलकर आत्म-लाभ का मार्ग प्राप्त करेगी। इसी मगलकामना क साथ–

– मुनि सुशीलकुमार

निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सजग प्रहरी

श्रेष्ठतम परमविज्ञाता-स्वरूप की वास्तविक शुद्ध चरमसीमा की उपलब्धि मानव तन से ही हो सकती है। मानव-तन अनेकानेक प्राणियों को प्राप्त है पर इसको सार्थक करने वाली विरल ही विभूतिया मिलती हैं। वे विभूतिया प्रारम्भ मे साधारण मानव के रूप मे होते हुए भी सही ज्ञान के साथ ऐसा पुरुषार्थ करती हैं कि जिससे साधारणजन की पक्ति से सर्वथा ऊपर उठ जाती हैं जिसके सहारे वे असाधारण रूप मे परिलक्षित होती हैं। वह सहारा रत्नत्रय का होता है।

पचमकाल में जो कि ह्रासता की स्थिति के उन्मुख है अधिकाश दु ख दौर्मनस्य स्वार्थान्धता पदलिप्सा सत्ता और सम्पत्ति के कुहरे की प्रबलता मे मानव की वृत्ति दानवता की ओर शीघ्र-गति से ताण्डव नृत्य कर रही है। महातृष्णा की ज्वाला मे नैतिकता एव धार्मिकता मानो भस्मसात् की स्थिति को प्राप्त हो रही है। व्यक्ति परिवार समाज तथा राष्ट्र आदि समग्र विश्व में प्राय कामुकता की काली छाया परिव्याप्त हो रही हो वहा पर वीतराग-वाणी ही एकमात्र जीवनदायिनी बन सकती है। वह वीतराग-वाणी निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की परम्परा में जिनको सहज ही उपलब्ध हो पाई है अपने इस मानव तन को सार्थक क्यो नहीं बनायेगा ? क्यों नहीं अपनी आत्मज्योति को परिस्फुटित कर ससार के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने की चेष्टा करेगा ? अर्थात् अवश्य वह वैसा करेगा और जनसाधारण की स्थिति म वह एक आराध्यदेव के रूप मे उपस्थित होगा।

ऐसे महामानवों के सत्पुरुषार्थो से ही ससार चमका है और भविष्य मे भी चमकता रहेगा। ऐसे पुरुष ही ससार में शान्त क्रान्ति को जन्म देकर विश्वशान्ति की अमोघ साधिका निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण रखेगे। भूतकाल मे भी समय-समय पर किसी भी क्षेत्र मे शैथिल्य परिव्याप्त हुआ तो महान् विभूतियों ने अपने मानापमान की परवाह न करते हुए उत्क्रान्ति का बिगुल बजाया। उनकी गुणगाथाओं से इतिहास के पृष्ठ स्वर्णाक्षरों मे अकित हैं और उससे इतिहास के अभ्यासी भलीभाति परिचित हैं। लेकिन जिन पुरुषा का कृतित्व आधुनिक इतिहासकारों को लेखनी मे लिपिबद्ध नहीं हुआ है उनका आगम वाणी आदि अपुद्बवागरणा मे उपलब्ध हो पाया है। ऐसे तो अनेक महापुरुषो की जीवन-घटना का यथास्थान उल्लेख है ही उन सबको यहा उद्धरण रूप मे लेने से विस्तार की स्थिति बढ सकती है। अत जिज्ञासुओ को यथास्थान ही अवलोकन करने की आवश्यकता है। पर हमारे चरितनायक के जीवन की उत्क्रान्ति का सामजस्य जिन महापुरुष के साथ किया जा सकता

है उन महापुरुष का यहा उल्लेख आवश्यक होने से किया जा रहा है। वह हैं गर्ग नाम के आचार्य।

यह गर्गाचार्य बडे ही क्रान्तिकारी थे। निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सजग प्रहरी थे। इनको शिष्यो का लालच भी नहीं हो पाया था। शिथिलता को बरदाश्त नहीं करते थे। जब कभी भी शिष्यो मे शिथिलता का प्रवेश आता हुआ देखते तो उनको सुधारने की कोशिश करते थे। लेकिन उन्होने अनुभव किया कि ये शिष्य गलियार बैल की तरह शिथिल हो चुके हैं इनके साथ रहने से मेरी सयम-यात्रा समाधियुक्त नहीं रह सकेगी। सख्या की विपुलता से शासन की शोभा नहीं। शासन की शोभा सम्यक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे सन्निहित है। वह आराधना सुचारित्री अल्पसख्या मे भी की जा सकती है। उसी म समाधिभाव व निर्ग्रन्थ-सस्कृति की रक्षा है आदि कई दृष्टिकोणो को सन्मुख रख कर दुष्ट शिष्यो का सग छोड दिया। इस आशय के भाव उत्तराध्ययन सूत्र के 27वे अध्ययन मे परिलक्षित होते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र अपुट्ठवागरणा के रूप मे माना जाता है जो कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के पहले अर्थरूप मे फरमाया। गर्गाचार्य का समय क्या है इसका उल्लेख तो नहीं हो पाया है लेकिन इतना अवश्य सोचा जा सकता है कि भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरो के समय मे होना चाहिए क्योंकि भगवान महावीर का शासन तो भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् रहा और आचार्य की परम्परा के रूप मे सुधर्मास्वामी का उल्लेख है। अत यह अन्य तीर्थंकरो के समय के कहे जा सकते हैं और उनका उल्लेख अन्तिम तीर्थंकर के अन्तिम समय मे बिन पूछे होने से तीर्थंकरो के आशय की जो अभिव्यक्ति भलीभाति स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति मे शुद्ध आचार-विचार को महत्त्व दिया गया है न कि सख्या को और न आचार-विचार-शून्य सगठन को। मानो इसी बात का द्योतन करने के लिए गर्ग नाम के आचार्य का बिना किसी के प्रश्न ही उल्लेख किया गया है।

ऐसे तो यह बात मगलपाठ के शब्दो से भी भलीभाति व्यक्त हो जाती है। जैसे कि अरिहत सरण पवज्जामि सिद्धे सरण पवज्जामि साहू सरण पवज्जामि केवली पन्नत धम्म सरण पवज्जामि अर्थात् अरिहत सिद्ध साधु और धर्म की शरण बताई गई है न कि सगठन की शरण।

यदि निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति मे आचार-विचार-शून्य सगठन को ही महत्त्व दिया होता तो 'सघ शरण गच्छामि' इस तरह का पाठ जैसा बौद्ध ग्रन्थो मे है वैसा इस मगलपाठ में भी प्रयुक्त होता। लेकिन वीतराग परम्परा में आचार-विचार-सम्पन्न सघ सगठन एव साधु-सस्था को महत्त्व दिया गया है। यह बात गर्गाचार्य के चरितानुवाद वर्णन से सुस्पष्ट है।

उक्त सकेत से पाठकगण सहज ही यह समझ पायेगे कि गर्गाचार्य के चरित्र के साथ आचार्यश्री गणेशलालजी म सा का चरित्र कितना साम्य रखता है। एक दृष्टि से देखा जाये तो कई बाते अधिक विशिष्टता रखती हैं। अनुमानत गर्गाचार्यजी ने जितने मुनियो का त्याग किया उससे भी अधिक सख्या को छोडने का प्रसग चरित्रनायक का आया है। उन्होंने शायद सशक्त अवस्था में यह कार्य किया होगा लेकिन चरित्रनायक ने तो रोगाक्रात अवस्था मे भी इस प्रकार की शात क्रान्ति का गभीर समाधि भावना के साथ कदम उठाया। जहा रोगाक्रान्त स्थिति मे मानव अपने सयम का भी ध्यान नहीं रख पाता वहा आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने वृद्धावस्था और डाक्टरों को भी आश्चर्य मे डालने वाले भयकर रोग के प्रादुर्भाव रूप असातावेदनीय में भी शरीर के ध्यान को छोडकर सयम का पूरा ध्यान रखते हुए सारे समाज के सम्मान को पीठ पीछे रखकर अपमान के कटीले मार्ग को सामने रखते हुए अनत तीर्थंकरो की परम्परा को सुरक्षित रखने वाली निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सरक्षणार्थ शान्त क्रान्ति का कदम उठाया। इससे सहज ही उस महानुभाव के अन्तस्तल की प्रगाढ साधना की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

हमारे चरित्रनायक आचार्यश्री गणेशलालजी म सा सुसगठन के हिमायती थे और सुसगठन का आधार मानते थे सम्यग्ज्ञान दर्शन-चारित्र की आराधना। इसके लिये उन्होंने जो प्रयास किया वह सर्वविदित ही है।

सादडी वृहत्साधु सम्मेलन में आचार्य पद की नियुक्ति के लिए सर्वप्रथम आचार्यश्री गणेशलालजी म सा का नाम आया और प्रतिनिधि मुनिवर आपश्री को आचार्य पद के स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए एकस्वर से समर्थन कर रहे थे तब आपश्री ने उन प्रतिनिधि मुनियों से कहा कि आप लोगों ने मेरी अनुमति लिए बिना ही जो समर्थन किया है इसके लिए मैं आप लोगो के धर्मस्नेह का आभारी हू। लेकिन मैं इस पद को मेरे लिए पसन्द नहीं करता। क्योकि अब मेरी अवस्था ढल रही है और मैं अपने जीवन को अधिक आत्म-साधना में लगाना चाहता हू। इसी भावना को ध्यान मे रखकर मैं इस स्थल पर आया हू और चाहता हू कि निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा करते हुए सगठन बनाया जाये और मैं उस सगठन के लिए सबसे पहले अग्रसर होना चाहता हू, जिसका सकेत मैंने पहले ही कर दिया है। यदि यह सघ-ऐक्य-योजना अखड रहे और निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा होती हो तो मैं अपना सर्वस्व त्याग करके वीतराग परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए सगठन में तत्पर हू। बिना पद लिए ही मैं अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि के साथ सघ का सदस्य रहकर यथाशक्ति कार्य कर सकता हू। इस पद पर किसी योग्य लघुवयस्क मुनि को भी शासन सत्ता से सम्पन्न

प्रतिष्ठित कर दिया जाये तो मैं अनुशासन के नाते तीर्थंकरो की आज्ञा की तरह उनकी आज्ञा मे रहता हुआ विचरण करने को तत्पर हू, आदि आशय को स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के साथ सगठन का आदर्श उपस्थित किया।

प्रतिनिधि मुनिवर आचार्यश्री के तलस्पर्शी सगठन सम्बन्धी हार्दिक उद्गारो को सुनकर गद्गद हो गये और कहा कि भगवन् ! इस चुनाव मे आपकी अनुमति हम क्या ले हम तो सर्वसम्मति से आपका चयन कर चुके हैं। किसी का कहने पर चयन नहीं होता वह तो चयन करने वाले के हृदय से चयन होता है आदि विषयक कार्रवाई चलते हुए रात्रि का काफी समय चला गया और आचार्यश्री अपनी ही बात दोहराते हुए उठे तो सभा भी विसर्जित हो गई।

इसके पश्चात् पिछली रात्रि के लगभग तीन बजे से प्रमुख मुनिवरो का एक के बाद एक आचार्यश्रीजी के पास आवागमन हुआ और प्रार्थना की गई कि यदि आप इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह सगठन भी नही बनेगा और सारे देश के स्थानकवासी सघ की हसी होगी कि सघ का नेतृत्व सम्हालने वाला कोई योग्य व्यक्ति ही नहीं है। अत आपको हर हालत मे यह पद स्वीकार करके हमे अनुगृहीत करना चाहिये आदि बातें हुई जो यथाप्रसग पाठको को पढने को मिलेगी।

तदनन्तर आचार्यश्री ने सशर्त श्रमणसघ मे प्रवेश किया। शर्त यह थी कि 'सघ-ऐक्य -योजना अखड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हू। इसका तात्पर्य यह है कि सघ-ऐक्य की स्थिति खडित हो जाये तो मैं इस श्रमणसघ के अन्दर बधा हुआ नहीं हू। यह शर्त आचार्यश्री की दीर्घदृष्टि की सूचक है। सादडी मे जैसा श्रमणसघ बना उसका विभेद (विघटन) मूर्धन्य मुनिराजों द्वारा हो जाने पर आचार्यश्री गणेशलालजी म अपनी उस शर्त के अनुसार उससे पृथक हो सकते थे। जिसका उल्लेख आचार्यश्रीजी ने श्रमण सघ से पृथक हो जाने के बाद अपनी 22 सितम्बर 62 की घोषणा मे किया है।

स्वतन्त्र बनने पर भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धिपूर्वक सुसगठन की भावना आचार्यश्रीजी ने पृथक नहीं की। यही कारण है कि आचार्यश्रीजी ने निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग का आह्वान किया कि--

मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नही हू। मैं अब भी यह चाहता हू कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हू (जिसको श्रमण सघ ने सादडी मे स्वीकार किया था) एक के नेतृत्व में श्रमण सगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरा सतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमडल या यथासमव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आवद्ध होकर अपने

मे से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एव चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा दीक्षा चातुर्मास विहार व शिष्यपरपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के अधीन रहे। ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हू और अन्य सत सतियो से भी मैं यही अपेक्षा करता हू कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे।

इस प्रकार आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन को महत्त्व दिया और उसके लिये सब-कुछ त्याग करने की भावना स्पष्ट कर दी। पर ज्ञान दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन के लिये जब तैयारी दृष्टिगत नहीं हुई तो सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सुरक्षार्थ समाचारी के साथ सुसगठन को साकार रूप दे दिया और दरवाजा सबके लिये खुला रख छोड़ा।

आचार्यपद का चयन प्राय होता है और उनके चरणो मे नेतृत्व के अधिकार भी अर्पण किये जाते हैं। लेकिन इनको जिस ढग से नेतृत्व प्राप्त हुआ यह एक अद्भुत घटना-सी है।

पहले जलगाव मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म द्वारा सम्प्रदाय का नेतृत्व सम्हालने का प्रसग आया तो चतुर्विध सघ ने आपको ही अपना नेता चुना। इसके पश्चात् भी बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर मे देश के मूर्धन्य सन्तो मे से पाच पच नियुक्त किये गये थे उन्होने भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म और आचार्यश्री मन्नालालजी म के पाट पर आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके पश्चात् समग्र सप्रदायो के एकीकरण का वायुमडल चालू हुआ और उसमे वृहत् सम्मेलन की योजना चल रही थी। उसी के बीच कॉन्फरेस का एक शिष्टमण्डल आचार्यश्री गणेशलालजी म की सेवा मे पहुचा और उसने निवेदन किया कि बृहत्सम्मेलन के पहले जितनी भी सम्प्रदायो का एकीकरण हो सके कर लेना चाहिये। उसमें आपश्री के नेतृत्व की आवश्यकता है। तदनुसार पाच सम्प्रदायो का एकीकरण हुआ और आचार्यश्री को नेतृत्व सम्हालने की अर्ज की। उसके पश्चात् सादडी (मारवाड) में वृहत्साधु सम्मेलन का आयोजन हुआ और उसमे समग्र प्रतिनिधियो ने एक स्वर से आपके चरणो मे सघ-सचालन का नेतृत्व सौंपकर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। इस पद को स्वीकार कराने के लिये सर्वप्रतिनिधि मुनिवरो की ओर से उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म सा ने जो भाषण दिया वह यथास्थान पाठको को अवलोकन करने को मिलेगा।

इस प्रकार अखिल भारतवर्ष के लिये आपश्री का चयन हुआ। इसके पश्चात् जब आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सुरक्षार्थ शात क्राति का कदम उठाया तो मारवाड में विचरण करने वाले वहुश्रुत प र श्री समर्थमलजी म. भी प्रसन्नतापूर्वक आचार्यश्री गणेशलालजी म का नेतृत्व स्वीकार कर उनके नेतृत्व मे चलने को तत्पर हो गये। यह विवरण यथास्थान दिया गया है।

सयमनिष्ठा की दृष्टि से आचार्यश्री का जीवन अत्यधिक उज्ज्वल था। वीतराग-वाणी को आचार्यश्री ने अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न किया। शास्त्रो मे उल्लेख आया है कि 'विनय मूलो धम्मो' अर्थात् धर्म का मूल विनय बताया गया है। आप उस धर्म के साथ स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी म के चरणो मे लगभग 24 वर्ष तक रहे। उस समय किस तरह स्वर्गीय आचार्यदेव के चित्त की आराधना की वह तो अनुभवगम्य होने से उसके प्रत्यक्षदर्शी ही विशेष अनुमान कर सकते हैं। सकेत के रूप मे एकाध घटना का यहा उल्लेख कर रहे हैं जिससे समग्र जीवन की विनयशीलता का भलीभाति पता लग सकता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी म कभी-कभी भरे व्याख्यान मे साधारण-सी बात के लिये भी जोर से बोल देते तो उस समय भी आप शात और विनयशीलता के साथ गुरुदेव की वाणी को स्वीकार करते जबकि आजकल के सतो को बडी गलती भी एकात मे समझाई जाये तब भी सरलता से स्वीकृत नहीं होती। आपश्री स्वर्गीय आचार्यश्रीजी का ही विनय नहीं रखते थे बल्कि आप से दीक्षा मे जितने भी बड़े सत थे वे चाहे पढ़ाई की दृष्टि से और समझ की दृष्टि से कम ही होते तो भी उनका पूरा आदर-सत्कार करते। इसी विनयशीलता को आपने अपने सम्प्रदाय के सन्तों के साथ ही नही रखा बल्कि मारवाड सादडी मे वृहत्साधुसम्मेलन मे उपस्थित विभिन्न सम्प्रदायो के बड़े सन्तो का आपने विनय किया। उसको देख करके एक बडे विचारवान गभीर चितक सन्त के मुह से सहसा निकल पडा था कि सम्मेलन की सजीव आत्मा यह है। पृथक सम्प्रदाय मे रहते हुए जिनकी छाया मे खडे रहना नहीं चाहते थे उन्हीं का उसकी भावी समुज्ज्वलता की स्थिति को सन्मुख रखकर विनय करते हुए सम्मेलन के नियमों को अत करण से साकार रूप दे रहे हैं।

सेवाभावना भी उनके जीवन मे कूट-कूटकर भरी हुई थी। बड़ो और बुजुर्गों को ही नहीं जवान और छोटे सन्तो की भी प्रसग आने पर बड़ी लगन से सेवा करते थे। विद्वत्ता बडप्पन का अभिमान छू तक नहीं पाया। साधारण अवस्था मे तो सभी काम करते ही थे लेकिन युवाचार्य व आचार्य पद प्राप्त होने के बाद भी छोटे-से छोटा काम करने को तत्पर रहते थे।

सरलता उनमे इतनी थी जिसको देखकर कई सन्तों ने कहा कि आपश्री को इतना सरल नहीं होना चाहिये। कई-एक आपकी सरलता का दुरुपयोग कर बैठते हैं। तब आचार्यश्री फरमाते थे कि मैं शुद्धभाव से सरलतापूर्वक जो कार्य करता हू उसका भी यदि कोई दुरुपयोग करे तो उसमे मेरा कुछ नहीं विगड़ता। आचार्यश्री का हृदय स्फटिकमणि के समान स्वच्छ था।

इतना सब होते हुए भी अनुशासन-पालन करने-करवाने मे आपश्री मिश्री के समान कठोर थे। जब कभी भी सन्तो की सयम वृत्ति मे त्रुटि देखते स्खलना मालूम होती तो उनको सावधानी दिलाते। सुधारने की चेष्टा करते एव यथास्थान दण्ड व प्रायश्चित्त भी देते। उसमे इस बात का उनको जरा भी भय नहीं रहता था कि ऐसा करने पर सन्त नाराज हो जायेंगे या कम हो जायेगे।

एक बार उदयरामसर (बीकानेर) मे ऐसा ही प्रसग आया कि सन्तमडली के सामने आचार्यदेव ने फरमाया कि सयमी नियमो के पालन के साथ आप मेरे हृदय के हार हैं और उनके अभाव मे अकेला रहना पसन्द करूगा लेकिन सयमी नियमों की स्खलना पसद नहीं करूगा।

तात्पर्य यह है कि आचार्यश्रीजी सयमी जीवन में तनिक भी ढिलाई देखना पसद नहीं करते थे। आपश्री में अनेक ऐसे आध्यात्मिक गुण विद्यमान थे जिनका वर्णन शक्य नहीं है। फिर भी पाठको को अनुमान लगाने की दृष्टि से नमूने के रूप में कुछ कथन किया गया है।

समय से पूर्व की सोचने की क्षमता भी आपश्री मे अद्‌भुत-सी थी। उनकी अतरात्मा मे जो-कुछ भी भाषित हो जाता उसको वे दृढतापूर्वक सयमी मर्यादा के साथ कहने मे जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। तत्काल अच्छे-अच्छे समझदार व्यक्तियो को भी वह कथन अच्छा नहीं लगता था लेकिन जब भविष्य में वह बात साकार रूप धारण करती तो वे ही समझदार लोग मुक्तकठ से प्रशसा करते और किसी-किसी के मुह से तो ऐसा भी निकल पडता कि आचार्यश्री को पहले ही सूझ गया था।

बृहत्साधु-सम्मेलन में प्राय जनता को यही महसूस हो रहा था कि साधु समाज का सुधार होकरके यह सगठन वृद्धि को प्राप्त होगा लेकिन आचार्यश्री न मालूम उस समय भी भविष्य को किस रूप मे देख रहे थे यह तो विशिष्ट ज्ञानी ही बता सकते हैं। शर्तपूर्वक आचार्यश्री ने जो प्रतिज्ञापत्र पेश किया और उसके पश्चात् निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का जो क्रान्तिकारी कदम उठाया एव सादडी सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए सुसगठन का निर्माण किया उस समय प्राय कई व्यक्ति इस कार्य को अन्त करण से अच्छा नहीं मान रहे थे लेकिन आचार्यश्रीजी म के स्वर्गवास के पश्चात् अधिकाश वे ही व्यक्ति और यह कहा जाये कि वे प्राय सभी व्यक्ति आचार्यश्रीजी म के कार्य की अन्त करण से भूरि भूरि प्रशसा करते हैं और कइयो के मुह से यह सहसा निकल पड़ता है कि आचार्यश्री गणेशलालजी म ने बहुत ही अच्छा कार्य किया।

अनेक व्यक्तियो को आचार्यश्री के सपर्क से विविध प्रकार का अनुभव हुआ। वह अनुभव कभी उन लोगों के मुह से सुनने का प्रसग आता है तो वे कहते हैं कि आचार्यश्रीजी

म को वचन-सिद्धि भी प्राप्त थी। उनके मुह से अन्त करणपूर्वक स्वाभाविक जो भी शब्द निकल पडता वह वैसा सिद्ध होते देखा गया है।

वीतराग श्रमण परपरा की सुरक्षा के लिये आपश्री समय-समय पर चतुर्विध सघ को भलीभाति सचेत करते रहते थे।

जब आपवादिक स्थिति मे आपके आने का प्रसग आ रहा था उस समय भी आचार्यश्रीजी म ने चतुर्विध सघ को शिक्षा देते हुए जो बाते कही वे मौलिक एव मार्मिक थीं तथा निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का निचोड मानो सक्षिप्त मे परिणत हो गया हो। वे निम्न प्रकार हैं —

रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति शासनोन्नति मे किचिदपि असावधानी एव प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायो पर सदा ध्यान रखे —

(1) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशाति समावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति समाज राष्ट्र एव विश्व की शान्ति सभावित नही।

(2) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग शान्ति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(4) वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों का जहा हनन हो परिवर्तन किया जाता हो समय के नाम से पचमहाव्रतधारी मुनि-जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो वहा किचिदपि सहयोग न दिया जाये।

(5) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनियो के प्रति शुद्ध श्रद्धा भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनि-जीवन तो दूर मानव-जीवन के लिये भी कलकस्वरूप है। अत किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छिपाना न बचाव करना न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(6) शुद्ध आत्मीय समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्त करण म सदा बना रहे एव तदनुरूप सम्यक ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन मे उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(7) श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतो का भलीभाति पालन करे और श्रावकवर्ग के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(8) श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरो से अपने-आप को दूर रखने मे तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने मे अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका

का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण द्वारा अपने श्रमणोचित कर्तव्य पालने मे तथा स्वय द्वारा अपने श्रावकोचित कर्तव्य-पालन करने में भलीभाति सफल हो सके।

(9) निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता में नहीं किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है। उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी निर्ग्रन्थ श्रमण चाहे अल्पमात्रा मे भी क्यो न हों उन्हीं से निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सकता है। अत स्वगृहीत प्रतिज्ञा को भली-भाति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

(10) जहा सच्चे श्रमण नहीं पहुच सकते हैं और श्रावक वर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहा पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिए एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है। ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषयो की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ अहिसादि मर्यादाओ का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासन-सेवा मे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके।

उपर्युक्त बातें कोई भी सदस्य सही माने मे अपना ले तो उसका जीवन व्यक्ति परिवार समाज राष्ट्र एव विश्व में क्रमश व्यापक बनता हुआ जीवन की चरम सीमा तक पहुच जाता है। आचार्यश्रीजी म की यह भावात्मक वाणी अक्षय रूप में ससार मे विद्यमान रहेगी।

आचार्यश्रीजी म ने चतुर्विध सघ को जो निर्देश दिया है उसको आचार्यश्रीजी म शक्ति-भर स्वय के जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते थे। इस निरन्तर अभ्यास का ही एक प्रकार से परिणाम कह सकते हैं जो कि आचार्यश्री को समाधिमरण के रूप में प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री के सयम ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य पद के पूर्व तक अनेक तरह के परीषह अनुकूल-प्रतिकूल रूप में उपस्थित हुए। प्रतिकूल परीषह तो आचार्यश्री सहर्ष उत्साही युद्धवीर की तरह सहन करते हुए आगे बढ़े और परीषहदाताओं को अपने सहायक रूप मे मानते रहे एव फरमाते रहे कि ऐसे व्यक्ति मुझे जाग्रत् करने वाले होते हैं। यही कारण है कि उनके अन्त करण की ध्वनि प्राय व्याख्यान मे व ऐसे प्रसगो के समय सस्कृत श्लोक के रूप मे सहसा परिस्फुट होती रहती थी–

जीवन्तु मे शत्रुगणा सदैव येषा प्रसादात्सुधिचक्षणोऽहम्।
ये ये मा प्रतिबाधयन्ति ते ते माम् प्रतिबोधयन्ति।।

मेरे शत्रुगण सदा जीवित रहें जिनकी कृपा से मैं सुविचक्ष (सावधान) रहू। जो-जो व्यक्ति मेरे जीवन मे बाधक बनते हैं मानो वे मुझे बोध देते हैं यानी जाग्रत् करते हैं।

प्रतिकूल परीषहो मे खुश रहने मे व समभाव से सहन करने मे इतना जोर नहीं लगता जितना कि अनुकूल परीषहो के उपस्थित होने पर सममावी रहना कठिन होता है। एतद्विषयक बहुत-से अवसर आये और सत्कार-सन्मान की परिस्थितिया भी बहुत-सी आई फिर भी आचार्यश्रीजी म उनमे आसक्त नहीं हुये।

उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान के लिए कई व्यक्ति लालायित रहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये सत्य और सस्कृति को भी गौण करके उसको पाने की भरसक चेष्टा करते हैं फिर भी पूरे नहीं मिल पाते। किन्तु आचार्यश्री ने सहज सुलभ बिना प्रयास के मिलने वाले उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान को भी पीठ पीछे रखकर सत्य और सस्कृति को सन्मुख रखा।

वृद्धावस्था और प्रबल वेदनीयकर्मजनित भयकर असाता का सघर्ष एव सस्कृतिघातक व्यक्तियों के सामूहिक सघर्ष के बीच मे समभाव के अमोघ शस्त्र से सन्नद्ध होकर आचार्यश्री निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा के साथ आत्मीय दृष्टि को सन्मुख रखकर—

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्व।
माध्यस्थमाव विपरीत वृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

आदि भावो को रखते हुए इन सभी सघर्षों के बीच मे अपने स्वीकृत उद्देश्य की ओर बढते हुए क्रान्तिकारी समाज की सुव्यवस्था करके फिर उन व्यवस्थाओ से भी ऊपर उठ करके स्वय के शरीर का और तत्सम्वन्धी स्थितियो का भानपूर्वक त्याग करके शास्त्रीय विधिवत् 29 घटे पहले ही स्वत जागरूक अवस्था के अन्दर सथारा ग्रहण किया और उसी समाधिभाव के साथ अन्तिम अवस्था तक होश-हवास के साथ अपने इस भौतिक पिंड को छोड़कर स्वर्गारोहण किया। यह जीवन का अन्तिम श्रेय-साधन उनके समग्र जीवन की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

आज दिन तक के इतिहास के पृष्ठों से जाना जा सकता है कि पचमकाल में इस प्रकार की उत्कृष्ट साधना करने वाले और आचार्य पद पर रहते हुए 29 घटे का सथारा करने वाले विरले ही महापुरुष होते हैं।

ऐसे महापुरुष की कुछ जीवनी जो कि प्राप्त हो सकी है इस जीवन चरित्र मे यथास्थान पढने को मिलेगी। उसमें से सब तरह की जीवन-कलाए आध्यात्मिक प्रेरणाए सहिष्णुता आदि तथा प्राणिमात्र के कल्याणप्रद तत्त्व की सामग्री चिन्तन-मनन करने वाले विचारक वर्ग को मिल पायेगी और उस आध्यात्मिक जीवन की उज्ज्वलतर सीमा की ओर बढते हुए समग्र प्राणी कल्याणप्रद स्थिति को प्राप्त करे यही शुभकामना।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

श्रद्धावनत
सुन्दरलाल तातेड़

पूज्य गणेशीचार्य के चातुमार्स

क्र स	सन	सवत्	स्थान	क्र स	सन	सवत्	स्थान
1	6	1963	गगापुर	30	35	1992	देवास
2.	7	1964	रतलाम	31	36	1993	उदयपुर
3	8	1965	थादला	32.	37	1994	बीकानेर
4	9	1966	जावरा	33	38	1995	जयपुर
5	10	1967	इन्दौर	34	39	1996	उदयपुर
6	11	1968	अहमदनगर	35	40	1997	फलौदी
7	12	1969	जुन्नर	36	41	1998	सरदारशहर
8	13	1970	घोड़नदी	37	42	1999	बीकानेर
9	14	1971	जामगाव	38	43	2000	देशनोक
10	15	1972	अहमदनगर्	39	44	2001	सरदारशहर
11	16	1973	घोड़नदी	40	45	2002	ब्यावर
12.	17	1974	मीरी	41	46	2003	बगड़ी
13	18	1975	हिवड़ा	42	47	2004	बड़ीसादड़ी
14	19	1976	चिचवड	43	48	2005	रतलाम
15	20	1977	सतारा	44	49	2006	जयपुर
16	21	1978	रतलाम	45	50	2007	दिल्ली
17	22	1979	सतारा	46	51	2008	अलवर
18	23	1980	घाटकोपर	47	52	2009	उदयपुर
19	24	1981	जलगाव	48	53	2010	जोधपुर
20	25	1982	जलगाव	49	54	2011	कुचेरा
21	26	1983	जलगाव	50	55	2012	बीकानेर
22	27	1984	भीनासर	51	56	2013	गोगोलाव
23	28	1985	चूरू	52.	57	2014	कानौड़
24	29	1986	चूरू	53	58	2015	जावरा
25	30	1987	ब्यावर	54	59	2016	उदयपुर
26	31	1988	फलौदी	55	60	2017	उदयपुर
27	32	1989	जोधपुर	56	61	2018	उदयपुर
28	33	1990	उदयपुर	57	62	2019	उदयपुर
29	34	1991	रतलाम				

आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा की जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियॉ

जन्म स्थान	उदयपुर
जन्म	स 1947 मिती श्रावण कृष्णा 3 शनिवार
पितृनाम	श्री साहबलालजी
मातृनाम	श्रीमती इन्द्राबाई
जाति एव गोत्र	ओसवाल मारू
दीक्षातिथि	स 1962 मार्गशीर्ष कृष्णा 1
दीक्षागुरु	आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा
नेश्रायगुरु	तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी म सा
युवाचार्यपद-प्राप्ति	स 1990 फाल्गुन शुक्ला 3
युवाचार्यपद-प्राप्ति स्थान	जावद
आचार्यपदारोहण	स 2000 आषाढ शुक्ला 8
आचार्यपदारोहण स्थान	भीनासर
देहावसान	स 2016 माघ कृष्णा 2 शुक्रवार
स्थान	उदयपुर 11/01/63

मेवाड का गौरव

राजस्थान का अपना इतिहास है। मेवाड का नाम लेते ही आज भी देशभक्ति की गौरव-गाथा से प्रत्येक भारतीय का भाल उन्नत हो जाता है बॉहे फडक उठती हैं। मातृभूमि के लिये हँसते-हॅसते प्राणो को होम देना यहाँ के जन-साधारण के लिये खेल ही था तो राजपूतो ने अपनी आन के लिये प्राण दे दिये परन्तु पीठ नहीं दिखाई। रनवासो की सुन्दरियों ने सतीत्व के सामने ससार के अमूल्य आभूषणो और प्रलोभनों को मिटटी के समान समझा किन्तु कुल को कलकित नहीं किया।

उसमे भी अरावली की उपत्यका मे विस्तृत महाराणा का मेवाड तो प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को अपनी आन बान और शान के लिये कुरबान हो जाने वाले सपूतो को श्रद्धाजलि समर्पित करने के लिये लालायित कर देता है। यह वही मेवाड है जिसके वीरशिरोमणि महाराणा लक्ष्मणसिह ने देश की स्वाधीनता के लिये अपने ग्यारह पुत्रो का बलिदान दिया और वीर माता ने प्रसन्नमुख से उन पुत्रो की आरती उतारी थी। यह वही मेवाड है जिसमें रूप-लावण्य की खान महारानी पद्मिनी ने अपने पति-प्रेम के सामने बादशाही सुख-ऐश्वर्य पर थूक दिया और कुल-गौरव के लिये चिता पर चढ गई थी। यह वही मेवाड है जहाँ दुर्भिक्ष-पीडित प्यारी प्रजा के समान ही महाराणा सग्रामसिह ने भी पेडो की छाल खाकर दिन काटे थे। यह वही मेवाड है जिसकी रक्षा के लिये वीरवर जयमल और फत्ता ने प्राणों का कुछ भी मोह नहीं किया था। यही वही मेवाड़ है जिसके भामाशाह जैसे नगरसेठो ने अपने अखूट धन की कुछ भी परवाह न कर अपने स्वामी और जाति के लिये प्राण तक दे दिये थे। यह वही मेवाड है जिसका शासक देश की स्वाधीनता और वश-गौरव के लिये वर्षों पहाडी स्थानो और दुर्गम जगलो मे रहा और सपरिवार घास खाकर दिन निकाले किन्तु प्रण से च्युत नहीं हुआ था।

मेवाड का चप्पा-चप्पा 'प्राण जाहि पर वचन न जाहि' के प्रण से मुखरित है। मेवाड मे जन्मा विपन्नावस्था मे भी पराजय स्वीकार नहीं करता है। वह किसी के समक्ष अपेक्षा और आकाक्षा के लिये हाथ पसार कर दीनता नहीं दिखाता है। श्रम के कण ही मेवाड के मोती हैं।

मेवाड़ की भूमि जहाँ स्वाधीनता के सरक्षक सेनानियो की जन्मदात्री रही है वहीं इसने आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और अनुकपा भावना के प्रसारक सत-महापुरुषों की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त किया है।

यही मेवाड़ हमारे चरितनायक के आदि मध्य और अत का रगमच है। एक दिन इसकी मिट्टी मे आखें खोलीं--जीवन का प्रारम्भ हुआ। इसी की मिट्टी मे लोट-पोट कर वडे हुए इसी की मिट्टी म कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए और किसी एक दिन इसी मिटटी मे देखना बन्द कर दिया--जीवन का अत हुआ।

धर्म-सस्कारी माता-पिता ओसवाल वश के रत्न

महाराणा उदयसिह के समय से ही उदयपुर मेवाड की राजकीय गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। अपनी प्रतिभा कुशलता और स्वामिभक्ति के फलस्वरूप अनेक ओसवाल जातीय जैन बधुओं को राज्याश्रय प्राप्त था और राज्य सचालन मे उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे।

इन्हीं राज्याधिकारियो मे देवस्थान विभाग के खजाची श्री साहबलालजी मारू नाम के सद्गृहस्थ भी एक थे। आप स्वभावत धार्मिक वृत्ति के थे और अधिकारी भी ऐसे विभाग के थे जिसका कार्य प्रजा की धर्म-प्रवृत्तियों की देखभाल करने से सम्बन्धित था।

आपके दैनदिन जीवन के सामायिक स्वाध्याय प्रतिक्रमण उपवास पौषध आदि व्रताचार का पालन साधु-सतो के प्रवचन-श्रवण उनकी सेवा-वैयावच्च करना आवश्यक अग थे। आपका व्यक्तित्व सर्वत्र मान पाता था। हृदय की सरलता इतनी थी कि सभी को हित-मित और सत्य बात कहते एव दूसरो की भलाई के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

आपका न्याय-नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन मे विश्वास था। पितृ-परपरागत व्यवसाय लेन देन साहूकारी था और उसका माध्यम वस्तु का विनिमय वस्तु से एव रुपयो का लेनदेन गिनती करके लेना-देना नहीं होकर नाप-तौल माना जाता था।

राजकीय सम्मान तो आपको प्राप्त था ही और उसके साथ न्याय-नीतिपूर्ण व्यवहार एव प्रामाणिकता के कारण जन-साधारण में भी आपको अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गृहस्थ जीवन के लिये तीन चीजों की अनिवार्यरूपेण आवश्यकता होती है--आजीविका सुयोग्य परिवार एव सामाजिक प्रतिष्ठा और ये तीनो चीजे श्री साहबलालजी को सहजरूपेण ही प्राप्त थीं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम इन्द्राबाई था। आप कुलीन और सुसस्कारी महिलारत्न थीं। दीन-दुखीजनो की सेवा-सहायता करने मे उदार थीं। कोई भी याचक द्वार से निराश होकर नहीं लौटता था। स्नेह की अमीधारा से सभी को आप्लावित करना आपके जीवन की अनेक विशेषताओ मे से एक थी और पति पत्नी प्रत्येक धर्म-कार्य मे एक दूसरे के पूरक बन

सात्विक जीवन व्यतीत करते थे। वात्सल्य की वीणा पर सदैव त्याग और सेवा का नाद गूजा करता था।

यही सौभाग्यशाली दम्पती हमारे चरित्रनायक के जनक-जननी थे।

सस्कारी पुत्ररत्न का जन्म

श्रावण कृष्णा 3 स 1947 शनिवार को श्रीमती इन्द्राबाई की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ।

श्री साहबलालजी मारू उदयपुर निवासी थे अत बालक का जन्म उदयपुर बताया जाता है। लेकिन सत्य-तथ्य यह है कि बालक गणेश का जन्म उदयपुर राज्य मे मावली जक्शन के सन्निकट ऊँटाला (वल्लभनगर) मे हुआ। बालक के जन्म के समय श्री साहबलालजी सा ऊँटाला मे देवस्थान विभाग मे कार्यरत थे।

जैसे मनभावन सावन प्राकृतिक समृद्धि का प्रतीक है हरे-भरे खेतों और रिमझिम बरसते कजरारे मेघो की छटा को निहार कर मानवीय मन छन्दो मे छलक पडता है और यह छन्दो का सरगम नये-नये तीज-त्योहारो का सर्जन कर अणु-अणु में मोदमयी ममता बिखेर देता है वैसे ही इस पुत्र के जन्म से पितृहृदय का हुलास उमड पडा। माता वात्सल्य मे भीग गईं और सलोने शिशु को ममता से आच्छादित कर पुलक उठीं। पारिवारिक जन हर्ष और उल्लास से परिव्याप्त हो गये।

सामान्यतया पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिये हर्ष की बात होती है और फिर ऐसे पुत्ररत्न को पाकर कौन निहाल न हो जाता जो आगे चलकर अपनी ज्ञान और सयम-साधना के द्वारा अगणित नर-नारियो के अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ हुआ।

नामकरण

बालक का नाम सुन्दर और प्रिय हो यह प्रत्येक माता-पिता की आकाक्षा होती है। इसीलिये नाम एव गुणो का सामजस्य करने के लिये राशि और नक्षत्रो की गणना कराते हैं। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुसार नाम का तालमेल क्वचित्-कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु कौन जाने कि यह अकस्मात् था या विद्वान ज्योतिषी की दीर्घदृष्टि का परिणाम जिससे नवजात शिशु का नामाकन 'गणेशलाल' किया गया। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की हो कि जिस बालक का नामकरण गणेशलाल किया जा रहा है वह भविष्य मे नाम-निक्षेप से ही नहीं प्रत्युत साधुओ के गण का ईश बनकर भाव-निक्षेप से भी 'गणेश' नाम

सार्थक करेगा। कौन जानता था कि अज्ञानता की घोर निशा मे एक ज्योति प्रदीप्त करके प्रकाशपुज सिद्ध होगा। सयम साधना से चतुर्विध सघ–साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका–का सिरमौर बनेगा और पथ-भूला का सदैव ध्रुवतार की तरह मार्ग-दर्शन कराता रहेगा।

शैशव के सुनहरे पथ पर

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उक्ति के अनुसार शिशु गणेश ममतामयी माँ की गोद और दुलार के हिडोले मे झूलते हुए बडा होने लगा। पितृ स्नेह पुत्र पर केन्द्रित होन लगा। मस्तिष्क मे पुत्र को सुखी शिक्षित करने के चित्र उभरने लगे।

माता इन्द्रा इस ममता के मेरु को जब हँसते-खेलत भागते-गिरते रोते और मीठी नींद मे सोते देखतीं तो उल्लास स भर जाती थीं। कलोल और किलकारियो से तिमजिली तीज की हवेली का कोना-कोना गूज उठता था और जब इस अनूठे दुलारे को देख-देखकर भी मन नहीं भरता तो गोदी में ले मीठी-मीठी लोरिया सुनाने में अपने-आप को तल्लीन कर लेती थीं।

पुण्यमयी माता की गोद और पितृत्व के स्नेह से पगे हुए हमारे चरितनायक का शरीर के साथ-साथ मानसिक विकास होने लगा। वाणी की मृदुता और स्वभावजन्य चपलता स्वत ही जनमानस को आकर्षित कर लेती थी। चार वर्ष के होते-होते तो पाठशाला में विद्याध्ययन का श्रीगणेश करा दिया गया था।

किशोरावस्था में चहुमुखी विकास

शैशव की पगडंडियो को पार करने के साथ-साथ बौद्धिक विकास प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिये उत्तरोत्तर विकासमान होने लगा। अर्थोपार्जन के पितृ-परपरागत व्यवसाय में निपुणता-प्राप्ति हेतु तत्कालीन प्राप्त शैक्षणिक सुविधाओ के अनुसार हिन्दी उर्दू, फारसी अग्रेजी भाषा और महाजनी का अध्ययन करने लगे और 12-13 वर्ष के होते होते तो स्वतत्र रूप में शासन से सबधित पत्रादि लिखना और पिताश्री के कार्यो मे हाथ बटाने के लिये कचहरी का कामकाज सीखना भी प्रारभ कर दिया था।

विनीत पुत्र के विकास को देख श्री साहबलालजी को जितना सतोष था उससे बढकर आत्म-गौरव से विभोर हो उठते थे। सुयोग्य पुत्र को पाकर वे तृप्त थे।

महापुरुषों के जीवन में सुसस्कारों की प्रबलता साहजिक होती है जो समय के साथ पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं एव अन्यान्य अवसरों को भी अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। यही कारण है कि हमारे चरितनायक जिस ओर झुके सफलता उनकी चेरी बनती गई और यही उनकी सम्पूर्ण सफलता का मूलमत्र है।

धार्मिक सस्कारो का अर्जन

चरितनायक के पिताश्री साहबलालजी धार्मिक आचार-विचार के व्यक्ति थे। वे जानते थे कि धर्म का निवास मनुष्य की आत्मा मे है धर्म मानव-स्वभाव का अग है। धर्म का अस्तित्व मनुष्य की आत्मा म है धर्म मानव-स्वभाव का अग है। धर्म का अस्तित्व सृष्टि के अस्तित्व की तरह सनातन है और अपनी वास्तविकता से मानवीय आत्मा को प्रभावित करता रहता है। उस वास्तविकता का परीक्षणात्मक तालमेल एव निष्पक्षता की भावना का विकास तदनुकूल आचार-विचार के माध्यम से होता है।

इन्ही विचारो को अपने पुत्र मे देखने के लिए वे उत्सुक थे और हमारे चरितनायक भी शिशु-अवस्था से पिताश्री के साथ-साथ धर्म-स्थानो मे जा पहुँचते और कभी-कभी सामायिक दया आदि धार्मिक क्रियाए भी करते थे। कुछ धार्मिक भजन भी सीख लिये थे। कठ सुरीला था और जब आप भजन बोलना प्रारम्भ करते तो श्रोताओ के मन मुग्ध हो जाते थे।

श्री साहबलालजी यह सब देखते सुनते और एक प्रकार का आत्म-गौरव अनुभव करते थे और ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योकि प्रत्येक माता पिता स्वय अपने जीवन-व्यवहार मे धार्मिक आचार-विचारो का आचरण कर अपनी सन्तान को भी शैशवावस्था से ही धार्मिक सस्कारो से सुसस्कृत करन के लिये प्रयत्नशील रहते हैं जिससे वे भी सत्य को हृदयगम करने की योग्यता अर्जित करने मे समर्थ हो।

आपकी यह धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम नहीं थी किन्तु वह निश्चय ही पूर्वजन्म के सस्कारो का सुफल मानी जायेगी। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्मश्रद्धा दूज के चद्र की तरह निरतर वृद्धिगत होती गई और उसके फलस्वरूप एक महान् सत का गौरव प्राप्त हुआ सघशिरोमणि की प्रतिष्ठा पाई और आत्मशुद्धि के अधिकारी बने।

कौमार्य और गृहस्थाश्रम का दायित्व

शिशु गणेश क्रम क्रम से एक के बाद दूसरी विकास की परिधि पार करते हुए चढ रहे थे। उदीयमान योग्यता प्रतिभा और पारिवारिक कुलीनता को देखकर कई कन्याओं के पिताओ का अपनी-अपनी कन्या से सगाई-सम्बन्ध करने के लिये श्री साहबलालजी से आग्रह रहा। परिणामत चार वर्ष के बालक गणेशलाल की मेहता परिवार की समवयस्का कन्या के साथ सगाई हो गई।

मेहता परिवार और आपके मारू परिवार मे बहुत घनिष्ठता थी। यही कारण था कि श्री साहबलालजी को मेहता वश के आग्रह के समक्ष झुकना पडा और अल्पवयस्क बालक-बालिका अज्ञात रूप में सगाई-सम्बन्ध मे जुड गये।

नये-नये अनुभव लौकिक कार्यो मे चातुर्य और अर्जन के क्षेत्र मे सफलता के साथ बढते हुए आप चौदह वर्ष की कुमारावस्था में प्रविष्ट हुए। भारतीय आश्रम व्यवस्था के अनुसार यह अवस्था विद्यार्थी जीवन की थी जब भविष्य के उत्तरदायित्वो को समझने और निर्वाह करने के लिये नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त किया जाता है। किन्तु तत्कालीन समाज-व्यवस्था के अनुसार स्वास्थ्य व शारीरिक विकास की दृष्टि से विवाह का उचित अवसर न होने पर भी चौदह वर्ष की अविकसित अवस्था मे ही धूमधाम से विवाह करके आपको गार्हस्थिक दायित्व भी सौंप दिये गये।

लेकिन आपके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा अनूठापन था कि चौदह वर्ष की अवस्था मे ही सामान्यतया विद्याभ्यास अर्थोपार्जन तथा गृहस्थजीवन का दायित्व सफलता के साथ निबाहना प्रारम्भ कर दिया और क्रमश विकास के सोपानो पर अग्रसर होते जाना मानो अपने दायित्वों को सफलता के साथ सम्पन्न करके नियति द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आरूढ होने की तैयारी चल रही हो।

किन्तु उस समय अदृष्ट की प्रेरणा को कौन समझ सकता था ! आपके जीवन में एक ऐसी उल्लेखनीय विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि आपका जीवन परिस्थितियो की प्रेरणा से स्वयमेव ढलता गया। आकस्मिक सयोग साहचर्य और वातावरण आपको निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने मे सहायक होते गये और इन्हीं के बीच आपके लोकोत्तर विकास का रहस्य गर्भित है। आपके जीवन मे प्रगति एव नवनिर्माण का जो विहान प्रस्फुटित हुआ उसका निष्कर्ष निकालना मानवीय बुद्धि से परे की बात है किन्तु उसमे साहजिक व्यवस्था परिलक्षित होती है।

वैराग्य का क्रमश ऊर्ध्वारोहण

पिता की वैराग्य भावना का पुत्र पर अदृश्य रूप से सस्कार

पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म सा का उदयपुर में चातुर्मास था। पूज्यश्री श्रमण सस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आप में तप के तेज एव सयम के ओज का अनूठा सामजस्य था।

जहाँ भी ऐसे पूज्य पुरुषों का पदार्पण होता है वहाँ वे जनसाधारण को ज्ञान और चारित्र की शक्ति प्रदान कर और सद्धर्म के मर्म को शास्त्र नीति एव विज्ञान-नीति और युक्ति-प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर मानव-समष्टि को धर्मनिष्ठ बनाते हैं।

पूज्यश्री के प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन श्री साहबलालजी प्रवचन के समय उपस्थित होते और उपदेश श्रवण से जीवन की महान् उपलब्धि के प्रति सतत जागरूक रहने

के आदर्शों से समृद्ध होकर घर लौटते थे और जो सुनते उसे हृदयगम करने के लिये चिन्तन-मनन की कसौटी पर कसते थे।

चरितनायक भी कभी मातुश्री के साथ तो कभी पिताश्री के साथ पूज्यश्री के प्रवचन-श्रवण के लिये जाते थे। उस समय करीब आठ-नौ वर्ष की वय हो चुकी थी और वयोपार्जित अनुभवो से जो-कुछ भी समझ सकते थे समझ लेते और जो नहीं समझ पाते उसको समझने के लिए जिज्ञासु हो पिताश्री से समाधान प्राप्त करते थे।

प्रवचनो के श्रवण एव चिन्तन-मनन से श्री साहबलालजी की भावनाओं मे मथन का सूत्रपात हुआ। जो सोचते उससे अन्तर् की छानबीन की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होने लगी। इन्हीं विचारो मे डूबे हुए आप एक दिन पूज्यश्री के दर्शनार्थ पहुँचे और तात्त्विक चर्चा का रसास्वादन करते-करते वैराग्य के भावोद्रेक से तन्मय होकर बोले–भगवन्! मैं ससार से मुक्ति चाहता हूँ। चारो ओर उलझन और समस्याए बिखरी पडी हैं। यद्यपि मैं पारिवारिक ओर कौटुम्बिक दायित्वो से भयभीत होकर भागना नहीं चाहता तथापि अन्तर् मे एक नाद उठ रहा है–जीवन पानी के बुलबुले के समान है। काल का एक हलका-सा झोका उसे कभी भी समाप्त कर सकता है। फिर भी मनुष्य न जाने किन-किन आशाओ से प्रेरित होकर कल्पनाओ के किले बनाता है। अब यह परिवार प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व भव-विमुक्ति में सहायक प्रतीत नहीं होते हैं। ये तन धन स्वजन भवन सभी यहाँ रह जाते हैं और आत्मा–हस-निकल जाता है। न जाने आत्मा शरीर की कितनी-कितनी व्यथाए भोग रहा है फिर भी उसी को सजाने-सवारने मे सलग्न है। इस मूर्खता का अन्त होना ही चाहिये।

इन्हीं विचारों के अन्तराल मे श्री साहबलालजी ने यह भी सकेत दिया कि वैराग्य के राजमार्ग पर मैं अकेला ही नहीं साथ मे पत्नी पुत्र पुत्री भी पथिक बने तो मुझे प्रसन्नता होगी। लेकिन पुत्र पुत्री अवयस्क हैं अत उनके वयस्क होने तक मेरी भावना में विलब होना स्वाभाविक है।

आचार्यप्रवर ने इन विचारों की गहराई मे झाका। अनुभूतियों के उच्छवास में विवेक-समन्वित जीवन का विलास देखा और मानवीय जीवन की विशेषताओं का विशद विवेचन करते हुए समझाया कि कर्मरहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है। सयम-साधना आनन्ददायक है। यदि विवेकपूर्वक सयम का पालन किया जाये तो सयम इहलोक में सुखदायक है और परलोक में भी। साध्वाचार–पाच महाव्रत तीन गुप्ति पाच समिति द्वादश तप–के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि साध्वाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। पग पग पर विषमाओ कठोरताओं एव परीषहो का अनुभव करना पड़ता है। अत सुदृढ सकल्प और सहिष्णुता के विना इसका यथावत् आचरण होना शक्य नहीं है।

आचार्यश्री द्वारा बालक के उज्ज्वल भविष्य का सकेत

तात्त्विक चर्चाओ एव ऐसे ही अन्य प्रसगों पर कुमार गणेशलाल भी पिताश्री के साथ उपस्थित रहते और जो सुनते उसे हृदय मे उतारने का प्रयत्न करते थे। आपने पिताश्री के विचारो को ध्यान से सुना और विचारो के बीच एक नई धारा का प्रादुर्भाव हुआ।

आचार्यश्री ने बालक की ओर देखा और चेहरे पर अकित भावो को पढते हुए पूछ लिया--क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

बालक ने सुना और अपनी सहमति जताते हुए कहा कि क्या नहीं मैं भी दीक्षा लूगा। जब महावीर सयम-मार्ग की विषमताओ और परीषहो से भयभीत नहीं हुए तो हम महावीर की सन्ताने दुखो और सकटो से कैसे भयभीत हो सकती हैं ? यदि वीर बनना है और महावीर के अनुयायी कहलाने मे गौरव मानना है तो हमें महावीर के मार्ग का अनुगमन करना चाहिये।

आचार्यदेव ने बालक के इन आत्मविश्वास से परिपूर्ण शब्दो को सुना और मानसपटल पर बालक के भावी महत्त्व का एक चित्र अकित हो गया। दो-चार शब्दो मे भावी जीवन की झाकी झलक उठी।

आचार्य भगवान बालक की ओजस्वी वाणी साहस तर्क एव स्फूर्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्हे स्वय अपने अनुमान ज्ञान द्वारा बालक के भविष्य के बारे मे सोचना पड़ा। कुछ तथ्य और मान्यताए ऐसी हैं कि जिनकी विशद व्याख्या तो नहीं की जा सकती है परन्तु अनुमान ही लगाया जा सकता है।

इस प्रकार मनोमथन और तर्क-वितर्क से कुछ निश्चय सा करते हुए आचार्यदेव श्री साहबलालजी की ओर अभिमुख होकर बोले--साहबलालजी ! आपका यह बालक किसी दिन समाज का नेतृत्व सभालेगा। मेरा मन इसका और समाज का उज्ज्वल भविष्य देख रहा है। बालक होनहार है। इसके शरीर लक्षण हाव भाव बोलचाल और बौद्धिक प्रतिभा आदि व्यक्तित्व की विशेषता को व्यक्त करते हैं।

श्री साहबलालजी ने यह सब सुना और सुपुत्र के लिये ऐसी भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए। मातुश्री की प्रसन्नता का पारावार न था। किन्तु यह भविष्य वर्तमान कब बनेगा और यह सब कुछ देखने के लिये क्या उनकी जिन्दगी इजाजत देगी ? क्या इतना अवकाश मिल सकेगा ? कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है ? विश्व के नाट्यमच पर किस अभिनेता को कितना क्या अभिनय करना शेष है यह किसी को ज्ञात नहीं है।

बहन का वियोग वैराग्य को उत्तेजित करने मे ईंधन बना

सामाजिक सरचना मे परिवार एक आवश्यक तत्त्व है। परिवार के आधार से ही मनुष्य अपने मे विद्यमान सच्चेतना की सुकुमारता की विचारो के आदान-प्रदान की और बौद्धिक आनन्द मे हिस्सा बटाने की लालसा की तृप्ति करता है।

केवल पति-पत्नी और बच्चो के होने से ही कोई घर घर नहीं बन जाता। परन्तु वशानुक्रम से प्राप्त भाई बहिन माता-पिता आदि से सबोधित किये जाने वाले मानवो के समूह को परिवार कहा जाता है। इनके प्रति अपने दायित्वो का पालन करने के द्वारा हम सामाजिक कर्तव्यो का पालन करने के साथ-साथ मानवीय मन की अच्छाइयो और नैतिक कार्यो के विधान को प्रस्तुत करते हैं।

हमारे चरितनायक का भी इसी प्रकार का एक परिवार था। सबके अपने-अपने उत्तरदायित्व थे कर्तव्य थे और अधिकार थे। एक-दूसरे के प्रति ममता थी मान-सम्मान की भावना थी और कुल-धर्म की प्रतिष्ठा रखने की कामना थी। जीवन शाति और सुख मे बीत रहा था कि यकायक तूफान आया और वह तब शात हुआ जब आपका अपना कहा जाने वाला कोई न रहा। सब उस पथ पर चल दिये जिस पर जाने वाला कभी भी वापस नहीं लौटता है।

तूफान का प्रारभ हुआ बहिन की मृत्यु से। आपको वह अत्यधिक प्रिय थी। भाई का बहिन के प्रति और बहिन का भाई के प्रति स्नेह साहजिक है। आपकी अवस्था चौदह वर्ष की अवश्य हो गई थी लेकिन अभी तक पारिवारिक प्रियजन की मृत्यु का अनुभव नहीं हुआ था। अत उस समय आप भलीभाति नहीं समझ पाये कि मेरी बहिन को क्या हो गया है ? अभी तक उछल-कूद करने वाली लाडली बहिन को अकस्मात् यह क्या हो गया है ? जिन्दगी की मुस्कराहट में पलने वाले सुकुमार बालक को यह भान भी कैसे हो सकता था कि जीवन का अतिम रूप मौत है ! बहिन की मौत विचारधारा के बीच विरामचिह्न सी आ खड़ी हुई।

पारिवारिक जनों मे सभी स्वस्थ और प्रसन्न थे। अत उस रोज प्रात श्री साहबलालजी दयाव्रत अगीकार करके धर्मस्थानक मे रहकर धर्माराधना मे सलग्न थे। निर्दोष और निरतिचार व्रत पालन करने के लिये श्रावक दयाव्रत की मर्यादाओं को अगीकार करके गार्हस्थिक प्रवृत्तियो से विरक्त रहता है और धर्मस्थानक में रहकर सयम तप त्याग साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि के लिये ही तत्पर रहता है।

सूर्यास्त होने का समय था और उसी समय बच्ची की मृत्यु हुई थी। अत साहबलालजी तो शव-दाह करने जा नहीं सकते थे। उन्होंने विचार किया कि मृत बालिका वापस जीवित तो हो नहीं सकती है अत अगीकृत व्रत मे अतिचार लगाना उचित नहीं है।

हमारे चरितनायक भी दयाव्रत के विधान को जानते थे। अत उन्होने सोचा कि आस-पास के पडौसियो को लेकर शव-दाह कर देना चाहिये। पिताजी के व्रत मे दोष लगने से क्या लाभ है ? अत आप पड़ौसियो के साथ शव को उठाकर श्मशान की ओर चल पडे।

श्मशान तक पहुँचते-पहुँचते रात्रि पड गई थी। रात्रि मे श्मशान वैसे ही काल्पनिक विचारो से भयावह प्रतीत होता है और यह तो कृष्ण पक्ष की रात्रि थी। चारो ओर सन्नाटा था लेकिन बीच-बीच में सियारों की वीभत्स आवाजे और वृक्षो की झुरमुराहट उस सन्नाटे को और भी भयकर बना रही थी।

शव-दाह के लिये ईधन कुछ दूर से लाना था और साथ म गये व्यक्ति इने गिने थे। किसी-न-किसी को शव की रखवाली के लिये बैठना भी जरूरी था। लेकिन कौन बैठे इसका निश्चय नहीं हो पा रहा था।

यद्यपि बाल्यावस्था के कारण हमारे चरितनायक को ऐसे कार्यों और परिस्थिति का परिचय नहीं था। फिर भी साथ आने वालो की असमजसता को समझकर बोले–आप लोग ईंधन लेने जाये मैं यहाँ बैठकर देखभाल करता हूँ। आप लोग किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें।

फिर भी साथ मे आने वालों की दुविधा दूर नहीं हो सकी और उनकी दुविधा का कारण था चरितनायक की कुमारावस्था जिसे अभी तक ऐसी परिस्थिति का अनुभव नहीं हुआ था। साथियो के मनोभावो को समझकर आपने पुन कहा कि आप लोगों को अधिक सोच विचार करने की जरूरत नहीं है। आप लोग ईंधन लेने जाये मैं यहा बैठकर शव की देखभाल करता रहूँगा। आप मेरे लिए किसी प्रकार की चिता न करे।

बार-बार का आग्रह देखकर साथ वाले ईंधन लेने तो अवश्य चले गये और आवश्यक ईंधन भी लिया। किन्तु उनके मनो मे विचार उठते रहे कि इस प्रकार बालक को अकेला नहीं छोड़ना चाहिये था और हम में से किसी एक को वहीं बैठना जरूरी था। यदि हमारे पीछे बालक भयभीत हो गया या और कोई बात हो गई तो लोग क्या कहेगे और श्री साहबलालजी अपने मन में क्या सोचेगे ?

लेकिन इधर हमारे चरितनायक निर्भीक और निश्चल भाव से शव के निकट बैठ उसकी रखवाली करते रहे। उनके मन मे उस समय क्या कैसी विचार-लहरिया उत्पन्न हुई होंगी यह अवश्य ही जनसाधारण के लिये एक कुतूहल का विषय है। लेकिन उन्हें मालूम होना चाहिये कि मेवाड के वीरो के दिल इस्पात से निर्मित होते हैं और आपकी निर्भीकता उसका एक सकेतमात्र था।

ईंधन लेकर वापस आने पर पूर्ववत् आपको बैठा देखकर साथियों को सतोष हुआ और

आपके साहस की सराहना करने लगे। दूसरो ने भी जब इस घटना को सुना तो आश्चर्यान्वित होकर आपकी प्रशसा करते हुए उज्ज्वल भविष्य के अनुमान लगाने लगे।

यद्यपि श्री साहबलालजी को पुत्री की मृत्यु से दु ख तो हुआ किन्तु पुत्र के साहस की जानकारी मिलने पर खुशी की एक झलक दिखाई पडी। उन्होने सोचा कि जो बालक अपने प्रारभिक जीवन मे इतना साहसी है वह भविष्य मे न जाने कितना ओजस्वी तेजस्वी होगा। पूज्यश्री द्वारा पूर्व मे कहे गये कथन का पुन -पुन स्मरण हो आया कि यह बालक अपने कर्तव्य मे रत रहकर न केवल अपन ही वरन् अपने वश के नाम को भी उज्ज्वल करेगा।

पूज्य माता-पिता प्लेग की चपेट मे

यह घटना आपके भावी जीवन की महत्ता का बोध कराते हुए समय के साथ धूमिल पड गई और पूर्ववत जीवनक्रम चलने लगा। पारिवारिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक व्यवस्था के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये जीवनप्रवाह बह रहा था। उसमे किसी प्रकार के द्वन्द्व-दु ख का आभास नहीं था। लेकिन अकस्मात् उसमे पुन दु ख की काली घटाए घिर आईं। अब जो तूफान उठा वह लौकिक दृष्टि से मर्माहत करने वाला था। अच्छे-से-अच्छे धीर वीर गभीर व्यक्ति भी उस स्थिति मे सतुलन बनाये रखने मे असमर्थ-से हो जाते हैं। परन्तु अदृश्य शक्ति महापुरुषो के निर्माण के लिये किस प्रकार का वातावरण निर्मित करती है यह एक ऐसा रहस्य है जो मानवीय बुद्धिगम्य नहीं है।

न्याय नीतिपूर्वक पारिवारिक जनो का पोषण और गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए हमारे चरितनायक की अवस्था करीब सोलह वर्ष की रही होगी कि समस्त देश मे प्लेग का प्रकोप हुआ। देश का ऐसा कोई गाव और नगर नहीं बचा था जिसमें इस भयानक रोग ने अपना रूप न दिखाया हो। इसकी भीषणता अपने ही ढग की थी।

वैसे तो भारतवर्ष ने अनेक बार दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप सहन किये हैं। लेकिन इस समय होने वाली प्लेग की भीषणता की स्मृति जनता को आज भी है और जो भी उस समय की स्थिति का वर्णन भुक्तभोगियो से सुनता है तो कलेजा थर्रा जाता है। कहते हैं कि तत्कालीन सिर्फ जयपुर राज्य मे 76000 मकानो की चाबिया राज्यकोष मे जमा होने आई थीं जिनके परिवारो मे से एक भी व्यक्ति शेष नहीं रहा था। देश का कोई विरला ही परिवार बचा होगा जिस पर इस महामारी की छाया न पडी हो और अपने किसी-न-किसी प्रियजन को इसे न सौंप दिया हो।

उदयपुर मे भी प्लेग की भयानक लहर फैली। प्रतिदिन सैकडों की सख्या मे लोग काल के गाल म समाते फिर भी आखो में आसू नहीं आते थे। किस-किस के वियोग के लिय आसू

बहाये यह निर्णय नहीं कर पाते थे। एक अपनी जीवन-लीला समाप्त नहीं कर पाता कि दूसरा उसका स्थान लेने की तैयारी में होता। सभी को अपनी-अपनी रक्षा की पड़ी थी और औषधोपचार भी करते थे लेकिन जिसकी जीवन-डोर खडित हो गई उसे जोड़ने का सामर्थ्य तो किसी मे भी नहीं था। घर-घर और मौहल्ले-मौहल्ले मे मौत का ताडव हो रहा था और जो इसके पजे मे आ फसा वह तो गया ही और जो बचे वे हृदय मसोस कर इस लीला को देखते रह जाते थे। आखों के आसू भी अब मनोवेदना को व्यक्त करने मे असमर्थ हो गये थे।

इस महामारी ने श्री साहबलालजी और श्रीमती इन्द्राबाई को भी अपना लक्ष्य बनाया। औषधोपचार भी किया गया लेकिन सब व्यर्थ रहा और मौत के मुँह मे समा गये। मा की ममता और पिता के वरद हस्त से वचित हमारे सोलह वर्षीय किशोर चरितनायक और उनकी पत्नी अकस्मात् आगत जिम्मेदारियों का निर्वाह करने के लिये शेष रह गये थे। लौकिक दृष्टि से उन्होने गृहस्थाश्रम मे डग अवश्य रख दिया था लेकिन माता-पिता की मौजूदगी से अभी तक उसके दायित्व का भार आप पर नहीं था। अतीत के प्रति उपेक्षा वर्तमान के प्रति निरपेक्षता और भविष्य के प्रति भावुकता किशोरावस्था की विशेषताए हैं और इन्हीं के बीच आपका दैनदिन जीवन व्यतीत हो रहा था।

जीवन मे ऐसे अवसर अधिकाशत आया करते हैं जब एक ओर तो हम शोक के आवेग से दबे रहते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ता है। उस समय शोक के आवेग को मन-ही-मन दबाकर इच्छा या अनिच्छा से कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होना पडता है। मन मसोसकर विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है मानव-बुद्धि को कसौटी पर कसने का समय होता है।

पत्नी-सहयोग भी वियोग के रूप मे परिवर्तित

ऐसा ही अवसर चरितनायक के समक्ष उपस्थित था। अब किशोर पति पत्नी ही एक-दूसरे के सुख-दु ख के साथी रह गये थे। मन मे घुमड़ते विचारो को एक-दूसरे से कह सुन अपने भार को हलका करने की कोशिश करते थे। लेकिन यह भी सच है कि पुरुष को व्यापार आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करने के लिये घर से बाहर जाना-आना पडता है और उन कार्यो के प्रति मन के केन्द्रित होने के समय तक दु ख-विस्मृति का अवसर भी मिल जाता है और शनै -शनै समय के साथ दु ख के भार से अपने आप को विलग कर देता है। किन्तु स्त्री का कार्यक्षेत्र उसका घर और उसके कार्यों तक सीमित है एव उन्हीं के बीच दैनिक जीवन का समय व्यतीत होता है। अत समय समय पर असमय में दु ख-प्राप्ति मार्मिक होती

है और उसमे ही अनुभूति के क्षण अधिक प्राप्त होते रहते हैं। नारी-हृदय की सुकुमारता दयालुता भावुकता आदि सद्गुण स्वय उसे ऐसे अवसरो पर और अधिक दु खी खेदखिन्न बना देते हैं।

आप तो अन्यान्य कार्यों की ओर विचारो को केन्द्रित करने के फलस्वरूप धीरे-धीरे वियोगजन्य दु ख को भूलते जा रहे थे। लेकिन आपकी पत्नी इस आकस्मिक वज्राघात से घबरा-सी गई। भरे-पूरे परिवार मे रहने के कारण यह घर भयावना-सा सूना-सूना-सा लगता था। आप स्वय धैर्य रखते और पत्नी को भी दिलासा देते हुए नये वातावरण के अनुकूल बनाने की कोशिश करते और उद्विग्नता दूर करने के लिये आस-पास के पडौसियो के पारिवारिक जनों को अपने घर मे बुलाने का ध्यान रखते थे। फिर भी इतनी बडी तिमजिली हवेली मे एक अटपटापन-सा अनुभव होता रहता था।

जीवन मे रिक्तता आ गई और अब उसकी पूर्ति सभव नहीं थी। अत जो-कुछ हो गया उसे बदला नहीं जा सकता और न कोई बदलने मे समर्थ था। इसलिये भविष्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना जरूरी था। इसलिये जब कभी कार्यवशात् चरितनायक घर से बाहर जाते अथवा व्यापार के निमित्त दूसरे गाव जाना-आना होता तो पत्नी की उदासीनता एव एकाकीपन मे सात्वना देने दूसरी ओर ध्यान बटाये रखने के लिये पास-पडौस की परिचित बड़ी-बूढी महिलाओ बच्चो आदि को घर पर छोड़ जाते अथवा उसके मायके भेज देते और साहस के साथ नये जीवन मे अग्रसर होने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया।

ससार में मानवीय जीवन विशेषत आशाओं पर निर्भर है। यदि एक क्षण के लिये भी आशा मनुष्य का साथ छोड दे तो सभवत मनुष्यो की जीवन-नौका पार लगना ही कठिन हो जाये। जीवन मरुस्थल की तरह शुष्क और काल्पनिक भय दु खों का केन्द्र बन जाये। प्रत्येक मनुष्य अधेरे के बाद उजाला आपत्ति के अनन्तर सपत्ति और दु ख के पश्चात् सुख की आशा करता है। यदि ऐसा न हो तो स्वय उसे अपना जीवन भाररूप प्रतीत होन लगेगा। निराशा ही-निराशा दिखलाई देगी। लेकिन आशावादी दु खो के बीच निराश न होकर भविष्य को सुखमय बनाने के प्रयत्नो मे लगे रहते हैं।

चरितनायक आकस्मिक प्राप्त नये वातावरण मे अपने-आप को ढालने के लिये प्रयत्नशील थे तो विधि का विधान कोई दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। उसने ऐहिक बधन के प्रबल कारणो को हटा देने के अनन्तर पत्नी रूपी रहा-सहा बधन भी हटा देना उचित समझा। उसे यह बधन भी स्वीकार्य नहीं था।

प्लेग महामारी का पूर्ववत् प्रचड प्रकोप प्रवर्तमान था और आपकी पत्नी को भी उसने उदरस्थ कर लिया।

माता पिता और पत्नी के वियोग से आपकी जिन्दगी म रिक्तता शून्यता ने स्थान ले लिया। मायावी प्रपच का नग्न रूप आपके समक्ष झलक उठा—ससार असार है जन्म और मरण के किनारो के बीच फसा मानव कभी इसकी तो कभी उसकी टक्कर से थपेड़े-पर थपेडे खा रहा है। किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि यह जीवन पानी के बुलबुले की तरह कब समाप्त हो जायेगा अगला श्वास आयेगा या नहीं ? फिर भी व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा कर मायावी मृग-मरीचिका में भटकने को तत्पर हो रहा हे।

पत्नी के वियोग से आपके समक्ष ससार का विकृत क्षणिक रूप उपस्थित हो गया। सासारिक यथार्थता के काल्पनिक चित्र धूमिल होकर वास्तविकता को व्यक्त करने लगे। लेकिन ऐसे कारुणिक प्रसग भी आपकी चित्त-वृत्ति को चचल करने मे असमर्थ ही रहे और 'कालाय तस्मै नम काल को नमस्कार है काल बलवान है इस लोकोक्ति को लक्ष्य मे रखते हुए कभी घबराये नहीं किन्तु जो-कुछ होता है अच्छे के लिये होता है मानकर आप आध्यात्मिक साधना की ओर मनोवृत्ति को केन्द्रित करने के प्रयास मे सलग्न रहने लगे। प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना चिन्तन-मनन में रत रहना धर्मस्थानक मे जाकर साधु सतों के प्रवचन-श्रवण करना आदि अब दैनिकचर्या के आवश्यक अनिवार्य अग बन गये थे।

राग और विराग का अन्तर्द्वन्द्व

लेकिन पड़ौसियो और सगे-सम्बन्धियो के विचारों मे कोई दूसरी ही बात घूम रही थी। उनके विचारो में पुन उजडा घर बसाने का द्वन्द्व चल रहा था। ये चाहते थे कि इस अंधेरे घर में पुन उजाला हो बिखरे तिनको को इकटठा कर फिर से घोंसला बनाया जाये बाजे बजाये जाये और सूने घर में कुलवधू के नूपुरो की रुन-झुन रुन-झुन हो और आशा व इच्छा के तूफानों की माया मे पुन विहार किया जाये !

अब आपको समझाया जान लगा। नये-नये रूपॉ मे पारिवारिक प्रतिष्ठा और जीवन के लुभावने दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किये जाने लगे। कुल-परम्परा को बनाये रखने के दायित्व पर भार देते हुए आपके मन मे यह धारणा बैठाई जाने लगी कि सुयोग्य कन्या से विवाह कर गृहस्थी बसाना जरूरी है। कन्या के पिताओ की ओर से भी परोक्षरूपेण इसी प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा था।

पारिवारिक प्रियजनों की मृत्यु और शून्यता के कारण आपके मन को जो आघात लगा था वह समय के साथ शात होने लगा। आस पास के वातावरण और सगे-सम्बन्धियों के बार-बार समझाने-बुझाने से आप भी कुछ ऐसा सोचने लगे कि इन लोगों का आग्रह मुझे टालना नहीं चाहिये। ये सब मेरे हितैषी ही तो हैं। मुझे सुखी देखने की ही तो इनकी आकाक्षा

है। यदि गृहस्थी के साथ धर्म-साधना हो सकती है तो मुझे इनकी आज्ञा मानने मे कोई असुविधा नहीं है।

अब मन मे राग-विराग का अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। राग ससार का मनोरम रूप बतलाते हुए प्रेरित करता कि धर्म ससार में कभी भी कायरता नहीं सिखाता। प्रियजनो का वियोग हो जाने मात्र से अपने उत्तरदायित्व से भागना कायरता होगी। गृहस्थाश्रम बहुत बडी जिम्मेदारी का पद है। इसमे रहकर धर्म-साधना की जा सकती है और धर्म अर्थ काम पुरुषार्थ का अविरोध रूप से सेवन करते हुए भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है।

विराग ससार की क्षणभगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए बोध देने लगा कि गृहस्थी एक जजाल है। धन-दौलत और ससार के अन्य सुख-साधन इन्द्रधनुष की मानिन्द क्षणक्षयी हैं। आयु का क्या विश्वास ? आज है कल नहीं। माता-पिता परलोक सिधार गये पत्नी ने भी उन्हीं का अनुगमन किया। ये सब घटनाए तुम्हारे समक्ष हैं। ऐसी स्थिति में जीवन पर क्या भरोसा किया जा सकता है ? अत पुन ससार की ओर मुख करना उचित नहीं है। जितनी जल्दी हो सके आत्मसाधना मे लग जाओ उतना ही श्रेयस्कर होगा।

लेकिन सगे-सम्बन्धियों ने आपके भावुक मन मे ससार का एक काल्पनिक चित्र अकित कर रखा था। अत इस विचार-द्वन्द्व मे राग द्वारा निर्मित वातावरण की कुछ विजय हुई। विराग-भावना कुछ धूमिल-सी पड गई और दुनियादारी के चक्कर मे फसने एव जिन्दगी के अधूरे स्वप्न पूरे करने की बात मन मे बैठ गई। विराग राग से आच्छादित हो गया योग पर भोग की विजय हुई और सगे-सम्बन्धियो के पुन -पुन आग्रहवश विवाह की स्वीकारोक्ति देने का निश्चय-सा कर लिया।

लेकिन राग की यह विजय क्षणिक थी भावुकता का क्षणिक आवेश था और भावी की प्रेरणा तो किसी और ही दिशा का सकेत कर रही थी—जहाँ जीवन का स्वर्णिम प्रभात उदित होने वाला था आत्म-विकारो को क्षय करने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान थी उज्ज्वल उच्च विचारो के आदर्श विद्यमान थे। अत विवाह की तैयारिया रुक गई और असयम पर सयम की विजय हुई। राग की वीणा पर विराग के स्वर झकृत हो उठे। जीवन के दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन आ गया।

दृढ वैराग्य की पगडडी पर

दृष्टिकोण के बदलते ही एक नया उत्साह स्फूर्ति जीवन मे आ गई। ऐन्द्रिक विषय विषधर-से विषाक्त प्रतीत होने लगे। चिन्तन की धारा—मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है ? पर आकर केन्द्रित हो गई। मन मे बार-बार विचार उठते कि हृदय के शात और मन के स्थिर

माता पिता और पत्नी के वियोग से आपकी जिन्दगी मे रिक्तता शून्यता ने स्थान ले लिया। मायावी प्रपच का नग्न रूप आपके समक्ष झलक उठा—ससार असार है जन्म और मरण के किनारों के बीच फसा मानव कभी इसकी तो कभी उसकी टक्कर से थपेडे पर थपेडे खा रहा है। किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि यह जीवन पानी के बुलबुले की तरह कब समाप्त हो जायेगा अगला श्वास आयेगा या नहीं ? फिर भी व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा कर मायावी मृग-मरीचिका मे भटकने को तत्पर हो रहा है।

पत्नी के वियोग से आपके समक्ष ससार का विकृत क्षणिक रूप उपस्थित हो गया। सासारिक यथार्थता के काल्पनिक चित्र धूमिल होकर वास्तविकता को व्यक्त करन लगे। लेकिन ऐसे कारुणिक प्रसग भी आपकी चित्त-वृत्ति को चचल करने मे असमर्थ ही रहे और 'कालाय तस्मै नम काल को नमस्कार है काल बलवान है इस लोकोक्ति को लक्ष्य में रखते हुए कभी घबराये नहीं किन्तु जो-कुछ होता है अच्छे के लिये होता है मानकर आप आध्यात्मिक साधना की ओर मनोवृत्ति को केन्द्रित करने के प्रयास मे सलग्न रहने लगे। प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना चिन्तन-मनन में रत रहना धर्मस्थानक में जाकर साधु सतों के प्रवचन-श्रवण करना आदि अब दैनिकचर्या के आवश्यक अनिवार्य अग बन गये थे।

राग और विराग का अन्तर्द्वन्द्व

लेकिन पडोसियों और सगे-सम्बन्धियो के विचारो मे कोई दूसरी ही बात घूम रही थी। उनके विचारों मे पुन उजडा घर बसाने का द्वन्द्व चल रहा था। वे चाहते थे कि इस अधेरे घर मे पुन उजाला हो बिखरे तिनकों को इकट्ठा कर फिर से घोंसला बनाया जाये बाजे बजाये जाये और सूने घर मे कुलवधू के नूपुरो की रुन-झुन रुन-झुन हो और आशा व इच्छा के तूफानो की माया में पुन विहार किया जाये।

अब आपको समझाया जाने लगा। नये-नये रूपो मे पारिवारिक प्रतिष्ठा और जीवन के लुभावने दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किये जान लग। कुल परम्परा को बनाये रखने के दायित्व पर भार देते हुए आपके मन मे यह धारणा बैठाई जाने लगी कि सुयोग्य कन्या से विवाह कर गृहस्थी बसाना जरूरी है। कन्या के पिताओ की ओर से भी परोक्षरूपेण इसी प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा था।

पारिवारिक प्रियजनो की मृत्यु और शून्यता के कारण आपके मन को जो आघात लगा था वह समय के साथ शात होने लगा। आस-पास के वातावरण और सगे-सम्बन्धियों के बार-बार समझाने बुझाने स आप भी कुछ ऐसा सोचने लगे कि इन लोगा का आग्रह मुये टालना नहीं चाहिये। ये सब मरे हितैषी ही तो हैं। मुझे सुखी देखने की ही तो इनकी आकाक्षा

है। यदि गृहस्थी के साथ धर्म-साधना हो सकती है तो मुझे इनकी आज्ञा मानने मे कोई असुविधा नहीं है।

अब मन मे राग-विराग का अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। राग ससार का मनोरम रूप बतलाते हुए प्रेरित करता कि धर्म ससार मे कभी भी कायरता नहीं सिखाता। प्रियजनो का वियोग हो जाने मात्र से अपने उत्तरदायित्व से भागना कायरता होगी। गृहस्थाश्रम बहुत बडी जिम्मेदारी का पद है। इसमे रहकर धर्म-साधना की जा सकती है और धर्म अर्थ काम पुरुषार्थ का अविरोध रूप से सेवन करते हुए भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है।

विराग ससार की क्षणभगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए बोध देने लगा कि गृहस्थी एक जजाल है। धन-दौलत और ससार के अन्य सुख-साधन इन्द्रधनुष की मानिन्द क्षणक्षयी हैं। आयु का क्या विश्वास ? आज है कल नहीं। माता-पिता परलोक सिधार गये पत्नी ने भी उन्ही का अनुगमन किया। ये सब घटनाए तुम्हारे समक्ष हैं। ऐसी स्थिति मे जीवन पर क्या भरोसा किया जा सकता है ? अत पुन ससार की ओर मुख करना उचित नहीं है। जितनी जल्दी हो सके आत्मसाधना में लग जाओ उतना ही श्रेयस्कर होगा।

लेकिन सगे-सम्बन्धियो ने आपके भावुक मन मे ससार का एक काल्पनिक चित्र अकित कर रखा था। अत इस विचार-द्वन्द्व मे राग द्वारा निर्मित वातावरण की कुछ विजय हुई। विराग-भावना कुछ धूमिल-सी पड गई और दुनियादारी के चक्कर मे फसने एव जिन्दगी के अधूरे स्वप्न पूरे करने की बात मन मे बैठ गई। विराग राग से आच्छादित हो गया योग पर भोग की विजय हुई और सगे-सम्बन्धियो के पुन -पुन आग्रहवश विवाह की स्वीकारोक्ति देने का निश्चय-सा कर लिया।

लेकिन राग की यह विजय क्षणिक थी भावुकता का क्षणिक आवेश था और भावी की प्रेरणा तो किसी और ही दिशा का सकेत कर रही थी--जहॉ जीवन का स्वर्णिम प्रभात उदित होने वाला था आत्म-विकारा को क्षय करने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान थी उज्ज्वल उच्च विचारो के आदर्श विद्यमान थे। अत विवाह की तैयारिया रुक गई और असयम पर सयम की विजय हुई। राग की वीणा पर विराग के स्वर झकृत हो उठे। जीवन के दृष्टिकोण मे आमूलचूल परिवर्तन आ गया।

दृढ वैराग्य की पगडडी पर

दृष्टिकोण के बदलते ही एक नया उत्साह स्फूर्ति जीवन में आ गई। ऐन्द्रिक विषय विषधर-से विषाक्त प्रतीत होने लगे। चिन्तन की धारा—मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है ? पर आकर केन्द्रित हो गई। मन में बार-बार विचार उठते कि हृदय के शात और मन के स्थिर

रहने पर ही मनुष्य को आनन्द प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये योगी योग साधना करते हैं एकान्त-वास करते हैं और उससे वे सासारिक झझटो से दूर होकर स्वात्म रमण में सुखानुभूति करते हैं। चिन्ताओ के कारण ही मानव-मन अशात और अस्थिर रहता है। अत मन की स्थिरता के लिये चिन्ताओं का नाश होना आवश्यक है और उनके पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानद बन जाती है और मैं बहिर्मुखीवृत्ति कर सुखप्राप्ति की आकाक्षा कर रहा हूँ, जो पुरुष के पौरुष को कलकित करने जैसी है। मेरे पुरुषार्थ को हेय प्रेय श्रेय का विवेक करके अभीप्सित-प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील होना चाहिये। यही मेरा कर्तव्य है और इसकी पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ।

अत आप सूर्योदय से पूर्व ही शैया त्यागकर स्वस्थ मन हो परमात्मा के ध्यान मे लीन हो जाते थे और आत्म-चिन्तन करते हुए विचार करते कि

जीवन-प्राप्ति का अलभ्य अवसर मनुष्य-जीवन है। आज मुझे यह प्राप्त हुआ है तो इसका सर्वोत्तम उपयोग कर अपने इष्ट को प्राप्त करूँ। जिसने जन्म लिया है एक दिन उसका मरण निश्चित है। बडे-बडे राजा राणा छत्रपति भी इससे नहीं बच सके तो मेरी उनके समक्ष क्या गिनती हे ? सबको अपने-अपने समय पर मरना है। इसमे समय-मात्र का भी परिवर्तन करना शक्य नहीं है। अत इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिये मेरे प्रयत्न हों।

यह कुटुम्ब परिजन तो समय के साथी हैं। सभी का अपने-अपने स्वार्थों के वश एक-दूसरे से नाता-रिश्ता है। लेकिन प्रत्येक प्राणी को अपने कृत कर्मो को स्वय भोगना पडता है। उनको कम करने या सहायता देने मे कोई भी सहायक नहीं हो सकता है।

अत पूर्ण स्वतत्रता की राह पर आगे बढने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख-दु ख के रहस्य को समझे। यह सुनिश्चित तथ्य है कि ससार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और प्रत्येक प्राणी इसी कारण अपने समस्त प्रयासों को भी इसी दिशा में नियोजित करना चाहता है कि उसे सुख-ही-सुख प्राप्त हो।

जब तक मनुष्य निज की मनोवृत्तियों को नहीं समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नहीं कर सकता दासता की काली छाया नहीं हट सकती। जहाँ इच्छा और इन्द्रियों की दासता है वहा आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सुख और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती है।

सुख और दु ख की काल्पनिक अनुभूति [illegible] परे ही आत्मानन्द का निवास है एव जब आत्मानन्द का सचार होता है तभी पूर्ण स्व[illegible] मजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है। अत हम अपनी [illegible] को सयमित रखें।

मनुष्य-जीवन की यही गौरवमयी सार्थकता है कि जब तक मानव-मानस मे इस भावना का कि आत्मद्रव्य के अतिरिक्त ससार म रहा हुआ एक भी परमाणु मेरा नहीं जन्म नहीं होगा तव तक मानव-जीवन मे सुख की कल्पना आकाशकुसुमवत् ही परिलक्षित होती रहेगी।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है। प्राप्त साधनो का व्यापक लोक-हित के लिय परित्याग कर देने में ही त्याग की वास्तविक महत्ता रही हुई है। जो व्यक्ति निर्भयतापूर्वक ससार की किसी भी कठोरतम शक्ति का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता है वही धर्म के आतरिक रहस्य को भी प्रकाशित करने मे सफलीभूत हो सकता है। अत तृष्णा का त्याग ही वीर मानव का भोजन है परमात्मा का प्रसाद है तथा अध्यात्मधर्म का प्रमुख आधार है।

प्रतिदिन इन्हीं विचारों और ऐसे ही अन्यान्य विचारो का चिन्तन-मनन एव सयम-साधना -पूर्वक चरितनायक का जीवनक्रम चलने लगा और आत्मलक्षी जीवन की अनुभूतियों के अन्तरतम मे प्रवश करने के लिये प्रयास करते। विचारों को आचार मे उतारते हुए साधु-सन्तो की सेवा करना उनके प्रवचन सुनना और अधिक-से-अधिक ज्ञान ध्यान मे लीन रहना दैनिक चर्या बन गई।

प्रवचन श्रवण से वैराग्य को उत्तेजन

इस प्रकार से जीवन का क्रम चल रहा था कि वि स 1962 मे आचार्यदेव पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ।

आचार्यश्री साधु-परपरा के एक महान क्रातिकारी आचार्य थे। आपश्री की विचारधारा क्राति के पखो पर उड़ा करती थी। विचारो मे जनसाधारण के जीवन मे क्रातिकारी परिवर्तन लाने की शक्ति थी और वाणी क आज-माधुर्य मे आकर्षण ही नहीं वरन् तदनुकूल जीवन बिताने की शक्ति प्रदान करने की क्षमता थी। श्रमण-परपरा मे राष्ट्र और धर्म का क्रातदर्शी आचार्य इस शताब्दी में आपकी तुलना में दूसरा कोई नहीं हुआ है। आपश्री प्रखर प्रतिभा जाज्वल्यमान तेज और प्रबल सकल्प-शक्ति के धनी थे।

आचार्यश्री के पदार्पण से नगर के वातावरण मे अनोखा परिवर्तन आ गया था। मुमुक्षु भव्य-जन आपश्री के प्रवचनो को सुन अपने-आप को धन्य समझने लगे। उस समय का जन जीवन राष्ट्रीय चेतना एव सामाजिक कुरूढियों के उन्मूलन के दौर से गुजर रहा था। जनता धर्मानुमोदित सात्त्विक जीवन अगीकार करने के लिये उत्सुक थी।

आचार्यश्रीजी अपने प्रवचनो मे जनसामान्य को उन बातो का दिग्दर्शन कराते थे जो युगानुकूल होते हुए भी शाश्वत सत्य का दर्शन कराती थीं। श्रोताओ को नित नया बोधपाठ

मिलता और वे तदनुकूल जीवन बिताने की प्रेरणा लेकर आचार मे उतारते थे। उन्हीं मे हमारे चरितनायक श्री गणेशलालजी का नाम उल्लेखनीय है। प्रतिदिन वे जो-कुछ सुनते उसे अपने अतरग मे उतार लेते थे। यद्यपि उम्र सोलह वर्ष की थी किन्तु उनके धार्मिक सस्कार जन्मजात थे और आचार्यश्री के सान्निध्य मे उनका और अधिक विकास हुआ। आप प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनते और उसकी विमल धारा आपके हृदय में लहराने लगी।

आचार्यश्री का यह चातुर्मास धार्मिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। आपके साथ 9 सत थे। जिनमे से 6 सतो ने इस प्रकार तपस्याए कीं—

1 मुनिश्री मोतीलालजी म सा	41 उपवास
2 मुनिश्री राधालालजी म सा	30 उपवास
3 मुनिश्री पन्नालालजी म सा	61 छाछ के पानी से
4 मुनिश्री धूलचदजी म सा	35 छाछ के पानी से
5 मुनिश्री उदयचदजी म सा	31 छाछ के पानी से
6 मुनिश्री मयाचदजी म सा	41 छाछ के पानी से

इनके अतिरिक्त श्रावको ने भी अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान तपस्याए आदि की थीं। श्रावकों ने सामायिको की इक्कीसरगी की। इसमें 441 व्यक्ति सम्मिलित होते हैं और विधि इस प्रकार है—

इक्कीस व्यक्ति	21-21 सामायिक करते हैं	441
इक्कीस व्यक्ति	20-20 सामायिक करते हैं	420
इक्कीस व्यक्ति	19-19 सामायिक करते हैं	399
इक्कीस व्यक्ति	18-18 सामायिक करते हैं	378
इक्कीस व्यक्ति	17-17 सामायिक करते हैं	357
इक्कीस व्यक्ति	16-16 सामायिक करते हैं	336
इक्कीस व्यक्ति	15-15 सामायिक करते हैं	315
इक्कीस व्यक्ति	14-14 सामायिक करते हैं	294
इक्कीस व्यक्ति	13-13 सामायिक करते हैं	273
इक्कीस व्यक्ति	12-12 सामायिक करते हैं	252
इक्कीस व्यक्ति	11 11 सामायिक करते हैं	231
इक्कीस व्यक्ति	10 10 सामायिक करते हैं	210
इक्कीस व्यक्ति	9 9 सामायिक करते हैं	189

इक्कीस व्यक्ति	8-8	सामायिक करते हैं	168
इक्कीस व्यक्ति	7-7	सामायिक करते हैं	147
इक्कीस व्यक्ति	6-6	सामायिक करते हैं	126
इक्कीस व्यक्ति	5-5	सामायिक करते हैं	105
इक्कीस व्यक्ति	4 4	सामायिक करते है	84
इक्कीस व्यक्ति	3-3	सामायिक करते हैं	63
इक्कीस व्यक्ति	2-2	सामायिक करते हैं	42
इक्कीस व्यक्ति	1-1	सामायिक करते हैं	21

इस प्रकार 441 व्यक्तियों द्वारा निर्धारित समय मे कुल 4851 सामायिक सपन्न की जाती हैं। यह सामायिक की इक्कीसरगी है।

श्रमण धर्म की साधना के चौराहे पर

दीक्षा की भावना का स्फुरण

आचार्यश्रीजी का चातुर्मास सानद सपत्र हो रहा था। प्लेग महामारी पर काबू पा लिया गया था और इधर आध्यात्मिक प्रवचनों आचार-विचारा से जनसाधारण को भी आत्मिक शाति का अनुभव हुआ। चिन्ताग्रस्त मानस मे पुन आशा का सचार हुआ और भूत को भूल भावी को सुखप्रद बनाने की भावनाए जाग्रत् होने लगी थीं।

आसौज महीने की बात है। व्याख्यान-समाप्ति के अनन्तर श्री गणेशलालजी पूज्य जवाहराचार्य के वदनार्थ गये तो उन्होंने सामान्यत परिचय के लिये आपसे पूछ लिया कि तुम्हारा नाम क्या है ? माता-पिता भाई आदि पारिवारिक जन कितने-क्या हैं ? इस पर चरितनायक ने अपना साधारण-सा परिचय देते हुए कहा कि मेरा नाम गणेशलाल है। माता पिता पत्नी आदि का प्लेग से देहावसान हो गया है और मेरे सिवाय अन्य कोई भाई आदि नहीं है।

बात साधारण-सी थी और आई-गई हो गई। परिचय परिचय के लिये था एव अन्य कोई विशेष बात नही थी। किसी एक दिन आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा को किसी से यह मालूम हुआ कि माता पिता पत्नी के देहावसान के पश्चात् यह सोलह-वर्षीय कुमार गणेशलालजी त्यागमय जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। सतत ज्ञानाभ्यास और सयम-साधना मे सलग्न रहते हैं। लेकिन कुटुम्बीजन पुन गार्हस्थिक झझट मे उलझाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

समय मिलने पर आचार्यश्रीजी ने अपने व्याख्यान में प्रसगानुकूल ससार की क्षणभगुरता का चित्र खींचा और मार्मिक एव हृदयग्राही शब्दो मे काममोगो की विडम्बना का वर्णन करते हुए फरमाया कि मित्रो ! तुमने मनुष्य जन्म पाया है। स्मरण रखो यह जन्म सरलता से नहीं मिलता। न जाने कितने जन्म धारण करने के बाद कौन-कौनसी भयकर यातनाए भुगतने के पश्चात् कौन-से प्रवल पुण्य के उदय से यह जन्म पाया है। अगर यह यो ही व्यतीत हो गया विकारो में ग्रस्त रहकर इसे वृथा बरबाद कर दिया तो कौन जाने फिर कब ठिकाना लगेगा ?

यौवन की मादकता और भोगाभिलाषी मन के रगीन स्वप्न मनुष्य को ले उडते हैं। हाड-मास के पुतले पर निर्भर भोग किस क्षण धोखा दे जायेगे और कब मनुष्य को पछताना पड जायेगा कहा नहीं जा सकता है। सच्चे सुख की यदि कोई कुजी है तो वह स्वात्मरमण ही कही जा सकती है।

आचार्यश्री के इन शब्दों न 'मन भावे और बैद बताये की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। श्री गणेशलालजी स्वयमेव विरक्ति के मार्ग पर बढने का प्रयास कर ही रहे थे और इनको सुनते ही उनकी आत्मा प्रबुद्ध हो उठी। अनेक प्रकार के सकल्प विकल्पो ने स्वयमेव शाति का मार्ग प्राप्त कर लिया। अन्तर्द्वन्द्वो से निर्द्वन्द्व होने पर इन्द्रिय विषयो की निस्सारता और उन्हे भोगने की अभिलाषा करने वाले चित्त की क्षुद्रता आपकी दृष्टि के सन्मुख आ गई। सुषुप्त वैराग्य पुन जाग्रत् हो गया और जो भावना शात हो गई थी वह उपदेश रूपी प्रभजन से पुन उद्वेलित हो उठी।

वैराग्य-वासित आत्म-निवेदन

अब विचारो मे एक नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई थी। आप जितना सोचते उतने ही नये-नये विचार प्रत्यक्ष होने लगे। प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर परखने की चेतना जाग्रत् होने लगी और अन्त करण मे एक नया तेज उद्भासित होने लगा। मन मे एक सकल्प प्रादुर्भूत हुआ। किन्तु प्रवचन के अवसर पर तत्काल अपनी भावना व्यक्त न कर एकान्त मे बैठकर अपना निश्चय बतलाना उचित समझा।

अनन्तर आप एकान्त मे आचार्यश्रीजी म सा की सेवा में उपस्थित हुए। मन मे विचार चल ही रहे थे अत अपनी स्थिति मनोभावना एव प्रवचन के अवसर पर उत्पन्न हुई विचारधारा को आचार्यश्री के सन्मुख व्यक्त किया। आचार्यश्री ने आपके विचारों की यथार्थता और दृढता का परीक्षण कर पुन सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों मे ससार की वास्तविकता से परिचित कराते हुए वैराग्य का उपदेश दिया। उक्त उपदेश का आपके मानस-पटल पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि सकल्प को साकार रूप देने की दिशा मे कुछ नये निश्चय करके

भागवती दीक्षा अगीकार करने की भावना व्यक्त की। भागवती दीक्षा अगीकार करने की पूर्व तैयारी के रूप मे आपने उसी समय भादवा सुदी 9 को ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली और चौविहार का खध कर लिया। एक बार आपने एक साथ 41 सामायिक कर दृढ सकल्पशक्ति का परिचय दिया।

साधुचर्या के अनुरूप मार्गदर्शन तैयारी और अभ्यास

आचार्यश्रीजी ने आपक मनोभावो की परीक्षा करके साध्वाचार और उसकी प्रारभिक सयमात्मक क्रियाओ का निर्देशन किया और आप निर्धारित लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति करने के लिये उनका दैनदिन आचरण मे अभ्यास करने लगे। वैसे तो आपने पहले ही प्रतिक्रमण पाठ थोकड़ो आदि का अध्ययन किया था किन्तु अब आचार्यश्रीजी की सेवा मे रहकर प्रतिक्रमण पाठ पच्चीस बोल का थोकडा तेतीस बोल का थोकडा लघुदडक आदि का विशेष रूप से अध्ययन प्रारभ कर दिया और वैरागी जीवन मे साधुचर्या के अनुरूप ही सयम साधना का अभ्यास करने के लिये प्रयत्नशील रहने लगे।

समय-समय पर आचार्यश्रीजी आपकी भावना को परखते रहते थे और एक के अनन्तर दूसरी तीसरी आदि कसौटियों पर परीक्षित हो जाने क उपरान्त अतिम परख और दीक्षा के लिये कुटुम्बीजनो की अनुमति प्राप्त हो जाने के अनन्तर आचार्यश्रीजी ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को उदयपुर म ही आपको भागवती दीक्षा प्रदान करने का निश्चय कर लिया।

चरितनायक ने लौकिक दृष्टि से जहॉ सपन्न परिवार बाल्यकाल मे गार्हस्थिक दायित्व सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की अनुभूतिया प्राप्त कीं वहीं अपने प्रियजनो के वियोग की विडबनाए भी देखी थीं लेकिन आप उनसे भयभीत नहीं हुए और न आपदाए आपको भयभीत करने मे समर्थ हो सकीं। उनके बीच जलकमलवत् निर्लिप्त रहकर मूक-दर्शकवत् मौन बने रहे। अब तो ऐहिक भोग आपको अपनी ओर आकर्षित करने म असमर्थ-से हो गये थे। अत आवश्यकता थी आध्यात्मिक सुख और तात्त्विक विचारो के साक्षात्कार की। उसके लिये आपको श्री जवाहराचार्य जैसे क्रातिकारी विद्वान आचार्य के समागम का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह समागम 'सोन मे सुगध' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला सिद्ध हुआ।

साधु-दीक्षा का सकल्प क्रियान्वित हुआ

दीक्षा के माने हैं परीषहो पर विजय प्राप्त कर अध्यात्म की पाठशाला मे जीवन का पहला पाठ पढना जो ससीम से असीम की ओर गमन करने के शुभ सकल्प विराट विश्व को अपनी आत्मचेतना से अनुप्राणित करने और जीवन के मगल प्रभात के स्वागत की तैयारी का स्वत प्राप्त अवसर है।

दीक्षा के द्वारा व्यक्ति ऐहिक विषय-भोगो की मृग-मरीचिका मे झपापात न करके अपनी आत्मा की रक्षा करके उस परमपद की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है जो अनत ज्ञान दर्शन चारित्र अव्याबाध सुख आदि का आस्पद है और जहाँ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

हमारे चरितनायक को इस दिशा में प्रयत्न करने और बढ़ने के लिये ही दीक्षा अगीकार करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी।

अत पूर्व निश्चयानुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा स 1962 को चतुर्विध सघ की उपस्थिति मे पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने शास्त्रविधि अनुसार साधु का स्वरूप चर्या आदि समझाकर आपको साधु-दीक्षा दे दी और अपने गुरुभाई मुनिश्री मोतीलालजी म सा की नेश्राय में शिष्य घोषित किया। अर्थात् आपके दीक्षादाता पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा हुए और दीक्षागुरु हुए पूज्य मुनिश्री मोतीलालजी म सा।

साधुत्व का उद्देश्य आत्मिक अभ्युदय-प्राप्ति की साधना करना होता है। जगत् के जजालो को त्यागकर व्यक्ति साधुत्व इसलिये अगीकार करता है कि वह सभी प्रकार के लौकिक सयोगो से विमुक्त होकर आत्मा के चरम विकास के लिये प्रयास कर सके।

दीक्षा से हमारे चरितनायक की यह अभिलाषा पूर्ण हुई। आपने अपने को धन्य समझा और आपके लिये मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया।

दीक्षादाता और दीक्षागुरु का सक्षिप्त परिचय

व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होते हुए भी उसके विकास के लिये सहकारी कारणों की अपेक्षा होती है। जैसे बालक मे विकसित होने की शक्ति है लेकिन उसके विकास के लिये सहायक चाहिये और सहायक वही हो सकता है जो अनुभवी हो। ऐसे अनुभवी ही गुरु के सम्माननीय पद से विभूषित होते हैं।

विकास के लिये एक अनिवार्य उपाय है–जीवन-निरीक्षण। जो अपने जीवन व्यवहार का सावधानी से निरीक्षण कर सकता है अपने मानसिक भावो को देखता रहता है उसके जीवन का अल्पकाल मे ही आश्चर्यजनक विकास हो जाता है। यदि विकास मे प्रमादवश अवरोध पैदा हो जाये तो ऐसे अवसर पर पुन सन्मार्ग की ओर मोड़ने का कार्य गुरु करते हैं।

जीवन के साथ जिज्ञासा कल्पनाशक्ति सर्जकता सकल्प और श्रद्धामय आशा–इन पाच बातों का सम्बन्ध है। इन शक्तियो की अनियत्रित प्रवृत्ति सुख शाति या सतोष प्राप्ति का सही उपाय नहीं है। इसके लिये सयम की आवश्यकता है और सयम के लिये विवेक की

आवश्यकता होती है और इस विवेक की प्राप्ति म गुरु सहायक होकर उस परमतत्त्व व परमगति का सकेत करते हैं जो सयम एव विवेक का साध्य है। ऐसे गुरु वदनीय और पूजनीय होते हैं एव उनकी धर्मानुमोदित आज्ञाओ का पालन करने म विकास-इच्छुक का कल्याण है।

गुरु सयम और विवेक की महिमा का सकेत करते हैं कि जीवन के नि श्रेयस-प्राप्ति का यही मार्ग है और साधना के मार्ग पर मित्र की तरह साथ रहकर अहर्निश प्रमादजन्य भयस्थानो से सावधान करते रहते हैं।

हमारे चरितनायक को ऐसे ही गुरुओ के समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन महाभाग पुण्यस्मरणीयो के नाम हैं—आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा और मुनिश्री मोतीलालजी म सा। यहाँ उनका सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं।

परमश्रद्धेय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा की स्मरणीय गौरवगाथा जन जन के हृदय मे सुरक्षित है और आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की जीवनी' के रूप में जीवनवृत्त पुस्तकाकार प्रकाशित भी है। अतएव पुनरावृत्ति न करते हुए सक्षेप में कह सकते हैं कि आचार्यश्रीजी ने व्यक्ति समाज धर्म दर्शन राष्ट्र और विश्व को नई देन दी एव प्रत्येक क्षेत्र का मथन कर अमृत निकाला है।

आचार्यश्रीजी अनोखे शिल्पी थे कलाकार थे कलापारखी थे। अपनी साधना द्वारा सतत मौलिक निर्माण मे रत रहे और जो-कुछ भी निर्माण किया वह सदैव मौलिक और नित नूतन है।

हमारे चरितनायक के साधनामय जीवन-निर्माण का समस्त श्रेय आपश्री को ही है और जो-कुछ भी आप मे था वह समग्ररूपेण चरितनायक मे अवतरित हुआ था। इसी का परिणाम है कि चरितनायक निर्भय निर्द्वन्द्व होकर साधना के सोपानों पर बढते रहे प्रगति करते रहे।

पूज्य जवाहराचार्य के परिचय के पश्चात् अब उन महापुरुष का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं जो हमारे चरितनायक और उससे भी पहले पूज्य जवाहराचार्य के जीवन-निर्माण मे निकटतम सहयोगी रहे हैं। जिनकी सेवा भावना ने एक अनूठा आदर्श उपस्थित किया है और जिनकी सतत सयम-साधना साधको के लिये अनुकरणीय रहेगी। उनका नाम है महाभाग मुनिश्री श्री मोतीलालजी म सा। ये महाभाग हमारे चरितनायक के दीक्षागुरु थे और आपके शुभाशीर्वाद ही गणेश की जीवन-वाटिका मे नित-नूतन आदर्शो का श्रीगणेश करते रहे। सक्षेप मे कहें तो आप गुरुणागुरु थे।

तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी म सा का जन्म सिगोली (मेवाड़) मे हुआ था। आप कटारिया गोत्रीय श्री उदयचदजी के सुपुत्र थे और मातुश्री का नाम बिरदीबाई था। माता-पिता

के धार्मिक नैतिक आचार विचारो को अपने जीवन मे उतारते हुए आपने आयु के अठारहवें वर्ष मे प्रवेश किया। यह अवस्था यौवन-वसत का प्रवेशकाल है। इस काल में कामना रूपी कोकिलाओ की कुहू कुहू मानव को मदोन्मत्त बना देती है। रसलोलुपी भवरे की तरह मन भोगो पर मडराता रहता है। विषय-वासना में अनुरक्त इन्द्रिया आम्रमजरियों की तरह बौरा उठती हैं और जीवन-उद्यान में अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है।

उस समय विरक्ति–भोगों के प्रति वैराग्य–होना सहज बात नहीं है। ऐसे समय मे भोगों की मृग-मरीचिका और अठखेलियो को पराजित किये बिना वैराग्य का बाना नही पहना जा सकता है। किन्तु इस युवावय मे ही मुनिश्री मोतीलालजी म सा ने राग की वीणा पर विराग के स्वर झकृत कर ससार का त्याग कर दिया था और मुनिश्री राजमलजी म सा के सान्निध्य मे प्रव्रजित होकर आध्यात्मिक साधना के साधक बन गये थे।

उनके साधक बनने का काल भी जीवन के वसत की तरह प्रकृति के बसन्त का था। बसन्त पचमी के लगभग स 1932 के माघ शुक्ल पक्ष मे आपने भागवती दीक्षा अगीकार की थी।

दीक्षित होने के साथ ही आपने अपने ओज को तपस्या द्वारा तेज मे रूपान्तरित कर दिया था और आपकी यह तप साधना जीवन-पर्यन्त चलती रही। एक से अडतालीस (सैंतालीस को छोडकर) दिन तक की तपस्या के थोक आपने किये थे और मास खमण एव बेला तेला आदि की तपस्याए तो अनेक बार कर चुके थे। आप जैसे उच्च कोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट ज्ञानी और सेवाभावी थे। आपकी सेवापरायणता साधुओ के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है।

'सेवाधर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य सेवाधर्म परम गहन है जो योगियो के ज्ञान द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है। लेकिन आपने अपनी साधना द्वारा सेवा के आदर्श को साक्षात् कर दिखाया था। आपकी सेवा-भावना किसी व्यक्ति-विशेष तक सीमित न होकर सवहिताय से परिपूर्ण थी। आपके करुणार्द्र जीवन के क्षण क्षण और पल-पल मे सेवा परायणता का एक-एक प्रसग अकित है और उन अनगिनत प्रसंगो से एकाध को यहाँ प्रस्तुत करते हैं–

प्रसग आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के मुनि-जीवन के समय का है। दीक्षित होने के कुछ दिनो बाद ही मुनिश्री जवाहरलालजी म सा विक्षिप्त हो गये तो श्रावको ने निवेदन किया कि नवदीक्षित मुनिश्री की सेवा-परिचर्या मे आपको काफी कष्ट सहना पड़ता है और श्रम भी करना पडता है अत जब तक वे निरोग न हो जाये तब तक के लिये हमें सौंप दे और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा मे उपस्थित कर देगे। लेकिन आपने उत्तर दिया कि जब तक मेरे तन मे ताकत है तब तक इनकी सेवा-सभाल करता रहूँगा। आप इसके लिये

चिन्तित न हो और पूर्ण मनोयोग से सेवा-परिचर्या करक उन्हे निरोग कर लिया। इस स्थिति में भी आपने साधु-मर्यादानुसार दैनिक कृत्य करते हुए अपनी साधना मे कोई व्यवधान नही आने दिया था।

विकट-से-विकट परिस्थितिया भी आपको अपने मार्ग से विमुख नहीं कर पाती थीं किन्तु सफलता के लिये नया साहस और बल प्रदान करती थीं।

आपके चातुर्मास अधिकतर पूज्य जवाहराचार्य के साथ ही होते रहे हैं। आप दोनों मे से किसी एक का नाम लेते ही दूसरे की स्मृति स्वयमेव हो जाती है। नाम दो अवश्य थे किन्तु एक मन एक वचन और एक भावना के जीवन्त प्रमाण थे।

इन्हीं कारणो से समय-समय पर पूज्य जवाहराचार्य आपके असीम उपकारो को बहुत ही प्रमुदित होकर हृदयग्राही शब्दो मे व्यक्त किया करते थे और अपने जीवन की साध्य-वेला तक मुनिश्री के प्रति कृतज्ञ रहे। आप अकसर कहा करते थे–तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार हैं।

दीक्षागुरु का दु सह वियोग

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा को जब कारणवशात् महाराष्ट्र से मालवा की ओर विहार करना पड़ा तब आप काफी वृद्ध हो गये थे और चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा के साथ जलगाव विराजते थे। वहीं आपको दस्तो की बीमारी हो गई। काफी औषधि उपचार किये गये। लेकिन रोग बढता गया और फाल्गुन कृष्णा एकादशी स 1983 को आपका जलगाव मे स्वर्गवास हो गया।

उक्त दोनो महापुरुषो के सरक्षण मे चरितनायक का विकास हुआ था और इन दोनो की विशपताओ को सर्वात्मना आत्मसात् करने में सफलता प्राप्त की। इसी का परिणाम है कि इन महाभागों की अनूठी विशेपताओं का समन्वित रूप आपमे पूर्णरूपेण प्रतिभासमान है–जो आबाल-वृद्ध जनसमूह को सदा-सदा के लिये श्रद्धावनत बना देता है।

साधु-दीक्षा का चरम लक्ष्य

चरितनायक अब दीक्षित हो गये थे। दीक्षित होने का अर्थ है–मानव जीवन के महान् और चरम लक्ष्य का साक्षात्कार करना। लेकिन जब-जब इस तथ्य को भुला देने की कोशिश की गई मानव मे शिथिलता एव अकर्मण्यता का वातावरण फैला और जब-कभी एव जहा-कहीं भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया तो विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

सत् चित् और आनन्द का तादात्म्य जीवन की परिभाषा है। सत् का अर्थ है तीन काल मे स्थायी रहना अर्थात् भूतकाल मे था वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। चित् अर्थात् दीपक की तरह स्वय प्रकाशमान होकर दूसरो को भी प्रकाशित करना। हम हैं और हम अनुभव करते हैं इससे निकलने वाले परिणाम का नाम आनन्द है। आनन्द की चरम स्थिति तभी प्राप्त होती है जब इन्द्रियो व मन का व्यापार बद होकर केवल आत्मा सजग रहती है। जैसे-जैसे मन और इन्द्रियो की गुलामी छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आन्तरिक आवाज की ओर उन्मुख होता है वैसे-वैसे निरन्तर बढ़ती हुई अनुभूति मे आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जाता है।

इसी पवित्र आकाक्षा की पूर्ति हेतु एव विराट विश्व के कण-कण मे इसी का सदेश मुखरित करने अणु-अणु मे आत्म-दर्शन करने और जन्म-जरा-मरणोर्मियो से परिव्याप्त ससार पारावार से पार होने के लिये आपने अनगार धर्म को अगीकार किया था और साधना के श्रीगणेश के साथ ही सयम-तप-त्याग की कसौटी पर अपने-आप को कसना प्रारम्भ कर दिया।

मुनि-जीवन मे प्रशस्त विहारचर्या और सम्यक् बोध

साधु-सतो की यह दैनदिनी सामान्य चर्या है कि आत्म-निर्भरता के प्रबल हिमायती होने से साधनोपयोगी उपकरणो का भार स्वय ही उठाते हैं। ग्राम या नगर मे जाकर मधुकरीवृत्ति का परिचय देते हुए गृहस्थो के घरो से निर्दोष भिक्षा तथा प्रासुक जल की स्वय ही गवेषणा

करते हैं। प्राणिसयम के लिये वर्षा ऋतु के चार मास किसी एक स्थान पर विश्राम करने के सिवाय वर्ष के शेष आठ माह किसी भी प्रकार के यान वाहन आदि का उपयोग न करके सतत पैदल विहार करते हैं और कांटो कंकड़ो से बचाव के लिये पैरों मे जूते चप्पल या मोजे आदि नहीं पहनते हैं और न धूप आदि से बचने के लिये सिर पर छतरी आदि ही लगाते हैं।

जीवन-निर्माण मे पैदल विहार को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह शिक्षा का प्रधान अग माना गया है। इसका सबसे बड़ा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने से मार्ग की परिस्थितियो का अनुभव होता है। विस्तृत वनराजि के बीच कहीं पहाडों और उनकी उपत्यकाओं में निर्द्वन्द्व विचरण करने वाले बनैले व्याघ्रादि तो कहीं कुलाचे लगाते हुए मृग-शावक दृष्टिगत होते हैं। कहीं कल कल करते झरने तो कहीं शतदल कमलों से सुशोभित सरोवरो के दर्शन होते हैं। कहीं हरे-भरे खेत तो कहीं बीहड़ जगल और कहीं सघन वृक्षावली तो कहीं विशाल रेतीले मैदानो की झाकी देखने को मिलती है। कहीं श्रद्धा-भक्ति के भार से नम्र-भद्र ग्रामजनों का स्नेहपूरित स्वागत प्राप्त होता है तो कहीं क्रूरकर्मा डाकू-लुटेरे ताकते मिलते हैं। कहीं प्रकृति की रमणीयता कमनीयता के दर्शन होते हैं तो कहीं उसके प्रलयकारी प्रकोप का भी सामना करना पडता है। यह सब दखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और सममाव रखने का अभ्यास बढता है एव उससे प्राप्त सस्कार जीवन-विकास म प्रेरणादायी सिद्ध होते हैं।

पैदल विहार करने वालो को ही प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द नसीब होता है। रेल मोटर या वायुयान द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा पहुँचने वाले प्राय इस आनन्द से वचित-से रहते हैं। मार्ग के दृश्य उन्हें स्वप्न के समान भागते हुए-से प्रतीत हाते हैं और उनके साथ हृदय का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है।

ज्ञानवृद्धि मे भी पद-विहार से बहुत सहायता मिलती है। मानवीय प्रकृति एव आचार-विचार-व्यवहार का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओ बोलियो व सभ्यताओं को समझने के लिये भी इसकी आवश्यकता है। प्रचार की दृष्टि से तो इसका महत्त्व सर्वोपरि है। श्रमण भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध जैसे विश्व कल्याणक महापुरुषो ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता मे धर्म-जागृति की शातक्राति का मत्र फूका और युगीन लोकरूढियो के स्थान पर यथार्थ कर्तव्य का प्रतिबोध किया।

चारित्ररक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिये एक नियत स्थान पर न टिककर विहार करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोहोद्रेक होने का भय रहता है। इसी दृष्टि से जैनागमो में साधु के लिये विहार करना आवश्यक माना है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर 29 रात्रि से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। भविष्य

मे आचार्य होने वाले के लिये तो यह और भी जरूरी है कि उसे विभिन्न प्रातो में भ्रमण करना चाहिये।

प्रथम दिवस की विहारचर्या सहिष्णुता की परीक्षा

स 1962 मार्गशीर्ष कृष्णा 1 को चरितनायक ने भागवती दीक्षा अगीकार की थी और चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर यही दिन सत-मुनिराजो के विहार का होता है। अत नवदीक्षित मुनिश्री गणेशलालजी म सा गुरुदेव का पदानुसरण करते हुए साथ चल पडे। इससे पूर्व आपने पदविहार के लिये एक भी डग नहीं रखा था। देह सुकुमार थी और विहार मार्ग भी लबा नहीं था करीबन कोस सवा कोस का होगा।

लेकिन इतने-से पदविहार ने भी नवदीक्षित मुनिश्री के कोमल शरीर पर अपना प्रभाव दिखलाया। तलवो मे फफोले पड गये पिडलियो मे दर्द हो गया कधो मे गठाने पड गई और हाथ भी अकड गये आदि। अर्थात् थकान-सम्बन्धी जितने भी बाह्य चिह्न हो सकते थे व प्रतीत होने लगे। लेकिन आपने उन सबको मौन भाव से सहन किया। आत्मा बलवान थी और जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही दीक्षित हुए थे। अत आप घबराये नहीं विचलित नहीं हुए और सोचने लगे–सयमी जीवन की परीक्षा का यह प्रथम अवसर है। भविष्य किसने देखा है और कौन जाने अभी कितने व कैसे-कैसे कष्ट उपस्थित होगे ! ऐसे अवसर ही तो आत्मा को सबल बनाते हैं। मुझे तो यह सब सहर्ष सहन करना है।

लेकिन अन्य सतो से आपकी यह स्थिति छिप न सकी। उन्होने आपके पैर दबाये पिंडलियो को सहलाया मालिश की जिससे वेदना कुछ कम हुई। धीरे-धीरे आप भी अन्य मुनियो की भाति इन परीषहो को सहन करने के अभ्यस्त हो गये।

आचार्यदेव के दर्शन और शुभाशीर्वाद

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चरितनायक नाथद्वारा पधारे और वहा विराजित मुनिश्री मुन्नालालजी म सा आदि मुनिराजो के दर्शन किये। गुरुदेव के साथ आपको देखकर उन्होने अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए शुभाशीर्वाद किया।

नाथद्वारा मे कुछ दिन विराजने के पश्चात् अन्यान्य क्षेत्रो की ओर विहार होने वाला था कि आचार्यश्री श्रीलालजी म सा के नाथद्वारा की ओर पधारने के समाचार ज्ञात कर विहार स्थगित कर दिया गया और आचार्यश्री के आगमन पर गुरुदेव के साथ सामने जाकर भक्तिभावपूर्वक दर्शन किये।

आपके बारे में आचार्यदेव की बहुत ऊची धारणा थी। आपको देखते ही गुरुदेवश्री

जवाहरलालजी म सा से बोले—जवाहर ! गणेश को खूब पढाओ शास्त्र पारगत बनाओ। इन्हें पढाना तो कल्पवृक्ष को सीचना है !

गुरु-सन्निधि मे ग्रहण शिक्षा ओर आसेवन शिक्षा

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा को आचार्यदेव का यह कथन इतना उपयुक्त प्रतीत हुआ कि अपने 23 चातुर्मासो मे साथ रखकर आपको अपना अगाध ज्ञान तार्किक प्रतिभा और चारित्रनिष्ठा विरासत मे प्रदान की। इसी का सुफल है कि आपका जीवन महान से महानतम की ओर सदैव गतिमान रहा।

इस तेईस वर्ष के लम्बे काल मे आपने भी दत्तचित्त होकर विभिन्न शास्त्रो का तलस्पर्शी अध्ययन किया। सस्कृत प्राकृत भाषाओ एव न्याय व्याकरण काव्य आदि साहित्य के सभी अगो मे पाडित्य प्राप्त किया। साथ ही चारित्रविधि को प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे उतारा। जिनका सुन्दर समन्वय आपके दैनदिन व्यवहार मे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। आपके जीवन मे जो विद्या ज्ञान समन्वयकारी बुद्धि का आलोक और सदाचार विनयशीलता का सौरभ व्याप्त था वह इस महत्त्वाकाक्षी युग के लिए एक सुन्दर वरदान है।

आज के युग मे सुदीर्घ काल तक गुरु के प्रति विनय श्रद्धा-भक्ति से युक्त साहचर्य एक बड़ी चुनौती है और जिसे हरएक शिष्य स्वीकार नहीं कर पाता है। परन्तु असाधारण पुरुषो के व्यवहार मे असाधारणता ही होती है। शास्त्रों में उल्लेख है कि नवदीक्षित मुनि को 12 वर्ष तक उपाध्याय और 12 वर्ष तक आचार्य के सान्निध्य में रख कर अध्ययन कराया जाये। इस शास्त्रीय कथन को आपने अक्षरश साक्षात् कर दिखाया और आचार्य जैसे महनीय पद पर प्रतिष्ठित होने के अनतर भी आप एक विनीत शिष्य की तरह ज्ञानाभ्यास के लिए अहर्निश उत्सुक रहे। जिसके ज्वलत प्रमाण आपके प्रवचनों मे यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं।

नाथद्वारा मे आचार्यदेव पूज्यश्री श्रीलालजी म सा से साधना मे सफलता प्राप्ति का शुभाशीर्वाद पाकर आपने गुरुदेव के साथ विहार कर दिया।

मार्ग मे उपलब्ध अनुभवो से बोध लेते हुए अध्ययन द्वारा विविध शास्त्रो मे पाडित्य प्राप्त करते हुए और जन-जन को मानवता का पाठ पढाते हुए करीबन आठ माह हो चुके थे। किन्तु यह आठ माह का सुदीर्घ समय कब बीता कैसे बीता पता ही नहीं चला। समय की गतिशीलता का अनुमान लगाना बुद्धिगम्य नहीं है। वैसे तो सपूर्ण जगत् ही गतिशील है उसके अणु-अणु मे गतिशीलता है। आज जो शिशु है वही कल युवा और युवा से वृद्धावस्था की ओर बढते हुए दिखलाई दे रहा है। क्षण क्षण की नित नूतनता अतीत में विलीन होकर भविष्य का आलिगन करने के लिए गतिमान है। यह परम्परा अनाद्यनत है। इसमें विराम के लिए अवकाश नहीं है। उसका सकेत है कि प्रगति के लिए सदैव गतिशील रहो। इसकी

महत्ता के सन्मुख अनेक महिमावन्त भी नतमस्तक हो गये हैं। लेकिन कतिपय कालविजेता मृत्युजयी महापुरुष इस चक्र का भेदन करके सदा-सदा के लिए चिरजीवी बन गये हैं और उनके आदर्श दूसरो को प्रगति के लिए प्रेरणा देते रहते हैं।

वैसे तो चरितनायक के चातुर्मास अधिकतर गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा एव श्री मोतीलालजी म सा के साथ ही हुए है। किन्तु यहा आपसे सम्बन्धित प्रसगो वाले कतिपय चातुर्मासो का ही विवरण प्रस्तुत है।

प्रथम चातुर्मास मे शास्त्राध्ययन और तपस्या का दौर

आपका प्रथम चातुर्मास (स 1963) गगापुर मे हुआ। इस चातुर्मास मे आपके दीक्षागुरु मुनिश्री मोतीलालजी म सा ने 33 दिन की तपस्या की और अन्यान्य मुनिराजो ने भी शक्त्यनुसार तपस्याए की थीं। तपस्याओ के पूर के अवसर पर श्रावक श्राविकाओ मे भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान हुए थे।

आपने भी तपस्याए करने के साथ-साथ 40 थोकडे दशवैकालिक सूत्र मूल तथा सात अध्ययन के शब्दार्थ और उत्तराध्ययन सूत्र के 9 अध्ययन कठस्थ किये।

इसी चातुर्मास-काल मे मुनिश्री लक्ष्मीचदजी म सा के ससार पक्ष के पुत्र श्री पन्नालालजी पुत्रवधू और श्री रतनलालजी की भागवती दीक्षाए सपन्न हुई थीं।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मेवाड के विभिन्न ग्रामो मे विहार करते हुए आप गुरुदेव के साथ-साथ वड़ी सादडी पधारे। वहा पुन पूज्य आचार्यदेव श्री 1008 श्री श्रीलालजी म सा के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आचार्यदेव ने आपके अध्ययन तपस्याओ आदि के लिए हार्दिक सतोष व प्रसन्नता व्यक्त की।

आदर्श गुरुसेवा

स 1965 का चातुर्मास थादला था। चातुर्मास समाप्ति के अनतर पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा आदि ठा वहा से विहार करके रभापुर पधारे। वहा से महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा ने कोद की ओर विहार किया और पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा विहार करके करीब दो कोस पहुँचे होगे कि उन्हे बुखार हो गया। अत वापस रभापुर लौट आना पड़ा।

बुखार तो था ही साथ म कै और दस्त भी होने लगे और वढते-वढत उनकी सख्या प्रतिदिन 150 160 तक पहुच गई। कोई इलाज कारगर सावित नहीं हो रहा था। नो दिन तक यही स्थिति रही जिससे जीवन वचने की भी आशका होने लगी।

इस विकट स्थिति में चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा और मुनिश्री राधालालजी

स्वाधीनता-आन्दोलन अपने प्रवल वेग से चल रहा था। देशवासी देश को दासता से मुक्त करने के लिये कृतसकल्प होकर प्रयत्नशील थे और उधर विदेशी शासक इस आदोलन का दमन करने पर उतारू थे। ब्रिटिश सरकार प्रत्येक भारतीय और उसम भी अपरिचित वेश वालो को सदेह की दृष्टि से देखती थी। दक्षिण की ओर विहार करने वाले इस सन्तमण्डल को भी अनेक स्थानो पर सन्देह का शिकार होना पड़ा। फिर भी अटल निश्चय के अनुसार अनेक कठिनाइयो की उपेक्षा करते हुए विहार निर्बाध गति से चलता रहा और स 1968 का चातुर्मास अहमदनगर हुआ।

उस समय तक स्थानकवासी सप्रदाय म सस्कृत-प्राकृत भाषा का पठन-पाठन बहुत कम था। व्याकरण साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पाडित्य प्राप्त करने की ओर समाज मे वातावरण ही नहीं था। इसके बारे मे जितनी साधुवर्ग मे उदासीनता थी उतनी ही श्रावक वर्ग मे थी। कतिपय तो सस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे।

परन्तु गुरुवर्यश्री जवाहरलालजी म सा यह स्थिति समाज के लिये श्रेयस्कर नहीं समझते थ। आप विद्याभिलाषी समाज और समर्थ विद्वान एव चारित्रशील साधु-सन्त देखना चाहते थे। अतएव सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्यद्वय मुनिश्री घासीलालजी म व चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म को सस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं व भारतीय वाडमय पढाने का निश्चय किया।

आप मानते थे कि जो व्यक्ति पूर्णरूपेण और नियमानुसार साधु के आचार को भलीभाति नहीं जानता वह उसका समीचीन रूप से पालन करने मे असमर्थ है। अपने आचार को भलीभाति समझने वाला ही उसका पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में साधुता की भी शोभा नहीं है। समाज के उत्थान के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। 'हत ज्ञान क्रियाहीन हता चाज्ञानिना क्रिया'– यदि क्रियाहीन ज्ञान व्यर्थ है तो अज्ञानी के द्वारा की जाने वाली क्रिया भी अनुपयोगी है।

आपने शिष्यो को ज्ञानाभ्यास कराने का निश्चय तो कर लिया था लेकिन निश्चय के साथ ही एक कठिनाई सामने आई कि उस समय तक समाज में ऐसा कोई साधु या श्रावक नजर नहीं आया जो इन मुनियों को नियमित रूप से पढा सके एव वेतन देकर पडित नियुक्त करने मे बहुतो को आपत्ति थी। उनका विचार था कि अपढ रह जाना अच्छा लेकिन वेतन देकर गृहस्थ विद्वान से साधुओं को पढ़ाना अच्छा नहीं है।

चातुर्मास-काल में समाज के कुछ प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने यह प्रश्न पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा की सेवा मे प्रस्तुत किया। उन्होने पूछा– त्यागियो को गृहस्थो से पढ़ना चाहिये या नहीं और साधु के निमित्त वैतनिक पडित रखने से मुनियो को दोष लगता है या नहीं ?

व्यक्तिगत चर्चा के प्रसग में उक्त प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा गुरुदेवश्री ने

सार्वजनिक रूप मे प्रवचन के अवसर पर उत्तर देना उचित समझा। अत दूसरे दिन प्रवचन मे इस प्रश्न के स्पष्टीकरण एव समाधान के लिये उदाहरण दिया कि एक समझदार गृहस्थ ने अपने अन्तिम समय मे पुत्र को शिक्षा दी– तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना। इतना कहने के बाद पिता की मृत्यु हो गई। भाग्यवशात् पुत्र निर्धन हो गया और ऋण लेने की भी नौबत आ गई। लेकिन पिता के अन्तिम शब्द याद आ गये कि ऋण लेना मत और भूखे रहना नहीं। विचित्र सकट था कि इधर कुआ तो उधर खाई। पुत्र किकर्तव्यविमूढ हो गया कि क्या करे ? अन्त मे अन्तर् के नाद से उसे प्रकाश मिला और स्वस्थ मन से विचारा कि पिताजी की दोनो आज्ञाओ का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करने का है। ऋण लेने से सुख नष्ट होता है और भूखो मरने से जीवन की समाप्ति। अतएव ऐसी स्थिति मे थोडा ऋण लेकर जीवन बचाये रखना श्रेयस्कर है और बाद मे कठिन परिश्रम कर ऋण उतार दूगा। ऐसा सोचकर उसने थोडा-सा ऋण ले लिया जिसे बाद में अपने श्रम से चुका दिया और आत्मघात के भयकर पाप स अपने को बचा लिया।

अब आप लोग विचारे कि पुत्र का उक्त निर्णय उचित था या नही ?

यही बात साधुओ के अध्ययन के बारे मे भी समझना चाहिये। यह ठीक है कि साधुओ को गृहस्थ से कोई काम नहीं लेना चाहिये लेकिन क्या धर्मगुरुओ को मूर्ख ही बना रहना चाहिये ? क्या उन्हे धर्म पर होने वाले मिथ्यारोपो का निवारण करने म समर्थ नहीं बनना चाहिये ? शास्त्रो मे ज्ञान की महिमा का वर्णन निष्कारण नहीं किया गया है। दशवैकालिक सूत्र मे उल्लेख है–

'अन्नाणी कि काही कि वा नाही सेय पावम्।

अर्थात् अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा ? वह भले-बुरे को कल्याण-अकल्याण को धर्म-अधर्म को क्या समझ सकेगा ?

अध्ययन-अध्यापन कोई सावद्य कार्य नहीं है। मर्यादा मे रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाये तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुत कम दोष है और उसकी प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। आप स्मरण रखे कि युग की विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिये अज्ञान-निवारण करना प्राथमिक आवश्यकता है।

इस विवेचन से श्रोताओ की धारणाओ का उन्मूलन हुआ और आपके निश्चय की सराहना की।

योग्य अधिकारी विद्वानो के सान्निध्य मे चरितनायक अध्ययन करके शनै -शनै क्रम-क्रम

से न्याय व्याकरण दर्शन साहित्य आदि विषयों एव सस्कृत प्राकृत भाषाओं म पाडित्य प्राप्त करने लगे। साथ ही महाराष्ट्र के श्रावक सघों को भी धार्मिक प्रवृत्तियों क विकास का सुयोग प्राप्त हुआ।

किये हुए अध्ययन की परीक्षा में सर्वोत्कृष्ट अक से उत्तीर्ण

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा का स 1974 का चातुर्मास भी यहीं हुआ। शिष्यद्वय अध्ययन कर ही रहे थे। किसी एक दिन वार्तालाप के प्रसग में श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया और श्री माणिकचन्दजी मूथा वकील ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आपके दोनों शिष्य अध्ययन कर रहे हैं यह आनन्द की बात है। किन्तु उनका अध्ययन कैसा क्या चल रहा है और उन्होंने उसमें कितनी प्रगति की है यह बात हम श्रावको को कैसे मालूम हो ?

प्रश्न उचित था और गुरुदेवश्री भी नहीं चाहते थे कि समाज की शक्ति धन का अपव्यय हो। अध्ययन सतोषजनक है या नहीं यह जानने का उपाय परीक्षा लना है। अत उन्होने अपने दोनो शिष्यों से परीक्षा देने के लिये पूछा और दोनो ने तत्काल इसके लिये स्वीकृति दे दी।

विचार-विमर्श के अनन्तर अहमदनगर में परीक्षा लेने का निश्चय किया गया। जिसके लिये प्रसिद्ध विद्वान प श्री गुणेशास्त्री एमए पी-एच डी और म. म प अभ्यकरजी शास्त्री परीक्षक नियुक्त किये गये। परीक्षको ने श्रीसघ और दर्शको की उपस्थिति में परीक्षा ली। व्याकरण साहित्य विषयक प्रश्न पूछे गये। जिनमे मुनिश्री गणेशलालजी म सा को व्याकरण मे 82 प्रतिशत एव साहित्य में 64 प्रतिशत प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त हुए। मौखिक प्रश्नों में तो सौ मे से सौ अक प्राप्त हुए।

परीक्षा के परिणाम को देखकर उपस्थिति ने अध्ययन की सराहना की और परीक्षकों ने अध्यापक एव अध्येता की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए प्रोत्साहन दिया।

स 1975 का चातुर्मास हिवडा हुआ। यहाँ पर श्री सूरजमलजी कोठारी ने भाद्रपद शुक्ला 7 को भागवती दीक्षा ली।

पूज्यश्री श्रीलालजी म सा द्वारा उत्तराधिकारी का चयन

इन्हीं दिनों पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म सा का चातुर्मास उदयपुर हुआ। अकस्मात् आश्विन मास म आपश्री इन्फ्लूएजा रोग से ग्रस्त हो गये। रोग की वेदना तीव्र थी। फिर भी आपश्री ने साध्वोचित क्रियाओं मे किसी प्रकार की रुकावट नहीं आने दी और नियमित रूप से साधना में सलग्न रहे।

इस रोग-वेदना के समय पूज्यश्री ने सघहित की दृष्टि से विचार किया कि जीवन क्षण-भगुर है। आचार्य होने के नाते मेरे ऊपर समस्त सम्प्रदाय का भार है। अत अब मुझे

योग्य उत्तराधिकारी का चयन कर लेना चाहिये जिससे चतुर्विध सघ की धर्मसाधना निर्विघ्न रूप स व्यवस्थित रहे।

पूज्यश्री ने इस दृष्टि से अपने आज्ञानुवर्ती समस्त मुनियो पर दृष्टि डाली और उसमे चरितनायक के गुरुश्री जवाहरलालजी म सा पर ध्यान केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री ने अपना विचार श्रीसघ के समक्ष रखा। जिसका श्रीसघ ने अनुमोदन करते हुए कार्तिक शुक्ला द्वितीया का श्री जवाहरलालजी म सा को युवाचार्य घोषित करके उन्हे इसकी जानकारी कराने के लिये हिवडा श्रीसघ को तार दे दिया गया। किन्तु पद उत्तरदायित्वपूर्ण था अत स्वीकृति देने से पूर्व उन्होने आचार्यश्रीजी से मिलना उचित समझा और तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर मे विलम्ब होते देख सेठ श्री बालमुकुन्दजी तथा श्री चदनमलजी मूथा हिवडा आये। उन्होने श्रीसघ की स्थिति और आचार्यश्रीजी की भावना को व्यक्त किया। अतएव आपने उत्तर मे कहा कि मुझे पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मैं बहुत दिनो से महाराष्ट्र मे हूँ। उधर की परिस्थितियो से अपरिचित हूँ। इधर दोनो शिष्यो का अध्ययन चल रहा है जिसे बीच मे स्थगित कर देना उचित नहीं है। इनका अध्ययन पूर्ण होने पर मैं पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित होकर एतद्विषयक अपनी भावना व्यक्त करना चाहता हूँ। इसी प्रकार के भाव आपने उदयपुर से आगत शिष्टमण्डल को भी बतलाये।

शिष्टमण्डल के वापिस उदयपुर लौट जाने के अनतर समाज के अग्रणी सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया रतलाम एव सेठ श्री बहादुरमलजी बाठिया भीनासर निवासी हिवडा आये और समस्त स्थिति का दिग्दर्शन कराया। इसलिये अध्ययन करने वाले अपने शिष्यों को महाराष्ट्र मे छोड़कर गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा ने मालवा की ओर विहार कर दिया और रतलाम मे युवाचार्य पद समारोह सम्पन्न हुआ।

चरितनायक मे सेवा अध्ययन और विद्वत्ता का सगम

चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा के साथ वहीं महाराष्ट्र मे अपना अध्ययन चालू रखने के लिये रह गये और स 1976 व 1977 के चातुर्मास क्रमश चिचवड़ व सतारा मे किये।

इन दोनो चातुर्मासो म समाज को आपकी वाणी विद्वत्ता और शास्त्रीय अध्ययन का परिचय मिला। सरल से सरल भाषा मे आप गम्भीर शास्त्रीय विषय को समझाने में प्रवीण थे। आपकी विद्वत्ता जनमानस को स्पर्श करती थी। श्रोतागण आपके प्रवचनों को सुनकर गद्गद हो उठते और गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा की सूझबूझ का अभिनन्दन करते हुए सराहना करने लगते।

गुरु-चरणो मे उदयपुर सत-सती-सम्मेलन मे सहायक

महाराष्ट्र की जनता आपक पाडित्य से प्रभावित हो चुकी थी और महाराष्ट्र मे विराजने के लिये विनती कर रही थी। लेकिन आप चाहते थे कि गुरुदेव की छत्रछाया मे ज्ञान और सयम-साधना के सस्कारा का सिचन हो और आपके गुरुदेवश्री भी अभी उन्हे अपने निकट रखना चाहते थे। अत आप गुरु-आज्ञापूर्वक दो ठाणा से महाराष्ट्र से विहार करके उदयपुर पधार गये। गुरुदेवश्री भी बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् उदयपुर पधारे।

आषाढ शुक्ला द्वितीया स 1977 को पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म सा के जयतारण में कालधर्म को प्राप्त होने पर चतुर्विध सघ का नेतृत्व आपके गुरुश्री जवाहरलालजी म सा के हाथो में आ गया था।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के उपरात सप्रदाय और समाचारी को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से उदयपुर मे सप्रदाय के समस्त सन्त सतीवृन्द का सम्मेलन हुआ। इसमें चालीस सन्त एकत्रित हुए और उन्होंने समाचारी आदि को व्यवस्थित रूप देकर पूज्य आचार्यश्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

सकटापन्न स्थिति में भी सेवा और धृति नहीं छोडी

स 1978 का चातुर्मास रतलाम में सम्पन्न होने के पश्चात् आपने अधूरे अध्ययन को पूर्ण करने के लिये गुरुदेव के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया। खुर्रमपुरा पहुचने पर रात्रि विश्राम-योग्य स्थान न मिल सका और एक खुले मन्दिर मे ठहरना हुआ। पौष मास था और उन दिना कड़ाके की सर्दी पड रही थी कि अकस्मात् शाम को मुनिश्री हणुतमलजी म. सा को छाती में दर्द उठा और ज्वर हो गया। रात्रि का समय था और साधु-मर्यादा के अनुसार रात्रि मे उपचार आदि के लिये उपाय भी नहीं किया जा सकता था। जो कुछ भी सेवा शुश्रूषा सम्भव थी वह सब की गई लेकिन रोग काबू मे नहीं आया। अत उसी समय उनको आलोयणा आदि करादी गई और उन्होने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की।

जैसे-तैसे प्रात काल होने पर मुनिश्री गणेशलालजी म सा दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज मे निकले और एक कच्ची कोठरी मिली। वहा रुग्ण मुनिश्री को ले जाया गया। मगर आहार उपचार और बीमारी की समस्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी। बीमारी के कारण विहार होना भी सम्भव नहीं था। स्थिति विकट थी और उसका सामना करने के लिये आचार्यश्री आदि सभी सन्तो ने एकान्तर उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। रुग्ण मुनिश्री को रोग मुक्ति के लिये तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे रोग मे कुछ अन्तर तो पड़ा किन्तु निर्बलता ज्यादा बढ गई।

खुर्रमपुरा छोटा-सा गाव था अत वहा बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनो का अभाव देखकर उपचार के लिये किसी दूसरे योग्य गाव मे ले जाने का निश्चय किया गया। करीब चार कोस पर एक गाव था और वहा जैसे-तैसे आवास-योग्य स्थान भी मिल गया। लेकिन पाच मुनियो के योग्य आहार आदि की असुविधा और रोगी की परिचर्या के साधनो का अभाव देखकर वापिस खुर्रमपुरा लौट आये।

समय की स्थिति को देखते हुए खुर्रमपुरा में रोगी मुनिश्री के उपचार के लिये जो-कुछ शक्य था किया गया। श्रावको को खबर मिलने पर जावरा से श्री प्यारचन्दजी डफरिया और दूसरे एक-दो सज्जन भी खुर्रमपुरा पहुच गये। किन्तु रोग का प्रकोप तीव्र था अत रोगी मुनिश्री के जीवन की कोई आशा न देखकर उन्हे सथारा करा दिया गया और सथारे की स्थिति मे उनका देहावसान हो गया।

योग्य स्थान न मिलने पर भी शान्ति

इस प्रकार के कष्टमय समय को व्यतीत करके पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा आदि सन्त खुर्रमपुरा से विहार कर वालसमद पहुँचे। वहा भी स्थान आदि की कठिनाइया आईं। एक धर्मशाला मिली किन्तु डास मच्छरो और चूहो के कारण रात्रि व्यतीत करना असमव जान मुनिश्री गणेशलालजी म सा आदि सन्तो को किसी अन्य स्थान को देखने के लिये भेजा। उन्हे एक गृहस्थ के मकान के बाहर का चबूतरा योग्य दिखलाई दिया। मुनिश्री ने गृहस्वामी की पुत्रवधू से चबूतरे पर रात्रि-विश्राम करने की आज्ञा मागी लेकिन उसने इसके लिये आनाकानी की। वहा के निवासियो की धारणा थी कि चोर-लुटेरे साधु के वेश मे फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चल देते हैं।

मुनिश्री ने उस बहिन को बहुत समझाया और अपनी सब स्थिति एव साधुचर्या का परिचय दिया तो उसका दिल पसीज गया और बोली– महाराज हमें तो कोई एतराज नहीं किन्तु हमारे ससुर आते ही आपको हटा न दें यह विचार आ जाता है।

अनुमति पाकर चारो सन्त अभी अपने पात्रोपकरण रखकर बैठे ही थे कि गृहस्वामी आ गया और दूर से ही चबूतरे पर सन्तो को देखकर क्रोधाभिभूत हो अपशब्दों से स्वागत करना प्रारम्भ कर दिया। निकट आते ही उसने तत्काल हटने के लिये आदेश दिया और चेतावनी दी कि यहा से शीघ्र उठो नहीं तो यह सब पात्र आदि फोड फेंकूगा।

परीषहो के आक्रमण के समय भी साध्वाचार का पालन

सामयिक स्थिति को देख सन्तो ने पुन धर्मशाला मे आकर रात्रि-विश्राम किया और प्रात

होते ही वहा से विहार कर सेधवा एव वहा से पुन ग्यारह कोस का उग्र विहार कर चौकी पधारे। मार्ग में आहार-पानी का सयोग तो न-कुछ-सा मिला। यद्यपि उग्र विहार और अल्प आहार के कारण शरीर अवश्य कुछ निर्बल हो गया था परन्तु मन अधिकाधिक प्रबल बनता गया और परीषहो का प्राबल्य सतत जाग्रत् रहने के लिये प्रेरित करता रहता था।

साध्वाचार का पालन करना कितना कठिन है यह उल्लिखित प्रसग से ज्ञात होता है। सयम-साधना करना कोई दूध-पताशे का कौर नहीं है वरन् तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति मे भी बिना किसी क्षोभ के सब-कुछ सहन करना बहुत बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार सूर्योदय से सूर्यास्त तक पैदल चलना कई दिनो तक भरपेट आहार न मिलना और उसमे भी यह कटुक व्यवहार रात्रि-विश्राम के लिये भी साधारण सा स्थान नहीं। डास मच्छरो को अपना शरीर समर्पित करना आदि ! हे साधना के पथिक मुनिराज ! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है।

महाराष्ट्र-विहार और उपकार

चौकी स विहार कर शीरपुर वागजी होते हुए सभी सन्त माडल पधारे और वहा पाच-छह दिन विराजकर धूलिया पहुचे। धूलिया मे पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा को ज्वर हो जाने से एक सप्ताह रुकना पड़ा। किन्तु स्वास्थ्य ठीक होते ही पारौली की ओर विहार कर दिया।

पारौली मे मुनिश्री लालचन्दजी म सा विराजते थे। वे बहुत दिनों से रुग्ण थे और पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा के दर्शनो के इच्छुक थे। आपने उन्हीं की भावना को जानकर इस ओर विहार किया ही था कि चारौली के निकटवर्ती ग्राम राहोरी पहुचने पर उनके स्वर्गवासी होने के समाचार मिले। अत चारौली जाना स्थगित करके पुन मालवा की ओर विहार करने का विचार होने लगा। किन्तु अहमदनगर सघ की विनती से अहमदनगर की ओर विहार हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों की ओर से आगामी चातुर्मास के लिये विनतिया हो रही थी किन्तु विशेष प्रभावना और धर्मोपकार होने की समावना से स 1979 का चातुर्मास सतारा मे हुआ। सतारा मे श्री भीमराजजी व श्री सिरेमलजी की भागवती दीक्षाए सम्पन्न हुईं।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर पूना आदि सुदूर दक्षिण तक विहार होने से जनसाधारण को जैन धर्म के सिद्धान्तों विशेषताओं की जानकारी मिलने के साथ-साथ मिथ्या धारणाओं का निराकरण हुआ।

चातुर्मास का समय निकट था और दक्षिण के विभिन्न स्थानो के श्रीसघ आगामी चातुर्मास के लिये उत्सुक थे। अत समय और धार्मिक प्रभावना को लक्ष्य मे रखते हुए स 1980 का चातुर्मास मुबई के निकट घाटकोपर मे किया।

इस चातुर्मास-काल मे धर्म-प्रभावना के विभिन्न कार्य होने के उपरात सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जीवदया के निमित्त हुआ। मुबई बडा नगर है और वहा के बूचड़खाने मे दुधारू गायो बैलो का कत्ल होता था। यह वहा की अहिसाप्रेमी जनता के लिये एक कलक था। पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा ने इस कुकृत्य की ओर सकेत किया। अत इन पशुओ को मौत के मुह मे जाने देने से रोकने के लिए जीवदया खाते की स्थापना करके करीब सवा लाख रुपये का कोष एकत्रित हुआ। वर्तमान मे इसके द्वारा हजारो गाय-भैंसों को कसाइयो के हाथों से बचा कर अभयदान का कार्य चल रहा है।

घाटकोपर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मुबई के निकटस्थ उपनगरो और नासिक आदि क्षेत्रो मे विहार करके सन्तो का आषाढ कृष्णा नवमी स 1981 को जलगाव पदार्पण हुआ।

जलगाव के प्रसिद्ध सुश्रावक सेठ श्री लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल पूज्य आचार्यश्रीजी म सा के अनन्य भक्ता मे से थे और आप चाहते थे कि आचार्यश्रीजी जलगाव पधार कर चातुर्मास करे। इसके लिये काफी समय से विनती कर रहे थे जिसकी पूर्ति का सुअवसर अब प्राप्त हो सका और स 1981 का चातुर्मास जलगाव मे होना निश्चित हुआ।

सघ-नेतृत्व सौंपने का बीजारोपण

आचार्यश्रीजी आदि मुनिराजो का चातुर्मास अपने यहा निश्चित होने से जलगाव निवासी उत्साह एव भव्य भावनाओ के वातावरण से ओतप्रोत थे। प्रतिदिन श्रोतागण अभूतपूर्व प्रवचना का आस्वादन करते हुए आत्मशुद्धि के लिये तप-त्याग आदि सयम-साधना मे सलग्न रहते थे कि अकस्मात् आषाढ़ कृष्णा अमावस्या को आचार्यश्रीजी की हथेली म दर्द होना शुरू हो गया। दर्द असह्य था और उसके चार दिन बाद हथेली मे एक छोटी-सी फुन्सी निकल आई जिससे दर्द और बढ गया। दर्द को दूर करने के लिये साधारण फुन्सी समझ कर उसे फोड़ तो दिया गया लेकिन दो-चार दिन बाद उसने ऐसा भयकर रूप ले लिया कि उससे आचार्यश्रीजी का जीवन भी सकटापन्न-सा प्रतीत होने लगा।

आचार्यश्रीजी को इस स्थिति मे भी अपने शरीर की चिन्ता नहीं थी। लेकिन सघ की भावी व्यवस्था के लिये उन्हे अवश्य ही विचार आया। किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी के हाथो सघ का उत्तरदायित्व सौंपे बिना यह चिन्ता दूर नहीं हो सकती थी। एतदर्थ आचार्यश्रीजी ने अपने सम्प्रदाय के समस्त सन्तो पर दृष्टिनिक्षेप किया और सुयोग्य उत्तराधिकारी की दृष्टि

से उनका ध्यान चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा पर केन्द्रित हो गया। आपको सघ का शासन सौंप देने के बारे मे भली-भाति विचार कर लेने के पश्चात् समाज के उपस्थित अग्रणी श्रावको और सन्तो को अपनी भावना बतलाई और विचार-विमर्श किया। सम्प्रदाय के अन्यान्य सन्त-मुनिराजो और श्रावको से राय मगवाई। सभी ने आचार्यश्रीजी के विचारों का अनुमोदन करते हुए सुयोग्य उत्तराधिकारी के चयन की प्रशसा की।

इतना सब-कुछ हो रहा था। लेकिन जिनके बारे मे यह सब कुछ था उन्हें अभी तक कुछ भी पता नहीं चला। वे थे चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा । अकस्मात् किसी एक दिन सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया आपके पास आये और कहा– महाराज ! मैं आप से एक निवेदन करने आया हूँ। यह तो आप देख ही रहे हैं कि आचार्यश्रीजी म सा का स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं। ऐसी स्थिति मे आप आचार्यश्रीजी को किसी प्रकार से असमजस में न डालें और वे आपको जो आज्ञा दे उसे स्वीकार कर लें।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य हुआ। आपने उत्तर दिया– आज आपको ऐसा कहने की क्यों आवश्यकता हुई ? मैंने तो कभी भी पूज्यश्री की आज्ञा नहीं टाली मैं तो उनका एक तुच्छ सेवक हूँ और इसी रूप मे रहना चाहता हूँ।

श्री पीतलियाजी के वापिस चले जाने के पश्चात् मुनिश्री पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित हुए और आचार्यश्रीजी ने समस्त स्थिति को समझाते हुए सम्प्रदाय का भार स्वीकार करने के लिये कहा। यह सुनकर चरितनायक को श्री पीतलियाजी के वार्त्तालाप का स्मरण हो आया और इस विलक्षण आज्ञा से असमजस में पड़ गये। अपनी सामर्थ्य और दायित्व की तुलना कर इसके लिये अपनी असमर्थता व्यक्त की तो श्री पीतलियाजी ने आपकी ओर देखा जिसका स्पष्ट सकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए आचार्यश्रीजी के शरीर की इस नाजुक स्थिति मे यह अस्वीकृति क्यो प्रगट कर रहे हैं !

विचारो के इस त्रिकोणात्मक द्वन्द्व का परिणाम यह हुआ कि चरितनायक को विवश होकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण भार को स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पड़ी। स्वीकृति के अनतर सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया ने व्यवस्था-पत्र का प्रारूप बनाया और मुनिश्री घासीलालजी म सा के द्वारा उसकी प्रतिलिपि कराकर आचार्यश्रीजी ने अपने पास रख ली।

आचार्यश्री जवाहर के स्वास्थ्य में सुधार

आचार्यश्रीजी की अस्वस्थता से चतुर्विध सघ अत्यन्त चिन्तित हो उठा। उपचारार्थ बम्बई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ मूलगावकर को बुलाया गया और निदान से निश्चय हुआ कि फोडे का कारण मधुमेह है। फोडे के ऑपरेशन के साथ मधुमेह की भी चिकित्सा की गई

और सघ के प्रबल पुण्योदय से सवत्सरी तक आचार्यश्रीजी इतने स्वस्थ हो गये कि करीब 20 मिनट प्रवचन फरमाया।

शनै-शनै आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य प्रगति कर रहा था। अत तत्काल तो युवाचार्य पदवी प्रदान करने की शीघ्रता नहीं रही थी किन्तु भावी सघ नेतृत्व का बीज बोया जा चुका था और समग्र चतुर्विध सघ को भी आचार्यश्रीजी के विचार ज्ञात हो गये थे। अब तो सिर्फ वैधानिक रूप से घोषणा होने के समय की प्रतीक्षा करना शेष था।

चातुर्मास समाप्ति तक आचार्यश्रीजी के रोगमुक्त शरीर मे इतनी शक्ति आ गई थी कि थोडा-बहुत विहार हो सके। अन्नपाचन भी ठीक तरह स हो जाता था। अत जलगाव के आस-पास के क्षेत्रो म विचरण करके पुन स 1982 का चातुर्मास जलगाव मे किया। इस चातुर्मास-काल मे शारीरिक स्थिति मे समुचित सुधार हुआ और लम्बा विहार होने योग्य शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी। अत आचार्यश्रीजी म सा ने मालवा की ओर विहार करने का विचार किया।

दीक्षागुरु की अग्लानभाव से सेवा

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा आचार्यश्रीजी के साथ ही रहते थे। अब वे काफी वृद्ध हो गये थे और विहार के योग्य शारीरिक शक्ति भी अत्यल्प रह गई थी। अत उन्होने जलगाव मे ही स्थिरवास करना उचित समझा। आचार्यश्रीजी म सा ने मुनिश्री गणेशलालजी म सा आदि चार सतो को उनकी सेवा में छोडकर चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर मालवा की ओर विहार कर दिया।

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा की सेवा मे होने से चरितनायक ने स 1983 का चातुर्मास जलगाव मे किया। प्रतिदिन स्थविर पद विभूषित गुरुश्री की पूर्ण मनोयोग से सेवा शुश्रूषा करते हुए शास्त्रीय अभ्यास मे निमग्न रहते और गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को अपनी वाणी द्वारा प्रवचन के रूप मे श्रोताओ को सुनाते। आपकी चारित्र-साधना का परिचय तो चतुर्विध सघ को पहले से ही प्राप्त हो गया था और अब प्रवचनो से विद्वत्ता शैली का भी परिचय मिला।

इन्हीं दिनों मुनिश्री मोतीलालजी म सा काफी अस्वस्थ हो गये। दस्तो की बीमारी थी और शारीरिक स्थिति के अतिक्षीण हो जाने से मानसिक सतुलन भी समुचित रूप मे स्थिर नहीं रहता था। कभी-कभी वस्त्र भी मल से भर जाते थे। लेकिन चरितनायक पूर्ण मनोयोग से उनकी सेवा करते। मलदूषित वस्त्रो को निर्ग्लान भाव से स्वच्छ करते। कभी कभी तो ऐसे अवसर भी आ जाते कि अध-बीच मे आहार करना छोडकर उठना पडता था। इस स्थिति

मे खेद-खिन्न हो जाना सहज है लेकिन उस समय भी क्षण-भर का प्रमाद न करते हुए आप पूर्ववत् अग्लान भाव से रोगी मुनिश्री की सेवा-परिचर्या म लग जाते थे।

यद्यपि महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा का अच्छ से अच्छा उपचार हो रहा था। लेकिन दिनोदिन जीवन की आशा क्षीण होती गई और अन्त मे स 1983 फाल्गुन कृष्णा 13 को उनका देहावसान हो गया।

आपने जिस लगन और अध्यवसाय से मुनिश्री की सेवा की थी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। आपकी सेवा-भावना मे अय निज परोवेति गणना लघुचेतसा' की तरह गुरुजनों के लिये पक्षपात नहीं था किन्तु 'उदार चरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के समान सामान्य सन्तो को भी सेवा के सुअवसर प्राप्त थे।

निर्भीकता और अहिसा से वनराज भी प्रभावित

चरितनायक सेवा-वैयावच्च करने के लिये जितने तत्पर थे उसस भी अधिक उपसर्ग और परीषहो की वेला मे स्वय निर्भय और निर्द्वन्द्व रहकर साथी सन्तों को भयमुक्त रखने के लिये भी सन्नद्ध रहते थे। इसके अनेक उदाहरण आपकी जीवन-गाथा मे यत्र तत्र उपलब्ध हैं। उनमे से एक-दो प्रसगो का यहा उल्लेख कर देना उपयुक्त है–

एक बार चरितनायक सतपुड़ा पर्वत की तलहटियों मे से होकर विहार कर रहे थे। बीच-बीच मे वियावान जगल पडता था। वनैले हिंसक जानवर शेर चीते आदि की गर्जना से जगल बड़ा भयावना लगता था। उस समय नवयुवा दो विद्यार्थी सन्त श्री श्रीमलजी म तथा श्री जेठमलजी म आपके साथ थे। आगे-आगे आप और पीछे दोनो सन्त चल रहे थे। अकस्मात् आपकी दृष्टि दो खूखार शेरो पर पड़ी। सिर्फ चालीस-पचास कदम का फासला था। आप तो निर्भय थे। दोना ओर से आखे आपस में टकराईं। एक ओर तो आखों म हिसा का रौद्रभाव झाक रहा था तो दूसरी ओर उन पर भी मैत्री करुणा और निर्भयता की अमृतवर्षा हो रही थी।

आपको अपने जीवन का मोह नहीं था। किन्तु इस स्थिति मे दोनों सन्त भयभीत न हो जाय अत निकट आने तक आप ठिठक कर खड़े हो गये। विद्यार्थी सन्तों के निकट आने पर शेर की तरफ स्वय खड़े होकर सकेत द्वारा वनराजाओं को दिखलाया।

कुछ क्षण बीत। मृगेन्द्रों ने महर्षि की महानता को परखा। क्रूरता समता मे रूपान्तरित हो गई। अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग' के आदर्श को प्रतिफलित करते हुए चरणारविन्दा मे नत-मस्तक हाकर वनराजि की ओर वनराजो ने मुख मोड़ लिया कि हे अभय-अद्वेष के पथ पर आरूढ साधक ! हे मुनिपुगव ! हे श्रमणोत्तम ! तेरी साधना का दिव्य

प्रकाश जन-जन को परम कल्याण की ओर गतिशील रहने के लिये प्रेरणादायक हो। तरी अविचलता विकासोन्मुखी आत्माओ को विकार के कारण उपस्थित होने पर भी अविचलित रहने का सामर्थ्य प्रदान करे। तू धन्य है तेरी दृढता धन्य है तेरा साहस धन्य है और तेरे दर्शन कर हम धन्य हैं अपने सौभाग्य के लिये गर्व है कृतार्थ हो गये हैं और विजित होकर भी गौरवान्वित हैं।

भवाटवी के भय भी जिन्हे भयभीत नहीं कर सके उनके लिये वनाटवी का भय कैसे भयभीत कर सकता था ? अत सहगामी सन्त-युगल के साथ विहार के पथ पर बढते चरण पुन मथरगति से गतव्य की ओर बढ चले। न तो चेहरे पर भय था न चिन्ता की रेखाए ही ऊभर रही थी और न जीवन रक्षा होने की खुशी ही। वहा तो अठखेलिया कर रही थी वीतरागता और समता की अपूर्व प्रभा।

यथासमय विश्रामयोग्य स्थान आया और वहॉ रात्रि विश्राम करके धर्मदेशना से जन-जन को मुखरित करने के लिये पुन बढ चले।

किसी एक समय की बात है। चरितनायक सन्तो के साथ मरुधरा मारवाड़ के मैदानो मे विचरण कर रहे थे। मरुधरा मे गाव दूर दूर बसे हुए हैं और पगडडियो का तानावाना रेत से व्याप्त होने के कारण अधिकतर दिशा-बोध के सहारे ग्राम से ग्रामान्तर जाना पडता है। लोगो ने कहा कि अमुक गाव पास ही है और सूर्यास्त से पहले-पहले वहा पहुचा जा सकता है। अत दिन के तीसरे पहर गतव्य गाव की ओर विहार कर दिया। अपरिचित होने से रास्ता भटक गये और रास्ता भी लम्बा था। इसलिये आधी दूर पहुचते पहुचते सूर्यास्त हो गया।

सूर्यास्त के बाद विहार न होने की साधु मर्यादा है अत सन्तो के साथ एक पेड के नीचे विश्राम हेतु विराज गये। सायकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आत्मध्यान मे लीन हो गये।

सर्पराज भी शात रहे

ध्यानोपरात तात्त्विक चर्चा मे कुछ समय व्यतीत करने के बाद मार्गजनित शारीरिक थकावट दूर करने के लिये भूमिशयन किया ही था कि कुछ ऐसी आवाज सुनाई दी जैसे निकट सर्प हो। सोचा जगल है इधर-उधर कोई जगली जानवर होगे। पास में अन्य सन्त शयन कर रहे थे अत उन पर दृष्टि डालकर कपडे आदि ठीक से ओढा दिये और आपश्री भी चद्दर को ओढ कर पौढ गये।

शयनावस्था मे कुछ क्षण ही बीते होगे कि पैरो पर कुछ वजन सा मालूम हुआ। ऊपर ओढी चद्दर को कुछ हिलाया जिससे वह वजन हट गया और निश्चिंत होकर सो गये और प्रतिदिन की तरह रात्रि के पिछले प्रहर मे जागकर स्वाध्याय आदि साधना म रत हो गये। यथासमय दूसरे सन्त भी जागे और उन्होने भी स्वाध्याय प्रतिक्रमण आदि किया।

सूर्योदय होने मे थोडा-सा विलम्ब था। प्रतिक्रमण वदना आदि करने के पश्चात् सब सन्त यथास्थान आपके समक्ष बैठकर अध्ययन करने लगे। यह सब करते हुए भी किसी को यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि कोई सर्पराज भी निकट मे स्थित हैं। स्वनिरीक्षण में रत को परनिरीक्षण के लिये अवकाश मिलना असम्भव रहता है।

जैसे ही सूर्योदय हुआ कि समीपस्थ सर्प पर आपकी दृष्टि पडी। अन्य सन्तो को भी उसकी ओर देखने के लिये सकेत किया। सर्प अपनी कुण्डली मारे ध्यानस्थ-सा बैठा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि साधना मे रत साधुओ के सहवास से वह भी आत्म समाधिस्थ होने की शिक्षा ल रहा है। आपश्री आदि सन्त प्रतिलेखना को तैयार हुए और वह सन्तो का सत्त्वपरीक्षक करालकाल वहा से रेंगता हुआ अपने बिल की ओर चल दिया। शायद उस समय उसके मन में विचार आया हो कि--स्व-पर-हितकारी परदुख-कातर मैत्री प्रमोद करुणा और माध्यस्थ भावना से समृद्ध सन्त-जन 'सर्वभूतहितेरत के साकार रूप हैं तो उन्हें सता कर कौन अपने को कलकित करना चाहेगा !

ऐसे ही और इनसे मिलते-जुलते प्रसग अनेक हैं। जिन प्रसगों का यहा उल्लेख किया है उनसे ही आपकी सेवा-भावना सरलता वत्सलता निर्भयता और आत्मीयता का दिग्दर्शन पर्याप्त रूप से हो जाता है। सक्षेप मे कहे तो अपनी कर्तव्यनिष्ठा और सजगता की उपमा आप स्वय ही हैं।

पुन गुरुदेव के सान्निध्य मे

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् चरितनायक अपने अन्य तीन सन्तों के साथ जलगाव से विहार करके आचार्यश्रीजी म सा की सेवा में उपस्थित हो गये और आचार्यश्रीजी के साथ ही स 1984 का चातुर्मास भीनासर गगाशहर में किया।

यह चातुर्मास श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह की अध्यक्षता में श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस और भारत जैन महामण्डल के अधिवेशन एव श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था की स्थापना होने से समाज के इतिहास में तो उल्लेखनीय है ही किन्तु उसके साथ ही भारत के स्वाधीनता के इतिहास में भी स्वर्णाक्षरो मे अकित किया जायेगा।

उन दिनो भारत को स्वतन्त्रता देने के बारे मे निर्णय करने हेतु लंदन में भारतीय और इग्लैंड के प्रतिनिधियो के बीच गोलमेज परिषद होने जा रही थी। उसमें भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधिमडल के एक सदस्य के रूप में तत्कालीन बीकानेर राज्य के प्रधानमन्त्री सर मनुभाई मेहता लदन जा रहे थे। ये आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के दर्शनार्थ एव भारतीय जनभावना की सफलता के लिये आशीर्वादात्मक दो बोल सुनने के लिये पधारे। उस समय

आचार्यश्रीजी ने उन्हें जो उपदेश दिया था उसम आपश्री की राष्ट्रहित एव जनता की भावना का स्पष्ट चित्र अकित था कि कैसा भी अवसर हो किन्तु सत्य को सत्य कहने से न झिझके। स्वतन्त्रता और धर्म एक-दूसरे से जुडे हुए हैं। पराधीन और अत्याचार-पीडित प्रजा मे यथार्थ धर्म का विकास नहीं हो सकता है। धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है।

आचार्यश्रीजी के उक्त कथन म भारतीय आत्मा का समवेत स्वर गूज रहा था कि सुख और शान्ति-प्राप्ति के लिये स्वतन्त्र हो जाओ। परतन्त्र प्राणी न तो सुख प्राप्त करने मे समर्थ हैं और न प्राप्त का उपभोग करने के अधिकारी हैं।

यह स्मरणीय चातुर्मास अनेक धार्मिक सामाजिक और आध्यात्मिक विकास के कार्यो के साथ सोत्साह सम्पन्न हुआ।

थली-प्रदेश मे दया-दान प्रचार की धूम

थली तेरहपथियो की रगस्थली है। वे इसे अपना अभेद्य दुर्ग मानते थे। वे अपने स्वच्छन्द धर्मविरुद्ध विचारो का धर्म के नाम पर प्रचार-प्रसार करने का इससे अच्छा और दूसरा क्षेत्र नहीं समझते थे। वहा की भोली-भाली जनता धर्म-विरुद्ध बाता को सुनते-सुनते धर्म के शाश्वत सत्य से विमुख-सी हो गई थी। उसकी विवेक-बुद्धि सत्यासत्य का निर्णय करने मे कुण्ठित-सी होकर सोचती थी कि साधु महाराज जो-कुछ भी कह रहे हैं वैसा ही भगवान महावीर ने जीव-दया आदि के बारे मे फरमाया है। अपने को तो साधुजी के वचनो को प्रमाण मान लेना चाहिये।

आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा उनके इस अधविश्वास को देखकर चकित रह जाते थे। आपश्री को इन भावरोग से पीड़ितो पर दया आती थी और वास्तविकता से परिचित कराने की सद्भावना रखते थे। इसके साथ ही यह भी प्रतीत हो चुका था कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध प्रकार की कठिनाइयो और परीषहो को सहना पडेगा लेकिन जब भगवान महावीर ने कठिनाइयो और परीषहो से अपना मार्ग न बदला तो अनुगामी मार्ग-विरत कैसे हो सकते थे ? अत जन-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर आचार्यश्रीजी ने थली प्रदेश मे प्रवेश करने का निश्चय कर मार्गशीर्ष शुक्ला 3 का चरितनायक आदि प्रमुख प्रमुख 29 सन्तो के साथ चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर बीकानेर से थली की ओर विहार कर दिया।

आचार्यप्रवर श्री जवाहरलालजी म सा का व्यक्तित्व अनूठा था दिव्य था। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। हृदय को आकर्षित करने वाली ओजस्विता और तर्क की तूलिकाओ से प्रतिपाद्य विषय की साकार तस्वीर अकित कर देने वाली वाणी के वे धनी थे।

आपश्री ने वैसे तो राजस्थान और मालवा के विभिन्न क्षेत्रो को अपने विहार से पावन किया था। लेकिन राजस्थान का यह भू-भाग अभी तक भी जैन धर्म के यथार्थ सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने वाले सन्तो के चरणन्यास से वचित था और जैन धर्म के नाम पर शास्त्र-विरुद्ध मान्यताओ के अनुयायी भी वहा विचरण करने वाले वीतरागी सन्तों को सहन नहीं करते थे।

यद्यपि थली-प्रदेश अनार्य देश नहीं है तथापि वहा के बहुसख्यक अपने को भगवान महावीर का अनुयायी कहने मे गौरव मानते हुए भी दया दान परोपकार परसेवा आदि भगवान महावीर के सिद्धान्ता में अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन्हीं मान्यताओ एव मानवता के लिये कलक-रूप विचारो का उन्मूलन करना चाहते थे। अत भगवान महावीर के विहार से प्रेरणा लेकर आपश्री ने सन्त-मण्डली सहित थली-प्रदेश के मुख्य नगर सरदारशहर में पदार्पण किया।

सरदारशहर मे आपश्री के प्रभावशाली प्रवचनो एव दया दान परोपकार आदि के सम्बन्ध मे भगवान महावीर के सिद्धान्तो की यथार्थ जानकारी देने से जनता मे बहुत ही सुन्दर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और शास्त्रविरुद्ध मान्यताओं के भ्रम से मुक्ति पाकर धर्म के सच्चे स्वरूप को समझकर बहुत-से सज्जनो ने समकित ग्रहण की।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा आदि सन्तो के सरदारशहर पधारने से तेरहपथियो में खलबली मच गई थी और प्रतिरोध करने की अनेक योजनाए बनाई जाने लगीं। मगर खेद है कि उनमे से एक भी ऐसी नहीं थी जो सफल हुई हो और जिसका सभ्य ससार द्वारा अनुमोदन किया जा सके।

साधु-जीवन मे आर्थिक या राजनीतिक सकटों के लिये कोई अवकाश नहीं है। लेकिन कभी-कभी विपरीत मनोवृत्ति वाले अज्ञानी लोगो का जमघट अवश्य आत्म समाधि में विघ्न विक्षेप और व्याघात उपस्थित कर देता है।

उन दिनो तेरहपथी सप्रदाय के पूज्य कालूरामजी स्वामी भी सरदारशहर में मौजूद थे। उन्हे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के ओजस्वी प्रवचनों से अपनी प्रतिष्ठाहानि का भय दिखा और येन-केन प्रकारेण आचार्यश्रीजी को परेशान करके मैदान मारने का रास्ता अपनाया। लेकिन प्रयास करने पर भी उन्हे सफलता न मिली और 'न्यायात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा धीर वीर न्याय-मार्ग से विचलित नहीं होते हैं– की उक्ति के अनुसार आचार्यश्रीजी विरोध को विनोद मानते हुए सद्धर्मदेशना के मार्ग पर अग्रसर ही रहे।

तेरहपथी सरदारों के शहर सरदारशहर को सर करने के पश्चात् पूज्य आचार्यश्रीजी चूरू पधारे। किन्तु चूरू पदार्पण के पूर्व ही आपश्री की कीर्ति वहा पहुच चुकी थी। जब अपनी

शिष्य-मण्डली के सहित आप नगर के निकट पहुचे तो जनता ने भक्ति-भावपूर्वक अगवानी करके ससमारोह नगरप्रवेश कराया। उन दिनो वहा तेरहपथियो के माघ महोत्सव की तैयारिया हो रही थीं। सैकडो साधु-साध्विया ओर हजारा अनुयायी एकत्रित हो रहे थ। यद्यपि वहा भी अनेक प्रकार से उपद्रव करने की चेष्टाए की गई किन्तु वे सभी प्रयत्न और चेष्टाए विफल एव निरर्थक सिद्ध हुई।

चूरू नगर म आचार्यश्रीजी की ओजस्वी वाणी का गम्भीर प्रभाव पडा। वहुत-से भाई शका-समाधान करने के लिये सेवा मे उपस्थित होते थे और आचार्यश्रीजी आगम-प्रमाणों के साथ उनका सयुक्तिक समाधान करते थे। परिणामत वहुत-से सज्जन शुद्ध श्रद्धा धारण कर आपश्री के अनुयायी बन गये।

स्वतन्त्र और सफल, यशस्वी चूरू चातुर्मास

एक दिन तात्त्विक चर्चा-विचारणा के बीच चूरू के कतिपय विचारक और धर्म-प्रेमी प्रमुख-प्रमुख भाइयो ने आचार्यश्रीजी से चूरू में आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की। किन्तु आचार्यश्रीजी समग्र थली प्रदेश मे विहार करने के पश्चात् किसी ऐसे स्थान पर चातुर्मास करना उचित समझते थे जहा धार्मिक दृष्टि से विशेष उपकार होने की सभावना हो। अत वहा के भाइयों की विनती तत्काल स्वीकार न कर सके।

तव उन भाइयो ने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि आपको यह तो भली-भाति विदित है कि हमारे घर मे भी हमारा कोई समर्थक नहीं है। लोग हमारा विरोध करने पर तुले हुए हैं और आपने सभी स्थिति परखी ही है। ऐसी स्थिति मे आपकी तपस्या ही सफलता का रग ला सकती है। अत कदाचित् आपका चातुर्मास होना सम्भव न हो तो अपने जैसे प्रभावशाली सन्तो का चातुर्मास कराने की आज्ञा दीजिये।

चूरू मे धर्म-जिज्ञासुआ की अपेक्षा निष्कारण वैर वाधने वालो की सख्या अधिक थी और वे नही चाहते थे कि जनता को जैन धर्म के सिद्धान्तो की यथार्थता से परिचित कराने वाले साधु-सन्तो का यहा चातुर्मास हो। वहा अत्यन्त प्रतिभाशाली और शास्त्रज्ञ साधु ही निभ सकता था। अतएव उनके कथन पर गम्भीरता से विचार करते हुए आचार्यश्रीजी की दृष्टि चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा पर गई और विद्वत्ता शास्त्रीय ज्ञान आदि की प्रौढता को लक्ष्य मे रखते हुए चरितनायकजी को चूरू में चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाई। इस स्वीकृति से चूरूवासियो को मनचाही मुराद मिल गई थी और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

चरितनायकजी तो 'गुरोराज्ञा वलीयसी' अपने जीवन का मूलमत्र मानते थे और विना ननुनच किये अगीकार करने में गौरव समझते थे। अत आचार्यश्रीजी के आदेश को सहर्ष

शिराधार्य कर लिया। विहार के समय आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने युवाचार्यश्रीजी के साथ विभिन्न प्रकृति वाले सन्तों को चातुमासार्थ भेजा। लकिन युवाचार्यश्रीजी की व्यवस्थाएँ इतनी बेजोड थीं कि उन्होंने बहुत मनोवैज्ञानिक ढग से उन सन्तो को निभाया और समस्त श्रीसघ को बतला दिया कि उनकी क्षमता कितनी अद्भुत है। आपश्री के अनुशासन में प्रेम का पुट होता था।

चातुर्मास-काल में चरितनायकजी की विद्वत्ता तर्कशक्ति सरलता आदि अनेक सद्गुणों से जनता परिचित हुई। मध्यस्थ जनता ने आपकी महत्ता को समझा। प्रतिदिन हजारो श्रोता आपके तात्त्विक एव तर्कपूर्ण प्रवचना का लाभ उठाते थे। आप प्रवचन में शास्त्रीय प्रमाणा एव मानवीय भावा का विवेचन करते हुए दया-दान के महत्त्व पर प्रकाश डालते थे और जब मध्याह्न मे अनेक तत्त्व-जिज्ञासु भाई एव विद्वज्जन अपनी शकाओं का समाधान प्राप्त करने के लिये आते तो आपश्री उनके विचारो का प्रमाण-पुरस्सर समाधान करते थे। परिणामत जिज्ञासु व्यक्ति आपक भक्त बनते गये।

धर्मामृत की वर्षा से चूरू की जनता ने चरितनायकजी को अपने मन मन्दिर मे आराध्यदेव की तरह प्रतिष्ठित कर लिया था और प्राय समस्त नगरवासी प्यार और श्रद्धाभरे शब्द 'गणेशनारायण' से सम्बोधित करती थी।

शरीर के प्रति उदासीन साधना के प्रति सजग

इस चातुर्मास का दो दृष्टियो से महत्त्व है। प्रथम चरितनायकजी द्वारा स्वतत्र रूप से चातुर्मास करने और द्वितीय अन्धश्रद्धा एव भ्रातिपूर्ण विचारा से ग्रस्त महानुभावों द्वारा धर्म का यथार्थ बोध प्राप्त किए जाने का श्रीगणेश हुआ था। परिणामत सवत्सरी के दिन चूरू नगर मे लगभग 350 उपवास पौषध दया सामायिक आदि धर्मक्रियाए गृहस्थों ने की थीं। इसके बाद तो यह धर्माचार की धारा वृद्धिगत ही होती रही और चरितनायकजी निस्पृह हो तात्त्विक जानकारी देते हुए आध्यात्मिक आनन्द के हिडोलो में झूलते रहते थे। शरीर के प्रति भी उतने ही उदासीन थे जितने ऐहिक भोगों के प्रति। इस सम्बन्ध मे एक मनोरजक घटना उल्लेखनीय है।

मोठ बाजरी ग्वार थली-प्रदेश का मुख्य भोजन है। चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को यह भोजन बड़े प्रेम से देती पर घी दूध दही सकोचवश नहीं दे पाती कि कहीं महात्माजी नाराज न हो जाय। भक्तजन अपने सकोच से कुछ कह भी नहीं पाते और इधर महात्माजी थे जो मोठ बाजरी ग्वार से उदरदरी को भरते हुए जनता का अमृतपान कराते रहते थे।

महात्माजी तो सतुष्ट थे मगर शरीर वह तो आखिर जड़–मूर्ख ठहरा। उसे प्रेमरस मे पगे हुए अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कैसे हो सकती थी ? जड मे विवेक हो तो वह भी समझे। वह तो अपने स्वार्थ को ही परखता है। अत इस नीरस भोजन को पाकर रूठ गया। उसन असहयोग का अस्त्र सभाला। मानो चुनौती दे दी कि आप जब मेरी परवाह नहीं करते तो मुझे भी क्या पडी है जो मैं अपना सहयोग देता रहूँ। काया कृश हो गई नेत्रों की ज्योति भी मद पड़ गई। किन्तु इस शारीरिक असहयोग से मन कृश नहीं हुआ। अन्तर् मे निर्बलता नहीं आई बल्कि आत्मिक तेज और अधिक जाज्वल्यमान हो उठा।

चूरू मे गणेशनारायण के रूप मे श्रद्धा-भक्ति का ज्वार

सफलता के साथ चातुर्मास समाप्त हुआ और विहार का समय आ पहुँचा। सन्तो ने विहार के लिये पग बढाये कि दृश्य कारुणिक हो उठा। जनता ने उमडते हृदय और अश्रुपूरित आखों से विदाई दी। सैंकडों की सख्या में जनता अपने गणेशनारायण के साथ चल पडी।

चूरू से विहार करते हुए चरितनायकजी आदि सत आचार्यदेव के चरणों में पधारे। युवाचार्यश्री के वन्दन करते ही आचार्यश्री ने उन्हे मगल आशिषो से अभिषिक्त कर दिया। अपने भावी उत्तराधिकारी की भारी सफलता से आचार्यश्री गद्‌गद थे तो युवाचार्यश्री अपने आराध्य जीवन निर्माता आचार्यवर के दर्शन पाकर हर्षोत्फुल्ल थे। कुछ पलों तक आराध्य-आराधक पूज्य-पूजक गुरु-शिष्य एक-दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखते ही रहे ! आखिर आचार्यश्री ने रोमाच को खत्म करते हुए चातुर्मास सम्बन्धी समाचारों के प्रसग में शारीरिक कृशता और नेत्र-ज्योति की मदता का कारण भी पूछा। बात दूसरो ने भी सुनी और उड़ती-उडती चूरू जा पहुची। जिसे सुनकर वहा के निवासी अपने-आप में अफसोस करने लगे और उससे भी जब उन्हे सतोष नहीं हुआ तो प्रतिनिधिमण्डल बनाकर आप व आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुए।

प्रतिनिधिमण्डल ने क्षमायाचना करते हुए पश्चात्ताप के स्वर में अपनी अजानकारी के लिये आपको उपालभ सा देते हुए कहा– भगवन् ! चार माह तक आत्मोत्थान के लिये धर्म का सरल सीधा मार्ग बतलाया लौकिक जीवन मे धर्म-सिद्धान्तों की उपयोगिता आदि बहुत सी बाते समझाईं तो एक बात और समझा दी होती। थोड़ा-सा सकेत भी तो नहीं मिल पाया कहीं से और हम भी सकोचवश अपने-आप कुछ सोच-समझ न सके। हमारी नासमझी का प्रायश्चित्त आपने किया। यह आपकी लोकोत्तर उदारता है किन्तु हमारे सताप की सीमा नहीं है। आपको जो कष्ट उठाना पड़ा है वास्तव मे हम ही उसके लिये उत्तरदायी हैं। हमें हमारे प्रमाद के लिये शुद्धि का मार्ग बतलाइये जिससे कुछ सन्तोष मिले।

चरितनायकजी तो चूरू निवासियो के आध्यात्मिक उत्साह जिज्ञासा और धार्मिक स्नेहसुधा का पान करके परितृप्त थे। अत उन्होने प्रतिनिधिमण्डल को इन वाता की ओर ध्यान न देते हुए उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास की ओर बढते रहने के लिये समझाया।

लेकिन इन भावो से उन भोले भक्तों का समाधान हुआ या नहीं किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि चूरू की जनता अपने गणशनारायण को नहीं भुला सकी हे और उनके हृदयो मे अनेक स्मृतिया आज भी जैसी की तैसी बनी हुई हैं।

आचार्यश्री के साथ पुन चूरू चातुर्मास धर्मोद्योत

चूरू निवासियों की तीव्र आकाक्षा थी कि पुन लाभ-प्राप्ति का मोका मिले। अत उन्होंने आचार्यश्रीजी की सेवा मे चूरू में चातुर्मास करने की अपनी विनती दुहराई। आचार्यश्रीजी समयज्ञ थे। आपश्री ने द्रव्य क्षेत्र आदि की परिस्थिति को समझकर स 1986 का चातुर्मास चूरू में करने की स्वीकृति फरमा दी।

आचार्यश्रीजी ने चरितनायकजी आदि सत-मुनिराजो के साथ चातुर्मासार्थ चूरू में पदार्पण किया। गत वर्ष के चातुर्मास-समय मे चूरू निवासियों ने चरितनायकजी के प्रवचनों से चुन-चुनकर अनेक आध्यात्मिक आदर्शो को आत्मसात् किया था और चारितनायकजी द्वारा बोये गये धर्म-श्रद्धा के बीज आचार्यश्रीजी के वाणी-वारिदो की वर्षा से पल्लवित हो उठे। धनतेरस के दिन नगर के अग्रणी और तेरहपथी समाज के प्रतिष्ठित सज्जन श्री मूलचन्दजी कोठारी ने पूज्यश्रीजी से सम्यक्त्व अगीकार किया। इस अवसर पर उन्होने घोषित किया कि मैं सत्य को समझकर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हूँ। जैन धर्म के सिद्धान्त मानवता का विकास करते हैं। उनमे कभी भी जीवो के प्रति करुणा-दया न करने और दान न देने का उल्लेख नहीं है। इस विषय मे मुझे लेशमात्र भी सशय नहीं है। हाँ अगर किसी को सदेह हो तो पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के सान्निध्य मे आकर शास्त्रार्थ कर ले। अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मैं एक लाख रुपये गोशाला के निमित्त दान दूगा और यदि तेरहपथी पक्ष पराजित हो जाये तो भले ही यह कुछ न दे। लेकिन किसी ने भी इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखलाया।

उल्लासपूर्ण वातावरण मे यह प्रभावक चातुर्मास पूर्ण हुआ। मगसिर कृष्णा 1 को विहार कर थली के विभिन्न क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए आचार्यश्री जवाहर आदि सत मुनिराज सुजानगढ पधारे। उन दिनों वहा तेरहपथी सम्प्रदाय के पूज्यश्री कालूरामजी स्वामी विराजते थे और माघ महोत्सव की तैयारिया चल रही थीं। उपस्थित जनता ने आचार्यश्रीजी एव चरितनायकजी के प्रवचनो का लाभ उठाया और क्रम-क्रम से छापर पडिहारा रतनगढ

राजलदेसर आदि थली के विभिन्न क्षेत्रो को अपने विहार से पवित्र किया। थली-प्रदेश मे दो वर्ष तक सन्तो का विहार होने से वहा के निवासियो ने अनेक गलतफहमियो और भ्रात धारणाओ का निराकरण करके जैन धर्म के सिद्धान्तो का सही रूप समझा।

थली-विचरण ऐतिहासिक उपलब्धि

इस विचरण से जैनेतर लोगो मे जैन धर्म के प्रति जो घृणाभाव थे दूर हो गये। अभिनिवेशी जन-समूह के अलावा प्रत्येक व्यक्ति ने आचार्यश्री युवाचार्यश्री का पूरा-पूरा लाभ उठाया। दीर्घकालिक अन्तराल के बाद उस विचरण की फलश्रुति देखते हैं तो ज्ञात होता है कि तेरहपन्थियो को स्पष्ट शब्दो में अपने मनगढन्त सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की हिम्मत नहीं रही। आज प्रवचनों मे चर्चाओ मे तथा साहित्य मे उन्होने दूसरा ही मार्ग अपना लिया। जैन सिद्धान्तो का खुले रूप मे जो उपहास होता था वह सदा-सदा के लिये रुक गया यह युगपुरुष की ऐतिहासिक उपलब्धि है। उन्होने अपने अनुयायी बनाने के लिये नहीं वरन् जैन सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार के लिये थली मे विचरण किया। वस्तुत उन्होंने रेगिस्तानी मनो मे दया और दान के बीजो का वपन कर जिन-शासन की महान् प्रभावना की। आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री की कठिन साधना का ही प्रभाव कहा जायेगा कि थलियो में जहा मुनियो के भिक्षा-पात्र में पिल्ले और पत्थर पड़ते थे उपसर्ग-परीषह सदैव स्वागत मे समुत्सुक रहते थे वहाँ आज मुनियो के स्वागत मे पलक पाँवडे बिछाये लोग खडे रहते हैं। मुनियो के निर्विघ्न विचरण एव चातुर्मास-योग्य क्षेत्र बनाने का श्रेय आचार्यश्री युवाचार्यश्री को ही है।

इन्हीं दिनो स्थविर तपस्वी मुनिश्री बालचन्दजी म सा भीनासर विराज रहे थे। आप काफी दिनो से अस्वस्थ थे। आपकी भावना आचार्यश्रीजी म सा के दर्शन करने की थी। इस भावना को जानकर आचार्यश्रीजी म सा मार्ग मे पड़ने वाले थली-प्रदेश के गावो को फरसते हुए भीनासर पधारे और तपस्वीजी म सा को दर्शन दिये। तपस्वीजी म सा की शारीरिक स्थिति दिनोदिन निर्बल बनती जा रही थी और उन्होने ज्येष्ठ कृष्णा 4 को रात्रि के करीब 9 बजे इस भौतिक देह का परित्याग कर दिया।

ब्यावर की ओर

साधु-सन्तो की ज्ञानमयी वाणी के श्रवण के लिये जनसाधारण मे एक अनूठी लालसा रहती है। लेकिन सन्तों का पैदल विहार होने से अल्पसमय मे सभी स्थानों पर पदार्पण होना सम्भव नहीं है। समयानुसार जिस-किसी भी क्षेत्र में उनका पदार्पण हो जाता है तो वहा की जनता अपना अहोभाग्य मानती है।

थली प्रदेश मे पूज्य आचार्यश्रीजी म सा आदि सन्तो के विहार के पहले से ही बीकानेर श्रीसंघ अपने यहा चातुर्मास करने के लिये विनती करता आ रहा था। अत सन्तो का पदार्पण होते ही श्रीसघ को अपनी आशा के सफल होने के आसार दिखाई देने लगे और अपनी विनती को दुहराया। जिस पर आचार्यश्रीजी म सा ने आगामी चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

ब्यावर श्रावक सघ भी अपने यहा आचार्यश्रीजी का चातुर्मास कराने के लिये लालायित था और आचार्यश्रीजी भी वहा पर योग्य सन्तो के चातुर्मास होने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अत परिस्थिति को देखकर एव चूरू चातुर्मास की सफलता से सतुष्ट होकर आचार्यश्रीजी म सा ने चरितनायकजी का ब्यावर मे चातुर्मास होने की स्वीकृति दे दी।

इस स्वीकृति से ब्यावर सघ बहुत ही प्रमुदित हुआ और जैसे जैस चातुर्मास का समय निकट आता जा रहा था वैसे-वैसे आपश्री के पदार्पण की बाट देखी जाने लगी।

यथासमय चातुर्मास हेतु चरितनायकजी ने अन्य मुनिराजो के साथ ब्यावर नगर में पदार्पण किया। जनता ने बड़े उत्साह एव समारोह के साथ स्वागत किया। आपके प्रवचनों और विद्वत्ता से जनता बहुत ही प्रभावित हुई और साध्वाचार के अनुसार चर्या की महानता के दर्शन किये। तात्त्विक चर्चा और शका-समाधान के समय आपके पांडित्य और सीधी सरल भाषा में सत्य-तथ्यो को स्पष्ट करने की अनोखी शैली जहा जनसाधारण को प्रभावित करती थी वहीं विद्वानों को विद्वत्ता परखने का भी मौका देती थी।

चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ सपन्न हुआ। ब्यावर सघ वैसे भी धार्मिक आचार-विचारो के प्रति श्रद्धावान सघ है लेकिन इस चातुर्मास-काल में ज्ञान साधना के साथ-साथ अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने एकान्तर, बेला, तेला, अठाई मासखमण आदि करके तप-साधना की प्रभावना की। विभिन्न लोककल्याणकारी कार्यों के निमित्त दान देने में तो सभी तत्पर ही रहते थे।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आप राजस्थान [illegible] को [illegible] ज्ञानगगा के प्रवाह से हरा-भरा बनाने लगे। आप जिस क्षेत्र में [illegible] आपकी कीर्ति वहाँ पहुच जाती थी और भव्यजन आपके [illegible] के [illegible] रहते थे। आप जहाँ भी पधारते वहीं एक अनूठे [illegible] की आकाक्षा ता थी नहीं जिससे राग-द्वेष [illegible] ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए स्वय सन्मार्ग [illegible] को प्रेरणा देते हुए आध्यात्मिक विकास [illegible] रहा है।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा आदि सन्त बीकानेर चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पुन थली-प्रदेश के सरदारशहर रतनगढ आदि-आदि मुख्य-मुख्य नगरो मे धर्मदेशना देते हुए पजाब की ओर पधार गये और राजस्थान चरितनायकजी की विहार-भूमि बन गया।

माता के नाम पे पशुबलि बन्द कराई

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों मे श्रमण सस्कृति का सदेश मुखरित करते हुए चरितनायकजी ने थली-प्रदेश मे पुन पदार्पण किया। थली के भव्यजन आपकी ज्ञानदेशना का अधिकाधिक सख्या मे लाभ उठाते थे। अपने-अपने क्षेत्र में पदार्पण के लिये विनतिया करते और आपश्री भी समयानुसार सभी प्रदेशो को स्पर्श करने की भावना रखते थे। इन्हीं दिनो फलौदी सघ आपके चातुर्मास के लिये विनती कर रहा था। अत स 1988 के चातुर्मास हेतु फलौदी की ओर विहार कर दिया।

विहार-मार्ग मे एक ग्राम ऐसा भी आया जहा माता के स्थान पर अन्धश्रद्धा के वशीभूत होकर धर्म के नाम पर अनेक मूक पशुओ की बलि होती थी। धर्म के नाम पर होने वाली इस हिंसा और जनसाधारण की भावना से आपका हृदय द्रवित हो गया। जहा हत्या का ऐसा ताडव नृत्य होता हो और निर्दयता का वास हो वहा सन्त पुरुषों को शान्ति नहीं मिल सकती है। उनका हृदय कारुणिक हो जाता है। प्राणिमात्र मे मैत्री करुणा दया भावना को विकसित देखने वाले ऐसे क्रूर कृत्यों को देखकर खेद-खिन्न हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

चरितनायकजी मानवता के चितेरे थे और हृदय मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत था। आपसे यह दृश्य–मूक पशुओ का कष्ट–देखा नहीं गया। उनकी यह दुर्दशा देख आप विचारने लगे कि मनुष्य–सृष्टि का राजा–इतना घोर स्वार्थी है ? उसके विवेक और बुद्धि का क्या यही सही उपयोग है ? यह मूर्खता जिसमे भरी हुई है वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है ?

बलि के नाम पर मारे जाने वाले इन मूक पशुओं की रक्षा के लिये आपका हृदय उमड़ पडा और शक्य उपाय सोचने लगे। अत अन्धश्रद्धालुजनों के बीच आपने अहिंसा धर्म पर प्रवचन फरमाते हुए बतलाया कि प्रभु की जय इसलिये कहते हैं कि हम उसके प्रति वफादार बन सकें। प्रभु के प्रति वफादारी का अर्थ है कि निश्छल साधना की जाये और इस साधना का प्रमुख रूप है कि इस सृष्टि मे हम समानता की स्थिति पैदा करें। फिर यह भेदभाव और विषमता क्यो ? अत परमात्मा की जय बोलते हुए इस सृष्टि में उसके प्रति वफादार रहने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। इसीलिये सभी धर्मों में अहिंसा परमो धर्म - अहिसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है। अहिसा को सभी धर्म मान्यता देते हैं। जैन धर्म मान्यता ही

नहीं देता किन्तु घोषित करता है कि अहिसानिउणादिट्ठा सव्वभूएसु सजमो'। उन तीर्थकरो ने सर्वप्राणियो के प्रति सयम के रूप मे निपुण अहिसा का सर्वोत्तम धर्म देखा। प्रत्येक प्रवृत्ति इतनी यतना से होनी चाहिये कि वह किसी भी प्राणी को तनिक-सी भी पीडा देने वाली न हो।

अतएव मेरा आप लोगो से कहना है कि यदि आप अपने आप को परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप से अहिसा का पालन कीजिये। अहिसा ही वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा आत्म-समानता यानी परमात्म-वृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।

इसी प्रसग मे हिसा से प्राप्त होने वाले दु'खों और अहिसा से मिलने वाले सुखों का विशद वर्णन करते हुए बतलाया कि विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। आप लोग जो-कुछ भी करने आते हैं वह सुख के लिये ही करते हैं। लेकिन सुख की प्राप्ति दूसरे का नाश करके नहीं हो सकती हैं। मृत्यु किसी को भी प्रिय नहीं है सभी जीवित रहना चाहते हैं। आप इन मूक प्राणियों की आखो मे देखो। वे आपसे अभय चाहते हैं। उन्हें जीने की इच्छा है और इसीलिये वलि की वेदी पर चढ़ने की अपेक्षा पीछे हटने के लिये छटपटाते हैं। उनकी सिहरन हृदय को झकझोर देती है। यदि आप सुख चाहते हैं तो दूसरो को भी सुख पहुचाओ। आम का फल बोने से आम पैदा होगा न कि बबूल के बोने से।

यह तो आप जानते हैं कि देवी सबकी माता है। माता वात्सल्य प्रेम की दायिनी है। वह अपने पुत्रो मे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करती। उसकी गोद मे सभी को एक सा स्थान प्राप्त है। वह अपनी अमीदृष्टि से सभी को सराबोर करने मे ही सुख अनुभव करती है। अत आप लोग माता के कुछ एक पुत्रो को उसी के नाम पर मार कर उसके विरुद को कलकित मत करो। इस कार्य से उसे दु ख होता है। आप मातृ भक्त हैं इसलिये जिस कार्य से उसे सुख मिले वैसा कार्य करने का ध्यान रखे।

आपके उपदेशामृत का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। बलि देने के लिये आने वालो के हृदय करुणा से आप्लावित हो उठे। धर्म की यथार्थता ज्ञात होते ही सरलपरिणामी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगे। मन का मैल आखो के द्वारे झर-झर झरने लगा। हृदय ने कुछ हलकापन अनुभव किया और अपने-आप में शाति पाकर तत्काल मूक पशुओ की हत्या करने का विचार त्याग दिया और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसा कुकृत्य न तो हम करेगे और न दूसरे को भी करने देगे। भविष्य मे वहाँ पर मिठाइयाँ बाँटी जाने लगी।

सन्तो का माहात्म्य अपूर्व है। उनका एक बोल पत्थर को भी पिघला देता है। दुर्दान्त-से दुर्दान्त और क्रूर-से क्रूर प्राणी भी दृष्टिनिपात मात्र से शात और सरल हो जाते हैं। एक क्षण पहले जिस धर्मस्थान मे रौरवता का नगा नृत्य होने वाला था वहा क्षण मात्र मे दया

अमारि की सुखद लहरे हिलोरे लेने लगीं। अहिसा की घोषणा से देवी का जगज्जननी नाम सार्थक हो गया।

तिवरी मे पारस्परिक वैमनस्य मिटाया

वहा से विहार कर क्रमश अनेक स्थानो को पदार्पण से पवित्र कर जब आप तिवरी पधारे तब तिवरी आपस के वैर-विरोध से तीन-तेरह हो रहा था। वैर-विरोध मे समस्त ग्रामवासी रचे-पचे हुए थे। वहा के अग्रवाल ओसवाल माहेश्वरी ब्राह्मण आदि विभिन्न जातीय सज्जनों मे किसी सामाजिक विषय को लेकर पारस्परिक सघर्ष चल रहा था। प्रत्येक एक-दूसरे को नीचा दिखाने की ताक मे रहता था और मौका मिलने पर अपनी ज्वाला को शात करने से नही चूकता था। सभी एक-दूसरे की जान के ग्राहक बने थे और इसी सघर्ष को लेकर हजारो रुपया का पानी कर चुके थे।

ऐसे समय मे चरितनायकजी का पदार्पण तिवरी के लिये वरदान सिद्ध हुआ। आपने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिये उपदेश देना प्रारम्भ किया। जिससे निवासियो के रूक्ष हृदयो मे ऋजुता का सचार हुआ और मान की कलुषता शनै-शनै बहने लगी। दृष्टि के पलटते ही निवासियो को अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। लोगो के हृदय शात और निस्ताप हो गये। उनके हृदयो मे एक हूक उठी कि क्या अपनों से ही विरोध करना हमे शोभा देता है ? एक ही भूमि मे खेले हैं कूदे हैं और बडे हुए हैं और उसी को कुरुक्षेत्र बनाना हमारे लिये लज्जा की बात है। सोचते-सोचते सभी एक निर्णय पर आये कि इन महापुरुष के चरणो मे हम अपने नये जीवन का श्रीगणेश करे जो हो गया है उसे अब भूल जायें।

प्रतिदिन की तरह चरितनायकजी का प्रवचन हो रहा था कि अकस्मात् सभी ग्रामनिवासी एक साथ खडे होकर आपसे प्रार्थना करने लगे कि भगवन् ! हम भूले थे आपके उपदेशो ने सुमार्ग का दर्शन करा दिया है। हम अपनी द्वेषभावना के लिये शर्मिन्दा हैं। अब आप जो आज्ञा देगे हमें स्वीकार है। आपके उपदेश से एक नया प्रकाश पाया है और उसी के सहारे हम सुमार्ग पर बढते रहेगे। अब हमारा आपस में कोई विरोध नहीं है। हमारी गलती थी कि हम एक दूसरे के विचारो को नहीं समझ सके।

चरितनायकजी क उदार एव सकरुण हृदय का ही यह प्रभाव था कि सुबह के भूले शाम को अपनी ठौर लौट आये। विवाद और विरोध का कीचड़ बह गया और शुद्ध प्रेम-नीर मे सभी गोते लगाने लगे एव अहिसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग इस विधान की सत्यता प्रमाणित हो गई।

फलौदी चातुर्मास मे अपूर्व धर्मोद्योत

विहार-मार्ग मे इसी प्रकार के अनेक उपकार करते हुए सामाजिक कुरीतियो आपसी मनमुटाव आदि को मिटाते हुए आप स 1988 के चातुर्मास हेतु फलौदी पधार गये। आपके उपदेशामृत के प्रवाह से फलौदी ने अपना फलोदधि नाम सार्थक कर दिया।

आप हित-मित भाषा मे आध्यात्मिक विकास हेतु विवेचन करते और उसका स्थानीय आस-पास की जनता लाभ उठाती थी। आपके प्रवचनो मे सामाजिक कुरूढ़ियों और आत्मोन्नति के साधनो के बारे में विशेष रूप से सकेत रहता था। कुरूढ़ियो के सम्बन्ध मे आपके विचार थे कि ये जीवन को गदा बनाये हुए हैं जिससे धार्मिकता पनपने नहीं पाती है। जिस समाज की तह में कुरूढिया चट्टान की भाति जमी हो वहा धर्म का अकुर पैदा नहीं हो सकता है। जब तक इनको उखाडा न जायेगा तब तक धर्मवृद्धि के लिये किये जाने वाले प्रयत्न प्राय निरर्थक हो सकते हैं।

आपकी सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी को श्रवण करने के लिये श्रोताओ की आशातीत उपस्थिति हो जाती थी। जो-कुछ भी आप विवेचन करते थे वह सुनने वालों को अभूतपूर्व प्रतीत होता और सभी लाभ उठाते थे। अनेको ने आत्मशुद्धि के लिये व्रत-प्रत्याख्यान लेने के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने के लिये कुरूढियो का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया।

आपके इस चातुर्मास का सभी क्षेत्रो पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। समाज ने आपके लिये जो धारणा बना रखी थी और प्रशसा सुनी थी उससे भी बढकर समझने व देखने को मिला। अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान गूढ-गभीर तात्त्विक विचारो को सीधी सादी भाषा मे समझाने वाली वक्तृत्व शैली साधु-मर्यादा का यथावत् पालन आदि का इतना प्रभाव पड़ा कि सभी आप में आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के ही दर्शन करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आचार्यश्रीजी ही चातुर्मास हेतु यहा विराजमान हैं।

माउड़ियाँ गाव मे धर्म के नाम पे पशुवध बद हुए

चातुर्मास पूर्ण हुआ। दूर-दूर के क्षेत्रो और स्थानीय निवासियो को यह समय कब बीता कैसे बीता कुछ मालूम ही नहीं पडा। लेकिन साधु-आचार के अनुसार चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर जब विहार का अवसर आया तो आपने अन्त करण को दहला देने वाला एक सवाद सुना। किसी ने आपको बतलाया कि यहीं पास के 'माउडिया' ग्राम मे प्रतिवर्ष मेला होता है। उस मौके पर देवी के स्थान पर सामूहिक रूप मे 500 और व्यक्तिगत रूप मे करीब 1500 पशु धर्म के नाम पर मौत के घाट उतारे जाते हैं।

इस भीषण सवाद से आपके सुकोमल हृदय को गहरा आघात पहुचा। इस प्रकार के कृत्य और अन्धविश्वास की कल्पना-मात्र से आपका अन्त करण करुणार्द्र हो गया। आपने सोचा-- हा दुर्दैव ! हा मानव की दानवता ! आध्यात्मिक मूल्यो की अन्तिम दशा आन्तरिक ईमानदारी और आन्तरिक जीवन के सस्कार द्वारा प्राप्त की जाती हे ? इसी को धर्म कहते हैं ? इसकी सच्ची आवाज एक ही है और वह है मानवीय दया और करुणा की अनुकम्पा की प्रेम की और हम सब उस आवाज को अवश्य ही सुन सकते हैं। जब तक हम बहिर्मुखी जीवन बिताते हैं और अपनी आतरिक गहराइयों की थाह नहीं लेते तब तक हम जीवन के अर्थ अथवा आत्मा को नहीं समझ सकते। जो लोग ऊपरी सतह पर जीते हैं उन्हे स्वभावत ही आत्मिक जीवन मे कोई श्रद्धा नहीं होती है। यदि किसी को महान बनना है तो सेवा मैत्री परदु खकातरता आदि द्वारा बन सकता है। दुर्बलो की सहायता करने का दायित्व सम्पूर्ण सभ्य जीवन का आधार है।

हिसा अधर्म है और अधर्म ही रहेगी। लेकिन जो इस तथ्य को भूलकर आत्मिक आवाज को क्षीण कर देते हैं उनकी विचारशक्ति और आत्मा पर अन्धकार छा जाता है और वे उसके विरुद्ध सघर्ष करने की अपनी इच्छा को भी क्षीण कर लेते हैं।

अतएव मानवजाति के इस कलक को मिटा देने का प्रयत्न करना मानवता की सबसे बड़ी सेवा होगी और मारे जाने वाले पशुओ के प्रति अनुकम्पा होगी। धर्म के नाम पर होने वाले ऐसे हत्याकाण्ड मानवीय विवेक के दिवालियेपन को सूचित करते हैं। निरपराध मूक प्राणियों के प्रति भयकर अत्याचार करने वाला मानव किस आधार पर सभ्य शिष्ट और समझदार होने का दावा कर सकता है ?

मानव देवी-देवताओ के नाम पर भोले-भाले प्राणियो की हिसा का खेल खेल रहा है। स्वार्थ और दैविक अनुग्रह की अन्धश्रद्धा इस पाप की जड है। धार्मिक अविवेक और स्वार्थसाधना के निमित्त मनुष्य ने न जाने कितने समुद्र लाल किये हैं और कितनी जमीन को मास व उसके लोथडो का खाद दिया है। मगर अहिसा हिसा को परास्त करके ही रहेगी और व्यापक नीति की प्रतिष्ठा होगी। उसी दिन मानव-जाति का समग्र प्राणिजगत् मे श्रेष्ठ होने का दावा सच्चा माना जायेगा।

फलौदी और माउड़ियाँ की अहिंसाप्रेमी भक्तमण्डली आपके प्रयत्नो की सफलता के लिये प्राणपण से जुट गई। आपने बड़े ही हृदयस्पर्शी प्रभावशाली ढग से अहिसा की व्याख्या की जिसका इतना और ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि क्रूरता से पाषाण बने हृदय पिघल गये। उन्हे अपने दुष्कृत्य के प्रति अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई कि क्या हम मनुष्य हैं और यही हमारी मनुष्यता है ? हम कब तक धर्म के नाम पर प्राणिहत्या से अपने हाथ रगते रहेग ? हम

अपने किये का परिणाम कब क्या कैसा पायेंगे पता नहीं किन्तु हमारी संतान की अवश्य ही बदतर स्थिति होगी। अत धर्म को कलकित करने वाली इस हिसा से विरत होने में ही हमारा कल्याण है।

हिसको के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया मे आपके प्रयत्न सफल हुए। ग्राम के समस्त निवासियो ने स्वेच्छापूर्वक इस हिसा को बद कर देने का निर्णय किया। इससे तत्काल ही 2000 जीवो को अभयदान मिलने के साथ-साथ मनुष्यता का एक कलक धुला और अहिंसा की प्रभावना हुई।

'माउड़ियाँ' नाम ही सकेत करता है कि उस ग्राम मे माता–देवी–की विशेष रूप से मान्यता होगी। आपके उपदेशो एव फलौदी आदि आस पास के गावो से मेले में आगत जनता तथा माउडियाँ के विवेकशील निवासियों की सूझ-बूझ से वहा अहिसा माता की जो प्राण-प्रतिष्ठा हुई उससे माउडियाँ ग्राम वास्तव मे माउडियाँ नाम का अधिकारी बन सका।

बृहत्साधु-सम्मेलन के पहले

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने दिल्ली चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् जमनापार के क्षेत्रो की ओर विहार किया और भिवानी हासी हिसार राजगढ आदि ग्रामो व नगरो को धर्मदेशना का लाभ देते हुए पुन राजस्थान के चूरू नगर में पधारे।

इन दिनो किसी केन्द्रस्थान मे श्रावको द्वारा समस्त स्थानकवासी सत मुनिराजो का सम्मेलन कराने के लिये प्रयत्न किये जा रहे थे। इसके लिये श्रावकों ने विभिन्न साधु मुनिराजा के पास जाकर विचार विमर्श कर लिया था। एक प्रकार से बृहत्साधु सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी। अत आचार्यश्रीजी ने साधु-सम्मेलन और समाचारी आदि आवश्यक विषयो पर विचार करने के लिये अपने नेश्राय के साधु-मुनिराजो को नागौर में एकत्रित होने का आदेश दिया।

तदनुसार चरितनायकजी अपने साथी सन्तो के साथ यथासमय नागौर पधार गये। उस समय नागौर मे आचार्यश्रीजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोडीलालजी म सा., मुनिश्री चादमलजी म सा मुनिश्री हर्षचन्दजी म सा आदि-आदि सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य सन्त एकत्रित हुए। उनके सामने आचार्यश्रीजी म सा ने अपने द्वारा बनाई गई 'श्री वर्धमान सघ' की योजना रखी और तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श किया।

मुनिमण्डल की विचारगोष्ठी के अवसर पर जोधपुर श्रीसघ आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु आचार्यश्रीजी की सेवा मे आया। जिस पर स्थिति को देखकर आचार्यश्रीजी ने आगामी (स 1989 का) चातुर्मास जोधपुर मे करने की स्वीकृति फरमाई और

नागौर से गोगोलाव आदि मार्ग मे पडने वाले ग्रामो मे धर्मोपदेश देते हुए चरितनायकजी आदि 13 सन्त-मुनिराजो के साथ आषाढ शुक्ला 1 को जोधपुर पधारे।

चातुर्मास-समाप्ति के सन्निकट कार्तिक शुक्ला 11 को प्रमुख-प्रमुख श्रावका का एक शिष्टमण्डल अजमेर मे होने वाले साधु-सम्मेलन के बारे मे विचार-विमर्श करने एव सम्मेलन मे पधारने की विनती के साथ आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल से सम्मेलन के बारे मे विशदरूप से विचार-विमर्श करके आचार्यश्रीजी ने उक्त अवसर पर स्वय या अपने सन्तों के प्रतिनिधिमण्डल के अजमेर पहुचने के भाव दर्शाये।

अजमेर मे होने वाले साधु-सम्मेलन मे सम्मिलित होने से पहले पुन एक बार आचार्यश्रीजी म सा ने तत्काल अपने सम्प्रदाय के सन्तो का सम्मेलन कर लेने की आवश्यकता अनुभव की और इसके लिये ब्यावर को उपयुक्त स्थान समझकर सभी सन्तो का ब्यावर पहुचने के लिये समाचार भिजवा दिये।

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्रीजी म सा के ब्यावर पधारने के पूर्व 42 सन्तो का वहा पदार्पण हो चुका था। कुछ दिनो मे 3 सतो के और आने से कुल मिलाकर 45 सन्त हो गये। उनमे चरितनायकजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोडीलालजी म सा मुनिश्री चादमलजी म सा मुनिश्री हरखचन्दजी म सा., मुनिश्री गब्बूलालजी म सा (बड) आदि सन्त प्रमुख थे।

आचार्यश्रीजी म सा ने उपस्थित सन्त-मुनिराजो से सम्मेलन के सम्बन्ध मे एव अन्यान्य विषयो पर विचार कर सम्मेलन में अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिये पाच मुनिराजो का मण्डल निर्वाचित किया जिसके चरितनायकजी म भी एक सदस्य थे।

प्रतिनिधिमण्डल के नामों का निश्चय हो जाने के बाद भी मुनिराजो को यही याग्य प्रतीत हुआ कि प्रतिनिधिमण्डल की अपेक्षा आचार्यश्रीजी का सम्मेलन मे पधारना उचित होगा। अत विनती की कि सम्मेलन मे आपका पधारना उचित होगा। अत सन्तो के आग्रह को देखकर आचार्यश्रीजी म सा ने सम्मेलन मे पधारने का निश्चय कर लिया।

बृहत् साधु-सम्मेलन अजमेर मे

चतुर्विध सघ की धार्मिक स्थिति की सुव्यवस्था के लिये किया जा रहा यह महान आयोजन –बृहत्साधु-सम्मेलन– स 1990 चैत्र शुक्ला 10 दि 5 अप्रैल 1933 को अजमेर मे प्रारम्भ हुआ।

इसमे 26 सम्प्रदायो के 240 सन्त सम्मिलित हुए। चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा आदि पाच सन्तो के साथ आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा भी 5 अप्रैल 1933 को प्रात अजमेर पधार गये।

प्रारम्भिक औपचारिकताओ की पूर्ति होने के पश्चात् सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें साधु-समाचारी आदि-आदि श्रमण वर्ग से सम्बन्धित विषयो पर दि 5 अप्रैल से 27 अप्रैल 33 तक चर्चा-वार्त्ता होकर कुछ निर्णय तो अवश्य लिये गये लेकिन चतुर्विध सघ की धर्मकारिणी की सुव्यवस्था हेतु मुनिराजो मे उत्साह दिखाई न देने से सम्मेलन का उद्देश्य सफल न हो सका।

चर्चा-वार्त्ता के प्रसग मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने भी अपनी श्री वर्धमान सघ योजना' प्रस्तुत की। जिसमें मुख्य रूप से सभी सप्रदायों का एकीकरण करके एक आचार्य के नेतृत्व में शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित्त विहार आदि की व्यवस्था करने का आशय व्यक्त किया गया था। यद्यपि सभी सन्तों द्वारा योजना का हार्दिक स्वागत भी किया गया और सिद्धान्त रूप मे मान्य भी की गई लेकिन मतैक्य न हो सकने और कार्यान्वियन के प्रति असमर्थता व्यक्त करने से योजना को मूर्तरूप नहीं दिया जा सका।

विभाजित सम्प्रदायो का एकीकरण

चतुर्विध सघ में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय अपनी सयम साधना और विद्वत्ता के कारण सम्माननीय मानी जाती है। लेकिन पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म सा के समय मे कुछ-एक कारणो से सम्प्रदाय के दो विभाग हो गये थे और पृथक होने वाले सन्तों ने मुनिश्री मुन्नालालजी म सा को अपना आचार्य बना लिया था। इन दोनों विभागों का एकीकरण करने के लिये समय-समय पर किये गये प्रयत्न सफल नहीं हुए।

लेकिन दोनों विभागों का एकीकरण करने के लिये प्रयत्न करने वाले हतोत्साह न होकर अपने प्रयत्नो मे लगे रहे। चतुर्विध सघ इस सम्प्रदाय मे अनैक्य देखने के लिये उत्सुक नहीं था और चाहता था कि श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये तत्पर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय पुन एक हो जाये।

बृहत्साधु सम्मेलन के अवसर पर ही श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता की अध्यक्षता में श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का नौवा अधिवेशन भी अजमेर में हो रहा था। अत इन आयोजनो के कारण चतुर्विध सघ के प्रमुख प्रमुख सन्त-मुनिराजों गणमान्य श्रावको के अतिरिक्त आबाल-वृद्ध भाई-बहिन एकत्रित हुए थे। इन सभी की भावना थी कि इस अवसर का लाभ उठाकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय का एकीकरण कराने के लिये प्रयत्न किये जायें।

चतुर्विध सघ की भावना को देखकर एकता के लिये प्रयत्न करने वालों के द्वारा साधु सम्मेलन में एकता का प्रश्न प्रस्तुत किया गया। पहले किये गये प्रयत्नों की समीक्षा करने के

प्रसग मे प्रश्न उठा कि यह कैसे सम्भव हो ? विचार-विमर्श करके निर्णय किया गया कि पहले रतलाम मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा एव पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा के बीच हुए वार्तालाप व निश्चय का विहगावलोकन करने के लिये यहा पधारे हुए सन्तो मे से पच मुकर्रर कर दिये जाये और उनके निर्णय को दोनो पक्ष स्वीकार करे।

इसी भूमिका पर एकीकरण के लिये प्रयास किये गये और निर्णय के लिये निम्नलिखित मुनिराज पच नियुक्त हुए–

1 कविवर्य श्री नानचन्दजी म सा 2 मुनिश्री मणिलालजी म सा 3 शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्दजी म सा 4 आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म सा 5 पजाबकेसरी युवाचार्यश्री काशीरामजी म सा।

पच मुनिवरो ने एकता के सम्बन्ध मे अभी तक किये गये प्रयत्नो आदि के बारे मे मत्रणा और विचारणा करने के पश्चात् स 1990 वैसाख कृष्णा 8 दि 17 4 33 सोमवार को अपना निर्णय दिया। निर्णय इस प्रकार है–

आज रोज दोनो पक्षो के भविष्य का फैसला पच निम्न प्रकार से देते हैं–

1 मुनिश्री गणेशलालजी म को युवाचार्य पद पर नियत करे।

2 मुनिश्री खूबचन्दजी म को उपाध्याय पद पर नियत करे।

3 अब से जो नये शिष्य हो वे युवाचार्य की नेश्राय मे रहे।

4 भविष्य के धाराधोरण दोनो पूज्य मिलकर बार्धे।

5 पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म की सम्प्रदाय के चौमासे ठहराने की और दोषशुद्धि करने की सत्ता दोनों पूज्यो की हयाती तक दोनो पूज्यों की रहेगी और एक आचार्य रहने पर एक आचार्य की होगी।

6 फैसला मिलने के साथ ही परस्पर बारह समोग खुले करे।

द अमोलक ऋषि द मुनि रत्नचन्द द मुनि मणिलाल

द मुनि नानचन्द्र द मुनि काशीराम

उक्त निर्णय को स्वीकृत करते हुए आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने फरमाया कि– 'फैसला मजूर है। अमलदरामद धाराधोरण बनाकर किया जायेगा।

पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा ने फरमाया कि– 'फैसला मजूर है।

इस निर्णय की वृहत्साधु-सम्मेलन में उपस्थित सन्त-मुनिराजो श्रावको आदि सभी ने अनुमोदना की और हृदय उल्लास से भर गये। बहुत दिनों से जो प्रश्न समग्र सघ के लिय चिन्ता का कारण बना हुआ था उसका समाधान होने से सभी ने साधु-सम्मेलन की आशिक सफलता मानी और सराहना की।

समस्त स्थानकवासी समाज के इतिहास मे यह एक गौरवशाली कार्य हुआ था और उससे चरितनायकजी की महानता ही सिद्ध होती है कि पूज्यश्री हुक्मीचदजी म सा की सप्रदाय की दो धाराओ ने आपको अपना केन्द्रविन्दु मानकर एकीकरण कर लिया।

एकता विषयक निर्णय हो चुका था और उसके कार्यान्वयन के बारे मे सम्मेलन के अवसर पर दोनो पूज्या के बीच विचार-विमर्श भी हुआ। किन्तु उसमे कुछ गत्यवरोध पैदा हो जाने से उपस्थित जनसमूह मे एकता के बारे मे गलतफहमिया पैदा होने लगीं। अत उपस्थिति को वास्तविक स्थिति की जानकारी देने के लिये दि 24 4 33 को प्रात 8 बजे निम्नलिखित 17 सज्जनों का एक शिष्टमण्डल ममैयो के नोहरे में विराजित मुनिराजो की सेवा मे उपस्थित हुआ–

1 श्री हेमचन्दभाई मेहता 2 सेठ श्री अचलसिहजी 3 श्री वेलजीभाई लखमसी नपु, 4 दी ब श्री विशनदासजी 5 रा सा श्री मोतीलालजी मूथा 6 श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया 7 श्री पूनमचन्दजी नाहटा 8 रा सा लाला टेकचन्दजी 9 सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया 10 सेठ श्री कन्हैयालालजी भण्डारी 11 श्री सौभागमलजी मेहता 12. डॉ श्री बृजलाल डी मेघाणी 13 सेठ श्री दुर्लभजीभाई जौहरी 14 श्री सरदारमलजी छाजेड 15 श्री जेठालालभाई रामजीभाई 16 श्री चिम्मनलाल पोपटलालभाई शाह 17 श्री शातिलाल मगलभाई।

शिष्टमण्डल ने विराजित मुनिराजो की सेवा मे एकता सबधी पचफैसले को अमलदरामद करने के लिये प्रार्थना की। पचफैसले के बाद जो कुछ भी विचार-विमर्श हुआ और किन कारणों को लेकर गत्यवरोध पैदा हो गया आदि सभी के बारे विवेचन होने के बाद आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा एव पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा ने निम्नलिखित निश्चय किये–

1 आज से परस्पर बारह सम्भोग जहा-जहा दोनो सम्प्रदाय के मुनि हों वहा वहा खुले किये जाते हैं। दोनो पूज्य अभी ही इस सम्बन्धी सदेश अपने मुनियों को भेज देंगे।

2. धाराधोरण बनाने के लिये निम्नानुसार व्यवस्था की जाती है– पूज्यश्री मुन्नालालजी म., मुनिश्री हजारीमलजी म., मुनिश्री छगनलालजी म और पूज्यश्री जवाहरलालजी म., मुनिश्री गणेशलालजी म तथा मुनिश्री हरखचन्दजी म इस तरह छह मुनिराज एकत्रित होकर भविष्य के लिये धाराधोरण बनावें। यदि इसमें कुछ मतभेद हो तो छहों मुनिवर मिलकर एक सरपच पसन्द कर ले। यदि सरपच के चुनाव मे एकमत न हों तो श्री वर्धमानजी पीतलिया तथा श्री सौभाग्यमलजी मेहता ये दोनों साथ मिलकर मतभेद का समाधान कर द। यदि इनके बीच भी मतभेद रहें तो इन दोनो गृहस्थों ने सीलबन्द लिफाफा श्री प्रेसीडेण्ट सा को दिया है। उसमे लिखे हुए नाम वाला पच दोनो गृहस्थो के सरपच के रूप मे जो निर्णय दे वह अन्तिम निर्णय माना जायेगा।

3 मुनिश्री गणेशलालजी म को युवाचार्य पद तथा मुनिश्री खूबचन्दजी म को उपाध्याय पद स 1990 की फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले ही दे देना निश्चित किया जाता है।

4 फाल्गुन शुक्ला 15 के बाद जो नये शिष्य हों वे युवाचार्यजी की नेश्राय मे रहे।

इस प्रकार पारस्परिक मतभेद के कारणो का समाधान हो जाने से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की विभक्त सम्प्रदाय सयुक्त हो गई और भविष्य के लिये धाराधोरण बनाने का कार्य यथावसर किये जाने की आशा थी।

स्वागत के लिये उत्सुक जन्मस्थान

वृहत्साधु-सम्मेलन होने के पश्चात् आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ठाणा 22 अजमेर से मारवाड-मेवाड के विभिन्न ग्रामो म विचरण करते हुए उटाला (मावली के निकट) पधारे। वहा पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार प्राप्त हुए। समाचार ज्ञात कर आचार्यश्रीजी आदि सभी सन्त मुनिराजो ने ध्यान किया और दिवगत आत्मा का गुणानुवादपूर्वक पुण्यस्मरण करते हुए अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

इसी अवसर पर उदयपुर श्रीसघ सेवा मे उपस्थित हुआ। वह अपने यहा आचार्यश्रीजी म सा आदि सभी सन्तो का चातुर्मास कराने के लिये बहुत समय से लालायित था और अनेक स्थानो पर वहा के प्रमुख-प्रमुख श्रावक विनती करने के लिये सेवा म उपस्थित होते रहे थे कि आचार्यश्रीजी हमारे भावी सघशिरोमणि के साथ चातुर्मास हेतु उदयपुर मे पदार्पण करने की महती कृपा करावे। अत इस समय अनुकूल सयोग होने से आचार्यश्रीजी ने आगामी चातुर्मास उदयपुर मे करने की स्वीकृति फरमाई जिससे उदयपुर श्रीसघ के हर्ष का पार न रहा। वह अपने गौरव की अनुभूति से थिरक पड़ा। अपने प्रागण मे तेजस्वी सूर्य-से और ओजस्वी चन्द्र-से ज्योतिर्धर जवाहराचार्य एव भावी गणपति गणेशाचार्य के पदार्पण होने-रूप अलभ्य अवसर-प्राप्ति से प्रमुदित हो उठा।

दिनो की प्रतीक्षा तो एक दो तीन आदि गिनते-गिनते पूर्ण हो चुकी थी और अव घातुर्मासार्थ पदार्पण होना दिनों से क्षणो के वीच आ टिका। वह अवसर भी आ गया जव सन्तों ने नगरप्रवेश किया। नगर क महल और मकान चौराहे और चवूतरे चौगान और चौमजिले देहरी और दरवाजे आवाल-वृद्ध जना से अटे पडे थे। उनकी आखा मे उत्सुकता थी आचार्यश्रीजी एव अनुगामी युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तप्रवरो के दर्शन की। वर्षो से सजोयी आशाए स्मृतिया आज सफल हो रही थीं। विशेष रूप से उनकी उत्सुकता के केन्द्रविन्दु थ चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा।

उदयपुर चरितनायक का जन्मस्थान था। वे यहा की धूल में खेले थे उछले थे और

लोटे थे। यहा के अन्न-जल से पले थे। यहा के निवासियो ने आपको शिशुरूप में सद्गृहस्थ के रूप मे एक व्यापारी के रूप मे देखा था। इसके साथ ही वे दृश्य भी उभर आये जब माता, पिता और पत्नी के देहावसान के पश्चात् उनका अपना कहने वाला कोई नहीं रहा था। उसके बाद दृश्य बदला और देखा था आगारी से अनगारी होते और फिर सयम साधना के साहजिक विकास को। आज वही पदार्पण कर रहे थे। कौन ऐसे स्वत प्राप्त अवसर का परित्याग कर सकता था ? कौन था ऐसा जो भोगविजयी योगी की तेजस्विता ओजस्विता और मधुरता के दर्शन से वचित रहना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो आकाक्षा और वाछा से विरत वैराग्यमूर्ति के प्रति वदनार्पण से विमुख होना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो जागरण के अग्रदूत और समता के शास्ता की समीपता का लोभ सवरण कर सकता था ?

शनै-शनै सीमान्त से सन्तों का नगर मे पदार्पण हुआ। राजमार्गों के दोनो ओर की अट्टालिकाओं पर उपस्थित दर्शनोत्सुक नगरजन सन्तपरिमण्डल के बीच चरितनायकजी को निहार कर निहाल हो गये और प्रतिभा से प्रभावित हो प्रमुदित हो उठे।

यह चातुर्मास धर्मपिपासु जनता के लिये कल्पवृक्ष-सा प्रतीत हुआ और उसकी चिरकालीन आकाक्षा पूरी हुई। चातुर्मास में तपस्वी मुनिश्री किशनलालजी म सा ने 41 एव तपस्वी मुनिश्री केसरीमलजी म सा ने गरम जल के आधार से 60 दिन की तपस्या की। श्रावक श्री गणेशलालजी गोगुन्दा निवासी ने 45 उपवास किये। इनके अतिरिक्त विभिन्न श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या पचखाण सामायिक आदि धर्मध्यान किया।

आचार्यश्रीजी म सा और चरितनायकजी के ज्ञानगम्भीर मगलमय प्रवचनों को श्रवणकर श्रोतागण अपूर्व आध्यात्मिक चेतना का अनुभव करते थ।

शनै-शनै चातुर्मास का समय समाप्त हुआ। उदयपुरवासियों ने भरे हुए हृदयो से विदाई दी और धर्मदेशना से आप्लावित करने के लिये सन्तो ने विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया।

एकता स्थायी न रही

चातुर्मास के दिनो में कॉन्फरेस के अध्यक्ष श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता सम्मेलन के प्रस्तावों के बारे मे जानकारी देने के लिये देशव्यापी प्रवास कर रहे थे। इसी सन्दर्भ मे आप उदयपुर भी पधारे और आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा से विचार-विमर्श किया।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा चरितनायकजी आदि

सन्त-मुनिराजो के साथ विहार कर नाथद्वारा आदि स्थानो म धर्मदेशना देते हुए निम्बाहेडा पधारे।

बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर के अवसर पर चतुर्विध सघ के प्रयत्नो से पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म सा के सम्प्रदाय की दोनो धाराओं का एकीकरण हो जाने से समी को सन्तोष और प्रसन्नता थी। लेकिन कुछ सन्तो ने इस एकता के प्रयास को शुद्ध हृदय से अगीकार करने की तैयारी नहीं बतलाई। वे सिर्फ दिखावे के रूप मे इसका पालन करना चाहते थे।

लेकिन पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा अपनी ओर से ऐसी कोई बात नहीं करना चाहते थे जिससे चतुर्विध सघ का प्रयास विफल बने। अत विभिन्न बातो को सुनकर भी मौन रखना उचित मानते थे।

पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा का देहावसान हो जाने से सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा दोनो धाराओ के आचार्य हो गये थे और समस्त सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्बन्धी रूपरेखा बनाने के लिये प्रमुख-प्रमुख सतो को चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मिती मगसिर शुक्ला 15 के आस-पास निम्बाहेड़ा में एकत्रित होने की सूचना करा दी थी।

आचार्यश्रीजी म सा तो निश्चित समय पर निम्बाहेडा पधार गये मगर सघ का दुर्दैव ही समझिये कि अनेक उलझनो के बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी न रह सकी और निम्बाहेडा में उस एकता की इतिश्री हो गई।

आचार्यश्रीजी म सा ने जब देख लिया कि एकता की भावना ही नहीं है तो ऐसी परिस्थिति मे कोई भी उपाय सफल नहीं हो सकेगा। अत निम्बाहेड़ा मे कल्पकाल तक विराजने के पश्चात् विहार करके अनेक स्थानों को फरसते हुए जावद पधारे।

जावद मे युवाचार्यपद-प्रदान महोत्सव

बृहत्साधु-सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्यश्रीजी म सा फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले चरितनायक प र मुनिश्री गणेशलालजी म सा को युवाचार्य पद एव मुनिश्री खूबचन्दजी म सा को उपाध्याय पद प्रदान करने के शुभ कार्य को किसी योग्य स्थान मे चतुर्विध सघ के समक्ष कर देना चाहते थे। इसके लिये अनेक स्थानो के श्रीसघों की विनतिया थीं। जावद श्रीसघ की भी इस शुभ कार्य को अपने प्रागण मे कराने के लिये पहले से ही आग्रहपूर्ण विनती हो रही थी और जब आचार्यश्रीजी म सा जावद पधारे तो पुन अपनी विनती को दोहराया।

पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय के लिये जावद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्यश्री शिवलालजी म सा आदि अनेक महापुरुषों के युवाचार्यपद-प्रदान महोत्सव एव आचार्यपद महोत्सव मनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार से सम्प्रदाय के इतिहास मे स्मरणीय इस जावद नगर के गौरव मे एक नया पृष्ठ जोडने के लिये आचार्यश्रीजी म सा ने युवाचार्य पद प्रदान महोत्सव अपने यहा कराने के लिये जावद श्रीसघ की विनती स्वीकार कर ली और स 1990 मिती फाल्गुन शुक्ला 3 को पदवी प्रदान करने का शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया।

इस स्वीकृति से जावद श्रीसघ का उत्साह द्विगुणित हो गया। चतुर्विध सघ में जिस मगल महोत्सव के होने की प्रतीक्षा की जा रही थी उसके जावद में होने के समाचार ज्ञातकर सभी को महान हर्ष हुआ और यथासमय अपनी धर्मकारिणी के भावी सघनायक के युवाचार्यपद और उपाध्यायपद महोत्सव के दर्शन एव श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये चारो तीर्थ –साधु, साध्वी श्रावक श्राविका– जावद में एकत्रित होने लगे।

फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को आचार्यश्रीजी म सा अनेक सत-मुनिराजों के साथ जावद पधारे। देश के इस छोर से उस छोर तक निवास करने वाले हजारों आबाल वृद्ध भाई बहिन जावद आने के लिये अपने-अपने स्थानों से चल पडे। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तक करीब 7000 व्यक्ति जावद आ चुके थे और साधु मुनिराजो की सख्या 30 एव महासतियो की सख्या 35 कुल 65 हो गई थी।

इस महोत्सव के अवसर पर विराजमान सन्तों व सतियों की शुभ नामावली इस प्रकार है–

1 पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा
2 मुनिश्री चादमलजी म सा
3 मुनिश्री हर्षचन्दजी म सा
4 मुनिश्री मागीलालजी म सा
5 मुनिश्री धूलचन्दजी म सा
6 मुनिश्री शातिलालजी म सा
7 मुनिश्री गणेशलालजी म सा (चरितनायक)
8 मुनिश्री सरदारमलजी म सा
9 मुनिश्री हजारीमलजी म सा
10 मुनिश्री पन्नालालजी म सा
11 मुनिश्री शोभालालजी म सा
12. मुनिश्री श्रीचन्दजी म सा
13 मुनिश्री मोतीलालजी म सा
14 मुनिश्री वक्तावरमलजी म सा
15 मुनिश्री गब्बूलालजी म सा

16 मुनिश्री कपूरचन्दजी म सा
17 मुनिश्री हेमराजजी म सा
18 मुनिश्री हर्षचन्दजी म सा
19 मुनिश्री हमीरमलजी म सा
20 मुनिश्री नन्दलालजी म सा
21 मुनिश्री भूरालालजी म सा
22 मुनिश्री जीवनमलजी म सा
23 मुनिश्री जेठमलजी म सा
24 मुनिश्री चादमलजी म सा
25 मुनिश्री सुगालचन्दजी म सा
26 मुनिश्री घासीलालजी म सा
27 मुनिश्री जवरीमलजी म सा
28 मुनिश्री चतुरसिहजी म सा
29 मुनिश्री अम्बालालजी म सा
30 मुनिश्री मोतीलालजी म सा

महासतियों मे श्री रगूजी म सा की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनीश्री आनन्दकवरजी म सा ठा 25 और श्री मोताजी म सा की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनीश्री केसरकवरजी म सा ठा 10।

फाल्गुन शुक्ला 3 को एक दिन शेष रह गया। जावद और जावद के आस-पास के क्षेत्रो मे एक आह्लादक वातावरण के दर्शन होते थे। फाल्गुन मास तो वैसे ही प्राकृतिक नवोन्मेष का प्रतीक माना जाता है जब हेमन्त से छुई-मुई बनी प्रकृति नये-नये पल्लवो के परिधानो से स्व वेषभूषा का साज सजा ऋतुराज वसन्त का स्वागत कर मानव-मन को उत्साह एव आनन्द से आप्लावित कर देती है। फाल्गुन नये का स्वागत करने का सनातन सत्य सिद्धान्त है और मानो इसी को चरितार्थ करने के लिये बाल-युवा-वृद्ध का भेद भूल आबाल वृद्ध नर नारी सामूहिक रूप में एकत्रित होकर युवाचार्य का अभिनन्दन करने उपस्थित हो गये थे। अब तो इतनी ही प्रतीक्षा हो रही थी कि कब ऊषा हो और स्वागत के लिये चल पडे। तैयारिया तत्परता से पूर्ण हो चुकी थीं। उत्साह का अतिरेक उत्सव में परिणत होने के लिये मचल रहा था। प्रबन्धक व्यवस्था का निरीक्षण करके अपनी त्रुटियों को सभाल रहे थे। लेकिन दर्शको की विचारधारा तो एक ही केन्द्रबिन्दु पर केन्द्रित थी कि इस शुभ महोत्सव का शुभारम्भ शीघ्र ही हो।

युवाचार्य पदवी प्रदान करने के लिये 11 से 1 बजे तक का समय शुभ माना गया था। परन्तु फाल्गुन शुक्ला 3 के सूर्योदय की स्वर्णिम प्रभा के साथ ही समारोह का श्रीगणेश हो गया। सात बजे श्री सुखदेवजी खूबचन्दजी के नोहरे से दीवानबहादुर सेठ श्री मोतीलालजी मूथा के नेतृत्व मे आबाल-वृद्ध श्रावक-श्राविकाओ का जुलूस निकला जो नगर की प्रदक्षिणा देता हुआ करीब 9 बजे पुन उसी स्थान पर लौट आया।

समारोह के लिये राजकीय शाला के प्रागण मे प्रबन्ध किया गया था। वहा सभी दर्शको के बैठने के लिये एक विशाल पडाल बनाया गया था। शनै -शनै दर्शकों का आगमन प्रारम्भ हुआ और करीब आध घण्टे में विशाल प्रागण भी उपस्थिति को देखकर छोटा-सा प्रतीत होने लगा। जिधर भी देखते उधर रग-बिरगे परिधानो से परिवेष्टित बाल युवा वृद्ध नर नारी दृष्टिगत होते थे। प्रतीत होता था कि ऋतुराज वसन्त ही स्वय स्वागतार्थ समुपस्थित हो गय हैं।

आचार्यश्री का युवाचार्यपद की योग्यता सम्बन्धी वक्तव्य

साढे दस बजे पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने चरितनायकजी आदि सन्त-मुनिराजो के सहित पदार्पण किया। जय ध्वनि के साथ दर्शको ने स्वागत किया।

ग्यारह बजते ही आचार्यश्रीजी एव समस्त सन्तो के समवेत स्वर द्वारा किये गये नवकार मन्त्र के पाठ एव भगवान शातिनाथ की प्रार्थना से समारोह का मुख्य कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। अनन्तर आचार्यश्रीजी ने सामयिक प्रवचन फरमाया। जिसमें आज के महोत्सव के कारणों पूर्वकालीन घटनाओं आदि के बारे में सकेत करते हुए आचार्य पद के महत्त्व का उल्लेख किया कि–

यहा भावी आचार्य का प्रसग है। इसलिये अरिहत सिद्ध उपाध्याय साधु के विषय में कुछ न कह कर आचार्य के विषय मे थोडा-सा कहता हूँ।

श्री स्थानाग सूत्र के तीसरे स्थान मे तीन प्रकार के आचार्य बतलाये गये हैं– कलाचार्य शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। उनमे से यहा धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है अत धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है। धर्माचार्य के भी नामाचार्य स्थापनाचार्य द्रव्याचार्य और भावाचार्य ये भेद हैं। भावाचार्य के लिये तो शास्त्र में यहाँ तक कहा है कि जो भावाचार्य है वह तीर्थंकर के समान है।

दीक्षा लेने-मात्र से ही कोई व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो जाता। धर्माचार्य पद चतुर्विध सघ द्वारा सस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध सघ ही जिस व्यक्ति को धर्माचार्य पद पर स्थापित कर दे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नहीं

हो सकता है। धर्मनीति मे बलात्कार सम्भव नहीं है। यहा कोई जबरदस्ती आचार्य नहीं बन सकता।

धर्माचार्य मे गीतार्थ अप्रमादी और सघ मे सारणा-वारणा-धारणा कराने में सावधान ये तीन गुण होने आवश्यक हैं। अर्थात् जो सूत्रार्थ का जानकार हो प्रमादरहित हो और सघ की सुव्यवस्था करने वाला हो। जिसमे ये तीन गुण नहीं हैं वह आचार्य नहीं हो सकता है।

स्वर्गीय पूज्यश्री लालजी म सा फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नम्र भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूजे की तरह हो। अर्थात् जैसे मिश्री का कूजा सिर पर मारने से तो सिर फोड देता है और मुह म रखने से मुह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिये कठोर-से-कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिय मुह मं रखी मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

इसके पश्चात् बृहत्साधु-सम्मलन अजमेर में पच-मुनियो के निर्णय का सकेत करते हुए फरमाया कि सातवे पाट पर मुनिश्री गणेशलालजी को युवाचार्य पद देने का ठहराव किया था और जिसका समर्थन समाज की कॉन्फरेस ने भी किया और कॉन्फरेस के अध्यक्ष एव सोलह सदस्य इस प्रकार 17 व्यक्तियो के शिष्टमण्डल ने भी व पूज्यश्री मुन्नालालजी म सा की स्वीकृति से यह ठहराव किया था कि युवाचार्य पद की चादर फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले करने का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार युवाचार्य पद के लिये मुनिश्री गणेशलालजी का चुनाव केवल मेरे या इसी सम्प्रदाय के सघ द्वारा ही नहीं हुआ वरन् भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध सघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज यह युवाचार्य की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

मुनिश्री खूबचन्दजी को उपाध्याय पद की चादर देने का भी निर्णय में उल्लेख है। इसके लिये उन्हे जावद आने की सूचना करवा दी गई थी और जावद सघ ने शिष्टमण्डल भेजकर श्री खूबचन्दजी म से जावद आने की प्रार्थना भी की थी। लेकिन वे नहीं आये इसलिये आज युवाचार्य पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।

विशिष्ट मुनिवरो द्वारा समर्थन व सहयोग

आचार्यश्रीजी म सा के प्रवचन-समाप्ति के बाद मुनिश्री चादमलजी म सा (बड़े) मुनिश्री हरखचन्दजी म सा और मुनिश्री पन्नालालजी म सा (सादड़ी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान व मुनिश्री गणेशलालजी म सा को युवाचार्य पद देने का समर्थन किया। अन्य उपस्थित सन्तों की ओर से मुनिश्री गब्बूलालजी म सा ने तथा महासतियाजी की ओर से

प्रवर्तनीश्री आनन्दकवरजी म सा व प्रवर्तनीश्री केशरकवरजी म सा ने समर्थन अनुमोदन करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की।

अनन्तर समारोह के लिये बाहर से आगत विभिन्न सन्त-सतियाजी श्रावक प्रमुखो और श्रावक सघो की शुभकामनाए व सन्देश रूप मे आये हुए पत्र व तार हितेच्छु मण्डल के सेक्रेटरी श्री बालचदजी श्रीश्रीमाल ने पढकर सुनाये।

इस प्रकार चतुर्विध सघ की अनुमोदना हो जाने के बाद चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म सा पूज्य आचार्यश्री जाहरलालजी म सा के सामने आज्ञा की प्रतीक्षा में विनीत शिष्य से खडे हुए। आचार्यश्रीजी ने नन्दीसूत्र का पाठ कर अपनी चादर उतार कर चरितनायक को ओढ़ाई और उपस्थित सन्तो ने चादर के कोने पकड़कर अपना सहयोग समर्थन व्यक्त किया।

उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सहस्ररश्मि सूर्य तमसावृत रजनी के गहन अन्धकार को भेदन करने का दायित्व लघु दीप को सौंप कर अपने अनिवर्चनीय सन्तोषानुभव मे लीन हो।

सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हुआ। दर्शको ने जय-जयकारों से आचार्यश्रीजी म सा युवाचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति प्रमोद व्यक्त करते हुए अभिनन्दन किया एव युवाचार्यश्री की वन्दना की। अनन्तर आचार्यश्रीजी म सा ने एक छोटा-सा प्रवचन फरमाया–

आचार्यश्री का नवयुवाचार्य को उद्‌बोधन

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा के सातवे पाट पर श्री गणेशलालजी आचार्य नियुक्त हुए हैं। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध सघ का कर्तव्य है कि इनके वचनो को 'सद्दहामि' 'पत्तयामि' 'रोइयामि' रूप मे स्वीकार करे। युवाचार्यजी का कर्तव्य है कि धर्ममार्ग मे सदा जाग्रत् रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध सघ को धर्ममार्ग मे प्रवृत्त कराते रहें। मुझे विश्वास है कि युवाचार्यजी इस पद की जिम्मेदारी दक्षतापूर्वक निभायेंगे। इनका नाम गण+ईश = गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है ये उत्तरोत्तर सघ की उन्नति करेंगे।

नवयुवाचार्यश्री का सहयोग-प्रार्थनात्मक वक्तव्य

आचार्यश्रीजी के प्रवचन की समाप्ति के अनन्तर युवाचार्यश्री ने फरमाया–

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छा गमयति
मुमुक्ष ससाराम्बुनिधितरि वत्तारय विमो।
महारागद्वेषादि कलहमल हारिन्नामृतदाम्
सुबुद्धि मह्य हे जिन । गणपते । देहि सततम्।।

मै परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे ससार का कल्याण करने वाली है। आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया है उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हूँ। मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन-भर आचार्यश्री द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तो की सेवा करता रहूँ। मेरी इस भावना के विपरीत पूज्य आचार्यश्री एव चतुर्विध सघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सौंपा है। इसलिये मैं नमतापूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ जिसके द्वारा मैं इस महान् बोझ को उठाने में समर्थ होऊ।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तो ने हाथ लगाकर मुझे जो चादर प्रदान की है वह चादर ततुओं की बनी हुई है। सस्कृत मे तन्तु का दूसरा नाम गुण है। अर्थात् यह चादर गुणमयी है। मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणो की भी प्राप्ति होगी जिससे मैं इसकी रक्षा करने मे समर्थ होऊ। यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने मे समर्थ है तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है। मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तो ने प्रदान की और चतुर्विध सघ ने इसका अनुमोदन किया है। इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध सघ भी इसका रक्षक है। चतुर्विध सघ ऐक्यबल से इसकी रक्षा करता रहेगा तभी इस चादर का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह सघ की उन्नति करने मे भी समर्थ होगा। मैं शासननायक और गुरु महाराज से यही याचनापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।

पद-समर्थन, आभार-विधि

अनन्तर समारोह-समापन विधि के रूप मे विभिन्न सत-मुनिराजों और महासतियाजी म. सा ने अपने-अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये और जावद श्रीसघ की ओर से इस शुभ समारोह हेतु पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की स्वीकृति के लिये कृतज्ञता-ज्ञापन एव श्रद्धाजलि समर्पण तथा विराजमान सन्त-सतियाजी म सा की सविधि वदना करते हुए आगत सज्जनो को धन्यवाद दिया गया और आगत सज्जनो की ओर से इस गौरवमयी अवसर का लाभ प्राप्त कराने के लिये जावद श्रीसघ का आभार मानने के बाद समारोह सम्पन्न हुआ। बीकानेर श्रीसघ के सज्जनो की ओर से प्रभावना बाटी गई।

आचार्यश्री की प्रेरणाए, बिहार भूकम्प सहायतार्थ कॉन्फरेस की तत्परता

इन्हीं दिनों बिहार प्रान्त मे भयकर भूकप आने के कारण हजारो व्यक्ति बेघरबार होकर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारो व्यक्ति अपने प्रियजनो के कालकवलित हो जाने से अनाथ हो गये थे और उनकी डबडबाई आखे अपने आश्रय एव अभय के लिये टुकुर टुकुर देख रही थीं। हृदय ऐसी करुणापूर्ण स्थिति की अवहेलना नहीं कर सकता था और अपने प्रवचन में आपश्री ने बिहार प्रान्त की कष्ट-कथा का सकेत कर श्रावकों को उनके कर्तव्य का स्मरण कराया।

इस कारुणिक प्रवचन के फलस्वरूप समारोह के उपलक्ष्य में श्री नथमलजी चोरडिया ने 'कॉन्फरेन्स भूकप रिलीफ फड' खोलने और उसमे यथाशक्ति सहायता दान देने के लिये विनम्र निवेदन किया। परिणामत क्षण-मात्र मे ही लगभग दो हजार रुपये एकत्रित हो गये और शनै-शनै एक बहुत बड़ी धनराशि सहायता कार्यों मे व्यय करने के लिये प्राप्त हुई।

युवाचार्यश्री का मालवा की ओर प्रस्थान

समारोह सोल्लास सम्पन्न हो चुका था। दर्शनार्थी सुविधानुसार श्रद्धेयों के मागलिक श्रवण-रूप पाथेय के साथ अपने-अपने गतव्य स्थाना की ओर प्रस्थान करने लगे।

आचार्यश्रीजी म सा ने कुछ दिन जावद विराजने के अनन्तर ठाणा 12 से बेगू की ओर तथा युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने ठाणा 6 से रामपुरा की ओर विहार किया। आचार्यश्रीजी म सा बेगू के निकटस्थ स्थानो को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए रामपुरा पधारे।

रतलाम चातुर्मास मे युवाचार्यश्री के प्रवचनो की धूम

चातुर्मास-काल निकट ही था और विभिन्न क्षेत्रो की विनतियों पर द्रव्यक्षेत्रादि की अनुकूलता से विचार करके युवाचार्यश्रीजी म सा का स 1991 का चातुर्मास रतलाम में निश्चित किया।

विक्रम स 1991 का चातुर्मास रतलाम में हुआ।

यद्यपि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के साथ आपश्री का पहले भी रतलाम मे पदार्पण हुआ था और स 1964 एव 1978 मे चातुर्मास-समय भी यहीं व्यतीत किया था। लेकिन युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् का यह प्रथम चातुर्मास होने से विशेष उल्लेखनीय है।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय के बड़े-बड़े महोत्सवो के मनाने से महनीय

एव पूज्यो के पादपद्मो से पवित्र प्रभावक प्रवचनो से प्रभावित पुण्यस्थली रतलाम – रत्नपुरी – मे युवाचार्य पद-प्राप्ति के पश्चात् चरितनायकजी का प्रथम पदार्पण रतलाम के लिये गौरव की बात थी। उसे सदैव पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की पाट-परम्परा के प्रमुखों की देशना-प्राप्ति मे अधिकतर प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

युवाचार्यश्री रामपुरा से मन्दसौर होते हुए वर्षावास हेतु यथासमय रतलाम पधार गये। जनता ने जय-जय घोषो से सरलात्मा सयमनिष्ठ सन्तशिरोमणि श्रमणोत्तम का ससम्मान स्वागत करते हुए नगर मे प्रवेश कराया। सन्त-मुनिराजो के साथ युवाचार्यश्री का प्रवचन-स्थल पर पदार्पण हुआ। प्रवचन प्रारम्भ हुए जिनमे विरासत से प्राप्त शाश्वत सत्य को हित-मित वाणी मे व्यक्त कर विवेक को विकसित करने की बलवती प्रेरणा दी।

प्रतिदिन होने वाले प्रवचनो से भविकजनो के भावो मे आत्मा का सगीत गुनगुनाने लगा। सत्य की शोध मे आत्मशक्ति केन्द्रित होने लगी। आत्ममथन से उद्भूत वाणी आध्यात्मिक लौकिक पारलौकिक प्रश्नो का सम्यक समाधान कर भौतिक पाश से प्रताड़ित मानवजाति को नई चेतना से अनुप्राणित करने लगी। जैनागमो के अगम्य आशय सरल सुबोध भाषा मे प्रतिपादित होने लगे।

भव्यात्माओं ने आपश्री की माधुर्यमयी वाणी का महत्त्व समझा। शुद्धि और सिद्धि जीवन का सत्य धर्म का मर्म मानव की मानवता और तत्त्वचिन्तन आदि की झाकिया प्राप्त कीं जो आज भी हमारे मनों मे गूज रही हैं कि आत्मा के सम्बन्ध में मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरमबिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है जहा से ससार के बदलते हुए भावो का अवलोकन किया जा सके। आत्म स्वरूप को न पहचानने के कारण ही आज ससार में इतना अज्ञानान्धकार व दुःख छाया हुआ है।

श्रोताओ मे दान, शील, तप-भाव की लहर

आपश्री की इस माधुर्यमयी अमृतवाणी का रसास्वादन करने के लिये दूर दूर के क्षेत्रों से प्रतिदिन सैकड़ो अबाल-वृद्धजनों का आगमन होता रहता था। आपके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक धार्मिक आचार विचार के श्रद्धालु भाई-बहिनो ने आत्मशुद्धि के लिये तपस्याए कीं। अनेको ने स्वधर्मी बन्धुओं के सहायतार्थ एव पारमार्थिक कार्यो में सहयोग देने के लिये यथाशक्ति दान दिया। जीवदया के कार्यों को सम्पन्न किया एव अपने-अपने जीवन का सयमित बनाने के लिये व्रत-पचखाण ग्रहण किये। साराश यह कि स्व पर कल्याण अथवा सर्वोदय के सन्देश को साक्षात् करने के लिये तन-मन-धन से सहयोग देने का निश्चय किया तथा जनसाधारण ने भी उपदेशो के श्रवण एव सयम वैराग्यमयी वाणी से प्रभावित होकर

मास-मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान पान का त्याग किया और यथाशक्य नियम प्रतिज्ञा लेकर जीवन को नैतिक बनाने का लाभ उठाया।

पर्युषण पर्व धर्माराधना एव सयम-साधना का सुअवसर है। अत इन पुण्य दिवसों में साधु-मुनिराजो ने विविध प्रकार की तपस्याए कीं एव श्रावक-श्राविकाओ ने भी बेला तेला पचौला अठाई आदि अनेक प्रकार की तपस्याए शक्त्यनुसार कीं। पूर के दिन बिना किसी प्रकार के बाह्य दिखावे के पारणे हुए और इन तपस्याओ की स्मृति मे सामाजिक सुधार एव निर्माण के कतिपय महत्त्वपूर्ण निश्चय किये कि जहा कन्या या वर का विक्रय हुआ हो उस विवाह में न तो सम्मिलित होना और न भोजन करना। मृत्यु-भोज प्रथा भी समाज में कम होती जा रही थी लेकिन कहीं-कहीं हो जाते थे अत उनको अपने-अपने क्षेत्रो में पूर्ण रूप से बन्द करने के लिये उनमे शामिल न होने की प्रतिज्ञाए तो सैकड़ो मे हुईं।

अस्पृश्यो के साथ समानता के व्यवहार की प्रेरणा

दलित जातियो के उत्थान और उनके नैतिक विकास के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की तरह आपश्री भी अपने प्रवचनो में सकेत करते थे। बहुत से अछूत समझे जाने वाले भाई-बहिन भी आपका प्रवचन सुनने आते थे। आप उनको जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझा कर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते और अपने को उच्च कहने वालो के प्रति सकेत करते कि मानव समाज का असीम उपकार करने वालों को अस्पृश्य घृणास्पद या नीच समझने वाले बन्धुओ ! आप अपने को उच्च वर्ग का कहते हो तो समझ में नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या ? क्या उनसे मानवता का व्यवहार न करना ही उच्चता है या मानवता के नाते अपने समान समझना उच्चता है ? याद रखो कि यह नीच कहलाने वाले आपके समान प्राणधारी हैं मनुष्य हैं इनकी इच्छा आकाक्षा अनुभूति आपके समान हैं। इन्हें धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो।

आपकी वाणी का उच्चवर्ग और अछूतो पर अनूठा प्रभाव पड़ता था और वे अपनी-अपनी कमियों या भूलो को सुधारने की ओर अभिमुख होते थे।

आपश्री के प्रवचनो का लाभ लेने के लिये सुदूर क्षेत्रो से आगत बन्धुओं की यथायोग्य व्यवस्था के लिये रतलाम सघ के भाई-बहिनो में अपूर्व उत्साह था। वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति इतने सजग थे कि प्रत्येक स्वधर्मी बन्धु के आतिथ्य सत्कार व्यवस्था आदि मे किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने देते थे। सभी का एक ही लक्ष्य था कि आगत सज्जनो को किसी प्रकार की परेशानी अनुभव न हो। वे जिस भावना को लेकर आये हैं उसमें किसी भी रूप से व्यवधान न आये। नवयुवको में इतना उत्साह था कि स्वधर्मीजनों की सेवा का प्रत्येक कार्य स्वय करने मे अपना गौरव मानते थे।

चातुर्मास-पूर्णाहुति विदाई का भावपूर्ण दृश्य

दिन के अनन्तर दिन आते रहे और चातुर्मास के चार मास ऐसे बीत गये मानो कल चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था और आज उसका अन्तिम दिन आ पहुचा है। यह अनुभव ही नहीं हुआ कि चार मास का समय कब सरक गया। लेकिन समय के सरकने के साथ चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् सन्तो के विहार का दिवस – मार्गशीर्ष कृष्णा 1 भी आ पहुचा। इस दिवस जिधर भी देखो उधर अपार जनमेदनी दृष्टिगोचर होती थी। स्थानीय सज्जनो के अतिरिक्त बाहर से आगत श्रावक-श्राविकाओ की सख्या करीब 5000 की रही होगी। प्रवचन-मडप मे सहस्रो जन थे। लेकिन उनके मुख-मण्डल पर प्रफुल्लता नहीं थी। कुछ उदासीनता झलक रही थी। मनो मे द्वन्द्व चल रहा था कि आज आपश्री का विहार होगा।

अनन्तर वह क्षण भी आ गया जब आपश्री ने सन्तो के साथ विहार किया। विदाई का दृश्य बड़ा ही भावूपर्ण था। उपस्थिति ने जयघोष किया लेकिन उसमे भरे मन की गूज थी। हजारो साथ-साथ पैदल चल दिये और सैकड़ो तो दो-दो चार-चार मील तक साथ रहे। आपश्री ने रतलाम के आस-पास के कुछ क्षेत्रो मे विहार कर पूज्यश्रीजी की सेवा मे पहुचने के लिये मेवाड की ओर विहार कर दिया।

मार्ग के जिन ग्रामो या नगरो मे आप पधारते थे कि वहा के और उनके निकटस्थ प्रदेशवासियो की ओर से दो-चार दिन विराज कर धर्मामृत का पान कराने की विनतिया होना प्रारम्भ हो जाता था। उनके मनो मे 'यस्य देवस्य गतव्य स देवो गृहमागत का भाव छलकने लगता था। आपश्री भी समयानुसार दो-चार दिन विराज कर धर्मोपदेश फरमाते थे और सीधी-सादी भाषा मे होने वाले आपश्री के उपदेश जनता के अन्तर्मन तक पैठ जाते थे।

आचार्यश्रीजी की सेवा मे जावरा-पदार्पण

आपश्री ने आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की सेवा मे उपस्थित होने के लिये मेवाउ की ओर विहार किया गया था। उधर आचार्यश्रीजी म सा का भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मालवा की ओर विहार हुआ और फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को जावरा पधारे। उसी समय चरितनायकजी मुनिश्री चादमलजी म सा (बड़े) आदि सन्तो सहित जावरा पधार गये और आचार्यश्रीजी के साथ ही नगर-प्रवेश किया। नगरवासियो ने बडे ही उत्साह और उमग से अगवानी की।

धर्मप्रवर्तको के पदार्पण से प्रत्येक स्थल तीर्थ के विरुद को प्राप्त कर लेता है। आचार्यश्रीजी युवाचार्यश्रीजी एव अन्यान्य ज्ञान ध्यान तप-सलीन सन्त-मुनिराजों के पदार्पण

से जावरा नगर तीर्थ बन गया। भव्य जीवो के उत्कर्ष के लिये वीतराग-वाणी की देशना मुखरित होने लगी और होली चातुर्मास तक सभी मुनिराजा का जावरा मे विराजना हुआ।

देवास का यशस्वी चातुर्मास

इन दिवसो के अन्तराल में मालवा और मेवाड के विभिन्न श्रीसघों का आचार्यश्रीजी एवं युवाचार्यश्रीजी के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु जावरा मे आगमन हुआ। उनमें देवास श्रीसघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्यश्रीजी म सा का आगामी चातुर्मास देवास मे होने की स्वीकृति फरमाई जाये। इससे पूर्व भी समय-समय पर देवास श्रीसघ का शिष्टमण्डल आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे अपनी विनती लेकर उपस्थित हुआ था और इस वार द्रव्य क्षेत्र काल भाव को देखते हुए आचार्यश्रीजी म सा ने युवाचार्यश्रीजी के आगामी चातुर्मास (स 1992) के लिये देवास श्रीसघ को स्वीकृति फरमाई।

मालवा और मेवाड के विभिन्न क्षेत्रो में जैनदर्शन आचार-विचार से समृद्ध धर्मोपदेश देते हुए और त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए चरितनायकजी स 1992 के चातुर्मासार्थ देवास पधारे।

देवास पर्वतीय उपत्यका के मध्य बसा हुआ हरा भरा धन धान्यसम्पन्न एक सुरम्य नगर है। चारो ओर शात वातावरण हरे-भरे पर्वतों और दूर दूर तक खेतों वनराजि से घिरा होने से तपोभूमि की कल्पना को साकार कर देता है। मध्यभारत के रजवाड़ों मे देवास भी एक राज्य था और वहा के राजा छत्रपति शिवाजी के वशज थे।

देवास श्रीसघ चरितनायकजी की प्रतिभा एव विद्वत्ता से पहले ही परिचित हो चुका था और चातुर्मास की स्वीकृति से उसका उत्साह द्विगुणित हो गया। भव्य स्वागत-समारोह के साथ श्रीसघ ने सन्तो का नगर प्रवेश कराया। सन्तों का समागम सत्पुरुषो के लिये प्रेरणादायक होता है।

प्रतिदिन आपके प्रवचन होते थे। घर आई इस प्रवचन-गगा की पवित्र धारा से पावन होने के लिये यथासमय श्रोताओ का समूह एकत्रित होता तत्त्वचर्चा के अवसर पर विद्वानों का जमघट लग जाता और त्याग प्रत्याख्यान करने वालो का तो एक मेला सा ही जुडा रहता था।

इसका लाभ सिर्फ साधारणजन ही लेते हो सो वात नहीं थी। श्रोताओ एव जिज्ञासुओं में राज्य के उच्च पदाधिकारियो की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रहती थी। आपके उपदेश आचार-विचार का विवेचन सबके लिये समान रूप से हितकर था एव उसे श्रवण करने का अधिकार भी सभी के लिये सुलभ था। किसी वर्ग या जाति विशेष तक उपदेश सीमित नहीं थे। जो भी आता उपदेश सुनता और अतर् में एक नई चेतना नई स्फूर्ति एव प्रेरणा प्राप्त कर लौटता था।

आपके प्रवचनो का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि अनेक राज्याधिकारिया सरदारो ने मद्य-मास आदि अभक्ष्य-भक्षण आदि के कुव्यसनो का त्याग कर दिया। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जहा पर भी प्रभावशाली और सहृदय सन्त विराजमान होते हैं वहा ऐसी बाते होना सहज ही हैं। मानव-मात्र मे उज्ज्वल आत्मा विद्यमान है और उसकी उज्ज्वलता का प्रकाशन भी करना चाहता है। लेकिन योग्य सयोग पाकर ही सफलता प्राप्त होती है।

आपश्री के देवास विराजने से बहुत उपकार हुए। दया पौषध उपवास आदि तपस्याए बडी सख्या मे हुईं। सक्षेप मे कहा जाये तो आपश्री का यह चातुर्मास सब प्रकार से सफल हुआ।

युवाचार्यश्री को सघ-व्यवस्था का समग्र भार सौंपने की घोषणा

चरितनायकजी का स 1992 का चातुर्मास देवास था और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा चातुर्मासार्थ रतलाम में विराजमान थे। इस प्रकार दो-दो सन्त-शिरोमणियो की धर्मदेशना से मालव-मेदनी म मधुरता का प्रसार हो रहा था। दोनो महान थे और उनके महान् उपकारी मनोहर मगल वचनो को सुनकर मुमुक्षु मानवीय आत्माओ को मनन-चिन्तन के लिये नित-नूतन अनुभूतिया प्राप्त होती थीं।

दोनो महान् अनुपमेय थे। यदि एक सूर्य था तो दूसरा चन्द्रमा। यदि एक सघ-शिरोमणि था तो दूसरा सयम-शिरोमणि। यदि एक तेजस्वी था तो दूसरा ओजस्वी। यदि एक सगठन का प्रस्तावक था तो दूसरा उसका प्रतीक। यदि एक दीपक था तो दूसरा उसकी दीप्ति। यदि एक जीवन का साहित्य था तो दूसरा उसका भाष्य। एक त्यागी था तो दूसरा सयमी। यदि एक सस्कृति का रक्षक था तो दूसरा उसका प्रसारक। इस प्रकार दोनों अपने-अपने रूप मे महान् थे और अपनी महानता से मालवमेदनी में मानवता की विवेचना करते हुए मुमुक्षुआ को प्रतिबोधित कर रहे थे।

चरितनायकजी युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे लेकिन अभी तक पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा स्वय सप्रदाय के चातुर्मास विहार प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था का भार सभाल रहे थे। आचार्यश्रीजी को युवाचार्यश्री की प्रतिमा प्रबन्धपटुता से सन्तोष था और चतुर्विध सघ की आशा के केन्द्रबिन्दु हो चुके थे। आचार्यश्री का मनोमथन चल रहा था कि अब युवाचार्यजी को सघीय व्यवस्था का दायित्व सौंपदू, जिससे सम्बन्धित अनुभव हो जायगा और जो भविष्य के लिये सुविधाजनक रहेगा।

आचार्यश्रीजी ने अपने विचारो को मूर्तरूप देने के लिये स 1992 आसोज कृष्णा 11

सोमवार दिनाक 23 सितम्बर 35 को प्रवचन के अवसर पर युवाचार्यश्री को अधिकार प्रदान करने की घोषणा करते हुए अपना अनुभव व्यक्त किया कि सघ-व्यवस्था सम्बन्धी जिम्मेदारी आते ही पूज्यश्री श्रीलालजी म सा स्वर्ग सिधार गये और अचानक सप्रदाय की समग्र व्यवस्था का भार मुझ पर आ पड़ा। तब मुझे अनुभव हुआ कि अगर पूज्यश्री की मौजूदगी मे ही मैं कार्य करने लगा होता तो यह अकस्मात् आया हुआ भार मुझे दुस्सह प्रतीत न होता। इसी अनुभव से मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि प्राप्त अवसर का उचित उपयोग कर लिया जाये। तदनुसार आज मैं चतुर्विध सघ की उपस्थिति मे सप्रदाय का कार्यभार जैसे दड प्रायश्चित्त देना चातुर्मास निश्चित करना सघ-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य कार्य आदि-आदि युवाचार्यश्री गणेशलालजी का सौंपता हूँ। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सघ व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंप देने का कोई यह आशय न समझे कि मैं व्याख्यान देना बन्द करके मौन ग्रहण कर लूगा। कुछ भाइया का ऐसा खयाल है लेकिन सघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपना अलग है और व्याख्यान देना अलग है।

अनन्तर आचार्यश्रीजी की आज्ञा से मुनिश्री जौहरीमलजी म सा ने युवाचार्यश्रीजी को सघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यभार सौंपने विषयक आचार्यश्रीजी का निम्नलिखित अधिकारपत्र पढकर सुनाया–

'सम्प्रदाय के आज्ञावर्ती सन्तश्री बडे प्यारचन्दजी म आदि सन्तो रगूजी महसतीजी की सप्रदाय की प्रवर्तनीजी आनन्दकवरजी आदि आज्ञावर्ती सतिया मोताजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनीजी केशरकवरजी महताबकवरजी आदि उनकी सब सतिया एव खेताजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनीजी राजकुवरजी आदि उनकी सब सतिया उसी तरह पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु सब श्रावको और श्राविकाओं से मेरी यह सूचना है कि–

1 अखिल भारतवर्षीय श्रीसघ और मैंने श्री गणेशलालजी को सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर स्थापित कर दिया है।

2 अब मैं अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हूँ कि मेरे पर सम्प्रदाय की जो जिम्मेदारी है अर्थात् सारणा-वारणा करना सब सन्त सतियों को आज्ञा में चलाना सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यो की योजना करना एव सम्प्रदाय सम्बन्धी नियमों का पालन करने के लिये सघ को प्रेरित करना आदि यह सब कार्यभार अब मैं युवाचार्यश्री गणेशलालजी के ऊपर रखता हूँ। अत आप चतुर्विध सघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख पूछताछ आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मैं आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्हीं को देता हूँ। केवल मेरी सेवा में जिन्हें उचित समझूगा उन सन्तों को अपने पास रखूगा और उन सन्तों पर मेरी देखरेख रहेगी।

3 आप श्रीसघ ने मरी आणा धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है वैसा ही युवाचार्यश्री गणेशलालजी का भी रखेगे यह मुझे पूर्ण विश्वास है। युवाचार्यश्री गणेशलालजी मी श्रीसघ के विश्वासपात्र हैं। अतएव श्रीसघ ने उन्हे युवाचार्य पद प्रदान किया है। इसलिये इस विषय मे मुझको विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

4 युवाचार्यश्री गणेशलालजी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजो के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्रीसघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्रीसघ सतुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवत महावीर स्वामी एव शासन श्रेयस्कर श्रीमन् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावो के तपोमय तेज-प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशलालजी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यश शरीर की रक्षा करत हुए शोभा वढायेंगे एसा मेरा ही नहीं श्रीसघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शाति शाति शाति

आचार्यश्रीजी की उक्त घाषणा से चतुर्विध सघ के हर्ष का पार न रहा। जहा-तहा धन्य धन्य की ध्वनि गूज उठी। आचार्यश्री ने रतलाम मे ही अपने दायित्वो का हस्तान्तरण करना क्यों उचित समझा ? इसके बार मे हमारा अनुमान है कि पूज्यश्री ने यहीं पर युवाचार्य पद के दायित्वों की प्राप्ति की थी और साधु की मर्यादा है कि जो वस्तु जहा से ली जाय या लाई जाये उसे कार्यपूर्ति के बाद उसी स्थान पर लौटा देना चाहिये। सम्भवत इसीलिये उन्होने अपने दायित्वो की धरोहर चतुर्विध सघ के समक्ष रतलाम मे लौटा देने का निर्णय किया हो।

युवाचार्यश्री के मुखमण्डल पर गभीरता झलक उठी

आचार्यश्रीजी के घोषणापत्र को लेकर रतलाम श्रीसघ के प्रमुख-प्रमुख अग्रणी श्रावक युवाचार्यश्रीजी की सेवा में देवास उपस्थित हुए और चतुर्विध सघ के समक्ष आचार्यश्रीजी की घोषणा के बारे में विस्तृत जानकारी दी। सभी ने इस के प्रति अपना उल्लास व्यक्त किया और गौरव माना।

घोषणा विषयक समाचारो को सुनकर युवाचार्यश्रीजी के मुखमण्डल पर गम्भीरता झलक उठी और अपनी शक्ति की तुलना करने लगे। लेकिन 'गुरोराज्ञा बलीयसी' के प्रति श्रद्धाशील आप आदेश को शिरोधार्य कर सयम साधना के साथ साथ सघ साधना के विस्तृत राजमार्ग पर विवेक एव पूर्व-महापुरुषो के अनुभवो के सहारे अग्रसर हुए।

देवास से ब्यावर की ओर

विविध प्रकार के धार्मिक समारोहों त्याग, तपस्याओं से आपश्री का देवास चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर देवास व देवास के निकटस्थ श्रीसघों ने भावभीनी विदाई दी। कुछ दिन आस-पास के क्षेत्रो मे विहार करने के पश्चात् आपने आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होने के लिये रतलाम की ओर विहार किया। आचार्यश्रीजी म सा रतलाम से विहार कर सैलाना पधारे। परन्तु वहा कान मे पीडा हो जाने से वापिस उनका रतलाम पदार्पण हुआ। उपचार से पीडा के शात हो जाने के पश्चात् युवाचार्यश्री आदि 14 सन्तों के साथ जावरा मदसौर निम्बाहेड़ा भीलवाड़ा गुलाबपुरा विजयनगर आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए ब्यावर पधारे।

आचार्यश्री हस्तीमलजी म सा से मिलन

उन्हीं दिनो पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा ने मारवाड़ मे विचरण करते हुए पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा से मिलने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार अजमेर आदि क्षेत्रो मे विहार करते हुए पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा चैत्र शुक्ला 5 मगलवार को प्रातःकाल जेठाणा पधारे और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा आदि ठाणा 11 भी ब्यावर से विहार कर उसी दिन शाम को जेठाणा पधार गये। वहा दोनों आचार्यों का मिलन हुआ और दो दिनो तक परस्पर तात्त्विक चर्चा-वार्त्ता एव सामूहिक प्रवचन होते रहे। इस सुअवसर का श्रावक श्राविकाओ ने लाभ उठाया और अनेक श्रीसघों की ओर से सम्मिलित चातुर्मास करने की विनतिया हुईं लेकिन पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की सेवा में काठियावाड के श्रीसघो की ओर से काठियावाड़ पधारने की विनती होने से और पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा द्वारा जयपुर फरसने का सकेत वहा के श्रीसघ को दिये जाने से सम्मिलित चातुर्मास होने की सभावना न बन सकी।

आचार्यश्री काठियावाड, युवाचार्यश्री मेवाड़ की ओर

काठियावाड के श्रीसघो की ओर से श्री चुन्नीलाल नागजीभाई वोरा राजकोट निवासी पुन उधर के श्रीसघो को सम्मिलित विनती लेकर पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की सेवा में उपस्थित हुए और उस ओर पदार्पण करने की स्वीकृति चाही। आचार्यश्रीजी ने युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तो से विचार विमर्श कर काठियावाड़ की ओर विहार करने का श्री वोराजी को आश्वासन दे दिया।

काठियावाड को लक्ष्य कर आचार्यश्रीजी म सा पाली आदि क्षेत्रो को फरसते हुए साडराव पधारे। यहा तक युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त भी साथ थे। युवाचार्यश्री ने काठियावाड की ओर पदार्पण कराने के लिये आचार्यश्रीजी म सा आदि ठा 9 को भावाजलि अर्पित करते हुए विदाई दी और वरद आशीर्वाद के रूप मे आचार्यश्रीजी म सा की मगलकामनाए प्राप्त कर आपश्री ने अन्य मुनिराजो के साथ मेवाड की ओर विहार कर दिया। उस समय का दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि धर्मदेशना का पीयूषवर्षी प्रवाह विशाल जनमेदनी को समृद्ध सम्पन्न बनाने के लिये दो धाराओ में प्रवाहित हो रहा है।

मेवाड की जनता मे धर्म-सस्कारो को सुदृढ किया

चरितनायकजी अपने विहार से मेवाड वसुन्धरा को महाप्रभु महावीर के महनीय उपदेशो से पवित्र करने लगे। मेवाड़ मे शौर्य था सरलता थी आत्मीयता थी लेकिन शिक्षा का यथेच्छ प्रसार न होने से वहा के निवासियो के आचार-विचार रूढियो और अन्धश्रद्धा से आवृत थे। कन्याविक्रय वरविक्रय बाल-वृद्ध-विवाह मृत्युभोज आदि-आदि कुरूढियो ने जन-जीवन को आक्रान्त कर रखा था। जनता इस तथ्य से अनभिज्ञ-सी थी कि ज्ञानविहीन धर्माचरण हाथी के स्नान की तरह है। अत आपश्री अपने प्रवचनो मे इन विषयो पर प्रभावक सकेत करते थे जिनका श्रोताओ पर प्रभाव पडता था और अब तक जहा व्यावहारिक जीवन को ही महत्त्व देने की स्थिति चल रही थी वहा लोगो ने व्यावहारिक जीवन मे धार्मिकता का मूल्याकन किया तथा धर्म को मुख्यता देने लगे।

इस प्रकार मेवाड की जनमेदनी को जीवन की यथार्थता से परिचित कराते चरितनायकजी ने स 1993 के चातुर्मास हेतु मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर में पदार्पण किया और आबाल वृद्ध नगरवासियो ने अगवानी करके अपने को धन्य माना।

चातुर्मास-समय मे आपके उपदेशो से जनता मे धर्म नीति और सत्-आचार-विचारों के सस्कारो का सिचन हुआ और आपश्री नित-नूतन शास्त्रो का अवलोकन करते विविध दार्शनिक विचारो का तुलनात्मक शैली से अध्ययन कर विवेचन की गहराई तक पहुचते हुए 'ज्ञान ध्यान-तपोरत तपस्वी स प्रशस्यते' की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे।

आपश्री की धर्मदेशना का लाभ उठाने के लिये श्रोताओं की उपस्थिति काफी सख्या मे होती थी एव प्रतिमा और आत्मानुभूति से समृद्ध आपश्री की वाणी ने श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और आपका उपदेश सुनने के लिये लोगों मे उत्सुकता बनी रहती थी।

पूर्वभव का सस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कहिये चरितनायकजी की यशदुन्दुभी चतुर्दिक मे गूज उठी। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों न यावज्जीवन

के लिये कुव्यसनों का त्याग कर दिया। जनसाधारण ही नहीं किन्तु राज्य के उच्च से उच्च पदाधिकारी भी आपकी प्रवचन-वाणी-श्रवण का अवसर नहीं चूकते थे। आप जो कुछ भी कहते थे वह जनता की भाषा मे जनता के लिये था और जो कहते थे तदनुसार करनी में भी उतारते थे अत सभी को अपनी ही जीवनोपयोगी बात लगती थी। ज्ञान और सयम का सुमेल सोने में सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। इसी कारण राजा और रक समान रूप से आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

सघ-व्यवस्थापक की दृष्टि से आप युवा थे इसीलिये आप युवाचार्य पद पर विभूषित माने जाते थे लेकिन अनुभव ज्ञान चिन्तन मनन की दृष्टि से प्रौढ थे। आपकी इस प्रौढ़ता की परीक्षा के लिये अनेक व्यक्ति विविध विचारो दृष्टिकोणो को लेकर सेवा मे उपस्थित होते थे अत बच्चों को बच्चों की बोली मे युवकों को युवको की शैली मे और बूढों को बूढों की भाषा मे समझाकर समाधान करते थे। एतदर्थ सभी आभार मानते हुए श्रद्धावनत होते और अपने को धन्य मानते थे।

चातुर्मास आशातीत सफलता से समाप्त हुआ। लेकिन इसके पूर्व ही विभिन्न श्रीसघों की ओर से अपने अपने क्षेत्रों में पधारने आगामी वर्ष का वर्षावास बिताने के लिये विनतिया होनी प्रारम्भ हो गई थीं। लकिन ऐसा सम्भव नहीं था कि सभी को स्वीकृति दी जा सके। अत आप उनके बारे मे मौन रहकर समयानुसार फरसने के विचारो में मग्न रहते थे। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर उदयपुर-निवासियो ने भरे हुए हृदयो से आपको विदाई दी।

राजस्थान के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बीकानेर मे पदार्पण

श्रद्धेय आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की भावना थी कि युवाचार्यश्री उन सभी क्षेत्रो का विहार कर ले जिनमे श्रद्धालु श्रावको की गृहसख्या अधिक है। इस भावनानुसार आपश्री ने मेवाड़ मारवाड़ के विभिन्न स्थान स्पर्शे।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा के श्रद्धालु श्रावकों की सख्या मारवाड़ मे अधिक है और बीकानेर उनका प्रमुख केन्द्र माना जाता है। युवाचार्य पदवी-प्राप्ति के पश्चात् अभी तक बीकानेर की ओर आपका पदार्पण नहीं हुआ था और वहा के श्रीसघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्यश्रीजी बीकानेर मे चातुर्मास-काल मे विराज कर दर्शन प्रवचन श्रवण सेवा भक्ति का सुअवसर प्रदान करे। इसके लिये समय समय पर आचार्यश्रीजी म सा एव आपश्री की सेवा में विनती लेकर बीकानेर सघ उपस्थित होता रहा था और सौभाग्य से उदयपुर चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आपश्री का मारवाड़ की ओर विहार हुआ।

मारवाड़ की ओर विहार होने से बीकानेर श्रीसघ को आशा बधने लगी कि बीकानेर को

आपके चातुर्मास का सौभाग्य अवश्य ही प्राप्त होगा और प्रत्येक स्थान पर पुन -पुन अपनी विनती आपश्री की सेवा मे प्रस्तुत की। सोजत बिलाडा बडलु, कुचेरा आदि क्षेत्रा को पावन करते हुए आपश्री ने चैत्र शुक्ला 14 को नागौर पदार्पण किया। मार्ग म आपके उपदेशों से काफी त्याग-प्रत्याख्यान हुए। दीक्षा पर्याय मे ज्येष्ठ होते हुए भी बडे चाँदमलजी महाराज सर्वत्र आपके साथ रहे तथा शासन-प्रभावना में सहभागिता निभाते रहे। बीकानेर की प्रबल भावना के फलस्वरूप स 1994 का चातुर्मास बीकानेर म करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस स्वीकृति से बीकानेर और आस-पास के श्रावक-श्राविकाओ के हर्ष का पार न रहा।

यद्यपि आपश्री का आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के साथ बीकानेर मे पदार्पण हो चुका था लेकिन उस समय आपकी विद्वत्ता महत्ता प्रभावकता और तेजस्विता का समग परिचय श्रोताओ को प्राप्त नहीं हो सका था। यद्यपि आपके यशसौरभ से यह क्षेत्र व्याप्त था लेकिन सौरभ के केन्द्र को निकट से देखने का यह प्रथम अवसर ही प्राप्त हो रहा था। यही कारण था कि जब सन्तमण्डल सहित आपश्री ने बीकानेर मण्डल के श्रद्धाशील भव्य भावुक भक्त आबाल-वृद्ध नर-नारीगण आपके दर्शन एव अगवानी के लिये उमड पड़े।

शनै -शनै आपके चरण बीकानेर की ओर बढ रहे थे लेकिन अब तो बीकानेर और आपश्री के बीच क्षेत्रकृत दूरी ही शेष रह गई थी। यदि आप जगल मे विश्राम कर लेते थे तो वहीं बीकानेर बस जाता था कोई गाव पड़ता तो बीकानेर बन जाता और कोई चौराहा पड़ता तो बीकानेर दिखता। जहा भी देखो वहीं बीकानेरवासी ही दिखलाई देते थे। बीकानेर के एक होने पर भी 'एकोऽह बहुस्याम्' की प्रतीति कराता था।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट आ गया था और आपश्री बीकानेर के निकटस्थ देशनोक ग्राम मे पधारे तो वहा के वासियों ने अन्यान्य स्थानो से आगत सज्जनो के साथ बहुत दूर तक सामने जाकर अगवानी करते हुए स्वागत किया और अपनी भावना को सफल बनाया। युवाचार्यश्री यहा 13 ठाणो से विराजे। जेठ का महीना और प्रचण्ड गर्मी ! फिर भी व्याख्यानो मे जनता उमड़ती थी। त्याग-प्रत्याख्यान भी भारी मात्रा मे हुए।

देशनोक से विहार कर आपश्री बीकानेर पधारे। नगर की सीमा पर स्थानीय गणमान्य सज्जनों के साथ जनसाधारण ने स्वागत किया। जिधर देखो उधर ही चहल-पहल दृष्टिगोचर होती थी। वातावरण मे रमणीयता प्रतीत होती थी। उस समय का वर्णन कल्पनागम्य है। लेकिन उसके लिये इतना ही सकेत पर्याप्त है कि उमगो से महकते मानव-मनो में माननीय के आगमन से असीम उत्साह था जिसे कोई जय-जय के घोषों से व्यक्त कर रहा था तो कोई गीतो के सुर मे कोई वदन से अभिनन्दन करता तो कोई चरणा मे नमन करता। बालकों ने तो अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति का एक अनूठा ही तरीका अपनाया था। वे पक्तिबद्ध टोली

के रूप मे आगे-आगे चलते हुए अपने सलोने स्वरो से दिग्मण्डल को मुखरित कर रहे थे

हम लाये हैं इन पूज्य को अपने ही प्रेम से।
पायेंगे धर्मलाभ को सुन लो ये ध्यान से।

उनके इस कार्य से प्रेरणा लेकर जन-समूह ने एक जुलूस का रूप ले लिया। जिसमें सबसे आगे उछलता-कूदता शिशुसमूह मध्य मे सन्त-मण्डल और पश्चात् श्रावक श्राविकाओं का समूह था।

नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ जुलूस चातुर्मास-काल मे सन्ता के विश्रामार्थ विराजने वाले स्थान पर आया और प्रवचन-सभा के रूप मे परिर्वर्तित हो गया एव चरितनायकजी ने प्रासगिक प्रवचन फरमाया। जिसके भाव थे–

जैन सिद्धान्तों के सक्रिय आचरण का उपेदश

मित्रो ! तुम क्षत्रिय वशज हो। वीर क्षत्रिय वश ने अपने कर्तव्य मे रत रहकर केवल अपने ही वश का नहीं वरन् चारा ही आश्रमो को देदीप्यमान कर दिया था। दवाधिदेव तीर्थंकरों ने क्षत्रिय वश मे जन्म लिया था और आप उनके ही अनुयायी हो। क्षत्रिय त्याग में विश्वास करता है। उसका त्याग अनेक रूपो में प्रगट होता है। दीन-दुःखी की आततायी से रक्षा के लिये अपना सर्वस्व त्याग करने मे उसे झिझक नहीं होती है। त्याग का साक्षात् रूप उपस्थित कर देना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा होती है।

लेकिन आज उन क्षत्रिय वशजो में बनियापन दिख रहा है। त्याग का स्थान सग्रह ने ले लिया है और उस पर ममत्व भाव रखकर स्वामित्व जता रहा है। इस कारण अनके बुराइया घर करती जा रही हैं। दुनिया मे चारों ओर देखा जाता है कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व होने से सैकडो प्रकार से कलह एय झगड़ो की उत्पत्ति होती रहती है। इस सारी विषमता और कलुषिता से त्राण पाने एव समाज मे सुव्यवस्था के साथ आत्मा की उन्नति करने का अबाध-मार्ग है असग्रह भाव– भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित अपरिग्रहवाद जिसकी ओर आप लोगों का ध्यान जागे और उस मार्ग पर चलें तथा इसका प्रकाश सारे ससार में फैलाए। यह आज के युग की माग है।

आप एक ओर बडी-बड़ी तपस्याए करते हैं और दूसरी ओर परिग्रह के पीछे दौड़ते रहते हैं। तो क्या यह उस तपस्या को लज्जित करना नहीं है ? निष्परिग्रही महावीर के अनुयायियों का यह कार्य क्या स्वय महावीर की आज्ञा को ठुकराने जैसा कार्य नहीं है ?

यदि त्याग और अपरिगह के क्रियात्मक रूप को आप अपने जीवन मे उतारें तो आप

अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे ही साथ ही सारी दुनिया मे एक नई रोशनी नया आदर्श उपस्थित कर सकेगे। क्योकि अपरिग्रह का सिद्धान्त चारित्र एव सयम की आधारशिला पर नागरिकों को खड़ा करके पनपने का अवकाश देगा।

इसलिये मैं आपस कहता हूँ कि आप अपरिग्रही या परिग्रह-परिमाणव्रती बनिये। अपने बनियापन के विचारो को अपने हृदय से निकाल दो। आपकी धमनियो मे वही शुद्ध क्षत्रिय रक्त दौड़ रहा है जो त्याग को अपना आदर्श मानता है। उठो ! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा ? महावीर के अनुयायी कहलाने के गौरवान्वित नाम के गौरव को और अधिक बढाइये। यह बाहर का वैभव बाहर और अन्दर दोनों को डुबाने वाला है। अत अन्दर के वैभव को बढाइये और उसको समृद्ध कीजिये और उस रोशनी की मशाल फिर से ऊपर उठाइये तो आप देखेगे कि आपकी उन्नति का निष्कटक पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

वस्त्राभूषणों से अलकृत बाह्य वैभव से समृद्ध हवेलियो के निवासी श्रावक-श्राविकाआ ने सयम तप त्याग के आतरिक वैभव से अलकृत ज्ञानसमृद्ध सन्त के प्रभावक अर्थगम्भीर प्रवचन को सुना और मनोमथन द्वारा तदनुसार जीवन मे परिवर्तन लाने का निर्णय किया। क्योकि मानवीय जीवन का उद्देश्य अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ते जाना है और चरम विकास के रूप मे एक दिन स्वय के जीवन को परम प्रकाशमय बना लेना है। यदि उच्चता की ओर बढना है और भारहीन होना है तो इस भौतिक भार का जिसे अपना मान रखा है अवश्य परित्याग कर देना चाहिये।

योग्य क्षेत्र और उचित समय पर बोये गये बीज अकुरित होकर जैसे पल्लवित होते हैं वैसे ही इन सन्तप्रवर के ये वाणी-बीज भी यथासमय अकुरित हुए और कालान्तर मे अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने वैभव को शक्त्यनुसार मर्यादित करने के नियम व्रत प्रतिज्ञा लिए।

बीकानेर विवेक वैभव से भी समृद्ध है। उसने प्रथम दिन के प्रथम प्रवचन में ही आपश्री की प्रतिभा को परख लिया और प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा कि युवाचार्यश्री यथानाम तथागुण के प्रतीक बन योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य सिद्ध होगे। उसने परखा था कि आप श्रमण धर्म के साक्षात् रूप हैं। उसने आप मे देखे थे श्रमणतत्त्व के तीनों रूप--श्रमण समन और शमन। आप आन्तरिक शत्रुओ-- कर्मों एव मनोविकारो को नष्ट करने हेतु श्रमसाधना-तपसाधना के लिये सदैव तत्पर रहते थे। आपका आचार आत्मवत् सर्वभूतेषु' का साकार रूप था और कुविचारों और कुवृत्तियो का शमन करने की साधना के प्रति सतत जाग्रत् थे।

जहा साधु-सन्तो महापुरुषो का आगमन होता है तो उनके आचार-विचार का प्रभाव अन्यान्य साधारण जनो पर भी पड़ता है और तदनुरूप जीवन व्यवहार बनाने की प्रेरणा लेकर वे साधना में रत हो जाते हैं। आपश्री प्रतिदिन प्रवचनों मे आगमानुकूल विवेचन के साथ

राष्ट्रधर्म नारी-जागरण हिसाजनक व्यापारो का निषेध सादगी और सरलता आदि विषयों पर अधिकारपूर्ण भाषा में प्रकाश डालते थे। जैन सिद्धान्तों एव आगम साहित्य की सर्वांगीणता के बारे म आपकी धारणा बहुत उच्च थी और उसके अध्ययन-मनन पर विशेष भार दिया करते थे। एतद्-विषयक आपके विचारो को समझने के लिये समय-समय पर हुए प्रवचनों में से सम्बन्धित एव महत्त्वपूर्ण अश सगृहीत करके यहा प्रस्तुत कर रहे हैं।

तात्त्विक प्रवचनो का सार

जिन महापुरुषो ने अपने जीवन मे उच्चतम विकास प्राप्त किया है उन्होने अपने ज्ञान और अनुभव के सफल सहयोग से उत्थान की जो ठोस बातें बताईं वे ही आज हमारे सामने शास्त्रोक्त सिद्धान्तो के रूप मे उपस्थित हैं। शास्त्रो की पूर्ण प्रामाणिकता वास्तविकता एव वैज्ञानिकता मे अटल व अटूट विश्वास करने का यही कारण है कि इनके निर्माताओं का ज्ञान व अनुभव उतना ही विशाल सजग एव सुदृढ था। इसीलिये हजारों वर्ष बाद भी वह शास्त्रोक्त ज्ञान हमें हमारे घनान्धकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करने मे ज्योतिर्मय प्रेरणा प्रदान करता रहता है।

प्रधानतया धार्मिक सिद्धान्तो का लक्ष्य आत्मविकास करना होता है इसलिये ज्ञान वैराग्य तप आदि वैयक्तिक साधना के साधनो का इसमें सविस्तार वर्णन भी होता है। इन सिद्धान्तों की कसौटी भी यही है कि कौन सिद्धान्त विकास के लिये कितनी बलवती प्रेरणा दे सकता है और पतन के समय उसे जाग्रत् कर सत्य-मार्ग पर ले आता है। इस दृष्टि से मैं कहना चाहूँगा कि जैन सिद्धान्त व्यक्ति के हृदयपटल की सूक्ष्म गहराइयों में प्रवेश करते हैं और उसे अपने पतन से सावधान करते हुए उत्थान की ओर अग्रसर बनाते हैं। इन विकासोन्मुखी परिस्थितिया का जैन शास्त्रों म बड़ी ही सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है।

जैन शास्त्रों म ऐसी किसी भी क्रिया का विधान नहीं किया है जिसमे किसी भी रूप मे मानसिक वाचिक या कायिक हिसा होती हो। द्रव्ययज्ञ द्रव्यपूजा आदि का तो भगवान महावीर ने खडन किया है। शुद्ध चैतन्य के ध्यानस्वरूप भावयज्ञ और भावपूजा का ही विधान सर्वत्र पाया जाता है। आत्म-विकासहित गति करने की विभिन्न श्रेणिया हमारे यहा कायम की गई हैं और तदनुसार ही विवेचन किया गया है।

जीव या आत्मद्रव्य का वर्णन जैन दर्शन मे अति स्पष्ट एव असदिग्ध रूप से किया गया है। जीव की पर्याय-- अवस्थाए बदलती रहती हैं अत उसका पूर्वपर्याय की दृष्टि से विनाश होता है व नवीन पर्याय की दृष्टि से नई उत्पत्ति परन्तु इन पर्यायो मे परिवर्तन के बावजूद भी अपने रूप में आत्मा ध्रौव्य रहता है।

इसके सिवाय आत्मा मे अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तसुख व अनन्तशक्ति का अपार तेज रहा हुआ है किन्तु वह तेज उसी प्रकार ढका हुआ है जिस प्रकार काले बादलो से ढक जाने पर सूर्य का ज्वलत प्रकाश भी छिप-सा जाता है। आत्मा की इन तेजोमयी किरणो पर कर्ममैल की परते चढ़ी हुई हैं। ये कर्म नित्य नहीं हैं। आत्मा जैसे कार्य करता है तदनुरूप ही कर्मो का बध होता है। पूर्वकर्मो की निर्जरा व नये कर्मो के बन्ध होने का यह क्रम इस सृष्टि मे चलता ही रहता है जब तक सारे कर्म खपाकर, आगे के बन्ध को रोककर आत्मा का सर्वोच्च उत्थान प्राप्त नही कर लिया जाता।

जैन धर्म मे किसी भी पदार्थ या तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिये नयवाद व स्याद्वाद की दृष्टि से देखना होता है क्योंकि इनकी सहायता के बिना उसके विभिन्न पहलू नजर नहीं आयेगे तथा प्राप्त ज्ञान सिर्फ ऐकान्तिक दृष्टिकोण वाला होगा।

जैन दर्शन ज्ञान का एक विशाल भण्डार है उसकी मैं आपको सिर्फ एक झलक मात्र दिखा सका हूँ और इसके बाद मैं आशा करू कि विचक्षण श्रोता इसके गहन अध्ययन और तत्त्व-चिन्तन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करगे।

राजनीतिक नेताओ को सत्प्रेरणा और अलिप्तता

इसी चातुर्मास समय में तत्कालीन बीकानेर नरेश सर गगासिहजी बहादुर की स्वर्णजयन्ती मनाई जा रही थी। इन दिनो बीकानेर मे भौतिक वैभव की रगरेलिया यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती थीं जिनको देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते और दर्शनीय दृश्य देखकर प्रसन्न होते थे। इस समारोह मे सम्मिलित होने के लिये अनेक राज्यों के शासक राज्याधिकारी भी आमन्त्रित किये गये थे। उनमे से बहुत-से आपश्री के प्रभावक प्रवचनो की प्रसिद्धि सुनकर प्रवचन-श्रवण करने आये और उन्होने धर्मानुमोदित राजनीति राष्ट्रनीति से सम्बन्धित आपके स्पष्ट विचारो का लाभ लिया।

उनमें से कुछ एक तो अपनी मनोभावना आपश्री के समक्ष निवेदन कर देते थे। लेकिन आप सुनकर मौन रहते और मुख मण्डल पर अभिमान की एक रेखा भी परिलक्षित नहीं होती थी। प्राय देखा जाता है कि कुछ-एक साधुओ म राजनीतिक नेताओ या समाज के विशिष्ट व्यक्तिया से मिलने की उत्सुकता रहती है और मिलने पर अभिमान आदि की वृत्तियाँ बढ जाती हैं। इन वृत्तियो के फलस्वरूप विविध प्रकार के उत्सव महोत्सव करने-कराने देखने आदि की भी कामना होने लगती है। लेकिन चरितनायकजी का इन सब बातो से लेशमात्र भी लगाव नहीं था। न तो उन्हे किसी से मिलने की आकाक्षा थी और न किसी प्रकार के समारोह आदि म अभिरुचि रखते थे। सिर्फ जलकमलवत् जीवन की धारा प्रवाहित होती थी।

यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं वरन् आपके साथ के अन्य सन्त-मुनिराजो की भी थी। वीतराग-मार्गानुगामी तो राग-प्रवृत्तियो से विलग ही रहते हैं। यह एक तत्कालीन प्रसग से स्पष्ट हो जाता है-

बीकानेर नरेश के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के प्रसग मे विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर बीकानेर नरेश सर गगासिहजी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली जिसमें राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झाकिया थीं। इनको देखने के लिये हजारो दर्शक नगर के राजमार्गों पर खडे थे। प्रत्येक घर के द्वार, चौराहे अट्टालिकाए दर्शको से अटे पड़े थे। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान– श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया कोटडी– के सामने से गुजरा तब न तो आप में इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तो मे भी। हर्ष-विषाद में समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन मे ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी का सासारिक वासनाओ की ओर प्रेरित करते हैं वहीं विरागी की वृत्ति में विकृति लाने मे सक्षम नहीं हो सकते हैं।

बीकानेर चातुर्मास की पूर्णाहुति

चातुर्मास-काल मे सन्तों और श्रावक-श्राविकाओं ने ज्ञान ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्याए कीं। श्रावकवर्ग ने जीवदया स्वधर्मी-सहयोग आदि लोकोपकारी कार्यो मे दान दिया एव धर्म-प्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बडे ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारो की प्रभावना से पूर्ण हुआ। उपदेशामृत से तृप्त मानवों को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मन मे यही लालसा थी कि हम उपदेश श्रवण करते रहें और धार्मिक आचार विचार साधना से आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर बढते रहें। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवेति, चरैवेति के आदर्श में गर्भित है। जनकल्याण की भावना ही सन्तों को विहारपथ में गतिमान रहने को प्रेरित करती रहती है।

थली-प्रदेश की ओर विहार तथा धर्म-प्रचार

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया। वर्ष का एक तृतीयाश– चारमाह का समय– तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानों सन्तों का आगमन

कल ही हुआ। किसी को भी समय की इस गति का भान ही नहीं हुआ था कि एक एक दिन करके चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजो की विहार-वेला आ गई। लेकिन समय अपने परिणमन मे अपेक्षा की आकाक्षा न रखते हुए बहता जाता है। यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्तता प्राप्त कर लेता है।

आज सन्तशिरोमणि सघाधिपति का विहार है इस विचार से सभी के मन मे विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था। सभी अपने-अपने मन की कहने के लिय मूक थे और फिर कहे भी तो कहें क्या ? सभी के एक भाव थे एक बोल थे और एक से विचार का ताना-बाना बुना जा रहा था।

आखिर सन्तो के विहार का क्षण आ गया। सभी न भावोर्मियो की विदाई-भेट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रो को फरसते हुए थली-प्रदेश की ओर विहार किया। थली-प्रदेश ने आपके पुन आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा। वह आपश्री से पूर्व एव पूर्ण परिचित था। वहाँ के निवासियो ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओं को सबल बनाया था।

थली-प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री ने पुन सरलहृदय मानवो मे श्रद्धा के बीज बोये जो धर्म को समझना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानों का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे। अनेक सार्वजनिक व्याख्यानो मे आपने जैन धर्म के सार्वभौम स्वरूप को अभिव्यक्त किया।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनों का प्रभाव देखकर बहुत-से ईर्ष्यालुजन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तो को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परीषह ही साधक की कसौटी होती है और उनके उपस्थित होने पर साधुता मे नया निखार आता है। अतएव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढ़ाने में ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता शातिप्रियता धीरता एव तत्त्वनिरूपण-शैली से वहा की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एव सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियो के नगर जयपुर मे

इस प्रकार विविध परीषहो को सहते हुए विरोध का परिहार और भ्रम का विध्वस करते हुए आपश्री का स 1995 के चातुर्मास हेतु जयपुर नगर में पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियो का नगर है। वहा अच्छे-अच्छे पारखी बसते हैं जो अपनी एक नजर मे ही अच्छो-अच्छो को परख लते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्हीं पारखियों के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं वरन् आपके साथ के अन्य सन्त मुनिराजो की भी थी। वीतराग-मार्गानुगामी तो राग-प्रवृत्तियो से विलग ही रहते हैं। यह एक तत्कालीन प्रसग से स्पष्ट हो जाता है-

बीकानेर नरेश के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के प्रसग मे विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर बीकानेर नरेश सर गगासिहजी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली जिसमे राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झाकिया थीं। इनको देखने के लिये हजारो दर्शक नगर के राजमार्गों पर खड़े थे। प्रत्येक घर के द्वार चौराहे अट्टालिकाए दर्शकों से अटे पडे थे। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान– श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया कोटड़ी– के सामने से गुजरा तब न तो आप में इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तो में भी। हर्ष-विषाद में समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन में ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी को सासारिक वासनाओं की ओर प्रेरित करते हैं वहीं विरागी की वृत्ति मे विकृति लाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

बीकानेर चातुर्मास की पूर्णाहुति

चातुर्मास काल मे सन्तों और श्रावक-श्राविकाओं ने ज्ञान ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्याए कीं। श्रावकवर्ग ने जीवदया स्वधर्मी-सहयोग आदि लोकोपकारी कार्यों में दान दिया एव धर्म प्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बड़े ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारों की प्रभावना से पूर्ण हुआ। उपेदशामृत से तृप्त मानवो को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मन में यही लालसा थी कि हम उपेदश श्रवण करते रहे और धार्मिक आचार विचार साधना से आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर बढते रहे। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवेति चरैवेति के आदर्श मे गर्भित है। जनकल्याण की भावना ही सन्तो को विहारपथ में गतिमान रहने को प्रेरित करती रहती है।

थली-प्रदेश की ओर विहार तथा धर्म-प्रचार

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया। वर्ष का एक तृतीयाश– चारमाह का समय– तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानो सन्तो का आगमन

कल ही हुआ। किसी को भी समय की इस गति का भान ही नहीं हुआ था कि एक-एक दिन करके चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजो की विहार-वेला आ गई। लेकिन समय अपने परिणमन मे अपेक्षा की आकाक्षा न रखते हुए बहता जाता है। यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्तता प्राप्त कर लेता है।

आज सन्तशिरोमणि सघाधिपति का विहार है इस विचार से सभी के मन मे विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था। सभी अपने-अपने मन की कहने के लिये मूक थे और फिर कहे भी तो कहे क्या ? सभी के एक भाव थे एक बोल थे और एक-से विचार का ताना-बाना बुना जा रहा था।

आखिर सन्तो के विहार का क्षण आ गया। सभी ने भावोर्मियो की विदाई-भेट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रो को फरसते हुए थली प्रदेश की ओर विहार किया। थली-प्रदेश ने आपके पुन आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा। वह आपश्री से पूर्व एव पूर्ण परिचित था। वहाँ के निवासियो ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओ को सबल बनाया था।

थली-प्रदेश मे विचरण करते हुए आपश्री ने पुन सरलह्रदय मानवो मे श्रद्धा के बीज बोये जो धर्म को समझना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानो का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे। अनेक सार्वजनिक व्याख्यानो मे आपने जैन धर्म के सार्वभौम स्वरूप को अभिव्यक्त किया।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनो का प्रभाव देखकर बहुत-से ईर्ष्यालुजन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तों को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परीषह ही साधक की कसौटी होती है और उनके उपस्थित होने पर साधुता मे नया निखार आता है। अतएव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढाने मे ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता शातिप्रियता धीरता एव तत्त्वनिरूपण-शैली से वहा की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एव सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियो के नगर जयपुर मे

इस प्रकार विविध परीषहो को सहते हुए विरोध का परिहार और भ्रम का विध्वस करते हुए आपश्री का स 1995 के चातुर्मास हेतु जयपुर नगर मे पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियों का नगर है। वहा अच्छे-अच्छे पारखी बसते हैं जो अपनी एक नजर मे ही अच्छों-अच्छों को परख लेते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्हीं पारखियो के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

चातुर्मास प्रारम्भ होत ही आपश्री के प्रवचन प्रारम्भ हुए। आप अपने प्रवचनों में आध्यात्मिक विकास हेतु तात्त्विक विवेचन करते थे जिनका श्रोतागण लाभ उठाते और उनमें परीक्षको का भी जमघट होता था। लेकिन उनमे से कोई ता आपके प्रवचन प्रभाव की प्रशसा करता तो कोई तात्त्विक विवेचना की कोई शास्त्रीय ज्ञान की तो कोई समाधान की शैली की। किसी को वाणी की मधुरता पसन्द आई तो किसी को सयम की सुघड़ता। किसी ने जिज्ञासा का समाधान चाहा तो किसी ने तर्क का उत्तर।

इस प्रकार सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणो से आपश्री को परखा। लेकिन आपश्री उन सबकी परख से भी परे दिखाई दिये। अन्त म उन सबको सामूहिक रूप में निर्णय करना पड़ा कि हम सिर्फ जड़ रत्नों की ही परीक्षा कर सकते हैं लेकिन नररत्नो की नहीं। ऐसे नररत्न तो अमूल्य होते हैं। जिसे 'जवाहर' ने परखा हो उसे हम परख नहीं सकते हैं।

प्रतिदिन श्रोताओ की सख्या मे वृद्धि होने के साथ साथ सयम साधना के साधक आपश्री से नित-नूतन प्रतिबोध प्राप्त कर आत्मशुद्धयर्थ तत्पर होकर जप-तप त्याग-साधना में रत रहते थे। लालभवन का विशाल प्रागण साधना-स्थल बन गया था और योग में उपयोग लगाने से तप मे तत्पर होने से साधना मे समाधिस्थ होने आदि से जो जितना लाभ प्राप्त कर सकता था उसने अपनी योग्यतानुसार प्राप्त किया।

जयपुर से कोटा की ओर

चरितनायकजी का जयपुर चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इधर कोटा मे स्वामीजी श्री हरकचन्दजी महाराज काफी समय से अस्वस्थता के कारण विराजमान थे। आपके दर्शन करने एव साप्रदायिक आवश्यक विचार-विनिमय करने हेतु आपश्री ने कोटा जाना तय किया। सम्प्रदाय के अन्य खास-खास सन्तो को भी कोटा पहुचन के निर्देश-आदेश दे दिये गये। तदनुसार आपश्रीजी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् जयपुर से विहार कर मिगसर बदी 9 को पूज्यश्री लालजी म सा की जन्मभूमि टोक पधारे। प्रवर्तिनीजीश्री आनन्दकवरजी म सा ठाणा 13 पूर्व से ही यहा विराजमान थे। प्रवर्तनीजी एव अन्य कई सतिया ज्वर पीड़ित थीं। पूज्यश्रीजी के दर्शन वाणी सेवा से उन्हें सतुष्टि मिली। महासतीवृन्द एव सघ के अत्याग्रह पर पूज्यश्रीजी मिगसर सुदी 3 तक यहा विराजे। तत्पश्चात् सवाईमाधोपुर चौथ का बरवाडा बणजारी भगवन्तगढ आदि गावो में पधारे जहा काफी उपकार के कार्य हुए। इस क्षेत्र मे पूज्यश्री का प्रथम बार ही पदार्पण हुआ था। पूरे क्षेत्र के सघो मे चेतना आ गई। गाव-गाव से विनतियाँ हुईं परन्तु कोटा का लक्ष्य होने के कारण ज्यादा विचरण समव नहीं हो सका। हाड़ोती प्रदेश के सवाईमाधोपुर आदि गावों को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए आप

पौष सुदी 15 को कोटा पधारे। आगे-पीछे बडे चादमलजी म श्री मोडीलालजी म श्रीपन्नालालजी म आदि काफी सन्त कोटा पधार गये। जैन सन्त-परम्परा मे कोटा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपश्री के वहा पधारने से कोटा सन्त-दर्शनो का धाम बन गया। श्रावक-श्राविकाओ के धर्मोत्साह को भी वेग मिला।

निस्पृहता से प्रभावित एक मुमुक्षु युवक

चरितनायकजी कोटा मे विराज रहे थे। विभिन्न स्थानो से आगत भव्य मुमुक्षुजन आपकी व्याख्यान-वाणी का सर्वात्मना लाभ उठा रहे थे कि इसी समय एक बडी दिलचस्प घटना घटित हुई। एक तेजस्वी विनीत नवयुवक ने आपकी सेवा मे उपस्थित होकर अति-विनम्रभाव से निवेदन किया—भते ! मुझे अपना शिष्य बना लेने का अनुग्रह कीजिये। मैं आपके श्रीचरणो मे रहकर सयम-साधना करना चाहता हूँ।

ऐसा प्रश्न आपके लिये नया नहीं था। पहले भी अनेक मुमुक्षु आत्माओ द्वारा आपकी नेश्राय मे रहकर सयम-साधक होने की भावना व्यक्त की जा चुकी थी। लेकिन शिष्य बनाने के सम्बन्ध मे आपको उदासीनता थी। शिष्य-व्यामोह को आप साधना मे अवरोधक मानते थे लेकिन गुरुदेव के आदेश को अगीकार करके आपने शिष्य बनाने का त्याग नहीं किया था। अतएव जो मुमुक्षु शिष्य बनने की अभिलाषा लिये आपके निकट आता उसे आप आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का शिष्य बनाते और पूर्ववत् निर्लिप्त रहते थे। जब तक आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित नही हुए थे आपने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया था। लेकिन अब आत्महित के साथ-साथ सघहित का भी ध्यान रखना आवश्यक हो गया था। अविच्छिन्नरूपेण चली आ रही गुरुशिष्य-परम्परा को चालू रखना एक प्रकार से पूर्वाचार्यों के ऋण से मुक्त होना है। फिर भी शिष्यलोभ आपश्री को कभी भी व्यामोहित नहीं कर सका। इस सम्बन्ध में आप सदैव तटस्थ एव सतर्क रहे।

शिष्य विषयक उदासीनता आपके मन मे गहरी पैठी हुई थी जो इस मुमुक्षु के प्रश्न करने पर झलके बिना न रही और प्रत्युत्तर में फरमाया—भाई ! साधु बनना हसी-खेल नहीं है। पहले से ही साधु बनने की बात मत करो वरन् साधुता को समझने का प्रयत्न करो ज्ञानोपार्जन करो त्याग और वैराग्य की भावना का सबल बनाओ आत्मा के अन्तरग शत्रुओ—काम क्रोधादि का प्रतिरोध करने की शक्ति बढाओ आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की आकाक्षा को वेग दो उलझनो से उद्विग्न मन को शात बनाने का अभ्यास करो विचारो में मौलिकता प्राप्त करो सयम-साधना मे आने वाली कठिनाइया को समझने की कोशिश करो। अन्यथा चित्त की चचल लहरो मे बहने से जीवन-क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। अतएव कल्याण करना है तो आत्मा को तप से तपाओ सयम से साधो। गुरु की परीक्षा कर लो।

इसके पश्चात् ही साधु-दीक्षा अगीकार करने का प्रसग आ सकता है। समताभाव धर्मदृढ़ता और परमात्मा मे आत्मार्पण की भावना जाग्रत् हुए बिना जीवन में पवित्रता का भाव पैदा नहीं हो सकता है।

इस निस्पृहतापूर्ण निखालिस उत्तर को सुनकर नवयुवक चकित रह गया। उसके मन मे अतीत के अनेक चित्र साकार हो उठे कि मैं कितने ही सन्तों के पास पहुचा उन्होंने आश्वासन दिये आकर्षण बतलाये और प्रलोभनों के सरसब्ज बाग भी दिखलाये परन्तु ऐसा यथार्थ पथप्रदर्शक उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। इन विचारो से उसके मन में एक नये प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ उसके सस्कारो को नवजीवन प्राप्त हुआ। उनके अन्तर् की ज्योति चमकने लगी। अन्त करण उद्भाषित होने लगा और वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी।

नवयुवक आपकी निस्पृहता की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्रद्धा भक्ति से उसका मन गदगद हो उठा। साथ ही कुतूहल भी उत्पन्न हुआ कि एक वे साधु हैं और एक ये महाराज हैं जो शिष्य बनाने के पहले साधुता को समझने और गुरु की परीक्षा करने का परामर्श दे रहे हैं और फिर साधु बनने की बात कह रहे हैं। इसलिये उसने पुन निवेदन किया– भते ! सभी साधु बनने वालो के सामने आप ऐसी ही कठोर शर्तें रखेगे तो फिर कोई आपका शिष्य कैसे बनेगा ? क्या आत्म-कल्याण के साधक की शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध नहीं होगा ? परीक्षा की प्रतीक्षा मे ही वह अपने सत्सकल्प को कैसे चरितार्थ कर सकेगा ? विकासोन्मुखी आत्माए अपनी प्रतिभा साहस और मनोयोग का समन्वय कैसे कर सकेंगी ? श्रद्धा और सकल्प को साकार रूप कैसे दिया जा सकेगा ?

नवयुवक के इस प्रकार के तार्किक प्रश्नो को सुनकर आपने फरमाया– कोई मेरा शिष्य नहीं बनेगा तो मेरी क्या हानि हो जायेगी ? मेरे आत्म-कल्याण में कौन सी बाधा आ जायेगी ? मुझे चेलो की जमात खड़ी नहीं करनी है। आत्म-साधना के पथ पर वही बहादुर चल सकता है जो वास्तविक वैराग्य-भावना से विभूषित हो तप पूत हो जिसका ज्ञान अगाधता की ओर अभिमुख हो श्रद्धा अडिग और चारित्र आगमानुकूल व निष्ठापूर्ण हो। दीक्षा ले लेना तो सरल है मगर उसे निभाना कठिन होता है। उससे आत्मा का कल्याण होता है किन्तु अगीकार करने से पहले शातचित्त होकर सोचना चाहिये कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी या नहीं ? आत्मबल को जाचे बिना जोश मे आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिये बाद मे पछताना पडता है। भाई ! मुझे साधु-सख्या नहीं किन्तु साधुता चाहिये। पारस्परिक सहकार से सयम-साधना में अग्रसर होने के लिये ही गुरु-शिष्य सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जहा इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती हो वहा वह सम्बन्ध निरर्थक ही नहीं वरन् हानिकारक भी सिद्ध होता है।

आपश्री के ये मार्मिक शब्द नवागन्तुक नवयुवक साधक के चित्त म गहरे पैठ गये। उसकी धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम न थी किन्तु अनुभवो से अर्जित सस्कारो का परिणाम थी। अत इन स्पष्ट विचारो से वह समझ गया कि यही वह विभूति है जिसके नेश्राय मे निर्देशन पाकर मैं अपना जीवन सफल व धन्य बना सकूगा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्हीं से प्रशस्त होगा। एसे निस्पृह नि स्वार्थ एव विरक्त महाभाग महापुरुप ही मेरे जीवन को पावन बना सकेगे। दुविधा में विघा मन निष्कर्प पर आ पहुचा था और विवेक से अनुप्राणित होकर लक्ष्य की ओर बढ चला।

विरक्त नवयुवक ने युवाचार्यश्रीजी के उपदेश को सर्वात्मना स्वीकार किया। अन्तरात्मा से उठे नाद को अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था। जो पूर्णनिष्ठा के साथ सकल्प करते हैं उन्हे कोई भी प्रलोभन विचलित नहीं कर पाते हैं। वह उसी दिन में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना मे तल्लीन हो गया और प्रयत्नो के फलस्वरूप त्याग के पथ पर अग्रसर होता गया।

नवयुवक की अखण्ड वैराग्य भावना और ज्ञानोपार्जन की तन्मयता ने आपश्री को आकर्पित किया। आपकी धारणा बन गई कि यह खरा सोना है और सयम-साधना की ओर अग्रसर कराने मे योग देना चाहिये। अत आप उस त्याग-वैराग्य-वर्धक उपदेश देने लगे।

इस प्रकार एक लम्बी परीक्षा और प्रतिज्ञा की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात् आपश्री ने नवयुवक को यथावसर दीक्षित कर अपना अन्तेवासी बनाने का निश्चय किया। उस समय किसे ज्ञात था कि आध्यात्मिक साधना के मगल द्वार मे प्रविष्ट होने वाला यह नवयुवक आगे चलकर आपश्री की नेश्राय का महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकारी और पाट परपरा में आपका उत्तरवर्ती होकर सघ-शासन को दिपायेगा।

वह नवयवुक और कोई नहीं हमारे परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री 1008 श्री नानालालजी म सा हैं जो नाना-जनो की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्रबिन्दु बन कर आध्यात्मिक साधना करते हुए चतुर्विध सघ को आत्म-कल्याण के मार्ग का निर्देशन कर रहे हैं।

उदयपुर मे चातुर्मास

कोटा बूदी और उसके आस-पास के क्षेत्रो को धर्मदेशना से पवित्र करते हुए आप पु ठाणा 6 से मेवाड़ के मुख्य नगर गुलाबपुरा मे पधारे। केकडी से पधारते समय मार्गवर्ती गाँवो में अहिंसा एव व्यसनमुक्ति के अच्छे कार्य हुए। भिणाय मे कानोड़ सघ विनती लेकर उपस्थित हुआ। कानोड़ सघ अत्याग्रहभरी विनती करने लगा तो युवाचार्यप्रवर ने उन्हे सन्तुष्ट करते हुए फरमाया—

1 आचार्य प्रवर की अन्य आज्ञा प्राप्त हो जाय

2. शासन प्रभावना का कोई बडा कार्य हो जाय और मेरे गये बिना न चलता हो

3 ब्यावर मे स्थविर सन्तो की सेवा का उचित प्रबन्ध न हो और मुझे जाना पड़े।

उपर्युक्त तीन कारणों के सिवाय कानोड क्षेत्र स्पर्श बिना दूसरी जगह चातुर्मास र विनती नहीं मानूगा। कानोड़ सघ इतना सुनते ही हर्षविभोर हो गया।

गुलाबपुरा सघ को सान्निध्य का लाभ देने के पश्चात् आपश्री ग्रामानुग्राम विहार कर हुए राशमी पधारे। वहा आपश्रीजी की शान्त किन्तु ओजस्वी वाणी से अनेक त्याग प्रत्याख्या हुए। राशमी से कपासन बडी सादडी होते हुए कानोड पदार्पण किया। कानोड मे एक सप्ता तक धर्म का अनूठा ठाठ लगाकर वहाँ के निवासियो को सन्तुष्ट कर भीण्डर कुन्थवास आि क्षेत्रो को पावन किया।

इस प्रकार मेवाड के छोटे-छोटे गावो में भ्रमण कर पूज्यश्री ने भारी धर्मोद्योत किया अनेक जगह दलबन्दियाँ समाप्त हुई एव भावी पीढी धर्माभिमुख हुई। अक्लान्त भाव र पुरुष-सिह की गभीर गर्जना मेवाड के चप्पे-चप्पे में होती रही। मेवाड़ का प्रत्येक नगर और ग्राम आपका स 1996 का चातुर्मास अपने यहा कराने के लिये आकाक्षी था। सभी की एक ही धुन थी लेकिन उदयपुर के सौभाग्य का स्वर्णशिखर सर्वात्मना प्रकाशमान हो रहा था। अत आपका स 1996 का चातुर्मास यथासमय उदयपुर होना निश्चित हुआ। आषाढ़ शुक्ला 13 प्रातःकाल चातुर्मासार्थ आपश्री 5 सन्तों एव सुपरिचित नवयुवक वैरागी श्री नानालालजी के साथ उदयपुर पधारे। चातुर्मास मे महासतीश्री हगामकवरजी म एव महासतीश्री केसरकवरजी म ठाणा 20 का लाभ भी उदयपुरवासियों को उपलब्ध हुआ। युवाचार्यश्रीजी के नगर पदार्पण पर हिन्दुवा सूर्य श्रीमान् महाराणा साहब बहादुर ने धार्मिक भावना का परिचय देते हुए उस दिन सम्पूर्ण अगता रखने की आज्ञा प्रदान की।

चातुर्मास-काल मे धर्मप्रभावना की दृष्टि से उदयपुर में बड़ा आनन्द रहा। त्याग तपस्याओं के प्रति चतुर्विध सघ मे अपूर्व उत्साह था। उपदेश और धर्मचर्चा का जनता पर खूब प्रभाव पडा। चारो माह युवाचार्यश्री के प्रवास-स्थल पोरवाडो के नोहरे मे सामायिक सवर एवं त्याग-तपस्या का ठाठ लगा रहा। सावत्सरिक पर्व पर केवल श्रावको में ही लगभग पाच सौ (500) पौषध हुए तथा अन्य तपस्या भी भारी मात्रा में हुई। श्री जवाहर मण्डल के युवकों का उत्साह अत्यन्त सराहनीय था। वैरागी नवयुवक की प्रतिभा और ओज से उदयपुर श्रीसघ इतना प्रभावित हुआ कि वह अपने यहा ही दीक्षा मोहत्सव मनाने के लिये लालायित हो उठा। किन्तु तत्काल कुछ निश्चय नहीं हो सका।

चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। पश्चात् वहा से सन्त-मण्डल के साथ आपने मेवाड प्रदेश की ओर विहार किया। भागवती दीक्षा अगीकार करने के लिये पारिवारिक जनो की स्वीकृति लेना आवश्यक होने से वैरागी श्री नानालालजी अपने पारिवारिक जनो से स्वीकृति

प्राप्त करने हेतु उदयपुर स दाता चले गये और स्वीकृति प्राप्त कर पुन आपश्री की सेवा मे उपस्थित हो गये। पारिवारिक जनो की स्वीकृति और द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सुविधा देखकर वैरागीजी को स 1996 पौष शुक्ला 9 को कपासन मे भागवती दीक्षा प्रदान करने का निर्णय घोषित किया गया।

दिगम्बराचार्य श्री शातिसागरजी से सलाप

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् उदयपुर से विहार कर आप उदयपुर के उपनगर आयड पधारे। वहा से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आपका बाठेडा पदार्पण हुआ। बाठेडा मे स्थानकवासी जैनो के करीब पाच घर थे और शेष अधिकाश दिगम्बर जैनों के थे। वहा पर दिगम्बर जैन समाज के आचार्यश्री शातिसागरजी म विराज रहे थे।

एक दिन चरितनायकजी का बाजार मे प्रवचन हो रहा था। उसी समय आचार्यश्री शातिसागरजी म भी वहा पधारे। श्रावको ने पाटा लगा दिया और वे उस पर विराज गये। व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात् आप एव आचार्यश्री शातिसागरजी म का स्नेहपूर्ण वातावरण मे वार्त्तालाप हुआ। उसी प्रसग मे आचार्यश्री शातिसागरजी म ने वार्त्तालाप के लिए जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा कि आपसे और भी वार्तालाप करना है। इसके लिये आपको कौन-सा समय उपयुक्त रहेगा ? आपने मध्याह्न का समय उपयुक्त बताया।

वार्त्तालाप के लिये एक मन्दिर का स्थान निश्चित किया गया। वहा जनता भी एकत्रित हो गई। चरितनायकजी एव आचार्यश्री शातिसागरजी म के बीच अत्यन्त सरल-सौम्य वातावरण मे वार्त्तालाप प्रारम्भ हुआ। प्रसगोपात्त जब परिग्रह सम्बन्धी बात आई तो चरितनायकजी ने पूछा कि परिग्रह की परिभाषा क्या है ? यदि शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से व्याख्या की जाती है तो 'परिगृहीयते इति परिग्रह' इस परिभाषा मे आत्मा के अतिरिक्त जो भी ग्रहण किया जाता है वह सब परिग्रह में आ जाता है। जैसे आत्मा ने कर्म ग्रहण कर रखे हैं और समय-समय पर ग्रहण कर रही है। शरीर को भी ग्रहण रखा है और शरीर को आहारादि दिया जा रहा है वह भी ग्रहण हो रहा है तथा कर्म शरीर और आहारादि के अतिरिक्त मोरपीछी कमडलु भी ग्रहण कर रखा है अत उक्त परिभाषा के अनुसार सिद्धो के अतिरिक्त अन्य कोई अपरिग्रही बन नहीं सकेगा। वैसी स्थिति मे भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ की स्थापना की है उसमे श्रमणवर्ग को पूर्ण निष्परिग्रही और श्रावकवर्ग को देश निष्परिग्रही निर्देश किया है वह व्यर्थ सिद्ध होगा और फिर भगवान का शासन कैसे चलेगा ? और तदनुसार दिगम्बर समाज की व्यवस्था मे भी वस्त्र नहीं रखने पर भी कर्म शरीर भोजन, कमडलु, मोरपीछी आदि ग्रहण करने वाले मुनि निष्परिग्रही कैसे कहला सकेंगे ?

सरल भाव से आचार्यश्री शातिसागरजी म ने इसके विषय मे कहा कि परिग्रह की परिभाषा मूर्च्छा के रूप मे ली जाती है। कमडलु, मोरपीछी–ये सब साधन हैं। इन पर मूर्च्छा नहीं रखी जाती है तो निष्परिग्रही बन सकते हैं। तब आपने कहा कि 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' शास्त्र मे यही परिग्रह की वास्तविक परिभाषा कही गई है। इस परिभाषा के अनुसार जैसे कर्म, शरीर आदि के अतिरिक्त कमडलु, मोरपीछी साधन के रूप मे रखे जाते हैं वैसे ही मर्यादित पात्र वस्त्र भी सयम की साधना के लिये रखे जाते हैं। ये भी धर्मोपकरण साधन हैं। इनमें मूर्च्छा नहीं रखने वाले भी निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ साधु हैं और इसी परिभाषा के अनुसार चतुर्विध सघ की व्यवस्था भी बैठ सकती है एव छठे गुणस्थान से लेकर सिद्धो के पहले पहले मूर्च्छारहित शास्त्रोल्लिखित मर्यादित वस्त्र पात्र रखने वाले सभी साधक निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ श्रमण कहलाते हैं। दिगम्बर समाज-मान्य जयधवला महाधवला नामक ग्रन्थो मे भी सयती शब्द से साध्वी को लिया है और वह वस्त्र बिना नहीं रह सकती हैं। अत मर्यादित वस्त्रों के रखने पर भी उसमें साधुत्व स्वीकार किया गया है।

इसी प्रकार साधु-भिक्षाचरी विषयक वार्त्तालाप के प्रसग मे आपने कहा कि श्वेताम्बर समाज में साधु की भिक्षाचरी के 47 दोष बताये गये हैं वैसे ही दिगम्बर समाज की मान्यता के मूलाचार आदि ग्रन्थों में साधु की भिक्षाचरी के 46 दोष माने गये हैं। उनमे साधु के निमित्त बनाया हुआ आहार आधाकर्मी माना जाता है और साधु को ग्रहण करना निषिद्ध है। तो फिर जो साधु के लिये विशिष्ट रूप से ताजा घी आटा पानी आदि सब चीजों की तैयारी करके आहार-पानी बनाकर मुनि को दिया जाता है और मुनि ग्रहण करते हैं उसमें आधाकर्मी दोष लगता है या नहीं ? आचार्यश्री शातिसागरजी म ने सरलतापूर्वक स्वीकार किया कि इस प्रकार मुनि के निमित्त बनाये हुए आहारादि को लेने से आधाकर्मी दोष लगता है। यह साधु-जीवन नहीं बल्कि स्वादु-जीवन है।

आपने यह भी पूछा कि आप आचार्य हैं और आचार्य को अकेला रहना कल्पता है क्या ? उन्होने कहा कि आचार्य का अकेला रहना उपयुक्त तो नहीं है लेकिन मुनि सब काल कर गये हैं इसलिये मैं अकेला हूँ। एक प्रश्न यह भी उठा कि गृहस्थों से सेवा लेना घास मगवाना घास की कुटिया बनवाना पाट मगवाना तथा कमडलु में पानी मगवाना आदि साधु के योग्य हैं ? आचार्यश्री शातिसागरजी म ने सरलता से कहा कि यह साधु के योग्य नहीं है। इसी तरह गृहस्थ से सेवा लेना उपयुक्त नहीं है आदि विभिन्न विषयो के बारे मे सौहार्दपूर्ण वातावरण में वार्त्तालाप समाप्त होने के पश्चात् दोनो अपने-अपने स्थान पर गये।

कुछ दिन वहा विराजने के पश्चात् वहा से विहार कर मार्ग मे आने वाले ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए वैरागी श्री नानालालजी को दीक्षा देने के लिये आपश्री कपासन पधारे।

भावी उत्तराधिकारी विरक्त शिष्य का दीक्षा-महोत्सव

वैरागी श्री नानालालजी को दीक्षा देने के समय स 1996 मिती पौष शुक्ला 8 व स्थान कपासन की जानकारी समस्त श्रीसघो को हो चुकी थी। सभी श्रीसघो मे उक्त महोत्सव के दर्शन करने की उत्सुकता थी और श्रावक-श्राविकाओ के उत्साह मे वृद्धि होती जा रही थी।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर बड़े चादमलजी म सा ठाणा 3 विशेष रूप से दीक्षा-समारोह पर पधारे। महासतीवर्याए भी 23 के लगभग थीं। इनके अलावा बाहर के हजारों भाई-बहिन उपस्थित हुए। मेवाड़ का ऐसा कोई ग्राम न था जिसके दो-चार सज्जन दीक्षा-महोत्सव के अवसर पर कपासन न पहुचे हो। विभिन्न सघो की ओर से दीक्षार्थी का मान-सम्मान किया गया और जुलूस के साथ दीक्षार्थी का दीक्षास्थल पर पदार्पण कराया। आपने दीक्षार्थी के पारिवारिक जनो की स्वीकृति एव चतुर्विध सघ की अनुमतिपूर्वक वैरागीजी को दीक्षा प्रदान की और नवयुवक श्री नानालालजी पोखरना मुनिश्री नानालालजी म सा बन गये।

भावी उत्तराधिकारी शिष्य नानालालजी म सा का परिचय

आप द्वारा नानालाल मुमुक्षुजन सयम-साधना के लिये दीक्षित हुए और उन नानाओ मे से भी जो नाम से भी नाना हैं उनका यहा नाना-सा (सक्षिप्त) परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

आपके उत्तराधिकारी मुनिश्री नानालालजी म सा का जन्म मेवाड़ प्रदेशान्तर्गत उदयपुर राज्य के जागीरदारी गाव दाता मे ओसवालजातीय पोखरनागोत्रीय श्रीमान् मोड़ीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती शृगारकवरबाई की कुक्षि से स 1977 मे हुआ था।

लगभग 8 वर्ष की बाल्यावस्था मे ही जो माता-पिता के लाड़-प्यार खेलकूद का समय मानी जाती है आपको पिताश्री के वरदहस्त से वचित हो जाना पड़ा और उस समय से लेकर दीक्षा-तिथि तक अपने भाई मातुश्री आदि पारिवारिक जनों की छत्रछाया में आपने जीवन -विकास का मार्ग प्रशस्त बनाया। उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रों में जैसा विद्याध्ययन का प्रबन्ध था तदनुरूप आपने शिक्षण प्राप्त किया और पारिवारिक परिस्थितियोवश बाल्यावस्था मे ही आपको जीवकोपार्जन हेतु व्यापार में प्रवृत्त होना पडा। प्रारम्भ में गाव की परिस्थिति के अनुसार साधारण परचूण सामान की दूकान की और कुछ समय पश्चात् कपडे का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार सामान्य रूप से जीवनक्रम चलने लगा।

आपने विद्याभ्यास तो प्राप्त सुविधानुसार ही किया था। लेकिन बौद्धिक प्रतिभा प्रखर एव तार्किक होने से प्रत्येक विचार के बारे में सयुक्तिक समाधान-प्राप्ति के लिये उत्सुक रहती थी।

बाल्यावस्था का एक प्रसग है कि एक दिन आपकी मातुश्री शृगारकुवरबाई सतियाजी म सा से किसी व्रत का पचखाण करके घर लौटीं। लेकिन बालक नानालालजी को यह पचखाण करना-कराना अच्छा नहीं लगा। बालबुद्धि इन सब बातों का ढकोसला और व्यर्थ समझती थी। ऐसा क्या समझा होगा ? इसके बारे में हमारा अनुमान है कि तार्किक बुद्धि में ज्ञान विना की क्रिया की उपयोगिता नही है और इसके योग्य समाधान के अभाव में मन विद्रोही बन जाता है जो असतोष के रूप में प्रगट होता है। फलत नियम से इतने क्रोधित हो उठे कि और कुछ न सूझा तो मातुश्री जब सामायिक लेकर बैठीं तो अपने मन की खीज मिटाने के लिये उनके सामने रखी हुई रेत की घड़ी को फोड़ने को उद्यत हो गये। किन्तु स्नेहमयी माता के प्रयत्न ने उन्हे वैसा नहीं करने दिया।

बालक नानालालजी को उस समय इसका भान नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं। समय आया और चला गया। कालप्रवाह मे रुकावट नहीं आई। बात आई गई सी हो गई और जीवन-क्रम पुन अपनी गति से बहने लगा। यदि हम वर्तमान के साथ उस समय के बालक नानालालजी की तुलना करें तो आभास होगा कि उस समय आवरण से आच्छादित आत्मिक गुणो का प्रकाश विकसित होने के लिये अनुकूल अवसर चाहता था। परन्तु उचित सयोगों के अभाव में मार्ग भूला हुआ था और जिसका विकृत रूप वह आवेश था।

आपके बाल्यकाल की एक दूसरी घटना है। आपकी बहिन श्रीमती मोतीबाई ने जो श्रीमान् सवाईलालजी लोढा भादसोडा निवासी को ब्याही थीं पर्युषण पर्व मे पचोले की तपस्या की। लौकिक प्रथा के अनुसार ऐसी तपस्या के प्रसग पर तपस्विनी बहिन के लिये पितृगृह (पीहर) से वस्त्रादि भेजने का नियम है और यह शुभ कार्य प्राय घर के मुखिया द्वारा सम्पन्न होता है। परन्तु उस समय कार्यवशात् बालक नानालालजी के ज्येष्ठ भ्राता को भादसोडा पहुचने की सुविधा न हो सकी। अत यह कार्य आपको सौंपा गया। यद्यपि ऐसे कार्यों में आपको रस नहीं था लेकिन पारिवारिक प्रतिष्ठा के खयाल से आप वस्त्र आदि लेकर भादसोडा पहुचे।

भादसोड़ा मे मेवाडी मुनिश्री चौथमलजी म सा चातुर्मासार्थ विराज रह थे। पर्युषण पर्व होने से उन दिनो व्याख्यान में अन्तकृत सूत्र का वाचन होता था। आप भी व्याख्यान सुनने गये। प्रसगवश उस समय पाचवे और छठे आरे का वर्णन चल रहा था जो आपके कर्णगोचर हुआ और कथा सुनने का शौक होने से कुछ कथाभाग याद रह गया। लेकिन उसका हृदय पर कुछ भी असर नहीं हुआ।

बहिन को वस्त्रादि देकर आपने अपने ननिहाल भदेसर जाने का विचार किया और सवत्सरी महापर्व का दिन होते हुए भी आप ननिहाल की ओर चल पडे। बहिन आदि ने उस दिन न जाने के लिये समझाया भी लेकिन रुके नहीं और अश्वारूढ़ हो चल पड़े।

मार्ग में चारो ओर हरी-भरी वनराजि व्याप्त थी। वर्षाऋतु की समाप्ति ओर शरद् के सुहावने मौसम एव मद-मद बहने वाली बयार ने आपको मनोमथन के योग्य अवसर प्राप्त करा दिया। अश्व अपनी गति से चल रहा था लेकिन मन-अश्व की गति पूरे वेग में थी। व्याख्यान मे सुनी छह आरो की व्याख्या आपकी स्मृति मे घूम गई। मथन करते करते ही मार्ग मे आपके मन मे बिजली-सी कौंध गई। ज्ञान के सम्यक प्रकाश की किरण झलक उठी और मन म एक झटका-सा लगा और एक क्षण पहले जो मन धर्मविमुख था वह धर्माभिमुख हो गया।

प्रकाशप्राप्ति के साथ ही आपको अपने पूर्व विचारो एव कार्यो के प्रति पश्चात्ताप होने लगा। अतीत मे मातुश्री को धर्म-ध्यान न करने देना त्याग-प्रत्याख्यान करने से रोकना सवत्सरी दिवस होने से बहिन आदि के द्वारा रोके जाने पर भी चल देना आदि अपने बालकृत्यो का इतना पश्चात्ताप हुआ कि अन्तरग पर आवृत मल नेत्रों द्वारा बह निकला। ग्लानि आसुआ के साथ गलित होने लगी। बूद-बूद मे टपकने वाले आसू चौधारा मे रूपान्तरित हो गये और जब इतने से भी परिताप शात न हो सका तो आवेगो ने आक्रदन का रूप अपना लिया। यह कितने समय तक चलता रहा पता ही न पडा। खूब बहा खूब बहा और माता धरित्री ने उस मैल को अपने आचल मे समेट लिया। क्योकि वह मा थी और मा की ममता सदैव मगलमयी होती है।

आखिर मन को शाति मिली और उसी समय सकल्प किया कि मैं स्वय धर्म-करणी करूगा और करने वालो को सहायता दूगा। इसी सत्सकल्प के साथ आपके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ साने का सूरज उगा। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि भी बदल गई। धर्म-मार्ग पर चलने के निश्चय के साथ ही अब जिज्ञासाए बढने लगीं– धर्म क्या है ? धर्म क्यों करना चाहिये ? धर्माचरण के लिये क्या करना पडता है ? इस क्या और क्यो के समाधान के लिये मन उत्सुक रहने लगा। गृहकार्यों से मन उचटने लगा। अब तो दूसरे मार्ग पर चल पड़ने के विचार आने लगे। आप धर्म की गहराई तक पहुचना तो चाहते थे लेकिन सुयोग्य मार्गदर्शक का सुयोग उपलब्ध नहीं होने से अपने मन में सोचते तर्क करते समाधान का प्रयत्न भी करते लकिन सन्तोष नहीं होता था। अर्न्तद्वन्द्वा की निवृत्ति के लिये अब आपने सन्तो की सेवा मे रहने का निश्चय कर लिया। इस समय आपकी आयु करीब 15-16 वर्ष की रही होगी जबकि किशोर मन मे नये-नय अनुभवों विचित्रताओ एव आकर्षणो का कोषसग्रह करने की उद्दाम भावनाए हिलोरें लेती रहती हैं।

अत आप चल पडे योग्य गुरु के सुयोग की खाज में। प्रारम म पूज्यश्री मोतीलालजी म सा (मेवाड़ी) का सयोग मिला। उन दिनों पूज्यश्री चातुर्मास हेतु बदनौर विराज रहे थे। अत आप बदनौर पहुचे। वहाँ 3-3 मास रहे और समाधान के लिये प्रयत्न करत रहे लेकिन

जितना समाधान कर पाते उससे जिज्ञासाओ की सख्या दुगुनी होती जाती थी। इस प्रकार की मन स्थिति के बीच आपको कारणवशात् बदनौर से ब्यावर जाना पड़ा।

उन दिनो ब्यावर मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के सुशिष्य प र मुनिश्री जौहरीमलजी म सा विराज रहे थे। उनके सान्निध्य मे धार्मिक आचार विचारो आदि का अध्ययन-मनन किया और अपनी जिज्ञासा के समाधान का भी प्रयत्न किया। वहीं पर विभिन्न सन्त-मुनिराजो की थोडी-बहुत जानकारी के साथ यह भी मालूम हुआ कि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की एक अलग सम्प्रदाय है और वर्तमान मे इस सम्प्रदाय की व्यवस्था युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा सभालते हैं। पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा खादी पहनते हैं और दूसरों को भी विदेशी वस्त्र या चर्बी लगे वस्त्र न पहनने का उपदेश देते हैं।

यह युग गाधीयुग कहलाता था और स्वदेशी आदोलन नगरो से होता हुआ भारत के गाव-गाव में फैल चुका था। आप भी म स द्वारा स्वावर्त सूत्रोक्त राष्ट्रधर्म के अनुरूप इससे प्रभावित थे। अत बुद्धि तुलना करने लगी कि जिस सप्रदाय मे खादी का उपयोग हो और जिसके आचार्य राष्ट्रधर्म का उपदेश देते हो वे अच्छे ही होने चाहिये। इस विचार से आपकी जिज्ञासा बढी और उनके निकट सम्पर्क में पहुचने की भावना भी सजोयी। लेकिन बदनौर वापस आना आवश्यक होने से आप ब्यावर से बदनौर आकर अपने गाव दाता लौट आये।

आपका मन अब घर मे नहीं लगता था। उसकी वृत्ति 'गेही पै गृह मे न रचै ज्यो जल मे भिन्न कमल है' जैसी हो चुकी थी। पारिवारिक जनो को भी इसका स्पष्ट आभास मिल चुका था। अत बढ़ते चरणो को अवरुद्ध करने के लिये उनकी ओर से प्रयत्न होता उतना ही प्रगति के लिये प्रयास करने का बल आपको प्राप्त हो रहा था। सन्तो के सहवास से आप यह भलीभाति ज्ञात कर चुके थे कि सन्त-सतियो में लम्बी-लम्बी तपस्याए होती हैं। कोई-कोई तो केवल छाछ के आधार पर महीनो निकाल देते हैं। इन वृत्तान्तों को सुनकर आपने भी इन्हे अपने आचरण मे उतारने का निराला सकल्प लिया। आपने सोचा यदि कोई तपस्या करके कुछ दिनो निराहार रह सकता है अथवा कोई छाछ के आधार पर महीनो गुजार देता है तो फिर मैं केवल पानी पर ही क्यों नही रह सकता ? अजीब सूझ थी यह अपूर्व सकल्प था यह जिसे आपने अपने भावी जीवन में साकार रूप दिया। किन्तु आप जैसे आत्मवली के लिये यह कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता है।

त्याग के मार्ग पर बढने के लिये कठिनाइयो पर विजय पाने की सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक है और उसमें भी रसनेन्द्रिय का सयम रखना तो विशेष आवश्यक होता है। अत अपने सकल्प को साक्षात् करने के लिये आप प्रात आधी रोटी और साय पाय रोटी पर रहने लगे। यह क्रम कई महीनो तक चलता रहा। जिससे शरीर काफी कृश हो गया। एक दिन

ऐसा भी प्रसग आया कि शारीरिक कृशता के कारण चक्कर आने स गिर पड़। लेकिन आप तो निर्धारित लक्ष्य की ओर बढने का सकल्प कर चुके थे। अतएव यह कसौटी आपको अपने सकल्प से विचलित नहीं कर सकी।

आप बाल्यकाल से ही तार्किक थे यह बात पहले स्पष्ट हो चुकी है। जिज्ञासाओ के समाधान के लिये आपकी ज्ञान-पिपासा गुरुगम की चाह मे बढने लगी। पारिवारिक जनो की ओर से व्यवधान तो डाले ही जा रहे थे कि अकस्मात् इन्हीं दिनों एक सामाजिक भोज के प्रसग मे आपको कपासन जाना पडा। वहा मुनिश्री इन्द्रमलजी म सा की सेवा का अवसर मिला। इसके पूर्व पूज्यश्री काशीरामजी म सा तथा दिवाकरजी म सा के सन्तो एव अन्यान्य सन्तो की सेवा वाणी-श्रवण का भी प्रसग प्राप्त हो चुका था और उन्होने आपकी दिनचर्या से अनुमान लगाया था कि आप भावी सत हैं। अत अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये अनेकानेक प्रलोभन प्रस्तुत किये जाते थे। एक ने कहा– हमारे पास साधु बनने से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। दूसरे ने फरमाया– चेला बन जा हम अपनी सब विद्याए तुझे समर्पित कर देगे। तीसरे ने उससे भी दो कदम आगे बढकर कहा कि मेरा शिष्य बनेगा तो तुझे सम्प्रदाय का मुखिया बना दूगा। चौथे ने अपना महत्त्व जताते हुए बताया कि ज्यादा सोच-विचार मे पडने की जरूरत नहीं हमारे जैसे सन्त और हमारे जैसा सम्प्रदाय नहीं मिलेगा आदि-आदि। परन्तु आपको आत्म-तुष्टि नहीं हुई और सोचते रहे कि अन्यान्य सन्तो को भी देख लेना चाहिये।

विचारानुसार आपने युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की सेवा में पहुचने का निश्चय किया और एक दिन घर पर बिना कुछ कहे-सुने कपासन पहुचे। वहा से श्री मीठालालजी चडालिया के सहयोग से रतलाम होते हुए उस समय कोटा विराजित युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की सेवा मे जा पहुचे।

युवाचार्यजी से आपका प्रथम परिचय कपासन के वैरागी के रूप मे कराया गया। बाद मे आपने अपना पूर्ण परिचय स्वय दिया और युवाचार्यश्री के प्रथम दर्शन मधुर वाणी तप तेज से ऐसे प्रभावित हुए कि बस यही महापुरुष मेरे गुरु बन सकते हैं।

मन मे ऐसा सकल्प कर प्रार्थना की कि मैं आपसे भागवती दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ। लेकिन स्वीकृति के बदले साधुता क्या है ? और गुरु की परीक्षा करने के बाद दीक्षा लेने की बात सोचो यह सकेत मिला। यह बात आप को अपूर्व प्रतीत हुई और सकेत का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मन ही-मन आपने दृढ सकल्प कर लिया कि शिष्य बनना है तो इन्हीं का बनना है।

अब साथ साथ पैदल विहार ज्ञान व सयम-साधना का अभ्यास प्रारम्भ हो गया। इस

प्रकार पदयात्रा करते हुए भावी गुरु के साथ आप स 1996 मे उदयपुर आये। सकल्प सुदृढ़ हो गया था। अत उसको साक्षात् करने के लिये पारिवारिक जनो से स्वीकृति पत्र प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दाता आये। परन्तु जब आपको सहज ही आज्ञा-पत्र नहीं मिला तो आपको तेले का तप करना पडा और जब तक आज्ञा-पत्र प्राप्त न हो जाये तब तक घर पर भोजन न करने का सकल्प कर लिया।

अन्त मे आपके सकल्प को देख पारिवारिक जनो को स्वीकृति देना उपयुक्त प्रतीत हुआ और पारिवारिक जनो की स्वीकृति एव चतुर्विध सघ की सहमति से स 1996 मिती पौष शुक्ला 8 गुरुवार को प्रात 9 30 बजे कपासन मे आपने युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की सेवा मे भागवती दीक्षा अगीकार करके अपने को धन्य माना।

दीक्षित होते ही आपने गुरुगम से अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। सुयोग्य शिष्य की ओर उन्मुख गुरु की ज्ञानगरिमा ने शिष्य को सिद्धान्त व्याकरण षड्दर्शनो का गहन अध्ययन कराया। और शिष्य की धारणा-शक्ति एव तार्किक-बुद्धि जिस किसी भी साहित्य को देखती तो उसके अन्तर् तक पहुच कर विराम लेती थी और जिज्ञासावृत्ति ने प्रतिभा को विकसित करने मे पूरा-पूरा योग दिया।

दीक्षा क्षण से लेकर गुरु के जीवनान्त तक परछाईं की तरह साथ रहकर आज आप उनके आदर्शों को साकार रूप देकर मानव समाज के हितार्थ साधना में तत्पर हैं। गुरु गणेश से जीवन का श्रीगणेश कर गण-ईश बन नामत नाना होकर भी भावत गणेश हैं एव 'हुशिउचौश्रीजगनाना' जो जगत् मे नम्रता से लघु से लघुतर हो वही सबसे उच्च गौरव को प्राप्त करता है को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं।

यह है चरितनायक के भविष्य में उत्तराधिकारी मुमुक्षु शिष्य का सक्षिप्त परिचय।

आचार्यश्री और युवाचार्यश्री का मधुर मिलन

दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् युवाचार्यश्रीजी ने सन्त समूह के साथ पौष शुक्ला 10 को विहार किया। कपासन से भदेसर बड़ी सादड़ी छोटी सादडी नीमच होते हुए जावद पधारे। जावद मे माघ शुक्ला 11 को निबाहेडा निवासी वैरागी श्री मगनमलजी चौपड़ा की दीक्षा सम्पन्न हुई। फिर निबाहेड़ा चितौड आदि मेवाड के विभिन्न क्षेत्रो को विहार और धर्मदेशना से पावन करते हुए मारवाड़ की ओर पधारे। जैसे मेवाड के विभिन्न क्षेत्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिये उत्सुक रहते थे उसी प्रकार मारवाड की ओर आपका पदार्पण होने के सामाचार ज्ञात कर मारवाड़ के श्रीसंघ भी अपने-अपने क्षेत्र में पधारने व चातुर्मास कराने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। विभिन्न श्रीसघो की ओर से आगामी चातुर्मास

हेतु विनम्र विनतिया आपकी सेवा मे प्रस्तुत की जाने लगीं। लेकिन अभी चातुर्मास के लिये काफी समय था।

इन्हीं दिनो स 1996 का अहमदाबाद चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा भी सौराष्ट्र गुजरात में जैन धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार करते हुए मारवाड की ओर पधार रहे थे। उन क्षेत्रो की जलवायु शारीरिक स्वास्थ्य के अनुकूल न होने और वृद्धावस्था के कारण आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य में निर्बलता आ गई थी। जिससे अब स्थिरवास की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव होने लगी थी।

वैसे तो अहमदाबाद में ही स्वास्थ्य उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा था फिर भी आचार्यश्रीजी बेला तेला उपवास आदि तपस्याए करके स्वास्थ्य को टिकाये रहे लेकिन सुस्ती और कमजोरी में वृद्धि होती ही गई। यथासमय चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पालनपुर मेहसाना आदि स्थानों को फरसते हुए मारवाड सादडी में पदार्पण किया। इधर से चरितनायकजी भी फाल्गुन शुक्ला 13 को आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित हो गये।

वर्षों के पश्चात् गुरु-शिष्य के मिलन का यह दृश्य अलौकिक था। आचार्यश्री के चरणो मे अपने को पाकर विनीत शिष्य आत्म-विभोर थे तो शिष्य की विद्वत्ता प्रतिभा ऋजुता एव मृदुता का अवलोकन कर गुरु आत्मगौरव से पुलकित थे।

ब्यावर सघ की भावभरी विनती

यहाँ नयानगर (ब्यावर) का सघ पूज्य आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। सघ के आगीवान श्रावको ने गुरु चरणों मे भावभरी विनती प्रस्तुत की कि ब्यावर मे हितेच्छु श्रावक मण्डल का अधिवेशन हो रहा है। इसी अवसर पर सम्प्रदाय के सन्त-महात्माओ का भी एक सम्मेलन हो जाए तो सगठन की दृष्टि से उचित होगा। पूज्यप्रवर साम्प्रदायिक सत सम्मेलन करने का विचार कर ही रहे थे ब्यावर सघ के अत्याग्रह को देखते हुए एव सन्त-महासतियाँजी की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए ब्यावर सघ को क्षेत्र स्पर्शने की स्वीकृति प्रदान कर दी गई। ब्यावर सघ इस स्वीकृति से बाँसों उछलने लगा।

सम्प्रदायस्थ सत-सती सम्मेलन

आचार्यश्री युवाचार्यश्री का मार्गवर्ती क्षेत्रो को वीर-वाणी से आप्लावित करते हुए चैत्र शुक्ला 5 को ब्यावर शुभागमन हुआ। हजारो की सख्या में जन-सैलाब उमड़ पड़ा। वर्षों के पश्चात् सूर्य और चन्द्र को एक साथ देखने के लिए श्रद्धालु अपना लोभ सवरण नहीं कर सके।

स्थविर सन्त श्री चौथलालजी म., श्री मोड़ीलालजी म ठाणा 6 यहाँ पूर्व से ही

विराजमान थे। बडे श्री चाँदमलजी म ठाणा 3 पार्श्ववर्ती क्षेत्रा को स्पर्शकर पुन ब्यावर पधार गये। श्री बख्तावरमलजी म ठाणा 3 भी स्वास्थ्य की प्रतिकूल परिस्थितियों मे भी रायपुर से विहार कर पधार गये। महासतीश्री खेताजी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तनीश्री राजकुवरजी महाराज श्री सुगनकँवरजी महाराज ठाणा 15 महासतीश्री रगूजी महाराज के सम्प्रदाय की श्री सोनाजी महाराज श्री सोहागाजी महाराज ठाणा 23 महासती श्री मोताजी महाराज के सम्प्रदाय की महासतीश्री सुन्दरजी महाराज महासतीश्री सिरहकँवरजी महाराज ठाणा 7 भी उपस्थित थे। इस प्रकार 29 सन्त महापुरुष एव 73 महासतीवर्याओ की विद्यमानता के अलावा महासतीश्री नन्दकवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासतियाँ पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा के सम्प्रदाय की महासतियो की मौजूदगी भी ब्यावर के आध्यात्मिक माहौल को सुरम्य बना रही थी।

हितेच्छु मण्डल का अधिवेशन और सम्प्रदाय के सन्तो का सम्मेलन आकर्षण का कारण था। अत हजारो की तादाद मे दर्शनार्थियो का ताँता लग गया। बीकानेर भीनासर तो मानों उठकर ब्यावर ही आ गया। ब्यावर तीर्थ स्वरूप वन गया।

पूज्य युवाचार्यश्रीजी के नियमित प्रवचन चलते थे। चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को ब्यावर निवासी श्री किसनलालजी कर्णावट ने सपत्नीक शीलव्रत स्वीकार किया।

दिनाक 18 अप्रैल 1940 से सन्तो की बैठक प्रारभ हुई जो 24 अप्रैल तक निरावाध चली। सम्प्रदाय के सगठन की सुदृढ़ता सन्तों के पारस्परिक प्रेम सवर्धन एव ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि-इन तीन बिन्दुओ पर गहन चर्चा चली और सर्वानुमति से विभिन्न निर्णय हुए।

सम्प्रदाय की चली आ रही समाचारी का दृढता के साथ पालन करने की सभी सन्तों को हिदायत दी गई। आचार-क्रान्ति की दृष्टि से यह सम्मेलन हुक्म-सघ सम्प्रदाय में मील का पत्थर साबित हुआ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था बरावर कायम रहे जिसके लिए सभी सन्तों ने पूज्य युवाचार्यश्रीजी की आज्ञानुसार प्रवृत्ति चातुर्मास विहार वैयावच्च करते रहने की स्वीकृति प्रदान की तथा प्रतिज्ञा की कि युवाचार्यश्री की आज्ञा की अवेहलना नहीं करगे।

सतों के स्थानापन्न (ठाणापति) होने के लिये बीकानेर और ब्यावर क्षेत्र नियत रखे गये। सभी सन्तो को यह निर्देश दिये गये कि आचार्य/युवाचार्य की बिना आज्ञा कोई भी सन्त अन्यत्र कहीं ठाणापति हागे तो उनका उत्तरदायित्व सम्प्रदाय के आचार्य और साधुओं पर नहीं रहेगा।

युवाचार्यश्री की हृदय-परिवर्तन की कला

युवाचार्यश्री हृदय-परिवर्तन पर विश्वास रखते थे। शास्त्रीय नियम हो अथवा साम्प्रदायिक

नियम वे उसकी अनुपालना के लिये साधक की मनोभूमि को तैयार करते। ब्यावर-बेठक मे 'एक शिष्य परम्परा' पर चर्चा चली। बहुमत एक शिष्य परम्परा के पक्ष मे था पर कुछ सन्त चाहते थे कि शिष्य अपने-अपने हों। काफी लम्बी चर्चा के पश्चात् आचार्यवर की आज्ञा प्राप्त कर युवाचार्यश्री ने उदारता का परिचय देते हुए फरमाया– 'जिन-जिन सन्तो की इच्छा अपनी नेश्राय मे शिष्य करने की हो व साधु-सम्मेलन के दीक्षा सबधी नियमो का पालन करते हुए अपने द्वारा उपदिष्ट मुमुक्षु को खुशी-खुशी अपनी नेश्राय में दीक्षा प्रदान कर सकते हैं।

युवाचार्यप्रवर के मुखारविंद से ये उदारताभरे विचार सुनकर अपनी नेश्राय मे शिष्य करने के इच्छुक सन्त जहा हर्षित हुए वहा अन्य सन्त आश्चर्यित हो उठे। मन शकित हो उठा कि यह 'एक शिष्य परम्परा' कैसे चलेगी !

दीर्घद्रष्टा युवाचार्यश्रीजी ने हर्ष और आश्चर्य से मिश्रित वातावरण में अपनी अभिव्यक्ति को आगे बढाया– 'उन शिष्यों को निभाने का भार उनके गुरु (दीक्षा-दाता) पर रहेगा।

युवाचार्यप्रवर का स्पष्ट मत था कि जिसके शिष्य नहीं होगा तो उनकी सेवा की जवाबदारी सम्प्रदाय की नहीं रहेगी तथा जिसका शिष्य नहीं निभेगा उसकी जिम्मेदारी भी सम्प्रदाय पर नहीं रहेगी।

यह सुनते ही बैठक मे नीरवता का वातावरण व्याप्त हो गया। उन सन्तो के पास भी 'एक शिष्य परमपरा' मानने के अलावा कोई चारा नहीं था। धीरे-धीरे सभी सत एक विचारधारा मे ढल गये। युवाचार्यप्रवर के गहन चिन्तन ने सगठन को बचा लिया और विवादास्पद स्थिति भी नहीं होने दी।

अजमेर मे अक्षय तृतीया और समाजसुधार पर प्रवचन

अजमेर श्रीसघ एव वहा के प्रमुख श्रावक सेठ श्री गाढमलजी लोढा की साग्रह विनती को लक्ष्य में रखते हुए आचार्यश्रीजी का ब्यावर मे विराजित सभी सन्तो के साथ अजमेर म पदार्पण हुआ। महासती रगूजी म की सम्प्रदाय की सतीश्री केसरजी राजकँवरजी विदीजी महाराज आदि काफी सतियाँजी का भी पदार्पण हुआ। चतुर्विध सघ के विराजने से अजमेर एक तीर्थक्षेत्र सा हो गया।

वैशाख शुक्ला 3 (अक्षय तृतीया) दि 10 5 40 को वर्षीतप महोत्सव होने से अनेक क्षेत्रो के आगत श्राताओ की उपस्थिति मे चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने "भगवान ऋषभदेव के पारणे का सरस वर्णन करते हुए भगवान के जीवन पर विशद प्रकाश डाला जिसका श्रोताओं पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा।

वैशाख शुक्ला 4 दि 11 5 40 को व्याख्यान के प्रसग में युवाचार्यश्रीजी ने वृद्धविवाह की हानियो सामाजिक रूढियो आदि का विवेचन किया। इसका यह प्रभाव हुआ कि बहुत से भाइयो ने 40 वर्ष से अधिक उम्र वाले व्यक्ति के विवाह मे सम्मिलित न होने और बहिनों ने विवाहादि प्रसगो पर अश्लील गीतो के न गाने की प्रतिज्ञा ले ली। इसके अतिरिक्त तप त्याग आदि विविध धार्मिक आचरण किये जाने से अजमेर मे अनेक उपयोगी कार्य सम्पन्न हुए।

अजमेर मे विभिन्न श्रीसघो की ओर से अपने-अपने क्षेत्र मे चातुर्मास करने हेतु पुन विनतिया दोहराई गईं। सभी अपने-अपने यहा आगामी चातुर्मास होने के लिये आशा लगाये हुए थे। लेकिन द्रव्य क्षेत्र काल भाव को ध्यान में रखते हुए स 1997 के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का वगड़ी और युवाचार्यश्रीजी का फलौदी चातुर्मास स्वीकृत हुआ।

फलौदी चातुर्मास

अजमेर से यथासमय विहार करके आपश्री ब्यावर जोधपुर आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों मे धर्मोपदेश देते हुए खीचन पधारे। खीचन मे पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध स्थविर श्री रतनचन्दजी म सा आदि मुनिवरो के साथ वात्सल्यपूर्वक व्यवहार बहुत ही प्रशसनीय रहा। व्याख्यान इत्यादि के अलावा धर्म-ध्यान-त्याग तप का भी अच्छा वातावरण रहा।

पूज्य युवाचार्यप्रवर ठाणा 6 खीचन से विहार कर आषाढ शुक्ला 9 को चातुर्मासार्थ फलौदी पधारे। चतुर्विध सघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। पूज्यश्री के पदार्पण के साथ ही धर्म ध्यान का अद्भुत वातावरण बन गया। त्याग तप की झडी लग गई। ओजस्वी प्रवचनों की ऐसी धूम मची कि जनता का प्रवाह बढता ही गया।

26 अगस्त कृष्ण जन्माष्टमी को आम बाजार मे प्रवचन हुआ। कर्मयोगी श्रीकृष्ण के विषय मे जैनाचार्य के मुखारविन्द से ढाई घण्टे तक विस्तृत प्रभावोत्पादक प्रवचन सुनकर जनता हर्षविभोर हो गई। स्थानीय एव जोधपुर आदि बाहर की हजारो की सख्या में उपस्थिति थी। राज्य कर्मचारी ऑफिसर इत्यादि ने भी प्रवचन का लाभ लिया। श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी के जोशीले भजनो का भी जनता ने लाभ उठाया।

पर्युषण मे त्याग तप तथा पौषध की होड़ लग गई। आसोज सुदी 10 गुरुवार को कानाड के श्री नारायणलालजी धींग की 18 वर्ष की आयु मे ओसवालो के नोहरे में दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री अलसीदासजी कवरीलालजी चौरडिया के यहा से दीक्षा का जुलूस निकला। पूरे फलौदी मे श्रद्धा का ज्वार उमड पड़ा। इस अवसर पर श्री सिरहमलजी महाराज प श्री

समर्थमलजी म सा एव महासतीवृन्द भी खीचन से पधारे। दीक्षा के माहात्म्य पर युवाचार्यश्रीजी एव प श्री समर्थमलजी म सा का व्याख्यान हुआ। कार्तिक वदी 4 को सदर बाजार मे अहिसा' पर प्रभावक प्रवचन हुआ। श्री हाकिम साहब राज कर्मचारी आदि भारी सख्या मे उपस्थित थे। अहिंसा पर मार्मिक प्रवचन सुनकर श्रोताओ के दिल मे हिसा से स्वत नफरत हो गई। अनेकविध त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

बगडी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा सीधे रास्ते से बलुन्दा पधारने वाले थे परन्तु सेवाज मे परम गुरुभक्त श्री माणकचन्दजी म सा उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे कि भगवन ! सोजत रोड मे मेरे यहा शादी का प्रसग है। आपके पदार्पण से सभी को दर्शन-सेवा आदि का लाभ प्राप्त होगा। आप कृपा कीजिए ! परम कारुणिक जवाहराचार्य भक्त की भावना के मद्देनजर सोजत रोड पधार तथा वहाँ 10 12 दिन विराजे। तत्पश्चात् पूज्य युवाचार्यश्रीजी का फलौदी चातुर्मास सम्पन्न कर सोजत सिटी की तरफ पधारने का आभास होने से आचार्यश्रीजी ने सोजत सिटी की तरफ विहार किया। अपने उत्तराधिकारी के आगमन की प्रतीक्षा मे रत आचार्यश्री की सेवा मे 17 सत एव 27 सतियो का सगम हो गया।

पूज्य युवाचार्यप्रवर सालावास मे ज्वराक्रान्त हो जाने से सोजत सिटी कुछ विलम्ब स पौष वदी एकम को पधारे। सोजत तीर्थ-स्वरूप बन गया।

बगडी मे पूज्य आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य मे सुधार नहीं हुआ और अब रोग-जर्जरित देह विहार मे असहयोग-सा एव स्थिरवास की आवश्यकता व्यक्त करती थी। स्थिरवास के लिये भीनासर बीकानेर अजमेर ब्यावर रतलाम उदयपुर जलगाव आदि स्थानो की काफी समय से विनतिया हो रही थीं लेकिन बीकानेर-भीनासर श्रीसघो के सौभाग्य से आचार्यश्रीजी ने उनकी विनती स्वीकार करली और तदनुसार युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तों के साथ सोजत से बीकानेर की ओर विहार कर दिया।

आचार्यश्री युवाचार्यश्री आगे-पीछे साथ साथ विहार करते रहे। सोजत से सोजत रोड़ बगड़ी जयतारण होते हुए दोनो महापुरुषों ने ठाणा 19 से बलुन्दा पदार्पण किया। बलुन्दा म प्रवर्तनीश्री केशरकवरजी आदि काफी साध्वियाँ भी पधारीं। सेठ श्री छगनमलजी मुथा लम्बे समय से गुरु सेवा के लिये बलुन्दा ही रुके हुए थे। उन्होने गुर-सेवा के साथ स्वधर्मी वात्सल्य का भरपूर लाभ उठाया।

आचार्यश्रीजी आदि सन्तो के जोधपुर के निकट पधारने पर वहा क भाई अपने यहा पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए सीधे बीकानेर की ओर विहार होना उचित समझा गया। बलुन्दा म आचार्यश्री का

पुन स्वास्थ्य खराब हो गया और जैसे-तैस स्वास्थ्य मे कुछ सुधार होने पर मेड़ता होते हुए आचार्यश्री युवाचार्यश्री कुचेरा पधारे। कुचेरा मे पूज्यवरो के पधारने से सघ मे नई चेतना का सचार हो गया। श्री ताराचन्दजी सा गेलडा मोहनमलजी सा चौरडिया इन्दरचन्दजी सा गेलड़ा प्रभृति सघ-प्रमुखो ने पूज्यश्री की सेवा का खूब लाभ उठाया। यहाँ से नागौर होते हुए गोगेलाव अलाय होते हुए नोखामण्डी पधारे। यहा से आचार्यश्रीजी सीधे देशनोक होते हुए बीकानेर एव युवाचार्यश्री पाँचू, रासीसर होते हुए देशनोक पधारे।

तपस्वी हमीरमलजी म का स्वर्गारोहण

वालेसर मे जन्मे घोर तपस्वी वैय्यावची श्री हमीरमलजी म को कुछ दिनो से बुखार चल रहा था बाद मे निमोनिया हो गया। आपने पूज्य युवाचार्यश्रीजी के समक्ष आत्म -आलोचना की। फिर चैत्र शुक्ला नवमी को दिन के 3 30 बजे सथारा ग्रहण किया और रात्रि को 11 बजे पूर्ण समाधि के साथ नश्वर शरीर का परित्याग किया। पूज्य युवाचार्यश्री ने आत्म समाधि मे अतिम समय अच्छा सहयोग प्रदान किया। मुनिश्री के अतिम परिणाम अत्यन्त विशुद्ध रहे।

उदयरामसर मे बकरे को अभयदान दिलाया

युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त विहार करते हुए बीकानेर के निकटस्थ उदयरामसर पधारे। वहा शौचादि के निमित्त कुछ मुनिवर जगल गये। रास्ते मे उन्होने देखा कि कुछ लोग मन्दिर पर एक बकरे को मारने के लिये तैयारी कर रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उन मुनिवरों में से मुनिश्री सुन्दरलालजी म सा ने तत्काल वापस लौटकर युवाचार्यश्रीजी की सेवा मे स्थिति का निवेदन किया और तत्काल युवाचार्यश्री घटनास्थल की ओर चल पड़े। घटनास्थल की कुछ दूरी से ही युवाचार्यश्री ने मारने वाले को आवाज दी– 'मत मारो'। अहिसा के मसीहा की वाणी ज्यो ही मारने वाले के कानो मे पडी त्योंही तलवार गरदन पर गिरते गिरते रुक गई। पूज्य युवाचार्यश्री उसके नजदीक पहुँचे और बडे प्रेम से उसे पूछा– भाई-क्यो मारता है इस बकरे को ? इसने क्या अपराध किया ? मारने वाले ने कहा– मरी पत्नी बीमार थी अत मैंने 'बोलमा' (मिन्नत) की है। बोलमा बकरे की करी अत बकरे की बलि देऊगा। युवाचार्यश्री ने फरमाया– माताजी बलि नहीं चाहते यदि चाहेंगे तो वे स्वय ले लेगे। तुम माताजी के पास बकरा छोड जाओ। पहले तो उसने आनाकानी की फिर अहिंसा का स्वरूप समझाने पर वह समझ गया। उसने बलि का इरादा त्याग कर बकरे को 'अमर' कर दिया। दूसरे दिन व्याख्यान के समय वे सभी युवाचार्यश्रीजी का व्याख्यान सुनने के लिये आये। त्याग नियम ग्रहण किये। इसके सिवाय समयानुसार और भी त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

उदयरामसर से भीनासर गगाशहर होते हुए आचार्यश्रीजी आदि सभी सन्तो ने बीकानेर मे पदार्पण किया। आचार्यश्री युवाचार्यश्री आदि ठाणा 20 तथा महासतीश्री रगूजी म की सप्रदाय की महासतीश्री सोहनकवरजी म ठाणा 5 महासतीश्री नन्दकवरजी म की सप्रदाय की महासतीश्री मानकवरजी अनोपकवरजी म ठाणा 14 महासतीश्री सुन्दरकवरजी म ठाणा 3 का सान्निध्य बीकानेर के श्रद्धालुओ के लिए अपार हर्ष का हेतुभूत बना।

बीकानेर नगर बडा है। बाहर के दर्शनार्थियो का तो मेला-सा ही लगा रहता था। बीकानेर श्रीसघ ने उनके सम्मानादि की समुचित व्यवस्था की थी किन्तु गर्मी की अधिकता आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं पड़ी।

आचार्यश्री दिन मे सेठिया कोटड़ी मे तथा सायकाल को श्री अजीतमलजी पारख के बगले मे जो शहर के बाहर है विराजते थे। प्रतिदिन युवाचार्यश्रीजी अपनी वाणी से धर्मामृत का पान कराते जिससे श्रोताओ के हृदय गद्गद हो उठते थे। प्रवचन-समय के सिवाय चरितनायक शेष समय गुरुदेव की सेवा वैयावच्च मे पूर्ण मनोयोग से तत्पर रहते थे। आपका भी स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था घुटनो मे दर्द बना रहता था। परन्तु अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके सदैव गुरु सेवा म सलग्न रहना आप अपना सर्वोपरि लक्ष्य मानते थे।

स 1998 ज्येष्ठ शुक्ला एकम को रतलाम मे जन्मे स्थविर सन्तश्री हुकमीचन्दजी म सा ने पूज्य जवाहराचार्यजी के मुखारविन्द से तिविहार सथारा ग्रहण किया। सत्तर-वर्षीय तपस्वी सन्त का ज्येष्ठ शुक्ला दूज बुधवार को प्रात साढे पाँच बजे स्वर्गवास हो गया। तपस्वीजी की दीक्षा-पर्याय करीब तैयालीस वर्ष की थी। वृद्धावस्था के कारण काफी वर्षों से आप बीकानेर ही विराजते थे। आप काफी सौभाग्यशाली थे जो पूज्य युवाचार्यश्रीजी ने स्वय आपको सयम मे खूब साज दिया। अत तक परिणाम बहुत उच्च और विशुद्ध रहे।

गुरु-आज्ञा बेहिचक शिरोधार्य की

नीति कहती है– आज्ञा गुरुणा ह्यविचारणीया'–गुरुओ की आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिये। चाहे वह आज्ञा रुचिकर हो या अरुचिकर लेकिन गुरुजनो की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमे अधिकार नही है।

चरितनायक के रोम-रोम मे यह मत्र रमा हुआ था। आपके जीवन की धारा अनुप्राणित थी 'गुरोराज्ञा बलीयसी' के आदर्श से। सेवाधर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्य की उक्ति को आपने सर्वथा झुठलाया था और अपने आचार से सर्वगम्य बना दिया था।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा द्वारा स 1998 का चातुर्मास युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तो सहित भीनासर मे करने का फरमा देने से भीनासर, गगाशहर उदयरामसर, बीकानेर उदासर आदि आस-पास के क्षेत्रो मे हर्षोल्लास छा गया था।

आषाढ़ मास का समय था। चातुर्मास-स्थापना के दिवस इने गिने रह गये थे। उन दिनो पूज्य आचार्यश्रीजी म सा बीकानेर मे श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन में विराज रहे थे और सरदारशहर श्रीसघ की अपने यहा सन्तो के चातुर्मास के लिये अत्याग्रहभरी विनती हो रही थी। वहा के श्रीसघ का प्रतिनिधिमण्डल पहले भी अपनी स्थिति की जानकारी कराने के लिये आचार्यश्रीजी की सेवा म उपस्थित हो चुका था और परिस्थिति को देखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी भी विद्वान सन्तो का सरदारशहर में चातुर्मास होना आवश्यक समझते थे।

लकिन सन्ता की शारीरिक स्थिति और समय की अल्पता के कारण कुछ निश्चयात्मक स्थिति नहीं बन रही थी। युवाचार्यश्री गेणशलालजी म सा के घुटनों में दर्द बना रहता था और दूसरे सन्त भी आचार्यश्रीजी की सेवा मे रहने के लिये उत्सुक थे।

आचार्यश्रीजी की यह दुविधा देखकर चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने सेवा मे निवेदन किया कि आपकी जो भी आज्ञा होगी मुझे शिरोधार्य होगी। आपश्री इस दुविधा की स्थिति का मन पर असर न होने दें। आपके मन की समाधि रहना हमारे लिये श्रेयस्कर है। भावो के पारखी आचार्यश्रीजी ने विनीत शिष्य की अन्तर्ध्वनि को सुना और फरमाया-- अभी तुम्हारा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है ग्रीष्मऋतु प्रचड है और समय भी कम है। अत ऐसी स्थिति मे यथासमय सरदारशहर पहुचना कठिन-सा है। बस यही विचार मेरे मन म बार-बार उठ रहा है।

युवाचार्यश्रीजी ने अर्ज की कि जब सरदारशहर में चातुर्मास होना जरूरी है तो आपश्री मेरे स्वास्थ्य का विचार न करें। आपके आदेश आज्ञा और आशीर्वाद से सब अनुकूल ही रहेगा। आपकी आज्ञा मेरे लिये नन्दनवन है। आपके आशीर्वाद से शरीर स्वस्थ और सशक्त हो जाएगा। बस अपना आशीर्वाद प्रदान कर प्रस्थान को प्रशस्त बनाय और आचार्यश्रीजी ने शिष्य के गौरव को ध्यान मे रखते हुए युवाचार्यश्रीजी को सरदारशहर चातुर्मास हेतु प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान की।

उस समय उपस्थित जनसमूह यह सब देख रहा था। उसके मनोभाव आखों से यह निकले कठ भर आये मुख मुरझा गये और शून्य आखें एक-दूसरे के अन्तर् की टोह लेने के लिये अपलक-सी रह गईं। उन्हें आशा थी कि आचार्यश्रीजी एव युवाचार्यश्रीजी के उपदेशामृत पान का सुवअसर हमें सहज ही प्राप्त होगा। लेकिन अब यह आशा निराशा में रूपान्तरित हो गई थी।

विनीत शिष्य तो आदेश के साथ ही आशीर्वाद ले प्रस्थान पथ पर अग्रसर होने के लिये चल पड़े। समय मध्याह्न वेला का था। सहस्त्ररश्मि प्रचडता से प्रकाशमान था। आगे-आगे सन्त मण्डल और पीछे-पीछे श्रावक-श्राविकाओं का समूह आंखा मे आसू भरे चल रहा था और मौन वेदना बारम्बार व्यक्त करती थी कि आपश्री यहा विराजें।

चरितनायकजी ने उन सबको सात्वना दी समझाया और फरमाया–आपका धर्मोत्साह सराहनीय है। गुरुदेव की आज्ञा ही मेरे लिये मगलप्रद है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है मुझ अकिचन ने गुरुचरणो के प्रताप से जो-कुछ विरासत मे प्राप्त किया है उसे ही वितरित कर देता हूँ और निजानन्दरसलीन हो सुखानुभव करता हूँ। रही प्राकृतिक वातावरण की सो आप उसका विचार न करे। मेरे लिये गुरुदेव का वरद आशीर्वाद सभी स्थिति मे शातिप्रद है। मैं अकेला नहीं हूँ, मेरे साथ गुरुदेव का आशीर्वाद है। उसकी मगलमयी किरणे मेरे लिये सदैव सहायक रही हैं और रहेगी। आपकी भक्ति एव धर्मप्रेम मुझे गुरुदेव की आज्ञा-पालन मे सहायक होगा। आप लोग अपने को महावीर का अनुयायी मानते हैं लेकिन आश्चर्य है कि आज अपनी वीरता को आखो से वहा रहे हो ! वीर तो वढते हुओ को वीरता का वोध देते हैं। इस आशय के भावो से उपस्थित जनसमुदाय को भली प्रकार आश्वस्त करके श्रमणसरदार युवाचार्यश्रीजी ने सतमण्डल के साथ सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया।

युवाचार्यप्रवर ने प्रथम पड़ाव भीनासर किया। यहा की जनता तो आराध्य के सान्निध्य से वचित होने के कारण कारण बेहद व्यथित थी। आपश्री ने उन्हे मधुर वचनो से सात्वना प्रदान की। फिर आपाढ़ वदी 13 को लक्ष्य की ओर विहार कर दिया।

विनयशीलता और अनुशासनप्रियता तो आपकी रग-रग मे समाई हुई थी। कभी-कभी प्रवचन करते समय गुरुदेव कभी टोक देते तो उसी समय असावधानी के लिये क्षमायाचना के साथ कृतज्ञतापूर्वक उनकी सूचना अगीकार करते थे। चाहे फिर श्रोताओ की उपस्थिति सैकड़ो मे हो और श्रोताओ को सावधानी दिलाते हुए फरमाते कि गुरुदेव की शिक्षा प्रवल पुण्योदय से मिलती है और शिष्य के जीवन-विकास के लिये आवश्यक है।

चरितनायक ने सदैव गुरु-आज्ञा के अनुसार चलना सर्वोपरि माना था। यही कारण है कि आप पूर्णरूपेण गुरु का प्रसाद पाने मे सफल हुए। आपकी विनमता भक्ति और कर्तव्यपरायणता इतनी उच्चकोटि की थी कि आपके जीवन का आदर्श युग-युग तक स्मरणीय रहेगा।

श्रीडूगरगढ के निकट मुनि मोतीलालजी का अकस्मात् स्वर्गवास

सरदारशहर थली प्रदेश का प्रमुख नगर है और थली प्रदेश मारवाड़ का मध्य क्षेत्र है एक तो मारवाड की मरुधरा वैसे ही शुष्क होती हैं और उसमे भी थली-प्रदेश की शुष्कता तो अपने ही प्रकार की है। यहा की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी नहीं है किन्तु यहा का बहुजनवर्ग हृदय से भी शुष्क है। इसके साथ ही वहा तेरहपन्थियों का ही विशेष रूप से आवागमन हुआ है जो अपने उपदेशो म–मरते जीव को बचाना पाप है प्यासे को पानी पिलाना पाप है माता

द्वारा बालक का पालन-पोषण होना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना एकान्त पाप है माता-पिता की सेवा करना पुत्र के लिये पाप है आदि आदि–मानवता विरोधी और अविवेकता से भरी हुई बातो का प्रचार करते हैं। लेकिन यह सब कहा जाता है परमकारुणिक भगवान महावीर के नाम पर कि हे भगवन् ! तेरा पथ यह है। ऐसो ने धर्म को तीन-तेरह करके तेरे के स्थान पर मेरे-मेरे का ढिढोरा पीट रखा है।

यद्यपि ऐसे शुष्क जनमानस को स्नेहसिक्त करने के लिये चरितनायकश्री का पहले भी पदार्पण हो चुका था लेकिन गरम लोहे पर दो-चार बूद पानी डालने से शीतलता नहीं आती है किन्तु उसको शीतल करने के लिये जलधारा के सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। अत शुष्क मानवो को आर्द्र करने के लिये परमकरुणा के दयासागर की धारा का प्रवाह बहाने के लिये हमारे चरितनायक बढ़े जा रहे थे बढ़े जा रहे थे।

थली-क्षेत्र मे गाव दूर-दूर बसे हुए हैं और मानवतायुक्त मानवों की बस्ती भी कहीं कहीं पर है। बीकानेर से शिवबाडी नापासर आदि क्षेत्रो मे विहार करते हुए आप तीन सन्तों के साथ श्रीडूगरगढ पधारे और तीन सन्त एकाध रोज के अन्तर से पीछे पीछे आ रहे थे। श्रीडूगरगढ पधारने पर आपश्री आशारामजी झवर की बगीची में विराजे और दोपहर बाद वहा से आगे के लिये विहार कर दिया।

तीन सन्त जो एक मजिल पीछे-पीछे आ रहे थे श्रीडूगरगढ से तीन कोस पहले हेमासर नामक गाव मे पहुचे। वहा आहार पानी का सयोग नहीं बना और विशेष रूप से पानी का। गरमी का मौसम था अत कम से कम तीन पात्र पानी चाहिये था लेकिन मिला एक ही, जो तीनों सन्तो के लिये पर्याप्त नहीं था। उससे कुछ पिपासा शात करके उन्होंने सोचा कि यहा से श्रीडूगरगढ तीन कोस है। और वहा युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त विराज रहे हैं एव बादल होने से धूप भी कुछ कम है। अत ऐसा विचार कर दोपहर के करीब उन्होंने श्रीडूगरगढ की ओर विहार कर दिया।

लेकिन थोड़ी देर बाद बादल बिखर गये। सूर्य के प्रचड ताप के साथ लू के झोंके आने लगे। रास्ते मे कोई छायादार वृक्ष नहीं था अत एक खेजड़ी के नीचे बैठकर किसी तरह मध्याह्न का समय व्यतीत किया और पुन करीब तीन बज वहा से विहार कर दिया।

इन तीन सन्तो मे मुनिश्री मोतीलालजी म सा वयोवृद्ध थे और श्रीडूगरगढ करीब डेढ मील रहा होगा कि उनको चक्कर आने लगे। साथ के सन्तों से आपने कहा कि चक्कर आ रहे हैं घबराहट हो रही है और कण्ठ सूख रहा है जिससे चलने में कठिनाई मालूम पड़ती है। इस स्थिति को देखकर साथ के मुनि करणीदारजी म और मगनमुनिजी इन दोनों सन्तों ने सहारा देकर उनको एक खेजड़ी के नीचे बैठा दिया और मुनि मगनलालजी वहीं सेवा वैयावच्च के लिये ठहर गये एव दूसरे मुनि करणीदानजी जल लेने के लिये श्रीडूगरगढ की ओर चल दिये।

श्रीडूगरगढ की ओर जाने वाले सन्त ने गाव के निकट आकर किसी राहगीर से जाकर पूछा कि यहा ओसवालो का मोहल्ला किधर है ? उसने मोहल्ले की ओर जाने वाले रास्ते का सकेत कर दिया। सकेतित रास्ते से होते हुए सन्त बाजार मे पहुचे और ओसवाल भाइयों से पूछा कि यहा युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा किधर विराज रहे हैं। किन्तु उन्होने कुछ पता ठिकाना न बताकर ऐसी मजाक मे बात उडा दी। इस पर पुन सन्त ने बताया कि यहा से करीब डेढ मील पर एक वयोवृद्ध सन्त को तकलीफ है प्यास के कारण कण्ठ सूख रहे हैं और घबराहट है। यहा कोई योग्य मकान बता दीजिये जिसमे पात्रादि भडोपकरण रखकर और आप लोगो के यहा से प्रासुक उचित जल की गवेषणा करके उनके पास पहुचू।

फिर भी उन्होने बात पर ध्यान नहीं दिया और न रास्ता ही बताया। बाजार के इस छोर से उस छोर तक घूमने पर भी सन्त को कुछ भी जानकारी न मिल सकी। अकस्मात् श्री भोणारामजी झवर के घर के सामने से गुजरना हुआ। वहीं झवरजी मिल गये। बातचीत करते हुए सन्त ने पूछा कि युवाचार्यश्रीजी किधर विराज रहे हैं ? उत्तर मे श्री झवरजी ने बताया कि अभी कुछ देर पहले ही उन्होने बगीचे से विहार किया है आप सामान बगीची मे रखिये और मेरे घर से जल ले जाकर प्यासे सन्तो को शान्ति पहुचाइये।

सन्त पानी लेकर वापस सेवा मे आने के लिये चल पडे। करीब फर्लांग डेढ फर्लांग पहुचे होगे कि वयोवृद्ध सन्त मुनिश्री मोतीलालजी म सा ने सथारा-पूर्वक स 1998 आषाढ सुदी 7 को प्राण त्याग दिये। रास्ता बताने के लिये जो भाई साथ मे थे उन्होने वापस आकर सब घटना श्री झवरजी को सुनाई और बीकानेर के भाइयो को भी जो युवाचार्यश्रीजी के दर्शन कर बीकानेर जाने के लिये स्टेशन गये थे वृद्ध मुनिश्री मोतीलालजी म सन्त के देहावसान की खबर दी।

इस दारुण दुर्घटना को सुनकर सभी जाने वालो ने टिकिट वापस कर स्वर्गस्थ सत के दाहसस्कार की तैयारी की। बाजार में चदन नारियल आदि की तलाश की किन्तु मुहमागे दाम देने पर भी उपलब्ध नहीं हो सके। उन्हीं दिनो श्री झवरजी के यहा विवाह की तैयारी हो रही थी और इसके लिये नारियल आदि उन्होंने ले रखे थे। लेकिन मागने मे सकोच हो रहा था। दुविधा का पता चलते ही श्री झवरजी ने नारियल आदि की बोरिया दीं और दाहसस्कार करके बीकानेर के भाई वापस बीकानेर लौटे।

जब इस दारुण दुर्घटना के समाचार चरितनायकजी को प्राप्त हुए तो श्रीडूगरगढ से विहार कर जहा पहुचे थे वहीं रुक गये और स्वर्गस्थ आत्मा की शान्ति के लिए चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। श्री मोतीलालजी म वयोवृद्ध थे। अनुभवी थे। पूज्य युवाचार्यप्रवर ने सलाहकार के रूप मे उन्हें साथ लिया था परन्तु विधि की विडम्बना कहें कि युवाचार्यप्रवर सहित सन्तों ने धैर्य रखा।

बाधाए विचलित न कर सकी

जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देश की ओर बढते चरणों को लाख बाधाए विचलित नहीं कर सकीं तो उनके अनुयायी श्रमणों को बाधाए कैसे विचलित कर सकती थीं ? दुर्जन अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ सकते हैं तो सज्जन भी अपने आरम्भ किये हुए जनकल्याण के कार्यों से कभी भी विरत नहीं होते हैं। एक कवि ने कहा है

त्यजति न विदधान कार्यमुद्विज्य श्रीमान्।
खलजन-परिवृत्ते स्पर्धते किन्तु तेन।।

दुष्टजनों की चेष्टाओ से घबरा कर बुद्धिमान पुरुष अपने आरम किये हुए कार्य का त्याग नहीं कर सकता वरन् स्पर्धा करता है। अर्थात् जैसे दुष्ट अपनी चेष्टाओं से बाज नहीं आता वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने कार्य को पूरा किये बिना विश्राम नहीं लेता है।

जब पीछे आने वाले शेष दो सन्त आपके पास आ गये तो उन्हे साथ लेकर पुन सरदारशहर की ओर विहार कर दिया और यथासमय सरदारशहर के निकट पधार गये।

सरदारशहर चौमासा और दो दीक्षाएँ

सरदारशहर के बन्धुओ ने चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश के लिये ज्योतिषियो से मुहूर्त निकलवाया था। इसका सकेत उन्होने चरितनायकजी की सेवा में भी किया तो फरमाया- तो गुरुदेव की आज्ञा से चातुर्मास करने के लिये आया हूँ, अत गुरु-आज्ञा ही सबसे अच्छा मुहूर्त है और क्षयतिथि आषाढ शुक्ला 10 के दिवस ही सरदारशहर में प्रवेश किया।

चातुर्मासार्थ नगर मे प्रवेश करने के लिये मुहूर्त आदि देखने की परिपाटी श्रावकों तक ही सीमित नहीं है लेकिन कुछ-एक साधु-सन्त भी चातुर्मास के निमित्त नगर प्रवेश करते समय मुहूर्त आदि देख लिया करते हैं। मगर आपने सदैव गुरु आज्ञा को ही मुहूर्त समझा। चाहे तिथि क्षय हो या रिक्ता तिथि हो, चौघड़िया अनुकूल हो अथवा न हो नक्षत्र और योग प्रतिकूल हो चन्द्रमा और योगिनीवास मीठ पीछे हो आपने इसकी कभी चिन्ता नहीं की। न कभी मुहूर्त निकाला और न इसका हिसाब लगाया। आपकी तो धारणा थी– गुरु-आज्ञा ही मेरे लिये शुभ मुहूर्त और सन्मुख चन्द्रमा है।

आपका यह चातुर्मास सरदारशहर के लिये ही नहीं वरन् समस्त थली प्रदेश के लिये वरदान सिद्ध हुआ। आत्मशुद्धि के लिये विभिन्न प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान और तपस्याए होने के साथ-साथ अनेक व्यक्तियों ने धर्म के स्वरूप को समझकर सत्य का अनुकरण करने की प्रतिज्ञा ली।

श्री हुकमचन्दजी और श्री सुमेरमलजी की भागवती दीक्षा सरदारशहर के इसी चातुर्मास मे आपके द्वारा सम्पन्न हुई थी। महासतीश्री हुलासकवरजी म ठाणा 4 के सान्निध्य से बहनो ने साध्वाचार-श्रावकाचार का विशुद्ध ज्ञान अर्जित किया। बहनो के लिये साध्वीवर्याओ का सान्निध्य धर्म-ध्यान का दृष्टि से उपयोगी रहा।

पुन अस्वस्थ गुरुदेव की सेवा मे

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् थली-प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो मे विचरण करते हुए चरितनायकजी सुजानगढ पधारे। यहा तत्त्व-चर्चा में लोगों ने काफी लाभ लिया। यहा से लाडनू पधारना हुआ जहा कुछ दिन विराजना रहा। प्रवचन आदि में अच्छी उपस्थिति होती। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को यहा से विहार किया और बीकानेर पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की सेवा में पधार गये। इस विहार से थली-प्रदेश म काफी उपकार हुए और सरलहृदय जनों ने धर्म के अतरग रहस्य को समझकर जड़ मान्यताओ के त्याग का सकल्प किया।

युवाचार्यश्री के स 1999 क चातुर्मास की स्वीकृति बीकानेर सघ को प्राप्त होने से श्रद्धालुओ मे हर्ष का वातावरण छा गया। बीकानेर में कुछ दिन गुरु-सान्निध्य में सेवा का लाभ लेकर पूज्य गुरुदेव की आज्ञानुसार युवाचार्यप्रवर ने उदयरामसर देशनोक रासीसर होते हुए नोखा पदार्पण किया। नोखा मे प्रवचनो में काफी जनता इकटठी होती थी। तेरहपन्थी भाइयो ने प्रवचन श्रवण का खूब लाभ उठाया। नोखा मण्डी स्कूल के कतिपय तेरहपन्थी छात्रो ने शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। आस पास नागौर आदि सघ विनत्यर्थ उपस्थित हुए। झज्झू, पाँचू आदि क्षेत्रो को अपन सान्निध्य का लाभ प्रदान कर आपश्रीजी देशनोक पधारे।

उन दिना भीनासर आचार्यप्रवर की सेवा मे सेवाभावी श्री बक्तावरमलजी म प मुनिश्री श्रीमल्लजी म., श्री सुन्दरलालजी म., श्री मगनमुनिजी म आदि सन्त अग्लान भाव से पूज्यवर की सेवा म रत थे। आपश्रीजी ने जब भीनासर से विहार किया था तब पूज्य जवाहराचार्य का स्वास्थ्य वृद्धावस्था को देखते हुए साधारणतया ठीक था। कमजोरी और घुटनों में दर्द तो था लेकिन अन्य कोई ऐसे लक्षण नही दिखते थे जो चिन्ताजनक हों कि अकस्मात् जेष्ठ शुक्ला 15 को आचार्यश्रीजी को पक्षाघात (लकवा) हो गया। इन दिनो चरितनायक युवाचार्यश्री देशनोक विराज रहे थे। सूचना मिलने पर आपश्री देशनोक से विहार कर यथाशीघ्र पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में पधार गये।

अस्वस्थ पूज्य जवाहराचार्य द्वारा सभी जीवो से क्षमायाचना

शरीर में विविध व्याधिया के प्रकोप और उनका प्रतिरोध करने वाली शारीरिक शक्ति की असमर्थता को देखकर आचार्यश्रीजी ने प्राणिमात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा।

अत आचार्यश्रीजी ने भीनासर मे जीवन की आलोयणा प्रायश्चित्त करने के पश्चात दि 21 6 42 को चतुर्विध सघ के समक्ष 84 लाख जीवयोनि से क्षमायाचना की।

युवाचार्यश्री को कार्यभार सौंपा

क्षमायाचना सम्बन्धी विचारो के साथ ही चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के बारे मे फरमाया— "लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैंने साम्प्रदायिक शासन का भार युवाचार्यश्री गणेशलालजी को सौंप रखा है। उन्होने जिस योग्यता परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं वह आपके समक्ष है। मुझे इस बात का परम सतोष है कि युवाचार्यश्री गणेशलालजी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर दिया है और कार्य अच्छी तरह सभाल लिया है। साथ ही इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य प्राणियो का अधिकाधिक कल्याण हो यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

आचार्यश्रीजी के लकवा की शिकायत अभी दूर भी नही हो पाई थी कि कमर के बायीं ओर जहरीला फोडा (कार्बकल) उठ आया। फोडे के कारण दुस्सह वेदना थी और बुखार भी हो गया था। शल्य चिकित्सा से भी जीवन बचना असम्भव-सा प्रतीत होने लगा कि अकस्मात् फोड़ा अपने आप फूट गया और 15 20 दिन बाद फोड़े मे कुछ सुधार दिखाई देने लगा। करीब छह माह मे फोडा तो ठीक हो गया लेकिन दायीं करवट लेटे रहने के कारण बायें अगो मे इतनी कमजोरी आ गई कि उठना बैठना कठिन हो गया।

आषाढ शुक्ला द्वितिया को बीकानेर निवासी श्री कन्हैयालालजी भवरलालजी कोठारी की मातुश्रीजी पार्वतीबाई की दीक्षा का कार्यक्रम था। रात्रि से ही भारी वर्षा चल रही थी। जल-थल एक हो रहे थे फिर भी प्रात 6 15 बजे अपार उत्साह के साथ दीक्षा विधि सम्पन्न हुई।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्यश्रीजी का 1999 का चातुर्मास पुन भीनासर ही हुआ तथा युवाचार्यश्रीजी का चातुर्मास बीकानेर हुआ। आपश्री पूज्य आचार्यवर की सेवा मे समय-समय पर भीनासर पधारते रहते थे। वैसे आपश्री के नियमित प्रवचन आदि का बीकानेर मे ही चलते थे। युवाचार्यश्री के व्याख्यान की रोचकता व प्रभावोत्पादकता इस चातुर्मास में चरम पर पहुच चुकी थी। प्रवर्तिनीश्री सुगनकवरजी म. तथा महासतीश्री हुलासकवरजी म सयुक्त ठाणा 13 की उपस्थिति श्राविकाओ मे धर्म जागरणा की दृष्टि से बेहतर सिद्ध हुई। त्याग तप प्रचुर मात्रा मे हुए।

युवाचार्यश्रीजी बीकानेर चातुर्मास सम्पन्न कर पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा मे भीनासर पधार गये। भीनासर मे आचार्यश्री का चातुर्मास भी धार्मिक प्रभावना की दृष्टि से बडी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

भीनासर चातुर्मास और दो दीक्षाएँ

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर मार्गशीर्ष कृष्णा 4 को देशनोक निवासी श्री ईश्वरचन्दजी सुराना और श्री नेमीचन्दजी सेठिया गगाशहर निवासी की भागवती दीक्षाए आचार्यश्रीजी द्वारा सम्पन्न हुई। आचार्यश्रीजी के वरदहस्त से ये दो अन्तिम दीक्षाए हुई थीं। आचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ पजाब सम्प्रदाय के मुनिश्री ताराचन्दजी म., प श्री शुक्लचन्दजी म आदि सन्तो का आगमन हुआ। प्रवचन पजाबी सन्तों के हुए, फिर भी युवाचार्यप्रवर प्रवचन सभा मे विराजते। बड़ा मधुर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा। लगभग 2 माह तक युवाचार्यश्री ने देशनोक इत्यादि क्षेत्र स्पर्श कर पुन भीनासर पदार्पण किया।

आलोचना-प्रायश्चित्त द्वारा आत्मशुद्धि और महाप्रयाण

आचार्यश्रीजी का पहले हुआ फोडा तो ठीक हो गया था और स्वास्थ्य सुधार पर भी था कि अकस्मात् जुलाई 43 के प्रारम्भ में पुन गर्दन पर एक जहरीला फोड़ा उठ आया और उसी तरह के छोटे-छोटे फोड़े शरीर के दूसरे भागो मे उठ आये। घोर वेदना थी अत रात्रि के समय सेवा के लिये सन्तों का बारी-बारी से जागरण रहता था। स्वर्गवास होने के दिन की पूर्व रात्रि मे प्रथम प्रहर तक स्वास्थ्य कुछ ठीक-सा प्रतीत होता था। युवाचार्यश्री अपने नित्य नियम करके प्रहर-रात्रि बाद पौढ गये और करीब 11 बजे जो सन्त सेवा म थे उनमे से मुनिश्री नानालालजी म सा को आचार्यश्रीजी म सा की श्वासगति मे परिवर्तन प्रतीत हुआ और युवाचार्यश्रीजी को आचार्यश्रीजी की श्वासगति के बारे मे बतलाया कि अब गति के लक्षण दूसरे प्रकार के हैं। युवाचार्यश्रीजी आचार्यश्रीजी के पास आये और नाड़ी की गति देखी उसके परिस्पन्दन मे परिवर्तन और निर्बलता प्रतीत हुई। लेकिन आचार्यश्रीजी होश-हवास मे थे और उसी समय सबसे क्षमत क्षमापना करने के पश्चात् औषधोपचार आदि के कारण लगे हुए साधारण दोषो की भी आलोचना युवाचार्यश्रीजी के समक्ष कर ली। इस समय युवाचार्यश्रीजी ने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि आप स्वय समर्थ हैं अत स्वय ही प्रायश्चित्त लेने की कृपा करें और मेरे लिये क्या आज्ञा है सो फरमावे। आचार्यश्रीजी ने इस प्रसग पर इस आशय के भाव फरमाये कि आप सब तरह से योग्य हैं शास्त्रीय दृष्टि को सन्मुख रखते हुए अपनी अन्तरात्मा को जैसा जान पड़े वैसा करना। आचार्यश्री ने प्रसन्नमुद्रा में युवाचार्यश्री को

मोलावण देकर आषाढ शुक्ला 8 को मध्याह्न के समय 11 30 बजे सथारे का प्रत्याख्यान ग्रहण कर लिया। और उसी दिन सायकाल करीब 5 बजे सथारापूर्वक इस नश्वर देह को त्यागकर आचार्यश्रीजी की आत्मा अनन्त मे विलीन हो गई।

जवाहराचार्य की गुणानुवाद सभा

सूर्यास्त के साथ ही ज्योतिपुज जवाहर-सूर्य अस्त हो गया। सघ की अनमोल धरोहर छिन गई और समस्त श्रीसघ इसकी सूचना मिलते ही शोक-सतप्त हो गये। दाह सस्कार के पश्चात् श्रद्धाञ्जलि सभा का समायोजन किया गया। अनेक लोगो ने अपने विचार रखे। उस समय आबाल-वृद्ध नर-नारी अमीर-गरीब साक्षर-निरक्षर सभी के चेहरो पर अपूर्व विषाद दिखाई देता था। जगबधु, युगद्रष्टा का वियोग हृदय मे चुभ रहा था मानो किसी स्नेहपात्र आत्मीय जन का वियोग हो गया हो। पूज्य जवाहाराचार्य के वियोग से जैनों ने अपना जवाहर खोया सन्तों ने सिरताज खोया धर्म ने आधार खोया सघ ने सघनायक खोया पंडितों ने पथप्रदर्शक खोया गुणों ने गुणाकर खोया पथभ्रष्ट पथिकों ने प्रकाशस्तम्भ खोया ज्ञान पिपासुओं ने अमृतस्रोत खोया।

श्री जवाहराचार्य शताब्दियो मे दृष्टिगोचार होने वाली विरल विभूति थे। उनका जीवन राष्ट्र की एक निधि थी उनके प्रति जनता और जननेताओ की अटूट श्रद्धा और निष्ठा थी। पूज्य जवाहराचार्य बीसवीं शताब्दी के अजोड आचार्य थे। भारतीय इतिहास मे गाधीजी का नामोल्लेख जितने सम्मान एव गौरव के साथ किया जाता है उतने ही आदर से पूज्यश्री का पुण्यस्मरण किया जाता रहेगा। आपश्री की अनमोल वाणी ने राष्ट्र और समाज में नवचेतना का सचार किया है। खादी गोपालन गृह उद्योग और अल्पारम महारम के सम्बन्ध मे सही विचारो का दिग्दर्शन कराकर उन्होने समाज को दिव्यचक्षुओ का जो दान दिया है उसके लिये समाज उनका ऋणी रहेगा और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करेगा। जब धर्म के नाम पर महा-आरम्भजन्य उत्सवो सवर के स्थान पर आस्रव वैराग्य के स्थान पर विलास त्याग के स्थान पर भोग का समाज मे बोलबाला था तब पूज्यश्री ने अल्पारभ और महारभ की व्याख्या समझाकर पवित्रता के पुनीत पथ पर प्रयाण करने का मार्ग प्रदर्शित किया था और जहां सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नहीं पहुच सकता ऐसे अज्ञान-अन्धकाराच्छादित हृदयपटलो को पूज्यश्री ने प्रकाशित किया था। दीर्घजीवी होना जीवन की विशेषता नहीं है। किन्तु महत्त्व तो है आदर्श जीवन का। पूज्यश्री का जीवन आदर्श था आदर्शपुज था और आदर्श के कीर्तिमान स्थापित कर जन-जन के लिये आदर्श बन गये हैं। जिस प्रकार यात्रा के जल थल और आकाश तीन मार्ग हैं और उनमे आकाश-मार्ग सर्वोत्कृष्ट है। इसी प्रकार जीवन यात्रा के भी तीन मार्ग हैं-

आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक मार्ग सर्वोत्तम है। पूज्यश्री ने अपनी जीवनयात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की।

पूज्य जवाहराचार्य अध्यात्म-विज्ञानशाला की कसौटी पर परीक्षित खरे जवाहरात थे। उन्होने वही कहा जो शास्त्रसमत था और उसे ही आचार मे उतारा जो शास्त्रनिरूपित था। वे निर्भय और निर्द्वन्द्व होकर ही चलते रहे। उन्हे लोकभय आदि भी अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सके और न मान-सम्मान की आकाक्षा भी सत्यान्वेषण से विमुख बना सकी।

श्री जवाहराचार्य गये किन्तु वे अपनी विरासत अपने अनुभव अपनी क्रातिकारी विचारधाराओं का सुरक्षित कोष पाट-परम्परा में नवाभिषिक्त चरितनायक आचार्यश्री गणेशलालजी म सा को सौंप गये। वह कोष आज भी सुरक्षित है सवर्धित है और जब तक सन्तो की परम्परा चलती रहेगी तब तक उनके आदर्श सदैव जीवन्त रहेंगे।

आचार्य पदारोहण

प्रकृति प्रकाश में ही विकसित होती है यह सनातन का नियम है। नवोदित प्रकाशपुज के स्वागतार्थ चराचर विश्व के कण-कण में उत्साह की अरुणिमा व्याप्त हो जाती है। इसीलिये चतुर्विध सघ ने एक सूर्य के अस्त होते ही मानो द्वितीय सूर्य का स्वागत-सम्मान करते हुए युवाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को सविधि आचार्यपद की चादर ओढ़ाने की रस्म पूरी की और आचार्यपद का दायित्व आपके सशक्त कधों पर आने के साथ एक नये युग का श्रीगणेश हुआ।

आचार्य पद की अर्हताएँ और जिम्मेदारियाँ

शाब्दिक दृष्टि से आचार्य शब्द का अर्थ आचरण करने वाला होता है। लेकिन इतने से ही आचार्य-पद का महत्त्व स्पष्ट नहीं होता है। आचारण तो सभी करते हैं अत उन सबको आचार्य माना जाना चाहिये। लेकिन यथार्थत आचार्य शब्द द्व्यर्थक है कि परम्परा से चलते आये हुए आचार-पथ पर स्वय चलना दूसरो को चलाना और उसके रहस्य को प्रगट करना। इसी कारण आचार्य पद का उत्तरदायित्व बहुत है। वह अव्यवस्था में सुव्यवस्था स्थापित करता है। मर्यादा का पोषण कर सस्कृति की उन्नति करता है और उसका उल्लघन करने वाला का नियमन तथा समूह के कल्याण हेतु अपना उत्सर्ग करके भी समूह की रक्षा करता है। वह नीति से अनुप्राणित होता है और दूसरो को भी नीतिमय बनाने के लिये कृतसकल्प होता है।

आचार्य के अनेक प्रकार हैं लेकिन उनमे धर्माचार्य का पद सर्वोपरि है। धर्माचार्य पद शास्त्रोक्त विधि-विधान के जानकार एव तदनुसार जीवन-निर्माता एव विशिष्ट गुणयुक्त व्यक्ति ही जो चतुर्विध सघ का विश्वासपात्र हो प्राप्त कर सकता है। धार्मिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता है। धर्मनीति मे जबरदस्ती सम्भव नहीं है। सघ द्वारा अनुमोदित और मान्य व्यक्ति ही आचार्य माना जाता है।

शास्त्रानुसार धर्माचार्य में ये तीन गुण– 1 गीतार्थ 2. अप्रमादी 3 सारणा-वारणा करने वाला – होने चाहिये। अर्थात् जो सूत्रार्थ को जानने वाला हो प्रमादरहित हो और सघ की व्यवस्था करने वाला हो। अन्यथा अयोग्य व्यक्ति को आचार्य पद से पृथक किया जा सकता है। अत धर्माचार्य पद बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण होता है एव आध्यात्मिक एव रचनात्मक साधनाशील प्रवृत्तियों से ओतप्रोत होता है।

चरितनायकजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपकी धर्म के प्रति श्रद्धा चारित्रबल और अनुशासन का परिचय चतुर्विध सघ को प्राप्त हो चुका था और वाणी प्रभावक थी एव विचारो को व्यक्त करने का ढग इतना रमणीक था कि श्रोताओं के हृदय को आकृष्ट कर लेता था। सघ व्यवस्था सम्बन्धी कार्यप्रणाली से चतुर्विध सघ अपने को सौभाग्यशाली मानता था। इस सबका प्रधान कारण विचारों की उदारता शास्त्रसगत तात्त्विक विवेचना रचनात्मक आदर्श आस्तिकता का प्रतिपादन दया का महत्त्व और कुतार्किको को धार्मिक सिद्धान्तों के यथार्थ आशय को समझाने की युक्ति पुरस्सर चिन्तन-मनन से समन्वित शैली थी।

अभी तक तो पूज्यश्री जवाहराचार्य का वरद हस्त था और जिस किसी समस्या के बारे मे निर्णय लेने या विचार-विमर्श परामर्श करने की आवश्यकता प्रतीत होती तो वह सब पूज्यश्री से आशीर्वाद के रूप मे प्राप्त होता रहता था। लेकिन अब आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् निर्णय स्वय करना था विचार भी स्वय करना था और शुद्धि व वृद्धि की परम्परा को भी स्वय गतिमान रखना था।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से आपको मार्मिक आघात पहुचा। शोक का भार तो था ही और उसी के साथ आचार्य पद का भार बढ गया। इतने दिनो तक पूज्यश्री की छत्रछाया थी इसलिये सब-कुछ करते हुए भी आप निश्चिंत थे और आध्यात्मिक साधना में सलग्न रहते थे। मगर अब समस्त उत्तरदायित्व आप पर आ पड़ा था।

महापुरुषों के जीवन में ऐसे अवसर अकसर आते रहते हैं जब वे एक तरफ तो शोक से दबे रहते हैं और दूसरी तरफ महान उत्तरदायित्व आ पडता है। उस समय शोक की अवगणना कर विवेक का सबल लेकर वे कर्तव्यमार्ग पर अग्रसर होते हैं। यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है किन्तु महापुरुष ऐसे विकटकाल मे भी कातर नहीं होते हैं। यह अवसर उनकी कसौटी का होता है।

पूज्य जवाहराचार्य के स्वर्गारोहण से चरितनायकजी पर चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था का गुरुतर उत्तरदायित्व आ गया था और अपने जीवन के एक नवीन अध्याय में आपने पैर बढाया।

आचार्य पदारोहण का प्रथम चातुर्मास देशनोक

आषाढ शुक्ला 9 को पूज्य जवाहराचार्य के पार्थिव देह का अग्निसस्कार एव 10 को दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु श्रद्धाजलि सभा के आयोजन की परिसमाप्ति के पश्चात् नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री गणशलालजी म सा आदि 9 सन्तों ने स 2000 के चातुर्मास के लिये भीनासर से देशनोक की ओर विहार कर दिया।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से शोक-सतप्त देश के विभिन्न श्रीसघो के उपस्थित आबाल वृद्ध भाई बहिना ने अपनी मनोवेदना के ज्वार को पलको में छिपाते हुए उदासीन चेहरों पर सस्मित हास्य की रेखा-सी लाते हुए एव 'शिवास्ते पन्थान सन्तु' की अजलि अर्पित करते हुए विदाई दी।

नव-आचार्य द्वारा कृतज्ञता-प्रकाशन

यथासमय देशनोक पदार्पण हुआ और चातुर्मास प्रारम्भ के दिन आपने स्व गुरुदेव पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा के लिये अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया- 'पूज्य

गुरुदेवश्री का मुझ पर असीम उपकार है। मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता हूँ। मेरे जीवन-निर्माण में जिस जिस प्रकार से निर्देशन और आज्ञा दी है उसके लिये मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा। यद्यपि आज पूज्यश्री हमारे बीच नही रहे हैं लेकिन उनके आदर्श उनके विचार उनकी शिक्षाएं हमें मार्गदर्शन कराती रहेगी। मैं चतुर्विध संघ को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि संघश्रेय और धर्मसेवा ही मेरे जीवन का ध्येय रहा है और रहेगा एवं पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा आदि महापुरुषों की पवित्र परम्परा के गौरव की रक्षा करने में अपनी विवेकशक्ति से सदैव उद्यत रहूँगा।

इसी सदर्भ में मैं चतुर्विध संघ से अपेक्षा रखता हूँ कि वह इस गुरुतर भार को उठाने मे अपना सहयोग प्रदान करे। उसके सहयोग के बिना क्षण भर भी कार्य चलना कठिन है।

व्यवहार में आचार्य पद सम्मान की वस्तु समझी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में यह सबसे बडा पद है। लेकिन मैं इसे सेवा का पद मानता हूँ। मैं अपने आप को तभी सौभाग्यशाली मानूँगा जब पद के दायित्वों का भली प्रकार से निर्वाह कर सकूँ। श्रीसंघ की दृष्टि में भले ही आचार्य पूज्य या सम्माननीय पद पर आसीन समझा जाऊँ लेकिन मैं अपनी आत्मसाक्षी से धर्म का एक अकिंचन सेवक ही रहूँगा।

गुरुदेव के प्रति मेरी यही श्रद्धांजलि है कि उनके द्वारा प्रशस्त किये गये मार्ग पर सदैव सजग होकर चलता रहूँ और अपनी संयम साधना का उत्तरोत्तर विकास करते हुए अपनी आत्मा का लक्ष्य–वीतराग-विज्ञानता–प्राप्त कर सकूँ।

रत्नत्रय का अद्भुत प्रभाव

आचार्य पद का यह प्रथम चातुर्मास प्रभावक सफलता से सम्पन्न हुआ। प्रतिदिन प्रवचन के प्रारम्भ मे परमात्मा की प्रार्थना गान करते समय आचार्य[illegible] [illegible]अनुभूति में तल्लीन मुखमुद्रा दर्शकों को एक महान भक्त सतहृदय की अनुभूति कराती थी [illegible] जिस तन्मयता से स्तुति का संगायन करते उसी तन्मयता से उसके हाव

थली-प्रदेश मे दया और दान-धर्म का प्रचार

थली प्रदेश के सुज्ञ श्रावको की भावना थी कि आपश्री पुन हमारे क्षेत्र में पधारें। इसके लिये उनकी वारम्बार विनती हो रही थी। अत चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् शात भद्र और कर्मठ शिल्पी चरितनायक आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने सन्त-समूह के साथ अनमोल अनुभवों की राशि लेकर देशनोक से जैन सिद्धान्तों- दया करुणा मैत्री दान आदि का सन्देश मुखरित करने के लिये पुन थली-प्रदेश की ओर विहार किया।

देशनोक से चातुर्मासिक विहार कर पूज्यश्री उदयरामसर, भीनासर, बीकानेर होते हुए उदासर पधारे। आचार्यवर के उदासर में कुछ दिनों तक विराजने से स्वमति परमति सभी ने काफी लाभ उठाया। उदासर से पुन दीक्षा-प्रसग से भीनासर पदार्पण हुआ। गगाशहर निवासी श्री कुन्दनमलजी सुराणा को पौष वदी 2 को दीक्षा प्रदान कर पूज्यवर ने थली-प्रदेश की तरफ विहार किया।

पूज्यश्री ने विहार के पूर्व भीनासर तथा बीकानेर म स्थिरवास विराजित सन्तो की सेवा का पुख्ता इन्तजाम किया। आपश्री विहार-विचरण को साधु धर्म के लिए आवश्यक मानते थे परन्तु सयमी आत्माओ की सेवा उससे भी प्रथम मानते थे। यही कारण है कि कहीं से भी विहार के पूर्व वृद्ध सन्त-महापुरुषो की सेवा का पहले खयाल करते।

आप मानवता के प्रसारक थे। दया के लिये आपके मन मे गहरी अनुभूति थी किन्तु दया-दान विरोधी बन्धुओ की अज्ञानता देखकर आपश्री का हृदय दयार्द्र हो जाता था। भगवान महावीर क अहिंसा धर्म का विपरीत प्रचार देखकर और भोली-भाली जनता को धर्म के नाम पर अधर्म और निर्दयता का शिकार होते देखकर आपको बार-बार विचार होता था कि जीवरक्षा को पाप बतलाना मानवता व धर्म के नाम पर घोर कलक है। ऐसी मूढ मान्यताओं के नागपाश से मनुष्य मात्र को शीघ्र मुक्ति मिलनी चाहिये। जैन धर्म ही नहीं वरन् विश्व के सभी धर्म जीवरक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते हैं। सन्तो ने कहा है-

> कला बहत्तर पुरुष की तामे दो सरदार।
> एक जीव की जीविका एक जीव-उद्धार।।
> दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
> तुलसी दया न छाड़िये जब लग घट में प्राण।।

धर्म का यह सत्य मनचाही धारणाओं पर आधारित नहीं है और न किन्हीं किंवदन्तियों के आवरण से आच्छादित है बल्कि मानव मात्र की स्वाभाविक स्थिति का एक सजीव और स्वयसिद्ध उत्तराधिकार है। आत्मिक विकास का एक दृश्य है। मानवीय स्वभाव के मूल

मनोवेगो का परिणाम है। धर्म हमारी वर्तमानकालीन सीमित चेतना का उपयोग उच्चतर असीम आत्म-अस्तित्व और परम आनन्द की प्राप्ति के लिये सुदृढ आधार प्रस्तुत करता है। धर्म हम आध्यात्मिक वास्तविकताओ को मान्यता देने की प्रति सजग करता है।

इसीलिये धर्म का सार यह बताया गया है कि मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करो और उसी के अनुसार आचरण करो। दूसरा के साथ वैसा व्यवहार करो जैसा तुम अपने लिये दूसरा से अपेक्षा रखते हो। ऐसे लोगो को ही समाज के लिये विधान बनाने का अधिकार है जो सब जीवो के प्रति सहृदय हो। ऐसे लोग ही जो-कुछ सर्वोत्तम होता है उसे सुरक्षित रखते हैं।

दया और दान जैन धर्म का हार्द है। जैन धर्म के श्वेताम्बर दिगम्बर स्थानकवासी-सभी सप्रदाय इस विषय मे कोई मतभेद नहीं रखते और न कोई कुतर्क एव विवाद ही करते हैं। फिर भी एक ऐसा उपवर्ग है जो दया-दान को पाप मानता है। यदि कोई उस विपरीत मान्यता के निरसन के लिये प्रत्यन भी करे तो उसके प्रति अशिष्टता प्रदर्शित करने से भी नहीं चूकता है। ऐसों के बारे में सकेत करते हुए किसी कवि ने कहा है-

क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।

थली-प्रदेश में इसी वर्ग के बहुसख्यक व्यक्ति बसते हैं जो अपने बौद्धिक स्तर की न्यूनता के कारण धर्म के उदार व विशाल दृष्टिकोण को नहीं समझने के कारण मानवता-विरोधी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देते हैं और सत्य को स्वीकार न करने का दुराग्रह करते हैं। यही नहीं, अपनी भूल को छिपाने के लिये परमाराध्य भगवान महावीर को भूला-चूका बताने में भी नहीं झिझकते हैं।

ऐसे व्यक्तियो के मुखियाओ के द्वारा निर्मित विषमताओ को हटाकर सब के वैयक्तिक कल्याण व विकास के लिये समान अवसर प्राप्त कराने एव उन सस्थाओ को जो सामाजिक न्याय एव प्राणिमात्र के कल्याण के मार्ग मे दुर्जय बाधाए बन गई हैं निरस्त करने के लिये लोगो को वास्तविक स्थिति परखने का विवेक देने के लिये एव सही जीवन की भावना का पुनर्जीवित करने के लिये ही चरितनायक आचार्यश्री का पुन थली-प्रदेश की ओर पदार्पण हुआ था।

भीनासर से विहार कर पूज्यश्री ने ठाणा 9 से श्रीडूगरगढ होते हुए पौष सुदी सप्तमी को सरदारशहर पदार्पण किया। आचार्यश्री पूरे कल्पकाल तक सरदारशहर विराजे। प्रतिदिन प्रवचन में हजार-बारह सौ की उपस्थिति आपके चुम्बकीय व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण था। लगभग 300 व्यक्ति तो तेरहपन्थी आते थे। तेरहपन्थी लोग विभिन्न प्रश्नोत्तर करते।

आचार्यश्रीजी उन जिज्ञासुओं को इस ढंग से समाधान करते कि वे पुन पुन आपश्री की सेवा में आने को मजबूर हो जाते। कल्पकाल-प्रवास के दौरान चार पांच प्रवचन बाजार में हुए। सरदारशहरवासियों ने आचार्यश्री के चातुर्मास की आग्रहपूर्ण विनती की। आचार्यश्री ने विनती ध्यान में ग्रहण कर माघ शुक्ला सप्तमी को सरदारशहर से विहार कर दिया।

माघ शुक्ला 13 को पूज्यवर ने चूरू शहर में प्रवेश किया। आचार्यश्री की भाववाही वाणी का वहां की जनता पर गहरा असर हुआ। मुनि नेमीचन्दजी म. के अंगूठे में ऑपरेशन कराने के कारण चूरू में विशेष रुकना पड़ा। यहां से पूज्यश्री फतहपुर पधारे। यहां व्याख्यान में उपस्थिति अच्छी होती थी। सेठ श्री सोहनलालजी दुगड़ परिवार ने सेवा भक्ति का अच्छा लाभ लिया। आगे सुजानगढ़ होते हुए लाडनूं पदार्पण किया। लाडनूं में जेठ वदी 11 को देशनोक निवासी श्री आईदानजी धाड़ीवाल की दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के साथ आपके तात्त्विक प्रवचनों का लाडनूं की जनता ने अच्छा लाभ उठाया। आचार्यवर ने इस वर्ष चातुर्मास काफी विलम्ब से खोला। सरदारशहरवासियों का चातुर्मास हेतु निरन्तर आग्रह बना हुआ था। फलस्वरूप आपश्री ने सं. 2001 का चातुर्मास सरदारशहर घोषित कर ठाणा 9 से आषाढ़ शुक्ला तृतीया को सरदारशहर प्रवेश किया। प्रवेश का दृश्य नयनाभिराम था। आचार्यप्रवर सेठ तनसुखदासजी दुगड़ की हवेली में विराजे।

विरोधी मान्यता वालों में तहलका और प्रतिरोध-प्रयत्न

थली प्रदेश में पहले हुए विहारों में आपने अनेक परीषह व कष्टों को सहन किया था। पग-पग पर अनेक असुविधाएं उत्पन्न की गई थीं। लेकिन आपश्री ने उस व्यवहार को सन्त स्वभावानुसार सहज भाव से स्वीकार करते हुए सहन किया था। ये बाधाएं आपश्री को अपने संकल्प से विचलित नहीं कर सकी थीं।

। चातुर्मास होने की खबर सुनकर विरोधी मान्यता रखने वालो में हलचल कार्यों के अनुभव पुन उनके मनो को भयभीत करने लगे। और प्रतिरोध ; भी निर्मित की जाने लगीं। उन्हें क्षण-क्षण प्रतिष्ठाभग होने की आशका । ऐसा सोच भी नहीं सकते थे कि जिनकी तेजस्विता और आदर्श चारित्र विद्वान एव विवेकशील भी नतमस्तक हो जाते हैं वही महापुरुष पुन करुणा ा स्रोत वहाने थली-प्रदेश में पदार्पण कर रहे हैं।

ग्र अनेकों ने शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की

आपश्री की भावना कुछ दूसरा ही चिन्तन करती थी कि दया-दान को पाप । मे पडकर स्व-पर का अहित करने वाले भाई सन्मार्ग को समझे बूझें और ार-विनिमय करें। पारस्परिक सौहार्द तथा स्नेह के वातावरण मे शास्त्रीय आधार सवाद हो प्रश्नोत्तर हों। आपने इस प्रकार की चर्चाओं का सदा स्वागत किया भी अवसर मिला वहा यथार्थ को समझाने का प्रयत्न भी किया। आप शुद्ध श्रद्धा मार दिया करते थे। आप एक ही बात कहते थे कि धर्म का पहला पाया शुद्ध श्रद्धा श्रद्धा का आधार शुभ भावना एव शुद्ध विचार हैं। शुद्ध विचारो की कसौटी ासत्य को परखने वाली विवेकशक्ति है और उपादेय हेय में से उपादेय को ग्रहण एव हेय को त्यागना विवेक के बिना सम्भव नहीं है।

आपश्री ने यह बात पहले भी अपने थली-प्रदेश में हुए विहार एव चातुर्मास-काल में झायी थी। परिणामत बहुत-से बन्धु जैन धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हो चुके थे और त-से सत्यान्वेषण की ओर बढने की प्रतीक्षा में थे। अत आपके इस बार के थली-प्रदेश । हुए विहार और सरदारशहर के चातुर्मास से उन सभी को लाभ मिला और जैन धर्म की तत्य श्रद्धा ग्रहण की। फिर भी सरदारशहर मे विरोधी मान्यता वाला का आधिक्य था। वहा और उसके निकटस्थ क्षेत्रों मे वे जो-कुछ भी कर सकते थे करने से नहीं चूके। आपका प्रवचन सुनने के लिये आने वाले सरलहृदय साधारणजन भी इनकी कोपदृष्टि के लक्ष्य बने और उनका बहिष्कार तिरस्कार करना तो एक मामूली बात थी। व उनकी आजीविका के साधनों पर कुठाराघात करने मे भी नहीं झिझकते थे। ऐसा करने में शायद उनका यह विचार ८ हो कि ये हमारे वश मे आ जायेंगे और जैसा चाहेंगे इनसे करा सकेंगे। लेकिन ८ जन तो पहले की तरह ही आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये आते रहे। स्थानीय और स्वर्णकार आपके प्रवचन श्रवण कर पूर्ण श्रद्धालु बन गए। प्रतिसप्ताह एक दिन आम प्रवचन होता था। उसमे तेरहपन्थी एव जैनेतर लोगों की भारी भीड होती थी।

प्रतिदिन प्रात प्रवचनो मे अथवा सायकाल प्रतिक्रमण के अनतर होने वाली तात्त्विक चर्चा मे आपश्री धर्म के यथार्थ चिन्तन-मनन और वस्तु-स्वरूप का विवेचन करते थे और जो-कुछ कहते थे उसमे किसी प्रकार की स्वार्थ भावना या आत्म-प्रशसा नहीं होती थी। आपकी उदारता का द्वार सबके लिये खुला था। आपके कथन में दुराग्रह नहीं किन्तु सरलता रहती थी और सदैव यही कहते थे कि उचित एव युक्तिसगत बातो को आचरण में उतारो। ऐसे अनाग्रही महात्माओं के बारे में किसी कवि ने कहा हैं-

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वन्ति साधव ।
नहि सहरते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन ।।

गुणहीन जनों पर भी साधुजन दया ही करते हैं। चन्द्रमा चाडाल के घर से भी अपनी चादनी को नहीं हटा लेता है।

चातुर्मास-काल में जनता ने धर्म के कल्याणकारी आदर्शों को समझकर अपूर्व बोध प्राप्त किया। सैकड़ो व्यक्तियों ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये और सम्यक श्रद्धा को ग्रहण कर आपको अपना गुरु माना।

कार्तिक कृष्णा 9 को सवाईमाधोपुर निवासी श्री गोपीलालजी पुत्र श्री भूरालालजी पोरवाल की 31 वर्ष की भरपूर जवानी में आपश्रीजी के वरद हस्तों से दीक्षा सम्पन्न हुई।

श्री गोपीलालजी ने लगभग 6 माह पूर्व ही अपनी धर्मपत्नी श्री कचनबाई का ब्यावर में महासतीश्री राजकुवरजी म की नेश्राय में दीक्षा दिलवाई थी। विवाह के कुछ समय पश्चात् दोंनो को वैराग्य उत्पन्न होना और दीक्षित होना एक आदर्श था।

चातुर्मास-समाप्ति और सरदारशहर से विहार

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आपश्री ने अपने अन्तिम प्रवचन में फरमाया कि मैं आपसे एक वस्तु मागना चाहता हूँ कि धर्म को समझकर अपने कर्तव्य का निर्णय कीजिये और तदनुसार आचरण बनाइये। शुद्ध धर्म पर श्रद्धा रखिये और अहिंसा भावना को ही विश्व के लिये हितकर मानिये। सत्य को व्यक्त करते समय बहुत सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहने में आ जाती हैं लेकिन उनमें हित-भावना रही हुई है। फिर भी किसी का मन दुःखा हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

प्रवचन समाप्ति के अनन्तर यथासमय विहार हुआ। विहार के अवसर पर विदाई के लिये विविध क्षेत्रों के आबाल-वृद्ध जन उपस्थित थे। ऐसे समय में स्थानीय जनसमूह की भावोर्मियां अनुभूतिगम्य थीं और भरे मन से श्रद्धेय शास्ता को विहार के लिये विदाई दी और मीलों तक साथ-साथ चले और मागलिक श्रवण कर अपने-अपने आवास पर आये।

सरदारशहर निवासियो का सद्भाग्य था कि पूज्यप्रवर के विहार के पश्चात् भी उन्हे सन्तो की सेवा का अकल्पित लाभ मिलता रहा। चूकि मुनिश्री नेमीचन्दजी म की अस्वस्थता के कारण तीन सन्तो का काफी समय तक चातुर्मास उपरान्त भी सरदारशहर विराजना रहा।

आचार्यप्रवर सरदारशहर से क्रमश बीकानेर एव गगाशहर पधारे। वहाँ कुछ दिनो तक चतुर्विध सघ को सेवा-सान्निध्य का लाभ प्रदान कर भीनासर उदयरामसर होते हुए माघ कृष्णा 6 को ठाणा 8 से देशनोक की भूमि को पावन किया। देशनोक पधारते समय विहार-मार्ग में ही वालेसर वाले मुनिश्री हसराजजी म सा के लघु भ्राता आत्मार्थी मुनिश्री हरकचन्दजी म सा चलते-चलते गिर गये और वहीं पर स्वर्गवास हो गया। मुनिश्री महाभाग्यवान सरल-आत्मा थे। विधि की विडम्बना के आगे विवश हो आचार्यप्रवर सह-मुनिवृन्द चार-चार लोगस्स का कायोत्सर्ग कर गन्तव्य की ओर चल पड़े।

मुनिश्री जवरीमलजी म एव मुनिश्री नानालालजी म ब्यावर से आपश्रीजी की सेवा मे पधारे एव महासती प्रवर्तनीश्री सुगनकवरजी म आदि भी आपके दर्शनार्थ पधारे। देशनोक में धर्म-ध्यान का ठाठ लगा कर पूज्यश्री नोखामण्डी गोगोलाव होते हुए नागौर और डेह पधारे। नागौर तथा डेह मे कुछ दिनो तक विराजना हुआ और प्रवचन-प्रभावना का ठाठ रहा।

गोगोलाव मे दो दीक्षाएँ

आचार्यप्रवर दीक्षा प्रसग से पुन गोगोलाव पधारे। वैशाख शुक्ला 6 गुरुवार को गुरुदेव के हाथो प्रात 10 30 बजे श्री इन्दरचन्दजी चौरड़िया (माड़पुरा-नागौर) एव श्री हनुमानमल सिपानी (गगाशहर) की दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री दुलीचन्दजी किशनलालजी काकरिया ने दीक्षा और आगत दर्शनार्थियो का समस्त प्रबन्ध कर अनूठा लाभ कमाया।

कुचेरा जोधपुर बगडी ब्यावर गोगोलाव आदि सघो ने आचार्यप्रवर के चातुर्मास की आग्रहभरी विनती की। आचार्यवर ने ब्यावर सघ को चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। ब्यावर सघ को स्वीकृति मिलते ही मेवाड़ मालवा मारवाड़ मेरवाडा आदि से आगत सभी दर्शनार्थियो के हर्ष का पारावार नहीं रहा।

गोगोलाव मे दीक्षा सम्पन्न कर आचार्यप्रवर कुचेरा मेडता जसनगर बलुन्दा होते हुए जयतारण पधारे। ब्रह्मयोगी आचार्य पूज्य श्रीलालजी म सा की पुण्यस्थली जयतारण में धर्म का ठाठ लगाकर पिपलिया कलॉं निम्बाज होते हुए ब्यावर की दिशा म विहार किया। पूरे मार्ग में ब्यावर एव अन्य स्थलो के श्रद्धालुओ ने सान्निध्य-लाभ प्राप्त किया।

मारवाड़ के चप्पे-चप्पे मे धर्म के उत्तम बीजों का वपन कर स 2002 के पावन वर्षावास हेतु आषाढ शुक्ला तृतीया को ब्यावर नगर में पदार्पण किया।

ब्यावर मे चातुर्मासार्थ यथासमय नगर-प्रवेश

नगर-प्रवेश के समय जनता के उत्साह का पार नहीं था। नगरजन अगवानी के लिये उमड़ पड़े थे। उनके हृदय की उमगें समाती न थीं। यद्यपि पहले भी आपश्री का कई बार ब्यावर नगर मे पदार्पण हो चुका था और जनता ने आपके हृदयस्पर्शी उपदेशों से अपने जीवन को सयमित बनाने के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाए नियम आदि लिये थे। उक्त अवसरो पर आपका थोड़े-से समय के लिये पदार्पण होता रहा था लेकिन अबकी बार चार माह तक आपश्री की वाणी का पूरा-पूरा लाभ मिलने वाला था। अत बड़ी उत्सुकता और उमग के साथ जनता ने स्वागत किया अगवानी की।

नगरवासियो की भावना थी कि अभी प्रात काल आपश्री शकरलालजी मुणोत की बगीची मे पधार जायें और तीसरे पहर करीब 4 बजे धूमधाम के साथ नगर मे पदार्पण कराया जाये।

इस तरह की भावना को मन मे रखते हुए ब्यावर श्रीसघ ने श्री शकरलालजी मुणोत की बगीची मे विराजने की आग्रहभरी विनती की। लेकिन जब आपने बाहर से ही बगीची की ओर दृष्टि डाली तो चौक के अन्दर मकान मे प्रवेश करने के मार्ग मे हरी दूब थी। इसलिये यह सोचकर कि लोगो का इस पर आवागमन होगा उससे वानस्पतिक जीवों की एव इसमें छिपे हुए अन्यान्य सूक्ष्म जीवों की विराधना होगी। अत बगीची मे न विराज कर राजमार्ग से नगर की ओर विहार कर दिया और धर्मस्थानक में प्रवेश किया।

साधारण जन तो तीसरे पहर चार बजे स्वागत करने के विचार में थे और उन्हें इस स्थिति की जानकारी भी नहीं मिल सकी थी। अत उनके मन मे विविध विचार आने लगे और उनके समाधान के लिये उत्सुक थे। जैसे ही चार बजने का समय हुआ कि मुसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गई। उसमें स्वयमेव ही समाधान मिल गया कि यदि प्रात काल आचार्यश्रीजी म सा का नगर में प्रवेश न होता तो इस समय नगर-प्रवेश की स्थिति बनना तो अशक्य ही था और विचारों का द्वन्द्व शात होकर गाढ श्रद्धा के रूप में परिणत हो गया।

प्रारभिक शुभ-शकुन के रूप में श्रीमान शेषमलजी ओस्तवाल ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया।

चातुर्मास मे आचार्यप्रवर एव स्थविर सन्त 14 ठाणा से एव प्रवर्तनीश्री आनन्दकवरजी म सा भी 14 ठाणा से थे। 28 सन्त-सतियों का पावन सान्निध्य ब्यावर नगर के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये वरदान बन गया। आचार्यप्रवर के प्रवचनों ने जैन जैनेतर जनसामान्य के अलावा नगर के प्रतिष्ठित लोगों एव विद्वानों के हृदयों को भी झकझोर दिया। इस चातुर्मास में बाहर से जनता का अत्यधिक आना हुआ।

मुनिश्री किशनलालजी म ने 33 मुनिश्री ईश्वरचन्दजी म ने 9 श्री फोजमलजी महाराज ने वेले-वेले तथा घोरतपस्वी श्री धूलचन्दजी म ने छ -छ की तपस्या की। इन सन्तो ने अन्य विशिष्ट तप भी किये। प्रवर्तनीश्री आनन्दकवरजी म ने श्रावण माह में ग्यारह की तपस्या करके सतीवृन्द एव श्राविकाओ के लिए तपस्या का मार्ग खोल दिया। अन्य सन्त-सतियो एव श्रावक श्राविकावर्ग मे भारी तपस्याए हुईं।

श्री जैन मित्र मण्डल एव ब्यावर सघ का उत्साह प्रशसनीय रहा। चातुर्मास मे तपस्या के प्रसग से जीव दया हेतु अच्छी मात्रा मे राशि इकट्ठी हुई।

श्री जैन मित्र मण्डल के मत्री श्री उग्रसिहजी मेहता की अपील पर श्रीमद्‌जवाहराचार्य के प्रवचनो के सम्पादन-प्रकाशन हेतु 13914 रुपये श्री जवाहर स्मारक फण्ड में इकट्ठे हुए।

त्याग तप धर्म ध्यान एव साम्प्रदायिक गतिविधियो के विकास के साथ यह चातुर्मास यादगार रहेगा। इस चातुर्मास मे 24-25 चतुर्थव्रत के सजोडे खन्द हुए।

नवीनता और प्राचीनता का समन्वय सुनकर विरोधी मानस शान्त

ब्यावर और उसके आस-पास के क्षेत्रों मे विवेकशील व्यक्तियों की बस्ती होने से स्थानीय और समागत सज्जन आपके प्रभावक प्रवचनो का लाभ लेते थे। लेकिन कुछ विघ्नसतोषी व्यक्ति भी थे। वे समय-समय पर अशाति फैलाने और रूढिवादी पुरातनपथी दकियानूसी आदि शब्दों द्वारा मनघडन्त आरोप लगाने के प्रयत्न करते रहते थे। उन्हें दोषदर्शन के सिवाय और कुछ करने की सूझती ही नहीं थी। कुछ-न कुछ अफवाह फैलाना मानो उनकी दैनिक जीवनचर्या ही थी। लेकिन उनके सभी प्रयास आपके असीम शातिसागर में विलीन होते गये।

आप तो वीतराग वाणी के माध्यम से मानव-जीवन के महत्त्व विशेषताओ कर्तव्या आदि का अपने प्रवचनो म विशद विवेचन करते थे। इनके सम्बन्ध म आपश्री की महत्त्वपूर्ण विचारधारा का कुछ अश यहा प्रस्तुत करते हैं--

'मनुष्य एक ऐसा विकासशील जीव है जिसने अपने मस्तिष्क की अत्यधिक प्रगति प्राप्त की है। उसका ज्ञान केवल बाह्य पदार्थों तक ही सीमित नही है बल्कि उसने वैचारिक व आध्यात्मिक क्षेत्र म भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसकी जिज्ञासा वृत्ति इन क्षेत्रा म और भी अधिक उग्र हो उठती है -- जिसका सबूत है बडे-बड़े दार्शनिक और विचारक इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत नवीन-नवीन विचारधाराओ को जन्म देते हैं तथा बडे बड़े आध्यात्मिक साधक स्वकीय दिव्य शक्ति को प्राप्त कर ससार को सही रास्ते पर उद्‌बोध देते हैं। यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्म ज्योति का रूप हृदय से सलग्न होकर आकर्षण का

केन्द्रविन्दु बनता है जिससे मनुष्य स्वय सोचता है जानता है सीखता है और स्व पर के लिये वस्तुत कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क स्वतन्त्र व्यक्तित्व व शुद्ध आचरण की अनुभूतियो द्वारा जीवन निर्माण कर सकता है।

'मनुष्य की सभी शक्तियाँ नवीन सत्कर्म से उद्बोधित रहती हैं जीवन के सम्यक विकास मे जुट जाती हैं। मनुष्य अपने सही लक्ष्य की ओर आगे बढ़े इसके लिये उसक सबसे पहले अनिवार्य आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आचार और विचार की दृि से पिछड़ा नहीं रहना चाहता उसे नहीं रहना चाहिये। वे इस बात की कोशिश करे कि ज्ञा के विशाल भडार में वे प्रवेश करे महान मनीषियो के तत्त्व चिन्तन व आचरण को जानें कि उन सबको सम्यग्ज्ञान व आचरण मे रमाकर ग्रहण करें अपनी शुद्ध बुद्धि की कसौटी प कसकर उसका मनन करे और यह मनोवृत्ति वास्तविक नवीन विचार तथा आचार क्रांतियो व कारण बनती है।

'प्रचलित परिपाटियो मे इधर-उधर से विकार आ जाते हैं उनको हटाने और चेत जाग्रत् करने के लिये मूलस्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते ह उन्हे भी नवीनता की सज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय हो चाहिये कि जो परिवर्तन और एकरूपता को सतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृि को सतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने में जाग्रत् रखती है ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कटक बनाती है।

यहा 'नवीन' व 'प्राचीन' शब्दो के अर्थ व अन्तर को समझ लेना चाहिये। इन दोनों शब्दो का अर्थ अपेक्षाकृत लेना चाहिये। जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हो शुद्ध सयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूकने वाले हो वे बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एव आत्मज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दो में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम क्यों न हो वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिये। इन शब्दों में समय का मापदड ठीक नहीं हो सकता किन्तु सयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

'इस दृष्टि से तत्त्वो का चयन किया जाना चाहिये न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य हैं। मैं उन नवयुवकों को कहना चाहूँगा कि हठाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्वक समझना अलग बात है एवं मेरा खयाल है सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का जो ऊपर मापदड बताया गया है वह सभी दृष्टियों से काफी समुचित जान पडेगा।

'नवीनता के असली महत्त्व को नहीं समझने के लिये मैं केवल नवयुवका के लिये ही नहीं कहता बल्कि उतने ही अशो मे विचारपोषक प्रथाओं के समर्थकों के लिये भी कहता हूँ कि वे कई समाजघातक रीति-रिवाजो से चिपके रहने पर भी सभ्यता का अनुपालन करने का घमण्ड करते हैं और उन्हे जो-कोई उन सामाजिक कुप्रथाओ को छोडने का कहता है उसे वे कुल-परम्पराओं की मर्यादाआ को तोड़ने वाले उच्छृखल आदि कहकर तिरस्कृत करना चाहते हैं। अत दोनो वर्ग ही इसी मर्ज के बीमार हैं। हठवाद को छोडकर सयमी जीवन की उपयोगिता और शुद्ध पवित्र अन्तरात्माओ की प्रेरणा के मापदड से किसी सिद्धान्त व नीति को परखना नवीनता के महत्त्व को भलीमाति समझना है।

अत इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें ताकि जीवन को सच्चे अर्थों में सफल बना सके। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों का सम्यक सतुलन और सही अर्थो म जीवन म समन्वय स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सके।

आपके इन विचारो के प्रकाश मे आक्षेपकर्ताओं को मालूम होना चाहिये कि आप न तो रूढ़ियो के पक्षपाती थे और न नवीनता का अन्धानुकरण ही उचित मानते थे। जो व्यक्ति शास्त्रीय मर्यादाओ की अजानकारी एव सत्यनिर्णय करने मे अपनी अक्षमता के कारण सत्य बात को विगाड़कर कहने से नहीं हिचकते एव दोपारोपण करने से भी नहीं चूकते उन्हे चाहिये कि आपके विचारो को समझें चिन्तन करें मनन करे।

आपका यह चातुर्मास धार्मिक सामाजिक एव आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उस क्षेत्र के लिये उपकारक सिद्ध हुआ। श्रावक-श्राविकाओ ने दया पौषध उपवास आदि विविध प्रकार की तपस्याए की और त्याग-प्रत्याख्यान किये। आस-पास के क्षेत्रो के श्रीसघों एव स्वधर्मी वधुआ के आपसी मनमुटाव वैमनस्य का निराकरण हुआ और अनेक मूक प्राणियो को अभयदान मिला।

ब्यावर की जनता की तरफ से श्रद्धाञ्जलि

आचार्यश्री के प्रवचनो का प्रभाव था कि समग्र जातियों के लोग प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित होते थे। समग्र जातियो की ओर से पूज्यचरण म श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के लिये ब्यावर के सुप्रसिद्ध वकील एव नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति श्रीमान् मुकुटबिहारीलाल भार्गव तथा श्रीमान् ब्रजमोहनलाल वकील आदि प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने बड़ी भक्ति एव श्रद्धापूर्वक भाषण दिये। श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए वकील साहब ने कहा– बयालीस वर्ष के मेरे जीवन में मुझे अनेक मजहबो के आचार्यों से भेंट करने तथा व्याख्यानादि सुनने का

प्रसग अनेक वार आया किन्तु जो खूबी पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहव के व्याख्यान मे मैंने पायी वह कहीं नहीं पायी है और मेरे जीवन को वहुत उज्ज्वल बनाने की जो शिक्षा पूज्यश्री के व्याख्यान मे हासिल हुई तथा शहर की वहुत सी जातियो जैन-अजैन को आपके व्याख्यान से जो शिक्षा मिली है वह अवर्णनीय है।

वहुत-से लोगों ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया। सटटेवाजो ने सटटे के नशेवाजों ने नशे के व मासभोजियों ने मास-मदिरा के त्याग किये हैं। यह सव पूज्यश्री के सदुपदेश का ही प्रताप है और इससे नगर की जनता का वड़ा उपकार हुआ है। अत मैं सारे शहर की तरफ से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि भेट करता हुआ पूज्यश्री का उपकार मानता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इसी प्रकार व्यावर पर पूर्ण कृपादृष्टि रखकर समय समय पर समाल लेते रहें।

सारा ब्यावर नगर आपश्री की विदाई-वेला पर भावविह्वल था। आचार्यप्रवर ससघ मिगसर बदी एकम को विहार कर नगर के बाहर शकरलालजी मुणोत के बगीचे में पधारे। वहाँ आचार्यश्री के प्रासगिक वक्तव्य के पश्चात् भारी हृदयो से दस हजार जनता ने अपने-अपने घरों की ओर कदम बढाये। दूज के दिन आचार्यश्री गुरुकुल पधारे। छात्रा के मध्य जीवन-निर्माणकारी प्रवचन हुआ। ब्यावर नगर की धर्मप्राण जनता भी प्रवचन-श्रवणार्थ उलट पडी। आचार्यश्री के पैर मे दर्द हो जाने से लगभग 20 दिन गुरुकुल परिसर में डॉक्टरों की राय से विराजना पडा। ब्यावर के साथ देश-भर से श्रद्धालुओ ने आकर पूज्यश्री के सान्निध्य का लाभ उठाया।

स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् आपश्रीजी ने मिगसर सुदी 5 को श्री जैन गुरुकुल से विहार किया। हजार-बारह सौ के लगभग जनता विहार मे सम्मलित हुई। पूज्यश्री खेजाजेगाणे पधारे। वहाँ आपश्री के सदुपदेश से 20-25 पाड़ो को अभयदान मिला तथा वहुत से मीणा लोगों ने भविष्य मे जीवहिंसा तथा मदिरा-मास-सेवन के त्याग किये। जीवदया का उल्लेखनीय कार्य करने के पश्चात् आपश्री रामगढ हनूतिया पधारे।

रामगढ म साधुमार्गियों (स्थानकवासी) के 50 60 घर थे जिनमे 20 वर्षो से दो धडे थे। आपश्री के चरणो का प्रताप था कि वहाँ शाति का वातावरण बन गया। सारे सघ मे प्रेम की लहर फैल गयी। रामगढ में रामराज्य की-सी स्थिति हो गई। एकता के साथ त्याग प्रत्याख्यान भी अच्छे हुए।

रामगढ से मसूदा पदार्पण हुआ। मसूदा की जनता ने सन्त-समागम का लाभ उठाया और त्याग प्रत्याख्यान की झड़ी लगा दी। मसूदा से आचार्यवर जेठाना पधारे। जेठाना में ओसवाल समाज मे धडेबन्दी थी जो आपश्रीजी के मगल उद्बोधन से समाप्त हो गई और शाति का साम्राज्य स्थापित हो गया। आपश्री का जेठाना से भगढी की तरफ विहार का विचार

था परन्तु अजमेर सघ के गणमान्य श्रावक जेठाना आ गये और आग्रहभरी विनती करने लगे। अजमेर सघ की आग्रहभरी विनती को आचार्यप्रवर नहीं ठुकरा सके और अजमेर की तरफ विहार करना ही पडा।

आपश्री ठाणा 10 से अजमेर पधारे। पौष का महीना कड़ाके की ठण्ड फिर भी प्रवचनो मे जनता का प्रवाह उमड पड़ता था। धर्म की गहरी जागृति हुई। ओसवाल विरादरी मे जो धड़े थे वे आपके भावमय उपदेशो से मिट गये। अजमेर मे सगठन का बिगुल बजाकर माघ शुक्ला छठ को विहार किया और किसनगढ सघ के आग्रह पर वहाँ पधारे। फिर नागेलाव होते हुए मारवाड के छोटे-छोटे गाँवो को अपनी अमृतदेशना से लाभान्वित किया।

ब्यावर चातुर्मास-समाप्ति के अनतर इस विहार यात्रा के क्षेत्रो मे आपश्री ने अहिसा की व्यापकता और धर्म के यथार्थ स्वरूप को बतलाया जिससे देवी देवताओं के नाम पर होने वाली मूक प्राणियों की हिंसा बद होने से जीवरक्षा की प्रवृत्ति को वेग मिला। बहुत-से व्यक्तियो ने मद्य मास आदि के सेवन का त्याग करके जीवन-शुद्धि की ओर बढ़ने का निश्चय किया।

इस क्षेत्र मे विहार करके आपने समाज के आपसी वैमनस्य कुरूढियों के प्रति लगाव आदि का उन्मूलन किया। आप अपने प्रवचनों में उन विषयों का विशेष रूप से सकेत करते थे जो जीवन को अनैतिकता की ओर बढ़ाने मे जाने या अनजाने सहकारी कारण बन जाते हैं जैसे धूम्रपान विवाहादि अवसरों पर वारागना-नृत्य दीपावली आदि अवसरो पर जुआ खेलना आदि।

समाजसुधार के विषय मे आपका स्पष्ट मत था कि ऐसा आचारण लाभकारी नहीं होगा जिसमे मानवीय गौरव स्वतन्त्रता और न्याय की रक्षा के लिये मौलिक आधार न हो। परिवर्तित परिस्थितियों के नाम पर अपने आधारभूत सिद्धान्तो मे सशोधन करने या छूट देने की सोचना अपनी परम्परा के सिद्धान्ता मे विश्वास की कमी का द्योतक होगा। कई बार ऐसा होता है जब मानव अपनी थकान के कारण विचारो के वात्याचक्र में फसकर सोचता है कि अतीत को त्याग दे और पूर्णरूपेण नये सिरे से प्रारम्भ करे। लेकिन इस स्थिति मे उसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था स्वय मानव की रक्षा नहीं कर पाती और नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने मे रुकावट बनती है। अत समाजसुधार का यथार्थ आशय है कि मानव सस्कृति के मौलिक आदर्शो का त्याग न कर अनुष्ठानो एव आचरणो द्वारा उनको साकार कर ऊपर उठाए। नूतन की उपलब्धियो को अतीत के प्रामाणिक सिद्धान्ता के साथ एकता के सूत्र मे गूथे।

आपके ओजस्वी प्रवचनो के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरूढियो की जड़ हिल चुकी थीं और समाज मे एक आशा की किरण चमकने लगी थी। वैसे तो कुरूढिग्रस्त समाज मे आदर्श की ओर कदम बढ़ाने में सत्कार नहीं वरन् तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति मे आदर्श समाज-रचना के प्रयत्न करना बड़े साहस का कार्य माना जाता है। लेकिन आपके उपदेशो ने समाज में असीम स्फूर्ति साहस और उत्साह का सचार कर दिया था।

समाजसुधार सम्बन्धी आपके विचारों को सुनकर प्रत्येक श्रोता की यह धारणा बनती थी कि मानवहित की भावना से ओत प्रोत आपश्री की देशना में धर्म की व्यावहारिकता और व्यापकता समझने के लिये वह सब सामग्री मिलती जो जीवन-निर्माण के लिये आवश्यक है। आपश्री के आचार-विचार और व्यवहार मे कृत्रिमता का अभाव और आत्मगौरव एव करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण था। सक्षेप मे आपश्री के बारे में कवि की यह उक्ति चरितार्थ होती है-

नारिकेल समाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जना।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहरा ।।

सज्जन ऊपर से नारियल के समान दिखाई देते हैं– अर्थात् रूखे मालूम पड़ते हैं परन्तु अन्तरग सद्गुणों का भण्डार होता है और खलजन बेर के समान बाहर से सुन्दर, आकर्षक प्रतीत होते हैं परन्तु उनके अन्दर गुठली के समान कठोरता परुषता भरी रहती है।

इस प्रकार कठिन विहार कर जनसाधारण को धार्मिक नैतिक कर्तव्य का प्रतिबोध कराते हुए चैत्र माह के शुक्ल पक्ष में पूज्यश्री बगड़ी पधारे। बगड़ी श्रीसघ की चातुर्मास हेतु पूर्व से ही आग्रहभरी विनती थी। पूज्यश्री के बगड़ी आगमन पर सघ ने उस विनती को पुन दोहराया। बगड़ी सघ मे धर्म का उत्साह अतुलनीय था। आचार्यवर ने सघ की विनती पर चिन्तन किया परन्तु स्वीकृति प्रदान नहीं की।

बगड़ी से गणेशाचार्य पाली पधारे। पाली को पूज्यश्री प्राय 'व्हाली' (प्रिय) कहा करते थे। पाली-व्हाली म पूज्यश्री के आगमन से आनन्द का वातावरण बन गया। गणेशाचार्य वैशाख शुक्ला 9 को पधारे जब कि पूज्य आचार्यश्री हस्तीमलजी म.सा. पूर्व मे ही पधार चुके थे। दोनों पूज्यवरो के एक स्थान पर विराजने से तथा सयुक्त प्रवचनों से पाली तथा बाहर से आगत श्रद्धालुओ को अपूर्व धर्मलाभ मिला। दया पौषध भारी सख्या मे हुए।

सयम-साधना मे साधक-सगठन ही उपादेय

यह समय राष्ट्रीय स्वाधीनता और सगठन का युग था। राष्ट्र अपनी परतन्त्रता से मुक्ति के लिये अहिंसक क्राति के दौर से गुजर रहा था। जनता की एक ही विचारधारा थी कि देश की स्वतन्त्रता के लिये चाहे जो कुछ भी बलिदान करना पड़े लेकिन स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक बनने का हमें सुअवसर प्राप्त हो।

समस्त राष्ट्र एकता सगठन के सूत्र में आबद्ध हो चुका था। ऐसा कोई गांव नहीं था जिसके निवासियो ने स्वाधीनता आदोलन मे भाग नहीं लिया हो। 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के विचार से राष्ट्र का कोना कोना गूज रहा था।

इसी समय स्थानकवासी समाज में सघ-ऐक्य के लिये पुन प्रयत्न होने प्रारम्भ हो गये थे। स्व पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के समय मे सम्पन्न साधु-सम्मेलन अजमेर के पश्चात् सघ-ऐक्य की आवश्यकता विशेषरूप से अनुभव की जाने लगी थी और एतद्विपयक विचार-विमर्श होना प्रारम्भ हो गया था।

ब्यावार चातुर्मास के अनन्तर विशेपत ग्रामो की ओर आपश्री का विहार हुआ। ग्रामो का शात-स्वच्छ वातावरण और वहा के सरलहृदय निवासियों के उत्साह के प्रति आपश्री का सदैव झुकाव रहा। आप मानते थे कि साधु-सन्तों के विहार और वर्षावास विशेपत उन स्थानो पर होने चाहिये जहा सयम साधना के लिये शात वातावरण हो और ज्ञानाभ्यास के लिये पर्याप्त समय मिल सके।

आपका यह भी निश्चित मत था कि आत्म-साधको को लौकिक आडम्बरो और प्रचार प्रसिद्धि से परे रहकर अपनी साधना मे लीन रहना चाहिये। यदि वे साधना से उदासीन होकर लौकिक कार्यों में अपने-आप को लगाते हैं तो चारित्र मे न्यूनता आना स्वाभाविक है और उस स्थिति मे साधकों द्वारा ऐसे कार्य हो जाना सभव हैं जो साधना के लिये शोभाजनक नहीं कहे जा सकते हैं।

आपको साधुता प्रिय थी न कि शिथिलाचार से जर्जर साधु-सख्या की विपुलता। साधुता की महत्ता सख्या की विपुलता म नहीं है किन्तु चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता मे है। अत जिनके मन मे साधुता के प्रति श्रद्धा तो हो नहीं किन्तु क्षणिक आवेश एव व्यामोहवश साधुवेश धारणा कर ले तो वे साधुता को कलकित करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकते हैं।

अत द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव से किसी भी प्रकार सयम-साधना में व्यवधान न आने देने की दृष्टि से शात एकान्त निर्जन ग्रामीण क्षेत्र आपको विशेप रूप से प्रिय थे।

बगडी चातुर्मास मे तप-त्याग का दौर

आगामी चातुर्मास का समय सन्निकट आ गया था और चातुर्मास-स्वीकृति के लिये विभिन्न श्रीसघो की ओर से विनतिया हो रही थीं। लेकिन आपश्री ने अपने विचारा के अनुकूल क्षेत्र को देखते हुए स 2003 के वर्षावास-समय मे बगडी (सज्जनपुर) मे विराजने की स्वीकृति फरमायी। इस स्वीकृति से बगडी तथा आस-पास के पूरे काठा मारवाड क्षेत्र मे हर्ष की लहर फैल गई।

पूज्यश्री ने पूरे कल्पकाल तक पाली को धर्मलाभ प्रदान कर सोजत रोड़ आदि क्षेत्रा को पावन किया तथा आषाढ शुक्ला पचमी को चातुर्मासार्थ बगडी पदार्पण किया।

श्रीमान् रावजी साहब आचार्यश्री के प्रवचनो से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने रणवास मे पधार कर व्याख्यान देने की प्रार्थना की परन्तु राजा और रक को एक दृष्टि से देखने वाले निस्पृह आचार्य ने रावजी की विनती स्वीकार नहीं की। आचार्यश्री के विनती स्वीकार नहीं करने पर रावजी किचत् भी अप्रसन्न नहीं हुए प्रत्युत् आपकी सरलता सादगी एव साधुता से प्रभावित हो सघ को डेरा-तम्बू आदि आवश्यकता की पूर्ति की।

देवगढ से गगापुर नाथद्वारा एव छोटे-मोटे गाँवो को माघ माह की भीषण सर्दी के बावजूद अपने सान्निध्य से कृतार्थ करते हुए उदयपुर पदार्पण किया। जन्मभूमि पर चरण न्यास होते ही यहाँ का कण-कण पुलकित हो उठा। आबाल-वृद्ध धर्म की गगा में डुबकिया लगाने लगा। तप त्याग की होड़ लग गई। 27 दिनो तक मेवाड की राजधानी को धर्मामृत से अभिसिचित कर 24 मार्च 47 को विहार किया। विहार मे मानो पूरा उदयपुर आपश्री के साथ बेमान हो चल पड़ा। सहेलियो की बाडी मे आपश्री विराजे। यहाँ महाराणा साहब भूपालसिहजी आपके प्रवचन-श्रवणार्थ पधारे। आधे घण्टे तक जैन आचार्य के मुखारविन्द से वीर क्षत्रियोचित प्रवचन श्रवण कर महाराणा सा गदगद हो गये।

पूज्यश्री ने यहाँ से देबारी कुराबड होते हुए बम्बोरा पदार्पण किया। यहाँ ब्यावर निवासी जुगराजजी बोहरा ने 30 वर्ष की युवावस्था में वैशाख सुदी 8 को दीक्षा अगीकार की। यहाँ से आचार्यवर कानोड़ पधारे। बड़े श्री चाँदमलजी म इत्यादि 14 सन्तो के साथ आचार्यश्री कुछ दिनो तक कानोड़ विराजे। यहाँ तप-त्याग-दया पौषध की धूम मच गई। गर्मी को झुठलाते हुए कानोड़वासियो ने जो धर्म आराधना की। वह उनकी गुरुभक्ति का उदाहरण था।

मुक्ति के चरम और परम लक्ष्य को ओझल कर प्रचारप्रधान विचारको ने जैन समाज मे काफी समय से ध्वनिवर्धक यत्र की अनावश्यक चर्चा चला रखी थी। श्री श्वे स्था जैन कॉन्फरेस के कार्यकर्ताओ ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा म उपस्थित होकर ध्वनिवर्धक यत्र विषयक विचार जानने का प्रयत्न किया। आचार्यश्री ने कॉन्फरेस कार्यकर्ताओ के सन्मुख अपने स्पष्ट विचार प्रगट किये-

'मैं इस प्रवृत्ति को शास्त्रविरुद्ध समझता हूँ क्योकि अग्निकायादि जीवों का आरम्भ प्रत्यक्ष रूप से होता है और यही मूल व्रतो का विनाशक है। अतएव जैन मुनियो के लिए यह शास्त्रविरुद्ध आचरण अशोभनीय है। अत आरम के कार्यो का मैं समर्थक नहीं हूँ। यही मेरी स्पष्ट सम्मति है।

श्रमण सस्कृति-सरक्षक आचार्यप्रवर के श्रीमुख से ध्वनिवर्धक यत्र के विषय में एकदम स्पष्ट विचार सुनकर आगत कार्यकर्ताओ के पास प्रतिप्रश्न रहा ही नहीं। आचार्यश्री प्रारम से ही आचार-रक्षक के रूप में रहे। ढुलमुल नीति को उन्होने कभी प्रश्रय नहीं दिया। इस आचार-रक्षक नीति पर वे जीवन के अतिम श्वास तक दृढ रहे।

चातुर्मास के पूर्व पूज्यश्री सहस्रमलजी म सा की परम्परा के मुनिश्री नगराजजी म (ताल-मेवाड) ने आपश्री का चरणाश्रय ग्रहण किया।

आपश्री की सयम-साधना और धर्मदेशना से भव्यजन परिचित थे ही और समय समय पर वाणी-श्रवण का लाभ भी उठाते रहते थे। अत चातुर्मास हेतु बगडी मे आपश्री का पदार्पण होते ही हजारो बधुओ का बगडी में जमघट होने लगा।

साधु-सन्तों का चातुर्मास उस स्थान के समस्त निवासियो की भावनाओ का प्रतीक होता है। अत बगडीवासियो ने धर्मलाभ लेने के लिये आने वाले बधुओ की सेवा व्यवस्था का प्रत्येक कार्य स्वय करने मे अपना गौरव माना।

पर्युषण पर्व के अवसर पर खूब तपस्याए हुईं। सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी साहब धाड़ीवाल एव सेठानी श्री लक्ष्मीबाई ने क्रमश 8 एव 12 की तपस्या करते हुए बाहर से आगन्तुकों की तन-मन-धन से सेवा करके स्वधर्मी वात्सल्यता का लाभ लिया। शासन-प्रभावना की दृष्टि से आपकी सेवाए उल्लेखनीय रहीं। पर्युषण एव पूरे चातुर्मास-काल मे बाहर से भारी सख्या मे लोगो का आवागमन रहा। चातुर्मास मे अछूत माने जाने वाले बहुत से स्त्री पुरुष भी आपके प्रवचन सुनने के लिये आया करते थे। उन्होने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर मद्य मास आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली और सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए।

बगड़ी का यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न कर आपश्री ने तेरहपन्थियों के विशेष आग्रह पर मुसालिया माण्डा दुधौड़ मारवाड़ ज राणावास चौपारी सारण सिरियारी काछबली आदि अनके छोटे-छोटे गाँवो मे पर्दापण किया। आपश्री ने दया दानमय जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके भव्य जनों को बोध दिया फलस्वरूप कई एक सरल हृदय प्रकृति वालो ने सत्य श्रद्धा ग्रहण की तथा अन्य अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान भी हुए।

सारण और सिरियारी मे बहुत वर्षों से धड़े चले रह थे। समाज म वैमनस्यता का वातावरण बना हुआ था। आपश्री के प्रभावक वचनामृता से एकता स्थापित हुई और सामाजिक समरसता का निर्माण हुआ। इन क्षेत्रों मे अधिकाश तेरहपन्थी भाइयो ने बहुत भक्ति एव प्रेम प्रदर्शित किया। आचार्यश्री के विचरण से इन गाँवो मे अपूर्व क्षेत्रशुद्धि हुई।

दयादान का परचम फहराते हुए तथा भव्य प्राणियो को सत्यपथ पर आरुढ करते हुए आपश्री ने पौष शुक्ला ग्यारस को मेवाड़ के मुख्य क्षेत्र देवगढ़ मे प्रवेश किया। पूरा मवाड हर्ष से झूम उठा। आचार्यश्री के देवगढ़ मे 6 प्रवचन हुए जिनमे प्रतिदिन कुव्यसन बीड़ी तम्बाकू मदिरा आदि के त्याग होते थे। जमीकन्द एव हरी के खन्द भी हुए। श्रीयुत् मूलचन्दजी श्रीमाल ने सजोडे शीलव्रत ग्रहण किया। आचार्यश्री के आचार विचारों प्रभावित होकर अनेक भाई-बहनों से सत्य श्रद्धा ग्रहण की।

श्रीमान् रावजी साहब आचार्यश्री के प्रवचनो से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने रणवास मे पधार कर व्याख्यान देने की प्रार्थना की परन्तु राजा और रक को एक दृष्टि से देखने वाले निस्पृह आचार्य ने रावजी की विनती स्वीकार नहीं की। आचार्यश्री के विनती स्वीकार नहीं करने पर रावजी किचत् भी अप्रसन्न नहीं हुए प्रत्युत् आपकी सरलता सादगी एव साधुता से प्रभावित हो सघ को डेरा-तम्बू आदि आवश्यकता की पूर्ति की।

देवगढ से गगापुर नाथद्वारा एव छोटे-मोटे गाँवो को माघ माह की भीषण सर्दी के बावजूद अपने सान्निध्य से कृतार्थ करते हुए उदयपुर पदार्पण किया। जन्मभूमि पर चरण न्यास होते ही यहाँ का कण-कण पुलकित हो उठा। आबाल-वृद्ध धर्म की गगा मे डुबकिया लगाने लगा। तप-त्याग की होड लग गई। 27 दिनो तक मेवाड की राजधानी को धर्मामृत से अभिसिचित कर 24 मार्च 47 को विहार किया। विहार मे मानो पूरा उदयपुर आपश्री के साथ बेमान हो चल पड़ा। सहेलियो की बाड़ी मे आपश्री विराजे। यहाँ महाराणा साहब भूपालसिहजी आपके प्रवचन-श्रवणार्थ पधारे। आधे घण्टे तक जैन आचार्य के मुखारविन्द से वीर क्षत्रियोचित प्रवचन श्रवण कर महाराणा सा गदगद हो गये।

पूज्यश्री ने यहाँ से देबारी कुराबड़ होते हुए बम्बोरा पदार्पण किया। यहाँ ब्यावर निवासी जुगराजजी बोहरा ने 30 वर्ष की युवावस्था मे वैशाख सुदी 8 को दीक्षा अगीकार की। यहाँ से आचार्यवर कानोड़ पधारे। बड़े श्री चाँदमलजी म इत्यादि 14 सन्तो के साथ आचार्यश्री कुछ दिनो तक कानोड़ विराजे। यहाँ तप-त्याग-दया-पौषध की धूम मच गई। गर्मी को झुठलाते हुए कानोडवासियों ने जो धर्म आराधना की। वह उनकी गुरुभक्ति का उदाहरण था।

मुक्ति के चरम और परम लक्ष्य को ओझल कर प्रचारप्रधान विचारको ने जैन समाज मे काफी समय से ध्वनिवर्धक यत्र की अनावश्यक चर्चा चला रखी थी। श्री श्वे स्था जैन कॉन्फरेस के कार्यकर्ताओ ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर ध्वनिवर्धक यत्र विषयक विचार जानने का प्रयत्न किया। आचार्यश्री न कॉन्फरेस-कार्यकर्ताओ के सन्मुख अपने स्पष्ट विचार प्रगट किये-

'मैं इस प्रवृत्ति को शास्त्रविरुद्ध समझता हूँ क्योकि अग्निकायादि जीवों का आरम्भ प्रत्यक्ष रूप से होता है और यही मूल व्रतों का विनाशक है। अतएव जैन मुनियो के लिए यह शास्त्रविरुद्ध आचरण अशोभनीय है। अत आरभ के कार्यो का मैं समर्थक नहीं हूँ। यही मेरी स्पष्ट सम्मति है।

श्रमण सस्कृति-सरक्षक आचार्यप्रवर के श्रीमुख से ध्वनिवर्धक यत्र के विषय में एकदम स्पष्ट विचार सुनकर आगत कार्यकर्ताओ के पास प्रतिप्रश्न रहा ही नहीं। आचार्यश्री प्रारम से ही आचार-रक्षक के रूप मे रहे। ढुलमुल नीति को उन्होने कभी प्रश्रय नहीं दिया। इस आचार-रक्षक नीति पर वे जीवन के अतिम श्वास तक दृढ रहे।

कानोड़ मे अपने प्रवचनो एव आचरण से जनचेतना का आन्दोलित कर पूज्यप्रवर आषाढ बदी 8 को छोटी सादडी पधारे। यहाँ आप श्री का लगभग 15 दिन विराजना रहा।

छोटी सादड़ी मे आपके समन्वयात्मक विचारप्रधान प्रवचनो का भारी प्रभाव पड़ा। यहाँ श्री जैन गोदावत गुरुकुल' कुछ वर्षों से बन्द पडा था। आपके सदुपदेशो से कार्यकर्ताओं ने प्रेममय वातावरण बनाकर उसे पुन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। जो एक दूसरे का मुँह देखने को तैयार नहीं थे वे व्यक्ति गले मिल गये और कन्धे से कन्धा लगाकर सामाजिक धार्मिक उन्नयन हेतु तैयार हो गये। यह आचार्यश्री की निर्मल साधना का अतिशय था। सस्था के कार्यकर्ताओं ने 8 जुलाई 48 को गुरुकुल का पुन विधिवत् उद्घाटन किया।

छोटी सादडी में प्रेम का राज्य स्थापित कर पूज्यश्री ने पूर्वनिश्चयानुसार आषाढ शुक्ला 10 को चातुर्मासार्थ बडी सादडी में प्रवेश किया। मुनिश्री मोहनलालजी म ठाणा 4 से छोटे सन्तो के शिक्षण हेतु पूर्व मे ही बडी सादडी पधार गये थे। इस प्रकार 8 ठाणा से बड़ी सादड़ी में धर्म का ठाठ लगा। आचार्यश्री के नगर-प्रवेश पर जैन एव जैनेतर जनता भारी सख्या में उपस्थित थी।

अन्धश्रद्धा टूटी अहिसा जीती

इस समय देश की स्थिति बहुत ही विषम हो रही थी। राष्ट्र-विभाजन के फलस्वरूप आबादी की अदला-बदली से हजारो हिन्दू परिवारो को अपने जन्मस्थान छोड देने पड़े थे और उनके पुनर्वास की समस्या विकट बनी हुई थी। बात-बात में दगे फिसाद हो जाना तो एक साधारण-सी बात थी। जनता मे भय का वातावरण बना हुआ था। बड़ी सादड़ी पहाड़ों की तलहटी मे बसा गाव है और वहा पहुचने के लिये यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध नहीं होते थे। वर्षा-ऋतु होने से रास्ते भी दुर्गम हो गये थे। फिर भी स्थानीय और बाहर से आगत हजारो भाई-बहिनों ने आपश्री की व्याख्यानवाणी का लाभ लिया एव त्याग प्रत्याख्यान तपस्याए करके आध्यात्मिक विकास करने की ओर उन्मुख हुए।

इस चातुर्मास का एक उल्लेखनीय प्रसग है—

बडी सादडी के स्व राजराणा श्री कल्याणसिहजी साहब के लघु भ्राता महाराज श्री भींवसिहजी आपके प्रवचन सुनने प्रतिदिन आते थे। मद्य मास सेवन शिकार करना आदि श्री भीमसिहजी के दैनिक कार्य थे और ऐसा करना वे राजपूतों के लिये जरूरी मानते थे। ठिकाने की ओर से नवरात्रि के समय प्रतिदिन एक-एक की वृद्धि करके 45 बकरो की जगदम्बा के स्थान पर हत्या कराई जाती थी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन एक भैंसे की बलि भी दी जाती थी।

यद्यपि इस कार्य से सभी ग्रामवासियो को हार्दिक वेदना होती थी लेकिन जब रक्षक ही विवेकहीन होकर भक्षक बनने को आमादा हो तो वे अपना दु ख किससे कहें ? चातुर्मास-काल में इस रौरवकृत्य की जानकारी आपश्री को मिली। जिससे आपश्री का परदु खकातर करुणार्द्र मानस सिहर उठा। अन्धश्रद्धा के वश होकर धर्म को कलकित करने वाले ऐसे कृत्यो का उन्मूलन करने के लिये आप सदैव तत्पर रहते थे और इस समय तो स्वय आपकी उपस्थिति मे ही ऐसा कुकृत्य होने वाला था।

यद्यपि आप अपने प्रवचनो मे अहिसा दया करुणा आदि भावनाओ का सकेत करते ही रहते थे। लेकिन जब से आपको इन मूक प्राणियों की हत्या की जानकारी मिली तो प्रतिदिन के प्रवचनो मे विस्तार से उनका विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिनका साराश इस प्रकार है-

प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है कैसी भी स्थिति हो लेकिन उसकी जिजीविषा की भावना सदैव बलवती रही है और मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो उठता है। मनुष्य होकर जो धर्म के नाम पर या अपनी आकाक्षापूर्ति के लिये प्राणिहत्या करते हैं वे मनुष्य के रूप मे राक्षस हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरो का विनाश करने के साथ-साथ अपने लिये रौरव नरक का रास्ता बनाते हैं

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दया कुर्वन्ति साधव ।।

जैसे सभी को अपने प्राण अभीष्ट–प्रिय हैं वैसे ही और प्राणियो को भी हैं। साधुजन उन्हे भी अपने प्राणों के समान समझकर सदा ही दया करते हैं।

हिसा की भयानकता से आज विश्व सत्रस्त है। अपनी सुरक्षा और शाति के लिये मानवता का पाठ सीखने को तत्पर है। उस स्थिति मे धर्म के नाम पर मूक प्राणियों का कत्ल कर देना धर्म को कलकित कर देना है। धर्म प्राणिमात्र को जोडने का सबक सिखाता है। एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यनिर्वाह की सीख देता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु से बढकर जीवन का अन्य कोई कर्तव्य नहीं है।

प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने रूप मे जीने का अधिकार है। जो दूसरे जीव के अगोपाग नहीं बना सकता तो उनको छीनने का भी अधिकार उसको नहीं है। यदि दूसरे प्राणी भी मनुष्य से कहे कि मेरे खाने के लिये पैदा हुआ है तो मनुष्य उसकी यह बात मान लेगा ? इसलिये मानव जीवन की यही सार्थकता है कि अपनी शक्ति और सपत्ति को प्राणिमात्र के दु खों को दूर करने मे लगा दे। यही हमारे लिये सच्चे सुखानुभव का कारण हो सकेगा।

उदारता के साथ प्राणियों की सेवा करने तथा जगत् के दु ख दूर करने के लिये पूर्णतया सलग्न रहने मे ईश्वर और धर्म की आराधना तथा आत्मा की साधना है। जो दूसरों को दु ख

देकर सुख की खोज करता है और स्वार्थ के वशीभूत होकर अमानवीय क्रियाओ की ओर झुक जाता है उसका परिणाम बहुसख्यक अशक्तों की असह्य पीड़ा के रूप में प्रगट होता है।

अगर इस आत्मविस्मृति के विरुद्ध आत्मानुभव की भावना जाग सके और प्रत्येक कार्य को स्वानुभव की कसौटी पर कस ले तो मानव किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से दु खी करने उनके प्राणो को हरने का प्रयत्न नहीं करेगा। इसके लिये आवश्यक है मानवीय नीतियों मे स्वार्थ-त्याग की धर्ममय नीति के प्रवेश करने की।

आपश्री के प्रवचनो को सुनकर ठाकुर श्री भीमसिहजी की अन्तर्चेतना जाग्रत् हुई और धर्म के वास्तविक स्वरूप की जानकारी प्राप्त की। दृष्टि के बदलते ही अभी तक जो कुछ किया या धर्म के नाम पर जीवहत्या का कलक लगाया वह सब उन्हें घृणित और निन्दनीय जचने लगा और मन मे विचार पैदा हुआ कि जगदम्बा के महान् गौरवशाली पद पर आसीन भवानी अपने सपूतो के खून से कैसे खुश हो सकती है ? यह सब तो धर्म को कलकित करने वाले स्वार्थियो और धर्मद्रोहियो का पाखड है धर्म के साथ द्रोह करना है। मैं अधेरे मे था आज ही मुझे सद्गुरु का समागम हुआ है और उन्होंने सद्‌बुद्धि देकर सन्मार्ग के दर्शन कराये हैं।

ठाकुर सा के मन में ये विचार कितने ही दिन तक चलते रहे और उनके समाधान के लिये विचारों की गहराई मे उतरते उतना ही हृदय पश्चात्ताप से भर जाता था। मूक प्राणियों की आकृतियाँ आखो के सामने झलक उठती थीं। अपने मनोभावो को व्यक्त करने के लिये अनेक बार सोचा भी लेकिन मानसिक द्वन्द्व के कारण आत्मा की आवाज कहते-कहते हिचक जाते थे।

एक दिन मन मे कुछ निश्चय-सा करते हुए प्रवचन के समय अपने द्वन्द्व को निवेदन करते हुए ठाकुर सा ने कहा कि मैं बहुत ही अन्धकार में था। भ्रान्त धारणाओ और अन्धश्रद्धा के वश होकर मेरे द्वारा अनेक निरीह प्राणियो की हत्या हुई है। इसके लिये मुझे हार्दिक दु ख है और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली बलि नहीं करूगा और न शिकार ही खेलूगा। आपके सद्‌बोध से मेरा जन्म सुधर गया है।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने के साथ-साथ ठाकुर श्री भीमसिहजी शुद्ध श्रद्धा धारण करके जैन धर्म के अनुरागी और आपके भक्त बन गये और पहले तो नवरात्रि के दिनों में प्रतिदिन एक-एक बढाकर पैंतालीस बकरा की बलि दी जाती थी उसके बजाय प्रतिदिन एक-एक बढाकर पैंतालीस बकरों को अभयदान देकर अमारिया घोषित करने की आज्ञा दे दी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन भैंसे के वध को तो सदा के लिये बद कर दिया गया। आपके साथ में ठाकुर मोड़सिहजी साहब झाला ठाकुर अर्जुनसिहजी साहब भाभा तेजदानजी चारण सरदार कुवर साहब आदि सज्जनों ने भी मद्य मास का त्याग किया।

इस अहिंसा और करुणा की क्राति के अतिरिक्त अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान धर्म-ध्यान व प्रभावना के कार्यों के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। वड़ी सादडी श्रीसघ के हर्ष का पार न था कि वहुत समय से चली आ रही अन्धश्रद्धा-जन्य पाशविक प्रथा सदा-सदा के लिये बद हो गई।

कार्तिक बदी 7 को श्रीडूगरगढ-देशनोक के श्री तोलारामजी सेठिया की दीक्षा आपकी नेश्राय मे सानन्द सम्पन्न हुई।

ठाकुरो में जीव-दया की लहर पैदा हुई

अहिंसा परमो धर्म का विगुल वजाकर आचार्यश्री ने वडी सादडी से विहार किया। वडी सादडी के श्रद्धालुओ के मन विरह की व्यथा से व्यथित थे तो अपार जनसमूह को देखकर प्रफुल्लित भी थे।

हजारो श्रद्धालुओ के जयघोषो के साथ आचार्यश्री वोहड़ा पधारे। वोहड़ा के रावतजी साहव एव कामदार साहव आदि भी आचार्यश्री के स्वागतार्थ पधारे। रावतजी साहव कामदार साहव आदि जनसमूह ने विविध त्याग-प्रत्याख्यान किये।

पूज्यश्री वोहड़ा से वानसी पधारे। वानसी के रावत साहव आदि आपश्रीजी के प्रवचन से अत्यधिक प्रभावित हुए। प्रवचन सभा में रावतजी साहव ने घोषणा की– 1 वैशाख श्रावण और कार्तिक माह में पूरा अगता पलाया जायेगा। 2. नवरात्रि में जो वलिदान होते थे वे वन्द किये जाते हैं।

इस घोषणा से अहिसाप्रेमियों के हर्ष का पार नहीं रहा। वोहड़ा और वानसी में श्री जवाहर स्वाध्याय मण्डल की स्थापना हुई। मण्डल को रावतजी साहव की तरफ से पुस्तके भेंटस्वरुप प्रदान की गईं।

आपश्री ने वानसी से कानोड़ निकुम डुगला सनवाड़ फतहनगर आदि छोटे-मोटे कई गाँवो में व्यसनमुक्ति एव अहिंसा का सिहनाद कर कपासन पदार्पण किया। कपासन में महासतीश्री दीपकवरजी महासतीश्री सुहागाजी आदि साध्वियों सहित 40 के करीव चारित्रात्माओं का सम्मिलन सुखद रहा।

स्थिरवासी सन्तों की सेवा मे वीकानेर एव व्यावर की तरफ सुयोग्य सतों को विहार कराकर पूज्यवर ने गगापुर भीलवाड़ा होते हुए चितौडगढ पदार्पण किया। चितौड मे ठाणा 17 से काफी दिनों तक विराजना रहा और प्रवचन-प्रभावना का ठाठ रहा। कानोड तथा रतलाम के सघ प्रमुखो ने आचार्यश्री के चरणो में चातुर्मास हेतु विनतियाँ प्रस्तुत कीं। आचार्यप्रवर ने फरमाया– 'जावरा विराजमान प्रवर्तनीश्री केसरकवरजी म सा को दर्शन दिये विना चातुर्मास की स्वीकृति देने का भाव नहीं है।

बडी सादडी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् यथासमय अन्यान्य स्थानो मे भी आपके पधारने से ठाकुरा जागीरदारों ने भी धर्मोपदेश को सुनकर शिकार मासाहार सुरापान और माता के स्थान पर बलि देने आदि का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। बड़ी सादडी मे हुई अहिसा-प्रसार की क्राति की ऐसी लहर फैली कि विनाश की विचारधारा विकास मे रूपान्तरित हो गई। गाव-गाव मे ये प्रतिज्ञाए दुहराई गईं कि हम लोग अपने-अपने गाव मे नवरात्रि दशहरे के दिनो में बकरों भैंसों की बलि नहीं देंगे और दूसरे दूसरे स्थानो पर भी ऐसा न होने देने के लिये प्रयत्न करेगे।

मन्दसौर मे सिंधी भाइयो मे धर्म-जागृति

इस प्रकार मेवाड मे अन्धश्रद्धा का उन्मूलन और धार्मिकता के बीज वपन करते हुए आपके मालव भूमि की ओर विहार की जानकारी जैसे ही मालव श्रीसघों को मिली तो उनमे एक अपूर्व उत्साह व्याप्त हो गया। सभी श्रीसघो मे होड़ सी चल पडी कि हमारे क्षेत्र मे तो आपका अवश्य ही पदार्पण हो और अपने-अपने क्षेत्र मे पधारने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित होने लगे।

यथासमय विहारमार्ग मे आने वाले नीमच नगरी आदि क्षेत्रों मे विचरण करते हुए आपने मदसौर मे पदार्पण किया और राजकीय शाला मे विराजे।

मदसौर मे होने वाले प्रवचनो का समस्त नगरवासियों ने लाभ लिया। वे सभी ऐसे प्रभावित हुए कि आप यहा विराजकर हमे धर्म के मर्म से परिचित कराते रहे। फलस्वरूप सभी ने आगामी चातुर्मास के लिये सामूहिक रूप मे विनती करने का निश्चय किया। उनमें सिन्धी भाई भी थे जो अपने जन्मस्थानो को हजारो मील दूर छोडकर शरणार्थी के रूप में इस नगर में आकर नये-नये ही बसे थे। उनकी भावना थी कि धर्म के दो शब्द सुनेंगे तो हमारे मन शात होंगे।

अभी चातुर्मास का समय दूर था अत निश्चित रूप से प्रत्युत्तर न देकर इस सामूहिक विनती को आपश्री ने अपनी झोली में डाल कर मदसौर से जावरा की ओर विहार कर दिया।

आचार्यश्री ने अपार जन उत्साह के साथ आषाढ कृष्णा 3 को जावरा में पदार्पण किया। जावरा में दर्शनातुर प्रवर्तनीजी की भावना सफल हुई। एक इच्छा के पूर्ण होते ही दूसरी इच्छा प्रबल हो उठी कि पूज्यश्री का चातुर्मास भी जावरा हो ताकि सेवा सान्निध्य का लाभ प्राप्त हो सके। प्रवर्तनीजी की भावना के साथ जावरा सघ की भी प्रबल भावना थी कि पूज्यवर का चौमासा जावरा हो। इस प्रकार आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने की विनती लेकर जावरा एव जावरा के अलावा रतलाम कानोड़ मन्दसौर आदि श्रीसघों के सदस्य भी

उपस्थित हो गये और आगामी चातुर्मास के लिये पुन अपनी-अपनी विनती दोहरायी और द्रव्य क्षेत्र काल भाव को देखते हुए आपने कई आगारों के साथ स 2005 का चातुर्मास रतलाम करने की स्वीकृति फरमायी।

इस अवसर पर विनती करने वाले श्रीसघो मे मदसौर श्रीसघ के साथ वहा के और दूसरे नागरिक व सिन्धी भाई यह विश्वास लेकर आये थे कि आपश्री हमारी विनती पर अवश्य ही ध्यान देगे और वर्षावास के चार माह विराजकर धर्मोपदेश सुनाने के साथ-साथ हमें जैन धर्म में दीक्षित करने की कृपा करेंगे। लेकिन स्वीकृति न मिलने से उन्हे वडी निराशा हुई।

अकिचन अनगार की दृष्टि में राजा-रक सभी समान हैं। जिन्होंने ऐहिक भोगो की निस्सारता को परख लिया है उन्हे सासारिक वैभव मान-सम्मान पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्रलोभन किचिन्मात्र भी आकर्षित नहीं कर पाते हैं। लेकिन वे श्रद्धालुओ की श्रद्धा और धार्मिकजनो की धर्म-भावना के विकास मे सहकार देने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। अत आपश्री को मदसौर श्रीसघ के सदस्यो और विशेषत सिन्धी भाइयों के विश्वास और आन्तरिक भावना को ठेस पहुचाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसी के साथ-साथ यह विचार भी पैदा हुआ कि जब आगामी चातुर्मास के लिये स्वीकृति दे दी है। तो अब अपने वचन से मुकरना साधु-मर्यादा नहीं है।

कई कारणो से चातुर्मास मन्दसौर न होकर रतलाम मे हुआ

आपश्री इस दुविधा के बारे में जितना भी सोचते और समाधान का प्रयत्न करते उतना ही उलझन बढती जा रही थी। अत आपने यह अन्तर्द्वन्द्व रतलाम श्रीसघ के श्रावकों के समक्ष रखा और फरमाया कि चातुर्मास की स्वीकृति के समय विशिष्ट धार्मिक उपकार होने की सम्भावना से अन्यत्र चातुर्मास किये जाने का आगार रखा है। फिर भी आप लोगो की भावना से परिचित होना चाहता हूँ। आप लोग इस उलझन का समाधान बतायें।

रतलाम सघ के सदस्यों ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को लक्ष्य में रखते हुए और विशेष उपकार होने की आशा मे आपस मे विचार-विमर्श करके प्रार्थना की कि आपश्री अपने आगारों के अनुसार विशेष परिस्थिति मे कहीं भी चातुर्मास में विराज सकते हैं और मदसौर की जनता की भावना को देखते हुए वहा धर्म-प्रभावना होने की सम्भावना है। यद्यपि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के समय में राजाओं द्वारा अपने नगर के लिये चातुर्मास मागने का प्रसग आ चुका है लेकिन किसी नगर के नागरिकों द्वारा सामूहिक रूप में चातुर्मास की प्रार्थना होना पहली ही बार हम देख रहे हैं। अत भविष्य के लिये अपना अधिकार सुरक्षित रखते हुए प्रार्थना करते हैं कि आपश्री इस वर्ष का चातुर्मास मदसौर करने की स्वीकृति फरमावें। साथ ही

मदसौर सघ से आशा करते हैं कि आपकी धर्म भावना दिनोंदिन वृद्धिगत हो और गुरुदेव के उपदेशो का लाभ उठाये।

रतलाम श्रीसघ की स्वीकृति मिलने पर आपने मदसौर के उपस्थित नागरिको और उनके अग्रणी प्रमुख सज्जनो से कहा कि आपकी धर्म-भावना को समझकर रतलाम सघ ने भी अपनी उदारता दिखलाई है और मैं भी चातुर्मास की स्वीकृति के समय रखे हुए आगारों के अनुसार अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये खुला हुआ हूँ। कदाचित् मदसौर मे चातुर्मास की स्थिति बने तो साध्वाचार के अनुरूप विश्राम-स्थान के बारे मे आप लोग बताइये।

सिन्धी भाइयों ने इस बात को सुनकर कहा कि आपश्री तो अपनी स्वीकृति फरमावें। योग्यस्थान की व्यवस्था करने मे हमे कोई कठिनाई नहीं होगी। सिर्फ आपकी स्वीकृति हमारे लिये महान् प्रसन्नता और गौरव की बात होगी।

इस बात को सुनकर आपने फरमाया कि जब साधु अपने निमित्त बना हुआ भोजन भी नहीं ले सकता तो यह स्थिति कैसे समव है कि आप लोग साधु के निमित्त मकान की व्यवस्था करे। साधु अपने निमित्त किसी को कष्ट दे तो उसमे सयम-साधना निरतिचार कैसे पल सकेगी ? इसलिये आप लोग ऐसा कोई स्थान बताये जिसमे किसी को भी कठिनाई न हो एव साधु-मर्यादा का पालन करते हुए साधु-सत वर्षावास कर सके। आप यह सोचें कि किराया देकर मकान ले लेगे तो भी यह साधु के लिये नहीं कल्पता है।

इस परिस्थिति को देखकर मदसौर की जनता विवश हो गई और प्रार्थना की कि भगवन् ! आपकी दयालुता महान् है लेकिन साधु-मर्यादा को देखते हुए हम विवश हैं। आपश्री जैसा निर्दोष स्थान फरमा रहे हैं वैसी स्थिति अभी हमारे यहा नहीं है एव अपनी विवशता के लिये हमे दु ख है।

आपने पुन फरमाया कि अब आप ही अपना निर्णय दे दीजिये कि सयम स्थिति का सरक्षण करते हुए हमे चातुर्मास मे कहा रहना उपयुक्त हो सकता है। साधु तो साधुता की रक्षा को ही सर्वोपरि मानता है।

इस समग्र परिस्थिति के विशद विवेचन से मदसौर के निवासियो को सतोष हुआ और बड़े ही हर्ष के साथ प्रार्थना की कि आपश्री अपनी साध्वोचित मर्यादा के अनुसार सयम सरक्षणार्थ आगामी चातुर्मास रतलाम करने की कृपा करावे। आप जहा भी विराजेगे वहीं आकर दर्शन, व्याख्यान-वाणी का लाभ ले लेंगे। लेकिन सिर्फ अपने लाभ के लिये हम आपके साध्वाचार में किसी भी प्रकार से अतिचार नहीं आने देना चाहते हैं। अत स 2005 का चातुर्मास रतलाम घोषित हुआ।

रतलाम मे 10 दिन विराज कर आचार्यश्री ने सैलाना आदि आस पास के क्षेत्रों मे

धर्मोपदेश देते हुए आषाढ सुदी 7 को ठाणा 11 से चातुर्मासार्थ रतलाम पदार्पण किया। इस चातुर्मास म महासतीश्री सूरजकवरजी महासती श्री सुगनकवरजी (बीकानेर वाले) ठाणा 8 एव महासतीश्री भूराजी म ठाणा 5 का सान्निध्य भी धर्मप्राण जनता को प्राप्त हुआ।

रतलाम मे अध्यात्म तत्त्वज्ञान की झडियाँ

चातुर्मास-काल मे स्थानीय एव आस-पास के क्षेत्रो के श्रावक-श्राविकाओ ने आध्यात्मिक विकास एव धर्म-प्रभावना का लाभ प्राप्त किया। अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान हुए।

आपकी तात्त्विक विवेचना की अपनी अनूठी शैली थी कि जो-कुछ विवेचन करना वह शास्त्रसम्मत एव जैन सिद्धान्तो के आधार पर करना। आपके प्रवचनो की छटा अलौकिक थी और उनका सबध मानव-जीवन धर्म समाज-सगठन जैनतत्त्वों की विशालता से रहता था। इनके सम्बन्ध म आपके विचार मनन करने योग्य हैं। प्रसगानुसार आप फरमाया करते थे--

'ग्रन्थों मे धर्म की विभिन्न व्याख्याए की गई हैं। उनमें विभिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी किसी दृष्टि से तात्पर्य की समता दिखाई देती है। जैन शास्त्रों मे साध्यागत धर्म की एक व्याख्या की गई है वह अतीव सक्षिप्त है किन्तु सारगर्भित भी कम नहीं है। धर्म के वास्तविक एव मूल रूप को सरलतापूर्वक समझने की दृष्टि से उस व्याख्यान का कुछ विशेष महत्त्व भी है। वह व्याख्या कहती है- वत्थु सहावो धम्मो जो वस्तु का (मूल) स्वभाव है वही उसका लक्ष्यगत धर्म है।

धर्म कोई विशिष्ट प्रक्रिया या पद्धति ही नहीं वल्कि एक स्थिति भी है अर्थात् विशिष्ट प्रक्रिया पद्धति लक्ष्यगत धर्म को प्राप्त करने में साधन-रूप धर्म है। लेकिन वह साधनरूप धर्म लक्ष्य को सामने रखकर चलता है तभी वस्तुगत स्थिति पर पहुच सकता है या अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहे तो वही सनातन स्थिति है जिसे हम निर्विकार वीतराग या ऐसी ही उच्चतम स्थिति के रूप मे स्वीकार करते हैं। 'दुर्गतो प्रपतान् जनान् धारयतीति धर्म-- इस कथन का यही अभिप्राय है कि जब आत्मा विकार की दशा म फसकर अपने विकाराशील स्वभाव से अलग हो जाता है गिरने लगता है तब उससे सजग होकर जिस वास्तविक मूल स्थिति को वह प्राप्त करने के लिये आगे बढता है और साधना के द्वारा आत्मगत स्वभाव मे प्रतिष्ठित हो जाता है वही धारणा करने की स्थिति धर्म की मजिल कहलाती है।'

'मानव जीवन की विशिष्टता का तभी अनुभव हो सकेगा कि आत्मा को पतन से बचाकर अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अनुकम्पा सहानुभूति उदारता विशालता विशुद्धता आदि प्रगतिशील वृत्तियो को ग्रहण करके विकास मार्ग पर कदम बढ़ाये जाते हैं क्याकि इन वृत्तियों को अपनाने की शक्ति के फलस्वरूप ही ससार के अन्य प्राणियो में मानव का विशिष्ट

स्थान है और यदि मानव ही इन वृत्तियों से हीन रहता है तो वह 'पुच्छविषाणहीन प
समान ही है। परन्तु मेरी दृष्टि मे तो कर्तव्यहीन मानव को पशु की उपमा देना भी प
का अपमान है क्योकि पशु तो ज्ञान के दर्जे मे नीचे गिरा हुआ होता ही है लेकिन ज्ञान
ठेकेदार बना आज के वैज्ञानिक युग का मानव जब पशु से भी अधिक बर्बर अमानुषि
अज्ञानी हो जाता है तब पशु से भी अधिक निकृष्ट ही हुआ। आज के शोषक मानव
राक्षसी जिह्वा रात-दिन निर्दोष प्राणियो के रक्त-शोषण-हित लपलपाती रहती है और
विकृत वृत्ति उसे मानवता से गिराये हुए है।

अत मानव जीवन को विशिष्टता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि
प्राणिमात्र के सरल प्रेम से अपने हृदय को आप्लावित कर जीवन के प्रत्येक आचरण
अहिसा के तराजू पर तोले और यह जानने की चेष्टा करे कि कितने अशों में आपका जी
अहिसामय और त्यागमय बन सका है उसमें मानवता की प्रधानता स्थापित हो सकी है

आत्मा से परमात्मा तक के विकासक्रम का जिन्हाने ज्ञान प्राप्त किया है और ज्ञ
होकर उसमे अपनी आस्था जुटाई है उन्हे सुज्ञानी कहा जायेगा। धर्म और उसके दर्शन
जो धुरी है वह है आत्मा का परमोत्कृष्ट विकास इसलिये इस विकास का मूल है आत्म
कैसी आत्मा ? जोकि इस ससार के गतिचक्र मे भ्रमण कर रही है अर्थात् जडपुद्गलो
सयोग से जन्म-मरण करती हुई बन्धानुबन्ध करती रहती है। तो उस आत्मा का विकास कै
हो ? कौनसे कार्य हैं जिनसे आत्मा की भूमिका म उत्थान पैदा होगा और वह उत्थ
ऊपर-से-ऊपर चढती हुई सासारिक सकट की जड़ को ही काट डालेगा जड़ और चैत
का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा ?

'यह जो समस्त ज्ञान है वही आत्मा की विकासगति को पूर्णतया स्पष्ट करता है अ
यही आधारभूत ज्ञान है जिसकी रोशनी मे अन्य सारी विचारसरणिया विश्लेषित होती है
इसलिये जैन दर्शन मे इस ज्ञान को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। उसे तत्त्वज्ञान कहते है

'जैन शास्त्रो मे इस तत्त्वज्ञान का बड़ा विशद विवरण है और उसमें विस्तार से बता
गया है कि तत्त्वों पर ही आत्मा-परमात्मा और ससार की धुरी घूमती रहती है। यह तत्त्वज्ञा
ससार के मूल से लेकर मुक्ति के मुख तक समाहित माना गया है।

इस प्रकार के मननीय विचारों से परिपूर्ण प्रवचन श्रोताओं के अन्तर् तक पैठ जाते थे
साथ ही प्रतिदिन सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् चर्चा विचारणा होती थी जिसमें मुनि
नानालालजी म सा (बाद में आचार्यश्री) आदि सन्तों एव अन्य जिज्ञासुओं के तात्विक प्र
का समाधान करते थे।

रुग्ण मुनि की सेवा मे तत्पर

इसी चातुर्मास-समय की वात है। मुनिश्री आईदानजी म का शरीर रोगाक्रात हो गया। मुनिश्री कृशकाया थे किन्तु रोग का दौरा होने पर वेहोश हो जाते और हाथ-पैर पछाडने लगते थे। दो-चार सत उन्हे समालने का प्रयत्न भी करते लेकिन उनके भी कावू से वाहर होते देख आपश्री रोगी की सेवा-शुश्रूषा परिचर्या के लिये पधार जाते थे।

आप अपने प्रारम्भिक जीवन से ही सेवाभावी रहे थे और रोगी की परिचर्या कैसे करना चाहिये आदि को भलीभाति समझते थे। आपकी करुणा और सेवाभावना में पद वाधक नहीं वनता था और अन्य सन्तों द्वारा प्रत्येक प्रकार से परिचर्या करने का विश्वास दिलाये जाने पर भी रोगाक्रात सन्त को समालने के लिये आ ही जाते थे। वेमान अवस्था म सत के हाथ-पैर फडफड़ाने से आपको पैर आदि से टक्कर भी लग जाती थी लेकिन इस स्थिति से आपका मन द्रवित एव कर्मविपाक की विडवना से चिन्तित हो उठता था और करुणाभावना रोगशमन के उपाय करने के लिये वार-वार प्रेरित करने लगती थी।

अन्धविश्वास का प्रहर

योग्य उपचार होने पर भी रोग कावू मे नहीं आ रहा था। अत कई वधुओ ने मकान में खडे पीपल के वृक्ष की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसमें भूत का वास है। शायद मुनिश्री इसके नीचे समय-वेसमय वैठ गये होगे। अत इसके लिये झाड-फूक कराना चाहिये।

आपने इस भूत-प्रेत की वात सुनकर फरमाया कि यह प्रेतवाधा नहीं है वरन् शारीरिक रोग है जो किसी अनुभवी चिकित्सक के उपचार से दूर हो जायेगा। धर्मश्रद्धालु मानस को इस प्रकार के अन्धविश्वासो में नहीं फसना चाहिये।

आपका जादू-टोना नजर भूत-प्रेतवाधा आदि के वारे मे कोई विश्वास नहीं था और सवको व्यर्थ की वाते समझते थे। इस सम्बन्ध मे आपके स्पष्ट विचार थे कि शास्त्रीय दृष्टि से देवयोनिया हैं अवश्य लेकिन जहा कोई अपूर्व वात वने उसे देवयोनि का प्रकोप नहीं समझना चाहिये। मूर्च्छा आदि आना कोई अपूर्व वात नहीं है यह तो शारीरिक निर्वलता और वात आदि का विकार है। भूत प्रेत की कल्पना करके वालको में जो भय के सस्कार डाले जाते हैं वे भविष्य मे वड़े हानिकर होते हैं और वालक भीर वन जाते हैं। कभी कभी इन सस्कारों के फलस्वरुप आत्म विश्वास की भावना पनप ही नहीं पाती है। जतर-मतर टोना तावीज आदि कोई करामात नहीं हैं यह सव तो वहम हैं। इन के वहम मे पडकर आप लोग अपनी धर्म-श्रद्धा से च्युत न होओ। अपने कृतकर्मो के सिवाय कोई कुछ भी नहीं विगाड़ सकता है। भ्रमित मान्यताओं के वश होकर कपोल-कल्पनाओं में फसकर अपनी आत्मा का

पतन मत करो। धर्म पर दृढ श्रद्धा रखो। देवी-देवताओ जादू-टोना नजर आदि किसी से डरने की जरूरत नहीं है। ऐसी निराधार कल्पित घटनाओ का सम्बन्ध देवी देवताओं से जोडना मनुष्य की मनोभावना पर आधारित है।

देशी चिकित्सा से रोग-निवारण

आपके इन विचारो का प्रभाव उपस्थित सज्जनो पर पड़ा। आपने कहा कि यदि कोई अच्छे चिकित्सक हो और वे निदान करे तथा रोगी की परिचर्या से जो मैंने समझा है उसे समझाऊ तो रोग के काबू मे आने की आशा है। तदनुसार रोगी सत को वैद्य को दिखाया गया और आपने भी रोग के लक्षणो को बताया। परामर्श के अनुसार नियमित रूप से 15 दिन तक एरडी का तेल सूखे ब्राह्मी के पत्ते और साधारण देशी काष्ठौषधि देने से रोगी सन्त स्वस्थ हो गये।

आचार्यश्री अध्यात्म-विज्ञानी के साथ शरीर-विज्ञानी

आप प्रकृतिविरुद्ध आहार विहार और निहार से शारीरिक मला– वात पित्त कफ–के कुपित होने को रोगोत्पत्ति का कारण मानते थे तथा इनके शमन के लिये प्राकृतिक चिकित्सा–उपवास योगासान प्राणायाम आदि– मे विश्वास करते थे। इस विश्वास का आधार यह था कि शरीर का सौन्दर्य एव स्वास्थ्य उसे समरस व समतोल बनाये रखने में है। शिशु जब मा का दूध पीता है तो न दूध मे मीठा घोलता है न दूसरे स्वाद लेता है न घूमने जाता है और न व्यायाम कुश्ती करता है। फिर भी शिशु का सौन्दर्य मस्ती और स्वास्थ्य कितना प्रिय व मनोहर होता है। शिशु जगत् का सर्वाधिक मनोरम रूप है। इसका कारण यही है कि शिशु अपने आहार–दूध–को पचाना जानता है। कभी उलटा होकर, कभी पैर फैलाकर, फड़ फड़ाकर कभी इधर-उधर लोटपोट कर या ऐसी ही अन्यान्य हलचले करके अपने आहार को पचा लेता है। लेकिन जब अपनी आयुवृद्धि के साथ यह सब बाल्यकालीन नैसर्गिक व्यायाम भूल जाता है तो फूल सा सुकुमार देह रसनिसृत वस्तु के समान तेजोहीन हो जाता है।

चिन्तनशील व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर और मस्तिष्क के मज्जाततुओं व सूक्ष्म शिराओ को आसनों द्वारा बल देना चाहिये, जिससे उसे आत्मशाति के लिये मानसिक शाति का भी सहयोग प्राप्त होता रहे। मन की एकाग्रता के लिये आसन प्राणायाम की आवश्यकता है। अगर मनुष्य सिद्धासन आदि आसन लगा सके तो निश्चित है कि उसका मन कदापि चपल नहीं होगा।

मानव जाति का स्वास्थ्य यदि रोगो न नष्ट किया है तो औषधियो ने भी अधिकाश रोगो को जन्म दिया है। आत्मघात करके या स्वय विषपान करके उतने व्यक्ति नहीं मरे हैं जितनो को औषधियो की बलिवेदी पर अपने प्राणा का उत्सर्ग करना पड़ा है। विष की अपेक्षा औषधियो के विष ने अधिक कहर ढाया है। वस्तुत आज की चिकित्साप्रणाली समाज के रोगी देह के लिये सफल सिद्ध नहीं हुई है। विजातीय द्रव्यो से भरी औषधिया यदि रोगो का उन्मूलन करती हैं तो अनेक नये रोगो को पैदा भी कर देती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपने शरीर का सुयोग्य उपचारक है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वय अपनी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि यह सभव न हो तो योग्य वैद्य से परामर्श करना चाहिये।

आप अपनी दैनिक चर्चा मे इन विचारो का उपयोग करते थे। चाहे आप कितने ही व्यस्त हों विहार मे हो या वर्षावास के निमित्त किसी एक स्थान पर विराज रहे हों लेकिन शारीरिक अग-प्रत्यगों को कतिपय आसनो द्वारा अवश्य ही श्रम प्रदान करते थे। आध पौन घटे तक योगासना का प्रयोग करते थे और शीर्षासन उत्तानपादासन पद्मासन बद्धपद्मासन और मयूरासन आदि आसन शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य मानते थे।

लेकिन कभी-कदाचित् वातादिजनित साधारण व्याधि का प्रकोप भी होता तो सर्वप्रथम आप उपवास का अवलवन लेते और यदि औषधि का सेवन भी करना पडे तो ऐसी सामान्य काष्ठौषधि लेते थे कि जिसके लिये न तो चक्कर लगाना पड़े गृहस्थ को निमित्त न जुटाना पडे और न डाक्टरो के आगे-पीछे ही घूमना पडे।

इन स्वानुभूत प्रयोगो से आप रुग्ण सत को साधारण-सी औषधियो के प्रयोग द्वारा निरोग करने मे सफल बने। आप जितने अध्यात्मविज्ञानी थे उतने ही शारीरिक विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। यही कारण था कि स्थूल शरीर होने पर भी आपके अग-प्रत्यग मे वही लचक और स्फूर्ति दृश्यमान होती थी जो युवावस्था मे किसी-किसी को प्राप्त होती है। यदि हम भी अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आप सदृश सन्ता के पथ का अनुसरण कर सके तो तन मन धन को सुरक्षित रखने के साथ-साथ अभक्ष्य पदार्थो के भक्षण से बच सकते हैं।

सघ-ऐक्य के हेतु आचार्य पद-त्याग के लिए तत्पर

इन्हीं दिनो श्रमण सगठन के लिये समाज में वातावरण बनाया जा रहा था। अग्रणी श्रावक मूर्धन्य सतों के साथ हुए विचार-विमर्श को ध्यान मे रखते हुए योजना निर्माण म सक्रिय थे। उनके प्रयत्नो से प्रतीत होता था कि निकट भविष्य में यह योजना कार्यान्वित हो सकेगी।

आपके पास भी चर्चा के लिये श्रावकों का शिष्टमडल उपस्थित हो चुका था और समय-समय पर प्रगति की सूचना मिलती रहती थी।

आप सगठन के हामी थे। सघ ऐक्य के निर्माण मे योग देने का आश्वासन पहले ही दे चुके थे। आपको साम्प्रदायिक समाचारी का कट्टर पोपक समझा जाता था लेकिन सघ के निमित्त बड़े-से-बड़ा उत्सर्ग करने के लिये भी तत्पर रहते थे। सघ की एकता के निमित्त प्रयत्नशील रहने के सस्कार आपको गुरु-परम्परा से विरासत मे प्राप्त हुए थे। क्षण भर के लिये भी आपके अन्त करण में आचार्य जैसे महनीय पद के लिये अनुराग नहीं रहा और इसीलिये सघ की एकता के लिये अपनी आचार्य पदवी का परित्याग कर देने की घोषणा करने में भी नहीं झिझके। जबकि अन्य अनेक आचार्य या अन्य पदवीधारी सत इस स्थिति को उचित नहीं मान रहे थे।

रतलाम का स्वर्णिम चातुर्मास सम्पन्न

यह चातुर्मास वडी रस्साकसी एव प्रतिस्पर्धा मे हुआ। कानोड़ और मन्दसौर वाले निरुत्साह होकर लौटे थे फिर भी उनकी गुरु भक्ति किंचित् भी न्यून नहीं हुई। रतलाम का यह चातुर्मास सघ म नवीन चेतना का सचार करने वाला सिद्ध हुआ। पूज्यवर की ओजस्वी एव प्रतिभाशाली वाणी के प्रभाव से बहुत-से स्थानीय एव बाहर के सज्जनो ने सजोड़े शीलव्रत ग्रहण किये तथा भारी मात्रा मे श्रावक-श्राविकाओ ने चौविहार वनस्पति जमीकन्द सचित्त पानी (खद) के त्याग किये। नित्य सामायिक करने तथा वर्ष मे 12 25 या इससे भी अधिक दया करने की प्रतिज्ञाए भी भारी सख्या मे हुई। कुव्यसन-त्याग का सिलसिला लग गया। पूज्यश्री के चुम्बकीय व्यक्तित्व से जैन और जैनेतर जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

गणेश जैन मित्र मण्डल के नवयुवको मे अपार उत्साह था। आगत दर्शनार्थियों की सेवा में उन्होंने रात-दिन एक कर दिये। पारस्परिक परिचय बढ़ाने सामाजिक एकता सगठन को सुदृढ बनाने तथा प्रेमभाव की अभिवृद्धि के लिए बाहर से आये दर्शनार्थियो के साथ गणेश मित्र मण्डल ने अनेक बार स्नेह सम्मेलन आयोजित किये।

दया-दान-रूप धर्म के प्रचारार्थ ठोस और बुनियादी कार्य हुए। कार्तिक पूर्णिमा को धर्मप्राण लोकाशाह जयन्ती होने से हनुमान रुण्डी मे बीकानेर निवासी श्रीमान् जयचन्दलालजी रामपुरिया की अध्यक्षता मे जाहिर सभा का आयोजन हुआ।

इस वर्षावास मे आचार्यश्री के एकान्तर तप अनेक बेले-बेले एकान्तर तथा अन्य तपस्याए हुई। महासतीश्री सूरजकवरजी ने 33 एव अन्य सतियों ने एकान्तर अट्ठाइया मघोले आदि विभिन्न तप कर चातुर्मास को तपमय बना दिया। सत-सतियों के तप से प्रेरित हो श्रावक-श्राविकाओं ने भी भारी तपस्याएं कीं।

आपश्री के त्याग निर्ममत्व भाव एव उच्च चारित्र की ख्याति समुद्रतट तक जा पहुँची।

मुम्बई (घाटकोपर) का शिष्टमण्डल अगामी चातुर्मास कराने की विनती लेकर उपस्थित हुआ। विनती भावपूर्ण थी परन्तु अनेक कारणो से मुम्बई चातुर्मास न हो सका।

इस प्रकार रतलाम का स्वर्णिम चातुर्मास लोकोपकारी प्रवृत्तियो धर्म-ध्यान के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। मार्गशीर्ष कृष्णा एकम बुधवार को दिन के साढे ग्यारह बजे पूज्यश्री ने स्टेशन रोड़ की तरफ विहार किया। लगभग दस हजार की विशाल जनता ने शहर-स्टेशन मार्ग जयघोषो से गूजा दिया। जनता के अत्याग्रह से पूज्यश्री स्टेशन रोड़ में दो दिन विराजे और अपनी अमिय वाणी से श्रद्धालुआ को परितुष्ट किया। यहा से आचार्यश्रीजी खाचरोद होते हुए जावरा पधारे। विहार मार्ग मे आचार्यश्री के घुटनो मे वायु प्रकोप के कारण असमाधि हो गई थी। धैर्य एव समता की मूर्ति ने दर्द की उपेक्षा कर विहार कायम रखा और जावरा पदार्पण किया। मुनिश्री चाँदमलजी (बड़े) एव श्री शान्तिलालजी म आदि ठाणा 19 तथा प्रवर्तनीजी श्री केसरकवरजी एव महासतीश्री छोटाजी महासती ससालाजी (रगूजी वाले) कुल ठाणा 14 से युक्त आचार्यश्री का जावरा मे अनुपम समवसरण दर्शनीय था।

सघ-एक्य-योजना के शिष्ट-मण्डल को उदबोधन

जावरा में समाज के प्रमुख श्रावको का एक शिष्टमडल जिसमें सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया मुम्बई विधानसभा के अध्यक्ष चिमनलाल चकुभाई शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं सघ-ऐक्य योजना की पूर्वभूमिका लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ।

शिष्टमडल ने अपने द्वारा किये गये प्रयत्नों मुनिराजो से हुए वार्त्तालाप और उसके परिणाम से आपको अवगत कराते हुए सघ-ऐक्य-योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की एव आपश्री से यह प्रार्थना की कि जब तक सघ-ऐक्य-योजना कार्यान्वित न हो तब तक यह व्यवस्था रहे कि एक गाव मे एक ही चातुर्मास हो एक ही व्याख्यान हो और प्रसग आने पर समान समाचारी वाले सन्तो के साथ बैठकर व्याख्यान दिया जाये।

शिष्टमडल की धारणा थी कि ऐसा होने पर पृथक पृथक सप्रदायो म विभक्त साधु एक दूसरे के निकट आयेगे। विचारो का आदान-प्रदान होने से एक-दूसरे की भावना को समझ सकेंगे और सघ ऐक्य के लिये प्राथमिक भूमिका का निर्माण होने के साथ-साथ ऊपरी तौर पर एकता भी प्रतीत होगी।

आचार्यश्रीजी ने शिष्टमण्डल के विचारों को ध्यानपूर्वक सुना। उस समय कई-एक सप्रदायों के साधुओ की विचित्र स्थिति हो रही थी। यदि स्वच्छन्द प्रवृत्ति को भी गौण मान ले तो भी कुछ-एक घटनाए साधुओ द्वारा ऐसी हो चुकी थीं जो सयम-साधना के विपरीत और अनाचार को बढ़ावा दे रही थीं। कुछ स्थानो पर तो ऐसी घटनाए भी हो चुकी थीं कि जिनसे

साधु-सन्तो के प्रति श्रावको की श्रद्धा ही डिग चुकी थी। आचार्यश्रीजी को इन सब घटनाओं की कुछ जानकारी समय समय पर मिलती रहती थी लेकिन आचार्यश्रीजी अपनी पृथक सम्प्रदाय होने के कारण उनके बारे मे कुछ न कहकर मौन रहना उपयुक्त समझते थे।

अत आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि आप लाग सघ-ऐक्य-योजना की भूमिका तैयार करने आये हैं और मेरे सामने ऐसे प्रसग हैं जिनमे कुछ-एक सन्तो को पृथक करने की स्थिति है। अत आप ही बतलाये कि मैं सघ ऐक्य-योजना को आगे बढाने के लिये आपको आश्वासन दू या अनुशासनहीन प्रवृत्ति करने वाले छद्मवेशी सतो को पृथक करूँ ?

शिष्टमडल के सदस्यो ने वास्तविक बातो को सुनकर आचार्यश्रीजी से प्रार्थना की कि आपको जो भी शिथिलाचारी छद्मवेशी ज्ञात होते हों उनको पृथक कर दीजिये। ऐसों को छिपाये रखना या साधुवेश में अनाचार की प्रवृत्तियो को चलने देना सघ ऐक्य-योजना का उद्देश्य नहीं है। श्रमण सस्कृति की पवित्रता की रक्षा होना सर्वोपरि है और इसी को लक्ष्य में रखकर हमारे प्रयत्न हो रहे हैं कि एक आचार्य के नेतृत्व मे समस्त साधु, साध्विया धर्म साधना में प्रवृत्त हो साधु-मर्यादा के विपरीत प्रवृत्ति करने वालो से सघ को बचाया जाये। अत हमारा विनम्र निवेदन है कि ऐसे साधुओ को पृथक कर दीजिये और सुदृढ़ धरातल पर ऐक्य योजना को कार्यान्वित कराने मे स्वीकृति फरमावे।

शिष्टमडल के मनोभावो को समझकर पुन आचार्यश्रीजी ने अपने अनुभव बताते हुए फरमाया कि कई साधुओ की ऐसी स्थिति है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। अपनी भूल को भूल मानकर सुधारने का प्रयत्न न कर छिपाने की तरकीबें सोचते रहते हैं। एक ओर तो सघ-ऐक्य की उपयोगिता समझते हैं और उसे स्वीकार भी करते हैं लेकिन दूसरी ओर चालाकी से एक गाव मे एक चातुर्मास स्वीकृत होने पर भी दूसरे चातुर्मास की स्वीकृति दे देते हैं। कई सत ब्रह्मचर्य महाव्रत का भग करने वालों को पहले तो दड प्रायश्चित्त ही नहीं देते और देते भी हैं तो दोष के अनुसार दड प्रायश्चित्त न देकर अपने साथ दोषी व्यक्ति को रख रहे हैं। प्रसग मिलने पर अन्य क्रियापात्र सतो के साथ स्वय बैठ या उन व्यक्तियों को बैठाकर श्रावक श्राविकाओ को धोखा देने की चेष्टा करने से भी नहीं चूकते और अकसर ऐसे मौका की तलाश म रहते हैं। कई-एक रुपये पैसे एकत्रित करने का प्रपच रचते हैं तथा सघ-ऐक्य-योजना का बडी लच्छेदार भाषा म अनुमोदन कर वाह वाही लूटने से नहीं चूक रहे हैं। ऐसी स्थिति मे क्या यह सभव है कि एक स्थान पर एक ही व्याख्यान और एक चातुर्मास होगा ? इसके अलावा एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हू कि दीक्षा लेने के बाद मैंने जिन पूज्य गुरुदेव के नेश्राय में सयम साधना की है निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के अनुसार आत्मविकास की ओर अग्रसर हुआ हूँ, साध्वाचार का ज्ञान प्राप्त किया है आचरण किया है

और अनुभव किया है तदनुसार तो ऐसे साधु-साध्वी वर्ग से बचे रहने मे ही अपना और सघ का श्रेय समझता हूँ।

साधुओ और श्रावको के सम्बन्धों के बारे मे स्पष्ट उल्लेख है कि साधुओ के लिये श्रावक अम्मा-पिया--माता-पिता हैं। यद्यपि साधु महाव्रतधारी और श्रावक अणुव्रतधारी होते हैं लेकिन श्रावको को माता-पिता की उपमा इसलिये दी है कि जिस प्रकार माता-पिता सतान का लालन-पालन कर उसके जीवन को सुसस्कारी बनाने मे सहायक होते हैं उसी प्रकार श्रावक साधुओं की सयम साधना मे सहायक बने। यदि साधु की भूल की श्रावक उपेक्षा करते हैं तो उसका आशय यह हुआ कि वे साधुओ को स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने मे सहायता देते हैं और फिर एक बार आदत बिगडने पर सुधार की आशा कम दीखती है।

शिष्टमण्डल का निवेदन आचार्यश्री की स्वीकृति

शिष्टमडल के सदस्यो ने इन विचारो के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि आपका फरमाना उचित है और इतने दिन जो-कुछ हुआ सो हुआ। परन्तु हम आपको यह विश्वास दिलाते हैं और भावना व्यक्त करते हैं कि अब ऐसी स्थिति नहीं रह पायेगी। हम अभी जिन सन्तों के पास होकर आये हैं उन्होने जिस प्रकार से प्रेरणाप्रद आश्वासन दिये हैं वैसे ही आपश्री भी स्वीकृति फरमावे। यदि आपश्री की स्वीकृति प्राप्त न कर सके तो शिष्टमडल को यहीं निरस्त कर देगे। आपश्री की भावना के बारे मे हम इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि आपको जिन साधु-सन्तों की क्रियापात्रता और सयम-साधना की निर्दोपता मे विश्वास हो उनके साथ बैठकर व्याख्यान दे किन्तु सघ-सगठन की योजना के लिये कम-से-कम इतनी छूट दीजिये कि एक गाव मे एक चातुर्मास हो।

शिष्टमडल के मनोभावो को समझकर आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि परीक्षण के रूप में तीन वर्ष तक एक चातुर्मास होगा। आप लोग इस विषय मे निष्पक्ष रहें और जहा जिनकी त्रुटि-स्खलना हो उनसे सत्य बात कहने और परिमार्जन करने की स्थिति बनायेगे तो शायद कुछ सुपरिणाम निकलेगा।

आचार्यश्रीजी से स्वीकृति प्राप्त कर शिष्टमडल ने उद्देश्य की पूर्ति के लिये दूसरे-दूसरे साधु-सन्तो की सेवा में जाने के लिये प्रस्थान किया और आपश्री भी जावरा से विहार करके फ्रीगज (रतलाम) दिलीपनगर धराड़ पिपलखूटा बिरमावल गुलथान होते हुए बदनावर पधारे। यहाँ पर 21 सन्त सतियो का कुछ दिनों तक विराजना रहा जिससे धर्म की अच्छी जागृति हुई।

आचार्यप्रवर बदनावर से बखतगढ कोद बिडवाल कानवन नागदा होते हुए धार

पधारे। धार मे पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध मुनिश्री ताराचन्दजी म. सा आदि सन्त विराजते थे।उन्होने पूज्यश्री से निवेदन किया कि हम आपश्रीजी के प्रवचन सुनना चाहते हैं। पूज्यप्रवर ने फरमाया–आप की इच्छा हो तो सुन सकते हैं। उन सन्तों ने साम्प्रदायिक मर्यादाओं के साथ पधार कर आचार्यप्रवर के प्रवचन श्रवण किये। पूज्यश्री के वैदुष्यपूर्ण प्रवचन एव सरल सादगीमय जीवन से वे बडे प्रभावित हुए। आचार्यश्री धार से अनेक ग्रामों को स्पर्श करते हुए इन्दौर पधार।

सर्वोदयी नेता विनोबा से वार्त्तालाप

इन्दौर भूतपूर्व होलकर राज्य की राजधानी का नगर है। अपनी भौगोलिक स्थिति और उद्योग-व्यापार का केन्द्र होने के कारण धनधान्य-सम्पन्न है तथा जैन समाज की दृष्टि से इन्दौर जैनियो का गढ माना जाता है। शैक्षणिक सस्थाओ और विद्वानो की सख्या भी काफी अच्छी है।

इन्दौर मे आपश्री महाराज तुकोजीराव क्लोथ मार्केट के सभाभवन मे विराजे और प्रतिदिन वहीं आपके प्रवचन होते थे। जिनका नगर निवासी लाभ लेते थे और तात्त्विक चर्चा के समय विद्वानो का जमघट लग जाता था।

इन्हीं दिनो इन्दौर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थिति राऊ ग्राम में सर्वसेवा सघ का अधिवेशन हो रहा था। उसमे अनेक सर्वोदयी कार्यकर्ताओ के अतिरिक्त भूदान आन्दोलन के प्रेरक विनोबाजी भी आये हुए थे। विनोबाजी को आपश्री के इन्दौर में विराजने की जानकारी मिली तो वे अपने कुछ सहयोगी कार्यकर्ताओ को साथ लेकर आपसे मिलने आये और करीब पौने घटे तक अहिंसा सत्य समाजवाद सर्वोदय आदि के बारे में वार्त्तालाप होता रहा।

वार्त्तालाप का उपसहार करते हुए विनोबाजी ने कहा-- महाराज ! भूल जाइये कि जैनियों की सख्या कम है। जैनो के आचार विचार के सिद्धान्त विश्व की समस्त विचारधाराओं में मिश्री की तरह घुल-मिल रहे हैं। लेकिन एक बात मेरे मन में सदा खटकती रहती है कि जैनियो ने जिस दृढता के साथ अहिंसा को पकड़ा है उसी लगन और निष्ठा से वे सत्य को नहीं पकड पाये हैं। अगर जैन समाज ने सत्य और अहिंसा दोनों को अपने जीवन का पाया बना लिया होता तो निश्चित है कि मानसरोवर से निकलने वाली गगा की धारा की तरह वह पृथक ही दिखाई देता।

सत्य और अहिंसा के समन्वय पर ही गगा और यमुना के सगम के समान दिव्यतीर्थ की प्रतिष्ठा हो सकती है। विश्व के मानव-समुदाय मे निरामिष भोजन और व्यसनविहीन

जीवन के लिये जैसे जैन समाज आदर्श है वैसे ही मैं उसे सत्य और सरलता मे स्वालबन और स्वाधीनत्ता के विषय मे भी आदर्श देखना चाहता हूँ।

आचार्यश्रीजी और विनोबाजी का यह समिलन बहुत सौजन्यपूर्ण और मधुर रहा। यही कारण है कि आज भी विनोबाजी समय-समय पर आचार्यश्रीजी को स्मरण करते रहते हैं।

श्री विनोबाजी के विचार जैन समाज के लिये चिन्तन का अवसर प्रदान करते हैं और सत्य व अहिसा के जीवनव्यापी प्रयोग के लिये प्रयत्नशील होने का आह्वान करते हैं। क्योकि सत्य से ऊचा कोई धर्म नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्तव्य नहीं है। आज विश्व इन्हीं दोनो की असीम परिधियों के चारो ओर घूम रहा है। मानव-मात्र इनकी प्रेरणा से जीवन-यापन करने के लिये उत्सुक है लेकिन दो समानान्तर रेखाओं के समान जीवन मे सत्य और अहिसा के गतिमान होने से अधिकतर उन दोनो का समन्वय होने का अवसर नहीं दिख रहा है। यद्यपि मानव-मात्र मे सुख की आतरिक आकाक्षा तो है लेकिन सुख के कारणो की अवहेलना कर या गौण समझ कर। परिणामत जीवन में शून्यता है उदासीनता है और क्षण प्रतिक्षण विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

लेकिन इस स्थिति मे भी यदि जैन बधुओं मे जो यत्किचित् भी मानवता के दर्शन हो रहे हैं उसका कारण है धर्माचार्यों के उपदेश अहिसा सत्य के प्रति लगाव और सत्साहित्य के अध्ययन मनन के लिये पाई जाने वाली अभिरुचि।

जैनियो की सख्या लाखो से करोडा या उससे भी अधिक हो सकती है। किन्तु इसके लिये आवश्यक है कि हम अपने विचारो को वाणी से नहीं किन्तु आचरण द्वारा व्यक्त करे और उन अवसरो की उपयोगिता समझे जब मानवीय करुणा के लिये एकाकी रहकर भी बार-बार प्रयत्न करना जरूरी हो। ऐसा करने में कठिनाइया भी आयेंगी और आनी भी चाहिये लेकिन अहिंसा के धरातल पर सत्य के प्रकाश मे समता के माध्यम से समन्वय के लिये सतत सजग और सचेष्ट रहे।

सर्वोदयवाद और सर्वोदयतीर्थ की विचारधारा मे अतर

श्री विनोबाजी गाधीवादी विचारधारा के प्रसारक जननेता हैं और सत्य अहिंसा के सिद्धान्ता पर एक ऐसे मानव-समाज के निर्माण में सलग्न हैं जिसमें मानव मानव के नाते अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये न्याय-निष्ठापूर्वक कर्तव्यशील रहकर दूसरे मानवा के प्रति अपने दायित्वो का निर्वाह करे। वर्गसघर्ष जातिवाद आर्थिक विषमता और अनैतिक आचार-विचार की सीमा से परे रहकर अपने-अपने विकास के लिये अवसरों की अनुकूलता प्राप्त हो। व्यक्ति की गरिमा का सदुपयोग हो। साम्यभाव के धरातल पर

सर्व-धर्म-समन्वय का आदर्श अवतरित हो। सर्वतोमुखी जीवन के विकास के लिये सर्वसत्तासम्पन्न विश्वराष्ट्र का निर्माण हो। इस भावना की अभिव्यक्ति का नाम सर्वोदयवाद है।

लेकिन जैन दृष्टि से सर्वोदय की सीमा मानव जाति तक सीमित नहीं है। उसमें मानव के अतिरिक्त मानवेतर समस्त सचेतन प्राणियों का भी समावेश है। अत वह प्राणिमात्र के उदय का उदार दृष्टिकोण उपस्थित करती है। उसमे न तो मनुष्य मुख्य है और न अन्य प्राणधारी गौण। सभी को समान स्तर पर रखकर उत्कर्ष की भावना व्यक्त की गई है-

सर्वापदामन्तकर निरत सर्वोदय तीर्थमिद तवैव

भगवन् ! समस्त आपदाओ का अन्त करने वाला शाश्वत सर्वोदयतीर्थ आप का ही है।

परस्पर समाजसेवा के सन्दर्भ मे सर्वोदय समाज

पूज्यश्री इसी प्रकार के सर्वोदय मे विश्वास करते थे और अपनी निष्ठा को आचार के माध्यम से व्यक्त किया है। सर्वोदय के सम्बन्ध मे आपके मननीय विचार इस प्रकार हैं-

'जय जय जगत् शिरोमणि.... इसमें कवि ने परमात्मा की जय का जो नारा लगाया है उसमे परमात्मा के साथ सारे ससार की ही जय का नारा उठता है। लोकरूपी शरीर मे सिद्धात्माए शिरोमणि स्वरूप हैं क्योंकि उनके ज्ञान-रूपी प्रकाश में समस्त लोक 'हस्तामलकवत्' प्रतिभासित होता है। जहा मस्तिष्क की जय है वहा सारे शरीर की भी जय हो ही जाती है क्योकि मस्तिष्क की जय मे भी सारे शरीर के कार्य का सहयोग छिपा हुआ है तथा छिपी है मस्तिष्क के स्वसचालन के हेतु शरीर को प्राप्त होने वाली सजग प्रेरणा।

'जिस प्रकार भारत के विषय में केवल उस पर शासन करने वाली सरकार की ही विजय नहीं होती है किन्तु उसके समस्त निवासियो की विजय होती है उसी प्रकार परमात्मा की जय मे ससार के सभी प्राणियो की जय है। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सबका उदय हो सब मानवता के रहस्य को समझ कर अपनी अन्यायपूर्ण नीति को छोड़ और विश्वबधुत्व की स्थापना करें-- इसी म परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है।

'तात्पर्य यह है कि समाज के सहयोग से ही व्यक्ति का विकास होता है और वह उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। जैसे सभी अगों के कारण स मस्तिष्क विचारक्षम व गभीर चिन्ता करनेवाला होता है उसी तरह समाज के सरल सौहार्दमय वातावरण से ही महान विभूतियो और महात्माओ का जन्म होता है। और जैसे मस्तिष्क अधिक विचारक्षम होने के पश्चात् अन्य अंगो का विशेष रूप से रक्षण व पोषण करता है उसी प्रकार वे महान विभूतियां और महात्मा अपना सब-कुछ समाज के हितार्थ बलिदान कर देते हैं।

'सभी अगो के समुचित सहयोग का प्रश्न समाज के अपने सामूहिक विकास के लिये भी

उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जब तक अन्न वस्त्र आदि जीवनोपयोगी पदार्थों का समाज में विनिमय होता रहता है तब तक सामाजिक जीवन मे शाति रहती है। किन्तु जब यह विनिमय बद हो जाता है या रुक जाता है चाहे वह समाज मे हो या शरीर मे तभी स्वास्थ्य बिगडने लग जाता है। जब समाज की उपेक्षा करके व्यक्ति के हृदय में सग्रह की भावना उत्पन्न होती है। तब समाज मे सघर्षपूर्ण विषमता पैदा होती है और वह सामाजिक अशाति का मूल कारण बन बैठती है।

'सग्रहवृत्ति की राक्षसी मदान्धता ने ही चोरबाजारी रिश्वत आदि अमानुषिक प्रवृत्तियो को जन्म दिया है। अत जब तक अपनी सचय-बुद्धि को त्याग कर अपने द्रव्य का आवश्यकतानुसार सपरित्याग करने की ओर नहीं झुकेगे तब तक राष्ट्र और समाज में विषमता का नाश होकर शाति की स्थापना होना दुष्कर है।

अब मैं समाज की वर्तमान व्यवस्था के बारे मे बतलाना चाहता हूँ कि समाज मे विभिन्न अगो मे क्यों भेद उत्पन्न कर दिया गया और इसके कारण किस प्रकार एक अग पोषण और दूसरा अग पोषण के अभाव मे विकृत हो चला ?

'जैसे शरीर के चार प्रमुख अग होते हैं उसी प्रकार समाज मे कर्तव्यो का दृष्टि से रखकर चार वर्णों की स्थापना हुई। समाज की सुव्यवस्था को लक्ष्य में रखकर ही सभवत यह वर्ण-विभाग हुआ होगा किन्तु समय प्रवाह के साथ यह वर्ण-विभाग विकृति की ओर बढ चला। कर्तव्य की अपेक्षा जातिवाद को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अपने को श्रेष्ठ बताकर अपनी ही पूजा-प्रतिष्ठा कराने के लिये अन्य वर्णो का तिरस्कार और निरादर किया जाने लगा। जबकि जैन सस्कृति का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि-

कम्मुणा बभणो होई कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा वइसो हवेई सुद्दो हवई कम्मुणा।।

— उत्तराध्ययन सूत्र

'कर्म अर्थात् कार्य (आचार-विचार) से ही ब्राह्मणत्व आदि का आरोप किया जा सकता है। जैन सस्कृति वर्ण को बपौती के रूप मे नहीं मानती। जैन सस्कृति के सामने जन्मना वर्ण का कतई दृष्टिकोण नहीं है उसने तो आत्मिक विकास की दृष्टि से कर्मणा चार वर्ण की व्यवस्था प्रस्तुत की है।

'मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्त्व को समझें और परमात्मा की जय बोलने मे सब प्राणियो के साथ साम्यदृष्टि को अपनाए। वैभव और ये शरीर आदि सब नश्वर हैं एक दिन नष्ट हो जायेगे और साथ रह जायेगा वही जो-कुछ किया है। जैन शास्त्रा में परदेशी राजा का उदाहरण आता है जिसके हाथ निर्दोषों के खून से सने रहते थ। वह

भी केशीश्रमण के उपदेश से त्यागपथ की ओर अग्रसर हुआ। आज भी उसी त्याग की आवश्यकता है समाज की सघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये। शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये इसके लिये अपनी वासनाओ और आवश्यकताओ को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यों के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये।

अन्त मे यही कहना चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझें सबसे प्रेम करें, सबकी रक्षा करे यही सर्वोदय समाज का मूलाधार है और इसी में परमात्मा की जय यथार्थ रूप से बोली जा सकती है।

आचार्यश्रीजी के इन विचारो से वर्तमान के जितने भी राजनी-नैतिकवाद–समाजवाद, साम्यवाद प्रजातत्रवाद अधिनायकवाद आदि प्रचलित हैं सबका सकलन हो जाता है। इन सबका दृष्टिकोण मानव को सुख-सम्पन्न समृद्ध बनाना है। लेकिन जैन दृष्टि प्राणिमात्र के उत्कर्ष मे अपना विश्वास व्यक्त करते हुए प्रयत्न करने का आदर्श उपस्थित करती है।

आज नहीं तो कल विश्व की विवेकशील जनता को इन विचारों को कार्यान्वित करने मे सकोच नहीं करना पड़ेगा और जैसे-जैसे विश्व भौतिकता की चरम सीमा की ओर बढ़ेगा, उसी तरह से अध्यात्मवाद की ओर उन्मुख होकर वास्तविक सर्वोदय की ओर बढना आवश्यक बनता जायेगा। समय की प्रतीक्षा तो करनी पड़ेगी लेकिन यह निश्चित है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के समुत्थान मे ही विकसित होता है और उस विकास का नाम सर्वोदय समाज होगा।

सघ-ऐक्य-विरोधी कार्यों को बढावा

आपश्री के इन्दौर विराजने के अवसर पर श्रीसघ जावरा का शिष्टमण्डल आगामी चातुर्मास जावरा मे करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और विशेष उपकार होने की दृष्टि से आपश्री ने अनेक आगारों के साथ आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति फरमायी और वहा से चैत्र वदी 13 को विहार किया एव हातोद आदि गावों को स्पर्शते हुए चैत्र शुक्ला 7 को उज्जैन पधारे।

आपश्री के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति से समस्त श्रीसघा को जानकारी हो चुकी थी और मालवा प्रदेश में तो अनोखा उत्साह उल्लास दृष्टिगोचर हो रहा था। लेकिन सभी जगह कुछ-न कुछ विघ्नसतोषी और समष्टि का कल्याण न होने देने में प्रसन्न होने वाले होते हैं वैसे ही जावरा श्रीसघ में भी कुछ व्यक्ति थे। उन्होने सघ ऐक्य योजना के मूल पर कुठाराघात करने के लिये छलपूर्वक आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के चातुर्मास खुलने की तारीख से पहले की तारीख लगाकर दूसरे सतों से भी आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

उज्जैन पधारने पर आपश्री को जब यह बात मालूम पड़ी तो विचार किया कि क्या ऐसी स्थिति मे सघ-सगठन की योजना सफल हो सकेगी ? सतो का चातुर्मास होना विचारणीय नहीं था लेकिन सघ-ऐक्य-योजना की दृष्टि से एक गाँव मे एक चातुर्मास हो–को लेकर समाज के अग्रणी श्रावको का प्रतिनिधिमडल विभिन्न सप्रदायो के मूर्धन्य मुनिराजो से स्वीकृति प्राप्त कर चुका था। यह सघ-ऐक्यविरुद्ध कृत्य अवश्य था। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया था कि सघ-सगठन के विघातक तत्त्व चाहे वे मुनि हो या श्रावक अपनी कुटिलवृत्ति के प्रदर्शन मे सदैव तत्पर रहे हैं और रहेगे एव सघ-ऐक्य उनके लिये खिलवाड़ मात्र है।

लेकिन सघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करने वाली सस्था– श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस और उसके पदाधिकारियों तथा सगठन के लिये विभिन्न सन्तों से सपर्क साधने वाले प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यो ने इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का विरोध नहीं किया डरपोक बनकर बेठै रहे और समाज के समक्ष वास्तविक स्थिति रखने के प्रति भी उदासीनता बरती।

आचार्यश्रीजी ने इस स्थिति का मूल्याकन करते हुए निर्णय किया कि दूसरे चाहे जैसा करे और अपने आश्वासन का पालन करें या न करे लेकिन मुझे तो वैसा कुछ नहीं करके सघ-ऐक्य-योजना की सफलता के लिये प्रतिनिधिमण्डल को दिये गये अपने वचन का पालन करना उपयुक्त है।

जयपुर का शिष्टमण्डल श्रीचरणो में

आपश्री का आगामी चातुर्मास जावरा मे होने तथा एकता-विरोधियो की अनुचित प्रवृत्ति की जानकारी मालवा एव देश के विभिन्न श्रीसघों को हो चुकी थी। सभी इस स्थिति को सघहित मे योग्य नहीं समझते थे और भविष्य मे इसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिये यथासमय कार्य भी करना चाहते थे कि इसी समय श्रीसघ जयपुर का प्रतिनिधिमण्डल श्री विनयचन्द जौहरी के नेतृत्व में अपने यहा चातुर्मास करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। उज्जैन सघ भी आपश्री के चातुर्मास हेतु लालायित था। उसके भी प्रथम विनती थी।

जयपुर की विनती के पीछे यह एक विशेष हेतु था कि इस वर्ष जयपुर म भिक्षु-परम्परा के मानने वाले दया-दान विरोधी तेरहपथ के आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास होने वाला था और उस अवसर पर धर्म के नाम पर होने वाली स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के लिये अन्दर-ही-अन्दर जोर शोर से तैयारिया हो रही थीं। फिर भी ये तैयारिया जयपुर जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जनों से छिपी नहीं रह सकीं और समाज के अन्यान्य व्यक्तियों को भी कुछ न-कुछ जानकारी मिल चुकी थी। लेकिन उस समय तो यह तैयारिया पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गई जब दया दान-विरोधी सप्रदाय (तेरहपथ) के आचार्य का जयपुर में आगमन हुआ।

जनता ने देखा कि उनके साथ म एक ओर अबोध बालको और दूसरी ओर बालिकाओं व नवयुवतियो की टोली चल रही है और इनमें से बहुतो को यहा दीक्षित किये जाने का निर्णय हो चुका है और इसी आयोजन के लिये यह प्रच्छन्न रूप मे तैयारिया हो रही थीं।

इस बात को जानकर नागरिकों मे रोष व्याप्त हो गया था और जैन समाज भी अपने यहा ऐसे कार्यों के होने की कल्पना-मात्र से आशकित था कि यदि यहा भी मानवता विरोधी मान्यताओ व प्रवृत्तियो की पुनरावृत्ति हुई तो निश्चित ही स्थानीय जैन समाज की प्रतिष्ठा को हानि पहुचेगी और जैन धर्म के नाम पर कलक लगने की स्थिति बन सकती है।

श्रीसघ जयपुर ने अपने यहा की इस स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा मे निवेदन किया कि आपश्री जयपुर मे ही चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमावे। आपश्री के विराजने से हमे धर्म-विध्वसक हरकतों के उन्मूलन का साहस प्राप्त होगा और जैन धर्म व समाज की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के प्रयास में सफलता प्राप्त होगी।

श्रीसघ जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल के विवेचन से आचार्यश्रीजी ने वहा की स्थिति और उसके परिणाम का अनुमान लगा लिया था। लेकिन समय की कमी शारीरिक निर्बलता और घुटनो मे पीडा के कारण अधिक लबा विहार न हो सकने की स्थिति को देखते हुए आपश्री ने फरमाया कि आप लोग मेरी शारीरिक स्थिति को जानते ही हैं और ग्रीष्मऋतु के प्रचड ताप के कारण इतने अल्प समय में उज्जैन से जयपुर पहुचना शक्य नहीं दिखता है। मैं जयपुर पहुचने की भावना भी रखू। लेकिन पहुचना तो इस शरीर को है। अत आप अन्य बहुत से सन्त हैं आचार्य हैं उनका चातुर्मास करने की चेष्टा कीजिये।

आपश्री द्वारा व्यक्त भावों के उत्तर मे प्रतिनिधिमण्डल ने निवेदन किया कि शारीरिक स्थिति समय की न्यूनता और भौगोलिक दूरी के कारण आपश्री ने जो-कुछ फरमाया वह उचित है। लेकिन जब हम अपने यहा की स्थिति की कल्पना करते हैं तो घबराहट होने लगती है कि हमारे यहा एक ओर तो धर्मनिन्दा के कार्यों की तैयारियाँ हो जनसाधारण में जैन धर्म के प्रति अन्यथाभाव बनने की स्थिति बन रही हो और दूसरी ओर हम परवश होकर उसके प्रतिकार के लिये कुछ भी न कर सकें। इस परिस्थिति में आपश्री के सिवाय हमें अन्य कोई उबारने वाला नहीं दिखता है। आपश्री के जयपुर पधारने से ही हमें सन्तोष मिल सकेगा।

शिष्टमण्डल ने आगे कहा— आपके पास आने से पूर्व हम कई सन्तों के पास गए, लेकिन वे आचार्य तुलसीजी के साथ चातुर्मास करने में हिचकिचाते हैं। हम आचार्यश्री हस्तीमलजी म सा के पास भी पहुचे। जयपुर उनके श्रद्धालुओं का गढ़ है फिर भी वे इस

प्रसग पर जयपुर चातुर्मास करना नहीं चाहते हैं। हमने अनुभव कर लिया है कि आपके सिवाय किसी का भी जयपुर चातुर्मास करने का साहस नहीं है। शारीरिक स्थिति निर्बल होते हुए भी सघहित मे आपश्रीजी को जयपुर पधारना होगा।

धर्म-विरोधी मान्यताओ के निराकरणार्थ जयपुर चातुर्मास

परमकारुणिक परदु खकातर आपश्री ऐसी धर्मविरोधी प्रवृत्तियो को सहन करने के सर्वथा विरुद्ध थे। तथा अन्य सन्त कोई तैयार नहीं थे अत शारीरिक स्थिति की अवगणना करके भी द्रव्य क्षेत्र काल भाव को ध्यान में रखते हुए स 2006 का चातुर्मास जावरा न करके जयपुर करने की स्वीकृति श्रीसघ जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल को दे दी।

इस स्वीकृति के साथ ही आचार्यवर्य ने स्पष्ट कर दिया था कि जयपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र अपरिचित हैं कठिन हैं मेरा शरीर अस्वस्थ रहता है साथी सन्तो की परिस्थिति भी विचारणीय है फिर भी चैत्र पूर्णिमा तक अन्य परिस्थिति पैदा न हुई तो जयपुर की तरफ विहार करने के भाव हैं। साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर दू कि कुछ दूर पहुचने पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव अनुकूल नहीं लगा और पहुचना अशक्य या कठिन प्रतीत हुआ तो विचार बदलने के लिये स्वतन्त्र हूँ।

आचार्यश्री द्वारा अनेक आगार रखकर चातुर्मास स्वीकृत करने पर भी जयपुर का शिष्ट-मण्डल प्रमुदित हो गया। वह आपके अदम्य आत्मबल से परिचित था उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह फक्कड योगी अवश्य जयपुर पहुँच जायेगा। शेरो की दर्दरी में जाकर दहाड़ने वाला श्रमणकेसरी जयपुर आने से कभी नहीं कतरायेगा।

जयपुर मे ससमारोह पदार्पण

स 2006 का चातुर्मास जयपुर करने की स्वीकृति के साथ ही आपश्री ने जयपुर को लक्ष्य बनाकर उज्जैन से महीदपुर आदि की ओर विहार कर दिया और ग्रीष्मऋतु एव मार्गजन्य क्षुधा पिपासा आदि विविध परीषहों को सहन करते हुए कोटा पधारे। शारीरिक अस्वस्थता और घुटनो मे दर्द तो पहले से ही चल रहा था लेकिन मार्ग में आने वाले परीषहो से पीड़ा कुछ विशेष बढ़ गई। अत कुछ दिन कोटा मे विश्राम कर आगे विहार करने का विचार किया।

कुछ दिन विश्राम कर आपने कोटा से जयपुर की ओर विहार किया तो कुछ दूर बढ़ने पर आपकी शारीरिक वेदना ने उग्ररूप ले लिया। जब यह खबर कोटा श्रीसघ ने सुनी तो उसने कोटा विराजने का विनम्र निवेदन करते हुए वापस कोटा की ओर विहार करवा दिया। वेदना की शाति और शारीरिक स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन होने पर पुन कोटा से विहार कर दिया और आषाढ शु 12 को जयपुर पधार गये।

आपके पदार्पण से विवकशील जैन बधुओ के हर्ष का पार न रहा और बड़े ही उत्साह से अगवानी करते हुए नगर के प्रसिद्ध राजमार्ग सवाई मानसिह हाइवे (चौडा रास्ता) पर स्थित लालभवन में ससमारोह पदार्पण कराया।

अस्वस्थ होते हुए भी जीवन-निर्माण सम्बन्धी प्रवचन

आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और मार्ग में रुग्ण हो जाने से कमजोरी बढ़ गई थी। कुछ समय विश्राम करने की जरूरत थी लेकिन जिज्ञासुओ की भावना को देखकर आपश्री ने प्रवचन फरमाना प्रारम्भ कर दिया जिनका जयपुर के नागरिक लाभ उठाते थे। आपके प्रवचनो के भाव इस प्रकार होते थे–

आज मानव अज्ञान एव स्वार्थ के अन्धकार मे भटक रहा है। उसका तेज प्रतिभा एव प्रकाश क्षीण होता हुआ-सा लग रहा है। उसने अधिकाशत अपने जीवन की महत्ता स्वार्थपूर्ति मे ही समझने की चेष्टा करनी शुरू कर दी है। वह नहीं देखना चाहता है कि उसकी इस स्वार्थपूर्ति की चेष्टा मे कितना अन्याय शोषण एव उत्पीड़न उसके हाथो से हो रहा है।

'व्यावहारिक जीवन को सयमपूर्वक सफल बनाने की कुछ कुजिया बताई गई हैं कि समय की अव्यवस्था मिटाकर प्रत्येक कार्य में विवेकपूर्वक नियमितता लाना आत्मनिर्भर होकर गृहस्थाश्रम मे भी स्वलक्ष्यानुरूप उत्तरदायित्व का ध्यान रखना चारित्र की महत्ता को दैनिक जीवन मे उतारना आय और व्यय को असतुलित नहीं रखना कुसगति से दूर रहने का खयाल रखना सबके साथ शिष्ट व शोभनीय व्यवहार का उपयोग रखना पूर्ण विचारपूर्वक सही दिशा मे सोचे बिना कोई भी कार्यारम्भ नहीं करना आदि। इन्हे प्रयोग मे लाकर लौकिक जीवन में भी सयम का एक सरल सतुलन पैदा किया जा सकता है।

आज आप लोग देखते हैं कि कई व्यर्थ के लोक व्यवहारो एव रीति-रस्मों में लाखों रुपयो का पानी कर दिया जाता है किन्तु सत्साहित्य प्रसार व धर्म प्रचार के नाम पर खर्च करने में नाक भौं सिकोड़े जाते हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के जीवन निर्माण में सत्साहित्य के अध्ययन एव मनन का कितना अमूल्य योगदान है। साहित्य मस्तिष्क का विकास करता है और मस्तिष्क उस आधार पर विचारश्रेणी को उच्च बनाकर सत्कार्यों में प्रवृत्ति का मार्ग खोलता है।

आज देखा जाता है कि चेतन ससार जड़-अर्थ से शासित हो रहा है। मानव जी रहा है मानवता खोकर। इस अर्थमोह के पीछे जहा मानवता को विस्मृत किया जाता है वहां मर्यादा रक्षा और साधुता की आशा करना दुराशा-सी जान पड़ती है। अर्थसग्रह की भट्टियों में ईर्ष्या द्वेष कलह स्वार्थ माया और लोभ की ऐसी भीषण आग जलती है कि आत्मोत्थान के

पथ पर भयकर विस्फोट होते हैं जो जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा का विनाश एव पतन के अन्धकूप मे ढकेल देते हैं।

श्रोतागण ऐसे विचारो से प्रेरणा लेकर स्वय के द्वारा स्वय को समझने के लिये उन्मुख होते थे। आपश्री के चातुर्मास से जैन धर्म जैनत्व और जैनाचार के प्रति जनता मे सम्मान भावना विकसित हुई।

अयोग्य दीक्षाओ के विरोध मे ललकार

तेरहपथ के प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के आगमन और दीक्षार्थियो के नाम पर छोटे-छोटे बालका बालिकाआ व नवयुवतियों की टोली को साथ में लाने के दृश्य को देखकर जनमानस मे व्याप्त रोष समय के साथ कुछ शात सा दिखलाई देने पर पुन दीक्षा के नाम पर उन अबोध बालक बालिकाओ को मूडने के प्रयत्न चालू हो गये। जनता पहले भी इस अयोग्य कृत्य के लिये अपना विरोध व्यक्त कर चुकी थी और पुन अपने नगर की प्रतिष्ठा के विपरीत इस कार्य को किये जाने की तैयारी देखकर भडक उठी। उसके क्षोभ और रोष का पार नहीं रहा एव विश्वासघात का प्रत्युत्तर देने के लिये आन्दोलन प्रारभ कर दिया।

बालकों को मूडने की सब तैयारियाँ हो चुकी थीं और कार्यक्रम समय आदि की भी घोषणा की जा चुकी थी। अत इस जनआदोलन ने तेरहपथियो और उनके प्रमुखश्री को असमजस मे डाल दिया और अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। अत अपने कृत्य के समर्थन मे स्वय को असमर्थ मानकर येन-केन-प्रकारेण जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये देश के राजनीतिक दलो के नेताओ को जयपुर लाना व उनके सार्वजनिक रूप मे भाषण करवाना चालू किया। प्रतिदिन अनचाहे मेहमान की तरह कोई-न-कोई नेता आते और अनुचित कृत्य से जनता का ध्यान बटाने के लिये वाक्चातुर्य प्रदर्शित कर चल देते थे। परन्तु उन नेताओ की तथ्यहीन भाषा जनता को विचलित करने मे सफल नहीं हुई।

जनता की प्रतिक्रिया से तेरहपथियों में दिनोंदिन भय और चिन्ता बढ रही थी और अपने भक्तो को इस भयावह स्थिति की जानकारी देते हुए अधिक सख्या मे जयपुर आने और चन्दा चिट्ठा करने के समाचार तार व पत्रो द्वारा पहुचाये जा रहे थे और कहीं कहीं तो प्रतिनिधियो को भी भेजा गया। फलस्वरूप अनके व्यक्तियो का जमघट जयपुर मे होना शुरू होगया और जनबल धनबल या साम दाम दड भेद की कूटनीति से जनता को प्रभावित करने की तजवीजे सोची जाने लगीं। लेकिन इनका जनता पर उलटा ही प्रभाव पडा और वातावरण दिनोदिन उग्र-से उग्रतर बनता गया।

इन होने वाली अनुचित बाल दीक्षाआ के बारे मे आपश्री का मतव्य जानने के लिय

प्रवचना और तत्त्वचर्चाओ के समय स्थानीय विवेकशील विद्वान सेवा मे उपस्थित होकर अपने प्रश्न रखते थे।

आपश्री दीक्षा के विरोधी नहीं थे और फरमाया करते थे कि मैं शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन वर्तमान समय मे अबोध बालको को दीक्षा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योकि तत्त्वज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो हेयोपादेय का विवेक करने मे सक्षम है। जिसे अभी सीधा-सादा जीवन-व्यवहार भी चलाना नहीं आता वह परमार्थ की विशेष स्थिति कैसे साध सकता है ? ऐसे व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान एव जीवनशुद्धि के क्षेत्र मे आने के प्राय योगय नहीं होते हैं जिन्होंने जीवन में असफलताओ के कारण पलायनवादी मनोवृत्ति को अपनाया है। सही मायने में ऐसे उदासीन अबोध और अतृप्त मानव तत्त्वज्ञान का विकास नहीं कर सकते और न ही शुद्धि के मार्ग पर बढने का अध्यवसाय कर सकते हैं।

दीक्षा लेना अति गभीर उत्तरदायित्व है और उसका जीवनान्त तक निर्वाह करना पड़ता है। अत दीक्षा अगीकार करने वाले की क्षमता को परख लेना जरूरी है। दीक्षा जीवन का मौलिक परिवर्तन है इसमें क्षणिक आवेश के लिये अवकाश नहीं है किन्तु जीवनपर्यन्त स्थायी रहने वाला मानसिक वाचनिक और कायिक त्याग का मार्ग है और वैसा त्याग सर्वांगरूप से अन्तर् में व्याप्त वैराग्य के बिना नहीं टिक सकता है। सिर्फ वेश-परिवर्तन से ही कोई प्रतिष्ठा प्राप्ति का अधिकारी नहीं बन सकता है। अत दीक्षा अगीकार करने वाला सक्षम और समर्थ और विवेकबुद्धि युक्त होना चाहिये। तभी वह भलीभाति दीक्षा के महत्त्व को समझ सकता है और उसके प्रति समाज की आदर-सम्मान की भावना विकसित होगी।

क्रमिक विकास के अनतर मुमुक्षु को स्वाधीन भाव से सोचने और अपने श्रेय का मार्ग निश्चित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। ज्ञान और वैराग्यभावना आदि की पूरी तरह से परीक्षा हो जाने के पश्चात् दीक्षा देने की बात पर विचार करना चाहिये।

कुछ एक शिष्य लोग से जो आये उसे ही मूडने की वृत्ति रखते हैं तो कुछ एक की ऐसी भी धारणा है कि वैराग्य का आवेश आने पर तत्काल ही दीक्षित कर देने में उसका कल्याण है। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है क्योकि आवेग के शात होने पर बिचारा ससार के जजाल म पुन फस सकता है और भोग लालसा का गुलाम बन सकता है। अत सामान्य मानव की तुलना म दीक्षा लेने वाले में महत्त्वपूर्ण आतरिक परिवर्तन की अपेक्षा है। तभी वह तत्त्व का तलस्पर्शी चिन्तन और सदाचरण करने में सफल होगा एव अधिक चिन्तन करने का प्रयत्न करेगा।

आपश्री के उक्त मतव्या के अनुरूप ही जयपुर के विचारक और जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग के विचार थे। उनका यही कहना था कि योग्य दीक्षार्थी को अवश्य दीक्षा दी जाना चाहिये

और इस पुनीत कार्य के लिये मनसा वाचा कर्मणा हमारी सहमति है। लेकिन सिर्फ आडबर और प्रदर्शन के लिये इन अबोध बालको व किशोरियो की भावुकता का लाभ लेकर चेले मूडने की प्रक्रिया के बारे म हमारा विरोध है और ऐसे कृत्य से हम अपने व अपने नगर के नाम को कलकित नहीं होने देगे। लेकिन इतनी सीधी और सरल बात भी इन अनुचित दीक्षाओ के कराने के लिये उतावले सज्जनो और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी की समझ मे नहीं आ रही थी।

आखिर नागरिको के रोष से परास्त होकर तेरहपथियो ने एक नई पैंतरेबाजी चालू की और प्रचार के लिये मनघडन्त आरोपो के साथ पैंफलेट प्रकाशित करना प्रारभ किया और उनमे आचार्यश्री गणेशलालजी म सा पर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

तेरहपथियो के लिये यह परपरा नई नहीं थी। पहले भी जब पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा एव उसके पश्चात् चरितनायकजी विचरण करते हुए थली-प्रदेश मे पधारे थे तो उस समय इससे भी अधिक निन्दनीय वृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके थे। कई-एक पाषाण-हृदयो ने तो गोचरी हेतु पधारे सतो के पात्रो मे आहार के बदले पत्थर रखने मे भी सकोच नहीं किया था। कतिपय कृत्य तो इसकी अपेक्षा भी गर्हणीय हैं जिनका उल्लेख करने से मानवता कलकित और सभ्यता लाछित होती है तथा साधारण समझदार व्यक्ति भी उन कार्यों का अनुमोदन नहीं कर सकता है।

इस प्रकार से प्रचार और छींटाकशी ने आग मे घी का काम किया। जनता का रोष भडक उठा और उसकी जो प्रतिक्रिया हुई उससे ऐसा मालूम होने लगा कि यह चिनगारी न जाने कितने घरो को फूक डालेगी। जब इस बात के लिये अयोग्य कार्य करने वालो और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी से स्पष्टीकरण चाहा तो उत्तर देना दूभर हो गया और नये नये उपाय सोचे जाने लगे।

मगर आचार्यश्री गणेशलालजी म सा इस भ्रात प्रचार से किचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। विचलित वही होते हैं जिनकी आत्मा पक्षपात से भरी हुई हो और अपने अहम् के पोषण के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील हो। आपश्री तो 'माध्यस्थभाव विपरीत वृत्तौ' के साधक थे।

आपका लक्ष्यबिन्दु था– मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील बनो और निन्दा प्रशसा के भेदभाव मे न पड़कर अपने-आप को देखो। निन्दा करने वाला निर्मल बना रहा है साधना में सहायक हो रहा है। अत उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखकर उसका कल्याण करो उसको सुबुद्धि प्राप्ति की सत्कामना और सद्भावना रखो।

तेरहपथी अपनी सुरक्षा के लिये विविध चक्रव्यूहो की रचना में लगे हुए थे। नेताओं को लाने का ताता तो चालू ही था लेकिन सफलता की आशा नहीं दिख रही थी। अत इसी श्रृखला के बीच स्वार्थसाधना मे तन मन धन से सहयोग देने वाले कोलकाता निवासी

प्रवचनो और तत्त्वचर्चाओ के समय स्थानीय विवेकशील विद्वान सेवा मे उपस्थित होकर अपने प्रश्न रखते थे।

आपश्री दीक्षा के विरोधी नही थे और फरमाया करते थे कि मैं शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन वर्तमान समय में अबोध बालको को दीक्षा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योकि तत्त्वज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो हेयोपादेय का विवेक करने मे सक्षम है। जिसे अभी सीधा-सादा जीवन-व्यवहार भी चलाना नहीं आता वह परमार्थ की विशेष स्थिति कैसे साध सकता है ? ऐसे व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान एव जीवनशुद्धि के क्षेत्र में आने के प्राय योगय नहीं होते हैं जिन्होने जीवन मे असफलताओ के कारण पलायनवादी मनोवृत्ति को अपनाया है। सही मायने मे ऐसे उदासीन अबोध और अतृप्त मानव तत्त्वज्ञान का विकास नहीं कर सकते और न ही शुद्धि के मार्ग पर बढने का अध्यवसाय कर सकते हैं।

दीक्षा लेना अति गभीर उत्तरदायित्व है और उसका जीवनान्त तक निर्वाह करना पड़ता है। अत दीक्षा अगीकार करने वाले की क्षमता को परख लेना जरूरी है। दीक्षा जीवन का मौलिक परिवर्तन है इसमें क्षणिक आवेश के लिये अवकाश नहीं है किन्तु जीवनपर्यन्त स्थायी रहने वाला मानसिक वाचनिक और कायिक त्याग का मार्ग है और वैसा त्याग सर्वांगरूप से अन्तर् में व्याप्त वैराग्य के बिना नहीं टिक सकता है। सिर्फ वेश-परिवर्तन से ही कोई प्रतिष्ठा-प्राप्ति का अधिकारी नहीं बन सकता है। अत दीक्षा अगीकार करने वाला सक्षम और समर्थ और विवेकबुद्धि युक्त होना चाहिये। तभी वह भलीभाति दीक्षा के महत्त्व को समझ सकता है और उसके प्रति समाज की आदर-सम्मान की भावना विकसित होगी।

क्रमिक विकास के अनतर मुमुक्षु को स्वाधीन भाव से सोचने और अपने श्रेय का मार्ग निश्चित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। ज्ञान और वैराग्यभावना आदि की पूरी तरह से परीक्षा हो जाने के पश्चात् दीक्षा देने की बात पर विचार करना चाहिये।

कुछ एक शिष्य-लोभ से जो आये उसे ही मूडने की वृत्ति रखते हैं तो कुछ एक की ऐसी भी धारणा है कि वैराग्य का आवेश आने पर तत्काल ही दीक्षित कर देने में उसका कल्याण है। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है क्योकि आवेग के शात होने पर विचारा ससार के जजाल मे पुन फस सकता है और भोग-लालसा का गुलाम बन सकता है। अत सामान्य मानव की तुलना में दीक्षा लेने वाले मे महत्त्वपूर्ण आतरिक परिवर्तन की अपेक्षा है। तभी वह तत्त्व का तलस्पर्शी चिन्तन और सदाचरण करने मे सफल होगा एव अधिक विनम्र बनने का प्रयत्न करेगा।

आपश्री के उक्त मतव्यों के अनुरूप ही जयपुर के विचारक और जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग के विचार थे। उनका यही कहना था कि योग्य दीक्षार्थी को अवश्य दीक्षा दी जाना चाहिये

और इस पुनीत कार्य के लिये मनसा वाचा कर्मणा हमारी सहमति है। लेकिन सिर्फ आडबर और प्रदर्शन के लिये इन अबोध बालको व किशोरियो की भावुकता का लाभ लेकर चले मूडने की प्रक्रिया के बारे मे हमारा विरोध है और ऐसे कृत्य से हम अपने व अपने नगर के नाम को कलकित नहीं होने दगे। लेकिन इतनी सीधी और सरल बात भी इन अनुचित दीक्षाओ के कराने के लिये उतावले सज्जनो और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी की समझ में नहीं आ रही थी।

आखिर नागरिको के रोष से परास्त होकर तेरहपथियों ने एक नई पैंतरेबाजी चालू की और प्रचार के लिये मनघडन्त आरोपो क साथ पैंफलेट प्रकाशित करना प्रारभ किया और उनमें आचार्यश्री गणेशलालजी म सा पर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

तेरहपथियों के लिये यह परपरा नई नहीं थी। पहले भी जब पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा एव उसके पश्चात् चरितनायकजी विचरण करते हुए थली-प्रदेश मे पधारे थे तो उस समय इससे भी अधिक निन्दनीय वृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके थे। कई-एक पाषाण-हृदया ने तो गोचरी हेतु पधारे सतों के पात्रो मे आहार के बदले पत्थर रखने में भी सकोच नहीं किया था। कतिपय कृत्य तो इसकी अपेक्षा भी गर्हणीय हैं जिनका उल्लेख करने से मानवता कलकित और सभ्यता लाछित होती है तथा साधारण समझदार व्यक्ति भी उन कार्यों का अनुमोदन नही कर सकता है।

इस प्रकार से प्रचार और छींटाकशी ने आग मे घी का काम किया। जनता का रोष भडक उठा और उसकी जो प्रतिक्रिया हुई उससे ऐसा मालूम होने लगा कि यह चिनगारी न जाने कितने घरो को फूक डालेगी। जब इस बात के लिये अयोग्य कार्य करने वालो और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी से स्पष्टीकरण चाहा तो उत्तर देना दूभर हो गया और नये नये उपाय सोचे जाने लगे।

मगर आचार्यश्री गणेशलालजी म सा इस भ्रात प्रचार से किचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। विचलित वही होते हैं जिनकी आत्मा पक्षपात से भरी हुई हो और अपने अहम् के पोषण के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील हो। आपश्री तो 'माध्यस्थभाव विपरीत वृत्तौ' के साधक थे।

आपका लक्ष्यबिन्दु था— मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील बनो और निन्दा-प्रशसा के भेदभाव मे न पड़कर अपने-आप को देखो। निन्दा करने वाला निर्मल बना रहा है साधना में सहायक हो रहा है। अत उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखकर उसका कल्याण करो उसको सुबुद्धि-प्राप्ति की सत्कामना और सद्भावना रखो।

तेरहपथी अपनी सुरक्षा के लिये विविध चक्रव्यूहो की रचना में लगे हुए थे। नताओं को लाने का ताता तो चालू ही था लेकिन सफलता की आशा नहीं दिख रही थी। अत इसी शृखला के बीच स्वार्थसाधना में तन मन धन से सहयोग देने वाले कोलकाता निवासी

कतिपय धनिको के द्वारा दौड़धूप कराकर तत्कालीन जनता में विशेष रूप से प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाशनारायण को भी जयपुर लाया गया। वायुयान से उतरते ही श्री जयप्रकाशनारायण को बडे आदर-सत्कार के साथ अपने प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के पास ले गये और काफी समय तक एकान्त मे बातचीत होती रही। ऐसा भी सुना जाता है कि उनके समक्ष अनेक साकेतिक प्रस्ताव भी रखे गये। लेकिन उन्होने तत्काल ही अपना मतव्य व्यक्त न करते हुए कहा कि विश्रामस्थल पर पहुचने के पश्चात् ही शाति से सोच-समझकर कुछ कहा जा सकता है।

अनतर जव श्री जयप्रकाशनारायण को उनके विश्राम-स्थल की ओर ले जाने के लिये कार को बढाया तो उन्होन लालभवन मे विराजित आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा के पास चलने के लिये कार-चालक को सकेत किया और वहा आकर काफी देर तक आचार्यश्रीजी से वार्त्तालाप करते रहे।

बाल-दीक्षा विषय जयप्रकाशनारायण की आचार्यश्री से चर्चा

वार्त्तालाप के प्रसग मे बाल-दीक्षा विषयक चर्चा भी चल पड़ी और श्री जयप्रकाशनारायण ने सम्बन्धित विषय मे आचार्यश्रीजी के विचारो को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। अत आचार्यश्रीजी म.सा ने अपने पूर्व में व्यक्त किये गये भावो को पुन स्पष्ट करते हुए फरमाया कि–

जैन दीक्षा के माने हैं अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह– इन पाँच महाव्रतों का सर्वांशत शुद्ध पालन करने का जीवन-व्रत। इस व्रत का पालन करने की गभीरता के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं। इस व्रत को अगीकार करने के पश्चात् छोड़ देने की कोई व्यवस्था ही नही है। अर्थात् दीक्षित होने के अनतर कोई गार्हस्थिक जीवन मे पुन आने की आकाक्षा करे तो उसे शासकीय कानून की दृष्टि से तो कोई जबरदस्ती नहीं रोक सकता है परन्तु ऐसा करने वाले की धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में अप्रतिष्ठा होती है सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है विश्वास का पात्र नहीं रहता है और प्राय उससे कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् समर्थन नहीं देता है। इसका दीक्षार्थी को भान करा देना चाहिये। लेकिन अपरिपक्व बौद्धिक विकास की स्थिति में ऐसा ज्ञान होना सभव नहीं दीखता। इसलिये परिस्थिति की जानकारी न देकर किसी को भ्रम मे रखना योग्य नहीं माना जा सकता है।

मानव की शैशवावस्था सस्कारो के सम्मार्जन की सर्वोत्तम स्थिति है। चाहे फिर वे सस्कार जीवन को विकास की ओर ले जाने वाले हो या ह्रास की ओर ले जाने वाले हो। दीक्षा–यह एक उच्चस्तरीय सस्कार है और इस सस्कार की वास्तविक स्थिति साकार रूप ले

तो विश्व मे अभूतपूर्व आध्यात्मिक विज्ञान का आदर्श उपस्थित हो सकता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और मानव कल्याणार्थ ऐसे आदर्शो की आवश्यकता है। अत शैशवास्था की मनावैज्ञानिक एव आध्यात्मिक शक्ति की दृष्टि से पूर्णरूपेण परीक्षा की जाये और परीक्षक को तटस्थ निःस्वार्थ एव अनासक्त वृत्ति वाला होना चाहिये एव परीक्षार्थी की स्थिति भी साहजिक होनी चाहिये। वर्तमान में ऐसी स्थिति का प्राय अनुभव नहीं हो रहा है। अत शास्त्रीय दृष्टि से बाल-दीक्षा का निषेध नहीं होने पर भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि परिस्थितियो का ध्यान तो अवश्य ही रखना चाहिये। साधुओ की सख्या बढाने के लिये येन-केन-प्रकारेण किसी को भी साधु-सस्था में प्रविष्ट करा देना साधु-सस्था समाज और स्वय व्यक्ति के लिये भी हितकर प्रतीत नहीं होता है।

दूसरी बात यह भी है कि दीक्षा देना सिर्फ व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है किन्तु सामाजिक क्षेत्र को भी अतिनिकट से छूता है। यदि इससे भी आगे बढकर विचार करे तो ज्ञात होगा कि साधु-सस्था का यथार्थ उत्कर्ष अयोग्य दीक्षाओं को पोषण या उत्तेजन देने से नहीं हो सकता। साधु-सस्था के बारे मे ममत्व रखने वालो का आग्रह होना चाहिये कि हमारे साधुओ मे ऐसा एक भी व्यक्ति न हो जिसे देखकर जनता हसी उड़ाये और उससे जैन धर्म को भी उपेक्षापात्र बनना पड़े।

इसलिये साधु-सस्था के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने या उसे नष्ट करने का निर्णय विवेकशील गभीर चिन्तको को करना है। दीक्षाए हो साधु-सस्था के प्रभाव उत्कर्ष में वृद्धि हो और दीक्षार्थी अपने अगीकृत व्रत-प्रतिज्ञा की साधना में पूर्ण निष्ठा निर्भयता से तत्पर हो इसी मे दीक्षार्थी और दीक्षागुरु का गौरव है।

सम्बन्धित प्रश्नो के बारे मे श्री जयप्रकाशनारायण के भी ऐसे ही विचार थे और आचार्यश्रीजी के उक्त उदार विचारों को जानकर वे काफी प्रभावित हुए। वार्तालाप-समाप्ति के अनतर श्री जयप्रकाशनारायण ने वदना करते हुए कहा कि मैं जनता का विनम्र सेवक हूँ और उसके हितार्थ ही मेरी कार्य-प्रवृत्ति है। उसमें आपका आशीर्वाद चाहिये।

एतदर्थ आचार्यश्रीजी ने इस आशय के भाव व्यक्त किये कि सार्वभौम महाव्रतों को स्वीकार करके साधुवृत्ति की भूमिका प्राप्त की जाती है। उस साधुवृत्ति म विश्वकल्याण की भावना समाहित होती है और उसी वृत्ति के अनुरूप मानव-कल्याण के शुभ कार्यो मे सदा आशीर्वाद रहता ही है।

तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह के समक्ष पूज्य आचार्यश्रीजी के प्रति आभार प्रदर्शित कर श्री जयप्रकाशनारायण ने अपने विश्रामस्थल की ओर प्रस्थान किया।

बाल दीक्षा के बारे मे अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने और सम्मति देने के लिये श्री

जयप्रकाशनारायण द्वारा निर्धारित समय के पूर्व ही बाल-दीक्षा के सम्बन्ध मे अनुकूल सम्मति प्राप्त करने के लिये कतिपय व्यक्ति उनके पास पहुचे और उसी समय सम्मति देने के लिये दबाव डाला। किन्तु इस प्रक्रिया से श्री जयप्रकाशनारायण का मानस क्षोभ से भर गया और असम्मानजनक कार्य के लिये आने वालो की भर्त्सना करते हुए अपने कक्ष में चले गये और अन्दर आने की भी मनाही कर दी।

निर्धारित समय पर जनसमूह के समक्ष आकर श्री जयप्रकाशनारायण ने व्यक्ति समाज और धर्म की दृष्टि से बाल-दीक्षा की हानिया बतलाते हुए बाल-दीक्षा के विरुद्ध अपना मत व्यक्त किया। वक्तव्य प्रकाशित होते ही दया-दान-विरोधिया एव बाल-दीक्षाओं के आयोजकों मे खलबली मच गई और अपने विचारों को कार्यान्वित करने का पुन साहस न कर सके।

जयप्रकाश नारायण के भाषण से तेरहपथी मुह लेकर रह गये। निष्पक्ष सभ्य और प्रबुद्ध समाज ने तेरहपथ की कभी तरफदारी नहीं की। हम दैनिक लोकवाणी जयपुर 28/11/49 में प्रकाशित जैन समाज के अधिकारिक विद्वान पडित सुखलालजी के आलेख से पाठको को बता देना चाहते हैं कि तेरहपथ की उस समय क्या स्थिति रही है। नमूने से समग्रता को जाना जा सकता है।

पडित सुखलालजी का मन्तव्य

हर एक नये फिरके की तरह तरापथ में भी अपने प्रचार का जोश देखा जाता है जो न तो अस्वाभाविक है और न अनुचित है। पर मेरी समझ में इकसी मुख्य त्रुटि आधारहीनता या आधार की निर्बलता है। किसी भी धर्म का आचार ज्ञान की विशालता और दृष्टि की व्यापकता है जो तेरापथ के प्रचार लत्ती साहित्य में और अन्यायन्य प्रवृत्तियों मे देखा नहीं जाता। जो जो हिदी या अग्रेजी पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकायें प्रसिद्ध हुई उनको देख कर कोई भी समझदार तेरापथ हितैपी दु खित हुए बिना रह नहीं सकता। उनमें वहीं पुराना चर्वित और पिष्ठपेषण है जो आज तक अन्य जैन फिरकों मे भी निकम्मा सिद्ध हुआ है। केवल नये लेखक और नये मुद्रण का कोई महत्त्व नहीं जब तक उसमे सूक्ष्म चिन्तन और व्यापक अध्ययन न हो। कई उत्साही मित्रो ने मुझको पहले भी तेरापथी साहित्य भेजा था और इस समय जुयपर में भी कुछ मित्रों ने लेकर ऐसा साहित्य मुझको दिया। इस साहित्य को देखने से पता चलता है कि तेरापथ के उत्साही गृहस्थ और त्यागियों की अध्ययन दिशा बिलकुल प्राथमिक है और यथार्थ भी नहीं है। इस नींव पर [illegible] तेरापथ तेजस्वी बन नहीं सकता।

दूसरी कमी जो बहुत [illegible] वह [illegible] की। तेरापथी गृहस्थ हमेशा इस प्रयत्न म लगे रहते हैं कि [illegible] प्रति[illegible] या धनिक तेरापथी साधुओं

के परिचय मे आवे और उन साधुओ की या तेरापथ की कुछ न कुछ सराहना करे। इसके लिए तरापथी गृहस्थ इतना अधिक पैसा खर्च करते हैं जिसको देख कर मनमे यह भाव आता है कि आखिर ऐसा परावलम्वन क्यो ? जो पैसा वाहर के अन्य व्यक्तियों को बुला कर या उनके प्रवास आदि का प्रबन्ध कर उनसे कुछ न कुछ प्रशसा पूर्ण बात कहलाने या लिखाने मे खर्च किया जाता है वह पैसा अपने ही तरापथी समाज के गृहस्थयो को उतनी ऊची और व्यापक शिक्षा देने मे योग्य रीति से खर्च किया जाय तो तेरापथ का ज्ञान सम्बन्धी धरातल कितना ऊँचा उठे और कितना स्वावलम्बी हो ? इस पर विचारक मित्र गौर करे। यो तो मैं लम्वें समय से तेरापथी परावलम्बी प्रयत्न से परिचित था ही पर जयपुर आने से इस बार मैंने जो अनुभव किया वह सुखद न था। अक्टूबर 16 तारीख की दी जानेवाली दीक्षा के प्रसगपर तेरापथी भाइयो ने बाहर से अनेक जैनेतर विद्वानो और कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियो को वहुत बड़ा खर्च करके बुलाया था। उद्देश्य यह रहा कि वे वाल दीक्षा का समर्थन करे और साथ ही साथ तेरापथ के सिद्धान्तो की व वर्तमान आचार्यश्री की प्रशसा भी करें। कोई भी साधारण बुद्धि का व्यक्ति यह समझ सकता है कि जो सज्जन या विद्वान् दूसरे के खर्च से या दूसरे की दक्षिणा के लोभ से उसका अतिथि वना हो वह बुलाने वाले को ऐसा सत्य् क्यो कहेगा जो उसको सुहाता न हो। फल यह होता है कि जैन और जैनेतर परम्परा की दृष्टि वाले एव प्रभावशली व्यक्तिया को बुलाने मे उनके वास्ते प्रवास तथा अन्यान्य विषयक प्रवन्ध करने मे जो बहुत वडा धन व्यय होता है उससे कुछ प्रचार पोपक अभिप्राय तो मिल जाते हैं पर वास्तव में न तो साधुओ की विद्याभूमि उन्नत आती है और न गृहस्थो म ही स्वनिरीक्षण करने की बुद्धि आती हैं एक तरह से सारा प्रचार परावलम्वी वन जाता है जो किसी भी समझदार की दृष्टि से खुद प्रचारक का ही घातक सिद्ध है इस बारे में कुछ उदाहरण दू तो अधिक स्पष्टता होगी। वाल दीक्षा क निमित्त से श्री जयप्रकाश नारायण को कई सज्जनों के साथ मुम्बई से प्लेन के द्वारा बुलाया गया। उन्होने श्री तुलसीराम गणिजी की मुलाकात भी की। वाते कुछ भी हुई हों पर उनका जयपुर के अखवारो मे जो निवेदन गया। उससे क्या जाहिर होता हैं ? सारा खर्च पानी मे और ऊपर से तेरापथ की प्रतिष्ठा की हानि भी। क्या श्री जयप्रकाशनारायण को यह समझने मे देरी लग सकती है कि जो लोग इस से कुछ अनुकूल कहलाना चाहते हैं वे ज्ञान और अध्यात्म की दृष्टि से कितने पामर हो सकते हैं ? बुलानेवाले को यह भी ख्याल नहीं आया कि जयप्रकाशनारायणजी सच्चे समाजवादी हैं और वे समाजवादी की दृष्टि से वालदीक्षा या अकर्मण्य साधुसस्था का समर्थन कैसे कर सकते हैं ? हा वे बुलाने वालो का अनुसरण करके या अपने समाजवाद के प्रचार मे उपयोगी मदद की इच्छा से आ सकते हैं कुछ न कुछ लिख बोल सकते हैं पर इससे

तेरापथ या किसी पन्थ के आकर्मणय देह मे खून तो भर नहीं सकता। मान लीजिये कि उकना अभिप्राय कुछ अनुकूल होता तो भी क्या यह कम तेजोबध है कि एक धर्म का आचार्य या आध्यात्मिक गुरु आध्यात्मिक प्रवृत्ति के बरे मे दुनयवी व्यक्ति के अभिप्राय का महत्व समझे। दूसरा उदाहरण तो और भी अपमान सूचक हे।

कलकत्ते से कई बगाली व्यक्तियों को बुलाया गया था। जिनमे से कुछ प्रोफेसर भी थे। क्या इन जैनेतर ब्राह्मण प्रोफेसरोको श्री तुलसीराम गणिके प्रति या वालदीक्षा के प्रति कोई भक्ति उभड़ भाई थी। जो उनको खींच लाती ? साफ बात यह थी कि पैसे का बल उनको खींच लाया था सात कोडी बाबू जैसे गम्भीरतम प्रोफेसर की विद्या ग्रहण करने के लिये तो श्री तुलसीरामगणी खुद भी शुभी योग्यता नहीं रखते। ऐसी स्थिति मे कोई भी ब्राह्मण सुविद्वान जैन वेषमात्र से या निर्जीव क्रियाकाणड से जैनधर्म की या उसके साधुश्रावक की हार्दिक सराहना की तो भी हमसे उस पथ के अपढ साधुश्रावक समाज मे विद्या का सचार कैसे होगा ? उस मौके पर आये हुए जैनेतर विद्वानो म से कुछ मुझे मिले जो मुझसे विशेष परिचित थे उनका तेरापथ के बारे मे सच्चा अभिप्राय जानकर मुझको इतनी व्यथा हुई कि जिससे मैं यह लिखने की विवश हुआ।

कितनी ही दूर से ट्रेन या प्लेन मे जाने का पूरा आथिक प्रबन्ध हो और दूसरी भी सुविध ा मिले तो तेरापथी श्रावक चाह उतने विद्वानों को दूर-दूर से बुला सकते हैं। विद्वानो क लिये तो यह एक बगैर खर्च की यात्रा ही है। थोडे से मीठे शब्दो के द्वारा ऐसा लाभ मिलता हो तो उसे छोडने वाले शायद ही विद्वान् मिले। इस तरह तेरापथ व्यर्थ का खर्च कर रहा है। विद्वानों के अनुकूल अभिप्राय आये तो भी उससे उसकी असली शक्ति नहीं बढ़ती है। उलटे आने वालो के मन पर विपरीत छाप पडती है कि यह पथ और पथ के मुखिया कैसे हैं ? कोई भी पथ जो विद्या या आध्यात्मक दृष्टि से शक्तिशाली हो वह दूसरो के अभिप्राय की परवाह नहीं करता है। जो दूसरों के अभिप्राय का सग्रह करने की कोशिश करता है वह कभी स्वावलम्बी या आध्यात्मिक तो ही नहीं सकता।

मैं अपनी बात कहू तो कोई मित्र बुरा न माने। मुझसे कलकत्ता में अनेक मित्रों ने अनेकवार कहा कि आप हमारे पूज्यश्री के पास चलिये एक बार मिलिये हम ट्रेन या प्लेन का सुप्रबन्ध करदें। मैंने साफ कहा कि अगर मैं आपके खर्च से जाऊगा तो इसमें न तो मेरा श्रेय है और न आपका। अगर मैं आपके खर्च से गया तो खरी-खरी बात कहने में सकुचाऊगा। आप लोग मेरे अर्धस्तव या खुशामदी अभिप्राय से आत्मर्वचना में पडेगे मैं खुद गिरूगा और तेरापथ का कुछ भी भला न कर सकूगा।

जयपुर में मेरे निवास पर कुछ सहृदय तरापथी मित्र आये उनमें एक जयपुर वासी

ब्राह्मण पडित भी थे। सबका आग्रह मुझे पूज्यजी के पास ले जाने का था। मैंने फिर वही बात कहीं। जो पडित तेरापथी श्रावकों की ओर से मुझको लिवाने जाने का आग्रह करते थे। उन्होंने मुझको सस्कृत मे कहा कि असल मे बात वही हैं जो आप कहते हैं। पर हम आजीविका वश आपसे आने का आग्रह करते हैं। वह सस्कृत मे इसलिए बोले कि साथवाले तेरापथी श्रावक समझ न सके।

आगे की घटना तो और भी दुखद है तो भी मैं इसलिए लिखता हू कि विचारक तेरापथी जल्दी समझ जाय। एक व्यक्ति मेरे और आचार्यश्री जिन विजयजी के पास आया जो अपने को जमनालाल बजाज का सम्बन्धी कहता था उसने हम दोनो को तुलसीराम गणि के पास लेजाने के लिए न जाने क्या क्या मीठी और लुभावनी बाते कहीं। आखिर आचार्यश्री जिन विजयजी जाने के लिए सहमत हुए इस शर्त पर कि कहीं शहर के बाहर एकान्त मे मुलाकात हो। उक्त महाशय का मुलाकात कराने का आशय यह था कि पूज्यजी समयानुसार परिवर्तन करना चाहते हैं इस बारे मे आपसे सलाह लेगे। मैं तो साफ-साफ जानता थ कि कुछ होन का है ही नहीं। अन्त में शहर के बाहर पूज्यजी और श्री जिन विजयजी के ऊपर जो असर पड़ा और मुलाकात के समय उपस्थित छोटे-छोटे साधुओ के चेहरे और हावभाव से उनकी तेजस्विता के बारे मे जो छाप पड़ी उसकी विशेष वर्णन न करना ही अच्छा है। अन्त मे बीच मे ही दलाल महाशय ने मुनि श्री जिन विजयजी को कहा कि मैं धोख में ही रहा। वह महाशय इतना शर्मिन्दा हुआ होगा कि फिर मुझ से तो मिलने तक न आया। मुनि श्री जिन विजयजी ने आकर मुझसे कहा कि आप न आये तो अच्छा ही हुआ पूज्यजी (तुलसीगण) भले हैं पर भीरू और मामूली समझ वाले हैं। छोटे-छोटे साधुओ के चेहरे पर कोई तेज नहीं है और उनकी बाते कोई काम की भी न थी।

तेरापथ वैसे धोखे में है और लोभी को कैसे धूर्त मिलता हैं इसका एक उदाहरण तो प्रस्तुत है। तेरापथी श्रावको ने मुम्बई स धीरजलाल टाकरसी नामक जैन व्यक्ति को बुलाया कितनी था धीरजलाल की कितनी प्रतिष्ठा है कितनी ईमानदारी है कितनी सच्चाई है ये बातें तेरापथी भाई जानते है तो अच्छा होता। शायद थोड़ा बहुत जानते भी हा पर पन्थ की सराहना और दीक्षा की पुष्टि की आशा से उन्होंने उतना बडा खर्च किया होगा। जो कुछ हो मेरा तेरापथी भाइयो से निवेदन इतना ही है कि वे इस तरह व्यर्थ का खर्च न करें। जहा पैसे होगा स्वार्थी आप ही जायेगे। उनकी प्रशसा का कोई मूल्य नहीं। जो कुछ खर्च किया जाता है और करना सम्भव है वह सारा खर्च योग्य दिशा मे योग्य रीति से किया न गया तो जैसा तेरापथ आज है वैसा ही लगभग अपढ-कमपढ और जड़ होगा। उसकी तटस्थ विचारक विद्वानो में प्रतिष्ठा तभी बढेगी जब उसके अध्ययन की दिशा और अभ्यास का मानदड

बदलेगा। अभी तो केवल तोते जैसी पढ़ाई होती है और नन्हे साधु-साध्वी उसी भवर में फसे हैं। मारवाड और थली के धन सम्पन्न व्यापारी भले श्रावक इस बात की कैसे समझगे कि विद्या शास्त्र क्या है और उसकी गहराई धर्म और पथ की प्रगति के लिए कितनी जरूरी है।

आचार्य तुलसी से क्षमापना

यद्यपि आचार्यश्री तुलसी और उनके अनुयायियो को जयपुर मे होने वाली अबोध बालक-बालिकाओं का दीक्षा न देने के लिये विवश होना पडा था और अपना आत्म विश्वास भी खो बैठे थे लेकिन दया-दान के सम्बन्ध मे बनाई गई भ्रात मान्यताओ के समान ही यह धारणा बना ली कि इस जन-आन्दोलन मे पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा का सकेत है। पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानस की प्रतिक्रिया ऐसी ही होती है और उस स्थिति में सत्य को समझने का प्रयत्न होना असम्भव हो जाता है।

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के प्रवचन पूर्ववत् लालभवन में होते थे। इनका आबाल-वृद्ध जनसमूह लाभ लेता था और दिनोदिन उपस्थिति बढने से पर्युषण पर्व के दिनों म प्रवचनों के लिये सुबोध हाईस्कूल के प्रागण मे व्यवस्था की गई।

पर्युषण पर्व सयम-साधना और धर्मप्रभावना के विविध आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ। सावत्सरिक प्रतिक्रमण पर्व के अवसर पर गतवर्ष के प्रमादजन्य कार्यों के लिये प्रतिक्रमण कर चौरासी लक्ष जीवयोनि से खमतखामणा की गई।

सवत्सरी के अगले दिन सहयोगी सन्तों के साथ आचार्यश्रीजी म सा प्रातःकालीन चर्या के निमित्त रामनिवास बाग की ओर पधारे। वहीं बाग मे आचार्यश्री तुलसी से साक्षात्कार हुआ। दोनों आचार्यों ने परस्पर क्षमापना की।

आचार्य तुलसी की मानवता-विरुद्ध मान्यताओ का स्पष्टीकरण

पारस्परिक खमत-खमापना के दौरान ही अप्रासगिक रूप में आचार्यश्री तुलसी ने कहा–'देखो गणेशलालजी मैं थाने एक बात कहूँ हूँ के थारो रवैयो ठीक नईं।

इस अप्रासगिक बात को सुनकर आचार्यश्रीजी ने फरमाया– कैसा रवैया ?

प्रत्युत्तर मे आचार्यश्री तुलसी ने कहा– थारी तरफ से छींटाकशी हुई पपलेट बटावो हो आ ठीक कोइनी इने बद कर देनी चाहिये।

तब आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि यह आपका और आपके अनुयायियों का भ्रम है। न तो मैं छींटाकशी करता हूँ और न वैसे पैंफलटा को छपवाता या बटवाता हूँ और न पफलेटों में मेरा कोई सहयोग ही है। हा श्रावको द्वारा लाय हुए कुछ पर्चे देखे जरूर हैं परन्तु उनमें ऐसी कोई बात मेरे ध्यान मे नहीं आई है जो निन्दाजनक हो या व्यक्तिगत आक्षेप किये गये

हों। उनमे जा-कुछ भी लिखा गया है आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तको के उदाहरण मात्र हैं और उनमे छींटाकशी मानना आपकी भूल है।

इस बात को सुनकर आचार्यश्री तुलसी पसीना-पसीना हो गये और अपने समीप म खडे शिष्य के कधे का सहारा लेकर खडे होकर बोले– थे मने बदनाम करो।

इसके प्रत्युत्तर मे आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि बदनाम करने जैसी कौनसी बात है ? सैद्धान्तिक सत्य को स्पष्ट रूप से कहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। तदनुसार तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन मैं भी करता हूँ किन्तु विपरीत प्ररूपणा करने से जनता की गलत धारणाए बनती हैं और वह जैन धर्म को उपेक्षणीय समझे तो ऐसा किसी भी जैन धर्मानुयायी को अभीष्ट नहीं हो सकता है। आप भी ऐसा ही मानते हैं और मैं भी जैन धर्म के आचार-विचारा का अनुसरण करनेवाला हूँ, अत यदि मैं शुद्ध तत्त्व का प्रतिपादन नहीं करता या तदनुसार आचार-विचार नहीं रखता हूँ तो अपने कर्तव्य से गिरता हूँ।

दूसरी बात यह है कि आपको बदनामी का भय क्यों ? आपके मान्य ग्रन्थ भ्रमविध्वसन मे लिखा हुआ है– 'साधुथी अनेरो ते कुपात्र छे। अन्यने दीघा अन्य प्रकृतिनो बघ छे। अन्य प्रकृति पापनी छे। इस उल्लेख के अनुसार अभीप्सित के अतिरिक्त जितने भी मनुष्य हैं उनको उनके योग्य आहार-पानी देने सेवा-सहायता करने आदि मे आप एकान्त पाप बताते हैं और ऐसी मान्यता का प्रतिपादन करते हैं। यदि यह मान्यता आपकी व्यक्तिगत होती तो भी उपेक्षा कर देते लेकिन जब जैन धर्म के नाम पर इन मानवता-विरोधी बातों का प्रतिपादन होता है तो जैन धर्म के बारे मे घृणा भ्राति फैलना समावित है। और उस घृणा व भ्राति को मिटाना प्रत्येक जैन धर्मावलबी का कर्तव्य है।

यदि आप भूखे को भोजन प्यासे को पानी रोगी को औषधि देने एव अन्य परोपकारी कार्य करने मे पाप नहीं मानते हैं तो स्पष्ट घोषणा कर दीजिये कि मैं इन या ऐसे ही अन्यान्य दया दान सम्बन्धी कार्यों में पुण्य व धर्म मानता हूँ। मेरे पूर्ववर्तियों ने जो दया दान-विरोधी मान्यताए प्रतिपादित की हैं वे सब मिथ्या हैं भूलभरी हैं और जैन धर्म के सिद्धान्तो के विपरीत हैं।

यदि इन सब बातो के बारे मे आप और मैं यहीं किसी स्थान पर बैठकर निर्णय कर ले कि शुद्ध सिद्धान्त क्या है यह स्पष्ट हो जाये और आपके भ्रम का विध्वस हो जाय तो आप व आपके अनुयायी जैन धर्म के सिद्धान्तों के वास्तविक प्रतिपादन करने वाले कहला सकेंगे और स्थानकवासी समाज में रही हुई सप्रदायों की तरह आपकी भी एक सप्रदाय मानी जाने लगगी।

अनतर अपने साथ के सतों की ओर सकेत करते हुए आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि ये मेरी नेश्राय में रहकर साध्वाचार का पालन कर रहे हैं तो आप इनको सुपात्र मानते हैं या नहीं ?

पूज्य आचार्यश्रीजी के इस ओजस्वी और अर्थगभीर कथन को सुनकर आचार्यश्री

तुलसी कुछ उत्तर न दे सके। चेहरे का रग क्षण-क्षण मे बदल रहा था। अत बिना कुछ कहे ही अपने समीपवर्तियो के कधो का सहारा लेकर आगे बढ़ने का उपक्रम किया।

शिष्टजनोचित भाषा के सम्बन्ध मे सकेत

वार्त्तालाप के प्रसग म पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा साधुमर्यादानुसार अपने कथन मे आचार्यश्री तुलसी को शिष्टजनोचित समानसूचक आप' शब्द से सम्बोधित कर रहे थे जबकि आचार्यश्री तुलसी थे थाने' आदि ग्राम्य बोली के सकेता से सम्बोधित कर रहे थे।

इस प्रकार विना कुछ उत्तर दिये आचार्यश्री तुलसी और उनके सहयोगियो को चलते देखकर आचार्यश्रीजी म सा ने उन्हें रुकने का सकेत करते हुए फरमाया कि आप अपने पथ के आचार्य माने जाते हैं। यह शिष्ट और सस्कृत जनो मे उच्च पद माना जाता है। अत उस पद पर स्थित व्यक्ति को वार्त्तालाप करते समय शिष्ट और सभ्यजनोचित वचनोच्चारण करने की जरूरत है। मुझसे वार्त्तालाप करते समय आप मुझे थें थाने या नाम लेकर या अन्य किसी शब्द से सम्बोधित करें उसके लिये कुछ नहीं कहना है परन्तु अन्यत्र वार्त्तालाप का प्रसग आने पर समक्ष वैठे व्यक्ति को सभ्य शिष्ट भाषा मे सम्बोधित करने का ध्यान रखे। अभी आप आज वार्त्तालाप के प्रसग मे थे थें' से सम्बोधित कर रहे हैं यह शिष्टजनोचित भाषा नहीं है।

इस पर आचार्यश्री तुलसी ने कहा कि 'या तो म्हारे थली री ऊची बोली है।

हो सकता है यह थली की ऊची बोली हो। परन्तु अभी आप थली से बाहर निकल आये हैं और अपने सप्रदाय के आचार्य माने जाते हैं। इसलिये देश काल के अनुकूल भाषा का प्रयोग करे—पूज्य आचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया।

हमारे-आपके बीच तात्त्विक दृष्टि से सैद्धान्तिक एव आचार विचार का भेद है। मतभेद हो सकता है किन्तु मनभेद नहीं होना चाहिये। आत्मिक दृष्टि से आपकी आत्मा मेरी आत्मा के समान है। इसलिये तात्त्विक विवेचना हेतु कुछ कहा गया है और उससे यदि आपकी आत्मा को कष्ट हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

इस सकेत पर आचार्यश्री तुलसी ने थली की ऊची भाषा का प्रयोग न कर शिष्टजनोचित आप शब्द से सम्बोधित करना प्रारभ किया और कहा कि आपकी तरफ से 'सुपात्र व कुपात्र चर्चा' पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसके मुखपृष्ठ पर छपा है कि- 'तेरहपथी साधु अपने साधु के सिवाय सबको कुपात्र समझते हैं'— क्या यह छींटाकशी नहीं मानी जायेगी ?

आप ऐसा ही रा मानते हैं आचार्यश्रीजी ने फरमाया। यदि ऐसी मान्यता नहीं है तो मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे अनुशासन मे ये मुनिराज पचमहाव्रतो का पालन और सयमसाधना करते हैं। इनकी श्रद्धा किसी जीव को बचाने म तथा साधु के सिवाय अन्य को दान देने

मे पाप मानने की नहीं है और न भगवान महावीर स्वामी को छद्मस्थ अवस्था मे चूका (भूला) मानते हैं। तो क्या इन्हे आप साधु एव सुपात्र मानते हैं ?

अपनी मान्यता की यथार्थता को प्रकट होते देखकर आचार्यश्री तुलसी बगलें झाकने लगे और उत्तर देते न बना तो खमतखामणा खमतखामणा जोर-जोर से बोलते हुए चल दिये।

इस दृश्य को देखने के लिये दर्शको का समूह एकत्रित हो गया था। आचार्यश्री तुलसी को जाते देखकर उन्होने आवाज लगाई कि बिना उत्तर दिये क्यो जा रहे हैं समाधान करने से क्यों झिझकते हैं ? लेकिन जब स्वय अपने को समालना ही कठिन हो रहा था तो आचार्यश्री तुलसी उत्तर क्या देते ? अत अगल-बगल में खडे साधुआ के कधों का सहारा लेकर कापते हुए-से चल ही दिये।

नागरिको के सत्य-आग्रह के कारण तेरहपथियो द्वारा अपरिपक्व वय के अबोध बालको की दीक्षाओ के रुकने और पूज्य आचार्यश्रीजी से हुए वार्तालाप से आचार्यश्री तुलसी के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था लेकिन वे अह के वश होकर वैसा न कर सके। अगर वे वैसा कर लेते तो आगरा में पुन उनकी पोल नहीं खुलती। 14 मार्च को आगरा के प्रबुद्ध व्यक्तियों ने जब आचार्य तुलसी से पूछा– किसी मरते हुए प्राणी को बचा लेना वर्तमान मे दीन-हीन बने शरणार्थियो की सहायता करना सती-साध्वी स्त्री को किसी लम्पट के चगुल से बचाना माता पिता की सेवा करना आदि बातो में आप पुण्य या धर्म मानते हैं या नहीं ? इसका उत्तर देते समय पहले तो वे इधर-उधर की बातो मे टालते रहे पर जब अन्त में सब तरह से मार्ग अवरुद्ध हो गया तो स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि 'हम उपर्युक्त बातों मे एकान्त पाप मानते हैं' । बाद मे प्रतिकूल वातावरण बनते देख आगरा से भी वे चलते बने।

पल्लीवाल पोरवाल क्षेत्र मे जैनाचार-प्रचार

आचार्यश्री का जयपुर चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। जयपुर के वातावरण का प्रभाव देश के समग्र जैन सघों पर पड़ा। अलवर श्रीसघ की हार्दिक भावना थी कि चातुर्मास-समाप्ति के अनतर आचार्यश्रीजी म.सा का अलवर और उसके आस पास के क्षेत्रो में पदार्पण हो। इस आकाक्षा को लेकर अलवर श्रीसघ चातुर्मास काल के प्रारम्भ से ही विनती करता आ रहा था और समाप्ति के अन्तिम दिनों में पुन उसने अपनी विनती दुहराई।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् पूज्य आचार्यश्रीजी के अलवर की ओर विहार होने की सम्भावना थी कि इसी समय पल्लीवाल जैनो के अग्रणी सेठ श्री ऋद्धिचन्दजी जगन्नाथजी गगापुर श्री नारायणलालजी जयपुर आदि-आदि के प्रतिनिधिमण्डल ने विनती की कि अनेक वर्षों से हमारे उधर के क्षेत्रो मे सन्तो का पदार्पण न होने से हम अपने धार्मिक आचार विचारों

को भूलते जा रहे हैं। नई पीढी का तो साधु-सन्तो से सपर्क बिल्कुल रहा ही नहीं है। आपश्री का अलवर की ओर विहार होने की सभावना हे अत हमारी यह प्रार्थना है कि सवाईमाधोपुर हिडौन महुवारोड मडावर आदि क्षेत्रा को जहा हमारी समाज के घर हैं स्पर्श करते हुए पधारे तो बडा उपकार होगा।

आचार्यश्रीजी ने परिस्थिति का विचार कर चातुर्मास-समाप्ति के अनतर जयपुर से सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रो की ओर विहार किया। मार्गजन्य परीषहो की पग-पग पर सभावना रहती थी किन्तु आपश्री का लक्ष्य ही था कि मानवीय आत्मा मे जीवन की यथार्थता को समझने की शक्ति प्राप्त हो एव धार्मिक श्रद्धा और आचार-विचार की सुदृढता से विश्व का वातावरण सदेह अनिश्चय एव भय से मुक्त बने। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु पल्लीवाल प्रदेश मे पदार्पण किया और ग्राम-ग्राम और नगर-नगर को पावन बनाया।

सवाईमाधोपुर से करोली गगापुर हिन्डौन भरतपुर और अलवर तक का क्षेत्र पूज्य माधवमुनिजी म के समय साधु-साध्वियो के विचरण से निरन्तर लाभान्वित रहता था परन्तु इन वर्षो मे साधु साध्वियो का एकदम विचरण बन्द हो गया था। साधु-साध्वियों की सगति के अभाव मे हजारो पल्लीवाल जैन पथच्युत हो गये। जैसी-जैसी सगति मिली वैसे-वैसे बनते गये।

पूज्य गणेशाचार्य ने 3½ माह तक पल्लीवाल क्षेत्र मे व्यापक विचरण कर एक नूतन क्रान्ति का सचार किया। हजारो व्यक्तियो ने सम्यक धर्म का बोध प्राप्त किया। अलवर के सुश्रावक श्री रतनलालजी सचेती का सेवा-श्रम उल्लेखनीय था।

वृहत्साधु-सम्मेलन की पूर्वभूमिका

पल्लीवाल प्रदेश को धर्मदेशना से प्रभावित करते हुए आचार्यश्रीजी म सा हिन्डौन के आस-पास विराज रह थे। वृहत्साधु-सम्मेलन किये जाने की भूमिका बन रही थी और इस सबध में आपश्री से चर्चा-वार्त्ता करने के लिये श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का एक शिष्टमडल पुन सेवा मे उपस्थित हुआ।

इन्हीं दिनो व्यावर मे भी स्थानकवासी जैन सन्तो के पाच-छह सप्रदायों का सम्मेलन हो जा रहा था। शिष्टमडल ने विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री उक्त अवसर पर व्यावर पधार और आपके नेश्राय मे उसका कार्य सचालन हो ऐसी हमारी आकाक्षा है।

शिष्टमडल के निवेदन पर विचार व्यक्त करते हुए आपने फरमाया कि जब वृहत्साधु सम्मलन होने के लिये आप प्रयत्न कर रहे हैं और उसके होने की सम्भावना भी दिख रही है तो यह पाच छह सप्रदायो का अलग से सगठन बनाना महत्त्व नहीं रखता है।

हा यह बात जरूर है कि जो भी सन्त इस अवसर पर एकत्रित हो और वे सुसगठन की भूमिका तैयार करे तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मैं अभी इन क्षेत्रो मे आ गया हूँ और इधर सन्तो के विहार की विशेष आवश्यकता है। अगर मैं इन क्षेत्रों से विहार कर गया तो सम्भवत पुन इधर आना नहीं हो सकेगा। अत अभी मारवाड़ की ओर आने की स्थिति बनना सभव नहीं दिखता है।

शिष्टमण्डल जिस उद्देश्य को लेकर आया था वह पूर्ण नहीं हो सका। आपश्री इस प्रकार के आयोजनो द्वारा एकता के कार्यो को वेग मिलने की समावना नहीं मानते थे। विशाल उद्देश्य की पूर्ति मनसा-वाचा कर्मणा एकरूपता और शुद्धि के धरातल पर ही सम्भव है।

पल्लीवाल क्षेत्रो मे धार्मिक शिक्षण की प्रेरणा

पल्लीवाल प्रदेश के ग्रामो को स्पर्श करते हुए आप महुआरोड मडावर पधारे। जनता के उत्साह का पार न था। स्थानीय और आस-पास के क्षेत्रो के श्रोतागण प्रवचनो का लाभ उठाते थे। प्रथम दिन के प्रवचन मे आपने धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता के बारे में फरमाया कि जैन धर्म की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य स्वय ही अपने जीवन-विकास का आप विधाता होता है। उसका ही सद्गुणमय जीवन त्याग व पराक्रम उच्चतम विकास के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। सरल शब्दो म कहे तो जीवन-विकास की इस दौड म सभी हिस्सा ले सकते हैं आत्म-विकास कर सकते हैं और अपनी दौडने की सत्पुरुषार्थवृत्ति के आधार पर प्रतियोगिता मे जीत हासिल कर सकते हैं। ऐसी अवस्था मे विकास के लिये जो प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह यह कि छिपी हुई शक्ति आत्म विकास की रचनात्मक कर्मठता के तेज से प्रदीप्त व प्रकाशित की जाये और इस शक्ति को तेजवती बनाने का प्रबल साधन है– सस्कारयुक्त सद्शिक्षा। शिक्षा या विद्या की प्राचीन परिभाषा है-

सा विद्या या विमुक्तये

अर्थात् वही शिक्षण वास्तविक विद्या है जो जीवन की विकृति के सारे बन्धनो से मुक्त कर दे। यही शिक्षण का स्वरूप है। केवल अक्षरज्ञान कर लेने और पुस्तकीय वृत्ति को पा पा लेने मे ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। पुस्तकीय शिक्षा तो सच्ची शिक्षा की साधिका मात्र हो सकती है क्योकि विवेकपूर्वक प्राप्त शिक्षा मस्तिष्क को सही दिशा मे सोचने के लिये समर्थ व योग्य बनाती है। इस प्राप्त शिक्षा द्वारा तदनन्तर मस्तिष्क एव हृदय को परिष्कृत तथा विकसित करना होता है। अत शिक्षा के साथ सस्कार-निर्माण के विषय मे सावधान रहना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय मे ऐसी सस्कारयुक्त सदृशिक्षा का सब ओर प्रसार हो—ऐसे प्रयास की जरूरत है।

आचार्यश्रीजी के ऐसे विचारों का स्थानीय सघ और आस पास के क्षेत्रों पर प्रभावक प्रभाव पड़ा था और सदृशिक्षा के प्रसार के लिये स्थान-स्थान पर धार्मिक शालाए स्थापित हुई। स्थानीय सघ के द्वारा भी धार्मिक शिक्षण के लिये शाला स्थापित हुई।

आगरा सघ के आग्रह से आगरा की ओर विहार

जिस-किसी ग्राम या नगर मे आपश्री का पदार्पण होता तो आस-पास के सैकडों बधु प्रवचनो का लाभ लेने के लिये उपस्थित हो जाते थे। अलवर श्रीसघ के सज्जन तो पल्लीवाल जैनों के क्षेत्रों मे विहार होने के समय से ही प्रत्येक क्षेत्र म उपस्थित होकर लाभ उठा रहे थे। आचार्यश्रीजी के मडावर में विराजने के अवसर पर श्रीसघ आगरा का शिष्टमण्डल आगरा की ओर विहार कर वहा विराजित ठाणापति पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म.सा. आदि सन्तों को दर्शन देने की विनती लेकर उपस्थित हुआ कि पूज्यश्री पहले इधर पधार कर बाद में अलवर पधारने की कृपा करावें।

इधर के क्षेत्रो मे अभी आचार्यश्रीजी का विहार होना आवश्यक था और श्रीसघ आगरा अपने यहा पदार्पण कराने की अभिलाषा व्यक्त कर चुका था। अत इस स्थिति के सम्बन्ध मे स्थानीय क्षेत्रो से परिचित सज्जनो से विचार करना आवश्यक समझ प्रात कालीन चर्या के लिये जगल की ओर जाते हुए आपश्री डाकबगला मे पधारे और वहा ठहरे हुए अलवर श्रीसघ के प्रमुख-प्रमुख गणमान्य सज्जनों-श्री रतनलालजी सचेती आदि से पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म सा एव उपाध्याय अमरमुनिजी म के आग्रहभरे अनुरोध को लेकर आये हुए आगरा श्रीसघ के प्रतिनिधिमण्डल की भावना के बारे में विचार किया और विचार विमर्श द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार आपश्री ने आगरा की ओर विहार करने के भाव प्रतिनिधिमण्डल को बतलाये और आगरा की ओर विहार कर दिया। आपश्री भरतपुर क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आगरा पधारे।

पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म सा से मिलन

श्रीसघ आगरा स्वागत समारोह के साथ अपने नगर में आपश्री का पदार्पण कराने का इच्छुक था लेकिन आप इस प्रकार के लौकिक प्रदर्शनों के प्रति उदासीन थे और इस प्रकार के आकर्षणों को साधु व साधुता के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे। अत किसी प्रकार का सकेत किये बिना अकस्मात लोहामडी स्थानक में पधार गये।

आपश्री के पदार्पण की खबर सुनकर श्रद्धालु जनसमूह को आश्चर्य हुआ और परोक्ष मे अपने-अपने स्थान पर चरणारविन्दो की वदना कर लोहामडी पहुचने का ताता लग गया और पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म सा आदि सन्तों के मध्य आपश्री को विराजित देखकर दर्शनार्थियो के मुखमण्डल हर्षविभोर हो उठे। दोनों पूज्यों के सम्मेलन का दृश्य अपूर्व था।

अभिनव बसन्त

उपाध्याय अमरमुनिजी म ने गद्‌गद होकर भाव व्यक्त किये-

आज आगरा शहर मे भी वसन्त खिल रहा है। वह प्रकृति का वसन्त नहीं अपितु एक महान ज्योतिर्धर आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज का पावन पदार्पण ही उस अभिनव वसन्त का प्राण है। आपके प्रवचनो का अमृतपान करके जनता आनन्दविभोर हो रही है।

आपके शहर में भी आचार्यश्रीजी पधारे हुए हैं और पजाब से आर्यिकाजी भी। इस प्रकार चतुर्विध सघ-रूप वसत अपनी पूर्ण आभा के साथ खिल रहा है। आप इस सक्रान्तिकालीन युग में सुषुप्त जनता को नयी जागृति नयी उमगे तथा नये उत्साह का दिव्य सन्देश दे रहे हैं मुरझाई हुई कलियो मे ज्ञान का प्रकाश नवचेतना का मधुर सचार कर रहे हैं।

इस सुवर्ण अवसर पर आप सबका यह कर्तव्य हो जाता है कि अन्य समस्त कार्यों से अवकाश पाकर आचार्यश्रीजी के प्रवचनों से तथा इतर समय मे ज्ञानचर्चा से अधिकाधिक लाभ उठावें। यदि आप उनके अमृतमय उपदेश को श्रवण कर उसे जीवन का स्थायी अग बनायेगे तो आपके जीवन मे एक अभिनव वसन्त खिल उठेगा।

20 दिन लोहामडी मानपाडा आदि आगरा नगर के विभिन्न क्षेत्रो की जनता को जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तो से अवगत कराया। अल्पकालीन प्रवास के बावजूद आगरा में अपूर्व जागृति का सचार हो गया।

अलवर पदार्पण और धर्माधारित सभ्यता पर प्रवचन

आगरा श्रीसघ की आकाक्षा थी कि आपश्री का कुछ समय यहा ही विराजना हो लेकिन आगे पल्लीवाल जैन क्षेत्रों में अनेक गावों को फरसने की भावना होने से आगरा श्रीसघ ने आभार मानते हुए विदाई दी।

आपश्री आगरा से विहार कर भरतपुर, बयाना आदि आस पास के क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए अलवर पधारे। समग्र जैन समाज और नागरिकों ने भावभीना स्वागत करते हुए नगर में प्रवेश कराया और श्री महावीर भवन में विराजे। प मुनिश्री नानालालजी म सा पूर्व से ही यहा विराजमान थे। आचार्यवर के दर्शन प्राप्त कर वे प्रमुदित हो गये।

श्री महावीर भवन मे प्रतिदिन होने वाले प्रवचनों का जनता लाभ उठाती थी। श्रोताओं

की उपस्थिति की अधिकता से बहुत-से श्रोताओ को बाहर बैठना पडता था। आपश्री सादा जीवन और उच्च आचार-विचार के प्रबल हिमायती थे अत अपने प्रवचनो मे जीवन को सादा, सरल और धर्मानुकूल बनाने के बारे में बार-बार सकेत करते थे। आदर्श जीवन के बारे म आपके विचारो का साराश इस प्रकार है—

'प्राय सभ्यता को आचार-विचार का विषय माना जाता है और इस दृष्टि से वही देश सभ्य कहलाने का अधिकारी है जहा के निवासी सत्कर्म-निष्ठा नैतिक जीवन बिताने वाले और इन्द्रियो एव आवश्यकताओं का दमन करने वाले होते हैं। सक्षेप में जो भौतिकता के गुलाम नहीं किन्तु भौतिकता जिनकी दासी है वे ही सभ्य हैं और इन्हीं स्रोतो से सुसभ्यता के मधुर प्रवाह प्रवाहित हुआ करते हैं। कोरा भौतिक विकास चाहे बाह्य रूप में विकास प्रतीत होता हो किन्तु उसमें आध्यात्मिकता की उच्चता आये बिना आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

'यही कहा जा सकता है कि चूकि जीवन-विकास की दीवार नीति धर्म और चारित्र की नींव पर टिकी हुई रह सकती है अत उस नींव को उखाड़ कर कोरी दीवार खडी नहीं रखी जा सकती है। इसलिये यान्त्रिक प्रसार और व्यवस्था को सही मानव विकास के अनुकूल नहीं बनाया गया तो उससे निर्गत सभ्यता विकृति का विषैला वातावरण ही बनायेगी। यान्त्रिक सभ्यता जीवन विकास की दिशा मे सहायक बन सके— इसके लिये आध्यात्मिकता को जीवन के सभी क्षेत्रो में अपनाना कल्याणकारी हो सकेगा।

अलवर श्रीसघ चातुर्मास करने के लिये पहले भी अनेक बार विनती कर चुका था और उस अवसर पर समस्त नगरवासियों ने सामूहिक रूप में अपनी भावना आपके श्रीचरणो में रखी और आपश्री ने भी विशेष उपकार होने की ें को लक्ष्य मे रखते हुए स 2007 का चातुर्मास अलवर में करने की स्वीकृति

दिल्ली सघ के आग्रह से दिल्ली

जब अलवर से आस क्षेत्रों में उ हो की रही थी ता उसी समय श्रावक श्री जी श्रीसघ दिल्ली का एक शि पधार सेवा और अपने यहा की

आपश्री ने समग्र परि घा के पहले पहले इधर के भाय हो है। लेकिन समय पर क्या कैर है कहा जा सकता है।

आस पास के क्षेत्रो को फरसते हुए आपश्री ने दिल्ली की ओर विहार कर दिया। जव दिल्ली के भाइयों को यह जानकारी मिली तो उनके आने-जान का ताता-सा लग गया। वे सोचते थे यदि दिल्ली पधारने के समय का कुछ सकेत मिल जाये तो ठीक रहेगा। लेकिन आपश्री इस प्रकार की प्रवृत्ति से साधु का विलग रहना ही श्रेयस्कर मानते थे। अत दिल्ली सघ के आग्रह को देखकर आपने फरमाया कि साथ के सन्तो के विहार आदि के अनुसार ही स्थिति वन सकती है।

इस उत्तर से दिल्ली श्रीसघ ने विचार किया कि अपने को ही कुछ ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिये जिससे प्रतिदिन विहार-स्थिति मालूम होती रहे और वैसी जानकारी के लिये सघ ने अपनी व्यवस्था कर ली।

जव आपश्री का दिल्ली की ओर विहार हो रहा था तो उन्हीं दिनो महावीर भवन (वारादरी) मे स्थविरपदविभूपित मुनिश्री जग्गूमलजी म सा एव उनकी सेवा मे व्याख्यानवाचस्पति प र मुनिश्री मदनलालजी म सा के सुशिष्य प र मुनिश्री सुदर्शनमुनिजी म सा आदि ठा विराजते थे। वाद में उपाध्याय कवि श्री अमरचदजी म आदि ठा भी आगरा से विहार कर दिल्ली पधार गये थे। आपके शिष्य प मुनिश्री नानालालजी म सा ठाणा 3 भी पूर्व मे पधार चुके थे।

अभूतपूर्व अगवानी अभूतपूर्व स्वागत

आपश्री ने गुडगाँव के क्षेत्रो मे विचरण करते हुए 23 अप्रैल 50 को दिल्ली मे पदार्पण किया। आचार्यश्री का दिल्ली आने का प्रथम मौका था। श्रीसघ के हर्ष का पार न था और नगर की सीमा पर उल्लास एव उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जिन राजमार्गो से आपका पदार्पण हो रहा था वहा जनता की इतनी भीड़ हो गई कि कहीं-कहीं मोटर-कार आदि का यातायात भी रुक जाता था। चादनी चौक मे आते-आते तो आवल वृद्ध जनो की सख्या इतनी हो गई कि ट्राम-मोटरगाड़ियो आदि का आवागमन विल्कुल ही रुक गया।

विशाल जनसमूह के साथ आपने महावीर भवन (वारादरी) मे प्रवेश किया और प्रतिदिन होने वाले आपके तात्त्विक प्रवचनों से श्रोतागण लाभान्वित होने लगे।

प्रसिद्धि के लिए आडम्वर या सादगी के प्रति स्वत आकर्षण ?

आपश्री के प्रवचना को सुनकर जनता में जिज्ञासा पैदा हुई कि अभी कुछ दिन पहले आचार्यश्री तुलसी नामक जैन साधु आये थे और उनके साथ करीव पचास साधु और साध्वी थे। उनके धनी मानी व्यक्तियों की मोटरें भी आगे पीछे दोड़ रही थीं और कई लारियो मे सामान लदा आ-जा रहा था। प्रचार के लिये प्रचारकों की काफी वडी सख्या साथ में थी और

जिनमे से कुछ सामयिक पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादकों से सपर्क साधने में व्यस्त थे तो कुछ-एक नेताओ और बडे माने जाने वाले व्यक्तियो को बारम्बार आग्रहपूर्वक विनतिया कर आचार्यश्री तुलसी के पास लाने में जुटे हुए थे। जनसाधारण व शिक्षित समुदाय से सम्पर्क करने के लिये भी कुछ व्यक्तियो की नियुक्तिया की गई थी और प्रचार के लिये एक कार्यालय खुला हुआ था जिसमें हिन्दी सस्कृत अग्रेजी के जानकार कार्यरत थे। फिर भी जनसमूह म आचार्यश्री तुलसी के प्रति कोई आकर्षण नहीं था और न वहा जाने का उत्साह ही अपितु हिचकिचाहट विशेष दिखाई देती थी।

लेकिन एक ये जैन आचार्य हैं जिन्हे न मान-सम्मान की आकाक्षा है और न प्रचार-प्रसार के द्वारा अपनी प्रसिद्धि के इच्छुक हैं और न इनका अनुयायी वर्ग भी ऐसी कोई प्रवृत्ति करते देखा जाता है। फिर भी हजारों श्रोता उपस्थित होकर प्रवचनो का लाभ लेते हैं और तत्त्वचर्चा मे विद्वानों का काफी अच्छा जमघट हो जाता है।

दोनो आचार्यों की मान्यता के विषय में जनता की जिज्ञासा

तुलनात्मक जिज्ञासा के फलस्वरूप जनता दोनों आचार्यों की सैद्धान्तिक मान्यताओं को जानने के लिये उत्सुक हुई तो ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री तुलसी धर्म के मूल उपादान–अहिंसा की विकृत व्याख्या कर प्रकारान्तर में ऐसीं विचारधारा का प्रचार करने मे तत्पर हैं जिसका समर्थन विश्व का कोई धर्म मत या सप्रदाय नहीं करता और कोई भी सहृदय व्यक्ति किसी प्राणी पर दया करना या दान देना धर्मविरुद्ध नहीं मान सकता है। सभी विचारकों और तत्त्व-मनीषियों ने दया करना और दान देना मानवता का अग माना है। इन मानवताविरोधी धारणाओं को जानकर जनता मे जैन धर्म के बारे मे भ्रम फैलने लगा और अन्यान्य आरोपों से लाछित करने लगी।

जनता की इस मानसिक स्थिति का समाधान करने के लिये आचार्यश्रीजी म.सा ने प्रवचनों में जैन धर्म के आचार विचारमूलक सिद्धान्तो का विशद विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया और प्रसगवश तुलनात्मक दृष्टि से दया दान की विशदता और तेरहपथियों की मान्यताओं का भी सकेत कर देते थे।

इससे जनता को जैन धर्म के सिद्धान्तों की सही जानकारी मिली और समझ लिया कि जैन धर्म के नाम पर जिन मान्यताओं का प्रचार किया जा रहा है उनका जैन धर्म से सामजस्य नहीं है।

वैसे तो आपश्री के दिल्ली पदार्पण होने के समय से ही तेरहपथियों व आचार्यश्री तुलसी के मन में एक प्रकार की घबराहट व्याप्त हो चुकी थी और अपनी मान्यताओं को

छिपाने के लिये नित नई-नई तरकीवे की जाने लगी थीं। लेकिन जनमानस की प्रतिक्रिया से उनको यह आशका हुई कि यहा भी जयपुर की तरह तेरहपथ खतरे मे पड सकता है। मौखिक रूप से प्रचार कार्य प्रारम्भ किया जा चुका था और उससे भी जव जनमानस की प्रतिक्रिया मे परिवर्तन न देखा तो पर्चेवाजी चालू कर दी। पर्चो मे आचार्यश्री गणेशलालजी म सा व अन्यान्य गणमान्य श्रावको आदि पर आक्षेप करने के सिवाय सैद्धान्तिक मान्यताओ के वारे मे कुछ भी नहीं लिखा जाता था। अत उनमे शिष्टजनोचित भाषा का प्रयोग करने का तो सवाल ही नहीं रहता था।

तेरहपन्थ के द्वारा गणेशाचार्य पर अनर्गल प्रचार

इन्हीं दिनो अमरभारत' पत्र मे आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी श्री शुभकरणजी सुराणा चूरू का एक लेख प्रकाशित हुआ। उसमे आचार्यश्री गणेशलालजी म सा पर मनचाहे आरोप लगाते हुए दम्भ-प्रदर्शन के साथ लिखा गया कि यदि किसी वात म मतभेद हो और समझ में न आती हो तो आचार्यश्री तुलसी से मिलकर समाधान प्राप्त कर ल। साथ ही चेतावनी देते हुए लिखा गया कि गदे प्रचार से तो राग-द्वेष वढने और जैन धर्म की अवहेलना होने की सम्भावना है।

तेरहपथियो की पर्चेवाजी का खेल दिल्ली का समग्र जैन समाज शांति से देख रहा था लेकिन श्री सुराणाजी के तथाकथित लेख ने समाज मानस को झकझोर दिया। समाज के अनेक अग्रगण्य सज्जनो ने यह सव स्थिति आपश्री से निवेदन की। अत श्रोताओं के वारवार निवेदन करने पर आपने प्रवचन म लेख का सर्वांग स्पष्टीकरण किया कि जीवरक्षा करना परमधर्म है हा उसमे विवेक परम आवश्यक है। हम साधु भी प्राणिरक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिये शास्त्रो में जो मर्यादाए वाधी हैं उनका उल्लघन न करते हुए निर्दोष साधनो से हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति मे सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड जाये तो ध्यान खोलकर उसको कष्ट से छुड़ाकर वापस ध्यान में आकर बैठ जाये। यह तो हृदय की विशालता है। जिन लागो का हृदय पत्थर का बना हुआ है वही यह कह सकते हैं– 'रक्षा करना पाप है मरने वाला अपने कर्मो को भुगत रहा है अपने पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा हैं तुम बीच में पड़कर बाधा क्यो डालते हो ! यह कथन शास्त्र और अनुभव के विरुद्ध है।

दोनो आचार्यो की चर्चा के लिए समिति गठित

इस स्पष्टीकरण से प्रवचन में उपस्थित विद्वानो विचारको और जनसाधारण को सन्तोष हुआ और उन्होंने तय किया कि जव दोनों सम्प्रदायो के आचार्य तथा अन्यान्य प्रमुख सज्जन

दिल्ली में विद्यमान हैं तो दया-दानसम्बन्धी प्रश्नो के बारे मे चर्चा करके निर्णय कर लिया जाये जिससे सही स्थिति सामने आ जाये और जनसाधारण मे भ्रात धारणाए न फैलें।

उक्त विचारानुसार 11 मई 1950 को प्रात कुछ प्रमुख विचारक जैन बधु श्री रामकृष्णजी डालमिया के बगले पर पहुचे। यहा आचार्यश्री तुलसी द्वारा भाषण दिये जाने का कार्यक्रम बनाया गया था। भाषण मे इने-गिने व्यक्तियो के अतिरिक्त विशेष रूप से आमंत्रित सर्वश्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन व राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री लाला राजकृष्णजी जैन उपस्थित थे। इन सज्जनो के पहुचने पर श्री रामकृष्णजी डालमिया को भी बुला लिया गया।

भाषण-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री तुलसी की अनुमति लेकर आने वालो में से एक सज्जन ने आचार्यश्री तुलसी को सबोधित करके स्पष्ट शब्दों मे घोषित किया कि महाराज आप भी दिल्ली में विद्यमान हैं और आचार्यश्री गणेशलालजी म भी। अत आप दोनों की दया-दान के सम्बन्ध मे धार्मिक और मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट आशय व्यक्त करने के लिये चर्चा-वार्त्ता हो जाये ताकि जनता को सही बात की जानकारी मिल सके।

इसके अतिरिक्त उन्होंने उपस्थित महानुभावो के समक्ष यह भी स्पष्ट कर दिया कि आचार्यश्री तुलसी जीव-रक्षा एव सहायता कार्य मे पाप मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिये तैयार है और कोई तीसरा दयालु व्यक्ति उपदेश देकर या हाथ पकड कर उसे हिंसा करने से रोकता है एव मारे जाने वाले की रक्षा करता है तो इस रक्षारूप पवित्र कार्य का पापयुक्त और हिंसामय कार्य बताते हैं एव रक्षा करने वाले को पाप रूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थिया और रेल दुर्घटना ग्रस्त व्यक्तियो की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने में पाप मानते हैं। साधु के अलावा सब प्राणी असयती हैं अत उनकी रक्षा करना या उनको कुछ भी सहायता पहुचाना पापकार्य है आदि– आचार्यश्री तुलसी की ऐसी प्ररूपणा और मान्यता है।

जबकि आचार्यश्री गणेशलालजी म सा इन कार्यों मे धर्म पुण्य मानते हैं। शुभनिष्ठा या शुभयोग तो प्रत्येक कार्य म होना ही चाहिये तभी वह धर्म पुण्य की कोटि म गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभनिष्ठा या शुभयोगपूर्वक भी उक्त कार्य किये जाये तो भी इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय म केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है और इसके अलावा अन्य सब कुपात्र हैं।

आचार्यश्री तुलसी तो मौन रहे किन्तु श्री जैनेन्द्रजी श्री राजेन्द्रकुमारजी और श्री डालमियाजी ने श्री शुभकरणजी सुराणा के लेख की निन्दा करते हुए पारस्परिक सौजन्यपूर्ण बरताव की अपील की। अनतर चर्चा या सम्मिलित व्याख्यान कराने के बारे मे विचार करने

के लिये दोनो ओर के कुछ सज्जना को श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर सायकाल इकट्ठे होने का तय किया गया।

पूर्व निश्चयानुसार श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर दिल्ली जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सर्वश्री आनन्दराज सुराना मोहनलाल कठोतिया कुन्दनलाल पारख जगन्नाथ नाहर भीखनलाल गिरधरलाल सेठ पूर्णचन्द टेक बद्रीप्रसाद जैन मोतीलाल राका बगड़ी वाला गगाराम जैन मोतीलाल बरड़िया जयचन्दलाल दफ्तरी रतनलाल पारख राजकृष्ण जैन राजेन्द्रकुमार जैन सोहनलाल प्रेमचन्द भीमा तथा जैनेन्द्रकुमार जैन आदि सज्जन एकत्रित हुए। गोष्ठी मे स्थानकवासी जैन बधुओ ने इस बात के लिये तत्परता बताई कि दया-दान सम्बन्धी बातो के लिये दोनो आचार्यो मे चर्चा हो जाये जबकि तेरहपथी सज्जन इस बात पर अडे रहे कि हमे किसी बात की शका नही है। और जिसे शका हो वह हमारे आचार्यश्री के पास आकर पूछ ले। उन्हे काफी समझाया गया लेकिन वे अपने दुराग्रह से टस-से-मस नहीं हुए। अन्त मे श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने सुझाव रखा कि एक मध्यस्थ समिति बनाकर उसके माध्यम से सम्बन्धित बातों का स्पष्टीकरण हो जाये। ऐसा करने से चर्चा और शास्त्रार्थ मे एक-दूसरे को विजित करने की भावना नहीं बनेगी और सैद्धान्तिक तथ्यो का स्पष्टीकरण भी हो जायेगा कि दया-दान के सम्बन्ध मे किस आचार्य की क्या मान्यता है और जनता को समझाने मे सुविधा होगी।

श्री जैनेन्द्रकुमारजी के इस सुझाव को स्थानकवासी जैन बधुओ ने तत्काल स्वीकार कर लिया किन्तु तेरहपथी भाई तो अपने दुराग्रह पर ही अडे रहे कि हमे कुछ शका ही नहीं है और न कुछ पूछना ही है। अत इस प्रकार के आयोजन की आवश्यकता नहीं है। जिसे शका हो हमारे आचार्यश्री से पूछ ले।

इस सरल सीधी-सादी बात के लिये भी तेरहपथी सज्जनो के दुराग्रह को देखकर श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने कुछ रोष प्रकट करते हुए कहा कि मेरे सुझाव में कुछ त्रुटि होगी इसीलिये स्वीकार नहीं किया जा रहा है। अच्छा हो कि इस बात को यहीं पर समाप्त कर दिया जाये और जैसा समझे कर लें। इस दो टूक बात को सुनकर तेरहपथी सज्जनो ने विवश होकर सोचा कि अगर हम अब भी दुराग्रह पर जमे रहे तो स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी मान्यताए कपोलकल्पित एव भ्रमोत्पादक हैं और जैन धर्म के सिद्धान्तो के प्रतिकूल हैं। अत अन्य कोई उपाय न देखकर उन्हें समिति-निर्माण के सुझाव को मानना ही पड़ा।

जैसे तैसे समिति के निर्माण की बात को स्वीकार भी कर लिया तो उसमे अपने एक सदस्य को शामिल करने की बात पर पुन तेरहपथी भाई अड गये। उपस्थित सज्जनों का स्पष्ट मत था कि तेरहपथी सदस्य के बिना समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा।

सदस्य होने से समिति द्वारा किया गया कार्य तेरहपथियो के लिये भी बधनकारी होगा तथा इससे सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायेगा। अत में जब पुन बात टूटने को ही थी कि तेरहपथी भाई अपना एक सदस्य समिति में रखने के लिये राजी हुए और चर्चा की व्यवस्था करने के लिये निम्नलिखित सदस्यों की समिति गठित की गई- 1 श्री जैनेन्द्रकुमार जी 2 श्री राजेन्द्रकुमारजी 3 श्री राजकृष्णजी जैन 4 लाला कुन्दनमलजी पारख (स्थानकवासी) 5 श्री मोहनलालजी कठौतिया (तेरहपथी)। समिति के कार्य-सचालन के लिये श्री जैनेन्द्रकुमारजी सयोजक नियुक्त किये गये।

चर्चा हुई तो सही प्रतिपक्ष सरलता से पेश नहीं आया

समिति का कार्य निश्चित किया गया कि चर्चा दया और दान से सम्बन्धित प्रश्नों तक सीमित रहेगी और एक-दूसरे के प्रश्न दोनों आचार्यों को पहुचा दिये जाये। और उनसे जो उत्तर प्राप्त हों प्रश्नों सहित प्रकाशित कर दिये जाये। जिससे जनसाधारण निर्णय कर सके कि सम्बन्धित प्रश्न के बारे मे किस आचार्य का क्या मतव्य है। समिति के पास दोनों आचार्यों की ओर से जो प्रश्न आयगे समिति के प्रश्न माने जायेंगे और उनका उत्तर दोनों आचार्यों को देना होगा।

उक्त निश्चयानुसार स्थानकवासियों की ओर से 9 और तेरहपथियों की ओर से 6 प्रश्न समिति को प्राप्त हुए जिन्हें दोनो आचार्यों के पास उत्तर देने के लिये भेजा गया। दोनों ओर से प्राप्त उत्तरो पर समिति ने अपनी ओर से 8 प्रतिप्रश्न बनाकर पुन दोनो आचार्यों के पास उत्तर के लिये भेजे। उत्तर प्राप्त होने के बाद समिति ने एक पूरक प्रश्न और किया। इन सब प्रश्नोत्तरों का सही दिग्दर्शन दिल्ली चर्चा' नामक पुस्तक मे किया गया है।

तत्त्वचर्चा मे भाव भाषा या शाब्दिक छलक-पट नहीं होना चाहिये। लेकिन इन प्रश्नोत्तरों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि तेरहपथी सप्रदाय ने कभी भी सरलता के साथ अपनी मान्यता स्पष्ट नहीं की। यद्यपि शब्दाडबर के माध्यम से अपने उत्तरों की अपूर्णता को छिपाने का प्रयत्न करने से चर्चा से निर्धारित लक्ष्य-पूर्ति नहीं की जा सकी, तो भी तटस्थ जिज्ञासुजनों को यथार्थता समझ में आ गई।

इस प्रकार की चर्चाए उनके लिये ही लाभदायक होती हैं जो दुराग्रह और कदाग्रह से परे रहकर सत्य तथ्यो को समझना चाहते हैं सत्य को सर्वोपरि मानते हैं सत्य की आराधना को परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं और सत्य की वरद छाया के आकाक्षी हैं।

प्रस्तुत दिल्ली प्रवास के दौरान दिल्ली के प्रमुख समाजसेवक श्री आनन्दराजजी सुराना एव श्री रतनलालजी पारख ने 17.5.50 को श्री महावीर जैन लायब्रेरी हॉल में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया। पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रेरक प्रवचन दिया तथा प्रेस प्रतिनिधियों को सत्य

और अहिसा का सन्देश सुनाया। दिल्ली की प्रवुद्ध जनता के मध्य आपके मौलिक विचार काफी सराहे गय।

मन्त्र भारी पड़ेगा

एक दिन आचार्यवर्य के पास एक व्यक्ति आकर चरणों मे गिर गया। गिड़गिड़ाने लगा– अन्नदाता ! दुखी हूँ, अर्थाभाव के कारण मुसीवत मे हूँ। एम ए पास हूँ, पत्नी भी एम ए पास है। नौकरी नहीं मिल रही है कमाई का कोई जरिया नजर नहीं आ रहा है। चार वाल-वच्चे हैं। एक और होने वाला है। आप सेठो के महाराज हैं वडे सन्त हैं कुछ व्यवस्था हो जाए तो कम से कम गर्भ से आने वाले के लिए कुछ सामान जुट जाय ! आगत व्यक्ति एक ही श्वास म सव-कुछ कह गया।

आचार्यवर ने कहा– भाई मैं साधु हूँ, तेरी समस्या को मिटा सकू या नहीं परन्तु सुरसा की तरह वढती हुए समस्या को रोकने का उपाय जरूर वता सकता हूँ। पर ध्यान रहे मेरा मन्त्र तुम्हे भारी पड़ेगा।

दु खो से सत्रस्त आगत ने कहा– महाराज ! कृपा कर वता दीजिए।

आचार्यप्रवर– चार वच्चे तुम्हारे पहले हैं और पॉचवॉ आने वाला है। अव नियम ले लो कि व्रह्मचर्य व्रत का पालन करोगे। दोनो पति-पत्नी भाई वहन की तरह रहोगे।

पूज्यप्रवर के मुखारविन्दु से यह सुनकर वह गहरी निश्वास छोडत हुए वोल पड़ा– नहीं महाराज ! यही तो नहीं होगा।

उपस्थित जनों के चेहरे पर मुस्कान विखर गई।

लोकैषणा के प्रति अनासक्त

सासारिक वैभव मान समान को निस्सार समझकर तज देने वाले अकिंचन अनगार भिक्षु की दृष्टि में राजा-रक समान हैं। आध्यात्मिक वैभव से विभूपित भौतिक वैभव की विविधता और विचित्रता से विलग ही रहते हैं। उनके लिये राजा होने से शासन का उच्चाधिकारी होने से अथवा धनसम्पन्न होने से कोई व्यक्ति स्पृहणीय नहीं होता है और न रक होने के कारण कोई उपेक्षणीय हो जाता है।

राष्ट्रपति भवन मे पधारने की प्रार्थना

दिल्ली श्रीसघ के अग्रणी श्रावको ने एक दिन सेवा मे निवदन किया कि कुछ दिन पहले महामहिम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी से मिलने का अवसर मिला था तो उस समय

साधु-सन्तो के उल्लेख के प्रसग मे आपश्री के दिल्ली विराजने की जानकारी उन्हें दी। उन्होने आपश्री से मिलने की भावना दर्शाई थी। उन्ह आपश्री के उपदेश-श्रवण की आकाक्षा है अत आपश्री राष्ट्रपति भवन पधारने की कृपा करावें।

दिल्ली श्रीसघ के उन अग्रणी श्रावकों की बात सुनकर आपश्री ने फरमाया— मुझे वहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। राष्ट्रपति महोदय को शासन-सम्बन्धी बहुत से कार्य रहते हैं अत उनके कार्यक्रम में व्यवधान डालना उचित नहीं समझता हूँ। राष्ट्रपतिजी को जब सुविधा होगी और मिलने की इच्छा होगी तो कहीं पर भी मिल सकेंगे। उनको परेशानी में डालना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है।

आपश्री के लिये ऐसे प्रसग कई बार आ चुके थे जब विभिन्न स्थानों के राजा जागीरदारो की ओर से अपने राजमहलो मे आमन्त्रित कर वार्त्तालाप या प्रवचन फरमाने का निवेदन किया गया था। लेकिन न तो आपको ऐसी लौकिक एषणाओं की आकाक्षा थी और न राजमहलो मे व्याख्यान देने की भावना रखते थे। आपश्री के विराजने के स्थान पर यदि कोई आ जाये तो प्रमोद व्यक्त करते हुए तात्त्विक चर्चा वार्त्तालाप अवश्य कर लेते थे।

भीडभाड से दूर रहना आपको सदैव रुचिकर रहा है। नगरो की अपेक्षा भारतीय सभ्यता के प्रतीक ग्रामो के एकान्त शात वातावरण मे विचरण करना साधना की दृष्टि से योग्य मानते थे। तब राजमहलों में जाना और राजपुरुषों से मिलना तो उससे भी दूर की बात थी।

इस सम्बन्धी अनेक प्रसग उल्लेखनीय हैं। लेकिन एक-दो प्रसगो का उल्लेख यहा कर रहे हैं।

देवगढ़ रावजी आपके प्रवचन से प्रभावित

एक बार आपका देवगढ (मेवाड) में पदार्पण हुआ। वहा के रावसाहब ने राजभवन में व्याख्यान देने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में आपने फरमाया— मेरे लिये प्रत्येक स्थान समान है। किसी स्थान-विशेष को प्रमुखता देना मुझे रुचिकर नहीं है। धर्मशाला और राजभवन समाज और मैदान मेरे लिये एक समान हैं। आजकल यहा व्याख्यान हो रहे हैं यह स्थान भी अनुपयुक्त नहीं है और जब यह स्थान योग्य है तो फिर राजभवन को ही मुख्यता देने से क्या लाभ? रावसाहब ने आपके कथन को शिरोधार्य कर व्याख्यान स्थान पर आकर प्रवचन श्रवण किया।

उदयपुर-महाराणा प्रवचन श्रवण कर प्रसन्न हुए

स 2009 का चातुर्मास उदयपुर था। वहा के महाराणा साहब ने आपश्री के प्रवचन सुनने की आकाक्षा व्यक्त करते हुए राजमहल में व्याख्यान देने का आग्रह किया। परन्तु

आपश्री ने अपनी मनोभावना का सकेत करते हुए फरमाया कि मेरी यह कभी भी आकाक्षा नहीं रही है कि राजमहलों में व्याख्यान देने को मुख्य मानू। आजकल जहा व्याख्यान होते हैं वह सार्वजनिक स्थान है यहा किसी के आने-जाने पर प्रतिबंध नहीं है-और यहा आकर कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधानुसार व्याख्यान-श्रवण कर सकता है। यह स्थान महाराणाजी के लिये कोई बाधाकारी नहीं है। महाराणा साहब प्रवचन सुनने के लिये उत्सुक थे, अत, जब आपश्री विहार कर नगर के बाहर विराज रहे थे वहा आकर उन्होने व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया।

'प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम्' कि उन्हे न तो समान करने वाले के प्रति राग होता है। और न अपमान करने वाले के लिये द्वेष। उनका जीवन-प्रवाह तो समतल पर बहते जलप्रवाह की तरह सुख शाति को पल्लवित पुष्पित और समृद्ध करता रहता है।

जमनापार के क्षेत्रो मे मौलिक धर्मप्रचार

कल्प मर्यादानुसार आपश्री का दिल्ली मे विराजना हुआ। इस समय में अनके विद्वानों नगर के सम्रान्त नागरिको राजनेताओं आदि ने सेवा मे उपस्थित होकर जैन सिद्धान्ता के बारे मे चर्चा-वार्त्ता कर जानकारी प्राप्त की।

स 2007 का चातुर्मास अलवर मे व्यतीत करने की स्वीकृति दी जा चुकी थी और चातुर्मास प्रारम्भ होने में अभी कुछ समय था। अत दिल्ली के उपनगरों में कुछ दिन विराजने के पश्चात् अलवर की ओर विहार करने का विचार चल रहा था कि जमनापार के क्षेत्रो के अनेक भाई हिलवाडी ग्राम की हकीकत लेकर सेवा मे उपस्थित हुए।

उन्होने बताया कि हिलवाडी में स्थानकवासी जैन समाज के करीब 20-25 घर हैं। उनके सामने दया-दानविरोधी मान्यताए इस प्रकार के शाब्दिक छल द्वारा रखी जा रही हैं जिससे ये इनकी वास्तविकताओं को नहीं समझ पा रहे हैं। अत आपश्री का इन क्षेत्रों में पदार्पण होना बहुत जरूरी है।

जमनापार के क्षेत्रों के बधुओं ने सीधे-सादे शब्दो में अपने इधर की स्थिति का सकेत किया था और आपश्री भी परिस्थिति को देखते हुए उधर के क्षेत्रो में विहार करना आवश्यक मानते थे। अत शारीरिक स्थिति निर्बल होने पर भी जनकल्याण के लिये आपश्री ने दिल्ली से जमनापर के क्षेत्रो की ओर विहार कर दिया। क्रम क्रम से आस-पास के क्षेत्रों को स्पर्श करने के बाद आपश्री का पदार्पण हिलवाडी ग्राम में हुआ।

आपश्री ने परिस्थिति को समझकर प्रतिदिन अपने प्रवचनो में जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे जैन धर्म और दया दान के सम्बन्ध में फैलाई गई भ्रात धारणाओ का निराकरण हुआ और विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा स ग्रस्त भाइयो ने धर्म के सही स्वरूप को समझा।

इस प्रकार धार्मिक श्रद्धा का स्थिरीकरण तो किया ही अनेक परिवार जो दिग्भ्रमित हो चुके थे पुन सत्पथ पर आये तथा सुश्रद्धा ग्रहण की। इस प्रकार महान उपकार का कार्य करने के प्रश्चात् आपश्री अन्यान्य क्षेत्रो की ओर विहार न कर हिलवाड़ी से अलवर की ओर विहार करने का विचार कर रहे थे कि काधला वडौत के धर्मप्रेमी भाइया ने सानुरोध विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री चाहे हमारे यहा पर एक-एक दिन ही विराजें लेकिन अपने चरणकमलो से हमारे क्षेत्रो को अवश्य ही पवित्र करें। आपश्री के पधारने से हमारे क्षेत्रों का विशेष उपकार होगा।

आपश्री ने वहा के भाइयो को काफी समझाया और चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय आदि के बारे में सकेत भी किया किन्तु भाइया ने निवेदन किया कि सिर्फ एकाध दिन का फर्क पडेगा और निकट मे ही हमारे गावो के होते हुए भी आपश्री का पदार्पण न हो तो हमें दु ख होगा। अत आपश्री अपनी स्वीकृति फरमाकर कृतार्थ करे।

सन्त स्वभावत दयार्द्र होते हैं। आपश्री ने हिलवाड़ी से बड़ौत होते हुए कांधला की ओर विहार कर दिया। जब आपश्री ने काधला की सीमा मे प्रवेश किया वहां के निवासियों की प्रफुल्लता का पार नहीं था। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था मानो प्रकृति के कण कण मे एक नवीन चेतना का सचार हो गया है और उसका उल्लास जन-मन मे नहीं समा रहा हो।

कान्धला निवासियो ने अपनी खुशी को व्यक्त करन के लिये सीमा से ही लड्डू बाँटने चालू कर दिये। पूरे मार्ग मे जो भी आया उसे लड्डू दिये गये । मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी लडडुओ के स्वाद से वचित नहीं रहे।

जैसे ही आपश्री ने सतमडल के साथ नगर के प्रवेशद्वार में पदार्पण किया कि वहा के उत्साही धर्मप्रेमी सज्जनो ने बडे ही उत्साह के साथ अगवानी की और जुलूस के साथ नगर के राजमार्गो से होते हुए धर्मस्थान में पदार्पण कराया तथा राजमार्गों के दोनों ओर खड़े नागरिकों ने आपश्री के दर्शन कर अपने-आप को धन्य माना।

आपश्री दो चार दिन काधला विराजे और प्रवचनों मे विशेष रूप से दया दान सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया। सार्वजनिक प्रवचन भी हुए। अनेक विद्वानो और प्रमुख प्रमुख व्यक्तियों ने जैन धर्म के सिद्धान्तो के बारे में अपनी अपनी शकाओं का समाधान प्राप्त किया और आपकी विद्वत्ता शैली आदि की प्रशसा करने में अपना गौरव माना। कांधला के प्रमुख श्रावक श्री पलटूमलजी थे जो शिथिलाचारियों की खुले दिल से आलोचना करते थे। शिथिलाचार को देखकर उन्हें भारी वेदना होती थी। पूज्य आचार्यश्री के उच्चाचार एव उच्च विचारो से वे अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि इस प्रकार के महापुरुष ही भगवान

सस्कृति को अक्षुण्ण रख सकते हैं। काधला से विहार कर बडौत पधारे और वहा भी दो-चार दिन विराजकर धर्मप्रेमी जनता को प्रतिबोध देते हुए आपश्री ने चातुर्मास हेतु अलवर की ओर विहार कर दिया।

भयकर रोग

बड़ौतवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और कुछ-एक सज्जन काफी दूर तक साथ-साथ चले। लेकिन ग्रीष्म-ऋतु की प्रचण्डता और मार्ग मे अनेक गावो के होते हुए भी साध्वोचित आहारादि की सयोगस्थिति न बन सकने से टटीरीमडी के निकट मूत्रकृच्छ रोग पैदा हो गया। जिससे एक डग चलना भी मुश्किल हो गया और जैसे-तैसे करके टटीरीमडी पहुचे। सहसा और सर्वथा पेशाब बन्द हो जाना शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बड़ा खतरनाक होता है। मार्मिक पीड़ा शारीरिक शिथिलता विकलता आदि इस रोग के परिणाम हैं।

टटीरीमडी मे जैनो के एक-दो घर थे। गाव के एक वैद्य ने कुछ उपचार भी किया लेकिन वेदना बढती जा रही थी। जब इस विषमस्थिति की जानकारी अन्य बधुओं को मिली तो उन्होने दिल्ली श्रावक सघ को खबर दी और दो कोस की दूरी पर स्थित सरकारी अस्पताल से डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने परीक्षा कर नली से पेशाब कराई जिससे वेदना कुछ कम हो गई।

आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलते ही दिल्ली के भाई विशेषज्ञों को लेकर टटीरीमडी जा पहुचे तथा दूसरे क्षेत्रो के श्रीसघो को भी इस विषमस्थिति की सूचना मिलने पर रतलाम ब्यावर, बीकानेर अलवर आदि से भी सैकड़ों भाई वहा पहुच गये।

पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति काफी गिर गई थी। कमजोरी इतनी बढ गई कि चलना-फिरना बन्द हो गया। विशेषज्ञो ने निदान करके बताया कि पेशाब की नली में गठान हो जाने से यह स्थिति बनी है और उपचार के लिये शीघ्र ही मोटर द्वारा दिल्ली ले चलना चाहिए। जब उन्हें बताया गया कि जैन साधु पैदल विहार करते हैं और किसी भी स्थिति मे मोटर आदि वाहन का उपयोग करना उनकी मर्यादा नहीं है तब डाक्टरों ने कहा कि इसके लिये आप चाहे जो व्यवस्था करें लेकिन स्थिति को देखते हुए पैदल चलना खतरनाक है।

करुणामूर्ति का दिल्ली-पदार्पण

साधु पराश्रयी नहीं होते हैं। अस्वस्थ होने पर या तो वे अपनी परिचर्या स्वय करते हैं या समान समाचारी वाले सतो से सहयोग ले सकते हैं। कदाचित् साधु सक्षम न हों तो श्रावक

दया पौषध सामायिक, संवर लेकर उठा सकते हैं। यद्यपि उसका भी प्रायश्चित्त लेना होता है। परन्तु आचार्यश्री को श्रावकों ने नहीं उठाया वरन् परिस्थिति की विकटता देखकर संतों ने ही आपको अपने कंधो पर उठा लिया। उस समय सबके मन में एक ही बात घूम रही थी कि किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुंच जायें।

ग्रीष्मऋतु तो थी ही और आचार्यश्रीजी की इस शारीरिक वेदना आदि से संत भी स्वस्थ नहीं थे। फिर भी उनके मनों में उत्साह था कि दिल्ली पहुंच गये तो आचार्यश्रीजी म.सा. निरोग हो जायेंगे।

संत आपश्री को उठाकर कुछ दूर चले अवश्य किन्तु कंधों ने जवाब देना शुरू कर दिया और डोली के डंडों से परेशान होकर बार-बार कंधो की अदला-बदली करने लगे। अभी एक-दो फर्लांग ही बढे होंगे कि आपश्री ने स्थिति को देखकर संतो को रुकने का संकेत किया। संत रुक गये। डोली नीचे रख दी गई और आपश्री नीचे उतरे। संतो ने समझा कि लघुशंका मिटानी होगी।

संत स्वयं कष्ट सहन कर लेते हैं लेकिन अपने निमित्त दूसरे को कष्ट देना सहन नहीं होता है। परदुःखकातर और करुणामूर्ति सन्तजन खिन्न ही तब होते हैं जब दूसरों को म्लान देखते हैं। वे तो ममता त्यागकर आत्मा में रमण करते हैं और आत्मरमणता से उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहता है।

कुछ ही क्षणों में सन्तों ने देखा श्रावकों ने निरखा और चिकित्सकों ने पलक उठाई कि पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. मंथरगति से पैदल ही चल पड़े हैं। इस संकटापन्न स्थिति में भी अपूर्व साहस एवं आत्मबल के दर्शन कर उपस्थिति के मस्तक श्रद्धावनत हो गये। कुछ साहस संकलित कर चिकित्सकों ने रोका सन्तों ने अनुनय की श्रावकों ने आग्रह किया मगर यह सब पूज्य आचार्यश्रीजी के बढ़ते चरणों में व्यवधान नहीं डाल सके। इस विकट परिस्थिति में भी आपश्री का एक ही उत्तर था– मैं अपने लिये दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता।

मूत्रकृच्छ रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नहीं कि जीवनरज्जु कब छिन्न भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ में रहने वालों के मन क्षण-क्षण में सिहर उठते थे। मन की टीस अन्दर ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्यश्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणों में गति थी ईर्यासमितिपूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने में श्रम का लेशमात्र भी आभास नहीं हो रहा था और शनैः शनैः मंथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस किसी ने भी सुनी और चिकित्सकों को अवगत कराई

गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हे विश्वास ही नहीं होता था कि इस सकटापन्न स्थिति मे इतनी दूर पैदल कैसे आये ? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को सकट मे डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सको द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी का विचार था– यदि आपरेशन कराने की बजाय अन्य उपचारो से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सको की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियो और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शात हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सकों ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय में गाठ पड गई है और वह बिना आपरेशन किये दूर नहीं की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे मे जितनी देरी होगी उतना ही खतरा है।

यूनानी इलाज से राहत

चिकित्सको की राय के बारे में विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्दजी बरनालावाले आचार्यश्रीजी म सा के दर्शनार्थ आये। उन्होने रोग के बारे मे जानकारी करने के बाद सघ के प्रमुख सज्जनो से कहा कि मुझे भी आचार्यश्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खा को आजमा सकू। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय म ऐसी गाठ प्राय हो जाती है लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूँ और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा ले और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्यश्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषो से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो तीन दिन बाद रोग म कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति चिकित्सको की सलाह और दिल्ली श्रीसघ की विनती को ध्यान में रखते हुए स 2007 का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान डॉ फैलिक्स वैली आचार्यश्री के चरणो में

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वत्मडल एव जनसाधारण के लिय प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वत्ता से परिचित ही थे अत प्रात मध्याह और सायकाल प्रवचन तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक से-अधिक श्रोताओं एव जिज्ञासुओं की उपस्थिति होती थी।

दया पौषध सामायिक-सवर लेकर उठा सकते हैं। यद्यपि उसका भी प्रायश्चित लेना होता है। परन्तु आचार्यश्री को श्रावको ने नहीं उठाया वरन् परिस्थिति की विकटता देखकर सतों ने ही आपको अपने कधो पर उठा लिया। उस समय सबके मन मे एक ही बात घूम रही थी कि किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुच जाये।

ग्रीष्मऋतु तो थी ही और आचार्यश्रीजी की इस शारीरिक वेदना आदि से सत भी स्वस्थ नहीं थे। फिर भी उनके मनो में उत्साह था कि दिल्ली पहुच गये तो आचार्यश्रीजी म सा निरोग हो जायेगे।

सत आपश्री को उठाकर कुछ दूर चले अवश्य किन्तु कधों ने जवाब देना शुरू कर दिया और डोली के डडों से परेशान होकर बार-बार कधों की अदला-बदली करने लगे। अभी एक-दो फर्लांग ही बढे होगे कि आपश्री ने स्थिति को देखकर सतो को रुकने का सकेत किया। सत रुक गये। डोली नीचे रख दी गई और आपश्री नीचे उतरे। सतो ने समझा कि लघुशका मिटानी होगी।

सत स्वय कष्ट सहन कर लेते हैं लेकिन अपने निमित्त दूसरे को कष्ट देना सहन नहीं होता है। परदु खकातर और करुणामूर्ति सन्तजन खिन्न ही तब होते हैं जब दूसरों को कलाना दखते हैं। वे तो ममता त्यागकर आत्मा में रमण करते हैं और आत्मरमणता मे उन्हे अपने शरीर का भान नहीं रहता है।

कुछ ही क्षणो मे सन्तो ने देखा श्रावको ने निरखा और चिकित्सको ने पलक उठाई कि पूज्य आचार्यश्रीजी म सा मथरगति से पैदल ही चल पड़े हैं। इस सकटापन्न स्थिति में भी अपूर्व साहस एव आत्मबल के दर्शन कर उपस्थिति के मस्तक श्रद्धावनत हो गये। कुछ साहस सकलित कर चिकित्सको ने रोका सन्तों ने अनुनय की श्रावको ने आग्रह किया मगर यह सब पूज्य आचार्यश्रीजी के बढते चरणो मे व्यवधान नहीं डाल सके। इस विकट परिस्थिति मे भी आपश्री का एक ही उत्तर था— मैं अपने लिये दूसरो को कष्ट नहीं देना चाहता।

मूत्रकृच्छ रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नहीं कि जीवनरज्जु कब छिन्न भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ में रहने वालों के मन क्षण-क्षण मे सिहर उठते थे। मन की पीड़ा अन्दर-ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्यश्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणों म गति थी ईर्यासमितिपूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने मे श्रम या लेशमात्र भी आभास नहीं हो रहा था और शनै -शनै मथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस-किसी ने भी सुनी और चिकित्सकों को अवगत हुआ

गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हे विश्वास ही नहीं होता था कि इस सकटापन्न स्थिति मे इतनी दूर पैदल कैसे आये ? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को सकट मे डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सको द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी का विचार था– यदि आपरेशन कराने की बजाय अन्य उपचारो से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सको की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियो और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शात हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सको ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय मे गाठ पड गई है और वह बिना आपरेशन किये दूर नहीं की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे मे जितनी देरी होगी उतना ही खतरा है।

यूनानी इलाज से राहत

चिकित्सको की राय के बारे में विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्दजी बरनालावाले आचार्यश्रीजी म सा के दर्शनार्थ आये। उन्होने रोग के बारे मे जानकारी करने के बाद सघ के प्रमुख सज्जनो से कहा कि मुझे भी आचार्यश्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खा को आजमा सकू। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय मे ऐसी गाठ प्राय हो जाती है लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूँ और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा ले और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्यश्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषो से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो तीन दिन बाद रोग मे कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति चिकित्सको की सलाह और दिल्ली श्रीसघ की विनती को ध्यान में रखते हुए स 2007 का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान डॉ फेलिक्स वैली आचार्यश्री के चरणो मे

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वत्मडल एव जनसाधारण के लिये प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वत्ता से परिचित ही थे अत प्रात मध्याह्न और सायकाल प्रवचन तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक से-अधिक श्रोताओ एव जिज्ञासुओ की उपस्थिति होती थी।

हकीम श्री प्रेमचन्दजी की दवा से रोग मे काफी सुधार हो गया था लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि आप पूर्ण स्वस्थ माने जाये। फिर भी प्रतिदिन प्रवचन तत्वचर्चा आदि का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहा। स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त अन्यान्य विदेशी विद्वान भी जैन दर्शन के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये आपके पास आते रहते थे। आपश्री उनकी जिज्ञासाओं का सयुक्तिक समाधान करते थे। एक दिन हगरी निवासी बौद्ध धर्म के प्रमुख विद्वान डा फैलिक्स वैली जैन सिद्धान्तो की विशेष जानकारी के लिये प्रवचन के समय पधारे और स्याद्वाद सिद्धान्त के बारे में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। अतएव आचार्यश्रीजी ने बहुत ही सरल और सयुक्तिक शैली मे 'स्याद्वाद' के बारे में प्रवचन फरमाया। प्रवचन का साराश यह है-

स्याद्वाद सिद्धान्त पर विस्तृत मार्मिक विवेचन

'जैन धर्म आत्म विजेताओं का महान् धर्म है। जिन्होने राग द्वेष आदि अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त करके समय एव साधना द्वारा निर्मल ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा को उत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया है उन्हे हमारे यहा 'जिन' (विजेता) कहा गया है तथा इन विजेताओ द्वारा प्रेरित दर्शन का नामाकन जैन दर्शन के नाम से हुआ। अत यह दर्शन किसी व्यक्ति-विशेष वर्ग विशेष या शास्त्र-विशेष की उपज नहीं बल्कि इसका विकास उन आत्माओं द्वारा हुआ है जिन्होंने सारे सासारिक (जातीय देशीय सामाजिक वर्णीय आदि) भेदभावों व यहा तक कि स्व पर को भी विसर्जित कर अपने जीवन को सत्य के लिए होम दिया। यही कारण है कि इसका यह स्वरूप इसकी महान् आध्यात्मिकता व व्यापक विश्वबन्धुत्व का प्रतीक है।

मैं यहा पर जैन दर्शन की मौलिक देन स्याद्वाद या अनेकान्तवाद पर कुछ विशेष रोशनी डालना चाहता हूँ। जिस प्रकार सत्य के साक्षात्कार मे हमारी अहिंसा स्वार्थ-सघर्षों को सुलझाती हुई आगे बढती है उसी प्रकार यह स्याद्वाद जगत् के वैचारिक सघर्षों की अनोखी सुलझन प्रस्तुत करता है। आचार में अहिंसा और विचार मे स्याद्वाद– यह जैन दर्शन की सर्वोपरि मौलिकता रही है। स्याद्वाद को दूसरे शब्दों में वाणी व विचार की अहिंसा के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें इसी सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अत उसके सारे पक्षो व दृष्टिकोणो को विरोध की नहीं बल्कि समन्वय की दृष्टि से समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धान्त से गहन चिन्तन के आधार पर ही सभव हो सकता है। विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया

है कि एक ही वस्तु की कई बाजुएँ हो सकती हैं और उनमे भी ऐसी बाजुएँ अधिक होती हैं जिनका स्वरूप अधिकतर प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष ही रहता है। अत इन सारे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष पक्षा को समझने के बाद ही किसी भी वस्तु को सत्य स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।

'किसी वस्तु-विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर उसे सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। विभिन्न पक्षो या दृष्टिकोणों के प्रकाश में जब तक एक वस्तु का स्पष्ट विश्लेषण न कर लिया जाये तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि हमने उस वस्तु का सर्वांग स्वरूप समझ लिया है। अत किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणो के आधार पर देखने समझने व वर्णित करने वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद या अनेकान्तवाद या अपेक्षावाद (Science of Versatility or Relativity) कहा गया है।

'यह स्याद्वादी दृष्टिकोण किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को हृदयगम करने के लिए परमावश्यक साधन है। इसके जरिये सारे दृढवादी या रूढिवादी विचारो की समाप्ति हो जाती है तथा एक उदार दृष्टिकोण का जन्म होता है जो सभी विचारो को पचा कर सत्य का दिव्य प्रकाश शोधने मे सहायक बनता है।

'एक ही वस्तु के स्वरूप पर विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियो से सोचना शुरू करते हैं। यहा तक तो विचारो का क्रम ठीक रूप से चलता है। किन्तु उससे आगे हाता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियो से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोपित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकान्तिक दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार जो सत्य ज्ञान की ओर बढ़ा सकते थे पारस्परिक समन्वय के अभाव मे विद्वेषपूर्ण सघर्ष के जटिल कारणों के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हे बताना चाहता है कि सत्य के टुकडो को पकड़कर उन्हें ही आपस में टकराओ नहीं बल्कि उन्हें तरकीब से जोड़कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़े। अगर विचारो को जोडकर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकागी सत्य के साथ ही हठ को बाध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकागी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। अत यह आवश्यक है कि अपने दृष्टिबिन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टिबिन्दुओ पर उदारतापूर्वक मनन किया जाये तथा उनमें रहे हुए सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टियों से देखने की कोशिश की जाय।

'सर्वसाधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'एक ही व्यक्ति अपने अलग-अलग रिश्तो के कारण पिता पुत्र काका भतीजा मामा, भानजा आदि हो सकता है। वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो इसी तरह अपने पिता की दृष्टि से पुत्र भी। ऐसे ही अन्य सम्बन्धो के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारो ओर देखते हैं। इन रिश्ता की तरह ही एक व्यक्ति म विभिन्न गुणो का विकास भी होता है। अत यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप मे लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्-असत् नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष क्रियाशील-अक्रियाशील नित्य-अनित्य गुणा वाली हो सकती है। जैसे एक ही व्यक्ति मे पुत्रत्व व पितृत्व-दो विरोधी गुणो का सद्भाव समव है क्योंकि उन गुणों को हम विभिन्न दृष्टिया से देख रहे हैं उसी प्रकार एक ही वस्तु विभिन्न अपेक्षाओ से नित्य भी हो सकती है तथा अनित्य भी। जब स्थूल सासारिक व्यवस्था भी सापेक्ष दृष्टि पर टिकी हुई है तो वस्तु के सूक्ष्म स्वरूप को हठ म जकड़कर ऐकान्तिक बताना कभी सत्य नहीं हो सकता। यह ठीक वैसा ही होगा कि एक ही व्यक्ति को अगर पुत्र माना जाता है तो वह पिता कहला नहीं सकता और इसकी असत्यता प्रत्यक्षत सिद्ध है। चाहे तो यह सासारिक व्यवस्था ले लीजिए या सिद्धान्तों की स्वरूप-विवेचना सब सापेक्ष दृष्टि पर अवलम्बित हैं। अगर इस दृष्टि को न माना जायेगा व सम्बन्धित सारे पक्षों के आधार पर वस्तु के स्वरूप को न समझा जायेगा तो एक क्षण मे ही जागतिक व्यवस्था मिट-सी जायेगी। आश्चर्य यही है कि स्थूल रूप से जिस सापेक्ष दृष्टि को अपने चारो ओर सासारिक व्यवहार मे देखा जाता है उसी सापेक्ष दृष्टि को वैचारिक सूक्ष्मता के क्षेत्र में भुला दिया जाता है और फलस्वरूप व्यर्थ के विवाद उत्पन्न किये जाते हैं।

'यहा यह शका की जा सकती है कि एक ही वस्तु में दो विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं ? शकराचार्य ने यह आपत्ति उठाई थी कि एक ही पदार्थ एक साथ नित्य और अनित्य नहीं हो सकता जैसे कि शीत और ऊष्ण गुण एक साथ नहीं पाए जाते । किन्तु शका ठीक नहीं है। विरोध की शका तो तब उठाई जा सकती है जबकि एक ही दृष्टिकोण अपेक्षा से वस्तु को नित्य भी माना जाय और अनित्य भी। जिस दृष्टिकोण से वस्तु को नित्य माना जाये उसी दृष्टिकोण से यदि उसे अनित्य भी माना जाये तब तो अवश्य ही विरोध होता है परन्तु भिन्न भिन्न दृष्टियों की आज्ञा से भिन्न-भिन्न गुण मानने में कोई विरोध नहीं आता जैसे एक व्यक्ति उसके पुत्र की अपेक्षा से पिता माना जाता है व पिता की अपेक्षा से पुत्र तब पितृत्व व पुत्रत्व के दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में अपेक्षाभेद से रह सकते हैं उसमें कोई विरोध नहीं होता। विरोध तो तब हो जब हम उस जिसका पिता माना है उसी का पुत्र भी माने। इसी तरह भिन्न भिन्न अपेक्षा से भिन्न भिन्न धर्म मानने मे कोई विरोध नहीं होता।

'जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होने वाला व नष्ट होने वाला और फिर भी स्थिर रहने वाला बताया गया है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्' – यह पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या है। आश्चर्य मालूम होता है कि नष्ट होने वाली वस्तु भला स्थिर कैसे रह सकती है किन्तु स्याद्वाद ही इसको सुलझा देता है। ये तीनों पर्याए सापेक्ष दृष्टि से कही गई हैं। एक-दूसरे के विना एक-दूसरे की स्थिति वनी नहीं रह सकती है। उदाहरणस्वरूप समझ लीजिय कि एक सोने का कडा है और उसे तुडा कर जजीर वना ली गई तो वह सोना कडे की अपेक्षा से नष्ट हो गया एव जजीर की अपेक्षा से उत्पन्न हो गया किन्तु स्वर्णत्व की अपेक्षा से वह पहले भी था और अव भी है वह उसकी स्थिर स्थिति हुई। पदार्थ की पर्याय वदलती है। उसमें पूर्व-पर्याय का विनाश व उत्तर पर्याय की उत्पत्ति होती रहने पर भी पदार्थ का द्रव्यस्वरूप उसमे कायम रहता है। इस तरह पर्यायार्थिक नय (दशा परिवर्तन) की अपेक्षा से पदार्थ अनित्य है और द्रव्यार्थिक नय (स्थिर स्थिति) की अपेक्षा से नित्य भी है। यही स्याद्वाद का गौरवपूर्ण एव मार्मिक स्वरूप है।

'स्याद्वाद के सिद्धान्त को जैन दर्शन का हृदय कहा जाता है। जैसे हृदय शुद्ध किया गया रक्त सभी अगों म समान रूप से सचारित करता रह ता शरीर का टिकना सम्भव होगा उसी तरह स्याद्वाद सभी सिद्धान्तो को समझने मे समन्वय की उदार भावना की वरावर प्रेरणा देता रहता है। जैन दर्शन की सवसे वडी विशेषता तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी हठवादी (दुर्नयी) नहीं है। वहा तो सत्य से प्रेम किया जाता है और निरन्तर अपने स्वरूप को सत्य के रग मे रगा रखने मे परम सन्तोष की अनुभूति की जाती है। सत्य की आराधना जैन दर्शन का प्राण है। वह न अपनी मान्यता के विषय मे दुराग्रही है और न दूसरो की मान्यताओं का किसी भी रूप से तिरस्कार करना चाहता है। वह तो केवल यह चाहता है कि समस्त विश्व पूर्ण सत्य के स्वरूप को समझने की सही राह पर आगे वढे।

'स्याद्वाद एक तरह से ससार के समस्त विचारको व दार्शनिको का आह्वान करता है कि सब अपने आपसी हठवाद व एकागी दृष्टिकोणो के कलह को त्याग कर एक साथ वैठो तथा एक-दूसरे की विचारधाराओ का स्पष्ट रूप से आदान-प्रदान करो। इस तरह जव सामूहिक रूप से व शुद्ध जिज्ञासा व निर्णय वुद्धि से सम्मिलित विचार विमर्श किया जायेगा उनका मन्थन होने लगेगा तो जरूर ही छाछ छाछ पैंदे मे रह जायेगी और साररूप मक्खन ऊपर तैर कर आ जायेगा। तव स्याद्वाद का सन्देश है कि उन विचारधाराओं क समूह में से असत्य अशो को निकाल कर अलग कर दो हठवाद एकान्तवाद और अपने ही विचारो मे पूर्ण सत्य मानने की दुराग्रही वृत्तियो को पूरे तौर पर तिलाजलि दे दो। सत्य के भिन्न-भिन्न खडो का चयन करो उन्हे जोड कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर उन्मुख होओ। सूड ही हाथी है पाव ही हाथी है या पीठ ही हाथी है मान सकते रहने से कभी भी हाथी का असली स्वरूप

समझ मे नहीं आयेगा बल्कि ऐसा हठाग्रह करने पर तो ऐसा मानना एकागी सत्य होने पर भी हाथी के पूर्ण स्वरूप की दृष्टि से असत्य ही कहलायेगा। अत सिद्धान्तो और विचारो के क्षेत्र मे इसे गम्भीरतापूर्वक समझने व सुलझाने की जरूरत है कि सूड ही हाथी नहीं है पाँव ही हाथी नहीं है या पीठ ही हाथी नहीं है बल्कि ये सब अलग-अलग हिस्से मिलकर पूरा हाथी बनाते हैं। आज उन अन्धो की तरह हाथी देखने की मनोवृत्ति चल रही है क्या तो दार्शनिक क्षेत्र मे और क्या वैचारिक क्षेत्र मे उसे इस स्याद्वाद के प्रकाश मे सुष्ठु बना देने का आज महान् उत्तरदायित्व आ पडा है।

अनेकान्त सिद्धान्त से ही विश्वशाति की समस्या हल होगी

अगर वर्तमान मे फैला हुआ विचार-सघर्ष और अधिकाधिक जटिलता का जामा पहनता गया तो आश्चर्य नहीं कि एक दिन पिछले युद्धों से भी अधिक खौफनाक युद्ध ससार व मानव-जाति की विकसित सस्कृति को बुरी तरह तहस-नहस कर डालेगा।

'विश्वशान्ति का प्रश्न धर्म सभ्यता व सस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियो के हित *का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी क्षेत्र मे कार्य कर रहा हो इस प्रश्न से अवश्य* ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्याकन किया जा सकता है और विश्वशान्ति की नींव को मजबूत करने का आज की परिस्थितियो मे सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारो ओर फैला हुआ विचारों का विषैला विभेद शात किया जावे और एक-दूसरे को समझने के उदार दृष्टिकोण का प्रसार हो सके। ऐसे व्यापक वातावरण का सर्जन जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की सुदृढ आधारशिला पर ही किया जा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति व सामूहिक रूप से विभिन्न राष्ट्र व समाज इस स्याद्वाद दृष्टि को अपने वैचारिक क्रम मे स्थान देने लगे तो विश्वशान्ति की कठिन पहेली सहज ही *में शान्ति व सद्भावना से हल की जा सकती है। इस महान् सिद्धान्त* के रूप मे जैन धर्म विश्व की बहुत बड़ी सेवा बजाने मे समर्थ है।

'उपसहार रूप मे मुझे यही कहना है जो कि इस शास्त्रवाक्य में कहा गया है

अत्थि सत्थेण परेण पर नत्थि असत्थ परेण पर'

'सत्य का साक्षात्कार ही जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनभुवों व विभिन प्रयोगो का कर्मस्थल है जहा हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं क्योंकि सत्य ही मुक्ति है ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जीवन के आचार-विचार की सुघडता व सत्यता में व्यक्ति समाज व विश्व की शाति रही हुई है तथा शाति के शुभ्र वातावरण मे ऊँचे से ऊँचा

आध्यात्मिक विकास भी सबके लिए सरल बन सकता है। अत विचारो की उदारता पवित्रता शातिपूर्ण प्रेरणा की जागरूकता के लिए आज स्याद्वाद के सिद्धान्त को बडी बारीकी से समझने परखने व अमल मे लाने की विशेष आवश्यकता आ पडी है जिसके लिये मैं आशा करू कि सब तरफ से उचित प्रयास अवश्य किये जायगे।

आगम सशोधक के रूप मे

दिल्ली के इस ऐतिहासिक चातुर्मास मे पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा अस्वस्थ होते हुए भी अहर्निश आत्मकल्याण एव समाजहित म जुटे रहे। कॉन्फरेस की 'हसराज जिनागम प्रकाशन योजना' द्वारा प्रकाशित होने वाले आगमो का सशोधन कार्य किया। आचार्यश्री आहार-पानी एव स्वास्थ्य की चिन्ता न करते हुए इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सतत सन्नद्ध रहे। आगामों क अनुवाद सशोधन में आपन अगम ज्ञान का भरपूर उपयोग किया। वैसे पन्नवणा सूत्र जीवा जीवाभिगम सूत्र एव जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र का समग्र रूप से सम्पादन कार्य रतलाम चातुर्मास (सन् 48) के पूर्व ही सम्पन्न हो चुका था। धीरजभाई के तुरखिया ने तीनों अनूदित कृतियो की भूरि-भूरि प्रशसा की। अत्यन्त परिताप की बात है कि वे तीनों श्लाघनीय कृतियाँ जिनमे आचार्यश्री ने अथाह ज्ञानराशि प्रगट की आज अनुपलब्ध हैं। जिस दिन ये कृतियाँ उपलब्ध/प्रकाशित होंगी समग्र जैन समाज ही नहीं साहित्यिक जगत् चमत्कृत हुए बिना नहीं रहेगा।

दया-दान प्रचारक सघ का सम्मेलन

23 एव 24 अगस्त 50 को महावीर भवन चाँदनी चौक में जैन समाज के अग्रगण्य विद्वानो और श्रीमन्तो का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन मे 'दया दान प्रचारक सघ' की योजनाओ पर विचार किया गया। इस सम्मेलन में मुम्बई धारासभा के स्पीकर तथा अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरेस के अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया एव अनेक राष्ट्र नेताओ ने भी उपस्थिति दर्ज कराई।

इस अवसर पर श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम एव दया-दान प्रचारक सघ दिल्ली आदि सस्थाओ की ओर से भी फिरोदियाजी को अभिनन्दन पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया।

पूज्य आचार्यश्री का 24 अगस्त को सघ प्रमुखो एव विशाल जनसमूह की उपस्थिति म सदाशयतापूर्वक प्रभावक वक्तव्य हुआ। वक्तव्य का साराश इस प्रकार है-

पूज्यश्री का सघ-ऐक्य पर वक्तव्य

एकता की आधारभूमिका का निर्माणकार्य पिछले कई वर्षों से चल रहा है। इसे सफल करने के लिये अनेक प्रभावशाली आचार्यो ने प्रयास किये हैं महासम्मेलन और अनेक समेलन हुए हैं समाज के कार्यकर्ताओ ने शक्ति-भर प्रयत्न किये हैं किन्तु आज भी हमारा सघ उस एकता को प्राप्त नहीं कर सका। फिर भी यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि अतीतकाल से प्रयत्ना के फलस्वरूप आज सघ के प्रत्येक हितैषी और विवेकशील व्यक्ति के अन्त करण मे एकता की भावना उत्पन्न हो चुकी है और पिछले प्रयासों ने एकता और सगठन के भव्य प्रासाद की नींव का काम किया है। मगर इन प्रयासो की पूरी सफलता उनके सहयोग पर निर्भर है जिनके लिये ये किये जा रहे हैं।

इस सम्बन्ध में मैं अपनी सम्मति अनके बार प्रकट कर चुका हूँ और आज फिर दोहराना चाहता हू कि श्रीसघ के सदस्य और सेवक के नाते मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि श्रीसघ मे सुव्यवस्थित एकता उत्पन्न हो जिससे सघ की शक्ति केन्द्रित होकर प्रबल बने साधुता का स्तर ऊँचा उठे और जनता की धर्म-भावना और श्रद्धा दृढ हो। हमें दूसरों की शिथिलता देखकर सतोष नहीं मानना चाहिये बल्कि सम्पूर्ण साधुमार्गी समाज को द्रव्य क्षेत्र, काल के अनुरूप आदर्श चरित्रशीलता का विकास करना और किसी भी प्रकार की शिथिलता को असह्य मानना चाहिये। इस ध्येय को समक्ष रखते हुए मैं निम्नलिखित घोषणा करना आवश्यक समझता हूँ

1 किसी भी सम्प्रदाय के साधु में साधुत्व की जिसको प्रतीति विश्वास हो उन महापुरुषो को वन्दना-व्यवहार, सेवा-भक्ति करने में किसी भी श्रावक-श्राविका को परहेज नहीं करना चाहिए और न ऐसी साम्प्रदायिक भावना ही रखनी चाहिये।

2 साधुता का समुचित आदर न करना सघ के गौरव का अपमान है। भगवान् महावीर की आज्ञा का उल्लघन है।

3 अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन को जिसक निकट भविष्य मे होने की योजना की जा रही है सफल बनाने के लिये श्रावक-श्राविका को और साथ ही सतो और सतियो को भी यथायोग्य सहयोग देना और उसके लिये शुद्ध हृदय से अनुकूल वातावरण का निर्माण करना हम सब का पवित्र कर्तव्य है।

4 व्यक्तिगत मनोमालिन्य को समाज के किसी कार्य मे आडा न आने दे। हम सब धार्मिक बन्धु एक हैं और हमारा श्रावकसघ एक है यह दृष्टिकोण प्रत्येक को अपने सामने रखना चाहिये।

सघ की एकता मे मेरा पूर्ण सहयोग है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि साधुमार्गी समाज के मुनिगण एक समाचारी बनाकर शीघ्र एक आचार्य के नेतृत्व मे आवे और पृथक-पृथक शिष्य परम्परा की खतरनाक परिपाटी को त्याग कर स्थायी और सुदृढ एकता का आदर्श उपस्थित करें। मैं स्पष्ट शब्दो मे प्रकट कर देना चाहता हू कि ऐसी स्थायी और दृढ एकता के लिय मैं अपनी आचार्य पदवी को त्याग देने के लिये पहले भी तैयार रहा हूँ और आज भी तैयार हूँ।

मैं सघ का कल्याण चाहता हूँ। स्वेच्छाचार शिथिलाचार को रोक कर सघ को सबल और उच्च चरित्रशील बनाने के लिये सघ-ऐक्य की योजना को सफल बनाने की सद्भावना का मैं स्वागत करता हूँ और सहयोग देने की प्रेरणा करता हू।

वक्तव्य की सर्वत्र सराहना

आचार्यश्री के इन विचारा से सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज म प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गई। कॉन्फरेंस-प्रमुख श्री खीमचन्द बोरा ने (जैन प्रकाश पृ 348 5 10 50) लिखा– सामान्य मान्यतानुसार स्थानकवासी जैन समाज के 32 सप्रदायो (अब केवल सत्ताईस) में स्व पूज्यश्री जवाहरलालजी सम्प्रदाय अधिक व्यवस्थित और प्रगतिशील मानी जाती है। सघ ऐक्य योजना का इस सप्रदाय ने हार्दिक समर्थन किया इतना ही नहीं परन्तु तात्कालिक योजना की कतिपय कलमों का अमल भी सबसे पहले इस सम्प्रदाय ने शुरू किया था। तात्कालिक योजना की कलम न 6 "साप्रदायिक मडल या समितिया मिटा दी जाय" – इसके अनुसार इस सप्रदाय ने साप्रदायिक प्रवृत्तियो तथा अपनी तरफ से प्रकट होने वाले निवेदन पत्र को बद कर सघ-ऐक्य योजना का पूरा साथ दिया है। इसके अलावा भी इस सम्प्रदाय के वर्तमान पूज्य जो कि प्रगतिशील विचारो वाले हैं श्री गणेशलालजी म ने ता 24 अगस्त को दिल्ली मे एक प्रवचन द्वारा सघ-ऐक्य योजना के सबध मे जो अपने हार्दिक उद्गार प्रकट किये हैं। वे उल्लेखनीय हैं।

कितने पवित्र और हार्दिक उद्गार हैं ये !

शरीर के प्रति निरपेक्ष आचार्यश्री

दिल्ली चातुर्मास में सन्तो और श्रावको ने विविध प्रकार की तपस्याए कीं। श्री टीकमचन्दजी जैन ने 17 सितम्बर को 52 दिन की कठिन तपस्या कर आदर्श प्रस्तुत किया। इतनी तपस्या मे भी व्याख्यान-श्रवण वाचन सामायिक प्रतिक्रमण आदि दैनिक क्रियाए नियमित चालू रही तथा धर्मप्रभावना के आयोजनों से चातुर्मास समय समाप्त हुआ। आचार्यश्रीजी पूर्ण रूप से निरोग नहीं हुए थे। दिल्ली श्रीसघ और चिकित्सको ने साग्रह निवेदन किया

कि रोग निर्मूल नहीं हुआ है और जब तक उपचार पूरा नहीं हा जाता आपश्री दिल्ली में ही विराजे। यहा उपचार के अच्छे-से-अच्छे साघन और विशेषज्ञ हैं और आपरेशन कराये बिना रोग दूर नहीं होगा अत आपरेशन कराने की स्वीकृति दीजिये।

पूज्य आचार्यश्रीजी ने उत्तर मे फरमाया कि यह शरीर तो क्षणभगुर है इसकी कितनी भी समाल करे तो भी नष्ट होगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पडे तो कोई हर्ज नहीं किन्तु ऑपरेशन कराने की इच्छा नहीं है। व्यर्थ ही इस शरीर के निमित्त सयम-साधना में व्यवधान नहीं डालना चाहिये। जितने दिन इस शरीर का उपयोग होगा सो हो जायेगा।

यह है विरागियो की वीतरागता। वे आत्मोपलब्धि को सर्वोपरि मानते हैं। वे अपने सयम-तप-त्यागमय जीवन निरीहवृत्ति एव उपदेशो से सुख-शातिप्रद वातावरण का निर्माण करते हैं। ऊपरी तौर पर देखने से कुछ भी प्रतीत नहीं होता है लेकिन वे जो निर्माण करते हैं वह आतरिक होता है और उसकी नींव गहरी दृढ और स्थायी होती है। मानव जाति के सबल और व्यापक सस्कारो का निर्माण सन्तो की बदौलत हुआ है। सन्त चलते फिरते शिक्षा केन्द्र हैं विश्वकोष हैं और स्वत प्राप्त विशुद्ध परामर्शदाता हैं। वे तीर्थरूप होकर तिरने वाले को तैरने का बोध कराते हैं तिन्नाण तारयाण हैं।

दिल्ली के उपनगरो मे मुनियो से मिलन

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुछ दिनों तक दिल्ली के विभिन्न उपनगरो में विराजे। जब सदर बाजार पधारे तब वहा पर पजाब सम्प्रदाय के सन्त स्थविर मुनिश्री भागमलजी म मुनिश्री तिलोकचन्दजी म आदि विराजते थे। उनसे आचार्यश्रीजी म सा का मिलन हुआ। उसी अवसर पर स्थविर मुनिश्री भागमलजी म के पास होने वाली एक वैरागी भाई की भागवती दीक्षा आचार्यश्रीजी म सा के मुखारविन्द से सम्पन्न हुई। इसी तरह पजाब की प्रसिद्ध महासतीश्री पन्नादेवीजी म की सतियो के पास होने वाली एक बहिन भागवती दीक्षा भी आचार्यश्रीजी म सा के द्वारा सम्पन्न हुई।

अयोग्यो को दीक्षा देना अपराध है

दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् दिल्ली के एक लालाजी करीब 13 14 वर्ष के एक लडके को लेकर सेवा मे उपस्थित हुए और कहने लगे कि मुझे एक चेला भेंट करना है आप इसको ग्रहण कीजिये। तब आचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि यदि दीक्षा लेने वाला दीक्षार्थी स्वत दीक्षा लेने की भावना से आता है तो सबसे पहले उसकी भावना की परीक्षा ली जाती है और सयम की योग्यता मालूम होने पर उसके सरक्षको की आज्ञापूर्वक दीक्षा दी जा सकती

है। लेकिन इस तरीके की भेट नही ली जाती है। इसी तरह दूसर भी पाच सात व्यक्तियो ने दीक्षा ग्रहण करने के भाव व्यक्त किये लेकिन कसौटी पर खरे नहीं उतरने से आचार्यश्रीजी म सा ने दीक्षा नहीं दी।

अलवर सघ को चातुर्मास की स्वीकृति

स 2007 का चातुर्मास अलवर हाना था लेकिन शारीरिक कारणवश दिल्ली विराजना पड़ा था। इससे अलवर के नागरिका को कुछ निराशा भी हुई किन्तु परिस्थिति को देखते हुए उन्हें निराशा मे भी विश्वास की एक किरण दिखाई दे रही थी कि आचार्यश्रीजी म सा स्वस्थ रहेगे तो आगामी वर्ष अवश्य ही चातुर्मास होना सभव है।

अलवर श्रीसघ को पूज्य आचार्यश्रीजी म सा के स्वास्थ्य-सुधार से सतोष था। अत पुन आगामी वर्ष का चातुर्मास अलवर करने की विनती लेकर सेवा म उपस्थित हुआ और पूज्य आचार्यश्रीजी म सा ने द्रव्य क्षेत्र आदि को ध्यान मे रखते हुए विविध आगारो के साथ स 2008 का चातुर्मास अलवर मे करने की स्वीकृति फरमाई।

अलवर की ओर विहार करने के लिये आचार्यश्रीजी म सा सब्जीमण्डी से विहार कर नई दिल्ली पधारे। वहा पर उपस्थित सब्जीमण्डी सदर बाजार चादनी चौक दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों के सैकडा भाई बहिनो के समक्ष आचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि परिस्थितिवश मुझे दिल्ली क्षेत्र मे रहना पडा और रोगशमन के लिये जहा तक हो सका निर्दोष उपायो का अवलम्बन लिया गया। फिर भी डाक्टरो को दिखाना जाच करवाना आदि लाचारीवश सयमी मर्यादा म लगे दोषो का मैं प्रायश्चित्त ग्रहण करता हूँ।

आचार्यश्रीजी म सा की सयम-मर्यादा के प्रति निष्ठा और जागृति देखकर उपस्थित दिल्ली श्रीसघ और दूसरे-दूसरे श्रीसघो के सदस्यों पर अत्यधिक प्रभाव पडा। वहा के बुजुर्ग कहने लगे कि विशेष दोष नहीं लगने पर भी जनता के समक्ष यत्किंचित् दोषो का भी शुद्धिकरण करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना हमारे दिल्ली नगर के लिये यह पहला ही अवसर है।

अलवर चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश और कठिन परिश्रम

औषधोपचार से यद्यपि रोग उपशात हो गया था और आचार्यश्रीजी म सा विहार भी करने लगे थे फिर भी पैदल चलने से पुन रोग उभर आया। लेकिन रोगजन्य वेदना को समतापूर्वक सहन करते हुए स 2008 के चातुर्मास के निमित्त यथासमय अलवर पधार गये।

अलवर श्रीसघ ने अगवानी करते हुए नगर प्रवेश कराया। शारीरिक अस्वस्थता के

कारण आचार्यश्रीजी म सा को विश्राम करने की जरूरत थी किन्तु दर्शनार्थियों के आने जाने प्रात प्रवचन मध्याह्न वाचणी और सायकाल तत्त्वचर्चा में अधिकाश समय लगने से विश्राम करने के लिये अवकाश नही मिलता था। यद्यपि अलवर के स्वच्छ जलवायु का स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव भी पडा लेकिन अधिक परिश्रम के कारण रोग मे वृद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे। फिर भी पहले की तरह ही मुखमडल पर मधुर मुस्कान और तपोपूत तेजस्विता झलकती रहती थी।

अलवर-नरेश प्रवचन-श्रवण कर प्रभावित

पूज्य आचार्यश्रीजी के प्रतिदिन प्रवचन महावीर भवन मे होते थे। जिनका लाभ आबाल-वृद्ध श्रोतागण उठाते थे। एक दिन अलवर के नरेश ने स्थानीय श्रीसघ के प्रमुख सज्जनो के द्वारा आचार्यश्रीजी की सेवा में निवेदन करवाया कि आचार्य महाराज महलों में पधार कर हमे दर्शन और सेवा का अवसर प्रदान करें और दो शुब्द सुनावे।

उक्त भावना को सेवा में निवेदन किये जाने पर आपश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि अलवर-नरेश की धर्मभावना एव साधु-सन्तो के प्रति आदरभाव प्रशसनीय है। लेकिन मेरे लिये तो राजा और रक सभी समान हैं। किसी विशिष्ट स्थिति के अतिरिक्त वर्तमान स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने आने की भावना नहीं रखता हूँ और इससे अन्य व्यक्तिया को भी असुविधा हो सकती है। दूसरो के साथ अलवर-नरेश भी यहा पर धर्म-लाभ ले सकेंगे।

ऐसा स्पष्ट उत्तर वही दे सकते हैं जो मानापमान की अनुभूति से उदासीन हैं और जिनको किसी से कोई आकाक्षा नहीं है। वे तो जलकमलवत् ससार में रहकर निर्लिप्त भाव से विचरण करते रहते हैं। सन्तो की महिमा महान् है। इन महापुरुषों के बारे मे कहा गया है-

> चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ वेपरवाह।
> जिनको कछु न चाहिये वे शाहन के शाह।।
> अरि-मित्र महल-मसान कचन-काच निन्दन-थुतिकरन।
> अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन।।
> जग-सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब सशय हरैं।
> भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्रतें अमृत झरैं।।
> लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे महा।
> समो निदापससासु तहामाणावमाणओ।।

पूज्य आचार्यश्रीजी की भावना का सकेत अलवर-नरेश को करा दिया और उन्होंने विजयादशमी (दशहरा) के दिन स्वय महावीर भवन में आकर प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाया।

सघ-ऐक्य के लिए पूज्यश्री ने कुछ शर्ते रखी

समाज की धर्मकरणी के आधार सत-सतियाजी म को एक आचार्य के नेश्राय म ही वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के नाम से सगठित देखने की चतुर्विध श्रीसघ उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। वैसे तो एकता सम्बन्धी प्रयत्नो का सूत्रपात पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के समय सन् 1933 से ही हो चुका था और ये प्रयत्न उसी के आगे की कड़ी थे।

सगठन के प्रयत्ना में वेग लाने की दृष्टि से श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस के एक शिष्टमडल ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर एक गाव म एक चातुर्मास होने की विनती की थी और परीक्षण के रूप में तीन वर्ष तक आचार्यश्रीजी ने अपनी ओर से ऐसा करने की स्वीकृति फरमा दी थी। फलस्वरूप शिष्टमडल को निकट भविष्य मे पुन श्रमण सम्मेलन होने के कुछ कुछ आसार दिखाई देने लगे थे और इस सम्बन्ध मे शिष्टमडल ने अन्यान्य मुनिराजों से परामर्श करके प्रारूप तैयार किया।

सगठन विषयक प्रारूप तैयार हो जाने के पश्चात् पुन श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस का शिष्टमडल साधु सम्मेलन के बारे मे निश्चित प्रस्ताव लेकर 23-10-51 मगलवार को पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की सेवा म उपस्थित हुआ और अपने कार्यो का विवरण बताया।

शिष्टमण्डल मे श्री धीरजभाई के तुरखिया चिमनलाल पोपटलाल शाह बनेचन्दभाई दुर्लभजी झवेरी छोटालाल पालावत इन्द्रचन्द सचेती आदि प्रमुख सभ्य थे। श्री बनेचन्दभाई दुर्लभजी झवेरी ने वक्तव्य देते हुए कहा– कॉन्फरस के डेप्यूटेशन ने अपने मे सम्मिलित होने के लिये मुझे दिल्ली से तार किया अत मैं यहाँ आया हूँ, परन्तु एक्य योजना क कार्य के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म के पास आन की मेरी कोई खास आवश्यकता नहीं रहती है। क्योंकि पूज्यश्री सघ ऐक्य योजना मे सम्पूर्ण साथ दे रहे हैं। तात्कालिक योजना की हरएक कलम का आपने पूर्ण पालन किया है और उसे मूर्त स्वरूप देने के कार्य में सहयोग देने के लिए उत्सुक भी हैं। क्योंकि पूज्यश्री समझते हैं कि आज जो शिथिलता देखी जा रही है उसका रामबाण इलाज सघ ऐक्य योजना ही है।

पूज्यश्री ने किसी भी तरह की चर्चा किये बिना ही सघ ऐक्य योजना के लिए स्वीकृति

प्रदान की है। पू आचार्यश्री जवाहरलालजी म की भी ऐसी ही भावना थी और पूज्यश्री गणेशलालजी म भी सघ-ऐक्य योजना को शीघ्र ही कार्यरूप में देखने के लिए उत्सुक हैं।

कई मुनिराज यह समझते हैं कि सघ-ऐक्य होगा तो हमारा वर्चस्व कम हो जायगा अत वे सघ-ऐक्य योजना के कार्य मे अन्तराय डाल रहे हैं। परन्तु जिनको यह भय होवे भले ही अभी बाकी रहे। हिंद को एक ओर अविभाज्य बनाने का कार्य जब सरदार वल्लभभाई पटेल ने हाथ मे लिया था तब भोपाल हैदराबाद जैसे राज्य सम्मिलित नहीं हुए थे। परन्तु सरदार ने इनको अलग रखकर भी ऐक्य का काम आगे बढाया। अन्त में ये बचे हुए राज्य भी अपने-आप सम्मिलित हो गये। ऐसा ही ध्येय सघ-ऐक्य योजना के लिए भी रखा जायगा तो वह शीघ्र ही अमल में आ सकेगी। जो अभी सम्मिलित नहीं हो रहे हैं वे आगे चलकर अवश्य मिल जायेंगे। परन्तु उनकी वजह से ऐक्य की गति धीमी करना इच्छनीय नहीं है। क्योंकि आज युवकवर्ग में श्रद्धा कम होती जा रही है। आज की साम्प्रदायिकता और इससे होने वाली गतिविधियो से उनको नफरत होती है। फलस्वरूप वे धर्मस्थानकों और मुनिराजो से दूर होते जा रहे हैं। यदि उनमें पुन श्रद्धा पैदा करनी हो और श्रमण-सघ का गौरव चढ़ाना हो तो सघ-ऐक्य योजना को अमली रूप देना अत्यावश्यक है।

शिष्टमण्डल के प्रयत्नो के लिये अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि एक समाचारी एक शिष्य-परम्परा तथा एक के हाथ मे प्रायश्चित्त आदि व्यवस्था और एक आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्विया साधना करने की भावना रखते हैं तो मैं और मेरे नेश्राय में रहने वाले साधु-साध्वी सघ-ऐक्य के लिये अपने-आप को विलीन करने में सर्वप्रथम रहेगे। आपश्री के हृदय के सघ-ऐक्य की भावनाए हिलोरे ले रही थीं अत अलवर में उपस्थित चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए फरमाया– 'मुझे किसी सप्रदाय-विशेष के प्रति न मोह है न ममता है और न लगाव है। सत जीवन ममता-विहीन होना चाहिये। किन्तु अपने कर्तव्यपालन के लिये सप्रदायान्तर्गत कार्यरत रहना पड़ता है। यदि एक आचार्य की नेश्राय में एक समाचारी आदि का निर्णय करते हुए सयम-साधना के पथ पर चारित्रिक दृढता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई सगठन बनता है तो मैं प्रथम मुनि होऊगा जो अपनी आचार्य पदवी को छोड़कर सगठन के अधीन चतुर्विध सघ की सेवा करने के लिये सहर्ष तत्पर रहूँगा। जो निष्ठा पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जवाहराचार्य के हृदय मे विद्यमान थी वही निष्ठा मेरे मानस में रम रही है।

आज की शिथिलता दूर करनी हो तो सघ ऐक्य योजना अमल में आनी ही चाहिये ऐसा मैं मानता हूँ। दूसरे समाज को मूर्ति का आधार है परन्तु हमारे समाज को तो एक ही आधार है साधु-साध्वियों का। इस वर्ग मे आज शिथिलता दिखाई दे रही है। इसका रामबाण

इलाज सघ-ऐक्य योजना है जो यदि अमल मे नहीं आवे तो श्रावक श्राविकाओ की श्रद्धा कम हो जायगी। श्रावको की श्रद्धा घटने पर फिर कोई दूसरा ऐसा आधार नहीं कि जिससे वे अपना विकास कर सके। स्थानकवासी समाज साधु-साध्वियों के चारित्र बल पर ही टिका हुआ है। जिस परिमाण में साधु-साध्वियों का चरित्रबल उन्नत बनेगा उसी परिमाण मे समाज अपना विकास भी कर सकेगा। इसलिए साधु-साध्वियो मे रही हुई शिथिलता को दूर करने वाली और चारित्रबल को बढाने वाली सघ-ऐक्य योजना को वेग देने की आवश्यकता है। उसे शीघ्रातिशीघ्र मूर्तरूप देने मे ही स्था समाज का उत्कर्ष रहा हुआ है।

आज यह कहा जाता है कि जैन समाज की सख्या घटती जा रही है। स्था समाज की सख्या 5-7 लाख के लगभग होगी। इसका कारण एक ही है– साप्रदायिकता और उससे चलने वाली शिथिलता। नहीं तो 5 लाख से 50 लाख बनने में क्या देर लग सकती है ? साधु-साध्वियों के चारित्रबल को इद्र भी नमस्कार करता है। यदि जैन धर्म के साधु-साध्विया का ऐसा चारित्र हो तो उस धर्म की सख्या बढ़ने में क्या देर लग सकती है ?

अब मैं सघ-ऐक्य योजना के लिए दो शब्द कहूगा। पहले तो मुझे यही कहने का है कि सभी सप्रदायो को एक श्रमण सघ में विलीनीकरण करने का कार्य जितना आवश्यक है उतना गभीर भी है। एक श्रमण सघ को 'मूर्ति' जैसा आचार्य नहीं चाहिये। उसके लिए तो सरदार पटेल जैसे निश्चयी और दृढ आचार्य की आवश्यकता होगी। आचार्य उसमे छोटा हो या बड़ा यह प्रश्न गौण है जो भी आचार्य चुने जाय उन की आज्ञा मे रहना सबका कर्तव्य हो जाता है।

अन्त में मैं इतना ही कहूँगा कि सघ में कलह पैदा करना या सगठन के कार्य मे अतराय खड़ी करना भगवान् ने सबसे बडा पाप बताया है। दूसरे सभी पाप इस पास से छोटे हैं। चौथा व्रत खडित हो तो नई दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है परन्तु सघ की शाति और एकता का भग कर सघ मे अशाति तथा अनैक्य फैलाने वाला सघ को छिन्न भिन्न करने वाला दसवे प्रायश्चित्त का अधिकारी कहा गया है। इससे विपरीत चतुर्विध सघ के सगठन के कार्य मे सहयोग देने वाला तीर्थकर गोत्र भी बाध सकता है।

'घड़ी घार बजा रही है यह भी मानों बजकर कह रही है कि साघ ऐक्य योजना सफल हो। मैं एकता का अनुयायी हू, एकता के कार्य में हमेशा से सहयोग देता आया हूँ और ऐसे कार्य मे भविष्य में भी हमेशा सहयोग रहेगा। इससे अधिक मुझे और कुछ कहना नहीं है।

उक्त घोषणा की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए शिष्टमडल एव उपस्थित चतुर्विध सघ ने अभिनन्दन किया। दूसरे दिन शिष्टमण्डल खेताजी महाराज की सम्प्रदाय की महासतीश्री मानकुवरजी म के पास गया और उनसे भी इस विषय में सूक्ष्म चर्चा की। महासती ने

सघ-ऐक्य की आवश्यकत्ता वताई। महासती की विचारशक्ति के प्रति प्रतिनिधिमण्डल अत्यधिक प्रभावित हुआ। महासती भी जवाहराचार्य के क्रान्ति-विचारो से अनुप्राणित थी।

रोग का पुन भयकर आक्रमण

चातुर्मास का समय धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा था। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन विपम वनती जा रही थी। जिस समय आप लघुशका से जैसे तैसे निवृत्त होकर उठते तो शरीर पसीने से सरावोर हो जाता था और मालूम पड़ता था कि स्नान के वाद जैसे शरीर पोंछना वाकी हो। वूद-वूद कर पेशाव निकलता था लेकिन असह्य वेदना होते हुए भी मुख पर पीडा की रेखा तक नहीं दिखती थी।

रोग की इस विपम स्थिति से सतो और श्रीसघ की चिन्ता का पार नहीं था। अत अलवर श्रीसघ ने निश्चय किया कि रोगोन्मूलन के लिये तत्काल आपरेशन करवाया जाये। राजकीय चिकित्सालय के प्रमुख शल्यचिकित्सक एव अन्य प्रमुख चिकित्सको ने तो पहले ही निर्णय कर दिया था कि शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र हो जानी चाहिये। इसके लिये जितनी देरी होगी उससे जीवन को खतरा है।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी म सा निर्दोष उपचार के लिये तो तैयार थे और शल्यचिकित्सा जैसे उपचार से बचना चाहते थे। इस सम्बन्ध में आप फरमाया करते थे-- भोले भाइयो ! कर्मों की व्याधि का मूल इस आपरेशन से निर्मूल होने वाला नहीं है। कर्मव्याधि का मूल बहुत गहरा है उसका उन्मूलन ये डाक्टर नहीं कर सकेगे। हा ये शारीरिक व्याधि को मिटाने में निमित हो सकते हैं लेकिन कर्मो को मूल से उखाड़ने के लिये तो आत्म पुरुपार्थ की जरूरत है। आत्मा में पैठे हुए दोषजनक तत्त्वों को निकाल कर फेकना होगा। अत ऑपरेशन के बिना ही अगर काम चलता हो तो चला लेना चाहिये।

सघ की साग्रह विनती मानकर ऑपरेशन की स्वीकृति दी

पूज्य आचार्यश्रीजी म सा अपनी शारीरिक व्याधि के लिये जितने उदासीन थे उतनी ही अलवर श्रीसघ एव वीकानेर रतलाम व्यावर आदि-आदि अन्यान्य नगरों और ग्रामो के उपस्थित श्रावक-श्राविकाओ की चिन्ता वढ़ती जा रही थी। अत इस जटिल स्थिति से चिन्तित अलवर श्रीसघ ने उस समय उपस्थित अग्रणी श्रावकों की सभा का आयोजन किया। सभा में स्थिति की विपमता पर विचार कर सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि आचार्यश्रीजी के विचार सयम साधना के अनुरूप हैं लेकिन आचार्यश्रीजी का जीवन एव शरीर श्रीसघ के लिये अमूल्य है और उन पर श्रीसघ का अधिकार है। अत हम सव अपने दायित्व को लक्ष्य

म रखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे निवेदन करे कि सघहितार्थ आप अपना शरीर सघ को समर्पित कर देने की कृपा करें जिससे सघ जैसा उचित समझे वैसी व्यवस्था कर सके।

सघ के विनम्र निर्णय को पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित किया गया तो सघ के आग्रह और युक्तियो को ध्यान म रखते हुए आपने वैसा ही उत्तर दिया जैसा आपके गुरुदेव स्व पूज्य जवाहराचार्य ने भीनासर म दिया था। उन्होंने फरमाया था– इस शरीर पर सघ का भी अधिकार है यह शरीर मेरा अकेले का नहीं है श्रीसघ का भी है। श्रीसघ की जो इच्छा हो वही कर सकता है। मुझे अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहना है।

आचार्यश्रीजी की कितनी महानता थी कि श्रीसघ के आग्रह के समक्ष अपना अस्तित्व गौण कर लिया और सघ की इच्छा का तिरस्कार नहीं किया। श्रीसघ ने समग्र परिस्थिति का गम्भीरता से विचार कर ऑपरेशन करवाना तथा भारत के सुप्रसिद्ध सर्जन व पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के जलगाव मे किये गये ऑपरेशन से श्रीसघ के विश्वासपात्र डा श्यामराव रामराव मूलगावकर मुबई से आपरेशन कराना तय किया।

सभी उपस्थित सज्जन इस अवसर पर अपनी-अपनी सेवाए देने के लिये आग्रह कर रहे थे लेकिन बीकानेर निवासी दानवीर सेठ श्री गोविन्दरामजी भीखमचन्दजी भसाली की विनम विनती और निवेदन पर श्रीसघ ने श्री भसालीजी को लाभ-प्राप्ति की स्वीकृति दी। इस महान् सुअवसर की प्राप्ति होने से श्री भसालीजी के हर्ष का पार न रहा और श्रीसघ ने अभिनन्दन करते हुए अपना प्रमोद व्यक्त किया।

ऑपरेशन से पूर्व सघ के समक्ष नम्र निवेदन

आपरेशन गम्भीर था। डा मूलगावकर से सपर्क स्थापित कर समय निश्चित हो चुका था और देश के कोने कोने मे इसकी जानकारी हो जाने से दर्शनार्थियो का अलवर आने का ताता लग गया। इस अवसर पर बाहर गाव से 300 सघ प्रमुख प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित हो चुके थे। स्थिति की गम्भीरता से सभी के चेहरो पर चिन्ता झलक रही थी। अलवर निवासियों के द्वार आगत बन्धुओं के लिये खुले थे और श्रीसघ के कार्यकर्ता बडी तत्परता से प्रबध कर रहे थे।

आपरेशन का दिन भी आ गया। डा मूलगावकर अपने अन्य चार सहयोगी डाक्टरों के साथ मुबई से अलवर आ गये थे और उन्होंने राजस्थान के प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डा बापू से मिलकर आपरेशन की तैयारी की। श्री महावीर भवन के एक कमरे मे ही आपरेशन के लिये

स्थान बनाया गया था। डा मूलगावकर ने पूज्य आचार्यश्रीजी की शरीर परीक्षा की और आपरेशन की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक साधनो को एकत्रित कर लिया गया।

क्षण-क्षण और पल-पल करते-करते आपरेशन होने का अवसर भी आ गया। महावीर भवन के चारो ओर जनमेदनी का जमाव हो चुका था और जिधर भी देखो उधर जनसमूह महावीर भवन की ओर आता दिखाई दे रहा था और वातावरण म निस्तब्धता छाई हुई थी।

आपरेशन स्थल पर प्रवेश करने से पूर्व पूज्य आचार्यश्रीजी म सा उपस्थित जनसमूह के सन्मुख पधारे। दर्शनार्थियो ने जयघोष करते हुए सविधि वदना की और अपने नेत्रों को आचार्यश्रीजी के शात गम्भीर मुखमडल पर केन्द्रित कर लिया। निस्तब्धता व्याप्त होने पर आचार्यश्रीजी म सा ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया–

आज चतुर्विध श्रीसघ यहा उपस्थित है। पूर्वोपार्जित असातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर मे रोग की उत्पत्ति हुई है जिसे मैं समतापूर्वक सहन करके और तपस्यादि मे प्रवृत्त होकर निर्जरामार्ग की ओर अग्रसर होना चाहता था किन्तु चतुर्विध सघ की आज्ञा इसके अनुकूल न होने की जानकर सघ की आज्ञा मानते हुए मैं शल्यचिकित्सा के लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति मे मुझे क्रिया एव दोषो का लगना अवश्यभावी है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जब तक मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्त होकर प्रायश्चित्त न कर लू और लगे हुए दोषो व क्रियाओ के लिये समुचित दड ग्रहण न कर लू, तब तक मुझे वदन न करें। स्थिति गम्भीर है इसलिये आपरेशन कराने के पूर्व मैं ज्ञात एव अज्ञात अवस्था में अथवा सघहित के कार्यों में भी यदि मेरे किसी क्रियाकलाप से श्रावक श्राविका साधु, साध्वी रूप चतुर्विध श्रीसघ को किसी प्रकार क्लेश पहुचा हो तो अन्तर्मन से सबसे क्षमत क्षमापना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब जीवन के इस कटकाकीर्ण पथ पर भगवान् महावीर द्वारा प्रदर्शित अखड ज्ञानज्योति को हृदयगम कर शाश्वत सुख की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

'मुझे जो-कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब गुरुदेव का प्रसाद है और समाज के सहकार का फल है। मैं गुरुदेव और समाज का ऋणी हूँ।

पूज्य आचार्यश्री के उल्लिखित भाव श्रमणसस्कृति की त्याग-प्रधान प्रकृति के प्रतीक थे। उनमें हृदय की अभिव्यक्ति जैन-शासन की पावन परपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा और सतजनोचित उच्चकोटि की उदारता व्यक्त की गई थी।

उपस्थिति ने आचार्यदेव के शब्दो को सुना तो अवश्य था किन्तु हृदय थम न सका। अधिकाश के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और कई-एक की आखे सूखी भी थीं तो मन की पीड़ा मन ही अनुभव कर रहा था और ऐसे ही वातावरण मे निमग्न जनसमूह को छोड़ आचार्यदेव आपरेशन के लिये पधार गये।

प्रसन्नता के क्षणो मे ऑपरेशन सफल हुआ

आपरेशन करने के पूर्व डाक्टरो ने आचार्यश्रीजी के शरीर व हृदय की धडकन की पुन परीक्षा की। डाक्टरों को यह सब करते देख आचार्यदेव ने स्मित हास्य किया। खातरी कर लेने के बाद आपरेशन प्रारम्भ हो गया। डाक्टरों के कुशल हाथ शारीरिक रोग-उन्मूलन के लिये चपलता से अस्त्रों स अठखेलिया करने लगे। रक्त की धारा वह निकली किन्तु पूज्य आचार्यदेव सब-कुछ देखते हुए भी डाक्टरो से बातचीत कर रहे थे। मुख पर वेदना की रेखा तक नहीं थी। मानो देहातीत स्थिति मे विचरण कर रहे हों।

अत्यधिक रक्तप्रवाह के अनुमान से डाक्टरों ने रक्त चढाना चाहा किन्तु आचार्यदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि यदि जीवन समाप्त होता हो तो हो जाये किन्तु इस नश्वर शरीर के लिए अन्य किसी जीव को कष्ट पहुचाना मुझे अभीष्ट नहीं है। डाक्टरगण पहले ही आपकी सहनशीलता देखकर विस्मित हो रहे थे और इस बात न तो उन्हे और भी आश्चर्य मे डाल दिया। बेहोशी के लिये क्लोरोफार्म सूघे बिना ही इतने गम्भीर ऑपरेशन के लिये तैयार हो जाना एक अलौकिक घटना ही थी। वस्तुत महात्माओं का हृदय दूसरों के लिये तो फूल-सा होता है और अपने प्रति वज्र-सा कठोर।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति।।

लोकोत्तर पुरुषो के चित्त को परखना बड़ा ही कठिन है। एक ओर वे वज्र के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर कुसुम से भी कोमल और फिर हमारे आचार्यदेव ने तो उस सस्कृति के वायुमडल मे सासे ली थी जो विधान करती हैं-

अवि अप्पणो वि देहमि नायरति ममाइय।

महात्मागण अपनी देह के प्रति भी ममता का भाव उत्पन्न नहीं होते देते। जिन्होने काया को भी पराया समझ लिया और अपने शुद्ध आनन्दमय स्वरूप मे अवगाहन कर लिया है उन्हें ससार की कोई भी घटना व्यथा नहीं पहुचा सकती है। जिनके सामने गजसुकुमार का उच्चतर आदर्श है वे शारीरिक व्यथा से कब व्याकुल होते हैं ?

डाक्टरों ने सफलतापूर्वक 35 मिनिट मे रोगाक्रान्त अवयव को निकाल लिया। आपरेशन सफल हुआ और सोत्सुक जनसमूह को सफलता के समाचार सुनाने के लिये हाथ में एक मासग्रन्थि लेकर डाक्टर मूलगावकर ने बाहर आकर कहा– महाराजश्री का ऑपरेशन सफल हो गया है। तेरह तोले की गाठ काटकर बाहर निकाल दी गई है। आश्चर्य है कि महाराजश्री

स्थान बनाया गया था। डा मूलगावकर ने पूज्य आचार्यश्रीजी की शरीर परीक्षा की और आपरेशन की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक साधनो को एकत्रित कर लिया गया।

क्षण क्षण और पल-पल करते करते आपरेशन होने का अवसर भी आ गया। महावीर भवन के चारों ओर जनमेदनी का जमाव हो चुका था और जिधर भी देखो उधर जनसमूह महावीर भवन की ओर आता दिखाई दे रहा था और वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी।

आपरेशन स्थल पर प्रवेश करने से पूर्व पूज्य आचार्यश्रीजी म सा उपस्थित जनसमूह के सन्मुख पधारे। दर्शनार्थियो ने जयघोष करते हुए सविधि वदना की और अपने नेत्रों को आचार्यश्रीजी के शात गम्भीर मुखमडल पर केन्द्रित कर लिया। निस्तब्धता व्याप्त होने पर आचार्यश्रीजी म सा ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया–

आज चतुर्विध श्रीसघ यहा उपस्थित है। पूर्वोपार्जित असातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर मे रोग की उत्पत्ति हुई है जिसे मैं समतापूर्वक सहन करके और तपस्यादि मे प्रवृत्त होकर निर्जरामार्ग की ओर अग्रसर होना चाहता था किन्तु चतुर्विध सघ की आज्ञा इसके अनुकूल न होने की जानकर सघ की आज्ञा मानते हुए मैं शल्यचिकित्सा के लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति मे मुझे क्रिया एव दोषो का लगना अवश्यभावी है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जब तक मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्त होकर प्रायश्चित्त न कर लू और लगे हुए दोषों व क्रियाओ के लिये समुचित दड ग्रहण न कर लू, तब तक मुझे वदन न करें। स्थिति गम्भीर है इसलिये आपरेशन कराने के पूर्व मैं ज्ञात एव अज्ञात अवस्था में अथवा सघहित के कार्यों मे भी यदि मेरे किसी क्रियाकलाप से श्रावक श्राविका साधु, साध्वी रूप चतुर्विध श्रीसघ को किसी प्रकार क्लेश पहुचा हो तो अन्तर्मन से सबसे क्षमत क्षमापना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब जीवन के इस कटकाकीर्ण पथ पर भगवान् महावीर द्वारा प्रदर्शित अखड ज्ञानज्योति को हृदयगम कर शाश्वत सुख की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

'मुझे जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब गुरुदेव का प्रसाद है और समाज के सहकार का फल है। मैं गुरुदेव और समाज का ऋणी हूँ।

पूज्य आचार्यश्री के उल्लिखित भाव श्रमणसस्कृति की त्याग-प्रधान प्रकृति के प्रतीक थे। उनमें हृदय की अभिव्यक्ति जैन-शासन की पावन परपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा और सतजनोचित उच्चकोटि की उदारता व्यक्त की गई थी।

उपस्थिति ने आचार्यदेव के शब्दो को सुना तो अवश्य था किन्तु हृदय थम न सका। अधिकाश के नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और कई-एक की आखे सूखी भी थीं तो मन की पीड़ा मन ही अनुभव कर रहा था और ऐसे ही वातावरण में निमग्न जनसमूह को छोड़ आचार्यदेव आपरेशन के लिये पधार गये।

आचार्यश्री ने जनमेदनी के सन्मुख अपना प्रवचन फरमाया और प्रवचन के अन्त मे निम्नलिखित घोषणा की--

आप सब लोगो को मालूम है कि रोगग्रस्त अवस्था मे मुझे प्रमादजन्य कतिपय दोषो एव क्रियाओ का भागी वनना पडा है और इसीलिये ऑपरेशन के पूर्व मैंने कहा था कि जब तक दोष-निवृत्ति हेतु मै आलोचना प्रायश्चित्त न कर लू, आप मुझे वदना नमस्कार न करे। उपचार के पश्चात् मैंने अपने दोषो का प्रायश्चित्त किया और अब श्रीसघ की साक्षी मे एतद्विषयक दड-विधान--चार मास का दीक्षाछेद स्वीकार करता हूँ। आज से 4 माह की दीक्षावधि कम होने से जो मुझसे छोटे होकर मुझे नमस्कार करते थे अब मैं उन्हे बड़ा मानकर नमस्कार करूगा। साथ ही उपचारावस्था में जो मुनिवृन्द मेरी सेवा-शुश्रूषा मे रत रहे उन्हे भी क्रियाओ के लिये दोषी मानते हुए यथायोग्य दड-प्रायश्चित्त देता हूँ।

पूज्य आचार्यश्रीजी की उक्त घाषणा को उपस्थित चतुर्विध श्रीसघ ने सुना और मुनिवृन्द ने आज्ञानुसार दड-प्रायश्चित्त विधान को अगीकार किया। अन्त मे उपस्थिति ने पुन -पुन वदना कर पूज्य आचार्यश्रीजी को विदाई दी।

अलवर चातुर्मास अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यो के होने से स्मरणीय रहेगा। इसी समय मे सघ-ऐक्य की योजना को कार्यान्वित करने के लिये घाषणा की गई और आचार्यश्रीजी के स्वस्थ होने से समाज की चिन्ता दूर हुई। तप त्याग सयम आदि का जो प्रभाव जनमानस पर पड़ा वह तो अलवर श्रीसघ की अमरनिधि रहेगी।

सघ-ऐक्य के सम्बन्ध मे आचार्यश्री की ठोस विचारधारा

एक ही आचार विचार परम्परा के अनुगामी सन्त सप्रदायो को एकसूत्र मे आवद्ध करने के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के समय से प्रयत्न हो रहे थे। पहले सन् 1933 मे अजमेर मे एक वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ था। उक्त अवसर पर पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा ने विभिन्न सप्रदायो मे विभाजित श्रमणवर्ग को एक आचार्य और एक समाचारी के आधार पर शिलान्यास कर दिया था। लेकिन वैसी स्थिति नहीं वन सकी थी। अत उसी समय से ही सघ ऐक्य के लिये प्रयत्न हो रहे थे।

अलवर चातुर्मास के समय में आपका वक्तव्य प्रकाशित होते ही स्थानकवासी सन्त-सम्प्रदाया मे एकता सम्प्रदाय विलीनीकरण और सघ-निर्माण की योजनाओ पर चर्चा-विचारणा प्रारम्भ हो गई थी। इस समय मे साधु-मुनिराजो मे विभिन्न प्रकार की विचारधाराए विद्यमान थीं। वहुत से आचार्यो के मन मे सभी सम्प्रदाया के विलीनीकरण और सर्वसम्मत ऐक्य याजना के स्वीकृत होने मे सन्देह था कि क्या सैकड़ों वर्षो से चल आये सप्रदाया का विलीनीकरण हा

ने क्लोरोफार्म सूघ कर बेहोश होना पसन्द नही किया। उनकी मानसिक शक्ति अजेय है सकल्पबल विस्मयजनक है। मैंने कई लोगो के ऑपरेशन किये और बड़े बडे सहनशील व्यक्ति भी देखे किन्तु इतने शक्तिशाली और सहिष्णु महापुरुष पहले कभी देखने में नहीं आये हैं।

इन शब्दो ने सुधा का सिचन-सा कर दिया। गम्भीर और व्याकुल वातावरण हर्ष और उल्लासमय हो गया। तत्काल ही देश के समस्त श्रीसघो की जानकारी के लिये आकाशवाणी तार टेलीफोन द्वारा ऑपरेशन की सफलता के समाचार प्रसारित कर दिये गये और अनेक व्यक्तियो ने हजारो रुपये दान मे दिये।

आत्मशुद्धि हेतु प्रायश्चित्त ग्रहण

धीरे-धीरे घाव भर गया। शनै-शनै कमजोरी दूर होने से शरीर मे विहार करने योग्य शक्ति आ गई थी। आचार्यश्रीजी चाहते थे कि चिकित्सालय में हुए दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित्त से लिया जाये। यद्यपि आचार्यश्रीजी स्वय इस विधि-विधान के विज्ञ थे फिर भी उन्होने पजाव सप्रदाय के आचार्यश्रीजी से आलोचना विधि मगवाई। उन्होने प्रत्युत्तर में लिखवाया कि आप स्वय विज्ञ हैं किन्तु यह आपकी महानता है कि मुझसे प्रायश्चित्त मगव रहे हैं। जिस स्थिति मे आपने ऑपरेशन करवाया है वह आपवादिक स्थिति है। ऐसी स्थिा मे लगे हुए दाषो का शुद्धिकरण गुरु चौमासी तप (120 उपवास) का प्रायश्चित्त लेकर क लेवे। लेकिन आचार्यश्री ने इससे भी भारी चार मास दीक्षाछेद का प्रायश्चित्त लिया।

विहार के समय आत्मोद्गार और प्रायश्चित्त की घोषणा

आचार्यश्रीजी शीघ्र विहार करना चाहते थे। समयक्रम से विहार का क्षण भी आ पहुचा। महावीर भवन श्रोताओ से खचाखच भरा हुआ था। काफी समय के पश्चात् श्रोताओं को प्रवचन प्रसाद की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ था। सभी के मन वचन माधुर्य से पूरित हो रहे थे। अत प्रवचन परिसमाप्ति का सकेत ही न लग सका। आखिर तल्लीनता भग हुई और सूने मन से श्रोतागण उठ खड़े हुए।

सन्तमडली से परिवेष्टित पूज्य आचार्यश्रीजी ने महावीर भवन से बाहर पदार्पण किया। 28 जनवरी 52 का दिन। चारो ओर मायूसी। जनता ने जयघोष किया लेकिन उसमें उमग नहीं थी उत्साह नहीं था सिर्फ भावभरे हृदयों की अनुभूति का उच्छवास झलक रहा था।

अलवर से जयपुर की ओर विहार हुआ। नगरान्त का अतिम विश्रामस्थल सस्कृत महाविद्यालय मे किया। अन्तिम प्रवचन सुनने का सौभाग्य आज ही मिलने वाला है अत अलवर श्रीसघ के आवाल वृद्ध नर-नारी महाविद्यालय के प्रागण में एकत्रित हो गये।

आचार्यश्री न जनमेदनी के सन्मुख अपना प्रवचन फरमाया और प्रवचन के अन्त मे निम्नलिखित घोषणा की–

आप सब लोगो को मालूम है कि रोगग्रस्त अवस्था मे मुझे प्रमादजन्य कतिपय दोषो एव क्रियाओं का भागी वनना पडा है और इसीलिये ऑपरेशन के पूर्व मैंने कहा था कि जव तक दोष-निवृत्ति हेतु मैं आलोचना प्रायश्चित्त न कर लू, आप मुझे वदना-नमस्कार न करे। उपचार के पश्चात् मैंने अपने दोषो का प्रायश्चित्त किया और अव श्रीसघ की साक्षी मे एतद्विषयक दड-विधान--चार मास का दीक्षाछेद स्वीकार करता हूँ। आज से 4 माह की दीक्षावधि कम होने से जो मुझसे छोटे होकर मुझे नमस्कार करते थे अव मैं उन्हे वड़ा मानकर नमस्कार करूगा। साथ ही उपचारावस्था मे जो मुनिवृन्द मेरी सेवा-शुश्रूषा मे रत रहे उन्हे भी क्रियाओ के लिय दोषी मानते हुए यथायोग्य दड-प्रायश्चित्त देता हूँ।

पूज्य आचार्यश्रीजी की उक्त घोषणा को उपस्थित चतुर्विध श्रीसघ ने सुना और मुनिवृन्द ने आज्ञानुसार दड-प्रायश्चित्त विधान को अगीकार किया। अन्त मे उपस्थिति ने पुन -पुन वदना कर पूज्य आचार्यश्रीजी को विदाई दी।

अलवर चातुर्मास अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के होने से स्मरणीय रहेगा। इसी समय मे सघ-ऐक्य की योजना को कार्यान्वित करने के लिये घोपणा की गई और आचार्यश्रीजी के स्वस्थ होने से समाज की चिन्ता दूर हुई। तप त्याग सयम आदि का जो प्रभाव जनमानस पर पड़ा वह तो अलवर श्रीसघ की अमरनिधि रहेगी।

सघ-ऐक्य के सम्बन्ध मे आचार्यश्री की ठोस विचारधारा

एक ही आचार विचार परम्परा के अनुगामी सन्त सप्रदायो को एकसूत्र म आवद्ध करने के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के समय से प्रयत्न हो रहे थे। पहले सन् 1933 म अजमेर में एक वृहत्साधु सम्मेलन हुआ था। उक्त अवसर पर पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा ने विभिन्न सप्रदायो मे विभाजित श्रमणवर्ग को एक आचार्य और एक समाचारी के आधार पर शिलान्यास कर दिया था। लेकिन वैसी स्थिति नहीं वन सकी थी। अत उसी समय से ही सघ ऐक्य के लिये प्रयत्न हो रहे थे।

अलवर चातुर्मास के समय मे आपका वक्तव्य प्रकाशित होते ही स्थानकवासी सन्त-सम्प्रदायों मे एकता सम्प्रदाय विलीनीकरण और सघ-निर्माण की योजनाओ पर चर्चा विचारणा प्रारम्भ हो गई थी। इस समय मे साधु मुनिराजों मे विभिन्न प्रकार की विचारधाराए विद्यमान थीं। वहुत से आचार्यों के मन में सभी सम्प्रदायो के विलीनीकरण और सर्वसम्मत एक्य योजना के स्वीकृत होने म सन्देह था कि क्या सैकडो वर्षो से चले आये सप्रदायो का विलीनीकरण हो

सकेगा ? अत वे एकसाथ कोई बड़ा कदम उठाने के विरोधी थे। वे चाहते थे कि फिलहाल सप्रदाय पूर्ववत् बने रहे और एकता के बदले पारस्परिक सगठन किया जाये। यह सगठन परीक्षण के रूप मे अस्थायी हो। जब यह परीक्षण सफल हो जाये और एकता की भूमिका निर्मित हो जाने पर सघ-ऐक्य का आदर्श रखा जाये। अभी ऐसा वातावरण नहीं दिखता है कि सभी सन्त मुनिराज एक ही आचार्य के आदेश और निर्देश मे रह सके। अत इस परिस्थिति मे सगठन के लिये मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना योग्य है।

लेकिन कुछ दूसरे सन्त एकता का पूर्ण समर्थन करते थे। उनका अभिप्राय था कि चारों ओर से एकता की प्रबल माग हो रही है। एकता की कल्पना-मात्र से श्रावक श्राविकाए हर्ष प्रकट कर रहे हैं। परिस्थितिया भी एकता के अनुकूल हैं। जब तक भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सत्ता रहेगी पारस्परिक स्पर्द्धा और सघर्ष चालू रहेगे और सम्प्रदायो मे हमारी शक्ति विभाजित रहेगी तो सगठन को बल कहा से मिलेगा ? साप्रदायिक भेदभाव के विषाक्त फल हम खूब चख चुके हैं एव चखते-चखते सघ-मानस दूषित हो चुका है। यही अवसर है कि एकता की सुधा पिलाकर सघ को पुन स्फूर्तिमय और सजीव बनाया जावे। यदि इस बार भी हम उदारता प्रदर्शित करके एकता का निर्माण न कर सके तो श्रावकवर्ग की उग्र प्रतिक्रिया होगी। इसके सिवाय एकता के लिये उठाया जा रहा कदम आकस्मिक नहीं वरन् पूर्व विचारित है। पूर्व में एक बार हमारे महारथी अजमेर मे मिल चुके हैं। हम दूसरी बार मिल रहे हैं। अगर हर बार वातावरण के नाम पर कोई उपयोगी और क्रान्तिकारी कदम उठाने से हिचकते रहे तो कभी भी एकता के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेगे।

वातावरण का निर्माण स्वय तो होता नहीं किन्तु हमारे मन का सुदृढ़ सकल्प और हृदय की उदार भावना ही उसका निर्माण करती है। अतएव ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि हेतु यदि हम सघ की सेवा मे अपनी समस्त महत्त्वाकाक्षाए समर्पित करने को उद्यत हैं और विराट् सघ के उत्कर्ष मे ही अपना उत्कर्ष मानने को तैयार हैं तो फिर कोई कारण नहीं कि हम एकता के लिये भविष्य की ही प्रतीक्षा करते रहे। जो कर्तव्य हमारा है उसे हमे करना चाहिये उसका भार अगली पीढी पर डालना उचित न होगा। हमे पथ का निर्माण कर देना चाहिये जिससे भविष्य के सन्त उस पर सकुशल अग्रसर हो सकें।

घाणेराव सादडी में वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय

इस प्रकार की विचारधाराओं के होने पर भी सघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करना योग्य माना जा रहा था। इसी बीच सघ-ऐक्य योजना के बारे मे पूज्य आचार्यश्रीजी के उदार विचारों की घोषणा हो चुकी थी। जिससे जनता म आशा और उतसाह की लहर व्याप्त हो गई थी।

श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस के कार्यकर्ता सम्मेलन की भूमिका तैयार करने मे सलग्न थे। उनका प्रयास सफल हुआ और सन्त-मुनिराजो की सुविधा व स्थिति को देखते हुए दिनाक 27 4 52 स 2009 वैशाख शुक्ला 3 से घाणेराव सादडी मे वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय किया गया।

सगठन की भावना समाज मे तीव्र रूप से व्याप्त थी। अत्र सम्मेलन के समय स्थान के निश्चय से समाज मे नवस्फूर्ति के दर्शन होने लगे। सम्मेलन के समय दर्शनार्थ जाने के लिये सभी भाई-वहिन अपने-अपने कार्यक्रम नियत कर रहे थे और वहुत-से मुनिराज सम्मेलन स्थान से काफी दूर थे लेकिन सघ-ऐक्य के प्रयत्नो मे सहयोगी बनने के लिये उन्होने भीषण गर्मी मे भी उग्र विहार करके समय से पूर्व सादड़ी पहुचने के लिये अपने-अपने स्थानो से विहार कर दिया था।

उभरता यौवन आदर्श त्याग

पूज्य आचार्यश्रीजी स्वास्थ्यलाभ के पश्चात् अलवर से विहार कर जयसिहपुरा होते हुए ढावला पधारे। ढावला मे पूज्यश्री के प्रवचन का श्रोताओ पर गहरा असर पडा। धर्म ध्यान का ठाठ लग गया। श्रीयुत् तिलोकचन्दजी के सुपुत्र श्री कवरलालजी ने भरपूर यौवन मात्र 37 वर्ष की वय मे सपत्नीक चतुर्थव्रत– शीलव्रत अगीकार कर भोगो के पीछे भागते मानवो के समक्ष एक उच्चादर्श प्रस्तुत किया। 34 वर्षीया धर्मपत्नी का आदर्श त्याग भी महिला-समाज को त्यागमार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए उत्प्रेरित कर रहा था। दस वर्ष पूर्व इनके पिता श्रीयुत् तिलोकचन्दजी ने भी सपत्नीक शीलव्रत अगीकार किया था। माता पिता ने आज अपने सुपुत्र को भी इसी मार्ग पर आगे वढते देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। 'तवेसु वा उत्तम वमचेर' की देशना प्रदान कर आपश्री ठाणा 8 से 15 फरवरी 52 को जयपुर पधारे। उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म जयपुर विराजते थे और प र मुनिश्री सिरेमलजी म सा भी दक्षिण की तरफ से विहार करते हुए जयपुर पधार गये थे। उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म अपने शिष्य समुदाय सहित आपश्री की अगवानी में पधारे। मुनिश्री सिरहमलजी म तो 11 कि मी दूर आमेर गाँव ही पधार गये। आचार्यश्री के प्रति आपकी अगाध भक्ति थी।

आचार्यश्रीजी के 22 सन्तो के साथ 15 दिनों तक जयपुर मे विराजने से धार्मिक जागृति का प्रसग वन गया। श्रीसघ मे भारी उत्साह छा गया। दर्शनार्थियो का आगमन निरन्तर वना रहा। 28 फरवरी को जयपुर से विहार कर आचार्यश्रीजी 8 मार्च को गदनगज पधार गये। गदनगज मे आचार्यश्रीजी के प्रभावक प्रवचन हुए। आचार्यश्रीजी ने फरमाया– 'साधु और श्रावक सभी को साम्प्रदायिक भावनाओ को तिलान्जलि देकर पदवियों के व्यामोह' से ऊपर

सम्पूर्ण सत्तासम्पन्न आचार्य एकरूप से आबद्ध हो सकें ?

सघ ऐक्य योजना की स्वीकृति ही कठिन थी किन्तु आचार्य-निर्वाचन की समस्या तो उससे भी अधिक कठिन थी। प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराए आपस में टकरा रही थीं फिर भी सभी यह चाहते थे कि ऐसे महापुरुष निर्वाचित किये जाये जो समग्र सघ का योग्यतापूर्वक सचालन कर सकें और सबके श्रद्धा केन्द्र हों।

सम्मेलन म सघ एक्य की रूपरेखा निर्णीत हो चुकी थी और मुख्य-मुख्य प्रश्नों के बारे म सर्वानुमति से निर्णय भी किये जा चुके थे सिर्फ कुछ-एक छोटे-माटे प्रश्नों पर विचार करना शेष रहा था। अत ग्रीष्मऋतु की उग्रता और दर्शनार्थियों का जमघट विशेष होने से प्रतिनिधि मुनिराजो ने निश्चय किया कि यहा आचार्यपद पर सर्वमान्य सन्तप्रवर का चयन करके चतुर्विध सघ की उपस्थिति मे ही उन्हे आचार्य पद प्रदान कर दिया जाये और शेष प्रश्नों के सम्बन्ध मे विचार परामर्श और निर्णय करने का अधिकार आगे होने वाले पदाधिकारी मुनिराजों के सम्मेलन को सौंपना उचित है।

पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा का प्रस्ताव

उपर्युक्त सुझाव का सभी ने स्वागत किया। अत वैशाख शुक्ला 8 को रात्रि की बैठक में आचार्य पद के लिये सुयोग्य सन्तप्रवर के चयन पर विचार प्रारम्भ हुआ। तब सबका ध्यान पूज्य आचार्यश्रीजी पर केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा ने श्रमण सघ के आचार्य पद के लिये पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा का नाम प्रस्तावित करते हुए इस आशय के भाव व्यक्त किये कि आप सब गुणो से सम्पन्न हैं। आपकी शास्त्रो पर प्रगाढ़ श्रद्धा है आप में चारित्र की दृढता है और ज्ञान की गरिमा से ओतप्रोत हैं। ऐसे आचार्य के नेतृत्व में ही हम ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि अच्छी तरह कर सकते हैं। अत आपको श्रमणसघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रस्ताव समर्थन के बीच ही फरमाया कि आपकी भावना अच्छी है लेकिन मुझसे बिना पूछे मेरा नाम कैसे रख दिया ? मैं तो अपना पूर्व भार ही कम करने की सोच रहा हूँ और इच्छुक हूँ कि ज्ञान दर्शन चारित्र सयम-साधना की समुचित व्यवस्था बन जाये तो अपने उत्तरदायित्व से हलका होकर आत्मसाधना में तल्लीन होऊ। लेकिन आप लोग मुझ पर और अधिक उत्तरदायित्व डालने की चेष्टा कर रहे हैं। यह मै अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता। आप सब मुनिवरों का मेरे प्रति वात्सल्यभाव सराहनीय है और उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन इस सघ-सचालन के दायित्व से मुझे विमुक्त ही रखे और अन्य किसी भी मुनिवर को इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

समग्र सन्तों का एकस्वर से समर्थन

लेकिन सभी उपस्थित वडे-वड़े विद्वान दीक्षावृद्ध वयोवृद्ध और विभिन्न सप्रदाया एव गणो के सचालक अनुभवी सन्तो ने एकस्वर से पूज्यश्री की सेवा मे सानुरोध निवेदन किया कि आपश्री ही इस नवनिर्मित श्रमण सघ के आचार्य पद को स्वीकार करने की कृपा करे।

प्रतिनिधि मुनिवरो की तो एक ही प्रार्थना थी कि यह आचार्य पद के चयन का विषय है जो समस्त मुनिवरो की भावना पर निर्भर है। वे जिनको मनोनीत करना चाहे उसमें पूछने जैसी बात कौन सी रह जाती है। आपश्री के चरणो मे समग्र सत नेतृत्व-समर्पण करना चाहते हैं इसीलिये सभी प्रतिनिधि सन्त प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं और आप इस नेतृत्व को अगीकार करे। अत पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव–पूज्यश्री गणेशलालजी म सा श्रमण सघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जायें–सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अनन्तर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा न अतीव मार्मिक शब्दों में साधु-समुदाय के समक्ष आत्मनिवेदन उपस्थित करते हुए कहा–मेरा शरीर वैसा नहीं रहा जैसा कि जवानो का होता है। मैं वृद्ध हो चला हूँ और रुग्ण रहता हूँ। आप बृहत् श्रमण सघ का महान् उत्तरदायित्व मुझ पर डाल रहे हैं आपके इस विश्वास का मैं आभारी हूँ, किन्तु उसे उठाने मे मैं कठिनता अनुभव कर रहा हूँ। अत यह उत्तरदायित्व किसी अन्य योग्य ज्ञानवृद्ध और उत्कृष्ट सयमी महात्मा को सौंपा जाये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

पूज्यश्री की इस उदारता और महानुभावता ने एक सुन्दर और स्पृहणीय वातावरण का निर्माण कर दिया। सभी सन्त आपकी उत्कृष्ट त्यागशीलता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के साथ-साथ सर्वसम्मत निर्वाचन को स्वीकृति देने के लिये साग्रह अनुरोध करने लगे।

प्र व मुनिश्री सौभाग्यमलजी का प्रस्ताव

इस प्रकार जब यह प्रश्न चर्चा मे पड़ गया तो प्र व मुनिश्री सौभाग्यमलजी म. ने एक सुझाव रखा कि पजाब सप्रदाय के पूज्यश्री आत्मारामजी म सा एक माने हुए महान् सन्त हैं। उनकी साहित्य-सेवा से समाज ऋणी है। अत उनको भी कोई-न-कोई उच्च पद देना चाहिये। उन्हे भी आचार्य का पद दिया जाये तो अच्छा रहेगा। लेकिन उनके लिये यह पद सिर्फ सम्मानार्थ ही माना जायेगा और कार्य करने की समग्र सत्ता एव अधिकार के लिये पूज्यश्री गणेशलालजी म सा का निश्चय हो ही चुका है।

उपाचार्य पद के लिए स्वीकृति प्रदान की

प्रतिनिधि मुनिवरो की ओर से जब उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म उक्त वक्तव्य दे चुके तो सबके चेहरो पर मन्द मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्यश्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण से अपने-आप को अलिप्त नहीं रख सके और सब मुनिवरों के प्रेमभरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण सघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये आपने उपाचार्य पद के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्यश्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरों की ओर से मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म ने पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य दिया-

मरुधरकेशरीजी द्वारा अभिनन्दन

अत्यन्त खुशी का समय है कि अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादडी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहा तक पहुचे तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और सगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैन जगत् के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हे कोटिश धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

चादर-रस्म का निर्णय और मन्त्रिमण्डल का चुनाव

इस प्रकार जब आह्लादमय वातावरण मे चुनाव का कार्य सम्पन्न हो गया तो निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया–

उपाचार्य पद-चद्दर की रस्म वैशाख शुक्ला 13 स 2009 बुधवार को दिन के 11 बजे अदा की जावेगी। इसके पूर्व सर्वमुनि प्रतिज्ञापत्र मयदस्तखत के तैयार रखेंगे जो उपाचार्य पद पर विराजते ही उनके चरणो में भेंट कर देंगे।

उपाचार्य पद का चुनाव हो जाने के बाद अन्यान्य व्यवस्थाओ के लिये मन्त्रिमण्डल के 16 सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमें प्रधानमन्त्री प मुनिश्री आनन्दऋषिजी म.सा निर्वाचित किये गये एव अन्य 15 प्रमुख सन्तो को सहमन्त्री चुना गया और उन-उनके कार्य निश्चित कर दिये गये।

इस प्रकार श्रमण सघ के व्यवस्था सम्बन्धी निर्णय लिये जा चुके थे तथा समाचारी सम्बन्धी मुख्य-मुख्य धाराए तो बन चुकी थीं लेकिन उन धाराओ में अभी कुछ चर्चनीय होने से विचार करके निर्णय के लिये किसी योग्य स्थान पर व्यवस्थापक मण्डल का सम्मेलन करने का निश्चय किया गया।

फिरोदियाजी की अध्यक्षता मे कॉन्फरेस का अधिवेशन

सम्मेलन के अवसर पर श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस का अधिवेशन मुम्बई धारासभा के अध्यक्ष श्री भाऊसा कुन्दनमलजी फिरोदिया की अध्यक्षता मे हुआ। श्री फिरोदियाजी श्रावक-श्राविकाओ की ओर से सम्मेलन की कार्रवाई मे दर्शक के रूप मे भाग लेते थे। सम्मेलन की सुव्यवस्थित कार्रवाई को देखकर आपने प्रशसा करते हुए कहा था कि इतनी व्यवस्था तो धारासभा की कार्य-प्रणाली में भी मुझे देखने को नहीं मिली है तथा वैशाख शुक्ला 3 से 12 के मध्य पूर्ण हुई सम्मेलन की कार्रवाई का विवरण उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं को बतलाया।

उपाचार्य पदारोहण महोत्सव

सम्मेलन में पारित प्रस्तावानुसार वैशाख शुक्ला 13 को दिन के 11 बजे श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल के प्रागण में आचार्य पद की चादर समर्पित करने का समारोह आयोजित किया गया।

इस समारोह को देखने के लिये प्रात काल से ही दर्शको का आवागमन प्रारम्भ हो गया था और दस बजे तक तो करीब पैंतीस-चालीस हजार भाई-बहिनो की उपस्थिति हो चुकी थी। लेकिन अभी भी इक्के दुक्के दर्शको के आने का क्रम जारी था।

सन्त सतियाजी म अपने-अपने योग्य स्थान पर विराज रहे थे और जब प्रमुख मुनिराजो के साथ पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा का पदार्पण हुआ तो दर्शकों ने जयघोष से स्वागत करते हुए अभिनन्दन किया।

प्रारभ में साधु सम्मेलन के सूत्रधार श्री धीरजभाई ने कार्रवाई प्रारभ होने की और सभी को शातिपूर्वक सुनने की और देखने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् उपाचार्य श्री गणेशलालजी म सा ने मुनिमडल सहित मगलमय नवकार मन्त्र और नन्दीसूत्र के मगलपाठ का एकाग्रतापूर्वक उच्चारण किया और नि शब्दता का वातावरण फैल गया।

पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार समारोह का शुभारम्भ हुआ। उस समय का दृश्य तो दर्शनीय ही था जब उच्चकोटि के सतो आचार्यो उपाध्यायों प्रवर्तकों आदि ने स्वहस्ताक्षरित प्रतिज्ञापत्र के साथ अपनी-अपनी पदवियां सघ ऐक्य के आदर्श को फलितार्थ करने के लिये समर्पित करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम चरित्रनायक पूज्य आचार्यश्रीजी ने स्वय अपना

प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया। अनन्तर पजाब सम्प्रदाय के आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा का आचार्यपद के परित्याग का पत्र और सघ-ऐक्य योजना के अनुसार व्यवहार करने का सन्देश पढ़कर सुनाया गया। सन्देश में सघ-ऐक्य के लक्ष्य को फलितार्थ करने के लिए अन्तराला के स्वर सकलित किये गये थे।

इस कार्य के सम्पन्न होने के अनन्तर समस्त मुनिराजो की ओर से प्रतिनिधि मुनिवरों ने उपाचार्य पद की चादर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा को ओढ़ाई। विभिन्न मुनिराजों ने प्रासगिक प्रवचन फरमाये।

श्री प्रेमचन्दजी म सा ने अपना वक्तव्य देते हुए फरमाया कि आज जैन समाज के लिए अपूर्व आनन्द का समय है। एक स्थान पर सभी सम्प्रदाय अपना सप्रदाय मोह आचार्य मोह छोडकर एक आचार्य की छत्रछाया में आ जाय यह कोई साधारण बात नहीं है। जो सैकड़ों क्या हजारों वर्षों से हुआ नहीं था वह आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यह देव दुर्लभ दृश्य देखकर आज जैन सघ के हर्ष का पारावार उछल पड़ा है।

पूज्यश्री आत्मारामजी म सा वृद्धावस्था के कारण आज यहा पर उपस्थित नहीं हैं। क्षेत्र से दूर हैं। लेकिन श्रद्धा से तो वे प्रत्यक्ष हैं उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा जो हमारे नायक हैं उपस्थित हैं। हम सब आज उनके आदेशानुसार चलने में कृतसकल्प हैं। जैन शासन की जय हो— यही हमारी अन्तरेच्छा है।

पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा ने अपना वक्तव्य निम्नानुसार दिया

बधुओ ! आज हम जिस देव दुर्लभ दृश्य को मगलमय प्रसग को देख रहे हैं यह इतिहास के पन्नों में सुवर्णाक्षरों से सदा अकित रहेगा। ऐसा अपूर्व दृश्य हजारों वर्षों से देखने में नहीं आया है। आज का दिन वास्तव में बोलने का या सुनने का नहीं लेकिन देखने का ही है।

आज जो दृश्य हम देख रहे हैं यह अपूर्व दृश्य उपस्थित करने का श्रेय उन महान् विभूतियों को है जिन्होने सघ-शासन के हित की दृष्टि को सामने रखकर साम्प्रदायिकता का मोह छोड दिया और पदवी का भी मोह त्याग दिया है।

सघ-हित के लिये विसर्जन की जो भावना पैदा हुई है उसी का यह सुन्दर परिणाम है।

सघ ऐक्य की योजना की विचारणा वर्षों से चल रही थी लेकिन सादड़ी क्षेत्र का यह सुप्रभाव है कि यह फलान्वित यहा हो रही है।

एक आचार्य एक श्रमण सघ और एक समाचारी की ऐक्य-योजना को विशाल चिन्तन गभीर दृष्टि समयसूचकतापूर्वक मूर्तरूप देने का जो निर्णय किया गया है वह आशातीत सफलतासूचक है। जिस प्रकार सरिताए महासागर में विलीन होकर तन्मय बन जाती हैं तदनुसार भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मोह पदविया सर्वस्व श्रमण सघ सागर मे विलीन हो गयी हैं।

यह क्षीणसागर नहीं है अपितु क्षीरसागर है। इस श्रमण सघ-रूप क्षीरसागर को पाकर आज चतुर्विध सघ प्रसन्नचित्त है प्रफुल्लमना है। जो हमने प्रतिज्ञा की है उसका हमे जिम्मेदारी और गभीरतापूर्वक पालन करने का है। एक श्रमण सघ एक आचार्य और एक समाचारी की अभूतपूर्व याजना को कार्यरूप मे परिणत करने का उत्तरदायित्व भी चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य पर है। नियमानुसार पू शोभाचदजी म सा ने रत्नचन्दजी म सा की सम्प्रदाय का आचार्य पद सप्रेम समर्पित किया था उसे मैं इस शुभावसर पर सघ-हितार्थ सुयोग्य आचार्यवर्य की सेवा मे सहर्ष समर्पित करता हूँ। आज अपना बोझा उतारकर हम हलके हो रहे हैं। हम सबने श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रमण सघ का जो बधारण नियमोपनियम सर्वसम्मति से बनाये हैं उनके अनुसार हम कर्तव्यपालन करेंगे और ज्ञान दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि करेगे। सघ-ऐक्य की योजना चतुर्विध सघ के लिए प्रगति-प्रेरक और हित-साधक सिद्ध हो यही हमारी अन्तर्भावना है।

पूज्य आचार्यश्री की सभा मे अपना पदभार समर्पित करके हम कृतार्थ हुए हैं। हमे विश्वास है कि पूज्यवर्य भी बिना किसी प्रकार के पक्षपात सत्य का रक्षण करेगे। हम सब एक हैं। सम्प्रदाय के मोह का त्याग किया है। पूज्यश्री आत्मारामजी म सा और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को हम सबने वरमाला पहनायी है। हाथी जैसे मगलमय है वैसे हमारे मगलमय गणेश भी सबको कल्याणकर मार्ग का निर्देश करेंगे ही ऐसा हमें विश्वास है।

श्री चतुर्विध सघ को अब सघोन्नति के कार्य मे हिलमिल कर आगे बढना है और कर्तव्यपालन मे सभी को तत्पर रहना है। आज्ञापालन में सघ का अभ्युदय है।

तत्पश्चात् प श्री फूलचन्दजी म सा ने प्रारम्भ मे- 'भज महावीर भज महावीर' की सामूहिक प्रार्थना कराई और तत्पश्चात् अपना सक्षिप्त वक्तव्य निम्नानुसार दिया–

आज हमारी साप्रदायिक उलझने सुलझ गयी हैं। आज हम सब एकता-क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे हैं। धीरजभाई ने समय-मर्यादा बाध दी है अत सक्षेप मे ही मैं जैन समाज से यही पूछना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान मे हिदू समाज किसको मानते हैं ? गजानन्दजी गोपाल गणेशजी को। आज हम सब भी आत्मानदी गणेशजी को 'गणेशाय नम कहकर अभिवादन और अभिनन्दन करते हैं। जैसे हमने साप्रदायिक भेदभाव छोड़ दिया है तदनुसार आप सबको भी अदेशा को छोड देना चाहिये। जातीयता साम्प्रदायिकता ने बडा नुकसान पहुचाया है। इसकी बदौलत श्रमण भ महावीर स्वामी ने मानवता और सच्चरित्रता का जो महान् सदेश दिया था उसको जैन समाज भूल गया। मानवता से जातीयता दूर भागती है। अत जातीयता को दूर भगानी चाहिये।

तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति पडित मदनलालजी महाराज ने अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि—

स 1988 मे आचार्यवर जवाहरलालजी म सा पजाव पधारे थे। श्रमण सघ सगठन करने की भावना से ज्येष्ठ माह में भी उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था। विचार-विनिमिय के परिणामस्वरूप स 1990 मे आचार्य सोहनलालजी म सा की सूचना से अजमेर में वृहत्-साधु-सम्मेलन किया गया। तब समय परिपक्व नहीं होने के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई। तत्पश्चात् मुनिश्री रामचदजी म सा पूज्यश्री काशीरामजी म एव दिवाकरजी म.सा ने इस योजना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। आज वह शुभ दिन आया है कि हम सब श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के रूप मे सूत्रवद्ध हुए हैं। हमने दस दिन की कार्यवाही मे जो-कुछ किया है वह सैकड़ों क्या हजारों वर्षों से नहीं हुआ था। हमने जो कुछ निश्चय किया है वह सर्वसम्मति से करने का प्रयत्न किया है और हृदयपूर्वक किया है। आज हमने भेदभाव साप्रदायिक खींचातानी सब को छोड़कर सघ शासन-उन्नति को दृष्टि में रखकर 'एक आचार्य एक श्रमण सघ और एक समाचारी' को सहर्ष स्वीकार किया है। हम अपना सर्वस्य अर्पण करके भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे। हमारे इस सत्सकल्प की पूर्ति करने के लिए चतुर्विध श्रीसघ हृदय से पूरा सहयोग देगा यही हमारी अन्तर्भावना है। हम आचार्यश्री आत्मारामजी म सा और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा जैसे सेनानायकों को पाकर कृतकृत्य और धन्य हुए हैं। हम उनके आदेश को एक सैनिक के रूप में शिरोधार्य करेंगे।

साहित्यरत्न प मुनिश्री सुशीलकुमारजी म ने सारभूत वक्तव्य में कहा– आत्मा सच्चिदानन्दमय है। पूज्यश्री आत्मारामजी महाराज सा हमारे आचार्य हैं और श्रीगणेश पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज सा हमारे उपाचार्य हैं। हमारे इन सेनानायको की आज्ञा को हम शिरोधार्य करेगे और एक सैनिक के रूप मे हम अपना जीवन सर्वस्व भी समर्पण कर देंगे।

इसके अलावा अनेक सन्तों ने गद्य पद्य मे अपने विचार प्रस्तुत किये। सतों के वक्तव्य के पश्चात् पूज्यप्रवर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा का मगलमय उद्बोधन हुआ।

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा का उद्बोधन

आज का उत्सव आपके लिये हर्ष का आनन्द का विषय है किन्तु मेरे लिये गहन चिन्तन मनन एव अध्ययन का। आज का दिवस महान् जिम्मेदारी का दिवस है आज तक मेरे सिर पर एक सम्प्रदाय का ही वोझ था जिसे भी मैं शारीरिक अस्वस्थता के कारण दूसरे के कधो पर डालने वाला था परन्तु सम्मेलन का निमत्रण मिलने पर सोचा था कि अपने कधे

इस बोझ से हलके हो जायेगे और आत्म-चिन्तन मनन और ध्यान-मौन करने का समय अधिक उपलब्ध होगा पर यहा तो कधे और भी बोझिल बन गये। मैं तो पद शिष्य एव सम्प्रदाय के समर्पण करने की भावना से आया था मेरी आन्तरिक इच्छा नहीं थी कि मैं इस अवस्था मे पुन आचार्य पद को स्वीकार करु किन्तु आप लोगों के आग्रहभरे मानस को भी नहीं तोड सका एतदर्थ मैंने इस पद को स्वीकार किया।

आज जो चादर ओढाई जा रही है वह एक सम्प्रदाय की नहीं समस्त वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ की है इस छोटी-सी खादी की चद्दर मे जो साधारण-सी दिखाई दे रही है सघ की महान भावनाए भरी हुई हैं एक-एक तार में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ का जीवन बोल रहा है। यह अखड धागों का समूह सघ के अखन्ड जीवन का प्रतीक है इसके पीछे सघ की महती विराट ताकत छिपी हुई है।

मैं सघ के बल पर ही इस समाज के बोझ को सुगमता से उठा सकूगा।

अभी अभी आप लोगों के सामने पडित श्री हस्तीमलजी ने कहा था कि [illegible] से हलका हो गया हू, परन्तु याद रखे वे सम्प्रदाय के बोझ से तो हलके [illegible] हैं किन्तु उन पर भी नया बोझ आ गया है उससे वे छुटकारा नहीं पा सकेंगे। [illegible] कि हाथी वरमाला पहनाने के लिये हर समय तैयार रहता है पर [illegible] वरमाला पहनाने तक ही सीमित नहीं रह जाता है उसके [illegible] भाले एव बरछियो के घाव खाने को तथा किले के प्रवेश द्वार [illegible] रहता है। युद्ध मे विजय का भार लेकर ही वह [illegible] चक्रवर्ती राजा-महाराजा की सवारी मे भी काम आता है। [illegible] नहीं बने हैं किन्तु आप पर मेरे सहित समाज का बोझ है। आपके [illegible] आदि मन्त्रियों के सहयोग पर ही मैं [illegible]। [illegible] आप सब पर कर्तव्यपालन का भार आ [illegible] है। [illegible] सहयोग देंगे क्योंकि मेरे जैसे बूढे आदमी को सहयोग [illegible] है। [illegible] म सा एक उदाहरण फरमाया करते थे।

एक राजा के कोई सतान [illegible] कारण राजा बड़ा चिन्तित रहता था। [illegible] महाराज ! चिन्ता करने से [illegible] मानव का कर्तव्य है। [illegible] मनुष्य के सही [illegible]

छोड दीजिये। वह जिसके मस्तिष्क पर बैठ जाये उसे ही अपना उत्तराधिकारी बना लीजि राजा को मन्त्री की बात अच्छी लगी। उसकी बहुत कुछ चिन्ता कम हो गयी। पक्षी छोड़ दि गया।

पक्षी उडता हुआ शहर से दूर जगल के शात एव शुद्ध वातावरण मे पहुचा और ए घसियारे-घास बेचनेवाले-के मस्तिष्क पर जाकर बैठ गया। चारो ओर से जय जयकार व नाम गूजने लगा। आज से घसियारे के मस्तिक पर घास के स्थान पर राज्य का नया बो आ गया।

घसियारे ने अपनी बुद्धिमता से समस्त प्रजा एव मन्त्रियों के मस्तिष्क मे जगह पा र थी। हर कार्य में वह मन्त्रिया का सहयोग लेता रहता था यहाँ तक कि उठते समय भ प्रधानमत्री के कधे पर हाथ रखकर उठता था। एक दिन उठते समय राजा ने मन्त्री के कन को इतने जोर से दबाया कि वह (मन्त्री) लचक गया और मुह से हसी का फव्वारा छूट गया राजा ने पूछा कि हसने का क्या कारण है स्पष्ट कहो।

मन्त्री– राजन् ! एक समय यह था कि बिना किसी के सहारे के घास के गट्ठर तक उठा लेते थे और आज केवल शरीर के बोझ को उठाने के लिये भी दूसरों का सहारा लेन पडता है यह देखकर मेरी हसी रुक नहीं सकी।

राजा– मन्त्री ! तुमने मेरे को समझने में धोखा खाया है। इतने दिन तक तो मेरे सि पर केवल घास का ही बोझ था परन्तु अब तो एक विशाल राज्य का भार है। उसे मैं अकेल बिना किसी सहारे के कैसे उठा सकता हूँ ! इसे उठाने के लिये तुम्हारे कधों को दबाता ह रहूगा। कभी बात आने पर इससे भी अधिक दबाना पड़ेगा।

मैं भी एक सामान्य साधु था आपकी तरह सयम यात्रा कर रहा था परन्तु आज आप लोगो ने मेरे कधे पर विशाल राज्य का बोझ डाल दिया। इसको उठाने के लिये आप मन्त्री लोगों के कन्धा को दबाना ही पड़ेगा। आपके सहारे से ही मैं इस भार को वहन कर सकूगा।

मुझे अपने समाज तथा साथियों पर गर्व है कि हम अपने मानस मे जिन भावनाओं को लेकर यहा तक अनेक कष्ट उठाकर आये थे उन भावनाओं ने आज मूर्त रूप धारण कर लिया। हमारी आकाक्षाए आज पूर्ण हो गयीं। परन्तु इतने में ही सतोष करके बैठ नहीं जाना है। हमारे रहे हुये साथियों को साथ लिये हुए दृढ़ता के साथ आगे को कदम बढाना है। जनगण के जीवन मे सगठन की आवाज गुजाना है एक्यता का प्रेम जगाना और सबको साथ की ऐक्यता के तार मे पिरोना है। यह कार्य तभी सफलीभूत हो सकेगा कि हम जिस आदर्श त्याग से मिल हैं उसे अक्षुण्ण रखें और प्रतिपल बढाते चल जिससे हमारा जीवन चमक उठे और विश्व हमारी ओर मुड चले। अत आज से हम यह प्रतिज्ञा करके कदम बढायें– हम

ऐक्यता के पुजारी अनैक्य को मिटाकर घर-घर मे ऐक्यता का प्रेम का सगठन का नाम गुजा कर ही दम लेगे।

इस प्रकार सघ सारथि सहित हर सन्त की वाणी मे अनूठा उत्साह था। सघ-ऐक्यता का ज्वार उमड रहा था। वैशाख शुक्ला तृतीया से प्रारम्भ सम्मेलन वैशाख शुक्ला 15 तक उल्लासमय वातावरण में चला।

सम्मेलन के प्रति सब की सद्भावना

बृहत्साधु-सम्मेलन की योजना ने समस्त जैन समाज का ध्यान आकर्षित किया था। अत सभी मे इसका फलितार्थ जानने की उत्सुकता थी। सम्मेलन से लौटकर जाने वाले दर्शनार्थियो से मिलने वाले प्राय प्रश्न पूछते थे कि सम्मेलन में क्या हुआ ? सम्मेलन के मुख्य-मुख्य प्रस्तावों के बारे में बतलाओ और आचार्य पद किन सन्तप्रवर ने सुशोभित किया है ? समस्त जैन पत्रों और अग्रणी कार्यकर्ताओ ने सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्रवाई की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए आशा व्यक्त की कि वह दिन दूर नहीं जब समस्त जैन बन्धु एकता के सूत्र में आबद्ध होकर जिन-शासन की विश्वव्यापी प्रभावना करने मे सफल होगे।

सगठन का शखनाद होने के पूर्व श्रमणवर्ग पृथक-पृथक सप्रदायों में विभक्त था। मूलभूत सिद्धान्त मान्यताए और आगम आदि एक समान होने पर भी कतिपय सप्रदायों मे पारस्परिक वदन-व्यवहार होना तो दूर रहा समाषण करने का भी व्यवहार नहीं था। समेलन में इस परिस्थिति पर विचार-चर्चा करके पारस्परिक सम्बन्धों को चालू करने का निर्णय किया गया था। फिर भी सदियो पुराने भेदभाव को मिटाकर परस्पर मे अपनत्व की भावना का विस्तार करने एव अन्यान्य दीक्षावृद्धो को अपने ही गुरुजनो के समान वदना और सत्कार करने मे सकोच दिखलाई देता था।

लेकिन इस सकोच को दूर करने का श्रीगणेश स्वय चरितनायक पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा ने अपनी ओर से किया। व्यक्ति का वास्तविक विकास पद से नहीं अपितु आन्तरिक सद्वृत्ति विराट् एव भव्य अन्तरात्मा से होता है और यही जगत् के लिये कल्याणकारी है। आपने नवनिर्माण के समय भविष्य की उज्ज्वल कल्पना को दृष्टि में रखकर पुरानी स्थिति को गौण कर दिया था। आपश्री की विनय सेवावृत्ति स्नेहशीलता सौजन्य शिष्टता और सद्भावना के फलस्वरूप सैकड़ो वर्षो से पृथक पृथक सप्रदायो में विभक्त सन्तों मे अपनेपन का भाव उत्पन्न हुआ और समग्र सघ एक प्राणचेतना से परिस्पन्दित होने लगा।

सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म का उपाचार्यश्रीजी के साथ सयुक्त चातुर्मास

पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने सघ ऐक्य सम्बन्धी निजी विचारों को सम्मेलन के समय विशद

रूप से व्यक्त किया था और विभेदक कारणो को दूर करने के लिये प्रत्येक पूर्व सम्प्रदाय में एक-दूसरे सम्प्रदाय के मुनिराजो का सयुक्त रूप मे चातुर्मास कराना आवश्यक समझते थे और इस प्रवृत्ति को आपने अपने से ही प्रारम्भ किया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी का स 2009 का चातुर्मास उदयपुर था और आपके साथ ही सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म सा., जो जैन-दिवाकर श्री चौथमलजी म के शिष्य थे का भी चातुर्मास हुआ। इस चातुर्मास की ऐतिहासिक महत्ता थी। वैसे तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की सप्रदाय के आचार्य के रूप मे पहले भी आपश्री के अनेक चातुर्मास उदयपुर में हो चुके थे लेकिन समस्त स्थानकवासी जैन साधु-साध्वियो के सर्वसत्ता-सम्पन्न उपाचार्य के रूप में यह प्रथम चातुर्मास था। उदयपुर श्रीसघ में अभूतपूर्व उत्साह व्याप्त था। उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ एव प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन बाहर के सैकडो भाई बहिन आते रहते थे और कितने तो समस्त चातुर्मास-काल को यहा ही व्यतीत करने के लिये बस गये थे।

श्रावण कृष्णा तृतीया को पूज्य उपाचार्यश्री का जन्मोत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। सन्त-सतियो एव श्रावक-श्राविकाओं के अलावा स्वय उपाचार्यश्रीजी ने जन्मदिन पर क्या करना चाहिए- इस विषय पर मार्मिक प्रवचन फरमाया। पूज्यश्री ने कहा– गत वर्ष के जीवन पर दृष्टिपात कर अपनी भूलो के लिये पश्चात्ताप करना चाहिए और आगे के लिए सत्कार्य करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उपाचार्यश्री के 63वे वर्षप्रवेश पर धर्म ध्यान त्याग तप के अलावा श्रीसघ ने हर्षोत्साह के साथ दीन अनाथजनों को भोजन दिया तथा पशुओं को भी तृप्त किया।

चातुर्मास-काल में सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म ने अपने भाव व्यक्त किये थे कि हमारे इतने वर्ष दूर रहने से मनो में कई तरह की भ्रान्तिया थीं। लेकिन निकट मे रहने से वे सब भ्रांतिया दूर हुईं और उपाचार्यश्रीजी के हृदय को नजदीक से समझ पाया हूँ। आपश्री के बर्ताव ने मुझे श्री जैनदिवाकरजी म को भुला दिया है। अब चाहे कुछ भी हो हम कभी अलग नहीं होंगे। कदाचित् श्रमण सघ बिखर सकता है किन्तु पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म की सम्प्रदाय नहीं बिखर सकती। आपश्री जो भी हुक्म देंगे हम उसको शिरोधार्य करेंगे। यदि मुझे धूप में खड़ा कर देंगे तो भी मैं कोई तर्क नहीं करूगा। हमारी आप पर पूर्ण श्रद्धा हो गई है।

उपाचार्यश्री और उपाध्यायश्री का परस्पर व्यवहार देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि पूज्य हुक्मीचदजी म.सा के सम्प्रदाय की दो धाराओं के सन्तों का यहा बिराजना हो रहा है। उपाध्यायश्री विनयावनत थे तो उपाचार्यश्री प्रेमपयोधि थे। पूज्यश्री के अथाह प्रेममय व्यवहार से सभी अभिभूत हो जाते थे।

श्रावक सघ भी एक हुआ

उदयपुर मे स्थानकवासी समाज बहुत बड़ा है। यहा श्री जवाहर मित्र मण्डल एव श्री महावीर मित्र मण्डल के नाम से दो साप्रदायिक सस्थाए चल रही थीं। घाणेराव सादड़ी सम्मेलन के पश्चात् दोनो सस्थाओ के विलीनीकरण के अनेक प्रयत्न हुए परन्तु सफलता नहीं मिली।

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा एव उपाध्यायश्री प्यारचदजी म सा के इस चातुर्मास में एकता का वातावरण बना। श्री जवाहर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता प्रजातन्त्र सिद्धान्तानुसार निर्वाचन चाहते थे जबकि श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता अपना समान प्रतिनिधित्व चाहते थे।

कॉन्फरेस के मत्री श्री जवाहरलालजी मुणोत सघ-ऐक्य समिति के मत्री श्री धीरजभाई तुरखिया कॉन्फरेस-प्रमुख श्री चम्पालालजी बाठिया के प्रभावी भाषणो से समस्याए सुलझने लगीं। श्री जवाहर मित्र मण्डल की ओर से श्री हिम्मतसिहजी बाबेल ने यह घोषणा करके एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया कि श्री जवाहर मित्र मण्डल अपना पृथक अस्तित्व समाप्त करता है और श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ताओ को कार्यकारिणी बनाने का पूरा अधिकार देता है।

इस समाचार का उदयपुर की समस्त जनता ने हर्ष के साथ अभिनन्दन किया। प्रवचन सभा में स्वय पूज्यश्री एव अन्य मुनिवरो ने इन हर्षद समाचारों पर सन्तोष प्रगट कर एकता के महत्त्व को रेखाकित किया।

पूज्यप्रवर के आभामण्डल का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि उनकी उपस्थिति मात्र समस्याओ को सुलझाने मे कारगर सिद्ध होती थी। उदयपुर का श्रावक सघ एक हो गया। पूरे देश मे इसका प्रभावक सन्देश गया।

सोजत मे मन्त्रिमण्डल के सम्मेलन का निश्चय

नवनिर्मित श्रमण सघ की व्यवस्था में दृढता लाने के लिये विचार विमर्श की आवश्यकता थी। अत वर्षावास-काल मे भी सहमत्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म से व्यवस्थाक विषयक अनेक बातों पर विचारो का आदान-प्रदान हुआ था। इसी प्रसग में यह भी विचार किया गया कि मन्त्रिमण्डल की एक बैठक होनी चाहिये जिससे सघ व्यवस्था मे रही हुई कमियों का परिमार्जन किया जा सके और सगठन के आदर्श की पूर्ति हो सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हुए और निर्णय किया गया कि चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन आयोजित किया जाये। अत अधिकारी मुनिवरों के

विचार-परामर्शानुसार स 2009 माघ शुल्ला 2 दि 17 1 53 से सोजत मे मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन किये जाने का निश्चय करके सब अधिकारी मुनिराजों को इसकी सूचना भिजवा दी गई।

चातुर्मास मे श्रोताओ ने प्रवचनो का लाभ उठाया और अत्यधिक प्रभावित हुए। आसोज सुदी 4 को रायपुर निवासी सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी धाडीवाल के ज्येष्ठ भ्राता श्री नथमलजी धाड़ीवाल की सुपुत्री एव नागौर निवासी कन्हैयालाल वैद की धर्मपत्नी श्री सूरजकवरबाई की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई।

उपाचार्यश्री सत-मण्डली के साथ विद्याभवन में

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ और मगसिर कृष्णा 1 को उपाचार्यश्रीजी म सा सन्त-मण्डली के साथ उदयपुर नगर से विहार कर हाथीपोल के बाहर शासकीय अधिकारी श्री भभूतमलजी के बगले पर पधारे। वहा पर पाली के कवि श्री हस्तीमलजी और श्री ताराचन्दजी ने उपाचार्यश्रीजी के गुणगान करते हुए कवितापाठ किया एव अन्य कई व्यक्तियो ने भी उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे प्राजल भावा से समन्वित अपने-अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये।

दूसरे दिन प्रात काल वहा से विहार करके उपाचार्यश्रीजी म सा आदि सन्त नाई गाव पधारे और वहा एक-दो दिन विराजकर पुन उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षणसस्था विद्याभवन में पधारे और विद्यार्थियो एव प्राध्यापकों के समक्ष शिक्षा सस्कृति आदि के सम्बन्ध मे मार्मिक प्रवचन फरमाया और वहा से विहार कर भुवाणा पधारे और जैन मन्दिर में विराजे।

भुवाणा जैन मन्दिर मे शाति-भग का प्रयास निष्फल

दूसरे के उत्कर्ष एव प्रभाव को सहन नहीं करने वाले कतिपय कलहप्रिय व्यक्ति सभी जगह होते हैं। उदयपुर में भी कुछ-एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें चातुर्मास-काल में होने वाले प्रवचनों का प्रभाव उपाचार्यश्रीजी के प्रति जनता की श्रद्धा भक्ति भागवती दीक्षा के समारोह की भव्यता सहन नहीं हुई और ईर्ष्या-द्वेष की प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिये अवसर की टोह में रहते थे।

उदयपुर में तो इन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल सका। किन्तु भुवाणा गाव में वे अपनी मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके। उन्होने मन्दिर में आकर शोरगुल मचाना चालू कर दिया कि भगवान् के मन्दिर मे ये साधु क्यों ठहर गये हैं ? इनके यहा ठहरने से भगवान की आसातना होती है। यहा साधुओं को आहार पानी उठना बैठना आदि नहीं करना चाहिये।

उन अर्गल प्रलाप करने वालों को समझाते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा ने मरमाया कि

भगवान् ने चतुर्विध सघ की स्थापना की है जिसमे साधु, साध्वी श्रावक श्राविका– चारो तीर्थ आ जाते हैं। भगवान् के पास बहुत-से गणधर आदि सत विराजमान थे। वे उन्हीं के पास वैठकर आहार-पानी करते थे और उन्हीं की चरणछाया मे शयन आदि क्रियाए होती थीं तो वहा साक्षात् भगवान की आसातना नहीं होती वल्कि उनकी भक्ति और सेवा का दृश्य रहता था। जवकि यहा पर तो प्रतिमा है और वह भी खास मन्दिर के भाग मे है। वहा पर सन्तो के वैठने का प्रसग ही नहीं आता है। वाहर के भाग में जहा पर आप लोग भी वैठते-उठते हैं वहा पर सत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि करते हुए रहते हैं। इसमे आसातना जैसी कौन-सी वात है ?

उपाचार्यश्रीजी के शात गभीर और युक्तियुक्त वचनो को सुनकर वे कलहप्रिय निरुत्तर हो गये और उपाचार्यश्रीजी के समक्ष विशेष न वोलते हुए पास ही मन्दिर के प्रागण में जहा अन्य सन्त वैठे हुए थे आकर हो-हल्ला मचाने लगे कि यहा से वाहर निकलो हम भगवान की पूजा करना चाहते हैं। इस स्थिति को देखकर भुवाणा के श्री सोहनलालजी आदि कुछ प्रमुख श्रावको ने शान्ति रखने का सकेत करते हुए उन भाइयों को समझाया कि आप पूजा करना चाहते हैं तो खुशी से कीजिये। सत-महात्मा तो एक तरफ विराजमान हैं। उनसे आपको क्या लेना-देना है ।

लेकिन उन लोगो का पूजा करना तो केवल वहाना था। वास्तव में उन्हे तो अपने मन की ईर्ष्या और द्वेष का प्रदर्शन करना था और चातुर्मास-काल मे उपाचार्यश्रीजी के प्रवचनों से जनता में हुए प्रभाव को धूमिल करना चाहते थे। ये सव वाते पूर्वनियोजित कार्यक्रम का अग थीं जिनको तटस्थ दर्शक प्रकारान्तर से समझ गये।

कलहप्रिय व्यक्ति फिर भी शात नहीं हुए और मन्दिर के द्वार पर आकर पुन हो हल्ला मचाना चालू कर दिया और जवरदस्ती मन्दिर मे प्रवेश करने का प्रयास करने लगे। तव श्री सोहनलालजी ने पुन उन लोगो को समझाने और शान्ति रखने का प्रयत्न किया कि आप लोगो को पूजा करना है तो शाति से कीजिये। लेकिन उन्हें तो किसी भी प्रकार से शान्ति भग करना अभीष्ट था और पूर्वनिर्धारित योजनानुसार पुलिस को भी वुला लिया एव मारपीट दगे का रूप देने का प्रयास किया।

पुलिस अधिकारी ने आकर सारी स्थिति का गहराई से निरीक्षण किया और पूछा कि इस मन्दिर की मालिकी किसकी है ? श्री सोहनलालजी आदि श्रावकों ने वताया कि यह मन्दिर हमारा है हम भुवाणावासियों की मालिकी का है। ये आने वाले उदयपुर के निवासी हैं और यहा इनका कोई अधिकार नहीं है। फिर भी ये यहा आये हैं तो लाठी आदि से रहित

होकर शान्तिपूर्वक मन्दिर में जाना चाहें जा सकते हैं। लेकिन पूजा न करके अशाति फैलाने का प्रयत्न करना योग्य नहीं है।

पुलिस अधिकारी ने सही स्थिति को समझ लिया और आये हुए कलहप्रिय लोगों को उपालम देते हुए उदयपुर की ओर रवाना कर दिया। ये लोग आये तो थे उपद्रव करने की भावना से लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा की शाति गभीरता एव भुवाणा सघ के विवेकशील सज्जनो की दृढता और शिष्टता से अपने कृत्य मे सफल नहीं हुए और लज्जित होकर निराश लौटना पडा। विवेकहीनता का ऐसा ही कटु परिणाम होता है।

मेवाड मे विचरण, सघीय सुव्यवस्था के लिए प्रयास

भुवाणा से सुखे-समाधे विहार कर सीरवा के घाटे पर एक मकान मे रात्रि विश्राम किया और वहा के चौकीदार ने आपके हितोपदेश को सुनकर मद्य-मास आदि का त्याग किया। दूसरे दिन प्रात काल यहा से विहार कर एकलिगजी पधारे। एकलिगजी वैष्णव समाज का तीर्थस्थान माना जाता है। उदयपुर राज्य में एकलिगजी की गादी मानी जाती है। वहा के महन्त की वैष्णव समाज मे बड़ी प्रतिष्ठा है। वहा एकलिगजी के मन्दिर में उपाचार्यश्रीजी का एक प्रवचन हुआ।

एकलिगजी से विहार करके देलवाड़ा पधारे और प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म. से श्रमण सघ के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। प्रधानमन्त्रीजी ने सघ विषयक कई उलझनभरी समस्याए रखीं जिनका उपाचार्यश्रीजी म सा ने समाधान किया।

देलवाड़ा मे कुछ दिन विराजने के पश्चात् वहा से विहार कर नाथद्वारा पधारे। यहा पर भूतपूर्व मेवाड़ सप्रदाय के सन्तों व भूतपूर्व मेवाड सम्प्रदाय से अलग हुए सन्तों के बीच मनमुटाव था। उस समस्त स्थिति को उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे निवेदन किया गया। जिसका आपश्री ने योग्य रीति से समाधान करके परस्पर में क्षमायाचना करायी। यहा पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म सा के अस्वस्थ हो जाने से प मुनिश्री नानालालजी म.सा. (बाद मे आचार्य) को सेवा में रखकर उपाचार्यश्रीजी म सा विहार करते हुए सेवाज पधारे। बाद में स्वस्थ होने पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म सा को लेकर प मुनिश्री नानालालजी म सा भी सेवा मे पधार गये।

इन दिनो उपाचार्यश्रीजी म.सा की भी शारीरिक स्थिति कमजोर चल रही थी। आ. उपाचार्यश्रीजी म.सा सोच रहे थे कि सघ-सचालन सम्बधी कार्यभार अन्य किन्हीं मुनिराज को सौंप कर आत्मसाधना मे लगू। लेकिन जब यह बात समाजदर्शी वरिष्ठ श्रावकों एवं सन्तों को मालूम हुई तो उन्होंने आपश्री से ऐसा नहीं करने की प्रार्थना करते हुए साग्रह निवेदन

किया कि बड़ी मुश्किल से श्रमण सघ बना है और वह भी आपके इस भार को ग्रहण करने से ही। यदि आपश्री अभी से ही इस भार को छोड देते हैं तो यह सब-कुछ बिखर जायेगा और दूसरे लोग हसी उडायेगे। क्योकि आपके अलावा इस समय सबके विश्वासपात्र अन्य कोई मुनिवर नहीं हैं। कुछ सत राजनीतिक दलो की तरह पैंतरेबाजी मे लगे हुए हैं। अत इस नाजुक स्थिति मे आपको इस भार को कतई नहीं हटाना चाहिये।

इन प्रार्थनाओ पर उपाचार्यश्रीजी मसा ने गभीरता से विचार किया और अपनी शारीरिक स्थिति को गौण कर दिया।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन और महत्त्वपूर्ण विषयो पर निर्णय

मन्त्रिमण्डल सम्मेलन के समय व स्थान को ध्यान मे रखते हुए उपाचार्यश्रीजी मसा मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को धर्मदेशना से पावन बनाते हुए सोजत की ओर विहार कर रहे थे। अन्य अधिकारी सत-मुनिराजो ने भी यथासमय सोजत पधारने के लिये चातुर्मास-समाप्ति के अनतर अपने-अपने क्षेत्रो से विहार कर दिया।

सोजत में पूज्य उपाचार्यश्रीजी प्रधानमत्री श्री आनन्दऋषिजी श्री फूलचन्दजी म श्री सुशीलकुमारजी म आदि 100 सन्तो का एकसाथ नगर-प्रवेश रमणीय था। उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म एव मरुधरकेशरीजी मसा आदि ने आपश्री का भव्य स्वागत किया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी आदि 85 सन्त चौपडाजी की धर्मशाला मे विराजे। कुल 136 सन्त और 142 सतियाजी सोजत पधारे।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन चौपड़ाजी की धर्मशाला के विशाल हाल मे ही हुआ।

पूर्व निश्चयानुसार स 2009 माघ शुक्ला 2 से उपाचार्यश्रीजी मसा के नेतृत्व मे मन्त्रिमण्डल की बैठक प्रारम्भ हुई। सम्मेलन में सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति के 9 तिथिनिर्णायक समिति के 8 एव मन्त्रिमण्डल के 11 सदस्य मुनिराजो या उनके प्रतिनिधि सन्तो के अतिरिक्त विशेष रूप से आमन्त्रित प मुनिश्री समर्थमलजी म., प मुनिश्री मदनलालजी म कवि श्री अमरचन्दजी म उपस्थित थे।

प्रतिदिन प्रात 9 से 1030 और दोपहर 1 से 3 बजे तक पूज्य उपाचार्यश्रीजी की अध्यक्षता एव व्याखा मुनि मदनलालजी मसा की शातिरक्षकता में मन्त्रिमण्डल तथा दोनों निर्णायक समितियो का कार्य सयुक्त रूप से चला।

आगम सशोधन हेतु पूज्य उपाचार्यश्रीजी म., उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म., पश्री समर्थमलजी म एव प्रधानमत्री श्री आनन्दऋषिजी मसा को नियुक्त किया गया।

सम्मेलन की कार्यवाही की रिपोर्ट लिखने के लिये मुनिश्री नेमिचदजी एव मुनिश्री आईदानजी म की नियुक्ति की गई।

प्रत्येक विचारणीय विषय पर खुलकर विचार-विमर्श हुआ। सचित्ताचित्त निर्णय और ध्वनिवर्धकयन्त्र को लेकर समाज मे खूब ऊहापोह चल रहा था। उनका समाधान होना आवश्यक था। नवीन और पुरातन विचारधाराओ मे भी मेल बैठाना आवश्यक था। सोजत मे दोनो धाराओ के गुणावगुणो के निरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ।

ऐसे समय में उपाचार्यश्रीजी की समता और उदारता अनायास ही सबके सामने झलकती रहती थी। आपश्री का आदर्शो के प्रति प्रगाढ स्नेह था। तप-त्याग ही आपके साधक जीवन के एकमात्र भोजन थे। सयम ही आपके जीवन का श्वास था।

दृष्टिकोणो की विभिन्नता के कारण आपका किसी से विरोध नहीं था द्वेष नहीं था, किन्तु सभी दृष्टिकोणो को भलीभाति समझने की एक सरल जिज्ञासा आप मे सतत विद्यमान रहती थी। आपके मन की मृदुता वार्त्तालाप करने वाले के मन म असद्भाव उत्पन्न नहीं होने देती थी किन्तु वार्त्तालाप करने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारो का पुनर्निरीक्षण करने की इच्छा होती थी। यही कारण है कि आपसे मतभेद रखने वालो में भी आपके प्रति मनभेद उत्पन्न नहीं होता था। अपनी इस उदारवृत्ति के कारण ही आप सघ सगठन के साधक और शाति के सन्देशवाहक के रूप मे प्रसिद्ध रहे।

पाँच बड़े सन्तो के सयुक्त चातुर्मास का निर्णय

सम्मेलन में बहुत-से प्रश्नो पर निर्णय हो चुका था। मन्त्रिमण्डल के कार्यों का विभाजन हो चुका था। लेकिन अभी भी कुछ ऐसे प्रश्न शेष रह गये थे जिन पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करना आवश्यक था। इनके बारे में सोचा गया कि उपाचार्यश्रीजी के नेतृत्व में कविवर्य श्री अमरचन्दजी म., व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म., प्र मन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म और प र श्री समर्थमलजी म का सयुक्त रूप से आगामी चातुर्मास किसी एक स्थान पर कराया जाये और उस स्थान पर फिर उन प्रश्नो के बारे म चर्चा करके निर्णयात्मक रूप चतुर्विध सघ के समक्ष रख दिया जाये।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी से इस सम्बन्ध मे स्वीकृति मागने पर आपने फरमाया कि विचार स्तुत्य है लेकिन सयुक्त चातुर्मास में विचारणीय विषयो की रूपरेखा तत्सम्बन्धी शास्त्रीय प्रमाण आदि की तैयारी हो जानी चाहिये। रूपरेखा व्यवस्थित होने पर मैं इसके बारे में कुछ निश्चयात्मक कह सकता हूँ। सत-मुनिराजों ने आपके विचारों को महत्त्वपूर्ण माना और कहा कि आपके विचारानुसार कार्य की रूपरेखा तैयार कर ली जायेगी।

इस सम्मेलन में तेतीस विषया के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये और उनम से पच्चीस निर्णयों को चतुर्विध सघ की जानकारी के लिये यथासमय घोषित कर दिया गया। सम्मेलन दि 30153 को समाप्त हुआ।

शातिदूत ने ब्यावर मे वैमनस्य दूर कर शाति स्थापित की

सोजत सम्मेलन के अवसर पर विभिन्न श्रीसघो ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी से अपने-अपने क्षेत्र पावन करने की विनतिया कीं। उनमे ब्यावर श्रीसघ भी एक था। उसने अपनी प्रार्थना में कहा– भते ! हम पर भी कृपा कीजिये। ब्यावर का सामाजिक विरोध सघ-सगठन मे चट्टान की तरह बाधक बन रहा है। आपकी पीयूषवर्षिणी वाणी द्वारा स्नेहसुधा का सिचन होने से वहाँ एकता स्थापित हो सकती है। अतएव हमारी प्रार्थना स्वीकार करके ब्यावर पदार्पण कीजिये। हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिये। आपका पुण्य पदार्पण हमारे लिये मगलमय होगा। महापुरुषों का सहवास महानता का महोत्सव है।

जब मनुष्य स्वार्थपरक विचारो से प्रभावित होकर सग्रह की भावनाओ मे लिप्त हो जाता है तो वह उन साधनो को एकत्रित करने मे व्यस्त रहता है जिनसे समहूगत साधनो का व्यक्तिमूलक रूप रह जाये। इस स्थिति में विषमता का जन्म होने से सभी दुखी होते हैं। स्पष्टता सरलता शुद्धता एव आनन्द का रूपान्तरण हो जाता है और रहस्य का आवरण अनेक समस्याओ को जन्म देता है जो नैतिक मूल्यो के विकास को अवरुद्ध कर देता है। लेकिन महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे उस विषमता में समता समस्या मे समाधान और शाति का सजृन करते हैं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति आधारभूत तथ्यो पर प्रकाश डालकर सदैव निकट से निकटतर और निकटतम आने के लिये अनुप्रेरित करती रहती है।

पूज्य उपाचार्यश्री का हृदय नवनीत-सा कोमल था। आपने सब सुना और गुना। आपने सोचा– ब्यावर में ईर्ष्या-द्वेष की आग धधक रही है। और वहा से उठने वाली ज्वालाए आस-पास के क्षेत्रो को भी सतप्त कर रही हैं। लोग कषाय से प्रेरित होकर व्यर्थ ही कर्म-बध कर रहे हैं। उनके चित्त में शाति स्थापित हो मैत्रीभावना का विकास हो स्वधर्मी-वात्सल्य का विस्तार हो और सघ से द्वेष दूर हो जाये तो उत्तम रहे। यह सोचकर आपश्री ने ब्यावर सघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यथावसर वहाँ पहुचने के भाव व्यक्त किये।

ब्यावर सघ की विनती मे आत्मवेदना की अभिव्यक्ति का स्वर सजोया गया था। लेकिन उसमें इतना विश्वास भी विद्यमान था कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमारा ईप्सित प्राप्त होगा। विनती की तत्काल स्वीकृति को ब्यावर श्रीसघ ने शाति और मैत्री के लिये शुभ शकुन माना।

सोजत से विहार कर क्रम क्रम से विभिन्न क्षेत्रो म विशिष्ट उपकार करते हुए पूज्य

उपाचार्यश्रीजी ब्यावर नगर के बहिर्भाग में आ पहुचे और एक योग्य स्थान में ठहर गये। सज्जन आपके आगमन की टकटकी लगाये बाट जोह रहे थे। शुभागमन की अगवानी करने के लिये सेवा मे उपस्थित हुए लेकिन आपश्री ने फरमाया— जब आप सब में पारस्परिक शांति स्थापित हो जायेगी तभी हम सन्तो का नगर में प्रवेश होगा।

उपाचार्यश्रीजी का यह निर्णय ब्यावर श्रावक सघ के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर बन गया कि हमारे अहोभाग्य से महान सन्तों का पदार्पण हमारी नगर-सीमा तक तो हो चुका है लकिन आपसी फूट कलह और द्वेष का वातावरण नगर-पदार्पण में व्यवधान बना है। आत्मग्लानि की अग्नि मे द्वेष गलने लगा। अन्तर् मे बैठा अभिमान मृदुता में रूपान्तरित होने लगा। कलह का ककास सुलह के कलकल में परिवर्तित होने लगा। परिणामत सघ में शांति व समझौते का वायुमण्डल बना और मैत्री शाति स्थापित हो गई।

आपश्री ने यथासमय नगर में प्रवेश किया। उस समय ब्यावर मे अपूर्व उल्लास फैल गया था। बरसों के बिछुडे हुए गले लग रहे थे और नये प्रकाश मे नये निर्माण की नींव रख रहे थे। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दूरन्देशी निर्णय मे आदेश नहीं लेकिन सत्य के प्रति आग्रह था। समूह की शक्ति को छिन्न भिन्न करने वाले व्यवहार और पारस्परिक असहयोग असहकार एव अन्याय का प्रतिकार नहीं किया जाये तो उससे व्यक्ति ही नहीं वरन् समाज और राष्ट्र विपत्ति म फसते हैं। उसका प्रतिकार करना साधु पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण और व्यवहार्य उपाय खोज निकालना उनके सत्य-आग्रह का ध्येय होता है। पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने यही आदर्श अपने निर्णय द्वारा व्यक्त किया था। इसीलिये तत्काल सुमति के माध्यम से समता और शाति का वातावरण बन गया।

थावला के पार्श्ववर्ती गॉव मे राजपूतो को व्यसनमुक्त किया

ब्यावर में समता का सन्देश मुखरित कर और अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उसको स्थायी बनाकर आपश्री ने वहाँ से जेठाणा की ओर विहार किया रास्ते में थावला ग्राम से कुछ ही आगे एक गाव पड़ता है। वहा अधिकतर राजपूतों के घर हैं जो देवी देवताओं के नाम पर या भोजन के हेतु जीवहिंसा करना साधारण कार्य समझते थे। ऐसा कोई तीज त्यौहार नहीं होता था जब दो चार मूक पशु मौत के घाट न उतार दिये जाते हो। सारा गाव अपरिचित था और जैनों का एक भी घर नहीं था। यहा आपश्री का एक प्रभावशाली प्रवचन हुआ। जिसे सुनकर ग्रामवासी गदगद हो गये। आपश्री ने प्रवचन में उन मानवीय भावों को स्पष्ट किया था जिनके अभाव म मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र दुखी होता है। राजपूतों को अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए आपने फरमाया–

अहिंसा वीरों का साधन है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिसा से ही अधिक पीडित है। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिसा से दूसरो को तो गिरा सके या नहीं किन्तु अपने-आप को तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा देता है।

'इसलिये मेरा आप लोगो से कहना है कि यदि आप अपने-आप को परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं और इस सृष्टि में उत्कृष्ट समानता का वातावरण बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप मे अहिसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा आत्मसमानता यानी परमात्मवृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।

प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि 35 व्यक्तियो ने तत्काल शिकार खेलने का परित्याग कर दिया। जुआ खेलने मद्यपान करने तथा तमाखू आदि नशीली चीजो के सेवन करने का भी बहुत-सो ने त्याग किया।

सन्तो के सहज प्रेममय प्रवचन का जो अमृतपान कर लेता है वह सदा के लिये सन्तो का बन जाता है। सन्तो का अपना स्वार्थ क्या है ? वे स्वात्मकल्याण के साथ परहित मे स्वहित मानते हैं। परोपकार को भी आत्मकल्याण की साधना का अग समझकर जगत् का महान्-से-महान्तम कल्याण करते हुए भी अहकार का अनुभव नहीं करते हैं। उन्हे यह गर्व नहीं होता कि उन्होने दूसरों को उपकृत किया है। सन्तो के जीवन की यही विशेषता होती है कि उनम जीवन के सहायक तत्त्वों का स्वाभाविक समावेश होता है।

जोधपुर सयुक्त चातुर्मास की स्वीकृति

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के अवसर पर यह विचार किया गया था कि तपोपूत और ज्ञानवृद्ध सन्तो को यदि एक ही स्थान पर लम्बे समय तक निवास करने का अवसर मिले तो बहुत सी सैद्धातिक आगमिक गुत्थियो को सुलझाया जा सकता है विवादास्पद विषयो पर तथ्यसगत समाधान खोजा जा सकता है तथा सन्तों मे भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है। समाज मे एकता का शीतल समीरण प्रवाहित होगा। महान् सन्तों का विशुद्ध प्रेम समाज की धमनियों मे अमृत का सचार करने में सहायक होगा। इन्हीं सब दृष्टिकोणो को ध्यान में रखते हुए स 2010 का चातुर्मास सयुक्त रूप से करने की योजना निश्चित की गई थी।

इस प्रकार के आयोजन के सम्बन्ध में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के विचारो का पहले ही सकेत किया जा चुका है कि यह कल्पना अच्छी है किन्तु जब तक इसके लिये कोई ठोस योजना तैयार नहीं कर ली जाती तब तक उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

चातुर्मास के लिये तो योजना बनी लेकिन विचारणीय विषयो की सूची अभी तक नहीं बनी थी और प्राय सभी ने कहा कि चातुर्मास-स्थल पर पहुचने के बाद बना ली जायेगी।

सयुक्त चातुर्मास सम्बन्धी पूर्व तैयारी हो चुकी थी। अब सिर्फ योग्य स्थान का निश्चय होना शेष रहा था। चतुर्विध सघ सयुक्त चातुर्मास के बारे मे आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था कि चातुर्मास किस स्थान पर होता है। राजस्थान के सभी सघ इस अवसर का लाभ उठाने के लिये उत्सुक थे लेकिन सुविधाजनक स्थान कौन-सा होगा बस यही विचारणीय रह गया था जिससे सभी सन्त उक्त स्थान पर पधार सके।

ब्यावर से विहार करते-करते पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा ग्राम-ग्राम मे उपदेशामृत की वर्षा करते हुए जब मेडता पधारे तो जोधपुर श्रावक सघ स 2010 का सयुक्त चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ। पूर्व मे अपने द्वारा की गई कार्रवाई को पूज्यश्री के समक्ष निवेदन किया और आपने परिस्थिति को जानकर जोधपुर में चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमाई।

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा., प्र मन्त्री श्री आनदऋषिजी म सा., वयोवृद्ध स्वामी श्री पूरणमलजी म सा., व्या वा श्री मदनलालजी म सा., कविरत्न श्री अमरचन्दजी म.सा., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म सा आदि ठाणा 28 एव महासतियाजी म सा ठा 62 का जोधपुर में सयुक्त चातुर्मास हुआ। प.र. बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म.सा का भी चातुर्मास यहीं करवाया गया।

सयुक्त चातुर्मास मे सघ की उदारता एव उपाचार्यश्री की महानता के दर्शन

इस चातुर्मास मे शास्त्रीय चर्चा हुई। विवादास्पद विषयो का मथन हुआ। सादडी व सोजत मे लिये गये निर्णयो का पर्यवेक्षण हुआ। सामाजिक एकता का आधार सुदृढ बनाने के विषय में मत्रणा हुई। फिर भी जितने लाभ की आशा थी उतना लाभ समाज को नहीं हुआ। चतुर्विध श्रीसघ ने वृहत्साधु-सम्मेलन सादडी के अवसर पर जिस उत्साह और दृढता का परिचय दिया था वह सोजत सम्मेलन के अवसर पर परिलक्षित नहीं हुआ और जो सोजत में था वैसा यहा दृष्टिगत नहीं हुआ था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि औपचारिकता का निर्वाह करने के लिये ही यह सब हो रहा हो। सयुक्त चातुर्मास में सम्मिलित होने वाले मुनियो में भी उत्साह मन्द था। जिस उद्देश्य को लेकर [illegible] जन किया गया था उसमें उलझनें सुलझने के बजाय उलझती [illegible] किसी [illegible] र्णयात्मक भूमिका नहीं बन सकी।

लेकिन इसका आश [illegible] नहीं कि [illegible] रहा। इस समय में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के [illegible] दि [illegible] के दर्शन हुए। आपकी सूझबूझ और हार्दिक [illegible] नेता बड़ी था काम

किया। सन्तो मे पारस्परिक प्रीतिभाव मे जो वृद्धि हुई वह कोई साधारण बात नहीं थी। सबने पारस्परिक दृष्टिकोण पर उदारतापूर्वक विचार किया। दृष्टिकोणों के प्रति मतभेद था किन्तु मनभेद नहीं था। सभी सन्त यह चाहते थे कि आगम के आलोक मे अनिर्णीत को निर्णीत बनाये एव वृहत्साधु-सम्मेलन मे स्वीकृत सघ-ऐक्य के आदर्श को प्रतिफलित करें।

चातुर्मास-काल मे श्री अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक जोधपुर श्रावक सघ द्वारा जोधपुर मे बुलाई गई। जिसमे समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावको ने भाग लिया एव सघ-सगठन बनने के बाद श्रावक सघों म जो परिवर्तन हुए अथवा नहीं हुए उन सबकी समीक्षा कर सगठन को सुदृढ बनाने के निश्चय किये गये।

जोधपुर का यह चातुर्मास ऐतिहासिक था। देश के कोने-कोने से आगत स्वधर्मी बन्धुओ की व्यवस्था बहुत ही उत्तम और सुविधापूर्ण थी। सैकडो की सख्या में प्रतिदिन दर्शनार्थी आते परन्तु उनका प्रबध इस रीति से होता था कि उन्हे यह अनुभव नहीं हो पाता कि हम परदेश में आये हैं। सघ के अग्रणी प्रमुख श्री कानमलजी नाहटा आदि सज्जनो की प्रबन्ध-व्यवस्था सराहनीय थी।

इस काल मे श्रावक-श्राविकाओ और महारथी सन्तो और सतियो ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी की महानता के निकट से दर्शन किय उनके हृदय की कोमलता परहितवृत्ति परदु खकातरता और सेवाभावना आदि विशिष्टताओ का साक्षात्कार किया। सयम की साधना ज्ञान की गम्भीरता तात्त्विक विवेचनाशक्ति को परखा। देदीप्यमान प्रभामण्डल से दमकते मुखमण्डल की मनोहर छटा मानवीय मनो को आकृष्ट कर लेती थी।

इन्हीं सब विशेषताओ की अभिव्यक्ति करते हुए कविवर्य श्री अमरचन्दजी म सा ने कहा था– पूज्यश्री का व्यक्तित्व भले ही ऊपर से लोहवत् कठोर दिखाई देता हो किन्तु जिन्होने उन्हे निकट से देखा है उन्हे तो अन्तर् मे कोमलता ही दिखलाई दी है। किसी ने ठीक ही कहा है– लोकोत्तर पुरुषो के चित्त को पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। एक ओर उनम वज्र से भी अधिक कठोरता प्रतीत होती है तो दूसरी ओर उनमे फूल से भी अधिक कोमलता के दर्शन होते हैं। यह कठोरता और कोमलता का अपूर्व सगम महापुरुषो की लोकोत्तर महिमा का द्योतक है।

सयुक्त चातुर्मास के पश्चात्

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी पाली पधारे। फिर नागौर आदि क्षेत्रा की ओर विहार हुआ। इस क्षेत्र मे गोगोलाव ब्यावर कुचेरा बीकानेर आदि सभी सघ अभी से आगामी वर्ष के चातुर्मास के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासनात्मक सकेत प्राप्त करने के लिये

विनती करने लगे। लेकिन अभी चातुर्मास पूर्ण ही हुआ था और भविष्य की स्थिति भावी के अधीन थी अत अभी से किसी को भी सकेत देने की स्थिति नहीं बन सकी।

लेकिन कुचेरा श्रीसघ के अगणी श्रावक स्व सेठ इन्द्रचन्दजी गलड़ा की धर्मपत्नी की हार्दिक इच्छा थी कि पूज्यश्रीजी का आगामी चातुर्मास कुचेरा हो। उक्त आग्रह को लेकर समय-समय पर कुचेरा श्रीसघ के अग्रणी सेठ श्री मोहनमलजी चोरडिया श्री भागचन्दजी गेलड़ा आदि प्रमुख सज्जन पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित होते रहे थे।

स्थिति और समयादि को देखते हुए पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा ने स 2011 का चातुर्मास कुचेरा करने की स्वीकृति फरमाई और यथावसर पूज्यश्रीजी ने चातुर्मास हेतु पदार्पण किया। आपश्री के साथ ही स्थविर पद-विभूषित मुनिश्री हजारीमलजी म सा (जो पूज्यश्री जयमलजी म सा की भू.पू. सम्प्रदाय के थे) का भी कुचेरा चातुर्मास हुआ।

अधिकारी मुनिवरों के सोजत सम्मेलन और जोधपुर चातुर्मास में हुई कार्रवाई चतुर्विध सघ को ज्ञात हो चुकी थी। सघ ऐक्य योजना पर एक आवरण-सा पडता जा रहा था। अपने विचारों से आगे कोई बढना नहीं चाहता था और एक प्रकार से गतिरोध की स्थिति बन चुकी थी।

चातुर्मास-काल मे कुछ निर्णय किये भी गये। फिर भी कुछ ऐसे प्रश्न थे जिनके समाधान के लिये समस्त साधु-सन्तों की राय लेना उचित प्रतीत हुआ और पुन वृहत्साधु सम्मेलन किया जाना उपयुक्त समझा गया। इसके लिये काफी विचार-विमर्श के बाद अन्ततोगत्वा निश्चय किया गया कि अभी तक व्यवस्थापकमण्डल ने जो भी कार्रवाई की है उसकी सपुष्टि के लिये वृहत् सम्मेलन किया जाना चाहिये।

वृहत्साधु-सम्मेलन कहाँ और किनके सान्निध्य मे हो ?

चातुर्मास-काल में ही कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक कुचेरा में हुई। पुन वृहत्साधु सम्मेलन का आयोजन करने के लिये कॉन्फरेंस की ओर से प्रयत्न हो रहे थे। श्रमण सघ की प्रगति में उत्पन्न अवरोधों का निराकरण ऐसे सम्मेलन द्वारा ही हो सकता है। अत जोधपुर चातुर्मास के अवसर पर सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी लेकिन अब सिर्फ उपयुक्त स्थान के चयन का ही प्रश्न था कि सम्मेलन कहा किया जाये ? कॉन्फरेंस का शिष्टमण्डल एतद्विषयक विनती लेकर पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ और निवेदन किया– भगवन् ! आगामी वृहत्साधु-सम्मेलन के लिये कौन सा स्थान उपयुक्त रहेगा ?

पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया– जोधपुर में सम्मेलन के स्थान के बारे में भी विचार विनिमय हुआ था। उस समय मैंने अपने विचार व्यक्त किये थे कि मेरे सान्निध्य में सम्मेलन सम्बन्धी तीन कार्य हो चुके हैं इसलिये आगामी वृहत्साधु सम्मेलन लुधियाना आदि

क्षेत्रो मे पूज्यश्री आत्मारामजी म के सान्निध्य मे होना उपयुक्त रहेगा। आज भी मेरे यही भाव हैं। यद्यपि उन्हें सम्मान का पद दिया गया था फिर भी उपाचार्यश्री चाहते थे कि उनके सान्निध्य मे एक कार्य होने से उनका सम्मान भी रह जाएगा। उपाचार्यश्री के इस प्रकार के उदात्त विचारो को जानकर कॉन्फरेस वाले एव सब सन्त आश्चर्यचकित रह गये।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी के विचारानुसार कॉन्फरेस की जनरल कमेटी ने लुधियाना मे वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय कर वहा के सघ को सम्बन्धित जानकारी दी। लुधियाना सघ ने सम्मेलन के लिये कॉन्फरेस को आमन्त्रण भेज दिया और वहा वृहत्साधु-सम्मेलन होना निश्चित हो गया।

इन्हीं दिनो के आस-पास कॉन्फरेस के अध्यक्ष सेठ श्री चम्पालालजी वाठिया पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ पुन कुचेरा पहुचे। वार्त्तालाप के प्रसग मे सम्मेलन सम्बन्धी चर्चा भी हुई। अध्यक्ष महोदय ने कहा कि वर्षावास के पश्चात् आपश्री का विहार लुधियाना की ओर होगा ? इस पर उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया कि मैं चाहता हूँ कि लुधियाना आचार्यश्री की सेवा मे पहुचू, लेकिन यह भावी के अधीन है उस समय तक कौन जाने क्या बने ! पहुचना तो इस शरीर से होगा। यह शरीर कुछ शिथिल हो रहा है। घुटनो और पैरो म पीडा रहती है। इस अशक्तिवश यथासमय लुधियाना पहुच सकू या न पहुच सकू, कुछ निश्चित कह नहीं सकता। मैं न भी पहुच सकू, किन्तु मेरी ओर से कुछ सन्त लुधियाना पहुच ही जायगे। अन्य प्रमुख मुनिवर वहा पहुचेंगे ही उन्हे समस्त कार्रवाई और विचारणीय विषय ज्ञात हैं। सादडी सम्मेलन मे उद्देश्य निश्चित हो चुका है और अब तो उसमे रही हुई कमियो को दूर कर अमली रूप देना है।

अध्यक्ष महोदय को यह परिस्थिति विचारणीय प्रतीत हुई। उन्होने मन्त्री मुनिवरा की सेवा में सूचना भेजी और समस्त स्थिति सामने रखी। साथ ही पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना की कि हमें क्या करना चाहिये और सम्मेलन कहा करना चाहिये ? कॉन्फरेस कार्यालय को भी सम्बन्धित जानकारी दी कि उपाचार्यश्रीजी लुधियाना सम्मेलन में पहुच सकेंगे या नहीं यह सन्देहास्पद है।

समाज के प्रमुख प्रमुख श्रावकों कार्यकर्ताओ का एक शिष्टमण्डल इस परिवर्तित परिस्थिति पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म सा की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की— भगवन् ! उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा शरीर के कारण आपकी सेवा मे उपस्थित होने मे असमर्थ हैं। वे सम्मेलन मे सम्मिलित न हो सके तो क्या करना उचित होगा ?

पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म सा मद्र सरलस्वभावी थे। उन्होने फरमाया— आज तक

सम्मेलन का सचालन सफलता के साथ उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. करते आय हैं। उन्हे सम्पूर्ण कार्रवाई का प्रत्यक्ष अनुभव है और किसी भी परिस्थिति से अपरिचित नहीं है अतएव सम्मेलन में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। साधु-सम्मेलन होना गुरुतर काय है। अतएव सघ-नेतृत्व के सर्वाधिकारसम्पन्न अधिकारी जहा भी सुगमतापूर्वक पहुच सकते हो, वहीं सम्मेलन होना चाहिये। मैं स्वय नहीं पहुच सकूगा तो मेरी सद्भावनाए अवश्य वहा रहगी। सघ-सगठन का आदर्श फलित हो यही मेरी आकाक्षा है।

इस प्रकार दोना महापुरुषों ने विचार व्यक्त किये थे। यद्यपि दोनों महापुरुषों की उपस्थिति सम्मेलन म नूतन चेतना का सचार करती और सगठन को अपूर्व बल प्राप्त होता, मगर दोनो की वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से ऐसा होना सम्भव नहीं दिख रहा था। अत सम्मेलन के आयोजको के समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। सम्मेलन होना आवश्यक था किन्तु करें तो करें कहा ?

मन्त्री मुनिवरो से इसके समाधान के लिये राय पूछी गई। उनकी राय हुई कि दोनों पूज्यश्री सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित हो तो सर्वोत्तम है। लेकिन ऐसी परिस्थिति नहीं बनती हो तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की उपस्थिति तो सर्वांशत आवश्यक है ही। आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. अपने सघ मे सम्माननीय स्थिति के स्वामी हैं और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का सघ सचालन एव अनुशासन पालन करवाने आदि का दायित्व व श्रमण सघ सम्बधी अनुभव मूल्य रखता है। ऐसी स्थिति में पूज्य आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त करके उपाचार्यश्रीजी के सान्निध्य में सम्मेलन करना ही उपयुक्त होगा।

इन विचारो को साथ लेकर कॉन्फरेस का शिष्टमण्डल कुचेरा मे पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा म उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. ने फरमाया है कि आपश्री जहा पर उपस्थित हो सकें वहीं पर सम्मेलन करना उपयुक्त होगा। अत आपश्री कितनी दूर और कितने समय में पधार सकेंगे इसका कुछ आभास हो जाये तो उसी स्थान पर सम्मेलन करने का सोचा जाये।

आपश्रीजी ने प्रत्युत्तर मे फरमाया कि मैं इस समय क्या कहूँ, मेरे शरीर की स्थिति प्रत्यक्ष है। घुटनों मे दर्द और कमजोरी विशेष प्रतीत होती है। इसलिये इस स्थिति में निश्चित स्थान का निर्णयात्मक उत्तर कैसे दे दू ?

वृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर मे करने की घोषणा

शिष्टमण्डल ने निवेदन किया कि आपश्री यहा से शनै शनै विहार कर भीनासर तक तो पधार ही जायेंगे। उपचार की दृष्टि से भीनासर बीकानेर आदि क्षेत्रों की अपेक्षा अन्य कोई

स्थान योग्य प्रतीत नहीं होता है। उधर का सूखा जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और भीनासर बीकानेर क्षेत्रों का इसके लिये आग्रह भी अधिक है। अत आगामी वृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर मे हो ऐसी हम लोगो की भी राय है। इसलिये आपश्री भीनासर मे वृहत्साधु-सम्मेलन हाने की घोषणा फरमाकर साधु-मुनिराजो को सूचना करवाने की कृपा करे।

पूज्य उपाचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि वृहत्साधु-सम्मेलन आचार्यश्री आत्मारामजी म के समीप हो आदि विषयक अपने विचार मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ। इस समय भी वैसे ही विचार रखता हूँ फिर भी आप आचार्यश्री आत्मारामजी म व अन्य अधिकारी मुनिवरो के अभिप्राय को लेकर पुन यहा उपस्थित हुए हैं और अधिकारी मुनिवर भी मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझते हैं सो ज्ञात हुआ। लेकिन मैं अपने पूर्व के विचारानुसार मेरे सान्निध्य मे वृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा करना उपयुक्त नहीं समझता। पर यह अवश्य कहता हूँ कि सत-सगठन सर्वतोभावेन सुदृढ बने। उसके निर्णयो का उसी रूप म अनुपालन हो। प्रत्येक सन्त सयम तप त्याग का स्वय पालन करे और इसी प्रकार दूसरो से पालन कराने का ध्यान रखवाये। तभी सघ-सगठन सबल प्राणवान और सफल हो सकेगा। अत यह विषय अधिकारी मुनिवरो के उत्साह पर निर्भर है।

शिष्टमण्डल भी इस स्थिति को समझता था। साथ ही स्थिति की गम्भीरता का तकाजा था कि वर्तमान परिस्थिति के समाधान के लिये पुन साधु-सम्मेलन का आयोजन हो जाना चाहिये। शिष्टमण्डल ने पुन मन्त्री मुनिवरो आदि से विचार परामर्श कर प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म सा द्वारा भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन करने की घोषणा करवाई।

उपाचार्यश्री की शारीरिक स्थिति दुर्बल किन्तु साधना जाग्रत्

इन दिनों उपाचार्यश्रीजी म सा की शारीरिक दुर्बलता इतनी अधिक बढ गई थी कि दो ढाई मील पैदल चलते ही सर्वांग में पसीना छूट जाता था। घूटनों में दर्द बना ही रहता था। लेकिन इतना सब होने पर साध्वोचित आचार-विचार मे किसी प्रकार की शिथिलता उदासीनता या उपेक्षा नहीं थी। साधना के प्रति सतत जागृति पूर्ववत् थी।

कुचेरा से देशनोक पदार्पण

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुचेरा से बीकानेर क्षेत्र की ओर पूज्य उपाचार्यश्रीजी का विहार हुआ। विहार बहुत ही धीमी गति से होता था। कुचेरा से फिरोद पधारे। यहा के श्रावक सघ की विशेष अभिलाषा थी कि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा कुछ दिन यहा विराजें। कुचेरा में इसके लिये सेवा में विनती की थी। फिरोद पधारते ही वहा के श्रीसघ में विशेष उत्साह

व्याप्त हो गया। जहा पर सन्तों का पदार्पण होता है वहा सद्भावना सद्विचार और सद्गुणों का वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। फिरोद में ज्ञान-साधना के साथ सयम साधना का विशेष उद्योत हुआ। स्थानीय सघ की ओर से दो अठाइया एव अनेक बेला तेला चौला आदि तपस्याए शक्त्यनुसार हुईं।

फिरोद से आप डेह पधारे। किन्तु आपके पदार्पण से पूर्व ही आपकी यशकीर्ति का आगमन हो चुका था। वहा के दिगम्बर जैन बन्धुओं ने आपके पदार्पण के अवसर पर मगल महोत्सव मनाया। साधु किसी वर्गविशेष के नहीं होते हैं उनके सभी पूजक होते हैं। गुण पूजा के योग्य होते हैं अत पूज्य उपाचार्यश्रीजी के शुभागमन पर समस्त जैन बन्धुओं ने श्रद्धा व्यक्त की तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। डेह में भी अच्छी धर्म प्रभावना हुई। डेह से नागौर आदि क्षेत्रो को पवित्र करते हुए देशनोक पदार्पण किया।

चातुर्मास हेतु बीकानेर सघ की विनती

बीकानेर श्रावक सघ वर्षों से पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास अपने यहा होने के लिये लालायित था। इसके लिये पहले भी अनेक स्थानो पर एतदर्थ विनती कर चुका था और कुचेरा मे तो सघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर स 2012 का चातुर्मास बीकानेर मे ही करने के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासन प्राप्त करने के लिये आग्रहपूर्ण विनती की थी। लेकिन अभी समय दूर था अत ऐसी स्थिति नहीं बन सकी थी कि तत्काल उत्तर दिया जा सके।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी के देशनोक पधारने पर स्थानीय सघ के आबाल वृद्ध नर नारी आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने के लिये सेवा में उपस्थित हुए। नोखामण्डी देशनोक भीनासर गगाशहर आदि सभी क्षेत्र इसका लाभ प्राप्त करने के लिये इच्छुक थे और इस अलभ्य अवसर से चूकना नहीं चाहते थे।

लेकिन सभी क्षेत्रों के केन्द्र मे बीकानेर था और बीकानेर म चातुर्मास होने से स्थानीय एव आस-पास के क्षेत्रों में विशेष धर्मभावना होने की सभावना होने से पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा ने स 2012 का चातुर्मास सभावित आगारो के साथ साधु-मर्यादानुसार बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

विद्वेषी लोगों द्वारा फैलाया विषाक्त वातावरण स्वत शात हुआ

जैसे जैसे चातुर्मास काल निकट आ रहा था कि उसी समय बीकानेर के कतिपय मूढ जनों ने कलुषित वातावरण बनाने के प्रयत्न कर दिये। उस वातावरण का सम्बन्ध स्थानीय श्रावक सघ से था। फिर भी प्रकारान्तर से उसमें उपाचार्यश्रीजी को सबद्ध करने का प्रयास

किया गया। आपसी विचारभिन्नता एव मनमुटाव को सम्पूर्ण सघ पर लादने के प्रयत्न हुए और उनके इस कार्य मे प्रत्यक्ष रूप से तो बीकानेर के एक-दो व्यक्ति शामिल थे लेकिन अप्रत्यक्ष मे और भी थे ऐसी कल्पनाएँ चलती थीं।

इस वातावरण की जानकारी पूज्य उपाचार्यश्रीजी को भी हुई और वे अपने आगारो के साथ अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये स्वतन्त्र थे। लेकिन स्थानीय सघ के 427 वयस्क सदस्यो ने 21 जून 55 को सामूहिक रूप मे अपने हस्ताक्षरो से युक्त लिखित प्रार्थना-पत्र सेवा मे प्रस्तुत कर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

बीकानेर का शानदार चातुर्मास

यथासमय पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास हेतु बीकानेर पदार्पण हुआ। नगर-प्रवेश के समय जो जुलूस निकला और भव्य वातावरण बना वह नगर के इतिहास मे अनूठा था। शाही जुलूसो मे विविधता हो सकती है और दर्शनीय वस्तुओ को जुटाया जा सकता है लेकिन मानसिक उल्लास का भी उसमे समन्वय हो ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन इस सत स्वागत-जुलूस मे मानवीय मनो के उत्साह श्रद्धा विनमता का विकास रूप था और इनके विकास के कारण थे वदनीय सत और उनमें भी श्रमण सघ के प्रमुख पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा। राजमार्ग पर बढते चरणों में सहस्रो मस्तक झुक जात थे अतृप्त नेत्र एकटक लगाये बहुत दूर से ही पलक-पावडे बिछा देते थे और जयघोषो का समवेत स्वर चतुर्दिक को गुजायमान कर देता था।

उपाचार्यश्रीजी चातुर्मास हेतु श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया पारमार्थिक ट्रस्ट भवन मे विराजे। बीकानेर की आबाल वृद्ध जनता आपकी प्रवचन-गगा में डुबकिया लगा रही थी। प्रतिदिन सहसों नर नारी आपकी व्याख्यान-वाणी के पीयूष का पान करके अपने जीवन को धन्य मान रहे थे। जिज्ञासु-जन सिद्धान्तो की गूढ गुत्थिया की सुलझा रहे थे। सर्वत्र शान्ति का सचार हो रहा था। आस-पास के क्षेत्रो के भव्यजन भी सैकडों की सख्या मे उपस्थित होते थे। प्रतिदिन नये-नये क्षेत्रों के दर्शनार्थी आते और सहज प्राप्त अवसर से लाभ उठाते थे।

पहले जो विषाक्त वातावरण बना था शात हो चुका था। लेकिन विघ्नसतोषी व्यक्ति कुमन्त्रणाए कर रहे थे कि यह शाति किस प्रकार भग की जाये ? यह बना बनाया खेल किस प्रकार बिगाड़ा जाये ? कुमन्त्रणाओ का जोर था। जगत् में सर्वत्र सर्वदा इस प्रकार के लोगो की न कमी रही है और न रहेगी। मनुष्य के मन का पाप पुण्य का परिधान धारण करके सदा मानव जाति को धोखा देता आया है। इस पाप का विस्फोट जिस रूप म हुआ उससे समाज

म रोष व्याप्त हो गया। यह मन का पाप वाचनिक न रहकर लिखित रूप में फैलने लगा। प्रतिदिन नये नये आरोपो के साथ पर्चे प्रकाशित होने लगे कि किसी न किसी प्रकार बीकानेर सघ म आपसी मनमुटाव बढे उसकी एकवाक्यता छिन्न-भिन्न हो। लेकिन बीकानेर श्रावक सघ मे सूझवूझवालों की कमी नहीं थी।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी पर प्राय प्रतिदिन पर्चे-रूपी पुष्पवर्षा होती। चार माह तक विघ्नसतोषियो परनिन्दकों की जितनी कलुषता हो सकती थी वह उभर रही थी। अन्तर की मलिनता बाहर आ रही थी और धीरे-धीरे अन्तरग साफ होता जा रहा था। इसके लिये संतों के पास एक ही अमोघ औषधि थी– क्षमा दया समता सहिष्णुता के समक्ष पाप बुराई निन्दा चुगली एव आरोप-प्रत्यारोप टिक नहीं सकते। निन्दको ने पूज्यश्री की निन्दा की उपसर्ग किये घृणित आरोप लगाये। निन्दा के रोग से आक्रान्त व्यक्तियो के द्वारा जो कुछ भी किया जा सकता था सब किया गया करने मे किसी प्रकार की कसर नहीं छोड़ी फिर भी आप सागरवत् गम्भीर हिमालयवत् सुस्थिर महादेव की तरह इस गरल का पान करते रहे। इससे जनता मे बहुत रोषयुक्त वातावरण बन गया और उससे वह उत्तेजना कभी कभी बाहर व्यक्त होने को तत्पर-सी परिलक्षित होती थी। लेकिन उपाचार्यवर की शात सुधारसमय वाणी उस उत्तेजना को प्रशान्त बना देती थी। उपाचार्यश्री फरमाते थे कि आप लोग मेरे ऊपर होने वाली अनुचित बातो से उत्तेजित न होवे। ऐसे व्यक्तियो से जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। वे सदा ही साधको को सावधानी दिलाते हैं।

भगवान् महावीर का क्षमाधर्म कितना जीवन मे उत्तर पाया है ? इस बात की एक तरह से परीक्षा है। अत उनको शत्रु न समझ कर जीवन-साधना में जाग्रत् करने वाले सहायक समझो। नीतिकारों ने भी कहा है कि 'जीवन्तु में शत्रुगणा सदैव येषा प्रसादात्सुविचक्षणोऽहम्' आदि आशय के भावों को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो जाती। दूध के उफान में पानी का छींटा पड़ जाने से जैसे दूध शान्त हो जाता है वैसे ही उपाचार्यश्रीजी म सा के वचनामृत जल से जनता का उफान शान्त हो जाता था। इस प्रकार की आपश्री की वृत्ति को देख भावी कवि की वाणी मुखरित हो उठी कि ये गणेश हैं या महादेव-

तन पर है धर्म धूलि खासी
मृगछाल महाव्रत ओढ़े हैं।
जिन-वृष पर हैं आरूढ़ उगा-
अनुभूति से प्रीति जोड़े हैं।
तिरसूल सदा रत्नत्रय ले

मानस-सर नित तीर बसे।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?
पुरुषार्थ चतुष्टय भुजा चार,
शशिकला कीर्ति छवि छायी है।
उपदेशामृत पावन गगा भी
वसुधा पर आज बहाई है।
पी लिया कषाय कठिन विष को
शल्यत्रय त्रिपुर भी धू-धू दहे।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?

अन्त मे उन सन्त निन्दको को निन्दाजनित अवहेलना जनता की घृणा और अन्त करण के पश्चात्ताप की प्राप्ति हुई। अधिक आवेश में किये गये कृत्य का परिमाण सदैव दुखद दुस्सह होता है।

लेकिन इस वातावरण से पूज्य उपाचार्यश्रीजी को अक्षय यश और जनता की अटूट श्रद्धा की प्राप्ति हुई। इसका एकमात्र कारण थी अनुपम सहिष्णुता की शीतल छाया सयम के प्रति सतत चेतना और आत्मालोचन के स्वत प्राप्त अवसर का सदुपयोग करने की सहज-स्वाभाविक वृत्ति। उपाचार्यश्रीजी म सा की इस प्रकार की अनुपम सहिष्णुता गम्भीरता एव उदारता आदि अन्य सन्तो के लिए भी अनुकरणीय है।

सयमी जीवन की गरिमा का ज्वलन्त उदाहरण

उपाचार्यश्री मर्यादा की पालना मे दृढ़ थे तो अपने अधीनस्थ मुनिवृन्द से पालना करवाने मे भी उतने ही दृढ थे।

इसी चातुर्मास की घटना है। एक बार एक सन्त श्री अजीतमलजी पारख के घर शास्त्र याचना के लिये गये। श्री पारखजी की धर्मपत्नी घर पर थी। मुनि ने शास्त्र की याचना की। शास्त्र श्रीमती पारख के पास नहीं था। वह अपने मायके जो श्री मगलचन्दजी मालू के यहाँ था गई। श्री मालूजी के यहाँ शास्त्रों का दुर्लभ सग्रह तो था ही वे नय लेखन का कार्य भी करवाते थे। यहाँ से शास्त्र क्रय किया और यथासमय सन्त को बहरा दिया।

उपाचार्यश्रीजी के कानो मे इस घटना की भनक पड़ी तो कुछ दिनों बाद वे श्री पारखजी के घर पर पहुँच गये। घर पर श्रीमती पारख एव उनका पुत्र पीरदान था।

उपाचार्यश्री ने श्राविका से पूर्ण जानकारी ली। श्राविका ने सहज सरल भाव से कहा– सन्तों ने सकेत किया अत मैंने शास्त्र लाकर दिया। गलती के लिये क्षमा चाहती हूँ।

उपाचार्यश्री ने श्राविका को हिदायत दी कि श्रमणाचार की शुद्धि बनी रहे यह कार्य मात्र आचार्य का नहीं होता। श्रावक-श्राविकाओ को भी इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

उपाचार्यश्री के लिये सयमी जीवन मे मोच कटौती बर्दाश्त के बाहर थी। सन्त को जिसने बिना गवेषणा शास्त्र ग्रहण किया उचित प्रायश्चित्त दिया। सयमी जीवन की गरिमा का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

चातुर्मास के चार माह छिन मे व्यतीत हो गये। चार माह के दिन चार दिन जैसे ही प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पडता था कि अभी कल ही तो चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी की दिव्य देशना कल ही तो प्रारम्भ हुई थी और आज पूरी भी हो गई। श्रोताओ को होश तब आया जब सुना कि चातुर्मास समाप्त हो गया और कल उपाचार्यश्रीजी का विहार हागा। सन्त तो अपने कल्पकाल तक ही एक स्थान पर विराज सकते थे अत जनता का मोह उन्हें रोक नहीं सकता था।

स 2012 मगसिर कृष्णा 1 का प्रभात हुआ। पक्षियो के कलरव के साथ जनता म भी कलरव प्रारम्भ हो गया। आज मन भारी थे। सद्‌गुरु के सदुपदेश-श्रवण का अन्तिम दिवस जो था। सुबह से ही सेठिया कोटडी का सभामडल श्रोताओं की समुपस्थिति से सपूर्ण होने लगा। विशाल सभामडप सकुचित हो गया हो ऐसा प्रतीत होता था। यथासमय सन्तशिरोमणि पधारे और वीतराग-वाणी की अभिव्यजना से भव्यजनो को प्रबोध देने लगे। हजारा हजारों नेत्र अपलक अपने श्रद्धेय पर केन्द्रित थे। नीरवता में सिर्फ श्रद्धेय की गिरा गूज रही थी। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ।

अनन्तर विरागियो के विहार की वेला सन्निकट आ पहुंची थी। मध्याह्न होते ही विहार पथ पर पूज्यश्री ने पदार्पण किया। सहस्रो विनम्र मस्तक चरणरज प्राप्ति के लिये चरणारविन्दों मे नत हो रहे थे और सहस्रो साश्रुनेत्र पादपद्मो को पखार रहे थे।

आखिर सन्तों ने गतव्य मार्ग पर गमन किया। जनमेदिनी के बीच घिरे हुए जनानन्द मथरगति से गमन करने लगे। छज्जों और अट्टालिकाओं से जय जय के वाकपुष्पो की बरखा होना प्रारम्भ हो गई। सन्त मण्डली ने देशनोक नोखामण्डी की ओर गमन किया। सैकडों व्यक्ति तो साथ-साथ चल पड़े।

साधु-सम्मेलन की पूर्व-तैयारी मे

यद्यपि सादडी में बृहत्साधु सम्मेलन होकर एक श्रमण सघ का ऊपरी ढाचा बन चुका

था। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे थे जिनका निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श और शास्त्रीय आधार से हो सकता था। इसी बात को लक्ष्य मे रखकर सोजत में मन्त्री मुनिवरो का सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात् जोधपुर मे सयुक्त चातुर्मास भी हुआ था। उक्त दोनो अवसरो पर प्रत्येक अनिर्णीत विषय पर काफी विचार-चर्चा हुई लेकिन निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकल सका।

यद्यपि एक आचार्य के नेश्राय मे समस्त साधु-साध्वी वर्ग ने निष्ठा व्यक्त भी की थी लेकिन पूर्ववत् अलग-अलग सिघाडो की परिपाटी चालू थी। अधिकाश इस परम्परा का उन्मूलन करने का साहस नहीं दिखा सके। सचित्ताचित्त ध्वनिवर्धक यत्र एक सवत्सरी आदि प्रश्न ऐसे जटिल बन गये कि जिनका निर्णय सर्वमान्य होना सभव नहीं रहा था। कोई भी अपने विचारा से किचिन्मात्र भी डिगने को तैयार नहीं था। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रश्न को लेकर तो कुछ श्रावको ने आन्दोलन-सा चालू कर दिया था। उनके रुख से ऐसा मालूम पडता था मानो कोई निश्चित योजनानुसार समस्त कार्रवाई हो रही है और कुछ मुनिवरो एव अग्रणी श्रावको का पीठबल हो। अभी तक मुनियो की स्खलना सम्बन्धी जो-कुछ भी घटनाए होती थीं उन्हे उन-उन सम्प्रदायो के श्रावकगण और साधुवृन्द अन्दर-अन्दर ढाकने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक श्रमण सघ बनने से और सबल नेतृत्व के कारण स्खलना की घटनाए चतुर्विध सघ के समक्ष प्रगट होने लगीं। इस कारण शिथिलाचारी साधु किसी-न-किसी प्रकार से अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अपनी-अपनी पूर्व-सम्प्रदाय के श्रावको को भड़काने के प्रयत्न करते थे। इन सब कारणो से सादडी मे निर्मित श्रमण सघ दिनोदिन निर्बल होता जा रहा था।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी इस स्थिति से बहुत-कुछ अवगत होते जा रहे थे। आपश्री को यह स्पष्ट दिख रहा था कि सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न न होकर दलबन्दी के द्वारा अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने की भावना मुनियो मे बढती जा रही है। साधुवर्ग में सादडी सम्मेलन के समय उत्पन्न उत्साह विवेक और लगन लुप्तप्राय है और उसके स्थान पर औपचारिकता का पालन अथवा दिखावा किया जा रहा है। इस स्थिति में सम्मेलन की सफलता सदेहास्पद थी।

समाज के अग्रणी श्रावका को भी इस प्रकार के वातावरण स सम्मेलन की सफलता के बारे मे शका थी। श्रमण सघ के गठन की जो प्रतिक्रिया होनी चाहिये थी उसके अनुकूल वातावरण समाज में नहीं बन सका था। साधु-सन्तो म कुछ साधु और श्रावक समुदाय में कुछ श्रावक ऊपर से अच्छा बर्ताव दिखाते थे लेकिन अन्तरग मे कुछ सन्तों के प्रति ईर्ष्याभाव रखते हैं ऐसा प्रतीत होता था। यद्यपि ऊपरी तौर से एक सगठन का रूप दिखता अवश्य

उपाचार्यश्री ने श्राविका से पूर्ण जानकारी ली। श्राविका ने सहज-सरल भाव से कहा-- सन्तों ने सकेत किया अत मैंने शास्त्र लाकर दिया। गलती के लिये क्षमा चाहती हूँ।

उपाचार्यश्री ने श्राविका को हिदायत दी कि श्रमणाचार की शुद्धि बनी रहे यह कार्य मात्र आचार्य का नहीं होता। श्रावक-श्राविकाओ को भी इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

उपाचार्यश्री के लिये सयमी जीवन मे मोच कटौती बर्दाश्त के बाहर थी। सन्त को, जिसने बिना गवेषणा शास्त्र ग्रहण किया उचित प्रायश्चित्त दिया। सयमी जीवन की गरिमा का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

चातुर्मास के चार माह छिन मे व्यतीत हो गये। चार माह के दिन चार दिन जैसे ही प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था कि अभी कल ही तो चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी की दिव्य देशना कल ही तो प्रारम्भ हुई थी और आज पूरी भी हो गई। श्रोताओ को होश तब आया जब सुना कि चातुर्मास समाप्त हो गया और कल उपाचार्यश्रीजी का विहार होगा। सन्त तो अपने कल्पकाल तक ही एक स्थान पर विराज सकते थे अत जनता का मोह उन्हे रोक नहीं सकता था।

स 2012 मगसिर कृष्णा 1 का प्रभात हुआ। पक्षियो के कलरव के साथ जनता में भी कलरव प्रारम्भ हो गया। आज मन भारी थे। सद्गुरु के सदुपदेश-श्रवण का अन्तिम दिवस जो था। सुबह से ही सेठिया कोटडी का सभामडल श्रोताओ की समुपस्थिति से सपूण होने लगा। विशाल सभामडप सकुचित हो गया हो ऐसा प्रतीत होता था। यथासमय सन्तशिरोमणि पधारे और वीतराग-वाणी की अभिव्यजना से भव्यजनों को प्रबोध देने लगे। हजारो हजारों नेत्र अपलक अपने श्रद्धेय पर केन्द्रित थे। नीरवता मे सिर्फ श्रद्धेय की गिरा गूज रही थी। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ।

अनन्तर विरागिया के विहार की वेला सन्निकट आ पहुची थी। मध्याह्न होते होते विहार पथ पर पूज्यश्री ने पदार्पण किया। सहस्रो विनम्र मस्तक चरणरज प्राप्ति के लिये चरणारविन्दो मे नत हो रहे थे और सहस्रो साश्रुनेत्र पादपद्मो को पखार रहे थे।

आखिर सन्तों ने गतव्य मार्ग पर गमन किया। जनमेदिनी के बीच घिरे हुए जनमान्य मथरगति से गमन करने लगे। छज्जों और अट्टालिकाओं से जय-जय के वाकपुष्पो की बरखा होना प्रारम्भ हो गई। सन्त-मण्डली ने देशनोक नोखामण्डी की ओर गमन किया। सैंकड़ों व्यक्ति तो साथ साथ चल पड़े।

साधु-सम्मेलन की पूर्व-तैयारी मे

यद्यपि सादडी में वृहत्साधु-सम्मेलन होकर एक श्रमण सघ का ऊपरी ढाचा बन चुका

था। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे थे जिनका निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श और शास्त्रीय आधार से हो सकता था। इसी बात को लक्ष्य मे रखकर सोजत में मन्त्री मुनिवरो का सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात् जोधपुर मे सयुक्त चातुर्मास भी हुआ था। उक्त दोनो अवसरो पर प्रत्येक अनिर्णीत विषय पर काफी विचार-चर्चा हुई लेकिन निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकल सका।

यद्यपि एक आचार्य के नेश्राय मे समस्त साधु-साध्वी वर्ग ने निष्ठा व्यक्त भी की थी लेकिन पूर्ववत् अलग-अलग सिघाडो की परिपाटी चालू थी। अधिकाश इस परम्परा का उन्मूलन करने का साहस नहीं दिखा सके। सचित्ताचित्त ध्वनिवर्धक यत्र एक सवत्सरी आदि प्रश्न ऐसे जटिल बन गये कि जिनका निर्णय सर्वमान्य होना समव नहीं रहा था। कोई भी अपने विचारा से किचिन्मात्र भी डिगने को तैयार नहीं था। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रश्न को लेकर तो कुछ श्रावका ने आन्दोलन-सा चालू कर दिया था। उनके रुख से ऐसा मालूम पडता था मानो कोई निश्चित योजनानुसार समस्त कार्रवाई हो रही है और कुछ मुनिवरा एव अग्रणी श्रावको का पीठबल हो। अभी तक मुनिया की स्खलना सम्बन्धी जो-कुछ भी घटनाए होती थीं उन्हे उन-उन सम्प्रदायो के श्रावकगण और साधुवृन्द अन्दर-अन्दर ढाकने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक श्रमण सघ बनने से और सबल नेतृत्व के कारण स्खलना की घटनाए चतुर्विध सघ के समक्ष प्रगट होने लगीं। इस कारण शिथिलाचारी साधु किसी-न-किसी प्रकार से अपनी मान प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अपनी-अपनी पूर्व-सम्प्रदाय के श्रावकों को भडकाने के प्रयत्न करते थे। इन सब कारणो से सादडी मे निर्मित श्रमण सघ दिनोदिन निर्बल होता जा रहा था।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी इस स्थिति से बहुत कुछ अवगत होते जा रहे थे। आपश्री को यह स्पष्ट दिख रहा था कि सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न न होकर दलबन्दी के द्वारा अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने की भावना मुनियो में बढती जा रही है। साधुवर्ग मे सादडी सम्मेलन के समय उत्पन्न उत्साह विवेक और लगन लुप्तप्राय है और उसके स्थान पर औपचारिकता का पालन अथवा दिखावा किया जा रहा है। इस स्थिति में सम्मेलन की सफलता सदेहास्पद थी।

समाज के अग्रणी श्रावको को भी इस प्रकार के वातावरण से सम्मेलन की सफलता के बारे में शका थी। श्रमण सघ के गठन की जो प्रतिक्रिया होनी चाहिये थी उसके अनुकूल वातावरण समाज में नहीं बन सका था। साधु-सन्तो म कुछ साधु और श्रावक समुदाय में कुछ श्रावक ऊपर से अच्छा बर्ताव दिखाते थे लेकिन अन्तरग में कुछ सन्ता के प्रति ईर्ष्याभाव रखते हैं ऐसा प्रतीत होता था। यद्यपि ऊपरी तौर से एक सगठन का रूप दिखता अवश्य

था लेकिन अन्तर् म ऐसे प्रपच चल रहे थे कि किसी न-किसी प्रकार यह सगठन छिन्न भिन्न हो जाये और इसके लिये दूसरो पर दोषारोपण किया जावे।

यद्यपि सम्मेलन की सफलता की दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण उपयोगी सा नहीं था। किन्तु सम्मेलन होने की घोषणा हो गई थी और चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् कुछ-एक साधु-सन्तों का सम्मेलन के निमित्त भीनासर की ओर विहार भी हो चुका था। अत सम्मेलन को स्थगित करना उपयुक्त नहीं समझा गया।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् भीनासर में होने वाले बृहत्साधु-सममेलन की तैयारिया प्रारम्भ हो गईं। साधु-सन्तो ने भी सम्मेलन को लक्ष्य मानकर भीनासर की दिशा में विहार कर दिया था। सम्मेलन प्रारम्भ होने मे काफी समय था अत पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा बीकानेर से विहार कर उदासर पधारे। उदासर मे साधुमार्गी जैनों के घर कम थे परन्तु उत्साह उमग देखते ही बनती थी। उपाचार्यश्रीजी आसकरण वींजराजजी शाह बोथरा के मकान मे विराजे और प्रतिदिन प्रवचन-प्रभावना का ठाठ लगा रहा। प्रवचनो का साधुमार्गी जैनो के अलावा तेरहपन्थी एव जैनेतर जनता भी खूब लाभ उठाती। तत्त्व-चर्चा आदि के द्वारा जनता ने सत्सग का आनन्द लिया। बाहर से श्रद्धालुओ का निरन्तर आवागमन बना रहा। पूरा शेषकाल यहाँ के निवासियों के लिए अमिट यादगार बन गया।

उपाचार्यश्रीजी यहा से भीनासर उदयरामसर देशनोक रासीसर सुरपूरा नोखागाँव होते हुए माघशुक्ला 2 सोमवार को नोखामण्डी जैन जवाहर भवन मे पधार गये।

उपाचार्यश्रीजी म सा के नोखामण्डी पदार्पण के समय और भी कतिपय प्रमुख सन्त वहाँ पधार गये थे। इस अवसर पर 64 सन्त और 35 सतियो का पदार्पण हुआ। अनौपचारिक रूप से सम्मेलन के विषय मे विचारो के आदान-प्रदान का क्रम चालू हो गया और सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया। इसी वार्त्तालाप के प्रसग मे यह सुझाव रखा गया कि स 2012 मिती चैत्र कृष्णा 3 गुरुवार से सम्मेलन प्रारम्भ होगा लेकिन उसके पूर्व कुछ औपचारिक कार्यविधि को इन्हीं दिनों में कर लिया जाये तो ठीक रहेगा।

इस सुझाव के लिये सभी उपस्थित मुनिराजो ने अपनी सहमति दर्शाई। अत माघ शुक्ला 5 से 12 तक सात दिन मुनिवरों ने जोधपुर सयुक्त चातुर्मास की कार्रवाई प्रधानमन्त्रीजी एव मन्त्रिमडल के प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श किया और प्रायश्चित्तविधि के निर्माण के बारे मे भी कुछ कार्रवाई हुई।

नोखामण्डी में सात दिन विराजने के अनन्तर सभी सन्त जो वहा थे और विहार करते हुए पधार गये थे सामूहिक रूप में विहार कर देशनोक पधारे। देशनोक मे साधु मुनिराज काफी बडी सख्या मे पधार गये थे और जो पधारने वाले थे उनकी भी जानकारी प्राप्त हो

चुकी थी अत विचार किया गया कि यहीं पर सम्मेलन की कार्रवाई मे भाग लेने वाले मुनिराजो के प्रतिनिधियो का चुनाव कर लेना चाहिये। सुझाव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया।

अत दि 3356 को मध्याह्न सवा दो बजे प्रतिनिधियो के चुनाव के लिये श्री भीकमचन्दजी भूरा के मकान पर उपस्थित सभी मुनिराज एव महासतियाजी म सा एकत्रित हुए और पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की अध्यक्षता मे कार्रवाई प्रारम्भ हुई।

सर्वप्रथम उपाचार्यश्रीजी म सा ने नवकारमन्त्र का घोष करते हुए भगवान विमलनाथ की प्रार्थना की और प्रासगिक व्याख्यान फरमाया। आपश्री ने सादड़ी सम्मेलन से लेकर अभी तक की स्थिति पर सक्षिप्त प्रकाश डालते हुए जो भाव फरमाये उनका साराश यह है–

जिस आयोजन के लिये तैयारिया हो रही हैं उसका समय निकट आ गया है। सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिये भीनासर की ओर विहार कर बहुत-से मुनिराज तो यहा आपके समक्ष विराज रहे हैं और कुछ विहार म हैं। वे भी यथाशीघ्र सम्मेलन से पूर्व भीनासर पधारन के भाव रखते हैं।

सम्मेलन मे सम्मिलित होना किसी तरह के मान-सम्मान के लिये नहीं है किन्तु सम्यक ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की शुद्धि और वृद्धि के लिये है। इसमे सभी को निष्पक्ष और परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिये अपनी-अपनी राय व्यक्त करना चाहिए जिससे साधु-सम्मेलन शास्त्रीय दृष्टि से विचार कर किसी निर्णय पर पहुचे। इसी में साधु सम्मेलन की सफलता है और इसी ध्येय से सभी इसमे सम्मिलित हो रहे हैं। शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रगट करने के लिये सम्मेलन म प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिए। धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिये एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी के लिये योग्य और लाभदायक है।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओ मे ज्ञान-दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिये तथा सगठन के लिये एक साधु-सम्मेलन करने की आवश्यकता है। इसी को लक्ष्य में रखते हुए सादडी मे एक सम्मेलन हो चुका है और उसके निर्णयों को अमली रूप देने के लिये सोजत व जोधपुर में चर्चा हुई और कुछ निर्णय भी किये गये हैं। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका समाधान व निर्णय पुन बृहत्साधु सम्मेलन होने से हो सकता है। इसी को ध्यान मे रखते हुए भीनासर में बृहत्साधु सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

यद्यपि इस सम्मेलन में सभी साधु-सत समान रूप से उपस्थित होकर कार्रवाई मे भाग लेंगे फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से उनके प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाना सुविधाजनक होगा। इससे कार्रवाई भी सुचार रूप में चल सकेगी और प्रत्यक विषय मे विचार विमर्श करने

के लिये काफी समय भी मिलेगा। इस सुविधा को ध्यान मे रखते हुए प्रतिनिधियो का चुनाव किया जा रहा है।

इस प्रासगिक वक्तव्य के पश्चात् प्रतिनिधियो का चुनाव इस प्रकार हुआ–

	सिघाड़ा नाम	प्रतिनिधि सख्या
1	आचार्यश्री आत्मारामजी म सा	5
2	उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा	5
3	प्र मन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म सा	5
4	सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म सा	5
5	सहमन्त्री श्री हस्तीमालजी म सा	3
6	मन्त्री श्री मोतीलालजी म सा	2
7	मन्त्री श्री पृथ्वीचन्दजी म सा	1
8	मन्त्री श्री मिश्रीलालजी म सा	2
9	मन्त्री श्री फूलचन्दजी म सा	1
10	स्था मुनिश्री हजारीमलजी म सा	4
11	स्थ श्री शार्दूलसिहजी म सा	1
12.	स्थ श्री रामकुमारजी म सा	1
13	मुनिश्री जीवराजजी म सा	2
14	मन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म सा	1
15	स्थ श्री भूरालालजी म सा	1
16	स्थ श्री ताराचन्दजी म सा	3
17	मुनिश्री जीवनरामजी म.सा	1
18	मन्त्री श्री किशनलालजी म सा	5
19	स्थ श्री पूरणमलजी म सा	1
20	स्थ श्री फतेहचन्दजी म सा	1
21	मुनिश्री छोटेलालजी म सा	1
22	स्थ श्री कपूरचन्दजी म सा	1

इस प्रकार बाईस सिघाड़ो के साधु-साध्वीवृन्द की ओर 52 प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ।

अनन्तर अन्यान्य सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श होता रहा। निर्णयात्मक रूप तो सम्मेलन के अवसर पर ही दिया जा सकता था अत करीब 4 बजे सभा की कार्रवाई समाप्त

हुई। 67 सत एव 80 सतियो की उपस्थिति देशनोकवासी श्रद्धालुओ के प्रमोद का कारण थी।

देशनोक से विहार कर उदयरामसर गगाशहर भीनासर होते हुए सभी सन्त सतियाजी बीकानेर पधारे। सन्तो का नगर प्रवेश फाल्गुन शुक्ला 5 को था। चार-चार की पक्ति मे धवल वेश शान्तवदन एव ईर्यापूर्वक चलते हुए सन्त-पक्ति को निहार कर अपार जनसमूह प्रफुल्लित था। गोगागेट मे ज्योही उपाचार्यश्री ने प्रवेश किया ऐसा लग रहा था मानों शुभ कार्य के लिए श्रीगणेश ने साक्षात् प्रवेश किया हो। वह प्रवेश भव्य चित्ताकर्षक एव अद्भुत था। जुलुस का अथ और इति युगपत् कोई नहीं देख सकता था। बीकानेर म भी पहले की तरह प्रात एव मध्याह्न अनौपचारिक विचार-गोष्ठियों का आयोजन होता रहा। इस समय बीकानेर मे 135 सन्त एव 147 सतियाजी विराज रहे थे और इन बैठको मे प्रतिनिधि मुनिया के अतिरिक्त अन्य सन्त-सतियाजी के दर्शक के रूप मे विराजने की व्यवस्था की गई थी।

साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि 4 5 6 अप्रैल 56 को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजीभाई जवेरी जयपुर की अध्यक्षता म होने वाला था।

इन दोनो महत्त्वपूर्ण समारोहो मे उपस्थित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओ की आवास-व्यवस्था के लिये शामियाने आदि लगाकर नगर का निर्माण किया गया था। 35 हजार जनता के लिए जवाहर विद्यापीठ एव वैदजी को कोटड़ी मे सयुक्त रूप से विशाल पण्डाल की व्यवस्था की गई जहा प्रवचनादि कार्यक्रम होते थे।

बीकानेर श्रावक सघ की ओर से भी बीकानेर मे बाहर से आने वाले दर्शनार्थी श्रावक-श्राविकाओ के आवास भोजनादि का सुन्दर और उचित प्रबन्ध किया गया था जो साधु-सम्मेलन एव कॉन्फरेस का अधिवेशन सम्पन्न होने के बाद तक भी चलता रहा।

साधु सम्मेलन स 2012 मिती चैत्र कृष्णा 3 दि 29.3.56 से भीनासर मे विधियत् प्रारम्भ होने वाला था। अत चैत्र कृष्णा 2 दि 28.3.56 बुधवार को बीकानेर म विराजित समस्त सन्त सतियाजी विहार कर भीनासर पधार गये। बीकानेर प्रवेश की तरह ही भीनासर प्रवेश भी चार-चार की पक्ति में हुआ। पन्द्रह हजार की विशाल उपस्थिति ने प्रवेश को रमणीय बना दिया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी औषधालय भवन मे विराजे। कन्याशाला लूणियों की कोटड़ी आँचलियों की कोटड़ी आदि में भी सन्तो के ठहरने की व्यवस्था की गई। सतियाँजी म सा भी विशाल सख्या में थीं अत उपाश्रय पुगलियों की कोटडी बोथरों की कोटड़ी महादेवजी के मन्दिर में उनके विराजने की व्यवस्था की गई।

चैत्र कृष्णा 3 के प्रात 8 बजे मगलाचरणपूर्वक सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम हुई। बाठिया हॉल मे प्रतिदिन प्रात और मध्याह्न दोनो समय मुनिवरों की गोलमेज परिषद् होती थी। इस परिषद् मे प्रतिनिधि मुनिवरो के अलावा आगत समस्त सत सतियाजी भी दर्शक के रूप मे बैठते थे। शान्तिरक्षक पूज्य उपाचार्यश्रीजी म एव व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म चुने गये। कल्प एव व्यवस्था के लिए सुश्राविका श्री केसरबहन अमृतलालभाई झवेरी, धीरजभाई तुरखिया एव लालचद मुणोत भी दर्शक के रूप मे हॉल में बैठते थे। प्रस्तावक मरुधरकेशरीजी एव सवाद-लेखक मुनि आईदानजी म को नियुक्त किया गया।

पहले सादड़ी मे सम्पन्न बृहत्साधु-सम्मेलन के अवसर पर साधु-सन्तो ने मिलकर जिन अशो मे हृदय की सरलता मे सघश्रेय की भावना व्यक्त की थी तदनुरूप कार्य को प्राय सफलता मिल चुकी थी। अनन्तर उस भावना को यथार्थता की कसौटी पर परखने और सतत गतिशील बनाये रखने के प्रयत्नों की अपेक्षा थी इसीलिये सोजत में मन्त्रिमण्डल के मुनिवरों का सम्मेलन हुआ और उसमे उपस्थित प्रश्नो व्यवस्था आदि के बारे में कुछ निर्णय किये गये। उक्त निर्णयो के सम्बन्ध मे भी अन्यान्य सन्तो के विचारो को जानने और परामर्श करने की दृष्टि से जोधपुर मे सयुक्त चातुर्मास का आयोजन किया गया था।

लेकिन इन दोनो आयोजनो की कार्यप्रणाली से यह स्पष्ट हो गया था कि सगठन के प्रति जितनी सदाशयता होना चाहिये नही है। अत सगठन को सबल बनाने की दृष्टि से समग्र स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने समस्याओ का समाधान खोजने के लिये यह सम्मेलन हो रहा था। लेकिन वातावरण में उत्साह नहीं था। अधिकाश मुनियों मे शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा अपने-अपने दृष्टिकोण के लिये ही आग्रही बने रहने का रुख विशेष रूप से परिलक्षित होता था। अत सम्मेलन के समक्ष विचारणीय प्रश्नो के स्पष्ट होते हुए भी समाधान नहीं हो पा रहा था। इसका कारण था कि सादड़ी और सोजत सम्मेलन के बाद कुछ लोगों ने श्रमण सघ को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न प्रारभ कर दिया था। आश्चर्य तो इस बात का था कि कुछ लोग श्रमण सघ में रहकर भी अन्दर ही अन्दर उसे तोड़ने की कोशिश कर रहे थे। घर के चिराग से घर में ही आग लग रही थी। श्रमण सघ मे कुछ लोग दो मुँहे थे जो संघहित की हर बात पर दोनो ओर लुढ़क जाते थे। बाहर मे वे सघहित का लबादा पहने रहते थे किन्तु अन्दर मे फूट की दरारे डालने से चूकते नहीं थे।

सम्मेलन की कार्यवाही का सक्षिप्त दिग्दर्शन

सम्मेलन मे एकलविहारी साधु-साध्वी को सघ मे सम्मिलित करने प्रतिक्रमण की

आज्ञा-विषयक मकान सबन्धी सुत्तागमे के बारे मे और ध्वनि-वर्धक यन्त्र विषयक प्रश्नो पर शास्त्रप्रमाण परम्परा साध्वाचार की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि की दृष्टि से विशेष रूप मे चर्चा वार्ता हुई। साथ ही व्यवस्थापक मण्डल में भी हरफेर किया गया। उनमे से कुछ-एक निर्णयो को अविकल रूप से यहा उपस्थित किया जा रहा है-

(1) सचित्ताचित्त विषयक निर्णय

बादाम पिस्ता नेजा (चिलगोजा) चारोली की मज्जा सफेद और काली मिर्च अखण्ड नही लगे और पीपल वगैर पीसी नहीं लेगे। पानी का वर्फ नहीं लेगे।

डोचरा काकडी एरण्ड काकडी (पपीता) खरबूजा तरबूज आम्रफल नारगी सतरा की फाके केला किसमिस आदि वस्तुओ के लिये मतभेद बहुत अरसे से चला आ रहा था उसके लिए एकमत होकर प्रेम ऐक्यता एव सगठन हेतु इस निश्चय पर पहुँचे कि आचार्यश्री उपाचार्यश्री की आज्ञानासुर श्री वर्द्धरथा जैन श्रमण सघ ने मर्यादा स्थापित की है कि विना शस्त्रपरिणत इनको नहीं लेगे। किन्तु उसके सघट्टे के लिए किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं होगा।

इसी प्रसग म ध्वनि-वर्धक यन्त्र के उपयोग का प्रश्न भी उपस्थित हो गया। इसके सम्बन्ध मे आगे सकेत किया जा रहा है।

(2) सवत्सरी सम्बन्धी निर्णय पर पुनर्विचार

स्थानकवासी समाज मे सवत्सरी के बारे मे तीन विचार-मान्यताए प्रचलित हैं। एक है– दो श्रावण हो तो दूसरे श्रावण मे और दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपद मे सवत्सरी करना। दूसरी विचारधारा है– दो श्रावण हों तो भाद्रपद मे और दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपद मास मे सवत्सरी करना। तीसरी विचारधारा है– दो श्रावण हो तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हो तो द्वितीय भाद्रपद मे सवत्सरी करना चाहिये।

सादडी सम्मेलन मे सवत्सरी के प्रश्न का समाधान करने के लिये गम्भीरतापूर्वक प्रयास किया गया था। किन्तु आधार के बारे मे मतैक्य नहीं हो सका था। इसलिये प्रेम और सम्पूर्ण सगठन को लक्ष्य मे रखते हुए दो श्रावण हो तो भाद्रपद मे और दो भाद्रपद हों तो दूसरे भाद्रपद मे सवत्सरी करना चाहिय ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। यद्यपि बहुमत इस पक्ष मे नहीं था किन्तु अल्पसख्यक वर्ग के साथ प्रेम एव सद्भावना रखने के लिये यह प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया था।

उक्त प्रस्ताव पारित होने पर भी सवत्सरी की समस्या का समाधान हुआ नहीं और जो ध्येय था वह भी सफल नहीं हो सका। परन्तु सादड़ी सम्मेलन के सवत्सरी सम्बन्धी प्रस्ताव के क्रियान्वित होने से सौराष्ट्र स्थानकवासी जैन सघ एक प्रकार से पृथक-सा हो गया। अत

उसे सयुक्त करने के लिये इस प्रश्न को पुनर्विचारणा हेतु उपस्थित करना पडा। इसके लिये निम्नलिखित सन्तों व श्रावको की एक समिति नियुक्ति की गई है। यह समिति आगामी सवत्सरी तक उचित निर्णय देन का प्रयत्न करे। निर्णय करने मे सुविधा हो इसके लिये हमारी सूचना है कि लोकमान्यता की ओर दृष्टि न रखते हुए शास्त्रीय मान्यता को महत्त्व दिया जाये। यदि श्रावण भाद्रपद और आसोज दो आते हैं तो दो आषाढ मास माने जायें। ऐसा करने से प्रत्येक मान्यता वाले को सन्तोष हो सकेगा।

सावत्सरिक सम्बन्धी सन्तो व श्रावको की समिति नियुक्त

समिति- 1 प मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म., 2 श्री सूर्यमुनिजी म., 3 प समर्थमलजी म. 4 मन्त्री श्री शुक्लचन्दजी म 5 मरुधरकेशरी मन्त्री श्री मिश्रीलालजी म. 6 उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म 7 प श्री जीतमलजी म 8 प श्री कुन्दनमलजी म 9 प पद्मगुनिजी म. 10 श्री सदानन्दी छोटेलालजी म 11 उमरशी कानजीभाई 12 लोकागच्छीय श्रीपूज्यजी का मत लिया जाये 13 श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया 14 श्री दुर्लभजी केशवजी खेताणी 15 श्री मणिलाल वनमालीदासभाई 16 श्री वेलशी लखमशी नप्पु, 17 श्री गिरधरलाल दपतरी।

इस समिति का यथाशक्य सर्वानुमति से किया गया निर्णय सभी को मान्य होगा। इस समिति के सयोजक मरुधरकेशरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म होगे।

उदय और अस्त तिथि का निर्णय भी इस समिति के साथ ही सम्बद्ध किया जाता है।

नोट- श्वेताम्बर मूर्तिपूजक स्थानकवासी और तेरहपथी वगैरह विभिन्न परम्पराओं के श्वेताम्बर सघ यदि सवत्सरी की एकता के लिए कोई एक निर्णय कर सकते हों तो उसके लिये श्री व स्था जैन श्रमण सघ उदारतापूर्वक अपना उचित सहकार देने के लिए तैयार है।

सावत्सरिक प्रस्ताव और उपाचार्यश्री की मान्यता

सम्मेलन में जब सवत्सरी विषयक प्रश्न चल रहा था तब उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा ने दीर्घदृष्टिपूर्वक अपने उदात्त विचार सभी के सम्मुख रखे और फरमाया कि सवत्सरी का प्रकरण मुख्यतया परम्पराओ की दृष्टि से उलझ सा रहा है और समस्त जैन समाज में विभिन्न तरीको से सवत्सरी पर्व मनाया जा रहा है। यद्यपि श्रमण सघ ने स्थानकवासी समाज के तत्त्व को सामने रखकर कुछ सोचा है लेकिन मैं इतने मात्र से ही इस विषय मे सतुष्टि मानने की स्थिति मे नही हूँ। मेरा अन्त करण तो यह चाहता है कि कम से-कम सवत्सरी जैसे महापर्व के विषय मे एक ही दिन पर्व मनाने की सोचना चाहिये। यदि समग्र जैन समाज सवत्सरी विषयक अपनी-अपनी परम्पराओं के आग्रह की स्थिति को ढीला कर एक ही रोज

सवत्सरी पर्व (चाहे वह दूसरे श्रावण में हो या भादवे मे हो) मनाने को तत्पर हो जायें तो श्रमण सघ को भी पूरी उदारता के साथ सवत्सरी विषयक एकता मे सहयोग देना चाहिए आदि। उक्त आशय के वक्तव्य के पश्चात् श्रमण सघ ने सवत्सरी विषयक प्रस्ताव के नीचे उपर्युक्त नोट लगाया जो कि यहा यथास्थान उद्धृत कर दिया गया है।

उपाचार्यश्रीजी म सा के सवत्सरी के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार थे कि मेरी भूतपूर्व मान्यता द्वितीय श्रावण की ही थी परन्तु जब अल्पसख्यक सप्रदाय के मुनिवरो को प्रेम एव सद्भावना के नाते वचन देकर सादडी मे प्रस्ताव बनाया गया तो जब तक सौराष्ट्र सघ नहीं मिले या ऐसी कोई बडी बात न हो तब तक दिये गये वचनो से श्रमण सघ मे रहते फिरना उन मुनिवरों के प्रति हमारा विश्वासघात जैसा होगा।

इन्हीं सब दृष्टिकोणो को लक्ष्य मे रखते हुए और सगठन के सूत्र को सुदृढ बनाने के लिये सवत्सरी विषयक प्रस्ताव पुनर्विचारणा के लिये सम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया गया था। लेकिन प्रस्ताव कहा तक सफल हो सका यह यथाप्रसग बतलाया जायेगा।

उपाचार्यश्रीजी प्रत्येक विवादास्पद प्रश्न पर अपनी एक प्रबल और शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट दृढ राय रखते थे फिर भी आपश्री ने अपनी सम्मति को आग्रह का रूप कदापि नहीं दिया। आपश्री एक ही बात जानते थे कि तर्क की कसौटी पर कसने योग्य प्रत्येक विषय को तर्क की कसौटी पर कसो जो विचार हो उन्हे निस्सकोच व्यक्त करो और मथन करो। लेकिन जो सर्वमान्य निर्णय हो जायें उन पर दृढ रहना चाहिये। वाकछल या सुविधा के नाम पर स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। तभी सगठन को बल मिलेगा और उसकी भावना से श्रावक श्राविकाओ में सगठन की शक्ति व्याप्त होगी।

(3) उपाध्यायमण्डल की स्थापना व मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन

यद्यपि सादडी मे मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गई थी लेकिन यह मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था सदा के लिये चलेगी इस भावना से नहीं किन्तु यह अभिप्राय व्यक्त हो रहा था कि श्रमण सघ में स्वीकृत उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति होने मे कुछ समय लग सकता है अत जब तक उद्देश्य का पूर्ण अमली रूप न हो जाये तब तक जो कुछ बना है उसकी व्यवस्था बनी रहे इसके लिये मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था। लेकिन उपाध्याय पद अवशेष रह गया था। अत उसकी पूर्ति बृहत्साधु सम्मेलन में करना आवश्यक था ही। तदनुसार चार उपाध्यायों का चुनाव कर लिया गया। साथ ही उद्देश्य के अनुरूप एक आचार्य की नेश्राय में दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्त विहार आदि व्यवस्थित करने के लिए भी सोचा जा रहा था। लेकिन सादड़ी सम्मेलन के अन्दर उद्देश्यपूर्ति की जो उदात्त भावना परिलक्षित हो रही थी वह इस बृहत्साधु सम्मेलन तक प्राय मन्द सी हो गई थी। समय समय पर प्रसगोपात्त सावधानी भी

दिखलाई जाती रही लेकिन अधिकाश सत-मानस मे उद्देश्य के प्रतिकूल ही कुछ क्रियाए चल रही थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ खास अधिकार जो प्रधानमत्री आदि के लिये रूपर की स्थिति मे सुरक्षित थे वे भी सम्पूर्णरूप में मन्त्रिमण्डल बाटना चाहता था यानी सादड़ी सम्मेलन के लक्ष्य के प्रतिकूल ही व्यवस्था सोची जा रही थी और बहुमत की बातों को मुख्य रखकर मन्त्रिमण्डल बनाया गया।

उपाध्यायमण्डल और मन्त्रिमण्डल के बारे मे निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ–

श्रमण सघ निम्नलिखित चार उपाध्याय स्वीकार करता है-

1 प आनन्दऋषिजी 2 प प्यारचन्दजी म 3 कविश्री अमरचन्दजी म,
4 प श्री हस्तीमलजी म।

मन्त्रिमण्डल की नामावली व क्षेत्र-विभाग

प्रधानमन्त्री - व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म

मन्त्री - मुनिश्री पृथ्वीचन्दजी म	– अलवर भरतपुर उ प्र
मन्त्री - मुनिश्री शुक्लचन्दजी म	– पजाब पेप्सू
मन्त्री - मुनिश्री प्रेमचन्दजी म	– दिल्ली बागड़ हरियाणा जागलप्रदेश
मन्त्री - मुनिश्री सहस्रमलजी म	– मध्यभारत ग्वालियर कोटा राज्य
मन्त्री - मुनिश्री पूर्णमलजी म	– थलीप्रदेश
मन्त्री - मुनिश्री मिश्रीमलजी म	– मारवाड़-बिलाड़ा जयतारण सोजत देसूरी, पाली सिवाना जोधपुर जालौर क्षेत्र
मन्त्री - मुनिश्री हजारीमलजी म	– डेगाना पर्वतसर नागौर, डीडवाना फलौदी सामर शेरगढ साकड़ा मेड़तापट्टी रेलवे लाइन से उत्तर दिशा तरफ
मन्त्री - मुनिश्री पन्नालालजी म	– जयपुर टोक सवाईमाधोपुर अजमेर राज्य
मन्त्री - मुनिश्री किशनलालजी म	– खानदेश बरार सी पी मुम्बई
मन्त्री - मुनिश्री विनयऋषिजी म	– महाराष्ट्र चैन्नई मैसूर
मन्त्री - मुनिश्री फूलचन्दजी म	– बगाल बिहार असम, उड़ीसा
मन्त्री - मोतीललजी म	– मेवाड पचमहाल
मन्त्री - पुष्करमुनिजी म	– मेवाड पचमहाल

इस प्रकार क्षेत्रीय वर्गीकरण करने से चतुर्विध सघ की धर्मकारिणी सम्बन्धी व्यवस्था मन्त्रिमण्डल के अधीन हो गई और उपाध्यायमण्डल की नियुक्ति से मुनियों के शिक्षण साहित्य-सर्जन और आगम-प्रकाशन के बारे मे समावना व्यक्त की गई और शास्त्रीय दृष्टि

से शका-समाधान का अवसर आने पर उपाध्यायमडल को उसका निराकरण करने का भार सौंपा गया।

(4) ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक

ध्वनिवर्धक यन्त्र मे बोलने या न बोलने के बारे मे साधु-सन्तो मे दो विचारधाराए विद्यमान थीं। एक विचारधारा थी कि श्रमणवर्ग का चरित्रबल बना रहना आवश्यक है। शास्त्रानुसार उसकी क्रियाए हो। स्वच्छन्द और अवैधानिक प्रवृत्तियो के लिये सुविधा न दी जाये। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रयोग में विद्युत का उपयोग होता है और विद्युत तेजस्काय है और जो सचित्त है। अत उसकी विराधना करना श्रमणधर्म की परम्परा नहीं है। सैद्धान्तिक भ्रान्तियों के साथ ध्वनिवर्धक यन्त्र की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से समाज की स्थिति डावाडोल और अस्थिर हो जायेगी। अत साधु-जीवन के उत्कर्ष की दृष्टि से श्रमणवर्ग के लिये ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग उचित नहीं है। यदि ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने की सुविधा दी जाती है तो उस सुविधा के नाम पर बिजली के पखे रोशनी टेपरिकार्डर और वातानुकूलित गृह के उपयोग की परम्परा भी चल पडेगी और इसके जो परिणाम निकलेगे धर्मानुरागियो को कुपरिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिये। दूसरी विचारधारा थी कि ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाये तो कोई हानि नहीं है उसमे मुनिधर्म के पालन मे दोष नहीं लगता और उसके उपयोग के लिये प्रायश्चित्त लेने की जरूरत नही है। ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग साधु अपनी सुविधा के लिये नहीं करते वरन् श्रावक अपने लिये करते हैं। इसलिये मुनिचर्या मे मुनि के निमित्त यह कार्य न होने से मुनि को दण्ड-प्रायश्चित्त लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है। दूसरी बात–विद्युत अचित्त है और जब वह अचित्त है तो उसके उपयोग से साधु को जीवो की विराधना का दोष नहीं लगता है। साथ ही जब हम जैन धर्म के प्रचार की बात करते हैं तो समयानुकूल प्रचार-साधनो को जुटाना आवश्यक हो जाता है। तथा पहले इतने बड़े-बड़े नगर देश मे नहीं थे जितने आज हैं। उस स्थिति मे जैन गृह सख्या नगरो मे बढी है और वे सभी एक स्थान पर प्रवचन आदि का लाभ प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं। सख्या की बहुलता के कारण सभी श्रोताओ तक आवाज पहुच सके यह सभव नहीं है। इसलिये उस स्थिति मे ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग होता है तो करना चाहिये।

इस बात का उत्तर शास्त्रीय परम्परा वाले यह देते थे कि इससे बहुत बड़ी हानि हो सकती है। क्योकि ध्वनि यन्त्र में विद्युत का प्रयोग होता है और विद्युत अग्निकाय के अन्दर है। इसके लिये उत्तराध्ययन सूत्र के 36वें अध्ययन मे जहा बादर तेऊकाय का प्रकरण चला है वहा तेऊकाय के भेद गिनाते हुए शास्त्रकार ने 'इगलि' (अगार) आदि क साथ विज्जू

(विद्युत) अर्थात् अगार अग्नि की तरह विद्युत अग्नि को भी तेऊकाय में स्पष्ट गिनाया है। इसी तरह अन्य शास्त्र मे भी अग्नि के भेद गिनाते हुए 'सघर्ष समुत्थिय' अर्थात् सघर्ष से पैदा होने वाली को भी अग्नि कहा है आदि कई शास्त्रीय प्रमाणो से विद्युत को तेऊकाय के अन्दर प्रतिपादित किया है। और कहा है कि यदि इसको काम में लिया जाता है तो तेऊकाय (अग्निकाय) की विराधना होने से साधु के पहले महाव्रत की खण्डना होती है। महाव्रत की खण्डना की स्थिति के साथ यदि प्रचार का कार्य चालू किया गया तो अन्य महाव्रतों के खण्डन का भी प्रसग आ सकता है और यह सिलसिला आगे चलते हुए समग्र श्रमण सस्कृति का घात करने वाला भी वन सकता है। अत इसको काम मे लेना वहुत हानि का कार्य है।

इन दोनों विचारधाराओ का सघर्ष समेलन मे स्पष्ट रूप से सभी के सम्मुख आ गया था। ऐसा मालूम पडता था कि ध्वनिवर्धक यन्त्र मे वोलने मे प्रतिष्ठा और न वोलने में अप्रतिष्ठा हो। जहा आदर्श को सुरक्षित रखने की भावना गौण और अहम् की भावना मुख्य हो जाती है वहा शुद्धता के लिये अवकाश नहीं रह जाता है। 'स्वार्थी दोष न पश्यति' की उक्ति वात-वात में व्यक्त होने लगती है। सम्मेलन मे भी यही वात हुई। यहा तक दिखने लगा कि यदि साधुओ को ध्वनिवर्घक यन्त्र के उपयोग करने की अनुमति न मिली तो श्रमण सगठन को खड-खड करने मे भी झिझक नहीं होगी।

ध्वनिवर्धक यत्र के प्रयोग के सम्वन्ध मे काफी रस्साकस्सी चली। अधिकाश पजावी सन्तो के अनुशासनहीन तूफान के कारण तथा हाथ पर ध्वनिवर्धक यत्र पर वोलने का विल्ला लगाये हुए समागत पजावी श्रावको की वौखलाहट एव वार वार तूफान मचाने के प्रयत्न के कारण निर्णय मे वड़ी अड़चनें पैदा हुईं। स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अधिवेशन में तो ध्वनिवर्धक यत्र को लेकर मारवाडी-पजावी लोगो मे भारी हगामा मचा। परिस्थिति यहाँ तक विगड़ गई कि एक वार तो मारपीट होने तक की नौवत आ गई थी। वातावरण वड़ा क्षुब्ध था। *अत स्वाभाविक था कि ऐसे वातावरण में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था* और हुआ भी वैसा ही। चर्चा-विचारणा के पश्चात् इस प्रकार प्रस्ताव पास हुआ–

'ध्वनिवर्धक यन्त्र मे वोलना मुनिधर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में वोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्दरूप से ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये।

इस प्रस्ताव पर उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा., प मुनिश्री पन्नालालजी म.सा. प मुनिश्री नानालालजी म.सा (वाद में आचार्यश्री) तटस्थ रहे और प मुनिश्री लालचन्दजी म.सा. ने विरोध मे मत दिया। प्रस्ताव सर्वानुमति से न होकर एक मत के विरोध से स्वीकृत हुआ।

प्रस्ताव पारित होने के वाद जो ध्वनि-यन्त्र मे वोलने के पक्ष मे थे उन्होने प्रस्ताव के

शब्दो पर गहराई से विचार न कर अपने मन में सतुष्टि मान ली कि हमारे लिये प्रायश्चित्त के साथ अपवाद मे ध्वनि-यन्त्र खुल गया है। लेकिन जो शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र मे नहीं बोलने के पक्ष म थे उन्होने गहराई से सोचा कि प्रस्ताव की भाषा मे ध्वनि-यन्त्र खुलने जैसी कोई बात नहीं है। प्रस्ताव मे सिर्फ शास्त्रीय शब्दो का सकलन मात्र है। 'मुनिधर्म की परम्परा नहीं है' इन शब्दो से मुनिधर्म के जो महाव्रतादि हैं उनमे यह चीज आ नहीं सकती और अपवाद मे बोलना पडे तो' इन शब्दो में भी 'तो' शब्द से अपवाद भी साधारण नहीं लेकिन अत्यन्त विवशता की स्थिति का द्योतन करता है। अर्थात् जहा साधु का सयमी जीवन खतरे मे पडने की स्थिति मे हो वहा साधु की अत्यन्त विवशता की स्थिति आती है। जनसमुदाय के एकत्र होने मात्र से अधिक को सुनाने की स्थिति में साधु की विवशता नहीं आती। क्योकि साधु ऐसी स्थिति मे अधिक को नहीं सुनाता है तो साधु का जीवन खतरे मे नहीं पड़ता है। प्रस्ताव मे जो प्रायश्चित्त अनिवार्य रूप से रखा गया है इससे विद्युत को अचित्त मानना स्वत निरस्त हो जाता है और अनिवार्य प्रायश्चित्त से विद्युत्त स्वय सचित्त सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव में उल्लिखित शब्दो द्वारा शास्त्रीय सिद्धान्त और श्रमण सस्कृति की सुरक्षा की स्थिति दृढ बन गई। अत शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने वाला पक्ष अपनी स्थिति को सुरक्षित समझकर चुप हो गया। क्योकि प्रस्ताव मे उल्लिखित शास्त्रीय शब्दो की शास्त्रीय दृष्टि से जिस समय व्याख्या की जायेगी उस समय ध्वनि-यन्त्र का अधिक सख्या में सुनाने का अपवाद बन ही नहीं सकेगा और न कोई बोल सकेगा। यदि उसके पहले कोई बोल देगा तो वह श्रमण सघ के नियमानुसार नियम को तोड़ने वाला माना जायेगा। अत इस प्रस्ताव से ध्वनि यन्त्र में नहीं बोलने वाले पक्ष को भी सतुष्टि हो गई। यही कारण है कि भीनासर साधु-सम्मेलन मे 35 हजार जनता की पर्याप्त सख्या होते हुए भी वहा कोई भी साधु ध्वनि-यन्त्र में न बोल सका।

उपाचार्यश्री का आदर्श कार्य अनुकरणीय

इन प्रस्तावो के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रस्ताव पारित हुए। लेकिन उनका यहा कोई खास प्रसग न होने से उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। सिर्फ एक प्रस्ताव जिसका पूर्व में सकेत किया गया यहा दिया जा रहा है–

श्री वर्द्धस्था जैन श्रमण सघ के श्रद्धेय उपाचार्यश्री पर जो अनर्गल मिथ्या एव अशोभन आक्षेप किये गये हैं उनको उपाचार्यश्रीजी म. ने जिस गम्भीरता शाति एव उदारता से सहन किया एव विष को अमृत मे बदलने के लिये जो निरन्तर प्रयत्न किया इसके लिय समस्त प्रतिनिधि मुनिमण्डल अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पण करता है और इस आदर्श कार्य को अनुकरणीय समझता है।

इस प्रकार के प्रस्ताव से अधिवेशन में उपस्थित बधुओं मे रोष का वातावरण व्याप्त हो गया क्योंकि यह प्रस्ताव कॉन्फरेस के कतिपय नेताओ का था। श्रमण सघ ने जो प्रस्ताव पास किया वह भी वहुमत का है और उसमे भी शब्दो का जो सकलन हुआ उन शब्दों की वास्तविक शास्त्रीय व्याख्या हुए बिना ध्वनियन्त्र के लिए श्रावको को प्रस्ताव करने की कतई आवश्यकता न थी। फिर भी प्रस्ताव घडकर अनधिकार चेष्टा की उसका नतीजा अशुद्धता के रूप मे तत्काल ही परिलक्षित हो गया। मानों सगठन-रूपी महल को छिन्न भिन्न करने के लिए उसकी ईंट खिसकाना प्रारम्भ कर दिया गया हो। विषय निर्वाचनी समिति में भी मतैक्य नहीं था फिर भी इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन मे स्वीकृत्यर्थ उपस्थित किया गया। प्रस्तावक महोदय ने सोचा होगा कि सम्मेलन मे तो वहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है अत यहा तो व्यक्तिगत प्रभाव से स्वीकृत हो ही जायेगा। लेकिन उपस्थिति मे जब रोष का वातावरण बना तो उनका निराकरण करने मे स्वय समर्थ नहीं हो सके और परिस्थिति को शात करने के लिये मुनिराजो का सहारा लिया गया। उनके पधारने से विरोध ऊपरी तौर पर शात हो गया लेकिन मनो में अस्वस्थ वातावरण की कसक अवश्य ही छोड़ गया। परिणाम यह हुआ कि कॉन्फरेस के समस्त समाज के प्रतिनिधित्व रूप को आघात पहुचा और वह कुछ एक व्यक्तियो की सस्था-मात्र रह गई। इसके कारण श्रमण सगठन का ढाचा भी लड़खडाया और समाज की आशाए भी निर्मूल सिद्ध हुईं।

सम्मेलन और अधिवेशन के पश्चात्

भीनासर मे चतुर्विध सघ का जमघट हुआ और समाजोन्नति के लिये योजनाबद्ध कार्य करने के निश्चय भी हुए। लेकिन कार्य के लिये प्रेरक शक्ति के विद्यमान होते हुए भी प्राय साधुओ में राजनीति जैसी कुत्सित गुटबदी के कारण निराशा दृष्टिगोचर होती थी। सक्षेप में कहे तो सभी अनेक आशकाओ को लिये अपने-अपने क्षेत्रो की ओर जा रहे थे। मनों में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि आगे क्या होता है ? यह सगठन टिकेगा या नहीं ? किन्हीं किन्हीं को आशका थी कि सगठन से पहले जो व्यवस्था थी वह तो अब नष्टप्राय है और नया सगठन सबल बनने के पूर्व ही छिन्न भिन्न होता दिखाई देता है। अस्तु, अब जो हो चुका है उसके परिणाम देखने की ही अपने को प्रतीक्षा करनी चाहिये।

इस प्रकार की विचारधारा का ही परिणाम था कि श्रमणसघ के अधिकारी मुनिराजों की ओर से समय समय पर सगठन के निश्चयों प्रस्तावों को क्रियान्वित कराने के लिये प्रेरणा तो दी जाती थी और श्रावकों के द्वारा भी सगठन को मजबूत बनाने के लिये बार बार घोषणाएं होती रहती थीं लेकिन शक्ति का अपव्यय हो रहा था और समाज की अस्मिता क्षीण होती जा रही थी।

सम्मेलन के पश्चात् साधु-सन्तों का विभिन्न क्षेत्रो की ओर विहार हुआ। सगठन की सुदृढता के लिये साधु एव श्रावकवर्ग यह अनुभव करता था कि विभिन्न सिघाड़ों के साधु-सन्तों की पारस्परिक अदला-बदली हो और एक-दूसरे के विशेष सम्पर्क में आयें तो सगठन को बल मिल सकता है। पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा भी स्वय इस बात को फरमाते थे कि श्रमण सघ को सबल बनाने एव उसमे आगत विकृतियो का उन्मूलन करने के लिये एक-दूसरे सिघाड़े के सन्तो को एक-दूसरे सिघाडे के साथ रखना आवश्यक है। इस बात को सम्मेलन की विचारणीय विषयसूची मे भी रखा गया और सन्तो ने इसके लिये काफी विचार-विमर्श कर उपयोगी माना और तदनुकूल कार्य करने की भावना भी व्यक्त की थी। लेकिन हृदय की दुर्बलता या मन-वचन-काया की अन्यथा प्रवृत्ति के कारण यह विचार मूर्तरूप नहीं ले सका। इतना प्रबल शिष्यमोह परिलक्षित हुआ कि विरागी और रागी में भेद करना भी कठिन-सा दिखता था।

उपाचार्यश्रीजी द्वारा निर्णयो का कार्यान्वयन

उपाचार्यश्रीजी श्रमण सघ को अखण्ड एक सुदृढ सगठन के रूप में देखना चाहते थे और इसके लिये जो उचित समझते थे सदैव करने के लिये उत्सुक थे। सम्मेलन में तो एक-दूसरे के सन्तों की अदला-बदली का निर्णय अभी हुआ था किन्तु सादडी सम्मेलन के समय से ही उपाचार्यश्रीजी ने इस परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। सहमन्त्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा आदि का अपने साथ ही उदयपुर मे चातुर्मास कराया था और अपने सन्तों को एक-दूसरे सिघाड़ों मे रहने की अनुमति प्रदान की थी।

सयुक्त चातुर्मास के समय स्थविरपद-विभूषित मुनिश्री पूरणमलजी म सा जोधपुर में स्थिरावास मे विराजमान थे। आपके साथ एक शिष्य था जो साथ रहने के लिये तैयार नहीं था और उचित वैयावृत्ति करने में भी प्रमाद कर देता था। यह स्थिति मुनिश्री पूरणमलजी म. ने उपाचार्यश्री एव उपस्थित अन्य सन्तो के समक्ष रखी और कहा कि सयम-साधना के अनुकूल मेरी व्यवस्था करा दी जाये जिससे मेरी आत्म-साधना में व्यवधान न आये। यहा विराजित शास्त्रज्ञ मुनिश्री समर्थमलजी म के समक्ष भी यही सकेत किया है तो कहते हैं कि श्रमण सघ छोड़ो तो मैं सन्त दू। यद्यपि श्रमण सघ में अभी कई बातें सन्तोषकारक नहीं हैं और आपश्री उनके उचित समाधान के लिये प्रयत्नशील हैं। मैं भी उनके समाधान में अपना योग देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन श्रमण सघ मे मेरी योग्य व्यवस्था न हो सकी और साधना मे व्याघात आया तो आत्महित और इतने समय की सयम-साधना के फलितार्थ को पूर्ण करने के लिये श्रमण सघ को छोड़ने के लिये भी मुझे विवश होना पड़ेगा।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने इस स्थिति को समझा। इस चातुर्मास काल मे श्रमण सघ के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मुनिश्री आनन्दऋषिजी म सा भी साथ मे थे। उनसे आपश्री ने कहा कि मुनिश्री पूरणमलजी म की स्थिति की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य है। एक सन्त आप दीजिये और एक सन्त मैं दू, जिससे इनकी सेवा भी हो और आत्म-साधना में किसी प्रकार का व्यवधान न आये। लेकिन प्रधानमन्त्रीजी महाराज ने इस उचित कार्य के लिये अपनी अनिच्छा व्यक्त की और सन्त देने से इनकार कर दिया।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने श्री हस्तीमलजी म सा आदि के सम्मुख भी इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा लेकिन कोई भी अपने शिष्य को सेवा मे रखना नहीं चाहते थे। सभी को परखा किसी मे भी इस बात के लिये विवेक जाग्रत् नहीं हुआ। अन्त मे उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने अपने दो प्रमुख शिष्यो–कर्मठ सेवाभावी शात दात मुनिश्री करणीदानजी म सा एवं नवदीक्षित सरलस्वभावी मुनिश्री घेवरचन्दजी म सा को मुनिश्री पूरणमलजी म सा– की सेवा के लिये दिया।

इन दोनो मुनिवरों ने पूर्ण मनोयोग और तत्परता से वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म.सा. की वैयावच्च की और समाधिमरण को सफल बनाया। इसका प्रभाव जोधपुर श्रीसघ पर तो पड़ा ही लेकिन समस्त श्रावक सघो को भी सोचने का मौका मिला कि योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्यो ने गुरु-परम्परा श्रमणधर्म के गौरव को द्विगुणित किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि श्रमण सघ का सगठन सिर्फ कागजो में लिखा रहने वाला है। उसमें रहने वाले मुनिवरों मे न तो एक दूसरे के प्रति किंचिन्मात्र भी सहयोग की भावना है और न अपने दायरे से आगे बढने के लिये तैयार हैं। केवल ऊपर-ऊपर की चिकनी चुपडी बातें हो रही हैं।

उपाचार्यश्रीजी म सा का लक्ष्य था कि जब हमने आत्मसाक्षीपूर्वक निर्णयों को स्वीकार किया है तो तदनुकूल कार्य करने के लिये भी उतना ही साहस दिखना चाहिये। इसके लिये दूसरे क्या सोचते हैं और क्या करते हैं यह हमें विचारने का नहीं है किन्तु कार्यान्वित करने की ओर अपना लक्ष्य होना चाहिये। इसीलिये उपाचार्यश्रीजी ने उसे अपने जीवनकाल में साकार रूप दिया।

पूरणबाबा के उदगार

वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म सा जिन्हें श्रद्धा और आत्मीयता से चतुर्विध सघ पूरणबाबा के नाम से सम्मानित करता था को योग्य व्यवस्था हो जाने से पूर्ण सन्तोष हुआ और आत्महित मे तल्लीन रहने लगे। जप-तप मे समय का सदुपयोग होने से मानसिक

उत्साह मे एक अनोखापन दृष्टिगत होता था। अपनी साधना मे सहायक उपाचार्यश्रीजी के गुण-गान करते हुए उच्च स्वर मे घोष करते थे कि मेरा अन्त समय सुधर गया। जीवन-भर की साधना का सुफल प्राप्त कराने वाले महापुरुष को बारबार वन्दना है। मुझे तो गणेशनारायण ने सुखी और शल्यरहित बना दिया है।

अनुशासन के सजग प्रहरी

सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म सा ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए और सम्मेलन की कार्रवाई की चतुर्विध सघ को जानकारी देते हुए स 2013 के चातुर्मासार्थ गोगोलाव पधारे। गोगोलाव मे अधिकतर काकरिया परिवार की गृहसख्या है। इस परिवार की श्रमणधर्म के प्रति निष्ठा और चारित्रवान क्रियापात्र सन्तो की प्रति श्रद्धाभक्ति अपूर्व है। इसी परिवार की विशेष भक्ति और चातुर्मास के लिये अनेक वर्षो से होने वाली प्रार्थना के फलस्वरूप स 2013 का चातुर्मास गोगोलाव होने का अवसर आया था। गाव छोटा सा है किन्तु उपाचार्यश्रीजी के विराजने से विशाल नगर का रूप धारण कर लिया था। देश के कोने कोने से प्रतिदिन आने वाले हजारो दर्शनार्थियो का अपूर्व जमघट लगा रहता था।

भीनासर सम्मेलन के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी ने अपने दो सतो– प र मुनिश्री सिरेमलजी म एव मुनिश्री आईदानजी म को उपाध्यायमुनि अमरचन्दजी म सा के कुचेरा चातुर्मास मे साथ रखा ताकि सम्मेलन के आशय को सबल बनाने और उद्देश्य को सिद्ध करन में सफलता मिले।

मुनिश्री आईदानजी म सम्मेलन की कार्रवाई को अकित करते थे। उन्हे सम्मेलन मे हुए विचार-विमर्श की पूर्ण जानकारी थी। चतुर्विध सघ के जानने योग्य कार्रवाई को तो प्रकाशित कर दिया गया था और साधु-साध्वी वर्ग से सम्बन्धित निर्णयो को प्रकाशित नहीं करने का निश्चय किया गया था। परन्तु मुनिश्री आईदानजी म ने उस विवरण को कुछ मुनियो पर आक्षेप लगाते हुए और शास्त्रीय मर्यादाओ के विपरीत बातो का समावेश करते हुए 'श्रमण' में लेख प्रकाशित करवाया। उपाध्याय अमरमुनि के सत मुनिश्री सुरेशमुनिजी ने भी 'महान चुनौती' नामक पुस्तक लिखकर श्रमण सघ पर आक्षेप लगाये।

इस अतिशयोक्तिपूर्ण लेख और पुस्तक से समाज मे कटुता का वातावरण व्याप्त हो गया और कई अधिकारी मुनिवरों ने उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा में लिखवाया कि सन्तों की इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा से समाज मे दूषित वातावरण बन रहा है तथा अनुशासन की दृष्टि से भी यह कार्य अयोग्य है।

उपाचार्यश्रीजी ने उक्त लेख का अवलोकन किया और श्रमणसघीय धारा उपाध्यायो–

1 मुनिश्री आनन्दऋषिजी म सा 2.मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा 3 कवि मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा., 4 मुनिश्री हस्तीमलजी म सा को सन्देश भिजवाया कि श्री आईदानजी का जो लेख प्रकाशित हुआ है उसमें कौन-कौनसी बाते अनुचित हैं और उनका सुधार करना व लेखक मुनिवरो को सावधानी दिलाना सम्मेलन में किये गये निर्णयानुसार उपाध्यायमण्डल का अधिकार है। अत इस विषय पर योग्य कार्रवाई करने के बारे मे जानकारी करावें।

उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म को विशेष रूप से यह भी लिखाया गया था कि मुनिश्री आईदानजी आपके पास हैं। अत आप उनसे सभी जानकारी कर योग्य कार्रवाई करने के बारे में सूचित करें। जिससे दूषित वातावरण शात हो सके।

इस सन्देश के प्रत्युतर में उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म के अतिरिक्त अन्य तीनों उपाध्याय मुनियो ने लेख के अनुचित अशों का सकेत किया किन्तु उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म की ओर से सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया और न अनुचित अश के बारे में भी सकेत मिला। इस पर पुन उनको स्पष्ट उत्तर देने के लिये सूचना भिजवाई। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला।

इसी चातुर्मास-काल के बीच दि 20 21 अक्टूबर 56 को लुधियाना मे श्री अ भा. श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की जनरल कमेटी की बैठक अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी की अध्यक्षता मे हुई। उस समय भी इसके बारे मे काफी ऊहापोह हुआ। जिसका समाधान करने और स्थिति को स्पष्ट करने के लिये अध्यक्ष महोदय की ओर से निम्नलिखित प्रस्तावात्मक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया–

'प मुनिश्री आईदानजी म ने 'श्रमण' मासिक में तथा प मुनिश्री सुरेशचन्दजी म. ने 'महान चुनौती' नामक पुस्तिका में जो विचार प्रगट किये हैं उनको पढकर श्रमण सघ और श्रावक सघ को हार्दिक खेद हुआ है। यह जनरल कमेटी भी दुखानुभव कर रही है। पूज्य उपाचार्यजी म सा से व उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म सा से प्रार्थना करती है कि उन्हें यथाशीघ्र प्रायश्चित्त देने की कृपा कर चतुर्विध श्रीसघ को सतुष्ट करे अन्यथा इसके विरोध की भावना बढ़ेगी ऐसा अनुभव किया जा रहा है। भविष्य में स्थानकवासी जैन समाज की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचे ऐसी लेखन-प्रवृत्ति न करने की भी श्रमण सघ के पूज्य मुनिवर्यों से प्रार्थना है।'

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा मुनिश्री आईदानजी म की उक्त अन्यथा प्रवृत्ति को उचित नहीं मानते थे और सम्बन्धित कार्य के लिये कार्रवाई करने का विचार भी कर चुके थे।

वासनी गाँव में व्याख्यान से मुस्लिम भाई प्रभावित

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म सा आदि सन्तों ने गोगोलाव से विहार

या। रास्ते मे वासनी गाव मे जहा अधिकतर मुसलमानों की बस्ती है हिन्दुओ की बहुत कम उपाचार्यश्रीजी म आदि सन्तों को देखकर मुसलमान भाई हसी-मजाक उडाने लगे। किन जब उस गाव मे बाजार के बीच आचार्यश्रीजी म सा का प्रवचन हुआ तो सुनकर वे वाक रह गये और उन मुसलमान भाइयो के दिलो मे जैन मुनियो के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो ई और सोचा कि महात्मा लोग प्रत्येक मानव के लिए हितकारी हैं। मुसलमान भाइयो ने लकर उपाचार्यश्रीजी के चरणो मे प्रार्थना की कि आप हमारी मसजिद मे व्याख्यान दे। इधर न्य लोगो ने निवेदन किया कि व्याख्यान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहा सब लोग लाभ सकें। अत मसजिद के निकट ही सडक पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात् सलमान भाइयो के मुह से ऐसा सुना गया– ये महात्मा हमारे मौलवी सा व पीर सा हैं। धिक दिन विराजना चाहिये। लेकिन वहा निरामिष-भोजी व्यक्तियो के घर बहुत कम होने आहार-पानी का सयोग बैठना कठिन था तथा आगे भी बढना था अत अधिक न विराजे र वहा से विहारकर उपाचार्यश्रीजी म सा कडलू ग्राम के निकट पधारे। उधर मुनिश्री ईदानजी म और प मुनिश्री सिरेमलजी म ने भी उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ कुचेरा से हार किया। उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी म सा ने भी अपनी शिष्यमण्डली सहित नागौर से डलू की ओर विहार किया। यथासमय सन्तमण्डल का कडलू ग्राम मे पदार्पण हुआ। ब उपाचार्यश्रीजी म सा कडलू ग्राम से एक मजिल दूर विराज रहे थे तब प मुनिश्री सिरेमलजी म व मुनिश्री आईदानजी म कडलू से विहार कर उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे पस्थित हुए।

नि आईदानजी का सघ-निष्कासन

उपाचार्यश्रीजी म सा ने मुनिश्री आईदानजी म से पूछा कि आपने जो लेख श्रमण में लेखा है उसके बारे में बहुत-सी शिकायते आ रही हैं। ऐसे लेख विसवाद बढाने वाले होते सो आपने ऐसा लेख क्यों लिखा ? मैंने पहले भी आपको मना कर दिया था कि कोई भी लेख शास्त्रमर्यादा और श्रमण सघ की मर्यादा के विपरीत नहीं लिखना। इसको आपने स्वीकार करते हुए कहा था कि मैं ऐसा कोई भी विचार व्यक्त नहीं करूगा या नहीं लिखूगा जिससे श्रमण सघ की मर्यादाओं को ठेस पहुचे। लेकिन आपने ध्यान नहीं रखा। अत इस भूल का ायश्चित्त लो और भविष्य मे पुन भूल को न दुहराने का दृढ सकल्प कर लो।

उपाचार्यश्रीजी म सा की इस सरल सीधी-सादी बात को मानने के लिये मुनिश्री आईदानजी म. तैयार न हुए और अपने पक्ष के समर्थन और बचाव के लिये कहा कि समाज के अन्दर कई एक ऐसी प्रवृत्तिया हो रही हैं जिनका श्रमण सघीय दृष्टि से अधिकारी

मुनिराजो को परिमार्जन करना चाहिये लेकिन वे ऐसा नहीं कर रहे हैं। अत आपश्री गुरु-शिष्य के सम्बन्ध से जो भी दड प्रायश्चित्त आदेश आदि देगे उसे अगीकार करने को तैयार हूँ किन्तु श्रमण सघ के सर्वोच्च अधिकारी के नाते दिये गये आदेश शिरोधार्य नहीं होंगे।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने प्रत्युतर मे भाव व्यक्त किये कि मैं अभी श्रमण सघ में हूँ और श्रमण सघ का उत्तरदायित्व भी मुझ पर है। अत सरलता के साथ श्रमण सघीय नियमों का पालन करूगा। अन्य अधिकारी सन्त क्या कैसा कुछ कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं आदि बातें जब प्रमाण सहित मेरे समक्ष आयेगी तो उनसे भी यथायोग्य यथास्थान शुद्धिकरण कराने की भावना रखता हूँ। अत उनका उदाहरण देकर अपनी गलती को छिपाने में लाभ नहीं है।

यह तो आपको मालूम ही है कि भीनासर सम्मेलन मे हम-आप सभी ने निर्णय किया है– नियमभग का सब साधु-साध्वियो को दड लेना होगा। यदि कोई कहेगा कि मैं दण्ड नहीं लूगा या वह दण्ड नहीं लेगा तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इस धारा के अनुसार यदि आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि नहीं कर लेते हैं तो सबध कैसे रह सकता है ?

प मुनिश्री सिरेमलजी म ने भी मुनिश्री आईदानजी म को समझाया कि या तो आप अपनी सम्पूर्ण स्थिति पूज्यश्री को समझाओ और अपने भाव स्पष्ट करो अन्यथा विधानानुसार प्रायश्चित्त लो। लेकिन मुनिश्री आईदानजी म ने न तो प्रायश्चित्त लेने की भावना व्यक्त की और न पूज्यश्री का समाधान ही किया। उपाचार्यश्रीजी ने एकान्त में बैठकर सोच विचार करने का मौका भी दिया किन्तु उनके परिणामो मे सरलता नहीं आई। अन्त मे उपाचार्यश्रीजी म सा को मुनिश्री आईदानजी म से सम्बन्ध विच्छेद करने का निर्णय लेना पड़ा। मुनिश्री आईदानजी म एकाकी विहार कर वापस कडलू पहुचे। वहा पर उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा ने काफी समझाया और स्थिति की गम्भीरता का भी दिग्दर्शन कराया लेकिन उनके सत्परामर्श की अवहेलना कर वहा से भी अकेले चले गये।

उपाध्यायश्री एव कॉन्फरेस अध्यक्ष द्वारा निर्णय की सराहना

दूसरे दिन विहार कर उपाचार्यश्रीजी म सा ने कडलू ग्राम में पदार्पण किया तो उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा आदि सन्त अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये अगवानी हेतु सामने पधारे और वापस ग्राम मे आये। सन्तों का यह सम्मिलन एक अनोखी छटा बिखेर रहा था। ग्रामनिवासियो मे सन्तो के पधारने से अपूर्व उत्साह था और अपने-आप को धन्य मान रहे थे। इन्हीं दिनों कॉन्फरेंस के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई श्री कानमलजी नाहटा आदि 20 25 अग्रणी श्रावक उपाचार्य के दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

प्रासगिक प्रवचन-श्रवण के पश्चात् श्रमण सघ की स्थिति शिथिलाचार आदि के बारे मे श्रावको ने चर्चा प्रारम्भ की तो पूज्यश्री ने प्रसगोपात्त फरमाया– समाज की स्थिति बडी विचित्र हो रही है। कई अधिकारी सन्त अपने द्वारा ही स्वीकृत श्रमण सघीय नियमोपनियमो की उपेक्षा कर रहे हैं। जिससे सगठन मे शिथिलता और स्वच्छन्दता को बढावा मिल रहा है। यही कारण है कि कल मैंने मुनि आईदानजी को नियमविरुद्ध प्रवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त लेने का सकेत किया था लेकिन उनके ऐसा न करने पर मैंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। वे मेरे शिष्य थे लेकिन मैं आत्मसाक्षीपूर्वक नियमोपनियमा का स्वय भी पालन करने के लिये बद्ध हूँ और दूसरो को भी इसी प्रकार पालन करते देखना चाहता हूँ।

उपाचार्यश्रीजी म सा के इन उद्गारों का अभिनन्दन करते हुए उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा ने कहा कि आपश्री जैसे महापुरुष से ही समाज-सुधार और सघ सगठन का उद्देश्य और समाज का भविष्य दिनोदिन सफल होगा।

उपस्थित अग्रणी सज्जनो ने भी उपाचार्यश्रीजी के निर्णय की भूरि भूरि प्रशसा की और उसे उचित माना तथा हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए निवेदन किया कि जिनके मन मे सुधार की सच्ची भावना होती है वे अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर सबसे पहले सुधार का प्रयोग अपने या अपने परिकर से प्रारम्भ करते हैं। आपश्री के निर्णय का समाज पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा। ऐसे स्वच्छन्द व्यक्ति समाज मे रहे भी तो कोई लाभ नहीं और इसके लिये परवाह करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य समाजस्पर्शी प्रश्नो पर भी गभीरता के साथ विचारो का आदान-प्रदान हुआ जिनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। मागलिक-श्रवण करने के पश्चात् प्रमुख श्रावक अपने-अपने स्थानो को रवाना हो गये।

उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी की भ्रान्तिया दूर हुई

कडलू मे उपाध्याय प र मुनिश्री प्यारचन्दजी म ने उपाचार्यश्रीजी म सा से मालवा की ओर विहार करने की अनुमति चाही और साथ ही अर्ज की कि मुझे मालवा म अन्यान्य सन्त-सतिया मिलेगे उनके लिये आपश्री का क्या आदेश है ? उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया कि श्रमण सघ के नियमोपनियमों का पूरी तरह से पालन होना चाहिये। इस बात का ध्यान आप मिलने वाले प्रत्येक सन्त को दिला दे। यदि किसी भी नियमोपनियम के भग होने की बात सुनी तो अब सहन करने की स्थिति मे नहीं हूँ। क्योंकि पूर्व म तो सम्प्रदाय विभिन्न थे अत सुनकर चुप रह जाता था किन्तु अब हम सब एक हो गये हैं इसलिये किसी के द्वारा किसी भी सन्त तथा सती के विषय में नियमोपनियम भग होने की बात सुनी गई तो फिर वही स्थिति

होगी जो आईदानजी के साथ वरती गई। इस पर उपाध्यायश्रीजी ने बड़े हर्ष के साथ फरमाया– आपश्री ने जो आदेश फरमाया वह आपश्री के महत्त्वपूर्ण पद के अनुरूप ही है। इस आदेश को मैं आपश्री के आदेशानुसार प्रसारित करता हुआ विचरण करने का भाव रखता हूँ।

एक दिन कडलू गाव मे जब उपाचार्यश्रीजी म सा वाहर जगल गये उस समय एकान्त के प्रसग से उपाध्यायश्रीजी म सा ने दिल खोलकर अपनी बात उपाचार्यश्रीजी के सन्मुख रखी कि श्रमण सघ बनने के पहले मैं बहुत भ्रम में था और सोचता था कि उपाचार्यश्रीजी म सा अपने शिष्यो का बचाव करते हैं और अन्य को बदनाम करते हैं। इसी प्रकार की और भी कई भ्रान्तियाँ हमारे मस्तिष्क में घूम रही थीं। लेकिन अब मैं देखता हूँ कि यह सब हमारे भ्रम के कारण हुआ। उदयपुर चातुर्मास के बाद आज तक की प्रवृत्ति से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि आपश्री की वृत्ति अपने पराये के भेद से ऊपर उठकर शुद्ध साधुवृत्ति को देखने की है। किसी को दबाने की या किसी को बदनाम करने की भावना आपके अन्तःकरण में जरा भी नहीं है। शुद्ध स्फटिक के समान आपश्री के हृदय का हमने निकट से दर्शन किया है।

मूर्तिपूजक सत तत्त्व-चर्चा कर प्रसन्न हुए

कडलू से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म सा आदि सन्त मेडतारोड़ पधारे और एक धर्मशाला में विश्राम किया। उसी धर्मशाला मे मूर्तिपूजक सप्रदाय के एक सन्त भी विराज रहे थे। सायकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् वे उपाचार्यश्रीजी म सा के पास तत्त्व-चर्चा के उद्देश्य से आये। प्रासगिक रूप में सवत्सरी विषयक चर्चा-वार्ता भी हुई और कई प्रश्न पूछे तथा 49वें 50वे दिन ही सवत्सरी क्यो करना चाहिए– इस विषय मे भी जानकारी चाही। उपाचार्यश्रीजी म सा ने विशद विवेचना करते हुए आगमिक दृष्टि से उन सब प्रश्नो का समाधान किया और फरमाया कि वर्तमान मे श्रमणसघ ने जो सवत्सरी विषयक प्रस्ताव स्वीकार किया यह प्रेम और एकता की दृष्टि से है। क्योकि श्रमण सघ निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के आधारभूत पचमहाव्रतों की सुरक्षा के साथ सामाजिक एकता को भी महत्त्व देता है और समन्वयात्मक एकसूत्र में आवद्ध होने में जैन समाज की भलाई मानता है और इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य मे रखते हुए उक्त निर्णय किया गया है।

उपाचार्यश्रीजी के सप्रमाण स[illegible] समाज के [illegible] के प्रति जागरूकता के दर्शन कर उक्त सन्तश्री ने [illegible] बोले कि इस प्रकार के स्पष्ट समाधान को आज मैं [illegible] रहा हूँ। [illegible] के विचारों को जानने का [illegible] लेकिन [illegible] से किसी [illegible] है। ऐसे महापुरुष की से[illegible] मुनि [illegible] गये [illegible]

इस पर उनसे पूछा कि आईदानजी को कैसे जानते हैं ? प्रत्युत्तर में सतश्री ने कहा कि कुछ दिन पहले आईदानजी यहा आये थे और इसी धर्मशाला मे ठहरे थे। वार्त्तालाप के प्रसग मे मालूम हुआ कि वे आपके सघ मे नहीं हैं। श्रमण सघ विषयक बातचीत भी हुई तो बोले– श्रमण सघ मे है क्या सिर्फ ऊपरी दिखावा है। अभी मैं उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म की सेवा मे जयपुर जा रहा हूँ और श्रमण सघ को तहस-नहस कर देंगे आदि।

उपाचार्यश्रीजी म ने उक्त बातो को सुन लिया किन्तु किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी न करते हुए फरमाया कि जिसको जैसा अनुकूल प्रतीत हो वैसा सोचे। ऐसे राग-द्वेषपूर्ण वातावरण से साधु-सतो को दूर रहना ही शोभा देता है।

सघ-विघटन का पहला कारण पालीकाण्ड

सयम के प्रति उदासीनता अथवा स्वेच्छाचार साधु मर्यादा के लिये घुन हैं लेकिन जब साधुओं द्वारा ही अपने पद के विपरीत प्रवृत्तिया प्रारम्भ हो जाती हैं तो उद्‌देश्य की सफलता के लिये आशा करना व्यर्थ है।

यद्यपि सादड़ी मे बृहत्साधु सम्मेलन होने के पश्चात् सभी सप्रदायो के साधु-सन्त एक बड़े सगठन में आबद्ध जरूर हो गये थे लेकिन अधिकाश की वृत्तिया पूर्ववत चल रही थीं और उनमें से कितनेक साधुवेशधारियो का यह कार्य बड़ी चतुराई से गुप्तरूप मे चल रहा था कि पता लगना ही दुस्साध्य था। लेकिन यह निश्चित है कि कलक स्वयमेव प्रगट हो जाता है।

भीनासर सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में साधु-सतों के चातुर्मास हो रहे थे। इस शुभावसर से आशा थी कि श्रमण सघ के निश्चय क्रियान्वित होकर सगठन को बलशाली बनायेगे। समाज की यह आकाक्षा उचित भी थी कि पाली में शिथिलाचार के कुत्सित काड को भण्डाफोड़ हुआ।

सवत् 2013 मे कतिपय साधुवेशधारियों का पाली मे चातुर्मास हुआ। उनमें प्रमुख नाम बड़े मुनि रूपचन्दजी का है और इनसे सम्बन्धित पूर्णचन्द आदि तीन मुनि दो साध्वियाँ हीरामुनि एव मरुधरकेशरी के पास रहने वाला दूसरा रूपचन्दजी आदि प्रगट रूप में थे और अप्रगट रूप में इस दल से सम्बन्धित अन्य भी कई मुनि थे जिनका सम्बन्ध पजाब तक पहुच चुका था। इनके पापाचार की लीलाए सीमा लाघ चुकी थीं कि अक्टूबर 56 में इसका भण्डा फूटा। इनके द्वारा किये गये पत्रव्यवहार तथा साज सामान को देखकर समाज में रोष की लहर व्याप्त हो गई। समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसे घृणित काड को जानकर लज्जित हुआ और इन छद्मवेशियो का साधुवेश छीनकर दण्डित करने की जोरदार माग होने लगी। समाज

का रोष दिनोदिन उग्र होता जा रहा था और चाहता था कि ऐसे अनाचारियो से समाज को शीघ्र ही मुक्ति मिले।

समाज के अग्रणी सज्जनो ने पाली जाकर इस काड से सबधित सभी पत्रों पास में मिले सामान आदि की सूची बनाकर तथा सम्बन्धित व्यक्तियो की साक्षी लेकर विवरण तैयार किया। इस विवरण को श्री अ सा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अध्यक्ष आदि पदाधिकारियो और उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा में निर्णय के लिये प्रेषित किया तथा कॉन्फरेस की ओर से उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे इस काड से सम्बन्धित वेषधारी व्यक्तियों का निर्णय करने का निवेदन किया गया।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने इस काड के समस्त विवरण को देखा और गम्भीरता से समझा। इस कलक से श्रमण सघ को बचाने के लिये आवश्यक था कि दोषी व्यक्तियों को दोष के अनुसार दण्ड दिया जाये। उपाचार्यश्रीजी म सा जब कडलू से ग्रामानुग्राम विहार कर थावला-पी ग्राम की ओर बढ़ रहे थे तब उससे पहले उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म आकर मिले और पाली मे घटित काड के बारे में विचार विनिमय हुआ।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने परिस्थिति की गम्भीरता को स्पष्ट करते हुए उपाध्यायश्री से कहा कि आपके पहले भी समाचार थे कि शिथिलाचार का उन्मूलन होना चाहिये और श्रमण सघ सुव्यवस्थित हो। इस सम्बन्ध मे आपने कुछ सुझाव भी दिये थे। साथ ही यह भाव भी दर्शाये थे कि यदि सुव्यवस्था न बनी तो मैं ऐच्छिक सभोग रखना चाहूँगा। दूसरे पत्र में यह भी लिखाया था कि श्रमण सघ की उचित व्यवस्था नहीं बनती है तो मैं उपाध्याय पद पर रहने को भी तैयार नहीं हूँ। स्थिति को देखते हुए आपके विचार ठीक हैं। मैं भी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अव्यवस्था को उचित नहीं मानता हूँ और चाहता हूँ कि हम स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करें। प्रयत्न करने पर भी यदि व्यवस्था न बन सके तो अन्य मार्ग को सोचना उपयुक्त रहेगा। फिलहाल अपने को स्थिति को सभालने का प्रयत्न करना ही चाहिये। इन्ही विचारों को दृष्टि मे रखते हुए मैंने आपको पहले सन्देशा भिजवाया था।

आपका यहा पधारना हो गया यह अच्छा ही रहा। एक बात और सोचने की है कि यहां से विहार कर पी की ओर चल रहे हैं तो वहा मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व उनके साथ पालीकाण्ड से सम्बन्धित एक सूत्रधार भी मिलेंगे। सभव है अगवानी के लिये वे सामने भी आयें तो उनके साथ अपने को कैसा सामोगिक व्यवहार रखना चाहिये ?

उपाध्यायजी ने प्रत्युत्तर दिया कि रूपचन्दजी ने घृणित कार्य किया है अत उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता है और यदि मरुधरकेशरीजी ने भी उनसे

समोग विच्छेद नहीं किया है तो उनके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। यह शास्त्रीय म
कि दोनो और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियो से समोग-सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए।

उपाचार्यश्रीजी म सा को उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म सा का उक्त सुझाव उचि
और कहा कि आप साथ के सभी सन्तो को सम्बन्धित जानकारी करा देवे। स
प्रतिक्रमण समाप्ति के पश्चात् उपाध्यायश्री ने अपने निर्णय की जानकारी सन्तो को क

तत्पश्चात् उपाध्यायश्री आदि सन्तों सहित उपाचार्यश्रीजी म सा पी ग्राम म
अगवानी के लिय मरुधरकेशरीजी सामने भी आये किन्तु आदेशानुसार सन्तों ने उन
वदना-व्यवहार आदि नहीं रखा और स्पष्टता की प्रतीक्षा करते हुए स्थानक मे पदार्पण
स्थानक के द्वार पर ही उपस्थित दर्शनार्थियो को मागलिक श्रवण करा दिय
व्यवस्थित जानकारी के लिये मरुधरकेशरीजी को बुलाया गया। उनसे रूपचन्दजी के
सम्बन्ध की बात को सुनकर उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म सा ने कहा कि
सम्बन्ध-विच्छेद न करने की बात सुनी थी लेकिन अब स्वय आपके द्वारा ही इसकी
चुकी है अत अगर आप रूपचन्दजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं और अपनी
स्पष्ट कर देते हैं तो सम्बन्ध बने रहेगे अन्यथा आपके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा।
इसके लिये मरुधरकेशरीजी तैयार नहीं हुए। अत उनके साथ सम्बन्ध-विच्छेद क
गया।

इस निश्चय से मरुधरकेशरीजी को अपनी स्थिति का भान हुआ और चर्चा-विचा
पश्चात् श्री रूपचन्दजी आलोचना सुनाने के लिये तैयार भी हुए। लेकिन उस आलो
सरलता और स्पष्टता का अभाव था। इस स्थिति में उपाचार्यश्रीजी म सा व उपा
हस्तीमलजी म सा ने निश्चय किया कि अधूरी-अस्पष्ट आलोचना चतुर्विध सघ को ला
नहीं है और न स्वय रूपचन्दजी के लिये हितकर है। अत जब तक शुद्ध हृदय से आ
की स्थितिपूर्वक दड प्रायश्चित्त नहीं हो जाता है तब तक सम्बन्ध विच्छेद रखना ही उपयुक्त

लेकिन यह स्थिति कभी नहीं बनी। श्रावको की ओर से प्रयत्न भी किये गये
मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व रूपचन्दजी ने अधिक-से-अधिक उलझनें ही पैदा कीं। प
इन उलझनो से श्रमण सघ मे विघटन का सूत्रपात हो गया।

सघ-विघटन का दूसरा कारण ध्वनिवर्धक यत्र

ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रयोग को लेकर भीनासर साधु-सम्मेलन म ही साघ-विघ
लक्षण दिखने लगे थे। किन्तु तत्कालीन स्थिति को समालने की दृष्टि से एक अस्प
अपूरा प्रस्ताव बहुमत से पारित तो कर दिया गया किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की ग

इसी अवसर पर श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अधिवेशन ने भी ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने की दृष्टि से श्रावको को छूट दे दी थी। लेकिन प्रस्ताव के लिये उपस्थित जनसमूह ने अपना रोष व्यक्त किया था। अत समाधान के लिये सम्मेलन में आगत कई-एक मुनिराजो को स्थिति का स्पष्टीकरण करने के लिये सभामच पर लाया गया था।

उस समय तो स्थिति शात-जैसी हो गई। किन्तु ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव की श्रमण सघ के द्वारा व्याख्या हुए विना ही लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म के विराजते हुए भी उनके ही शिष्यों ने ध्वनिवर्धक यन्त्र का प्रयोग कर श्रमण सघ के प्रस्ताव को तोड़ा। यह श्रमणसघ के विघटन का दूसरा कारण बना। इससे श्रमण सघ और सयमप्रेमी चतुर्विध सघ में हलचल मच गई और श्रमण सघ के प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म.सा के पास इसका स्पष्टीकरण करने के लिये शिकायतें आने लगीं।

इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पतिजी म सा ने आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा से पत्रव्यवहार किया। लेकिन सम्बन्धित पत्रव्यवहार के प्रसग मे निर्मित कटुता के वातावरण से व्याख्यानवाचस्पतिजी म ने प्रधानमत्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. की सेवा मे भेज दिया।

ध्वनिवर्धक यत्र के विषय मे आचार्य आत्मारामजी म का निर्णय

इसी वातावरण के बीच दि 21 21 अक्टूबर 56 को लुधियाना में श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की साधारण सभा की बैठक हुई जिसमें अधिकारी मुनिवरों को जानकारी कराये विना ही आचार्यश्री आत्मारामजी म सा ने ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्णय फरमा दिया-

'शास्त्रों के परिशीलन से पता चलता है कि आपवादिक स्थिति में किसी दड का विधान नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये व्यवहारसूत्र के प्रथम उद्देश्य सूत्र 32 में लिखा है कि साधु सयम-रक्षा के लिये कारणवश वेश परिवर्तन कर ले तो भी उसको कोई प्रायश्चित का विधान नहीं है।

'इसके अतिरिक्त स्थानागसूत्र के प्रथम स्थान उद्देश्य दूसरे में लिखा है– साध्वी नदी आदि में गिर रही हो तब साधु उसकी भुजा पकड़कर निकाल ले तो भी उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं। ध्वनि-यन्त्र का प्रयोग आपवादिक स्थिति में स्वीकार किया गया है। अत इसके लिये शास्त्रीय दृष्टि से कोई प्रायश्चित्त नहीं आता। तथापि सघैक्य को ध्यान में रखकर इस प्रायश्चित्त की कल्पना की जा रही है। अग्नि का स्पर्श हो जाने पर शास्त्रों मे प्रायश्चित्त

का विधान आता है। किन्तु ध्वनिवर्धक यन्त्र का तेजस्कायिक होना अभी विवादास्पद है तथापि सघैक्य को ध्यान मे रखकर लघु चौमासी प्रायश्चित्त दिया जाता है।

उत्सर्ग और अपवाद

जिन पर सदा चला जाय जिनका सदा पालन किया जाय वह उत्सर्ग मार्ग है।

किसी विशेष कारण से जिसका प्रयोग किया जाय वह अपवाद है।

'ध्वनि यन्त्र में जो अपवाद शब्द है उसका अभिप्राय महावीर जयन्ती महोत्सव पर्युषण पर्व सवत्सरी पर्व दीक्षा महोत्सव और सार्वजनिक व्याख्यान इन प्रसगो से है जहा कि हजारों की सख्या हो।

आपवादिक स्थिति की उपेक्षा कर उल्लघन करना ही स्वच्छन्दता है। कोई भी साधु-साध्वी ध्वनि-यन्त्र की व्यवस्था करने की प्रेरणा कदापि न करे और न स्वच्छन्दता से ही काम ले। स्वच्छन्दता से जितने दिन लाउडस्पीकर का प्रयोग होगा उतने दिन का दीक्षाछेद किया जा सकेगा।

'मौखिक या लिखित आलोचना होने पर आचार्यश्री उपाचार्यश्री मौखिक या लिखित दण्ड दिया करेगे।

आचार्य आत्मारामजी म के निर्णय का समाज मे घोर विरोध

जव यह निर्णय दि 1 12.56 के जैन प्रकाश में छपकर समाज के सामने आया तो विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया और कहा गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म सा अपनी दि 1.2 56 की घोषणा मे ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने वाले साधु-साध्वियों को प्रायश्चित्त देने का विधान करते हैं तो इस निर्णय मे अपवाद का प्रायश्चित्त नहीं आता ऐसी परस्पर विरुद्ध बाते क्यों ?

इसी निर्णय के अन्तिम अश मे जहा दण्ड का कथन किया गया है आचार्यश्रीजी म. के साथ उपाचार्यश्रीजी म के नाम का भी उल्लेख किया गया है इससे समाज में यह भ्रांति फैली कि पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा भी इस निर्णय से सहमत हैं। जब इस निर्णय की जानकारी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को मिली तो उन्होने फरमाया कि इस निर्णय से न तो मेरा कोई सम्बन्ध ही है न मेरा मत है न मुझसे पूछा गया आदि।

कई अधिकारी मुनिवरों एव अन्य सत-सतियो की ओर से आचार्यश्रीजी की सेवा मे इस निर्णय के विरोध मे पत्र आने लगे। उनमे निवेदन किया गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म अपनी पूर्व की घोषणा के अनुसार अधिकारी मुनियो की प्रार्थना के बिना कदापि निर्णय नहीं दे सकते फिर भी अधिकारी मुनियो की प्रार्थना के बिना ही निर्णय देकर अपने पूर्व के वचन से स्खलित हुए हैं।

दूसरी बात आचार्यश्री का यह निर्णय श्रमण सघ की व्यवस्था के प्रतिकूल भी है और उत्सूत्र-प्ररूपणा के साथ आगे चलकर श्रमण सस्कृति को तहस-नहस करने वाला भी सिद्ध हो सकता है अत आचार्यश्री आत्मारामजी म सा के उक्त निर्णय को अमान्य घोषित कर द आदि। तब उत्तर मे आचार्यश्रीजी म सा ने लिखवाया कि मैं आचार्यश्री आत्मारामजी म की सेवा मे पत्र व्यवहार करा रहा हूँ। उत्तर आने पर चतुर्विध सघ को जानकारी दी जावेगी।

तदनुसार आचार्यश्री आत्मारामजी म सा को निर्णय के बारे मे जानकारी देने के लिये पत्र लिखा गया। लेकिन टालमटूल उत्तरो की परम्परा चलती रही। इधर चतुर्विध सघ मे दिनोदिन रोष और अधिक बढता जा रहा था जिससे यह स्थिति दिखने लगी कि श्रमण सघ के सन्त आचार्यश्री आत्मारामजी म सा से असहयोग करने के लिये तत्पर हो जायेंगे। अन्त में दि 21 1 57 को पत्र आया–

...... कॉन्फरेस के अधिकारियों ने उपाचार्यश्रीजी से सहमति लिये बिना ही आचार्यश्री के अभिमत को निर्णय का रूप देकर जैन प्रकाश में प्रकाशित कर दिया। आचार्यश्री को इसका हार्दिक खेद है आदि।

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये कॉन्फरेस की जनरल कमेटी की विशेष बैठक जयपुर मे बुलाई गई और उसमें सम्बन्धित विषय का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव मे उक्त विषय पर शीघ्र निर्णय प्रगट करने के लिये श्रमण सघ के दोनों आचार्यो से प्रार्थना की गई थी।

इसके बाद भी ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग विषयक निर्णय के लिये अधिकारी मुनिराजों की ओर से उपाचार्यश्री गणशलालजी म सा के पास अनेक पत्र आये तथा श्रावकों ने भी इस प्रश्न के बारे में शीघ्र निर्णय के लिये प्रार्थनाए कीं। उपाचार्यश्रीजी म सा भी स्थिति स्पष्ट करने के लिये उत्सुक थे। अत आचार्यश्री आत्मारामजी म सा को पुष्ट प्रमाणों सहित उत्तर दिलाने के लिये कई-एक पत्र भेजे गये। लेकिन उनकी ओर से कोई सतोषजनक पत्र नहीं आया जिससे ध्वनिवर्धक यन्त्र सम्बन्धी प्रश्न का हल निकल सके।

अन्त मे दिनाक 16 10 57 को उपाचार्यश्रीजी म सा ने चतुर्विध सघ को सूचित किया जिसमे लिखा गया था कि अनिर्णीत अवस्था मे किसी भी चीज का प्रयोग होना वैधानिक नहीं माना जा सकता है। इस बात का ध्यान चतुर्विध सघ के प्रत्येक सगठनप्रेमी सदस्य को रखना आवश्यक है।

यह सूचनापत्र लुधियाना पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म सा की जानकारी के लिये भी भेजा गया था। जिसकी पहुच आ गई थी और यह प्रसग एक प्रकार से सुलझ गया प्रतीत होने लगा था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को कॉन्फरेंस कार्यालय का दि 10 12 57

का एक पत्र प्राप्त हुआ। उसमे लिखा था कि आचार्यश्री आत्मारामजी म सा इस सूचना को अवैधानिक मानते हैं। लेकिन उसम अवैधानिकता के कारणो का उल्लेख नहीं किया गया था। जबकि स्वय पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म सा ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को सर्वसत्तासम्पन्न अधिकारी मानते हुए इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये अधिकारी माना था।

इस प्रकार प्रश्न भी अधिक-से-अधिक उलझता गया और श्रमण सघ के सगठन को निर्वल वनाने मे ही अधिक योग दिया स्वच्छन्दता फैली और अनुशासन भग की घटनाए आये दिन होने लगीं।

सघ-विघटन का तीसरा कारण अप्रामाणिक सुत्तागमे

प्रमाणो के विना आगमो मे परिवर्तन करना योग्य नहीं लेकिन प मुनिश्री फूलचन्दजी म (पुप्फभिक्खू) ने 'सुत्तागमे' मे बिना प्रमाणो के कहीं कहीं मूल पाठो मे परिवर्तन कर दिया था। इसके वारे मे वृहत्साधु सम्मेलन मे चर्चा भी हुई परन्तु यह विषय शास्त्रो से सम्वन्धित था और कई शास्त्रों का गहन अवलोकन करना जरूरी था। इसलिये समयाभाव से सम्मेलन मे विचार नहीं हो सका और निर्णय के लिये पूज्यश्री आत्मारामजी म सा को सौंप देने का निश्चय किया गया। पारित प्रस्ताव इस प्रकार है-

'प फूलचन्दजी म (पुप्फभिक्खु) द्वारा सपादित 'सुत्तागमे' के विषय में निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ मे पुष्टावलम्वन एव खास प्रमाण विना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है अत वे अपने विचार आचार्यश्री की सेवा मे भेज दे। फिर आचार्यश्रीजी जो निर्णय देगे वह श्रमण सघ को स्वीकार होगा।

उक्त प्रस्तावानुसार सुत्तागमे विषयक निर्णय का पूर्ण उत्तरदायित्व पूज्यश्री आत्मारामजी म सा पर रखा गया था किनतु करीव छह महीने व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यश्री आत्मारामजी म सा की ओर स सुत्तागमे विषयक निर्णय समाज के समक्ष नहीं आया तो समाज में कुछ हलचल हुई कि अभी तक सुत्तागमे का निर्णय क्यों नहीं हो रहा है ? श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की ओर से भी कहा जाने लगा कि सुत्तागमे का निर्णय शीघ्र हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध मे पूज्यश्री आत्मारामजी म सा की ओर से दिनाक 21 11.56 को श्री सीतारामजी द्वारा लिखा गया एक पत्र कॉन्फरेस के प्रधानमन्त्री श्री आनन्दराजजी सुराना की मार्फत दि 8 12 56 को मेड़ता में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि—

सुत्तागमे के निर्णय का उत्तरदायित्व भीनासर सम्मेलन द्वारा आचार्यश्रीजी म पर डाला गया है उसके आधार पर श्री फूलचन्दजी म ने सुत्तागमे सम्वन्धी अपना अभिमत अभी-अभी आचार्यश्रीजी म के पास भेजा है। किन्तु कुछ दिनों से आचार्यश्रीजी अस्वस्थ चल रहे हैं।

अत आचार्यश्री फरमाते हैं– मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है अत सुत्तागमे की प्रामाणिकता अप्रामाणिकता का निर्णय उपाचार्यश्री करे। उपाचार्यश्री इस सम्बन्ध में जो देंगे वह मुझे स्वीकार होगा।

इस पत्र के उत्तर मे उसी दिन उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की ओर से पू आचार्यश्री आत्मारामजी म की सेवा मे श्री सीतारामजी को सम्बोधित करते हुए पत्र लिखा गया तथा जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि श्री आनन्दराजजी सुराना को दिलाई गई। वह पत्र इस प्रकार है-

'भीनासर सम्मेलन मे उपाचार्यश्रीजी स्वय उपस्थित थे ही। लेकिन एतद्विषय (सुत्तागमे विषयक) उत्तरदायित्व आचार्यश्रीजी म पर छोडा है अत आचार्यश्रीजी म का स्वास्थ्य ठीक होने पर सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्यश्रीजी म द्वारा ही होना चाहिये। अथवा ऐसे विषय उपाध्यायो के अधिकारान्तर्गत आ जाते हैं जैसा कि भीनासर सम्मेलन में उपाध्यायो के अधिकार नम्बर 1 मे लिखा है–

'साहित्य-सर्जन एव सशोधन करना आगम-साहित्य सबधी आक्षेपों का निवारण करना आदि।

लेकिन इस पत्र के पहुचने क बाद न तो पूज्यश्री आत्मारामजी म सा ने सुत्तागमे पर कोई निर्णय ही दिया और न इस विषय को उपाध्यायमण्डल को ही सौंपा और न इसके बाद उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के पास भी कोई सूचना आई।

इस प्रकार इस प्रश्न को भी अनिर्णीत ही रहने दिया गया। इससे यह शका दृढ़ होती है कि ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक विवाद को पालीकाड की तरह अधिक से अधिक उलझाने का अवसर दिया गया। फलस्वरूप सुत्तागमे मे आगम पाठों का इच्छानुकूल परिवर्तन आदि चलता रहा। यद्यपि बाद में श्रमण सघीय कार्यवाहक समिति ने सुत्तागमे के प्रकाशन को अप्रमाणित घोषित किया है लेकिन अप्रमाणित पाठो के शुद्ध एव प्रमाणित पाठों की जानकारी आज तक भी किसी को नहीं हो सकी है।

सुत्तागमे के सम्बन्ध में कॉन्फरेस का प्रस्ताव

दि 20 21 अक्टूबर 56 को लुधियाना में श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की साधारण सभा की बैठक हुई। जिसमें सुत्तागमे के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया था-

'सुत्तागमे' सूत्र में (मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म सा द्वारा सपादित) पाठ परिवर्तन के

कारण पूज्य आचार्यश्री ने अध्यादेश द्वारा प्रकाशन विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाया और भीनासर साधु-सम्मेलन मे पाठ-परिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री को लिख भेजने का आदेश दिया गया था लेकिन दु ख है कि अप्रमाणित सुत्तागमे का प्रकाशन व विक्रय बेरोकटोक अभी तक चालू है जो श्री वर्धमान स्था जैन श्रमण सघ व श्रावक सघ दोनो के लिये अप्रतिष्ठा का कारण बना हुआ है। अत यह जनरल कमेटी यह निश्चय करती है कि सुत्तागमे के प्रकाशन व विक्रय को तत्काल प्रतिबन्धित करने व मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म सा द्वारा जो अनुशासन भग हुआ है और हो रहा है इस सम्बन्ध मे भी श्रमण सघ कठोर कदम उठाकर अनुशासन-प्रणाली की रक्षा करे ऐसी श्रमण सघ से प्रार्थना है।

यहा श्रमण सघ के विघटन के कारणो मे से कुछ-एक का सकेत किया है। ऐसे ही और भी दूसरे-दूसरे अनेक कारण हैं जो सगठन को निर्बल बनाने में सहायक बनते रहे।

इन सभी प्रश्नो एव श्रमण सघ के मूल उद्देश्यो के अन्तर्गत स्वीकृत—एक आचार्य के नेश्राय मे शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित्त चातुर्मास व्यवस्था आदि के केन्द्रीयकरण करने के लिये लुधियाना जयपुर मे हुई कॉन्फरेस की साधारण सभा की बैठको मे भी विशेष रूप से प्रस्ताव पारित किये गये थे। लेकिन श्रमण सघ के अधिकारी मुनियो मे वह उदारता नहीं दिखी जो श्रावकवर्ग की भावना का मूल्याकन करती। इसके फलस्वरूप सगठन की नींव दिनोंदिन कमजोर होती गई।

अजमेर की ओर विहार और चतुर्विध सघ द्वारा स्वागत

गोगोलाव चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने आस-पास के कडलू, मेड़ता आदि क्षेत्रों को फरसते हुए अजमेर की ओर विहार किया। रास्ते में पी गाव पहुचने के पूर्व ही विहार करते हुए उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म आदि ठा उपाचार्यश्रीजी म सा से मिल गये और फिर वहा से साथ-साथ तथा आगे-पीछे विहार करते हुए पुष्कर के समीप पधारने पर मन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म आदि सत भी अगवानी के लिये पधार गये थे। लेकिन इसके पूर्व ही यह मालूम हो चुका था कि आईदानजी जिनका कि नियमविरुद्ध प्रवृत्तियो के कारण श्रमण सघीय धारा के अनुसार सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया था के साथ मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी ने सबध रखा है। अत मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ कैसे क्या सम्बन्ध रखना ? एतद्विषयक विचारणा उपाचार्यश्रीजी म सा और उपाध्यायजी हस्तीमलजी म के बीच पुष्कर के पूर्व ही हो चुकी थी। उसमे यह सोचा गया था कि मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ वदन व्यवहार आदि होने के पूर्व उनसे पूछ लिया जाये कि आपने आईदानजी के साथ सम्बन्ध रखा उसका आप प्रायश्चित्त लेना स्वीकार करते हैं तो आपके साथ सम्बन्ध रख

सकता है अन्यथा नहीं। तदनुसार मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के पधारते ही उनसे कहा गया कि आपने आईदानजी से जो सम्बन्ध रखा है उसका आपको प्रायश्चित लेना होगा। प्रायश्चित लिये बिना आपके साथ सम्बन्ध नहीं रह सकता। इस पर मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी ने प्रायश्चित ले लिया। तब उनके साथ सम्बन्ध रहा और वदन-व्यवहारादि हुआ। इसके बाद पुष्कर में प्रवेश हुआ। पुष्कर और अजमेर के बीच तो दर्शनार्थी जनों के आवागमन का तांता सा लग गया था। जैसे ही आपश्री अजमेर के निकट पहुचे सन्त-सतीवृन्द और श्रावक श्राविकाओं के समूह स्वागत के लिये उमड पडे।

चतुर्विध सघ के जुलूस के साथ स 2013 माघ शुक्ला 4 को उपाचार्यश्रीजी म.सा. का लाखनकोटडी स्थित एक बडे मकान मे पदार्पण हुआ। यहा पर करीब 15 16 दिन विराजना हुआ। प्रतिदिन व्याख्यान पचायती भवन मे होते थे जिनका स्थानीय और आस पास के नगरों के भाई-बहिनों ने लाभ उठाया। कानौड बालेसर ब्यावर अजमेर आदि क्षेत्रों की ओर से स 2014 के चातुर्मास की स्वीकृति के लिये विनतिया हुई किन्तु चातुर्मास के लिये काफी दूर होने से आपश्री ने किसी भी स्थान का आश्वासन नहीं दिया।

उपाचार्यश्री के चरणो में कॉन्फरेंस नेताओ की मार्मिक प्रार्थना

दि 21 3 57 को अजमेर में कॉन्फरेस की ओर से एक शिष्टमण्डल सेवा में उपस्थित हुआ। जिसमे समाज के अग्रणी कार्यकर्ता सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया सेठ मोहनमलजी चोरडिया आनन्दराजजी सुराना कानमलजी नाहटा रतनलालजी चोरडिया और धीरजलालजी तुरखिया आदि-आदि थे। शिष्टमण्डल ने समाज की वर्तमान स्थिति और उससे सम्बन्धित प्रश्नो पर उपाचार्यश्रीजी से वार्त्तालाप किया। आचार्यश्रीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया कि श्रमण सघ की शुद्धता और अखडता के लिये मेरी शुभ भावना है और श्रमण व श्रावक सघ के परस्पर सम्बन्ध व अपनी-अपनी मर्यादानुसार एक दूसरे से पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता व जागरूकता के बारे में बतलाया।

इसी सदर्भ मे कॉन्फरेंस के प्रमुख नेताओं ने उपाचार्यश्रीजी म सा के चरणों में मार्मिक प्रार्थना करते हुए सकेत किया कि पालीकाड आदि की परिस्थितियों के कारण हम सब को नीचा देखना पड रहा है। यद्यपि भीनासर सम्मेलन मे अधिकारी मुनियों को अलग-अलग अधिकार दिये गये हैं लेकिन न तो ये अधिकारों का दायित्व समझ रहे हैं और न इन काण्डों को मिटाकर समाज के अन्दर शुद्धिकरण का वातावरण तैयार कर रहे हैं। कुछ एक अधिकारी भी काण्डों मे अपने शिष्यों के फसे होने से इन काडों से सम्बधित मालूम हो रहे हैं और दण्ड देने म हिचकिचाते हैं। हम लोगो में से कुछ व्यक्ति पहल लुधियाना भी गये थे। वहा पर

हमने आचार्यश्री आत्मारामजी म के समक्ष यह परिस्थिति रखी तो उन्होने फरमाया कि ये सब मामले उपाचार्यश्री गणेशलालजी म को निपटाना चाहिये और वे निपटायेंगे ही। क्योकि वर्तमान विधान के अनुसार भी उनको सब अधिकार प्राप्त हैं आदि। इन्हीं भावो का एक पत्र भी कॉन्फरेस आफिस के मार्फत आपश्री के पास पहुचा दिया गया है। इसी तरह हम सब की एव शुद्धिकरणप्रेमी सन्तों की भी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इन मामलो को आपश्री निपटायें। ये मामले दूसरों से निपटने वाले नहीं हैं। आपश्री सक्षम हैं। अत इस विषय म शीघ्रातिशीघ्र कदम उठाकर हम सबका मुख उज्ज्वल करें, ऐसी हमारी साग्रह सानुरोध प्रार्थना है।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि आप लोगो को इन घटनाओ से दु ख है वैसी ही मुझे भी इस गन्दे वातावरण से खिन्नता है। मैंने अपने जीवन में ऐसे घृणित काड तो दूर रहे इससे भी हल्की स्थिति को सहन नहीं किया है। मुझे इस तरह के काड कितने कष्टदायी हैं आप इसका अनुमान लगा सकते हैं।

आपने जो अपनी व शुद्धिकरणप्रेमी सन्तो की भावना रखी और मेरे से ही यह कार्य निपटवाना चाहते हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं जो कदम उठाऊ उसमे सबका दृढ विश्वास हो तथा आप सब लोगो की दृष्टि मे जो व्यक्ति शुद्ध मालूम हो और शास्त्रीय मर्यादा एव श्रमण सघीय नियमोपनियम को ध्यान में रखते हुए मेरी दृष्टि मे अशुद्ध मालूम पड़े और मैं उसको जो भी दड दू, उसको अमली रूप देने-दिलाने की आप महानुभावो की तैयारी हो तो यह निर्णय मेरे से कराइये। अन्यथा इस विषय को मै किसी अन्य अनुभवी मुनि पर भी छोड़ सकता हूँ।

इस पर कॉन्फरेस के उन नेताओ ने कहा कि आप जो भी फरमावेगे उसको हम सहर्ष अमली रूप देगे दिलायेगे। इस विषय को आपश्री अन्य किसी पर मत छोड़िये। उनमें ऐसे विषयो को गौरवतापूर्ण तरीके से निपटाने की क्षमता हमको मालूम नहीं होती है। यदि होती तो कम-से कम दूषित व्यक्तियों का सम्बन्ध-विच्छेद तो वे उसी समय कर देते।

वार्त्तालाप के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म सा ने इस विषय को पूर्णरूपेण हाथ में लिया और अन्यान्य अधिकारी मुनिवरो के परामर्शपूर्वक शुद्धिकरण के साथ सगठन को ध्यान म रखते हुए पूरी छानबीन करके निर्णय दिया और निर्णय की सूचना सम्बन्धित व्यक्तियो के पास पहुचा दी। जिसकी स्वीकृति की सूचना भी प्राप्त हो गई और निर्णय के क्रियान्वयन की प्रतीक्षा करते हुए अजमेर से विजयनगर की तरफ विहार किया।

आस पास के छोटे-छोटे गावो को स्पर्श करते हुए विजयनगर पधारे। विजयनगर में प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म., उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म., प्रान्तमन्त्री मुनिश्री मेंसमलजी म वयोवृद्ध मुनिश्री रामकुमारजी म आदि सन्तो का सयोग मिला। दर्शनार्थी बधु तो आते ही

रहते थे। त्याग-प्रत्याख्यान अच्छी सख्या में हुए तथा वहा विराजित मुनिवरों से श्रमण सघ की वर्तमान स्थिति एव अन्यान्य विषयो पर विशद रूप से चर्चा-वार्त्ता हुई।

शार्दूलसिहजी की सेवा में उपाचार्यश्री ने सन्त भेजे

उनमे एक समस्या पाली मे विराजित स्थानापति वयोवृद्ध श्री शार्दूलसिहजी म की सेवा-सम्बन्धी थी। ये शार्दूलसिहजी म भूतपूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से आचार्यश्री जयमलजी म की सप्रदाय के थे और श्रमण सघ बनने के पश्चात् वृहत्साधु सम्मेलन भीनासर में प्रान्तीय मन्त्रियों ने जो अधिकार अपने पास रखे थे उनम प्रान्त में विचरने वाले वृद्ध सन्त सतियों की सेवा का अधिकार भी था। तदनुसार प्रान्त के मन्त्रियो को उनकी सेवा का पूर्ण उत्तरदायित्व समझते हुए व्यवस्था करने की नितान्त आवश्यकता थी। लेकिन प्रान्त-मन्त्रियों ने कोई ध्यान नहीं दिया। ये वृद्ध सन्त कष्ट पा रहे थे। ये समाचार उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के पास पहुचे तब वहा विराजित सतों से भी उपाचार्यश्रीजी म सा ने परामर्श किया और फरमाया कि कुछ सन्त मैं भेजू और कुछ आप (मन्त्रीश्री पन्नालालजी म व उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.) भेजे। ताकि पाली मे विराजित शार्दूलसिहजी म को ब्यावर विराजित ठाणापति सतों के पास अथवा बीकानेर विराजित ठाणापति सन्तो के पास पहुचा सकें। जिससे यहा के ठाणापति सन्तों के साथ इनकी सेवा भी अच्छी तरह से हो सके। इस पर दोनों अधिकारी मुनिवरो ने फरमाया कि आपश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन यह कार्य तो उस प्रान्त के अधिकारी मुनियों का है। अत उनको इस विषय मे पहल करनी चाहिये लेकिन वे प्रान्तीय अधिकारी मुनि इस तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं। आपश्री की यह महानता है कि आप अपनी सुव्यवस्था के लिये सोच रहे हैं। हम आपश्री की आज्ञा को न टालते हुए सेवा मे सन्त भेजने के लिये तैयार हैं बशर्ते कि उस प्रान्त के अधिकारी मुनि भी सेवा में अपनी ओर से सन्त भेजने को तैयार हो।

इस पर उपर्युक्त वार्तालाप के आशय की सूचना प्रान्त मन्त्रियों को दिलाई गई लेकिन उनका उत्तर आशाजनक नहीं था। अत पाली से वृद्ध सन्तों को उठाकर ब्यावर या बीकानेर पहुचाने की स्थिति नहीं बनी। फिर भी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए अपने सन्तो में से तपस्वीश्री चादमलजी म को एक वर्ष के लिये पाली भेजा और उस प्रान्त के मन्त्रियो को सूचना दिला दी कि इस वर्ष के लिये तो मैंने सन्त भेजा है आगे के लिए आपको पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिये। लेकिन उस प्रान्त के मन्त्रियों ने व्यवस्था नहीं की।

गणेशनारायण ने मेरी जिन्दगी सुधार दी

इसी तरह जोधपुर में विराजित वयोवृद्ध बाबाजी श्री पूर्णमलजी म की सेवा मे भी सन्त भेजना आवश्यक था लेकिन सयुक्त चातुर्मास मे जोधपुर मे विराजित प्रमुख सन्तों में से किसी ने ध्यान नहीं दिया तो फिर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने अपने पास रहने वाले सेवाभावी मुनिश्री करणीदानजी म को और नवदीक्षित मुनिश्री घेवरचन्दजी म को सेवा मे भेजा और दोनों मुनियों ने बाबाजी म की अन्त तक सेवा की। इस सेवा की जोधपुर सघ आज भी भूरि-भूरि प्रशसा कर रहा है और स्वय बाबाजी म कहा करते थे कि मेरी सेवा में महान् सेवाभावी सन्तो को गणेशनारायण (उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा) ने भेजकर मेरी जिन्दगी सुधार दी।

विजयनगर मे तप-त्याग का ठाठ

विजयनगर से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म सा गुलाबपुरा पधारे। यहा पर मन्त्री मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म आदि सन्त विराज रहे थे। स्थानीय सघ की ओर से उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ आने वालो की उत्तम व्यवस्था की गई थी। महावीर जयन्ती के अवसर पर श्रावक श्राविकाओ द्वारा विविध प्रकार की तपस्याए व त्याग-प्रत्याख्यान हुए। श्री कस्तूरचन्दजी कोठारी ब्यावर निवासी ने सजोडे ब्रह्मचर्यव्रत अगीकार किया एव अनेकों ने चर्बी लगे वस्त्रो के पहनने व दूसरे के यहा मिष्टान्न भोजन जीमने का त्याग किया।

चैत्र शुक्ला 14 की शाम को जोधपुर मे विराजित स्थविर पद-विभूषित तपस्वी मुनिश्री पूर्णमलजी म सा (बाबाजी म सा) के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार मालूम होने से चैत्र शुक्ला 15 को व्याख्यान बद रखा गया और उपचार्यश्रीजी म सा एव अन्यान्य सन्त-मुनिराजों ने बाबाजी म के जीवन एव उनकी विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए गुणानुवाद किया और उनके गुणो का अनुकरण करने के लिये चतुर्विध सघ का ध्यान आकर्षित किया। श्रावक-श्राविकाओं के आयबिल आदि की तपस्याए हुईं।

अजमेर और कानोड़ सघ चातुर्मास कराने को लालायित

उपाचार्यश्रीजी म सा ने कई-एक परिस्थितियों को लक्ष्य मे रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले स 2014 का चातुर्मास घोषित नहीं करने का फरमाया था। अत जैसे जैसे उक्त तिथि निकट आ रही थी कि चातुर्मास की विनती के लिये विभिन्न श्रीसघो के सैकड़ो भाई बहिन गुलाबपुरा मे उपस्थित हो गये। अजमेर और कानोड़ सघ के श्रावकों में तो अपने यहा ही चातुर्मास कराने की होड़ सी लग गई थी।

कनोड श्रीसघ ने भावभीनी आकर्षक भाषा मे अपने क्षेत्र को स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराया तो अजमेर सघ के अध्यक्ष मत्री आदि अग्रणी श्रावकों ने अपनी लगन श्रद्धा भक्ति का परिचय दिया। दोनो सघों का धर्मप्रेम और उत्साह श्लाघनीय था। कोई भी अपने अधिकार को छोडने के लिये टस-से मस नहीं होना चाहता था और सिर्फ यही चाहता था कि उपाचार्यश्रीजी म सा का स 2014 का चातुर्मास हमारे यहा ही हो।

ऐसी स्थिति में उपाचार्यश्रीजी म सा ने परामर्श दिया कि आप सभी का धर्मप्रेम सराहनीय है। मैं एक हूँ और चातुर्मास के क्षेत्र अनेक हैं अत चातुर्मास तो कहीं एक ही स्थान पर होगा। अत आप लोग आपस मे विचार-विमर्श करके एक निष्कर्ष पर पहुच जायें तो मेरे सोचने में सुविधा रहेगी। इस पर दोनो सघ आपस मे विचार-विमर्श करते हुए एक दूसरे सघ से चातुर्मास की याचना करने लगे कि इस वर्ष का चातुर्मास हमको दे दो। कानोड़ सघ की धार्मिक भावना प्रबल थी और अजमेर सघ की भी धार्मिक भावना कम न थी। अजमेर के सेठ श्री सौभागमलजी लोढा श्री गणेशमलजी बोहरा आदि कानोड़ सघ को समझाने मे भाग ले रहे थे। कानोड़ सघ के सदस्य कहने लगे कि आप लोग तो सम्पन्न हैं शिक्षित हैं बड़े शहर मे रहने वाल हैं सो आप लोग तो कभी भी चातुर्मास का लाभ प्राप्त कर सकते हैं लेकिन हम गाव के रहने वाले हैं अत यह मौका हमें दीजिये। हम आपके चरणो मे झोली बिछाते हैं और पगड़िया रखते हैं आदि कहते हुए धड़ाधड़ अपनी पगड़िया रख दीं। तब अजमेर वाले कहने लगे कि हम बड़े शहर में रहते हुए भी उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास अब तक नहीं करा सके हैं अत यह मौका तो हमें ही दीजिए और उपस्थित प्राय सभी अजमेर-निवासियों ने अपनी-अपनी पगडिया और टोपिया कानोड़ वालो के चरणों में रख दीं। लेकिन कोई समझौता नहीं हो पाया और अन्त में कहने लगे कि अब तो उपाचार्यश्रीजी म सा को ही कुछ फरमाना होगा। परन्तु अभी उपाचार्यश्रीजी म सा को फरमाने का अवसर नहीं था। शाम को उपाचार्यश्रीजी म सा ध्यान करके पौढ गये तो उपाचार्यश्रीजी म. के पाट के आस पास अजमेर के कुछ व्यक्ति माला लेकर जाप करने लगे। तब श्री नानालालजी म सा आदि सन्तों ने सकेत किया कि आचार्यश्रीजी म सा के पास आवाज न करें निद्रा भग हो जायेगी। निद्रा न आयी तो स्वास्थ्य के लिये अच्छा न होगा। आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। लेकिन वे पूर्ववत् जाप करते रहे। इस तरह अजमेर और कानोड़ सघ का अलौकिक दृश्य दर्शनीय था।

चातुर्मास प्राप्ति से कानोड़ सघ में हर्ष का पारावार

ऐसी स्थिति में वैशाख कृष्णा 1 को उपाचार्यश्रीजी म सा ने अपने प्रवचन में फरमाया कि कानोड़ और अजमर दोनो सघो की चातुर्मास हेतु विनती जोरदार है। लेकिन मैंने पहले

ही इस सम्बन्ध मे सकेत कर दिया था कि चातुर्मास-स्वीकृति को निमित बनाकर आप लोग आने-जाने का कष्ट न करे। परन्तु आप लोगों ने इस बात पर ध्यान न देकर आने-जाने की क्रिया चालू रखी। परिस्थितिवश पहले मैंने चैत्र शुक्ला 15 तक आगामी चातुर्मास के स्थान सवधी निश्चय के बारे में कहा था। लेकिन चैत्र शुक्ला 15 के बाद अब मैं चातुर्मास का निश्चय करने के लिये स्वतत्र हूँ। वर्तमान म जो परिस्थितिया चल रही हैं उनको दखते हुए अभी कुछ समय और चातुर्मास का निश्चय नहीं करने की स्थिति मेरे ध्यान मे आ रही है। आप दोनो सघो को कहीं पर आने की आवश्यकता नहीं है। चातुर्मास-काल मे कहा रहना उपयुक्त प्रतीत होगा वहा की सूचना दोनो सघो के मत्रियो को यथासमय किसी-न-किसी स्थान के सघ के मन्त्री द्वारा मिल सकती है।

इसके पश्चात् दोनों सघ अपने-अपने स्थानो को रवाना हो गये और कुछ दिन बाद दोनो सघो के मन्त्रियो को कुछ आगार रखकर सुखेसमाधे स 2014 का चातुर्मास-काल कानोड़ मे बिताने की स्वीकृति के समाचार मालूम हुए। ये समाचार सुनते ही कानोड सघ के हर्ष का पार नहीं रहा। चातुर्मास-प्राप्ति की खुशी मे कानोड सघ ने सारे गाव मे गुड बाटा था।

मेवाड प्रदेश की ओर विहार

कानोड मे आगामी चातुर्मास होने की खबर से मेवाड़ प्रदेश में अभूतपूर्व आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया था और कानोड पदार्पण होने के पूर्व आस पास के क्षेत्रों के भाई बहिन अपने-अपने यहा पधारने की विनतिया कर रहे थे।

उपाचार्यश्रीजी म सा का गुलाबपुरा से मेवाड प्रदेश की ओर विहार हुआ। आस-पास के क्षेत्रो को फरसते हुए भीलवाड़ा पधारे और अन्यान्य श्रीसघो की तरह भीलवाडा श्रीसघ भी इस अभूतपूर्व अवसर का अधिक से-अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये उत्सुक था। लेकिन विभिन्न क्षेत्र भी उत्सुकता स ऐसे अवसर की बाट जोह रहे थे अत अधिक विराजना न हो सका और भीलवाडा के निकटस्थ क्षेत्रा को परसने के पश्चात् आचार्यश्रीजी का कपासन नगर मे पदार्पण हुआ और पाच प्रवचन हुए जिनका स्थानीय जनता के अतिरिक्त बाहर से पधारे हुए श्रोताओं ने लाभ उठाया तथा अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

गाव-गाव मे मनोमालिन्य धुला

कुछ समय से कपासन के ओसवाल और माहेश्वरी भाइयों का अपनी-अपनी समाज में पारस्परिक मनमुटाव था। दोनो समाज अनेक धड़ों में विभक्त हो गए थे और वे धड़े एक-दूसरे को अपमानित करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा व्यक्ति और

समूह के लिये किसी भी रूप में इस प्रकार की धड़ेवदी को उचित नहीं मानते थे और अपने प्रवचनो में सगठन के बारे मे सकेत करते रहे। आपश्री के प्रभावोत्पादक एव हृदयस्पर्शी उपदेशों का ऐसा अपूर्व असर हुआ कि ओसवाल समाज मे दलबन्दी की होड समाप्त हो गई और प्रेम का वातावरण छा गया। माहेश्वरी समाज के भाइयों ने भी आपके उपदेशों का लाभ उठाया और उन्होंने भी अपने आपसी सघर्ष को शात करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

शान्ति के उपासक और शाति के सदेशवाहक पूज्य पुरुषो के पदार्पण का प्रभाव पारस्परिक सघर्षों को समाप्त करने का अमोघ उपाय है। उनके समीप जब जन्मजात विरोधी भी अविरोधी हो शाति का अनुभव करते हैं तो इन क्षणिक मतभेदों के समाधान में आश्चर्य भी कैसे हो सकता है ?

कपासन से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ताराखेड़ी दाता स्पर्शते हुए कनूकड़ा पधारे। कपासन के आस पास के क्षेत्र मे दो-दो तीन तीन मील की दूरी पर छोटे छोटे सैकड़ों गाव हैं। उन सभी गावो में बसने वाले श्रावक श्राविकाओं के समूह पूज्यश्री के दर्शनार्थ कनूकड़ा आये और व्याख्यान वाणी का लाभ उठाया। पूज्य उपाचार्यश्रीजी उन सभी क्षेत्रो को फरसने का लक्ष्य रखते थे किन्तु शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि सभी को स्पर्श कर सके लेकिन मार्ग मे पड़ने वाले गावों को तो अपने पदार्पण से पवित्र कर ही देते थे। अनेको ने तम्बाकू, भाग गाजा मास मदिरा आदि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग किया और जहां आपसी मनोमालिन्य था वह भी दूर हुआ।

दाता और कनूकड़ा में करीब 10-12 घर हैं। इन दोनों गावों के भाइयों में करीब 25 वर्ष से आपसी वैमनस्य था और बढते बढ़ते यह विकट स्थिति बन गई थी कि यदि आपस में समझौता न हुआ तो आस पास के गावो में भी फूट कलह की स्थिति बन सकती है। आचार्यश्रीजी का दोनों गावो में एक एक दिन विराजना हुआ और प्रवचन में दोनों गावों के निवासी भी एक दूसरे गाव मे उपस्थित हुए और आपश्री के उपदेशों से आपसी वैमनस्य दूर होकर उनमें सगठन हो गया। कनूकड़ा से विहार कर उमेड़ गाव में पधारे। यहा भी दो व्यक्तियों में लम्बे समय से आपस में मनमुटाव था। वह भी दूर होकर आपस में प्रेम का वातावरण बन गया।

उमेड से चाकुड़ा होते हुए आकोला पधारे। यहा के श्रावकों में भी जबरदस्त फूट थी। इस कारण समय-समय पर तूतू मैंमैं होती रहती थी और दिनोंदिन झगड़ा उग्र रूप धारण करता जा रहा था। परन्तु गाव के भाग्योदय से उपाचार्यश्रीजी का पदार्पण हुआ और सदुपदेश से यह झगड़ा भी शात हुआ। वर्षों का मनोमालिन्य धुल गया।

आकोला से विहार कर ताणा करजेडी सगेसरा उम्मेदपुरा स्पर्शते हुए भादसोडा पधारे। यहा आस-पास के सैकडो व्यक्तियों ने दर्शनार्थ उपस्थित होकर व्याख्यान-वाणी का लाभ उठाया। यहा से विहार का मडलिया होते हुए करोली पधारे। यहा पर राजपूतो की वस्ती है। राजपूतों के अत्याग्रह से एक व्याख्यान हुआ। जिससे व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात् अनेक व्यक्तियो ने मद्य-मास आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग किया एव शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। करोली से विहार कर चिकारडा मोरवण सुजाखेडा आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए मगलवाड़ पधारे।

चातुर्मास-काल निकट होने से कुछ सन्तो का विलोदा और कुछ का उदयपुर की ओर विहार कराकर आपश्री ने अनेड की ओर विहार किया। अनेड मे भी ओसवाल समाज के सिर्फ 4 घर हैं और उनमे भी आपसी मनमुटाव था। आपश्री के सकेतमात्र से उनमे एकता हो गई। अनेड से डूगला होते हुए भींडर पधारे। भींडर के समस्त निवासियो ने स्वागत किया। भींडर मे भी दो दल थे और आपस मे लडाई-झगड़ा चलता रहता था जो आपश्री के एक ही प्रवचन से समाप्त हो गया और पारस्परिक सुमधुर सम्बन्ध पुन स्थापित हो गये। भींडर से कानौड की ओर विहार हुआ।

भींडर के सभी निवासियो ने प्रवचनों का लाभ उठाया लेकिन वोहरा समाज के जो सबसे बडे मौलवी थे वे अत्यन्त प्रभावित हुए और वहा अपनी मस्जिद मे उपाचार्यश्रीजी को पदार्पण कराने के लिये प्रार्थना की तथा विहार के समय भींडर से उपाचार्यश्रीजी म सा के साथ कानौड़ तक आये। कानौड़ मे भी कुछ दिन व्याख्यान सुने और मौलवीजी का यह इरादा था कि चातुर्मास मे यहा ही रह कर सब व्याख्यान सुनू लेकिन मुबई से उनको बुलाने बाबत तार आ गया था इसलिए कुछ दिन बाद वे चले गये।

पहाड़ी प्रदेश और इधर के निवासियों को साधु की आहार-विधि की जानकारी न होने से विविध परीषहो को सहन करना पड़ा। लेकिन उपाचार्यश्रीजी का विशेष लक्ष्य छोटे-छोटे गावो मे विहार करने का रहता था। इससे गावो में काफी उपकार हुए और वहा के निवासियों ने दुर्व्यसनों का त्याग कर अपना नैतिक आचरण सबल बनाया।

चातुर्मास हेतु कानौड मे भव्य पदार्पण

स 2014 के चातुर्मास हेतु दी गई स्वीकृति के अनुसार पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा ठा 9 का आषाढ़ शुक्ला 10 दि 6 7.57 को प्रात सवा आठ बजे कानौड़ में पदार्पण हुआ। ग्राम के सभी निवासियों ने भव्य स्वागत के साथ अगवानी करते हुए जुलूस के रूप मे गाव मे प्रवेश कराया। महासतीश्री गट्टूकवरजी म.सा श्री चपाकवरजी म सा आदि ठा 7 का भी यहीं पर चातुर्मास होने से श्रावक-श्राविकाओ में अपूर्व उत्साह परिलक्षित होता था।

स्वागत-जुलूस गाव के विभिन्न मार्गो से होता हुआ स्थानक आया और सभा के रूप में परिणत हो गया। करीब डेढ घटे तक श्रावक-श्राविकाओं की ओर से स्वागत भाषण गायन आदि होने के अनतर पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा का प्रवचन हुआ।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास-काल के चार मास तक यहा ही विराजने का यह प्रथम दिवस था और इस प्रथम दिवस का लाभ प्राप्त करने के लिये आस-पास के गावों से सैकड़ों की सख्या में श्रावक-श्राविकाओं का आगमन हुआ था।

जन्म-जयन्ती समारोह

श्रावण कृष्णा तृतीया को पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा की अड़सठवीं जन्म जयन्ती तप त्यागपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई। अन्य दिनों की अपेक्षा उक्त अवसर पर उपस्थिति विशेष थी। सर्वप्रथम प मुनिश्री लालचन्दजी म सा., श्री ईश्वरचन्दजी म सा., श्री तोलारामजी म सा एव महासतीश्री मनोहरकवरजी म सा ने उपाचार्यश्रीजी म सा के जीवन की विशेषताओं और सयम तप त्याग-साधना आदि का सकेत करते हुए गुणानुवाद किया और अपनी-अपनी भावाजलि अर्पित की। प र मुनिश्री नानालाजी म सा (वर्तमान आचार्यश्री) ने गुणानुवादपूर्वक अपनी विनम्र भावाजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर समभाव चिन्तन की परिपाटी प्रारम्भ करे जिससे व्यक्ति आत्मदर्शन करते हुए विश्व के प्राणिमात्र के लिये मैत्रीभावना एव समभाव का विकास कर सके। विषमता का कारण व्यक्ति की अपनी अपनी भावना है। व्यक्ति का स्वार्थ ही दूसरे के अधिकार को हड़पने की कोशिश करता है।

इस सकेत पर अनेक व्यक्तियो ने वैसा चिन्तन मनन और अभ्यास करने की प्रतिज्ञा ली। श्रावक-श्राविकाओ में से भी कुछ भाई बहिनों ने गुणगान करते हुए कहा कि आपश्री के वैराग्यमय जीवन से प्रेरणा लेकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील होना ही सही भायने मे हमारा भावाजलि का समर्पण माना जायेगा।

अन्त मे पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा ने अपने समस्त गुणानुवादों को अतिशयोक्तिपूर्ण बतलाते हुए फरमाया कि सूत्रों में श्रावक श्राविकाओ को साधुओं का अम्मा पिया समान बताया है। इस दृष्टि से गुणानुवाद रूपी जो भी उपहार आपने मुझे दिये हैं उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी आप पर है। आप हमारी ज्ञान दर्शन चारित्र की साधना में सहायक बनें और स्वय भी आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवें।

जयन्ती के उपलक्ष्य में श्रावक श्राविकाओं ने उपवास आयबिल आदि अनेक प्रकार की तपस्याए कीं और जीवदया एव लोकोपकारी कार्यों के सहायतार्थ मुक्तहस्त से दान दिया।

चातुर्मास का सक्षिप्त विहगावलोकन

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा का चातुर्मास होने से कानौडवासियो के उत्साह उमग स्वधर्मीवात्सल्य एव आतिथ्य-सत्कार की भावना का सकेत यथाप्रसग किया गया है और उतने ही उत्साह उमग से व्याख्यान तत्त्वचर्चा प्रार्थना आदि के अवसरो पर उपस्थित होते थे। यद्यपि प्रवचन प्रारम्भ होने का समय तो प्रात 9 वजे का था लेकिन सूर्योदय से ही आवाल वृद्ध नगरजन प्रवचन-श्रवण के लिये एकत्रित हो जाते थे। साधारणतया प्रवचन सुनने के लिये प्रतिदिन करीव दा-ढाई हजार श्रोताओ की उपस्थिति हो जाती थी लेकिन पर्युषण पर्व जैसे पुण्य अवसरों पर पाच-सात हजार से भी अधिक श्रोताओ की उपस्थिति हो जाना एक साधारण-सी वात थी।

चातुर्मास-काल मे पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा एकान्तर तप करते रहे। मुनिश्री मोहनमुनिजी म सा ने 49 दिन की तपस्या की तथा मुनिश्री पारसमुनिजी म सा ने 25 दिन की तपस्या का पारणा कर पुन 9 चौविहार उपवास किये। सन्तो की ज्ञान साधना का दृश्य तो अलौकिक ही था। प मुनिश्री लालचन्दजी म सा शास्त्रो के अध्ययन मे दत्तचित्त रहते थे तो प र. मुनिश्री नानालालजी म सा (वर्तमान आचार्यश्री) जिज्ञासुओ विद्वन्मडल के प्रश्नो शकाओं का शास्त्रानुमोदित तार्किक शैली से सप्रमाण समाधान करके जैन धर्म और दर्शन के सिद्धातो का विशदरूपेण दिग्दर्शन कराते रहते थे। कर्मठ सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म सा जव देखो तव सन्तो की सेवा मे व्यस्त रहते थे।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा का स्वास्थ्य साधारणतया ठीक ही रहा। घुटनो में दर्द मधुमेह का रोग और पेशाव की तकलीफ तो चलती रहती थी लेकिन आसन प्राणायाम उपवास आदि द्वारा उनका शमन करते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा साधना में तत्पर रहते थे और मुमुक्षुजनो को शाश्वत सुख-शाति-प्राप्ति का मार्ग निर्देशित करते रहते थे।

सक्षेप मे कहे तो ज्ञानी ध्यानी तपस्वी सतजनों के विराजने से कानौड़ नगर तपोवन की उपमा को सार्थक कर रहा था। यहा के कण कण मे उत्साह था जीवन था और उससे भी वढकर एक प्राणवती चेतना के दर्शन होते थे।

खटीको ने मास-मदिरा आदि का त्याग किया

चातुर्मास-काल मे धार्मिक प्रभावना के लिये विविध प्रकार के आयोजन होने के साथ-साथ अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न हुए थे। उनमें से कुछ एक उल्लेखनीय प्रसगो का यहा सकेत कर रहे हैं।

कानौड़ के आस-पास के गावो मे काफी बडी सख्या में खटीकों की बस्ती है जो अधिकतर मूक प्राणियों का वध करके मास बेचने का धधा करते हैं और मासभोजी हैं। समय-समय पर वे भी उपाचार्यश्रीजी म सा के दर्शन और व्याख्यान श्रवण के लिये आते रहते थे। उनमे से कुछ-एक व्यक्तियो ने आपश्री के अहिंसा करुणा-दया-मैत्री भावना से ओतप्रोत हृदयस्पर्शी प्रवचनो से प्रभावित होकर जीवन-पर्यन्त के लिये प्राणिवध का त्याग कर दिया और अपने जीवन को सुसस्कारी बनाने के लिये जैन धर्म अगीकार करके गुरुमन्त्र ले लिया। इसी प्रकार कई आदिवासियो ने भी मास-मदिरा आदि दुर्व्यसनो का त्याग कर दिया।

बोहरा (मुसलमान) भाई के यहा पधारे उपाचार्यश्रीजी

कानौड़ा के बोहरा समाज (मुसलमान) के भाइयो की नि स्वार्थ सेवाए सदैव स्मरणीय रहेंगी। दर्शनार्थ आगत व्यक्तियो के लिये उन्होंने अपने घर तक खोल दिये थे और प्रबन्ध-व्यवस्था मे भी अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया था।

एक बोहरा भाई के मकान मे श्री अमृतलालभाई जवेरी मुबई की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबेन आदि ठहरे हुए थे। एक दिन मकान मालिक बोहराजी ने उनसे कहा कि आप लोगों को मकान का किराया देना होगा। इस बात को सुनकर श्रीमती केशरबेन ने कहा कि आप जो किराया बतायेगे देने का तैयार हैं। तब बोहराजी ने कहा कि मुझे किराया रुपयों में नहीं चाहिये लेकिन यह किराया चाहूँगा कि उपाचार्यश्रीजी म सा का हमारे मकान में पदार्पण हो। अकस्मात् एक दिन ऐसा सुयोग मिला कि उपाचार्यश्रीजी म सा श्रीमती केशरबेन के ठहरने के स्थान पर गोचरी के लिये पधार गये। जिससे उन बोहराजी के हर्ष का पार न रहा।

वैष्णव पडितों ने अपनी व्याख्यानमाला बद की

उपाचार्यश्रीजी म सा का कानौड़ में चातुर्मास होने की खबर सुनकर वैष्णव समाज के पडितों ने अपनी अलग व्याख्यानमाला इस हेतु चालू कर दी थी कि वैष्णव समाज के व्यक्ति उपाचार्यश्रीजी म.सा के व्याख्यानो में नहीं जायें। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा के प्रवचन प्रारम्भ होने के पश्चात् उन पडितों पर ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि वे स्वय अपनी व्याख्यानमाला बन्द करके उपाचार्यश्रीजी म.सा. के प्रवचन सुनने के लिये आने लगे। कानौड़ के मुख्य राजपंडित ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. की स्तुति में कई श्लोक बनाकर चतुर्विध सघ को सुनाये थे।

इन कतिपय उद्धरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उपाचार्यश्रीजी म सा का कानौड़ चातुर्मास कितना प्रभावक और गौरव वाला था जिसकी स्मृतिया आज भी हृदय को हर्ष-विभोर बना देती हैं।

नियम की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध

इसी चातुर्मास मे अनेक बार श्रमण सघीय समस्याओ को सुलझाने के लिये कॉन्फरेंस के शिष्टमडल उपस्थित होते रहे थे। उन दिनो अन्यान्य समस्याओं के साथ सवत्सरी का प्रश्न भी काफी महत्त्वपूर्ण बना हुआ था। सादडी सम्मेलन मे बहुसख्यक सप्रदायो ने अल्पसख्यक सप्रदायों के लिये प्रेमभावना प्रदर्शित करने के लिये द्वितीय भाद्रपद मे सवत्सरी करना स्वीकार कर लिया था लेकिन अब उसी सवत्सरी को पुन द्वितीय श्रावण मे करने के लिये अधिकाशत उन्हीं बहुसख्यक सप्रदायो एव कॉन्फरेंस ने उपाचार्यश्रीजी म सा पर दबाव डालने की चेष्टा की कि आपश्री की भूतपूर्व सम्प्रदाय की परम्परा दूसरे श्रावण की है और शास्त्रीय दृष्टि से भी आप उसका समर्थन करते हैं एव श्रमण सघ की पूर्ण सत्ता भी आपके पास है अत आपश्री दूसरे श्रावण की सवत्सरी श्रमण सघ के लिये घोषित कर दीजिये।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि आप लोगो का कथन मेरी भूतपूर्व परम्परा और शास्त्रीय दृष्टि के अनुकूल होने पर भी जिन अल्पसख्यक सप्रदायों को विश्वास में लेकर प्रेम प्रदर्शित किया गया है और उनके व्यवस्थित रूप से श्रमण सघ में रहते हुए तथा श्रमण सघ को आगे बढाने के प्रयत्नो की आशा से सवत्सरी के बारे में सहसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

इस उत्तर से कॉन्फरेस के कुछ प्रमुख नेता और बहुसख्यक श्रमणवर्ग नाराज-से भी हुए। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा उनकी राजी-नाराजी की परवाह न करते हुए नियम की सुरक्षा की स्थिति को लेकर चलते रहे।

विद्वानों जननेताओ कार्यकर्ताओं और दूसरे-दूसरे प्रमुख सज्जनों का समय-समय पर उपाचार्यश्रीजी म सा के दर्शनार्थ कानौड़ आगमन होता रहता था। राजस्थान के माननीय मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाडिया भी आपश्री के दर्शनार्थ कानौड़ पधारे थे और सेवा में उपस्थित होकर तात्त्विक चर्चा करते रहे।

स्वधर्मी सेवा का अनुपम आदर्श

स्थानीय श्रावक सघ में आतिथ्य सत्कार के प्रति अपूर्व उत्साह था और समस्त आगत बधुआ के लिये आवास भोजन आदि की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की गई थी। यह एक दिन के लिये ही नहीं थी किन्तु चातुर्मास काल के पूरे समय तक यही क्रम चालू रहा। सघ के छोटे बड़े अमीर गरीब सभी सदस्य अतिथियों की सुव्यवस्था करते स्वय रसोई बनाते कुओं से पानी लाते और आवश्यकतानुसार बाहर से आने वालों को ठहरने के स्थान पर पहुचाते थे। ऐसा करने मे वे किसी प्रकार की झिझक या लज्जा अनुभव नहीं करते थे किन्तु अपना

का

अधिक उदाहरण से हमें अपने स्वधर्मी बधुओं की सेवा का अवसर समर जो की अपस में होड-सी चलती थी। जिस काम के लिये थे करने के लिये चार-चार व्यक्ति तैयार रहते थे।

सहकार और एकवाक्यता का अपूर्व प्रतीक था। एक छोटा सा भी कम, लेकिन मानवीय श्रम के समक्ष मे सब बाधाए नगण्य में दर्शनार्थियो का आना और तत्काल उनके लिये योग्य आवास आदि हो जाना जादू का खेल-सा लगता था।

समाप्ति और विहार

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के सफल आयोजनो के साथ सम्पन्न हुआ। अनेक श्रीसघ चातुर्मास-समाप्ति के अनतर अपने-अपने क्षेत्रो को स्पर्श करने के लिये विनती कर रहे थे। उदयपुर श्रीसघ द्वारा तो उदयपुर स्पर्शने के लिये चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय से ही बारम्वार आग्रहभरी विनती हो रही थी। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा की ओर से कोई आश्वासनात्मक स्थिति नहीं बन सकी। चातुर्मास के पश्चात् विहार कर गाव के बाहर जवाहर विद्यापीठ मे पधारे और वहा से विहार कर रुण्डेडा पधारे। रुण्डेडा मे जैन और जैनेतरों ने आपश्री क मगल प्रवचनो का अच्छा लाभ उठाया। रुण्डेडा के ब्राह्मण समाज न ग्यारस एव अमावस को हल हाकने चरस खींचने व जोतने का त्याग किया। अन्य समाज के काफी लोगो ने व्यसनों का त्याग किया के सफल प्र पश्चात् आपश्री आस-पास के गावों में धर्मदेशना देते हुए । इसी समय के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी मत्री श्री आदि के न का एक शिष्टमण्डल श्रमण समस्याओं लिये सेवा मे उपस्थित हुआ था।

बम्बोरा के मे विराजने गाव मुनिश्री भी पास यहा पर भी उपस्थित हुए और ने स्वीकृति फरमाई। सन्तो के साथ उदयपुर म से मिलना हुआ।

कॉन्फरेस का सावत्सरिक प्रस्ताव सघ-विघटनात्मक

इन दिनो श्रमण सघ की स्थिति और समस्याओं को लेकर चतुर्विध सघ में काफी ऊहापोह चल रहा था। सवत्सरी की एकरूपता के लिये साधु-सम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय को भी विवादास्पद प्रश्न वना दिया गया था। एतद्विषयक चर्चा करने के लिये जव कॉन्फरेस की ओर से एक शिष्टमडल कानौड़ा चातुर्मास के समय उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे उपस्थित हुआ था तव वार्त्तालाप के प्रसग में उपाचार्यश्रीजी म सा ने श्रमणसघीय सगठन की तथा साथ ही उसकी सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी उसे उपस्थित सदस्यो को समझा दी थी कि गुजरात सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमण सघीय पद्धति के अनुसार श्रमण सघ में सम्मिलित होने आदि प्रवलतर कारण के विना अविधिपूर्वक वृहत् साधु-सम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमत प्रस्ताव में फेरफार करना श्रमण सघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता है। इसके सिवाय दि 16 10 57 के पत्र द्वारा भी उपाचार्यश्रीजी म सा के इन्हीं विचारों की जानकारी कॉन्फरेस कार्यालय को करा दी थी।

लेकिन कॉन्फरेस के नेता तो सामाजिक हितो की उपेक्षा करके भी मनचाहा करने मे विश्वास करते थे। अत इतना सब होने पर भी उन्होने दि 16 17 18 नवम्बर 57 को दिल्ली मे सम्पन्न श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की व्यवस्था-समिति तथा श्रमण सपर्क समिति की बैठक मे सवत्सरी विषयक निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया–

श्रमण सघीय साधु-सम्मेलन भीनासर के प्र न 8 द्वारा नियुक्त सवत्सरी निर्णय-समिति के सयोजक मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म ने सभी सदस्यो से पत्र-व्यवहार के पश्चात् सवत्सरी-निर्णय सवन्धी प्रश्न कॉन्फरेंस को सौंप दिया है। इस पर से कॉन्फरेंस आफिस ने पुन समिति के सदस्यो से पत्र-व्यवहार किया। समिति के 17 सदस्यों में से 14 सदस्य इस मत के हैं कि चातुर्मास प्रारम्भ होने से 49 या 50वे दिन सवत्सरी मानी जाय। शेष 3 सदस्य सादड़ी सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार सवत्सरी मानने के पक्ष में हैं। चूकि सादड़ी सम्मेलन के प्रस्ताव के पश्चात् प्रस्ताव के पालन के सम्वन्ध में सन् 1955 में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी उस दृष्टि से इस प्रश्न पर पुन विचार करने हेतु भीनासर साधु-सम्मेलन में समिति नियुक्त की गई थी।

'उक्त समिति के सदस्यों का अत्यधिक वहुमत चातुर्मासादिक (आषाढ शु 15) पक्खी से 49 या 50वें दिन सवत्सरी मनाये जाने के पक्ष में है। अत कॉन्फरेंस की व्यवस्था समिति और श्रमण सपर्क समिति उपरोक्तानुसार चउमासी पक्खी (आषढ शु 15) से 49 या 50वें दिन सवत्सरी मनाने का निर्णय देती है तथा समस्त स्था जैनों से अपील करती है कि सवत्सरी

जैसा महापर्व भारत में एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्था जैनो में सावत्सरिक एकता बनी रहे।

जैनप्रकाश दि 22 नवम्बर 57 मे उक्त प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर चतुर्विध सघ में भ्रम फैलने लगा कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा व बहुसख्यक सप्रदायो ने अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार अधिक मास होने की स्थिति मे आषाढी पक्खी से 49 50वे दिन सवत्सरी करने की घोषणा करा कर वृहत्साधु-सम्मेलन सादडी के प्रस्ताव और अल्पमत को दिये गये विश्वास की उपेक्षा अवहेलना की है।

लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा का श्रमण सघ को विघटित करने वाले प्रयत्नों व प्रस्तावों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और उनका स्पष्ट मत था कि अवैधानिक प्रवृत्तियो के कारण श्रमण सघ सबल होने की बजाय विशृखल ही होगा जो कॉन्फरेस के दि 25 11.57 के पत्र के उत्तर मे व्यक्त भावो से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है–

उपाचार्यश्रीजी का स्पष्टीकरण

'कॉन्फरेस की तरफ से दि 25 नवम्बर का पत्र मिला। कॉन्फरेस की व्यवस्था समिति और श्रमण-सम्पर्क समिति के नाम से ध्वनियत्र और सवत्सरी विषयक जो प्रस्ताव यहा भेजे वे जैनप्रकाश के 22 11 57 के अक मे भी देखे गये। उन्हें पढ़कर बड़ा आश्चर्य सा हो रहा है कि श्रमण सघ की ध्वनियत्र व सवत्सरी आदि समस्याओ के सम्बन्ध में विधिपूर्वक जानकारी कानौड चातुर्मास मे लिखित रूप मे करा देने पर भी श्रमण सघीय पद्धति की दृष्टि से अविधिपूर्वक प्रस्ताव जैनप्रकाश मे प्रकाशित होना विभेद के अकुर पैदा करना नहीं है क्या ? और सुव्यवस्था एव नीतिसमत है क्या ? इस प्रकार प्रस्तावो के प्रकाशन आदि से समाज एव बने बनाये सगठन की क्या अवस्था बन सकती है ? यह आप सरीखे समझदार व्यक्तियों को बहुत ही गम्भीरता से सोचने की आवश्यकता है।

श्रमण सघ की अखडता के साथ सवत्सरी-परिवर्तन के प्रबलतर कारण (गुजरात सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमण सघ मे सम्मिलित होने आदि) की स्थिति विधिपूर्वक जब तक सुस्पष्ट न हो जाय तब तक सादड़ी सम्मेलन के सवत्सरी विषयक प्रस्ताव के प्रतिकूल पाक्षिकपत्र व तिथिपत्र आदि प्रकाशित करने श्रमण सघ की प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुचने की एव बने-बनाये सगठन मे विभेद पड़ने की पूरी सम्भावना मालूम दे रही है। अत कॉन्फरेस व उसके द्वारा नियुक्त समिति श्रमण सघ को विघटित करने वाले अवैध तरीके से बचे और वैध तरीके से सगठन को शुद्धरूप से अखडता के साथ आगे बढाने मे अपनी शक्ति लगावे–यही हार्दिक भावना एवं शासनदेव से प्रार्थना है।

कॉन्फरेस कार्यालय मे उक्त पत्र के पहुच जाने के बाद भी कॉन्फरेस के नेताओ और मण-सम्पर्क समिति के सदस्यो ने समाज के सामने सही स्थिति प्रगट नहीं की एव अपनी वृत्ति को ही सही बताने के प्रयत्न चालू रखे। परिणामत समाज यह समझने के लिये मजबूर गया कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा सादड़ी सम्मेलन के सवत्सरी विषयक प्रस्ताव ी उपेक्षा करके श्रमण सघ को विघटित करने के लिये तत्पर हो रहे हैं।

समाज की इस रोषमिश्रित प्रतिक्रिया को देखकर भी उपाचार्यश्रीजी म सा मौन रहे कि ॉन्फरेस अपनी ओर से सही स्थिति की जानकारी समाज को देती है या नहीं। लेकिन अन्य मस्याओ के लिये अपनाये गये रुख की तरह ही सवत्सरी विषयक प्रस्ताव के बारे मे भी ॉन्फरेस ने उदारता का परिचय नहीं दिया। चतुर्विध सघ की ओर से जब बार-बार पष्टीकरण करने के लिये मौखिक और पत्रो के माध्यम से समाचार प्राप्त हुए और कॉन्फरेस ारा भी सही स्थिति नहीं बताई गई तब उपाचार्यश्रीजी म सा की ओर से निम्नलिखित पष्टीकरण प्रकाशित किया गया—

'उपाचार्यश्रीजी म की सेवा मे कानौड़ चातुर्मास में श्रमण-सम्पर्क समिति के सदस्यगण—श्री नेचन्दभाई श्री मोहनमलजी चोरड़िया श्री कानमलजी नाहटा आदि उपस्थित हुए थे। श्रमण ाघीय समस्याओं के विषय म काफी विस्तारपूर्वक वार्त्तालाप एव विचार-विमर्श हुआ और श्रमण ाघीय सगठन की तथा साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी वह सभी उपस्थित सदस्यो को समझा दी गई थी। अन्तर दि 16 10.57 को लिखित रूप में भी विचार देये गये थे उनमे से सवत्सरी विषयक विचार निम्न प्रकार थे—

उपाचार्यश्री के सवत्सरी विषयक विचार

श्रमण सघ की अखडता के साथ गुजरात सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज श्रमण सघीय पद्धति के अनुसार श्रमण सघ में सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधिपूर्वक बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमति के प्रस्ताव में फिलहाल फेरफार करना श्रमण सघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता।

श्रमण सघ ने उदारता दिखाकर समस्त समाज की एकता के लिये प्रयत्न का जो सकेत किया तदनुसार एकता के विषय म जितने प्रयत्न होने चाहिये उतने हो गये या अवशेष रहे ? यदि हो गये हो तो किन-किन की क्या विचारधाराए आई ? वे सारी विचारधाराए यहा भी आने की आवश्यकता है और यदि प्रयत्न पूरे नहीं हुए हों तो भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

'उपर्युक्त वक्तव्य पर से जनता समझ सकती है कि उपाचार्यश्रीजी महाराज के अपने क्या विचार थे ? श्रमणसघ की विधिवत् अखडता को ध्यान में रखते हुए इस सम्बन्ध में उनकी

जैसा महापर्व भारत में एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्था जैनों में सावत्सरिक एकता बनी रहे।

जैनप्रकाश दि 22 नवम्बर 57 म उक्त प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर चतुर्विध सघ में भ्रम फैलने लगा कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा व बहुसख्यक सप्रदायो ने अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार अधिक मास होने की स्थिति मे आषाढी पक्खी से 49 50वे दिन सवत्सरी करने की घोषणा करा कर वृहत्साधु-सम्मेलन सादडी के प्रस्ताव और अल्पमत को दिये गये विश्वास की उपेक्षा अवहेलना की है।

लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा का श्रमण सघ को विघटित करने वाले प्रयत्नो व प्रस्तावो से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और उनका स्पष्ट मत था कि अवैधानिक प्रवृत्तियो के कारण श्रमण सघ सबल होने की बजाय विशृखल ही होगा जो कॉन्फरेस के दि 25 11 57 के पत्र के उत्तर में व्यक्त भावो से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है--

उपाचार्यश्रीजी का स्पष्टीकरण

'कॉन्फरेंस की तरफ से दि 25 नवम्बर का पत्र मिला। कॉन्फरस की व्यवस्था समिति और श्रमण-सम्पर्क समिति के नाम से ध्वनियत्र और सवत्सरी विषयक जो प्रस्ताव यहा भेजे वे जैनप्रकाश के 22 11 57 के अक म भी देखे गये। उन्हे पढकर बड़ा आश्चर्य सा हो रहा है कि श्रमण सघ की ध्वनियत्र व सवत्सरी आदि समस्याओं के सम्बन्ध मे विधिपूर्वक जानकारी कानौड़ चातुर्मास मे लिखित रूप मे करा देने पर भी श्रमण सघीय पद्धति की दृष्टि से अविधिपूर्वक प्रस्ताव जैनप्रकाश मे प्रकाशित होना विभेद के अकुर पैदा करना नहीं है क्या ? और सुव्यवस्था एव नीतिसमत है क्या ? इस प्रकार प्रस्तावो के प्रकाशन आदि से समाज एव बने बनाये सगठन की क्या अवस्था बन सकती है ? यह आप सरीखे समझदार व्यक्तियों को बहुत ही गम्भीरता से सोचने की आवश्यकता है।

श्रमण सघ की अखडता के साथ सवत्सरी परिवर्तन के प्रबलतर कारण (गुजरात सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमण सघ में सम्मिलित होने आदि) की स्थिति विधिपूर्वक जब तक सुस्पष्ट न हो जाय तब तक सादड़ी सम्मेलन के सवत्सरी विषयक प्रस्ताव के प्रतिकूल पाक्षिकपत्र व तिथिपत्र आदि प्रकाशित करने श्रमण सघ की प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुचने की एव बने बनाये सगठन म विभेद पडने की पूरी सम्भावना मालूम दे रही है। अत कॉन्फरेस व उसके द्वारा नियुक्त समिति श्रमण सघ को विघटित करने वाले अवैध तरीके से बचे और वैध तरीके से सगठन को शुद्धरूप से अखडता के साथ आगे बढाने मे अपनी शक्ति लगावे--यही हार्दिक भावना एव शासनदेव से प्रार्थना है।

कॉन्फरेस कार्यालय मे उक्त पत्र के पहुच जाने के बाद भी कॉन्फरेस के नेताओं और श्रमण-सम्पर्क समिति क सदस्यो ने समाज के सामने सही स्थिति प्रगट नहीं की एव अपनी प्रवृत्ति को ही सही बताने के प्रयत्न चालू रखे। परिणामत समाज यह समझने के लिये मजबूर हो गया कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा सादड़ी सम्मेलन के सवत्सरी विषयक प्रस्ताव की उपेक्षा करके श्रमण सघ को विघटित करने के लिये तत्पर हो रहे हैं।

समाज की इस रोषमिश्रित प्रतिक्रिया को देखकर भी उपाचार्यश्रीजी म सा मौन रहे कि कॉन्फरेंस अपनी ओर से सही स्थिति की जानकारी समाज को देती है या नहीं। लेकिन अन्य समस्याओ के लिये अपनाये गये रुख की तरह ही सवत्सरी विषयक प्रस्ताव के बारे मे भी कॉन्फरेस ने उदारता का परिचय नहीं दिया। चतुर्विध सघ की ओर से जब बार-बार स्पष्टीकरण करने के लिये मौखिक और पत्रो के माध्यम से समाचार प्राप्त हुए और कॉन्फरेस द्वारा भी सही स्थिति नहीं बताई गई तब उपाचार्यश्रीजी म सा की ओर से निम्नलिखित स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया–

'उपाचार्यश्रीजी म की सेवा में कानौड़ चातुर्मास में श्रमण-सम्पर्क समिति के सदस्यगण–श्री बनेचन्दभाई श्री मोहनमलजी चोरडिया श्री कानमलजी नाहटा आदि उपस्थित हुए थे। श्रमण सघीय समस्याओ के विषय म काफी विस्तारपूर्वक वार्त्तालाप एव विचार-विमर्श हुआ और श्रमण सघीय सगठन की तथा साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी वह सभी उपस्थित सदस्यो को समझा दी गई थी। अन्तर दि 16 10.57 को लिखित रूप में भी विचार दिये गये थे उनम से सवत्सरी विषयक विचार निम्न प्रकार थे–

उपाचार्यश्री के सवत्सरी विषयक विचार

श्रमण सघ की अखडता के साथ गुजरात सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज श्रमण सघीय पद्धति के अनुसार श्रमण सघ मे सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधिपूर्वक वृहत्साधु-सम्मेलन सादडी के सर्वानुमति के प्रस्ताव में फिलहाल फेरफार करना श्रमण सघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता।

श्रमण सघ ने उदारता दिखाकर समस्त समाज की एकता के लिये प्रयत्न का जो सकेत किया तदनुसार एकता के विषय मे जितने प्रयत्न होने चाहिये उतने हो गये या अवशेष रहे ? यदि हो गये हो तो किन-किन की क्या विचारधाराए आई ? वे सारी विचारधाराए यहा भी आने की आवश्यकता है और यदि प्रयत्न पूरे नहीं हुए हों तो भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

'उपर्युक्त वक्तव्य पर से जनता समझ सकती है कि उपाचार्यश्रीजी महाराज के अपने क्या विचार थे ? श्रमणसघ की विधिवत् अखडता को ध्यान मे रखते हुए इस सम्बन्ध में उनकी

अपनी क्या धारणाए हैं ? उस वक्तव्य के बाद भी स्थिति मे कोई नया परिवर्तन नहीं आया है और न परिवर्तन के योग्य कोई वैधानिक महत्त्वपूर्ण अत्यावश्यक प्रश्न ही उपस्थित हुआ है।

'सादडी मे बहुलपक्ष ने उदारता दिखाकर अपनी पूर्व परम्परा छोडी थी तो अब ऐसा कोई प्रबल कारण सामने नहीं है कि उस उदारता की उपेक्षा कर पुन पुरानी परम्परा पर आया जाये।

'सवत्सरी के विषय म भीनासर बृहत्साधु-सम्मेलन ने जिस समिति की नियुक्ति की थी उसको भी ऐसा अधिकार नहीं दिया गया था कि वह इस प्रश्न को निर्णय के लिये कॉन्फरेंस को सौंप दे।

अत भीनासर सम्मेलन मे निर्मित समिति द्वारा प्रस्तावानुसार व्यवस्था के साथ निर्णय न होने से सादडी सम्मेलन के प्रस्ताव (भाद्रपद में सवत्सरी करने) का पालन होना मैं वैधानिक समझता हूँ और उसी के अनुसार श्रमण सघ श्रावक सघ सवत्सरी करे यही अभीष्ट है।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह भलीभाति जाना जा सकता है कि कॉन्फरेस की समितियों का निर्णय विधानानुसार नही था और सादडी सम्मेलन का सर्वसम्मत मूल प्रस्ताव निर्विवाद ज्यो-का-त्यो रहता है तथा उसका पालन करना ही श्रमण-सगठन की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है। इसी मे श्रमण सघ की प्रतिष्ठा और और शोभा थी। लेकिन उक्त निर्णय में भी परिवर्तन करने की अनधिकार चेष्टा करके कॉन्फरेस ने श्रमण सघ के विघटन मे और तीव्रता ला दी।

शारीरिक अस्वस्थता पूर्ववत् विहार

उपाचार्यश्रीजी म सा का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। एकान्तर की तपस्या चालू रहने पर भी स्वास्थ्य में कुछ भी सुधार न होने और उत्तरोत्तर बढती जा रही कमजोरी से चतुर्विध सघ चिन्तित था। अत उदयपुर श्रीसघ के प्रमुख प्रमुख श्रावकों और सन्तो ने उदयपुर में योग्य निदान कराके उपचार कराने की प्रार्थना की। लेकिन आपश्री मनोबल के धनी थे और औषधोपचार की बजाय सयम तप साधना को स्वास्थ्यसुधार का अमोघ उपचार मानते थे। अत उत्तर मे फरमाया कि अभी मैं तपस्या करके शारीरिक स्वास्थ्य सुधारना चाहता हूँ और औषधि-उपचार न कराकर पूर्ववत् एकान्तर तप चालू रखा।

उदयपुर से विहार कर जब उपाचार्यश्रीजी म सा ग्रामानुग्राम धर्मजागृति करते हुए चित्तौड़गढ के आस पास पधारे तब स्वास्थ्य में और अधिक गिरावट आ गई। विहार-क्षेत्रो में विश्राम का अवसर न मिलने से बुखार भी आने लगा। कमजोरी तो थी ही और बुखार आने से कमजोरी विशेष महसूस होने लगी।

चित्तौडगढ श्रीसघ के सदस्यों को जब यह समाचार ज्ञात हुए तो एक अनुभवी वैद्य को लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा ने दवाई लेना स्वीकार नहीं किया और उसी स्थिति में धीरे-धीरे विहार करते हुए चित्तौड़गढ पधार गये। लेकिन स्थिति को देखते हुए यहा भी डाक्टरो को दिखाने के लिये प्रार्थना की और बहुत अधिक जोर देने पर देशी औषधि लेना स्वीकार कर लिया। किन्तु बिना निदान के औषधोचार से कुछ लाभ नहीं हुआ।

जावरा चातुर्मास स्वीकृत

आगामी चातुर्मास का समय निकट आ रहा था। चातुर्मास-स्वीकृति के लिये मालवा के श्रीसघो और विशेषतया जावरा श्रीसघ की ओर से बार-बार विनतिया हो रही थी। अत समयानुसार आगारो को रखते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा ने स 2015 के चातुर्मास मे जावरा विराजने की स्वीकृति फरमाई और शारीरिक स्थिति की परवाह न करते हुए चित्तौड़गढ से बेगू, सिगोली की ओर विहार कर दिया।

बेगू आदि ग्रामों का स्पर्श करने के बाद जब सिगोली म पदार्पण हुआ तो कमजोरी इतनी अधिक हो गई कि एक दिन शौचादि से निवृत्त होकर वापस गाव में पधारने पर बहुत घबराहट बढ गई। शरीर में काफी शिथिलता आ गई। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस स्थिति मे चातुर्मास के निमित्त जावरा पदार्पण भी हो सकेगा या नहीं। सिगोली श्रीसघ के सदस्यो ने अपने यहा ही विराजने और निरोग होने के बाद ही विहार करने की बार-बार विनती की। शारीरिक स्थिति और सिगोली श्रीसघ के अत्याग्रह को देखते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा कुछ दिन सिगोली विराजे और वहीं के डाक्टर को दिखाया। स्वास्थ्य-स्थिति में साधारण-सा सुधार दिखाई देने पर थोड़ा-थोड़ा विहार चालू किया। घबराहट के कारण बीच-बीच में विश्राम करते हुऐ कजार्डा आदि ग्रामों का स्पर्श करते हुए एक जगल में पहुचे। वहा एक मन्दिर बना हुआ था और पास में नाला बहता था। मदिर का पुजारी पूजा आदि करके सूर्यास्त होने के पहले-पहले गाव लौट जाता था। गाव मन्दिर से करीब 2 मील दूर था और रात्रि को नाले में जगली जानवर पानी पीने आते थे। मन्दिर भी जीर्ण-शीर्ण था और कीड़े मकोड़ों डास मच्छर की अधिकता से रात्रिविश्राम-योग्य स्थान न दिखने से मन्दिर के बाहर वृक्षों के नीचे पड़ी शिला पर उपाचार्यश्रीजी म सा एव अन्य सन्तों ने विश्राम कर रात्रि व्यतीत की।

प्रात काल होने पर उपाचार्यश्रीजी म सा आदि सन्त वहाँ से विहार कर कुकडेश्वर पधारे और रामपुरा साजीत होते हुए आतरी गाव में पदार्पण हुआ। यहा कुछ भाइयों में वर्षों से आपसी मनमुटाव चल रहा था। उपाचार्यश्रीजी के सदुपदेश से मनमुटाव दूर होने पर स्थानीय श्रीसघ और आस-पास के क्षेत्रो में हर्ष का वातावरण छा गया।

आतरी से विहार कर जब उपाचार्यश्रीजी म सा महागढ पीपल्यामडी मदसौर आदि क्षेत्रो को धर्मदेशना से पवित्र बनाते हुए जावरा की ओर गमन कर रहे थे तब जावरा श्रीसघ के कुछ सदस्य सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने आपश्री से निवेदन किया कि आपश्री का जावरा पदार्पण कब तक हो जायेगा। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा को मुहूर्त आदि देखकर चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश करना कभी भी इष्ट नहीं रहा था अत आपश्री ने फरमाया कि मेरे लिये सभी मुहूर्त अच्छे हैं। विहार करते हुए यथावसर जावरा पहुचने के भाव हैं।

यथासमय उपाचार्यश्रीजी म सा का चातुर्मास हेतु जावरा में पदार्पण हुआ। स्थानीय श्रावकसघ और आस-पास के क्षेत्रो से आगत भाई बहिनों ने नगर से 3 4 मील सामने जाकर अगवानी की। चातुर्मास के समय मे आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये प्राय सभी नागरिक उपस्थित होते थे। आपश्री की सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओ का हृदय आकर्षित कर लिया कि दिनोदिन प्रवचन सुनने वालो की सख्या बढती गई।

मध्याह्न व सायकाल तात्त्विक चर्चा वार्त्ता शका-समाधान के समय राज्य-अधिकारी विद्वान उपस्थित होते और उपाचार्यश्रीजी म सा की अनुभवभरी विवेचनाओ का लाभ उठाते थे।

जावरा पूर्व मे नवाबी राज्य था। वहा के नवाब विद्वानो का आदर और साधु-सन्तो का सम्मान करने के लिये उत्सुक रहते थे। समय समय पर वे भी व्याख्यानो का लाभ लेने के लिये आते और उपाचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति व्यक्त करते थे। आपश्री के व्याख्यान समाज राष्ट्र धर्म से सम्बन्धित विषयों पर होते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत सी सामाजिक कुरीतिया समाज में बद हुईं तथा कई-एक सज्जनों ने व्रत-नियम ग्रहण किये।

इस प्रकार यह चातुर्मास आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा था और समाज एव श्रमण सघ की व्यवस्था की दृष्टि से भी इस चातुर्मास काल में कई एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए।

श्रमण सघीय स्थिति और उपाचार्यश्रीजी का निवेदन

श्रमण सघ को सबल बनाने एव शुद्ध सास्कृतिक धरातल पर टिकाये रखने के लिये उपाचार्यश्रीजी द्वारा किये गये प्रयत्नो की गभीरता को न समझकर समाज मे एक प्रकार की अनिश्चियात्मक स्थिति का निर्माण किया जा रहा था। श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस के प्रयत्न सगठन के उद्देश्य को सफल बनाने में सहकारी नहीं हो सके थे। इसके लिये पहले मुबई लुधियाना व जयपुर आदि में कॉन्फरेंस की साधारण सभा की बैठके भी हुईं और विभिन्न अधिकारी मुनिवरो के पास श्रावकों के शिष्टमडल भी गये लेकिन स्थिति जैसी

की तैसी बनी रही। इस जटिलता को देखते हुए कॉन्फरेस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी ने अपना निवेदन प्रकाशित करते हुए अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। किन्तु समाज के सभी वर्गो के अनुरोध एव श्रमण सघीय समस्याओ के निराकरण मे अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के आश्वासनो को ध्यान रखते हुए उन्होने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया।

इसके अनन्तर समस्याओ को सुलझाने के लिये पुन प्रयत्न शुरू हुए और विभिन्न मुनिराजों की सेवा मे शिष्टमडल भी भेजे गये। लेकिन खेद है कि शिष्टमडलो को आश्वासन देने पर भी साधु-सन्तों की पूर्ववत् प्रवृत्तिया चलती रहीं। इस स्थिति को लक्ष्य मे रखते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा ने 15.9 58 को एक वक्तव्य दिया। वक्तव्य इस प्रकार है–

श्रमण सघ की स्थापना से लेकर आज तक सत्य न्याय सिद्धान्त एव श्रमण सघीय समाचारी आदि को लक्ष्य मे रखते हुए ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि हेतु शुद्धिकरण सहित श्रमणसघ को दृढ बनाने की भावना से जैसा मुझे उपुयक्त जान पडा तदनुसार यथाशक्ति कार्य करता रहा।

'मगर कुछ समय से कतिपय विषयों को लेकर समाज में कुछ भ्रामक वातावरण परिलक्षित हो रहा है। ऐसे भ्रामक वातावरण को दूर करने के प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं पर खेद है कि वस्तुस्थिति को सही रूप मे न लेकर वातावरण को और भ्रामक बनाया जा रहा है। अत वस्तुस्थिति के दिग्दर्शनपूर्वक अपना निवेदन सघ के सामने रख देना चाहता हूँ–

1 भीनासर सम्मेलन मे सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्यश्रीजी म (आत्मारामजी म सा) पर छोड़ा गया। उस प्रस्ताव की पक्तिया निम्न प्रकार हैं–

'प मुनिश्री फूलचन्दजी म (पुप्फभिक्खु) द्वारा सपादित 'सुत्तागमे' विषय मे निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ मे पुष्टावलम्बन एव खास प्रमाण बिना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है। अत वे अपने विचार आचार्यश्रीजी की सेवा में भेज दे। फिर वे (आचार्यश्रीजी म) जो निर्णय देंगे वह श्रमण सघ को स्वीकार होगा।

-पर आचार्यश्रीजी म की तरफ से निर्णय आज दिन तक समाज के सामने नहीं आया।

2- प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म श्रमण सघ का कार्य सूचारु रूप से कर रहे थे लेकिन आचार्यश्रीजी म व प्रधानमन्त्रीजी म के बीच में पत्र व्यवहार आदि के प्रसग से कुछ ऐसा वातावरण बना जिस पर प्रधानमन्त्रीजी म ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्रीजी म की सेवा मे पेश कर दिया।

'इस मामले को निपटाने के लिये कॉन्फरस की ओर से भी प्रयत्न हुए और प्रधानमन्त्रीजी म ने कॉन्फरेस को स्पष्ट लिखवा दिया था कि–

'मैं अब तक मौन हूँ, तब तक मौन ही रहूँगा जब तक आचार्यश्रीजी से मुझे सीधा समाधान नहीं होता।

यह समस्या भी अभी तक अस्पष्ट ही बनी हुई है।

3 भीनासर सम्मेलन मे ध्वनियन्त्र विषयक जो-कुछ हुआ वह प्रस्ताव के रूप में विद्यमान है। लेकिन अपवाद क्या है ? प्रायश्चित्त क्या लेना ? और स्वच्छन्दता क्या है ? इन तीनों बातो का निर्णय भीनासर सम्मेलन में नहीं किया गया। इस विषयक स्पष्ट घोषणा ता 1856 को आचार्यश्रीजी म की तरफ से हो चुकी थी। इसके पश्चात् तीनो शब्दों के विषय मे आचार्यश्रीजी म और मेरे (उपाचार्यश्रीजी म के) सयुक्त निर्णय की बात सामने आई और वह विषय दोनो के ऊपर छोड दिया गया। लेकिन यह विषय निम्न पक्तियों के अनुसार दोनो मे से एक के ऊपर ही आ गया। इस सिलसिले में एक पत्र की वे पक्तिया इस प्रकार हैं-

'लाउडस्पीकर का पूरा निर्णय आचार्यश्री आत्मारामजी म ने उपाचार्यश्री को सौंपा है। उपाचार्यश्री उपाध्यायमडल और मन्त्रिमडल के परामर्श से जो-कुछ निर्णय करेगे आचार्यश्री को स्वीकार होगा।

इसका भी ध्यान रखते हुए मैंने व्यवस्था करने की दृष्टि से ध्वनि-यन्त्र के विषय को हाथ मे लिया है और जो प्रयत्न हुए उनके परिणामस्वरूप अधिकारी मुनियों के अभिप्रायपूर्वक जो स्थिति थी वह *'ध्वनियन्त्र विषयक सूचना'* पत्र के रूप मे ता 16 अक्टूबर 1957 को सभी अधिकारी मुनियों के पास भिजवा दी। इसके याद इस विषय में किसी को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रह जाता। तथापि आचार्यश्रीजी म की तरफ से ता 10 12 57 का पत्र देहली कॉन्फरेंस को पहुचा। जिसमे आचार्यश्रीजी म ने यन्त्रविषयक सूचना-पत्र पर असहमति प्रकट की और अवैधानिक बतलाया। जिसकी नकल कॉन्फरेस आफिस से यहा आई। उसका उत्तर ता 25 12 57 को दिलाया गया। इस बीच ता 16 12 57 को आचार्यश्रीजी म की तरफ से सीधा पत्र भी आया। उसका उत्तर ता 21 12 57 को लिखाते हुए आचार्यश्रीजी म को यह अर्ज करवाई कि–

'ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचनापत्र मे आचार्यश्री आत्मारामजी म को कौनसी पक्ति अवैधानिक मालूम देती है ? लिखवाने की कृपा कराव ताकि उस विषय मे लिखवाया जा सके।

'इसके पश्चात् भी उस विषय की तरफ कई वक्त आचार्यश्रीजी म. का ध्यान आकर्षित किया गया पर आज दिन तक उत्तर नहीं आया और आचार्यश्रीजी म ने ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचनापत्र पर जो असहमति प्रकट की तथा अवैधानिक बतलाया जिसके परिणामस्वरूप ध्वनियन्त्र के प्रयोगकर्ताओं मे से कई मुनिवरों ने प्रायश्चित्त नहीं लिया जो कि श्रमण सघ की

व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त हर हालत मे लेना अनिवार्य था। पर प्रायश्चित्त नहीं लेने से सतवर्ग के साभोगिक सम्बन्ध में बाधा आई जो प्रयत्न करने पर भी आज दिन तक ठीक नहीं हो पाई।

4-पाली-प्रकरण आदि की घटनाए भी समाज के सामने आई तब पता चला कि कई व्यक्तियो के सयम विघातक पत्र-व्यवहार लम्बे अरसे से चालू हैं। वे पत्र सहसा पाली-काड में पकडे गये जिससे जनमानस मे अत्यधिक दूषित वायुमण्डल हो गया और आवाज आ रही थी कि ऐसे व्यक्ति साधुवेश के योग्य नहीं रहते आदि। काफी विक्षुब्धता का वातावरण चल रहा था। अन्य मतावलबियो मे हसी होने का प्रसग आ रहा था और शिथिलाचार के विषय को हाथ मे लेने के लिये कॉन्फरेंस के अधिकारियों के भी पत्र आ रहे थे। उनमे एक पत्र में ता 14 1 57 को श्री श्वे स्था जैन कॉन्फरेस के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय श्री विनयचन्दभाई ने लिखा था कि–

आप आज श्रमण सघ के उपाचार्य हैं और आचार्य की भी सर्वसत्ता आपके पास है। इस हालत में अगर भ्रष्टाचार न रोकेगे तो श्रावक सघ तो अपना कार्य करेगा।

'इधर सगठन मे कुछ विघटन का वातावरण भी परिलक्षित हो रहा था तब यह मामला मेरे पास पहुचा। आचार्यश्रीजी म तथा कतिपय अधिकारी मुनियो ने भी शिथिलाचार के विषय को निपटाने के लिये कहलवाया। इस कथन पर भी ध्यान देकर मैंने इस विषय की छानबीन की और समग्र स्थिति का अध्ययन कर शिथिलाचारियो के विषय में फैसले दिये और जिनके साथ श्रमणोचित व्यवहार-विच्छेद किया गया उसकी सूचना ता 5 3 57 के पत्र द्वारा कॉन्फरेस के मार्फत सभी अधिकारी मुनियों के पास पहुचवाने के लिये भिजवा दी। इसके उत्तर मे कॉन्फरेस का भी यहा के निर्देशानुसार उक्त सूचना अधिकारी मुनियों के पास भेजने का पत्र आ गया।

'इस प्रकार शुद्धिकरण की व्यवस्था चल रही थी कि अजमेर-मेरवाड़ा तथा उसके आस-पास के कुछ क्षेत्रो में रूपचन्दजी आदि विषयक भ्रामक वातावरण कर्णगोचर होने लगा। इस पर विचार हुआ कि समाज इससे सावधान रहे और भ्रामक वातावरण और न फैले इसके लिये रूपचन्दजी लक्ष्माजी नगीनाजी आदि व्यक्तियो के विषय में अजमेर में दिये गये फैसले को (जिस पर आचार्यश्री आत्मारामजी म भी ता 15.3.57 को हर्ष व्यक्त कर चुके थे) मद्देनजर रखते हुए जो ताजी सूचना की वह भी अधिकारी मुनिवरो एव समाज के प्रमुख व्यक्तियो द्वारा समाज के पास पहुचाने के लिये कॉन्फरेस को भिजवा दी। इसके पूर्व आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा मे भी भिजवा दी गई थी।

'इसके बाद भी लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म यहा से की गई व्यवस्था की

उपेक्षा कर शुद्धिकरण का पालन नहीं करने मे प्रयत्नशील व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न किये गये वातावरण मे रस लेते हुए प्रतीत हो रहे हैं जिससे ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार एक के बाद एक परिस्थिति उत्पन्न होते रहना शोभास्पद नहीं है।

'मैंने समाजसेवक के नाते श्रमण सगठन को शुद्धिकरणपूर्वक टिकाये रखने के लिये मेरी बुद्धि अनुसार वस्तुस्थिति को समझकर जो-कुछ भी बन पड़ा किया। परन्तु उसमे कतिपय व्यक्तियों की तरफ से सहयोग की अपेक्षा बाधाए अधिक सामने लाई गईं और अब भी अपेक्षित सहयोग का अभाव ही सामने आ रहा है। अस्तु।

'समाज का कार्य सभी प्रमुख व्यक्तियो के हार्दिक सहयोग पर विशेष अवलबित रहता है। इसमे कौन किस कार्य में कितना सहयोग प्रदान कर रहे हैं यह समाज के सामने है। शिथिलाचार और वह भी अनैतिक जीवन-स्वरूप जो साधु-सस्था पर एक कलक है उसमे व सैद्धान्तिक विषय में गोलमाल की स्थिति सहन नहीं की जा सकती। अत मैं गोलमाल की स्थिति मे उलझे रहना पसद नहीं करता।

आज समाज मे कुछ जिम्मेदार व्यक्ति भी हर बात मे गोलमाल करना चाहते हैं और उनकी इच्छानुसार कार्य न होने पर वे सघ को तोड़ने की आवाज उठाने लग जाते हैं।

'इतना ही नहीं आचार्यश्री आत्मारामजी म भी निर्णीत मामलो को उलझाने वाले व्यक्तियो की बातों मे आकर यहा से की गई व्यवस्था के प्रतिकूल अध्यादेश तक निकाल देते हैं जिसके परिणामस्वरूप बडे परिश्रम से बने-बनाये सगठन में विभेद हो जाता है।

'ऐसी परिस्थिति मे फिलहाल यह निवेदन करना आवश्यक हो गया है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एव श्रमण सघीय समाचारी का तथा उसके सरक्षणार्थ यहा से की गई व्यवस्था का पालन करेगा उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमण सघीय सामोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा।'

सर्वप्रथम उक्त निवेदन को मुनिवरों तथा कॉन्फरेस के पास भिजवाया गया था। परन्तु जब किसी ने भी इस वक्तव्य पर ध्यान न दिया तो चतुर्विध सघ को श्रमण सघीय समस्याओ के सम्बन्ध मे उपाचार्यश्रीजी म सा के प्रयत्नों और सही स्थिति से अवगत कराने के लिये जावरा श्रीसघ द्वारा वक्तव्य को मुद्रित करवाकर यथास्थान सभी श्रीसघो को भेज दिया गया।

निवेदन की प्रतिक्रिया

इस निवेदन के प्रकाशित होने से श्रमण सघ की वर्तमान स्थिति आचार्यश्री आत्मारामजी के दृष्टिकोण एव सघ को निर्बल बनाने वाले कार्यों के प्रति श्रमण सघीय अधिकारी मुनिवरों के कार्यकलापों का वास्तविक चित्रण समाज के समक्ष आ चुका था। अभी तक समाज

अनुमानित आधारों पर ही श्रमण सघ की स्थिति का मूल्याकन करता रहा था लेकिन निवेदन से उसके अनुमान सुदृढ हुए। सघ-सगठन के लिये ऊपरी तौर पर उपाय करने वाले समाज के नेताओं को भी अपनी स्थिति का आभास हुआ। उनके द्वारा अब वास्तविकता को छिपाना सभव नहीं रहा था और न वे ऐसा कोई कारण बतला सकते थे जिससे समाज को अधिक समय तक भुलावे मे रखा जा सके। अत उससे उबरने के लिये उनके सामने सिर्फ एक ही रास्ता रह गया था कि वे अभी तक की स्थिति और उसके लिए किये गये कार्यो की जानकारी समाज के सामने रख दे।

इस बात को ध्यान में रखते हुए उपाचार्यश्रीजी से समस्याओ के समाधान के बारे मे विचार-विमर्श करने के लिये श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की साधारण सभा का अधिवेशन जावरा में दि 19 10 58 को किया गया। इस अधिवेशन का विशेष महत्त्व था कि यदि स्थिति की गम्भीरता को न समझकर पूर्ववत कार्य चलता रहा तो श्रमण सघ का नाम शेष रह जायेगा। अधिवेशन के समय कॉन्फरेस के नेताओं ने सगठन को निर्बल बनाने वाले ज्वलत प्रश्नो के बारे मे यथार्थ स्थिति समझने मे पूरा मनोयोग लगाया और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा से भी चर्चा-वार्त्ता की।

चर्चा मे भाग लेने वाले मुबई धारासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया श्री आनन्दराजजी सुराणा श्री जवाहरलालजी मुणोत आदि कॉन्फरेस के प्रमुख अग्रणी थे। उन्होने उपाचार्यश्रीजी म सा से प्रार्थना की कि श्रमण सघ को सुदृढ स्थायी बनाने के लिए मार्गदर्शन देने की कृपा करे। इस पर उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि मैंने श्रमण सघ को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सुदृढ स्थायी बनाने के लिए यथाशक्ति प्रयास किया और कर रहा हूँ। लेकिन अधिकारी मुनिवरो की तरफ से अपेक्षित सहयोग के अभाव में उस प्रयास में बाधा उपस्थित हो रही है। सहयोग नहीं मिल रहा है इतना ही नहीं अपराधियो को प्रश्रय और दिया जा रहा है। आचार्यश्री आत्मारामजी म द्वारा भी अनुशासन भग करने वाले व्यक्तियो को प्रश्रय दिये जाने से कुत्सित राजनीति की तरह यहा भी गुटबन्दी हो रही है। एतदर्थ समाज के प्रबुद्ध वर्ग को इस बात की सावधानी दिलाने की दृष्टि से ही दिनाक 15.9 58 को निवेदन समाज के सामने रख दिया। समाज के आप प्रमुख हैं अत इसका आप भलीभाति अवलोकन करें और सम्बन्धित पत्र-व्यवहार भी आप देखें। उसमे तटस्थ दृष्टि से आप चिन्तन करके बतावे कि मैंने जो प्रयास किये हैं उनमें कोई त्रुटि रही हो तो उसका परिमार्जन मैं पहले करने को तैयार हूँ और यदि आपको त्रुटि मालूम न हो और सम्बन्धित श्रमणवर्ग की त्रुटि मालूम होती हो तो उस श्रमणवर्ग को विनयपूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से कुछ कहें और त्रुटि का परिमार्जन कराये। इस कार्य के लिए आपको सक्षमता व निर्भीकता

का परिचय देना चाहिए। जिससे श्रमण सघ की सुरक्षा ज्ञान दर्शन-चारित्र की भूमिका पर भलीभाति हो सके। यह कार्य सबके हार्दिक सहयोग पर अवलम्बित है। अत आप पहले निवेदन और उससे सम्बन्धित प्रमाण भली-भाति देख ले।

उपाचार्यश्री द्वारा इस प्रकार फरमाये जाने पर श्रावक समाज के उन प्रमुख कर्णधारो ने श्रमण सघ मे व्याप्त शिथिलाचार सम्बन्धी ध्वनि-यन्त्र विषयक सुत्तागमे आदि जटिल समस्या विषयक पत्र-व्यवहार आचार्यश्री आत्मरामजी म सा से लेकर श्रमण सघ के अधिकारी व प्रमुख मुनिवरो के द्वारा समय समय पर दिलवाये गय पत्र और पत्रस्थ विषयो को एव शास्त्रीय दृष्टिकोण को श्रमण सघीय नियमों को ध्यान मे रखकर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के द्वारा की गई व्यवस्था आदि विषयक पत्र अवलोकन किये और अवलोकन करने के पश्चात् वे जिस निष्कर्ष पर पहुचे उसको उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के समक्ष प्रस्तुत किया और अर्ज की कि आपश्रीजी को श्रमण सघ के समस्त अधिकार प्राप्त होते हुए भी सब अधिकारी मुनिवरों से राय लेकर जनतत्रीय पद्धति से कुशलतापूर्वक कार्य किया है। हमने सभी दृष्टि से पत्र व्यवहार का भलीभाति अवलोकन किया और समझ पाये है कि यहा कोई त्रुटि नहीं है। जहा त्रुटि है वहा हम प्रयास करना चाहते हैं इसलिए हमको कुछ समय मिलना चाहिए और कुछ पत्रो की प्रतिलिपिया भी हम चाहते हैं।

इस पर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने फरमाया कि आप मुझसे समय ल सकते हैं और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन के प्रयास के लिए जिन भी पत्रो की आप प्रतिलिपिया चाहते हो वे भी लालचदजी मुणोत से ले सकते हैं वे आप द्वारा ही पत्र लेखन के लिए नियुक्त किये गये हैं। पत्रो की प्रतिलिपि लेने के बाद उन्होने कहा कि आचार्यश्री आत्मारामजी म सा को तो सन्मान की दृष्टि से पद दिया गया है उन्होने बीच ही में ऐसी बाते क्यो कीं ? हम यहा एतद्विषयक कुछ निर्णय भी करे तो उपयुक्त नहीं रहेगा। लुधियाना जाकर फिर कुछ करे तो ठीक रहेगा।

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा भी यही चाहते थे कि श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये चतुर्विध सघ को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिये। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया। उसमे उल्लेख था कि मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्यश्रीजी म ने फरमाया है उसके लिये आचार्यश्रीजी म ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये उसके विपरीत जाने का प्रश्न नहीं रहता। तथापि आचार्यश्री आत्मारामजी म सा कागजात देखना चाहते हैं तो वे कागजात कॉन्फरेस की कमेटी उनके पास जाकर बतला दे आदि।

शिष्टमण्डल उपाचार्यश्रीजी म की सेवा मे

इस प्रस्ताव के परिपालनार्थ एव समाज की आकाक्षाओं के समाधानार्थ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के नेतृत्व मे एक शिष्टमडल का गठन हुआ और जिन पत्रो की प्रतिलिपिया लीं तथा जिस स्थिति को उन्होने समझा उसका अधिवेशन समाप्त होने के बाद लगभग एक महीने तक अपने घर पर अध्ययन किया और सम्बन्धित व्यक्तियो से पूछताछ व जाच-पड़ताल भी की। अनन्तर यह सोचा कि श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया की वृद्धावस्था और स्वास्थ्य को देखते हुए बार-बार लबी यात्रा होना सभव नहीं है और उनके बिना शिष्टमडल प्रभावहीन रहेगा। इसलिये भूतकालीन समस्याओं को सुलझाने के साथ-साथ भविष्य के विषय मे भी सुव्यवस्थित स्थिति बनाने के लिए शिष्टमडल सबसे पहले उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की सेवा मे उपस्थित होकर भविष्य के विषय मे मार्गदर्शन ले ताकि सभी स्थिति एक ही बार के प्रयत्न से स्पष्ट हो जाये।

उपाचार्यश्री की उदारता के बावजूद शिष्टमडल असफल रहा

इस विचार को ध्यान मे रखकर शिष्टमडल ने जावरा और लुधियाना जाने के लिये टिकिट रिजर्वेशन करवाये। पहले यह शिष्टमण्डल दि 27 11 58 को जावरा पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल उपाचार्यश्रीजी से वार्तालाप करना चाहता था पर उस समय उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य काफी कमजोर था। इन्दोर के डॉ मुखर्जी डॉ बोरदिया डॉ भण्डारी (कार्डियोलोजिस्ट)– इन तीन डॉक्टरों एव तीन स्थानीय डॉक्टरो ने मिलकर ये भाव व्यक्त किये कि उपाचार्यश्रीजी को हार्ट सम्बन्धी तकलीफ है इसलिए इन्हे शारीरिक एव मानसिक विश्राम की पूर्ण आवश्यकता है।

उपाचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य सम्बन्धी इस हिदायत की जानकारी बम्बई से आगत शिष्टमण्डल को हुई। शिष्टमण्डल ने सोचा कि उपाचार्यश्रीजी के रुग्ण स्वास्थ्य को देखते हुए हमें अभी चले जाना चाहिए। भविष्य मे कभी आयेगे और उस समय समग्र वार्तालाप करेगे। इस पर एक सदस्य ने कहा– श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया का स्वास्थ्य इतना अनुकूल नहीं है कि वे बार बार यात्रा कर सकें। इसलिये उचित यही है कि उपाचार्यश्रीजी से निवेदन किया जाए कि हम आपश्री से प्रत्यक्ष वार्त्ता करना चाहते थे परन्तु आपके स्वास्थ्य के कारण हम आपसे चर्चा करने को उत्सुक नहीं हैं। हम चाहते हैं कि आपकी ओर से किसी सन्त का नाम निर्देशित किया जाए तो हम उनसे चर्चा कर लेगे।

शिष्टमण्डल के सभी सदस्यो को यह बात उपयुक्त लगी। शिष्टमण्डल ने उपाचार्यश्री

से निवेदन किया कि आपश्री की ओर से एक सत का नाम निर्देश हो तो हम उनसे वार्तालाप कर लेंगे और उनकी बात को हम आपकी बात मानेगे। उपाचार्यश्री ने प रत्न मुनिश्री नानालालजी म सा (बाद मे आचार्य) का नाम निर्देश किया।

प रत्न मनिश्री नानालालजी उस समय एक तरफ बैठे अपना अध्ययन कर रहे थे। शिष्टमण्डल उनके चरणों मे पहुँचा और मुनिश्री से कहने लगा– हम श्रमण सघीय स्थिति पर आपसे चर्चा करना चाहते हैं। आपकी बात पूज्य उपाचार्यश्रीजी की बात मानेगे।

निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी प रत्न मुनिश्री नानालालजी ने कहा--उपाचार्यश्रीजी महान् है। मैं उनके नख की होड भी नहीं कर सकता। अतएव मैं उनकी हैसियत से चर्चा नहीं कर सकता अगर मेरी व्यक्तिगत हैसियत से चर्चा करना चाहें तो मैं चर्चा कर सकता हूँ। शिष्टमण्डल ने विविध प्रकार से मुनिश्री को इस बात के लिये राजी करने का प्रयास किया कि वह उपाचार्यश्री की हैसियत से बात करे। जब दीर्घद्रष्टा मुनिश्री कतई तैयार नहीं हुए तब शिष्टमण्डल ने मुनिश्री से व्यक्तिगत हैसियत में चर्चा करना मजूर किया।

प रत्न मुनिश्री और शिष्टमण्डल स्थानक के ऊपरी हॉल मे बैठे। काफी गभीरता से चर्चा चली। शिष्टमण्डल ने प्रश्न-प्रतिप्रश्न तर्क-वितर्क द्वारा जानकारी प्राप्त की। अन्त मे शिष्टमण्डल मुनिश्री से निवदन करने लगा– मुनिवर ! हम आपकी हर बात से सहमत हैं लेकिन एक छोटी-सी बात के लिए सहमत नहीं हैं। इस छोटी सी बात को हम भविष्य में सम्हाल लेगे। अत आपश्री इस छोटी-सी बात को गौण कर दीजिए। प रत्न मुनिश्री ने कहा– मैंने तो अपने विचार रखे हैं जो नितान्त व्यक्तिगत हैं। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जो बात आपको छोटी-सी विदित हो रही है वह भविष्य मे विराट रूप ले सकती है। नौका का छोटा-सा छिद्र भी नौका पर सवार सभी के लिए खतरनाक होता है। इसलिए जिसे आप छोटी-सी बात कह रहे हैं उसे मैं गौण नहीं कर सकता। उपाचार्यश्रीजी विराजमान हैं वे अगर इस छोटी-सी बात को गौण कर देते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। (शिष्ट मण्डल ने दो दिन तक सारे तथ्यों का गहराई से अध्ययन किया। मुनिश्रीजी ने उन्हे अच्छी तरह समझाया।)

प्रस्तुत चर्चा के बाद मुनिश्रीजी नीचे विराजमान उपाचार्यश्रीजी की सेवा में पधार गये। कुछ देर बाद शिष्टमण्डल भी उपाचार्यश्रीजी की सेवा में आ गया। शिष्टमण्डल ने 'छोटी-सी बात' पर जो चर्चा हुई वह उपाचार्यश्री के समक्ष रखी। उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया– यद्यपि प मुनिश्री ने जो बात रखी कि 'छोटी बात कभी बड़ी भी बन सकती है' यह यथार्थ है तथापि आप लोग समाज के अग्रगण्य हैं और छोटी बात को बडी नही बनने देने की जिम्मेदारी ले रहे हैं और इस विषय को गौण करने का आग्रह कर रहे हैं तो मैं इस समय इस 'छोटी सी बात' को गौण करता हूँ। लेकिन इससे होने वाली हानि के उत्तरदायी आप लोग ही होगे।

उपाचार्यश्रीजी के इन उदारतामरे वाक्यो को श्रवण कर शिष्टमण्डल के सदस्य बहुत खुश हुए। वे कहने लगे– हमे आपश्रीजी के चरणो मे पूर्ण सफलता मिली है। इस खुशी को व्यक्त करते हुए पूज्यश्री हस्तीमलजी म सा के एक श्रावक जो बरेली के थे एक पैर पर खडे होकर नृत्य-सा करने लगे और उस खुशी के अतिरेक में ताली भी बजा दी। उस समय उन्हे सकेत किया गया कि सन्तों के स्थान पर ताली नहीं बजानी चाहिए।

वार्त्तालाप के अन्त मे शिष्टमण्डल ने उपाचार्यश्री से कहा कि हम लोग प मुनिश्रीजी से वार्त्ता करके आपश्री के पास आ रहे थे तब सोचा कि प मुनिश्रीजी हमारे से पूर्व ही उपाचार्यश्रीजी के पास पहुँच चुके हैं इसलिए उपाचार्यश्रीजी उनकी बात मानेगे और 'छोटी-सी बात' के लिए असहमति प्रगट करेगे। अत हमारा लुधियाना जाना व्यर्थ है यही सोचकर हमने लुधियाना का टिकिट कैंसल कराने के लिए एक भाई को स्टेशन भेज दिया है। लेकिन आपश्री की महानता धन्य है कि आपने अपने मुनि की बात की अपेक्षा हमारी बात को महत्ता प्रदान कर उसे स्वीकार कर लिया। इसलिए हमारा शिष्ट मण्डल पूरा-पूरा सफल हुआ है। अब हम दूसरे आदमी को भेजते हैं ताकि टिकिट कैंसल करवाने से रोक देगा। अब हमारा लुधियाना जाना तय है। फिर हम सम्बधित अन्य स्थानो पर जायेंगे और श्रमण सघीय स्थिति को सुदृढ़ करने का भरसक प्रयत्न करेंगे आदि भाव व्यक्त करके शिष्टमण्डल ने मागलिक पाठ सुनकर दि 29 11.58 को लुधियाना के लिये प्रस्थान किया। वहा शिष्टमडल दि 1 12.58 को पहुचा। शिष्टमण्डल को वहा निर्भयता और सत्य का परिचय देना था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के पास जो वार्त्ता हुई उसे आचार्यश्री आत्मारामजी म के पास खुलकर रखना था। लेकिन श्रमण सघ का दुर्भाग्य कहिये या शिष्टमण्डल की अक्षमता शिष्टमण्डल वहा वैसा कुछ नहीं कर सका। और उसी दिन अपना वक्तव्य दे दिया कि शिष्टमडल असफल रहा। किन्तु शिष्टमडल की असफलता के बारे मे किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी गई कि अमुक कारण से शिष्टमडल असफल रहा। इसके बारे मे समाज ने स्पष्टीकरण की माग भी की लेकिन नेतागण मौन ही रहे और आज तक भी अपनी असफलता के कारणो को बताने मे मौन धारण किये हुए हैं। इस मौन का परिणाम यह हुआ कि श्रमण सघ की स्थिति सुदृढ होने की अपेक्षा दिनोदिन निर्बल बनती गई और शनै-शनै नाममात्र का सघ रह गया।

असफलता के सूत्रधार

शिष्टमण्डल की लुधियाना मे वार्त्ता यद्यपि सीमित थी। जिन बातों के बारे में बातचीत करनी थी वे सब आचार्यश्री आत्मारामजी म सा के पास पहले ही पत्रो द्वारा भेजी जा चुकी थीं। शिष्टमण्डल को तो सिर्फ इतना बतलाना था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा द्वारा

फैसला साधु भाषा में स्वीकार किया गया था उसको कार्यान्वित न कर स्वेच्छापूर्वक किया गया।

उसके बाद दिनाक 2 8 57 को उपाचार्यश्रीजी का पत्र मेरे पास आता है जिसमें फैसले को कार्यान्वित करने हेतु कई प्रश्न पूछे गये। जिसको मैं मन्त्री मुनि श्री केसरीजी के पास भेजता रहा तथा प्रत्युत्तर की भी प्रतीक्षा करता रहा किन्तु कोई भी प्रत्युत्तर नही मिला। उपाचार्यश्रीजी उत्तर जानने के लिए पत्र बराबर भेजते रहे हैं। मगर अफसोस है कि उन प्रश्नो का उत्तर मन्त्री मुनि श्री ने आज तक नहीं दिया। उस पर भी गुलाबपुरा वाला का यह लिखना है कि 'उपाचार्यश्रीजी ने कुछ भी सूचना नहीं भेजी' कहा तक सत्य प्रतीत होता है ?

उपाचार्यश्रीजी ने दिनाक 2 8 57 से लगातार पत्रो द्वारा मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से बराबर पूछते रहते हैं और जिसके प्रत्युत्तर के लिए मेरे द्वारा लिखित व मौखिक जोधपुर आदि से भी कई बार बराबर प्रयत्न करने पर भी प्रत्युत्तर आज तक नहीं मिला। फिर दिनाक 27 5 58 को एक पत्र उपाचार्यश्रीजी का प्राप्त हुआ व दिनाक 2 8 57 के लिखे गये पत्र का उत्तर मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से प्राप्त करने के लिए सख्त ताकीदी की गई। जिस पर मैं दिनाक 26 6 58 को ब्यावर गया व जालिया स्थान पर मुनिश्री से मिला व सारी परिस्थिति पर बातचीत करने पर दिनाक 2 8 57 के प्रश्नों का उत्तर देने मे मुनि श्री को सर्वथा असमर्थ पाया। तब सघ हित की दृष्टि से मैंने एक सुझाव दिया कि आप उपाचार्यश्रीजी को एक पत्र लिखे कि दिनाक 25.2.57 के फैसले को कार्यान्वित करने मे जो भी त्रुटिया रही हैं उसके लिए आप जो आज्ञा प्रदान करेगे उसका पूरी तरह पालन किया जायेगा। मन्त्री मुनि श्री केसरीजी ने इसको स्वीकार किया।

मैं ब्यावर में दूसरी पार्टी वालो से मिला और उन्होने मेरे उपरोक्त विचारो को स्वीकार कर यह कहा कि अगर आपको विश्वास हो तो हम सब सहर्ष चातुर्मास से पूर्व सहयोग कर मुनिश्री के ब्यावर प्रवेश स्वागत मे सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं। दूसरे दिन जब मुनि श्री के ब्यावर में प्रवेश करने के पहले मैं वहाँ पहुँचा तो हमारे नये नेतागणों ने उन विचारा को कार्यान्वित नहीं होने दिया और सुझाव रखा कि आप गुलाबपुरा जाकर महाराज श्री से विचार कर स्वीकृति ले लें। फिर मैं मत्री मुनिजी के कहने व बुलाने पर गुलाबपुरा गया और महाराजश्री के सामने दिनाक 2.8.57 से व दिनाक 27 5.58 तक के उपाचार्यश्रीजी के पत्र प्रस्तुत किये। उस पर मत्री मुनि श्रीजी ने कोई भी स्पष्ट उत्तर नहीं दिया और समाधान कराने की आवश्यकता के भाव व्यक्त किये।

मैंने अर्ज किया जब तक उपाचार्यश्रीजी के फैसले के मुताबिक दिनाक 2.8 57 के पत्र का जवाब नहीं दिया जायगा तब तक समाधान होना असभव-सा ही दिखता है। उपरोक्त हालात से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपाचार्यश्रीजी म ने अपनी तरफ से शान्ति का प्रयत्न करने मे कोई कसर नहीं रखी। मगर दूसरी तरफ से सहयोग की भावना का नितान्त अभाव ही रहा। ऐसी हालत मे गुलाबपुरा वालो का यह लिखना कहा तक ठीक है कि 'उपाचार्यश्रीजी की ओर से कोई सूचना न उनको मिली और न यहा विराजित मन्त्रीजी म को ही मिली। अब ब्यावर चातुर्मास होने के बाद इस प्रकार का दूषित वातावरण बनाना क्या अर्थ रखता है ?

अब मेरा नम्र निवेदन है कि पूज्य श्रमण वर्ग को श्रावक गण सत्यता को सामने रख कर यह सोचे कि दूषित वातावरण करने का उत्तरदायित्व किस पर है ? समाज के सामने जिनकी सयम विघातक प्रवृत्तिया जैन व अजैन जनता के सामने खुले रूप मे प्रकट हो चुकी हैं उनका इस तरह चुपचाप बोपारी जैसे छोटे गाव में बिना स्वीकृति के मूलारोहण करना कोई वक्त नहीं रखता। इस बीसवीं सदी में ऐसे व्यक्तियो को खुला प्रायश्चित हुए बिना कभी भी स्वीकार नहीं किया जावेगा। जहा समाज के प्रमुख मुनिवरो मे एक दूसरे के प्रतिशोध की भावना हो और गलत तरीके पर सहयोग दिया जाता हो वहा सत्यता का निर्णय होना असभव-सा प्रतीत होता है।

मैं आचार्यश्रीजी को पूज्य भावना की दृष्टि से सर्वोच्च अधिकारी मानता हूँ। मगर कार्य सचालन का सारा भार श्रमण सघ बना जब से उपाचार्यश्रीजी सभालते रहे हैं। अजमेर से जो फैसला मुनिश्री रूपचन्दजी को दिया गया था उस पर आचार्यश्रीजी म ने हर्ष प्रकट किया था ऐसी स्थिति मे बिना उपाचार्यश्रीजी व श्रावक सघ के अध्यक्ष बिना उपाचार्यश्रीजी व श्रावक सघ के अध्यक्ष आदि के बिना परामर्श के जो शान्ति सदेश प्रकट किया है जिसमें 'उपाचार्यश्रीजी के द्वारा प्रसारित सूचनाओ पर अमल नहीं किया जाय' क्या इससे समाज में अशान्ति व विघटन का कारण न बनेगा ?

मैं तो ऐसा नहीं समझता कि हमारे पूजनीय आचार्यश्री ऐसा सदेश देंगे। जब समाज के दोषियों का पक्ष इस तरह प्रमुख मुनिवर करते हैं तो उनका साहस इतना बढ जाता है कि वह सगठन व विधि विधानो की पूर्ण रूप से अवहेलना करेंगे ही। जिससे भविष्य में समाज के कार्यों का चलाना असभव सा ही प्रतीत होगा। समाज के निष्पक्ष पूज्य श्रमण वर्ग और श्रावकगण इन तथ्यो को सोचें व सत्य को बिना पक्षपात के क्रियान्वित करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी भी पक्षपात को नहीं रखता और सत्य का पुजारी हूँ और उन उत्तम महात्माओ की चरण रज हूँ जो वीतराग प्ररूपित सयम को पालते हैं। आप समाज के प्रधानमंत्री हैं तथा समाज को बिना पक्षपात के सत्य का पोषण करना अपना कर्तव्य है।

उपरोक्त सत्य हालात जो मेरे ध्यान मे थे लिखे हैं। इससे किसी को कष्ट पहुँचे तो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

भवदीय
कानमल नाहटा
श्री जैन सस्कृति रक्षक अनुशासन समिति जोधपुर

उपाचार्यश्री आनन्द ऋषिजी का निर्भिक अभिमत

उपरोक्त स्पष्टीकरण इतना तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त था कि यदि समाज की स्थिति को सुधारने का लक्ष रहता तो इसके बाद भी नेतागण सही दिशा मे कुछ करते मगर फिर भी उस समय कुछ नही किया गया।

उन्हीं दिनो उपाध्याय प रत्न श्री आनन्द ऋषिजी म के पास जब श्रमण सघीय सारी स्थिति पहुँची तो उपाध्याय श्रीजी म ने दिनाक 2 10 59 के पत्र द्वारा मत व्यक्त किया कि–

'मुनि रूपचन्दजी के विषय मे उपाचार्यश्रीजी म ने जो फैसला किया उसका मैंने (उपाध्याय श्रीजी म) सम्बन्धित पत्र व्यवहार की नकलों सहित गहराई से अध्ययन किया। उस पर से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उपाचार्य श्री जी म ने मुनि रूपचन्दजी के लिए जो फैसला दिया और जिसे मरुधर केसरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म ने व मुनि रूपचन्दजी ने सहर्ष बहुमानपूर्वक स्वीकार किया। उस फैसले के अनुसार मन्त्री मनि श्री मिश्रीलालजी म. को उन्हे (रूपचन्दजी को) स्वय नई दीक्षा देन का अधिकार प्राप्त नहीं होता क्योकि मुनि रूपचन्दजी के फैसले का सही तौर अमल हुआ कि नहीं और सयमी जीवन की विश्वस्त भूमिका तैयार होने पर उसकी पुष्टि हुई या नहीं यह सब कुछ देखने का काम उपाचार्यश्रीजी म ने किसी अन्य पर रखा हो ऐसा फैसले में उल्लेख नहीं है। अत फैसले का पालन हुआ या नहीं यह देखने का कार्य भी मेरी (उपाध्यायश्रीजी की) दृष्टि मे फैसलाकर्त्ता (उपाचार्यश्रीजी म) का ही रहता है। इससे पूर्व उपाचार्यश्रीजी से बिना आज्ञा प्राप्त किये रूपचन्दजी को नई दीक्षा दे देना उचित नहीं कहा जा सकता।

मैं (उपाध्याय श्री) यह निवेदन श्रमण सगठन व श्रमण वर्ग के चारित्र बल को उन्नत बनाने के पवित्र ध्येय को अपने सामने रखकर दे रहा हूँ।

पाली काण्ड के निर्णय के बाद आचार्यश्रीजी म [illegible] । सदेश' नामक अध्यादेश के प्रसारित हो जाने पर भी [illegible] म का [illegible] । इससे पाठक वृन्द अच्छी तरह समझ गये होंगे कि तथ्यों [illegible] की व्यवस्था और उसके पालन करने करवाने पर बल [illegible] [illegible]भवितव्यता कहे या और

कुछ कि रूपचदजी की समस्या को सुलझाने मे श्रमण सघ के अधिकारी मुनिवरो का भी सक्रिय सहयोग नहीं मिला।

उपाचार्यश्री सच्ची साधुता के दृढ हिमायती थे

श्री रूपचन्दजी आदि का प्रकरण पूज्य उपाचार्यश्रीजी म का कोई व्यक्तिगत प्रश्न नहीं था। वे एक महान सत थे। उपाचार्यश्रीजी को श्रमणो का सगठन प्रिय था। मगर वे सगठन को साधन मानते थे साध्य नहीं। वे जैसा तैसा सगठन नहीं चाहते थे। वे सच्ची साधुता के दृढ हिमायती थे। इसलिए वे उसी सगठन के हिमायती थे जहा शुद्ध सयम पालन हो सके और अनुशासन कायम रहे। उनकी दृष्टि मे श्रमण सस्कृति का रक्षण और उसके आधार पर आत्मोन्नति तब ही सभव है जब चारित्र पालन मे मनसा वाचा कर्मणा पवित्र भाव हों।

श्रमण सघ सचालन में भी उपाचार्यश्रीजी म चारित्र पालन करने करवाने में अति कठोर रहे। उनके अनुशासन मे चारित्रहीनता की घटनाए सामने आई तो उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी। भगवान महावीर के शासन में साधु का पवित्र वेश धारण कर कोई व्यक्ति असाधु का कार्य करे सयम विघातक प्रवृत्तिया करे यह बाते उपाचार्यश्रीजी म को कतई सहन नहीं थी। उनके सामने श्री रूपचन्दजी आदि के मामले आये तो उनको विचार होने लगा था कि जिस सस्था मे वे (उपाचार्यश्रीजी) हैं और जिस सस्था के सचालन का दायित्व उनके कन्धो पर है उस सस्था मे साधुता के विपरीत प्रवृत्तिया हो तो उनका क्या कर्त्तव्य है ? व्यक्तियों से उनको द्वेष नहीं परन्तु अनन्त तीर्थंकरो के पवित्र और सर्वोत्तम मार्ग को अपनाकर भी यदि कोई व्यक्ति श्रमण सस्कृति की पवित्रता कायम नहीं रखे तो ऐसी बातो को सहन करना अनन्त तीर्थंकरो की अशातना करना होगा और उस सस्था के कर्त्तव्य पालन से भी एक प्रकार से च्युत होना माना जायगा।

उपाचार्यश्रीजी म के सामने समाज का चित्र भी रहा वे सोचते थे कि आज इस युग में भी जैन मुनि वेश के प्रति जन साधारण मे आदर भाव है। उसी वेश में रहकर साधुता के विपरीत कार्य करने वालो को नहीं रोका गया तो जनसाधारण का इस परम आदरणीय जैन मुनि वेश से ही विश्वास उठ जायगा और तत्फलस्वरूप लोगों की अश्रद्धा के कारण धर्म का ह्रास होकर सयम मार्ग ही धुधला हो जायगा। इसके लिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि ऐसे कृत्य करने वालो के प्रति कडक कदम उठाकर बढती हुई विकृतियो को रोका जाय। इसी लक्ष से उपाचार्यश्रीजी ने अपने उत्तरदायित्व को निभाया और शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में व्यवस्थाए दी तथा उनको पालन करवाने मे दृढ बने रहे।

युग के नाम पर हमारे समाज के कुछ महानुभाव आज भले ही उपाचार्यश्रीजी के कार्यों का मूल्याकन न करें परन्तु एक दिन उनको इसका अवश्य भान होगा और उस समय उनको पश्चात्ताप ही होगा कि हम सही मार्ग पर नही थे। अस्तु !

यह भाषा समिति !

सत अपने वचनो पर अटल रहते हैं एव भाषा समिति का पूरा ध्यान रखते हैं परन्तु दु ख है कि श्रमण सघ के बहुल भाग मे इसका अभाव-सा दृष्टिगत हो रहा है।

जैन प्रकाश ता 8 7 62 के अक 30 के अतिम पृष्ठ पर पच समिति का सर्वमान्य निर्णय प्रकाशित हुआ कि– 'मुनि रूपचन्दजी को सघ की साक्षी मे नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देने का निर्णय करती है आदि। इस बात की पुष्टि जैन प्रकाश ता 1 8 62 के अक 33 के पृठ 411 और 412 म हुई। इसके अलावा अन्य सूत्रा से भी 8 7 62 के निर्णय की पुष्टि हुई कि पच समिति के सयोजक उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म द्वारा यह निर्णय दिया गया है। उपाध्यायश्रीजी द्वारा दिया गया यह निर्णय वैधानिक है या अवैधानिक इसकी अभी चर्चा नहीं करनी है परन्तु जिस किसी भी रूप से रूपचन्दजी को नवीन दीक्षा देने का जो निर्णय दिया गया उस निर्णय के अनुसार रूपचन्दजी के साथ साक्षात् व परम्परा से सम्बन्ध रखने वाले सभी मुनि प्रायश्चित्त के भागी बनते हैं। इन कारणों से भयभीत होकर फिर एक नये निर्णय द्वारा वोपारी की तथाकथित दीक्षा को कायम रखकर चार साल और दस मास का छेद प्रायश्चित्त देकर सन्तोष कर लिया।

अत इस सम्बन्ध मे कतिपय जिज्ञासाए स्वभाविक रूप से उठ खड़ी होती हैं –

(1) श्री रूपचन्दजी को श्रमण सघ की कार्यवाहक समिति ने सर्वानुमति से सघ की साक्षी मे नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देने का निर्णय किया तो फिर इसका पालन नहीं कर मरुधर केसरीजी ने उनको छेद प्रायश्चित्त ही क्यों दिया ? क्या कार्यवाहक समिति ने उनके निर्णय पर पुनर्विचारणा की ? यदि की तो जैन प्रकाश मे प्रकाशित क्यो नहीं की गयी और यदि पुनर्विचारणा नहीं हुई तो छेद प्रायश्चित्त देकर कौन से अनुशासन का पालन किया गया ?

(2) श्री रूपचन्दजी को नवीन दीक्षा या छेद प्रायश्चित्त कौनसे अपराध (दोष सेवन) का दिया गया ? यदि पाली काण्ड का दिया गया तो उसके बाद जिन-जिन मुनिवरा ने उस समय से तब तक उनके साथ सम्बन्ध रखा उन्होने भी प्रायश्चित्त लेकर अपना शुद्धिकरण किया या नहीं।

(3) यदि पाली काण्ड का यह प्रायश्चित्त नहीं तो क्या और कोई नवीन दोष सेवन रूपचन्दजी ने किया ?

(4) जोधपुर मे श्री रूपचन्दजी को छेद प्रायश्चित्त दे दिया गया फिर भी कुछ श्रमण सघीय सन्तो ने मरुधर केसरीजी और रूपचन्दजी से श्रमण सघीय सभोग नहीं रखा। से इसमें क्या कोई रहस्य है ?

पच समिति द्वारा रूपचन्दजी के लिए नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देना यह सिद्ध करता है कि पाली काण्ड के बाद रूपचन्दजी को जो प्रायश्चित्त दिया उसके अनुसार जब तक रूपचन्दजी की विश्वस्त भूमिका के साथ नवीन दीक्षा नहीं हो जाती तब तक वे साभोगिक स्थिति मे रहने के लायक नहीं थे। ऐसी हालत मे उनके साथ साभोगिक सम्बन्ध रखवा कर अथवा रखकर श्रमण सघ के लिए कौनसा हित का काम किया गया ? यह पाठक स्वय सोचे।

नामोल्लेख करना हमारी विवशता

अन्त में हम निवेदन करना चाहते हैं कि शिथिलाचार सम्बन्धी इस प्रकरण पर विस्तृत प्रकाश डालने मे हमको प्रातमत्री श्री पन्नालालजी म सा तथा अन्य प्रमुख मुनिवरो के नामो का उल्लेख करना पड़ा है। प्रात मत्रीजी महाराज सा वयोवृद्ध सत हैं।

हमे इस प्रकरण मे उनके नाम का तथा अन्य सता के नाम का उल्लेख करने में प्रसन्नता नहीं थी परन्तु श्री रूपचन्दजी के प्रकरण को जिस ढग से चलाया गया उस पर यथास्थान प्रकाश डालने मे हमे विवश होकर उनका तथा अन्य नेता लोगो के नामों का उल्लेख करना पडा है। अन्य कोई भावना नहीं है। फिर भी हम प्रात मन्त्रीजी म सा तथा अन्य नेतागणो से क्षमाप्रार्थी हैं।

इस विश्लेषण में हमने सावधानी रखी है फिर भी इसमें कहीं विपरीतता हो और हमको बतलाया जाय तो समझने के बाद हम उसका परिमार्जन करने के लिए सदा तैयार हैं।

श्रमण सघ का आदर्श समाप्त हुआ

शिष्टमण्डल की असफलता चतुर्विध सघ को ज्ञात हो चुकी थी और दिनोदिन श्रमण सघ की स्थिति मे बिगाड़ होता जा रहा था। इसके बारे मे श्रमण-सपर्क समिति के सयोजक श्री कानमलजी नाहटा ने रूपचन्दजी के विषय मे एक विस्तृत स्पष्टीकरण श्री अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरेस को प्रकाशनार्थ भेजा। जिसमे पालीकाड से सबधित साधु साध्वियों के बारे में अभी तक हुई कार्रवाई एव श्रमण सघ में आचार्य उपाचार्य की वैधानिक स्थिति आदि का सविगत वर्णन किया गया था। लेकिन खेद है कि स्पष्टीकरण के तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त होने पर भी उसे प्रकाशित नहीं किया गया। यद्यपि श्री आनन्दऋषिजी म ने भी इस स्थिति के ज्ञात होने पर अपना मतव्य प्रकट करते हुए बतलाया था कि उपाचार्यश्रीजी का मुनि

रूपचन्दजी आदि के बारे में दिया गया निर्णय युक्तियुक्त एव सयमपालना की भूमिका बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।

शिष्टमण्डल को पालीकाड की पूरी जानकारी थी तथा श्रमण-सपर्क समिति के सयोजक ने भी अन्य तथ्यो को समाज के सामने रखने का प्रयत्न किया एव श्रमण सघ के मूर्धन्य सन्त पालीकाड के लिये उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के निर्णय से सहमत थे। फिर भी व्यक्तिगत दुराग्रह के समक्ष चतुर्विध सघ के प्रमुख अपना साहस नहीं बतला सके और अपने कर्तव्य-पालन से च्युत हुए तथा श्रमण सघ का आदर्श सदा-सदा के लिये समाप्त हो गया।

उपाचार्यश्रीजी की भावना का दिग्दर्शन

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने स 2009 के सादडी सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित मुनिवरो के निवेदन अनुरोध और आग्रह को लक्ष्य मे लेते हुए श्रमण सघ का नेतृत्व अगीकार किया था। उनकी इच्छा नहीं थी कि पद प्राप्त कर अपने प्रभाव का प्रदर्शन करे। लेकिन यह भावना अवश्य थी कि श्रमण भगवान् महावीर की श्रमण-परम्परा अपने आदर्श साधना और मार्ग को शुद्ध और शास्त्रीय मर्यादानुकूल बनाये। उन्होंने श्रमण सघ के महत्त्व को भलीभाति समझा था लेकिन जैसे-तैसे श्रमण सघ को टिकाये रखने के पक्ष मे नहीं थे। वे चाहते थे कि श्रमण सघ की नींव ठोस आधार पर हो और इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होने सदैव शास्त्रसम्मत आज्ञाओं का पालन करने और समस्याओं के बारे में सही दृष्टिकोण अपनाने पर भार दिया था।

शास्त्र-साक्षी के समक्ष उन्होने न तो अपनो के प्रति पक्षपात दिखलाया और न दूसरो को प्रभावित करने की चेष्टा ही की थी। उन्हे जो सत्य तथ्य हित और पथ्य प्रतीत हुआ उसके अनुसार कार्रवाई की। यही कारण है कि आज उपाचार्यश्रीजी द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के विरुद्ध किसी को बोलने की गुजाइश नहीं है। सभी उनके कार्यों को सही मानते हैं और पूर्ण श्रद्धा-भक्ति रखते हैं।

यद्यपि श्रमण सघ के सबल समर्थक उपाचार्यश्रीजी आज हमारे समक्ष नहीं हैं। लेकिन उनके आदर्श उनके विचार उनके आचार विचार की परम्परा का प्रकाश विद्यमान है और आशा है कि उनकी भावना को बलवती बनाने के लिये चतुर्विध सघ के प्रयत्न यथार्थ भूमिका पर प्रारम्भ होगे।

सांध्यवेला

स्थिरवास के लिये विभिन्न श्रीसघो की विनती

उपाचार्यश्रीजी के जीवन की साध्यवेला के प्रारम्भ होने के लिये समय की कोई लक्ष्मणरेखा नहीं खींची जा सकती है। लेकिन पूर्व मे हुई भयकर मूत्रकृच्छ रोग की वेदना से शारीरिक स्थिति दिन प्रतिदिन निर्वल होती जा रही थी। अब तो शारीरिक स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि शात सयमसाधना मे सहायक और उत्तम जलवायु वाले किसी एक स्थान में स्थिरवास होना उपयुक्त है।

अलवर मे हुई शल्यचिकित्सा के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी उत्तरोत्तर अशक्त होते गये लेकिन अपने सयमित भोजन-पान और आत्मवल की प्रवलता के कारण ही दूर-दूर के क्षेत्रों मे विहार करने मे समर्थ हो सके थे। रोग के साथ वृद्धावस्था और वृद्धावस्था के कारण रोग का प्रवल वेग विहार-क्रिया मे भी रुकावट डालने लगा था।

आपश्री मुनि-जीवन के प्रारम्भिक समय से ही जन-जन के श्रद्धेय और सयम के सजग प्रहरी वन चुके थे। मेवाड मारवाड़ मालवा महाराष्ट्र पूर्वी उत्तरप्रदेश और दिल्ली प्रान्तों को आपने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा से प्रभावित तो किया ही था। किन्तु साथ ही थली के रजकणों मे आपने अपनी विद्वत्ता चारित्रशुद्धि और दूरदर्शिता की अमर छाप लगाई थी। जो आज भी उन प्रदेशों के निवासियो द्वारा स्मरणीय है। यदि समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो ऐसे महापुरुष उगलियो पर गिनने योग्य मिलेंगे जो अपने आचार-विचार की शुद्धि एव विद्वत्ता से जनसाधारण को प्रभावित कर सदा सदा के लिये उनके श्रद्धेय वने हो।

उपाचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखकर अनेक क्षेत्रो के श्रीसघों की भावना थी कि इस समय आपश्री हमारे क्षेत्र मे स्थिरवास कर हमे सेवा का अवसर दें। विशेषकर रतलाम वीकानेर ब्यावर उदयपुर आदि प्रमुख श्रीसघ अपने-अपने क्षेत्र मे पदार्पण करने के लिय वारम्वार विनती कर रहे थे।

अस्वस्थता-निवारणार्थ एकान्तर तप चालू रखा

यद्यपि जावरा चातुर्मास होने के पूर्व से ही रोग-स्थिति दिनादिन चिन्तनीय बनती जा रही थी लेकिन सुदृढ मनोवल के धनी होने से आपश्री चातुर्मास के निमित्त यथासमय जावरा पधार गये थे। लेकिन चातुर्मास काल मे रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया।

यहा पर भी सन्तो और श्रावको ने प्रार्थना की कि आपश्री के शरीर मे अशक्ति आ रही है अत यहा पर स्थायीरूप से उपचार करा लिया जाये। सुयोग्य चिकित्सकों का सुयोग भी यहा प्राप्त है। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा ने पुन यही फरमाया कि मैं प्राकृतिक उपचार करना चाहता हूँ और उसमें यदि सफलता मिली तो ठीक है अन्यथा बाद मे किसी चिकित्सक की राय ले ली जाये। तब सघ ने विनती की कि आपश्री ने प्राकृतिक तौर पर तो बहुत-कुछ कर लिया है लेकिन अब हमारी बात पर भी गौर फरमाया जाये।

स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ

सघ के बारम्बार निवेदन करने पर भी आपश्री ने अभी विशेष ध्यान न देकर एकान्तर तप चालू रखा। इस स्थिति मे भी व्याख्यान देना सत-सतियो को वाचनी देना जिज्ञासुओं के प्रश्नो का उत्तर देना आदि क्रम पूर्ववत् चलता रहता था। व्याख्यान-श्रवण आदि प्रसगों पर स्थानीय और आगत सज्जनों की उपस्थिति आशातीत हो जाती थी। एक दिन मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू भी व्याख्यान में उपस्थित हुए और व्याख्यान सुना। अनन्तर मुख्यमन्त्री महोदय ने भी अपना वक्तव्य दिया और अपनी भक्ति प्रदर्शित की। जनता धार्मिक लाभ प्राप्त कर रही थी लेकिन शारीरिक बल शिथिल होता जा रहा है। यहा तक स्थिति आ गई कि व्याख्यान भी बन्द करना पडा। डॉक्टर श्री गोयल एव डाक्टर श्री दिनकर ने आचार्यश्री का निरीक्षण किया और बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की किन्तु ज्ञात नहीं हो रहा था।

अधिक पथ्य से अत्यधिक कमजोरी

ये समाचार डॉक्टर श्री बोरदिया यक्ष्मारोग विशेषज्ञ को मालूम हुए। उस समय वे इन्दौर थे और डॉक्टर श्री मुकर्जी भी इन्दौर थे। डाक्टर श्री मुकर्जी मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध डॉक्टरों मे से हैं। इन दोनो डॉक्टरों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप दोनो डॉक्टर भडारी के साथ उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने परीक्षण कर उपाचार्यश्री के बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की। निश्चयात्मकरूप से तो पता नहीं लग पाया फिर भी उन्होने अपनी दृष्टि से कुछ औषधिया स्थानीय डॉक्टर गोयल आदि को बतलाई जिनसे बुखार उतर गया और साथ ही यह भी निर्णय किया कि उपाचार्यश्री के हृदयरोग है अत किसी भी प्रकार का श्रम न किया जाये। उपाचार्यश्री ने जैसा कहा उससे भी अधिक पथ्य का खयाल रखा फलत कमजोरी में अत्यधिक वृद्धि हो गई। उठना बैठना भी मुश्किल हो गया। बुखार भी कुछ समय के लिए कम हुआ। किन्तु औषधियो का असर हटते ही पुन पूर्ववत् बुखार आने लगा।

हृदय की तकलीफ कतई नहीं

चातुर्मास-समाप्ति का समय आ गया था। उपाचार्यश्रीजी म सा विहार करने की सोचने लगे। डॉक्टरो ने दृढता के साथ मना कर दिया कि इस कमजोरी और बीमारी की स्थिति में आपका विहार होना कतई उपयुक्त नहीं है। रतलाम सघ का आग्रह था कि उपाचार्यश्रीजी रतलाम पधारकर वहा विराजें। उपाचार्यश्रीजी भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् धीरे-धीरे विहार करने की सोच रहे थे। इसी बीच सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉक्टर श्री भसाली मुम्बई जो श्रीमती केशरबेन जौहरी धर्मपत्नी सेठ अमृतलालजी के सम्बन्धी थे को उपाचार्यश्रीजी की स्वास्थ्य-स्थिति ज्ञात हुई तो वे भी जावरा आये और उन्होने भी उपाचार्यश्रीजी को देखकरके कहा कि मैं डाक्टर के नाते दावे के साथ कहना चाहूँगा कि आपश्री के हृदय की तकलीफ कतई नहीं है। तीन साल पहले हुई हृदय की तकलीफ का भी मैं पता लगा सकता हूँ। आज तो क्या तीन साल पहले भी आपश्री को हृदय की कोई तकलीफ नहीं थी। अत आपको अभी जो पथ्य चल रहा है उसकी आवश्यकता नहीं है। आप अपनी स्वाभाविक खुराक लीजिये और कुछ ताकत आने पर चलना-फिरना भी प्रारम्भ कीजिये। तदनुसार सारी प्रक्रियाए परिवर्तित हुईं और शरीर में भी अपेक्षाकृत शक्ति का सचार हुआ लेकिन विहार करें ऐसी स्थिति अब भी न बन पाई। स्थानीय डाक्टरो का कहना रहा कि उपाचार्यश्री पैदल नहीं चले। उपाचार्यश्री का कहना था कि सत गृहस्थो के कधों पर अपने को उठाना नहीं चाहते। तब सन्तो ने कहा कि हम उठाकर ले जा सकते हैं और मजबूत कपड़े की पालकी मे बिठाकर रतलाम की ओर विहार किया और रतलाम के पास ही स्टेशन पर उपाचार्यश्री विराजे। यहा के डॉक्टर श्री प्रेमसिहजी जो पहले मध्यप्रदेश मे स्वास्थ्य विभाग के मन्त्री रह चुके थे ने उपाचार्यश्रीजी का निरीक्षण किया। इनका भी कहना था कि उपाचार्यश्रीजी को अधिक बाधित नहीं करना चाहिए।

असत्य प्रचार साधु-जीवन के लिए कलक

रतलाम में पूज्यश्री धर्मदासजी म के सप्रदाय के मुनिश्री सागरमलजी भी थे। जिनके विषय मे सयमविरोधी ब्रह्मचर्य सम्बन्धी वार्ता प्रामाणिक रूप से उपाचार्यश्रीजी के कानो में आ चुकी थीं। ये उपाचार्यश्रीजी की सेवा में दर्शनार्थ उपस्थित हुए और वदना करने लगे तो उपाचार्यश्रीजी म सा ने कहा कि आपके सम्बन्ध में कुछ सयमविघातक बातें सुनी गई हैं अत आलोचनापूर्वक जब तक यथायोग्य निर्णीत स्थिति न बन जाये तब तक आपके साथ वदना व्यवहार आदि साभोगिक स्थिति नहीं हो सकती। अत आपके वदन करने पर इधर के छोटे सन्तो द्वारा वदना नहीं करने पर आपका दिल दुखित हो तो आप भी वदना न करें।

इस पर श्री सागरमुनिजी ने कहा कि जैसा भी आप योग्य समझें करे। मैं आपश्री के चरणों में आलोचना कर सकता हूँ। उपाचार्यश्रीजी ने कहा कि मैं नगर मे आ ही रहा हूँ, कुछ स्वस्थ होते ही आलोचना सुनकर यथारीति इस विषय को निपटाने का प्रयत्न करूगा। वहा तक परस्पर वदन-व्यवहार न होने की स्थिति को गृहस्थो के सामने न रखे। इस बात को स्वीकार करके श्री सागरमुनिजी वापस नगर मे आ गये किन्तु यहा पहुचकर अपने सप्रदाय के मुख्य-मुख्य श्रावकों को बुलाकर कहा कि उपाचार्यश्रीजी म ने तो धर्मदासजी म की सप्रदाय से सम्बन्ध तोड़ दिया है और मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रखा आदि झूठमूठ कई बातें बनाकर साप्रदायिकता के विष को प्रज्वलित किया। जिससे पूज्यश्री धर्मदासजी म के सप्रदाय के कुछ श्रावक श्री सागरमुनिजी की सब करतूतो को जानते हुए भी इधर उधर की बातें करने लगे। उपाचार्यश्रीजी स्टेशन पर विराजते थे और यदि वे चाहते तो आपश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर सब बातो का स्पष्टीकरण कर सकते थे। लेकिन ऐसा न करके उन्होने भी श्री सागरमुनिजी की तरह साम्प्रदायिक विष फैलाना चालू रखा। यह बात जब कर्ण-परम्परा से उपाचार्यश्रीजी को ज्ञात हुई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार का प्रचार होना साधु-जीवन के लिए कलक ही है।

मैं तो अपने कर्तव्य का पालन करूगा

दूसरे दिन उपाचार्यश्रीजी के रतलाम नगर मे पधारने का प्रसग था। यहा भूतपूर्व सप्रदाय की दृष्टि से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म., पूज्यश्री धर्मदासजी म और श्री दिवाकरजी म. के श्रावकों के पृथक-पृथक तीन स्थानक थे। जब उपाचार्यश्रीजी नगर की ओर पधार रहे थे तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म की भूतपूर्व सप्रदाय के श्रावकों ने अर्ज की कि आप इस सम्प्रदाय के श्रावकों के स्थानक में पधारिये। स्थानक भी विशाल है। अत अन्यत्र न पधार कर इसी स्थानक में पधारिये। तब उपाचार्यश्रीजी म सा ने कहा कि श्रमण सघ का यह नियम है कि जहा वृद्ध ठाणापति सत विराजते हो वहा विश्रामार्थ जाना चाहिए। भूतपूर्व दिवाकरजी म की सप्रदाय के श्रावको के स्थानक मे वृद्ध सत विराजते हैं अत वहीं पर ठहरना उपयुक्त है। श्रावको ने कहा कि आपश्रीजी तो निष्पक्ष दृष्टि से चल रहे हैं पर उन लोगों में प्राय करके साम्प्रदायिकता कूट कूट कर अब भी भरी हुई है। इसलिए वहा जाना हमें नहीं जचता है। उपाचार्यश्रीजी ने कहा श्रमण सघ मे रहते श्रमण सघीय नियमो का ईमानदारी से पालन करना हरएक का कर्तव्य हो जाता है वे लोग नहीं पाले तो वे जानें मैं तो अपने कर्तव्य का पालन करूगा। और उपाचार्यश्रीजी म सा रतलाम मे विराजने के समय श्री दिवाकरजी म के सन्तो के पास नीमचौक स्थानक में ही विराजे।

यहा के चिकित्सको ने रोग का पता लगाने की चेष्टा भी की लेकिन कुछ पता नहीं लग पाया। कभी कभी पेशाब के साथ खून भी आने लग गया था। जब चिकित्सको को कुछ पता नहीं लग रहा था तो इन्दौर उदयपुर उज्जैन आदि के श्रावक सघों ने अत्यधिक आग्रह किया कि हमारे क्षेत्र मे आपश्री का पदार्पण हो। वहा पर चिकित्सकों की स्थिति अच्छी है और रोग का निदान भलीभाति हो सकेगा। यद्यपि रतलाम सघ अन्त करण से चाहता था कि उपाचार्यश्रीजी का रतलाम से विहार न हो। परन्तु साथ ही यह भी सोच रहा था कि उपाचार्यश्री के रोग का सही निदान होना चाहिए। रतलाम इन्दौर उज्जैन आदि मध्यप्रदेश के क्षेत्रों मे कुछ नमीयुक्त हवा होने से इस कमजोर अवस्था में सर्दी जुखाम आदि जल्दी-जल्दी होने की सभावना रहती थी। अत चिकित्सकों का मतव्य था कि जलवायु की दृष्टि से उदयपुर क्षेत्र अत्यधिक उपयुक्त रहेगा।

रतलाम से विहार भक्त फूट-फूटकर रो पड़े

तदनुसार जब रतलाम से विहार का प्रसग आया तब रतलामवासियो के दुख का पार न रहा। विहारवेला का दृश्य इतना मार्मिक बन गया कि प्रव्रज्या अगीकार करने के अवसर पर पारिवारिक जनो के रुदन-विलापजन्य करुणाजनक दृश्य को देखकर मन में ग्लानिभाव नहीं लाने वाले सन्त-मुनिराज भी द्रवीभूत हो गये। उनके हृदय भर आये। आबाल वृद्ध जनसाधारण की आखो से आसू बहने लगे और कई एक तो चौधार आसू बहते हुए फूट-फूटकर रो पड़े। फिर भी हृदय को वेग शात नहीं हो रहा था।

सन्तों के सहारे रतलाम स्टेशन से शनै शनै विहार कर उपाचार्यश्रीजी म सा फरीदगज पधारे और श्री भीमराजजी नाथूलालजी सेठिया के मकान मे विराजे। दूसरे दिन वहा से नामली गाव की ओर विहार हुआ तब रतलाम श्रीसघ के सैकड़ो भाई-बहिन उपस्थित थे। नामली और उसके आगे के क्षेत्रो मे आहार पानी आदि के परीषहा को सहन करते हुए क्रम क्रम से विहार कर पुन जावरा पधार गये।

रोग के पुन-पुन झटके

जावरा में एकाध दिन विश्राम करने के अनन्तर जब वहा से विहार कर करीब तीन चार मील आगे आये होंगे कि पेशाब होना बिल्कुल बद हो गया। शारीरिक कमजोरी इतनी बढ गई कि जीवन रहने में भी शका दिखने लगी। लेकिन चतुर्विध सघ के पुण्योदय से तात्कालिक उपचार द्वारा रोग शात-सा हो गया। इस विकट स्थिति से देश के समस्त श्रीसघों और उनके प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं म चिन्ता व्याप्त हो गई। सभी की आकाक्षा थी कि उपाचार्यश्रीजी

म सा तत्काल किसी एक स्थान पर विराज जायें और वहा रोगोन्मूलन के लिये उपचार का प्रबन्ध किया जाये।

श्रावक सघो की भावना योग्य थी। लेकिन आत्म-साधना में ही जीवन की सफलता है– मानने वाले उपाचार्यश्रीजी म सा परहेज आदि से शरीर के बने रहने की स्थिति मे किसी एक स्थान पर स्थिरवास करना योग्य नहीं समझते थे। अत कुछ स्वस्थ होने पर मेवाड़ की ओर विहार चालू रखा।

स 2016 के वर्षावास का समय निकट आ रहा था और मालवा मेवाड के अधिकाश श्रीसघों की भावना थी कि चातुर्मास हमारे यहा हो। लेकिन शारीरिक स्थिति को देखते हुए पहले से ही किसी स्थान-विशेष के बारे में निश्चय करना शक्य नहीं था। इस स्थिति में विहार करते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा मदसौर और फिर वहा से विहार कर मदसौर के उपनगर नयापुरा में पधारे। मदसौर श्रीसघ की उत्कट भावना थी कि उपाचार्यश्रीजी म सा का चातुर्मास यहा नयापुरा में हो। यहा पर प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा सयोग मिल सकता है और मदसौर सघ की वर्षों की भावना भी सफल होगी। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा के स्वास्थ्य को देखते हुए कई दृष्टियो से मदसौर उपयुक्त नहीं जान पड़ा। अजमेर सघ के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति भी वहा पर उपस्थित हो गये थे और विनती की कि अब हमारे पर मेहरवानी हो जानी चाहिए। अजमेर मे सब तरह के उपचार-साधनो का सयोग है आदि। लेकिन अभी चातुर्मास की स्वीकृति देने का समय नहीं था अत फरमाया कि मैं आगे बढ़ रहा हूँ, कहाँ की स्पर्शना बने कह नहीं सकता। वहा से सन्तों के सहारे विहार कर नीमच सीटी नीमच छावनी होते हुए बघाना पधारे। छोटी सादड़ी जावद आदि सभी सघों का अपने-अपने क्षेत्र में पधारने का अत्यधिक आग्रह था। जवाद श्रीसघ के सदस्यों ने अपनी भावना दर्शाते हुए कहा कि आप चाहे, एक रात्रि विराजकर ही छोटी सादडी पधार जायें परन्तु जावद अवश्य पधारे। आपको पधारे बहुत समय हो गया है।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने जावद सघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर बघाना से जावद की ओर विहार किया। पहली मजिल पर जिस गाव मे रहे उस गांव में शाम होते समय उपाचार्यश्रीजी के बीमारी का घोर प्रकोप हो गया। यहा तक स्थिति बन गई कि उपाचार्यश्रीजी म सा ने स्वय सागारी सथारा पचख लिया और फिर सन्तों से कहा कि अब मुझे स्थायी सथारा पचखा दो। लेकिन स्थायी सथारा पचखाने जैसी स्थिति नहीं थी। नीमच से डाक्टर आ गये और उन्होने जोर देकर कहा कि वापस नीमच की ओर पधार जायें। दूसरे दिन प्रात काल जावद की ओर विहार स्थगित रहा और पुन लौटकर नीमच छावनी पधारे और डाक्टर सा के मकान में विराजे। उपाचार्यश्रीजी म सा के स्वास्थ्य विषयक ये समाचार सभी

श्रीसघो को ज्ञात हुए। रतलाम जावरा मदसौर के डाक्टर तथा उदयपुर के डाक्टर शूरवीरसिहजी डा न्याती व डाक्टर माथुर आदि श्रावको के साथ उपस्थित हुए एव और भी आस-पास के काफी श्रावक आ गये।

उदयपुर चातुर्मास की स्वीकृति

मालवा के श्रीसघों का आग्रह था कि हम मालवा के बाहर नहीं जाने दगे। नीमच छावनी श्रीसघ का तो अपने यहा ही चातुर्मास होने के लिये विशेष आग्रह था। सभी चिकित्सको ने गभीरता से विचार किया और बीमारी के चिह्नो को देखते हुए रोग की ओर कुछ झुकाव हुआ। सभी डाक्टरो का यह मत हुआ कि जिस बीमारी का अनुमान लग रहा है उसको देखते हुए उपाचार्यश्रीजी को किसी तरह उदयपुर पहुच जाना चाहिए। चिकित्सा आदि सभी दृष्टियों से उदयपुर क्षेत्र उपयुक्त है। चातुर्मास की विनती के लिये 21 सघ आये हुए थे और चाहते थे कि आगामी चातुर्मास के लिये हमारे यहा की स्वीकृति मिल जाये। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म सा ने द्रव्य-क्षेत्र काल भाव आदि दृष्टियो को ध्यान मे रखकर स 2016 के चातुर्मास के लिये उदयपुर की स्वीकृति फरमाई।

नीमच छावनी से सन्तो के सहारे विहार कर छोटी सादडी बडी सादडी कनोड़ भींडर आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा डबोक पधारे। यहा पर पुन डा शूरवीरसिहजी आदि चिकित्सक आ गये और कहा कि आपश्री जल्दी उदयपुर पधार जायें जिससे अच्छी तरह रोग का निदान हो सके।

उदयपुर पदार्पण

डबोक से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म सा आयड पधारे और छतरियों के पास श्री गिरधारीसिहजी के बगले में विराज। उस समय उपाचार्यश्रीजी म सा को काफी थकावट व कमजोरी आ गई। अगवानी के लिये उदयपुर आयड़ आदि से आये हुए दर्शनार्थियों को मगलपाठ भी नहीं सुना पाये। अन्य सन्तो ने मागलिक सुनाया। दर्शनार्थियों के आवागमन का क्रम निरतर चलते रहने से उपाचार्यश्रीजी को विश्राम नहीं मिल रहा था अत आयड गाव म श्री केशूलालजी ताकड़िया के मकान पर एकान्त विश्राम करने योग्य स्थान होने से कोठारीजी के बगले से वहा पधार गये।

दूसरे रोज वहा से विहार करके श्री किशनसिहजी सरूपरिया के बगले मे, जो बडी हॉस्पिटल के सामने था पधारे। वहा पर डाक्टरो ने आपके रोग का निदान करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। डाक्टरों को पूरा निदान करने में समय लग रहा था और आपस में

मत्रणा करके मुवई के प्रसिद्ध डाक्टरो से भी परामर्श ले रहे थे। इधर चातुर्मास का समय निकट आ जाने से वहा से विहार कर उदयपुर शहर मे ओसवाल पचायती नोहरे में पधार गये।

उदयपुर में इससे भी पूर्व उपाचार्यश्रीजी म सा के कई चातुर्मास हो चुके थे लेकिन यह चातुर्मास एक गभीर वातावरण मे हो रहा था। उदयपुर सघ अपनी जिम्मेदारी के प्रति पूर्ण सजग था और उसने अपने सब प्रयत्न चातुर्मास को सफल बनाने मे लगा दिये।

चातुर्मास-काल मे समयानुसार धर्म-ध्यान त्याग-तपस्याए अच्छी हुई। दर्शनार्थियों का भी आशातीत आगमन हुआ। लेकिन उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य दिनोदिन निर्बल होता जा रहा था। शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि अच्छे-से-अच्छा उपचार भी अब कार्यकारी सिद्ध नहीं हो रहा था।

भागवती दीक्षा महोत्सव

इसी चातुर्मास-समय मे वैराग्यभावना से अनुप्राणित कतिपय भाई-बहिन दीक्षा अगीकार करने के लिये उत्सुक थे। लेकिन पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा की स्वास्थ्य स्थिति के कारण दीक्षा-तिथि निश्चित नहीं की जा सकी थी। चातुर्मास के अन्तिम दिनों में स्वास्थ्य कुछ सुधार पर था। अत कार्तिक कृष्णा 8 रविवार दि 25 10 59 को वैरागी श्री बाबूलालजी तथा वैरागिन बहिन श्री अनोखीबाई बहिन श्री धीरजकुमारी की दीक्षाए होने का निश्चय हो गया।

यथासमय उपाचार्यश्रीजी म सा के नेतृत्व मे ये दीक्षाए बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुई। उदयपुर श्रीसघ के इतिहास मे एक साथ तीन दीक्षाए होने का यह अपूर्व अवसर था। उदयपुर सघ ने इस समारोह को बहुत ही उत्साह और भव्यता के साथ आयोजित किया था। इस अवसर पर स्थानीय व बाहर से आगत हजारों भाई-बहिन उपस्थित थे।

चिकित्सको का परामर्श और उपाचार्यश्री का विचार

चातुर्मास-काल में दीक्षा के बाद चिकित्सक अपने परीक्षण से कुछ परिणाम पर पहुचे। उन्होने बताया कि उपाचार्यश्रीजी म सा के शरीर मे जो कमजोरी व्याप्त है और विभिन्न रोगों के चिह्न दिखते हैं उनकी जड़ गहरी है और वह शल्यचिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती है। अत हमारी राय है कि शल्य चिकित्सा यथाशीघ्र करवा लेनी चाहिए नहीं तो रोग के फैलने का अदेशा है। यदि शीघ्र ही रोग की जड़ निकल जाती है तो फिर उसके फैलने का प्रसग नहीं आता है।

उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि बिना शल्यचिकित्सा के प्राकृतिक नियमों द्वारा अथवा बेला तेला आदि तपस्या द्वारा यदि रोग का शमन हो सकता हो तो पहले मैं प्राकृतिक

चिकित्सा आदि से रोगशमन करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ। डाक्टरो ने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा के लिये हमारा कोई ऐतराज नहीं है लेकिन रोग की जो स्थिति निश्चित हुई है उसका शमन सिवाय शल्यचिकित्सा के अन्य कोई नहीं है। यह हमारा दृढ विचार है। जितना इसमे विलब करेगे तो उतना ही रोग-प्रकोप बढ़ने की सभावना है और अधिक बढ जाने के बाद फिर शल्यचिकित्सा भी नहीं हो सकेगी एव आपके शरीर में शान्ति भी नहीं रह सकेगी। अत आपको इस विषय म जरा भी विलब नहीं करना चाहिए। तब उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि रोग अधिक फैल गया है और उसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है तो भी भयभीत होने की जरूरत नहीं। मृत्यु का सहर्ष सत्कार करने के लिए ही हमने साधु-जीवन लिया है। एक दिन इस शरीर को छोडना ही होगा तो क्यो मैं ऑपरेशन के झझट में पडू ? शरीर रहना होगा तो रहेगा और जाना होगा तो समाधिमरण के साथ जायेगा। मैं तो अभी से तैयारी कर सकता हूँ।

इस पर डॉक्टरो ने कहा कि आपका साधु-जीवन लेने का खास उद्देश्य क्या है ? उपाचार्यश्रीजी ने सयमी जीवन की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधनापूर्वक शत्रु-मित्र पर समभाव और आत्मा के चरम विकास को सन्मुख रखते हुए समाधिमरण द्वारा इस भौतिक शरीर को छोडना है।

डाक्टरो ने पुन प्रश्न किया कि क्या आयुष्य के पूर्व ही शरीर को इस प्रकार छोडना उपयुक्त रह सकता है ? उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि आयुष्य रहते हुए समाधिभावपूर्वक ज्ञान दर्शन-चारित्र की आराधना करते रहना चाहिए। लेकिन जब यह मालूम हो जाये कि शरीर से ज्ञान दर्शन-चारित्र की आराधना नहीं हो सकती और अनुमान व चिकित्सको आदि से यह मालूम हो जाये कि अब आयुष्य अधिक नहीं है तो फिर उस स्थिति मे सलेखना सथारा आदि करके पडितमरणपूर्वक शरीर को छोड़ देना चाहिये। अत आप अपने चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से बताइये कि इस शरीर का टिकाव कितने समय का है ? यदि इसकी स्थिति ज्यादा न हो तो मैं अभी से आपरेशन आदि की प्रक्रिया मे न पड़कर सलेखना आदि करके अपने सयमी जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयास करू। डाक्टरो ने कहा कि उपाचार्यश्री ! हम लोगो ने शरीर-विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ अध्ययन किया है उसके अनुसार यदि रोग की चिकित्सा हो जाती है तो इस शरीर से आप अपने ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि कर सकते हैं और अन्य कोई उपद्रव न हो तो वर्षो तक इस शरीर का कुछ भी बिगडने वाला नहीं है। यदि आपने शल्य चिकित्सा नहीं करवाई तो शरीर म किसी-न किसी रोग के चिन्ह परिलक्षित होते रहेगे और दिनादिन शरीर भी कमजोर होता जायेगा तथा रोग का अत्यधिक प्रकोप होने पर न तो आप ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि कर सकेंगे और न

समाधिभाव रह सकेगा और न इस शरीर से जल्दी ही छूटने का प्रसग आयेगा। ऐसी परिस्थिति मे आप अपने सयमी जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पायेंगे और शरीर छूटने के अन्तिम समय में न तो समाधिभाव रह सकेगा और न आप आत्मा और परमात्मा का ही चिन्तन कर पायेगे। ऐसी दशा मे आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। लेकिन आप शल्यचिकित्सा करवा लेगे तो आनन्दपूर्वक अपने उद्देश्य को सिद्ध करेगे और कदाचित् शल्यचिकित्सा में आपके नियमानुसार कुछ दोष लगे तो उसकी शुद्धि कर लेना।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म सा ने फरमाया कि आपने शल्यचिकित्सा विषयक जो स्थिति समझाई वह मैंने सुन ली है लेकिन अभी तो चातुर्मास का समय है। दूसरी बात यह है कि अन्य निर्दोष चिकित्सा से यह कार्य सभव हो तो मैं पहले उसको भी अजमा लेना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा अभी दोषयुक्त चिकित्सा पसद नहीं कर रही है। इस पर डाक्टरों ने कहा–आप महात्मा हैं आप निर्दोष स्थिति पसद करते हैं लेकिन जो स्थिति हमे ज्ञात हुई वह आप से अर्ज की है।

अनन्तर उपाचार्यश्रीजी ने रोग-निवारण करने के लिए होम्योपैथिक उपचार चालू किया। लेकिन किडनी के अन्दर पैदा हुई गाठ पर उसका कोई असर नहीं हुआ। जब इस गाठ से निकला खून पेशाब की थैली मे जाकर पेशाब के रास्ते को रोक लेता था तब आपश्री को बहुत वेदना होती थी। एक रोज ऐसी भयकर वेदना हो गई थी कि यदि एलोपैथिक डाक्टर नहीं सभालते तो परिणाम स्पष्ट था।

चतुर्विध सघ की विनती ऑपरेशन का निश्चय

जब ये समाचार चतुर्विध सघ को ज्ञात हुए तो दुःख का पार नहीं रहा और साधु, साध्वी श्रावक श्राविका और मुख्य चिकित्सक आदि सबने साधु-जीवन और शास्त्र की जानकारी के माध्यम से उपाचार्यश्रीजी म सा पर जोर डाला कि आप इस शरीर को अपना ही न समझें यह सघ का है और चतुर्विध सघ की धरोहर को आप इस तरह से रख रहे हैं जिससे हम सबको अत्यधिक वेदना होती है। इस पर हम सबका अधिकार है। आप अपनी आत्मा से तटस्थ हो जाइये। हम इस शरीर को ठीक करना चाहते हैं और अनुभवी चिकित्सकों की राय हमको भी ठीक लग रही है। हम ऑपरेशन कराना चाहते हैं। आपरेशन सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होने पर जो भी दोष की स्थिति हो शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेना आपका अधिकार है। लेकिन ऐसी स्थिति मे भी चिकित्सा नहीं कराना आपके अधिकार की बात नहीं है। शास्त्र म शल्यचिकित्सा औषध भेषज आदि का विधान है। उत्सर्ग और अपवाद की स्थिति भी पतिपादित की गई है। भगवान् महावीर ने भी केवलज्ञान होने के बाद खून की दस्तें लगने

पर शिष्य की प्रार्थना पर औषध-सेवन किया था। आप तटस्थ रहिये किन्तु चतुर्विध सघ की भावना को ठेस मत पहुचाइये आदि। तब चतुर्विध सघ द्वारा सामूहिक रूप म अर्ज की गई इस विनती पर उपाचार्यश्रीजी म सा को ध्यान देना पडा।

अनन्तर उदयपुर श्रीसघ के मन्त्री महोदय ने चिकित्सकों से परामर्श करके ऑपरेशन होने की तिथि 24 11 59 घोषित कर दी।

ऑपरेशन होने की तिथि की जानकारी मिलते ही देश के कोने-कोने से हजारो भाई बहिनो का उदयपुर आना चालू हो गया। दिनाक 22 11 59 तक तो उदयपुर में करीब 5 6 हजार भाई-बहिनो की उपस्थिति हो चुकी थी।

ऑपरेशन दि 24 11.59 को होने वाला था लेकिन उसकी पूर्व-तैयारी के लिये उपाचार्यश्रीजी म सा का दि 23 11.59 को अस्पताल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र स्थान में पदार्पण हुआ। ऑपरेशन करने वाले डाक्टरो में प्रमुख डाक्टर बी एन शर्मा डायरेक्टर मेडीकल एव पब्लिक हेल्थ विभाग राजस्थान सरकार ने उपाचार्यश्रीजी के शरीर की आवश्यक परीक्षा की।

चतुर्विध सघ को उपाचार्यश्रीजी का सन्देश और क्षमायाचना

अस्पताल मे प्रवेश करने के पूर्व उपाचार्यश्रीजी म सा ने चतुर्विध सघ से क्षमत-क्षमापना करके उपदेश के दो शब्द फरमाये। जिनम सर्वप्रथम अनत सिद्धों को नमस्कार करके वीतराग भगवन्त अरिहन्तो को नमस्कार किया और आज दिन तक कोई अविनय आसातना हुई हो तो क्षमा करने तथा भव-भव मे अरिहन्त सिद्धों की शरण होने का भावना दर्शाई गई थी।

पश्चात् चतुर्विध सघ को सम्बोधित कर आचार्यश्रीजी म सा ने अपने आज तक के जीवन पर थोड़े से शब्दो में प्रकाश डाला कि पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म सा ने ससारी अवस्था से उबार कर मुझ पर महान उपकार किया और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा की असीम कृपा से साधना क मार्ग पर अग्रसर होने का योग मिला। इ[illegible] महापुरुषा के अनन्त उपकार के लिये कृतज्ञ हूँ।

पश्चात् शास्त्रीय पाठ से समस्त जीवयोनि से क्षमायाचना करते हुए फरमाया कि सयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा आज अपवादमार्ग से गमन करने का प्रसग आ रहा है। अत मेरी इच्छा है कि जब तक अविधियुक्त शल्यचिकित्सा सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त न कर लू, तब तक मुझे वदन न करे।

इन शब्दों को सुनकर उपस्थित जनसमूह गदगद हो गया। हृदय का आवेग आँखों स बहने लगा और जय जय धन्य धन्य के घोष से आकाशमडल गूज उठा।

उपाचार्यश्रीजी द्वारा व्यक्त किये गये उद्‌गारा के पश्चात् प र मुनिश्री नानालालजी म सा ने सक्षेप मे उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की व्याख्या करते हुए फरमाया कि सयम रक्षणार्थ पूज्यश्री का अपवाद मार्ग में गमन करने का प्रसग उपस्थित हो रहा है। फिर भी आपश्री ने जो अविधियुक्त शल्यचिकित्सा सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त न कर लेने तक वदन न करने का फरमाया है वह पूज्यश्री जैसे महापुरुषों की महानता का द्योतक है।

अनन्तर आपने प्रार्थना करते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा म निवेदन किया कि मैं सदा ही आपश्री की आज्ञाओ का पालन करता रहूँगा।

श्रावक समुदाय की ओर से श्री जवाहरलालजी मुणोत ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि विश्वास दिलाते हैं कि हम सब एकमत होकर आपके आदेशो का पालन करते रहेगे और आपके जीवनकाल म ही वह समय निश्चित आयेगा जब शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु आपश्री द्वारा किये गये प्रयत्न सफल होकर रहेंगे। समाज को आपश्री के नेतृत्व की जरूरत है और हमे विश्वास है कि ऑपरेशन सफल होगा एव आपश्री का वरद नेतृत्व हम लोगों को बराबर प्राप्त रहेगा।

उपाचार्यश्रीजी के व्याख्यान के अविकल भाव इस प्रकार हैं–

'सर्वप्रथम मैं मेरे अन्त करण से अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके उनके प्रति अपने अन्तस्थभाव व्यक्त करता हूँ कि भगवन्तो ! मैं आपके यथार्थ स्वरूप को अपनी अल्पमति के कारण पूरा समझ नहीं पाया हूँ और किसी भी प्रकार से अनन्तभवो से लेकर आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा कोई भी अविनय आसातना हुई हो तो क्षमा प्रदान करे। मैं मनसा वाचा, कर्मणा अन्तरात्मा द्वारा अनन्त सिद्ध भगवतो से माफी चाहता हूँ, आपका सदाकाल शरण हो।

'इसके पश्चात् अरिहन्त भगवन्तो से अत्यन्त विनय-भावपूर्वक हार्दिक प्रार्थना है कि वीतराग भगवन्तो ! आप द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को समझने में प्ररूपणा में स्पर्शना आदि में किसी भी प्रकार की त्रुटि हुई हो एव अनन्त तीर्थकरो के शासन की प्रकारान्तर से भी जरा भी अविनय आसातना अपराध आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा हुआ हो उसके लिये मैं बारम्बार मनसा वाचा कर्मणा क्षमा मागता हूँ। आपका भव-भव मे शरण हो।

'तदनन्तर चतुर्विध सघ से कहना चाहता हूँ कि मेरे जन्म का यह 70वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी 54 वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लेने के बाद मेरा चतुर्विध सघ से विशेष सपर्क रहा है।

'जब श्रीसघ ने व परमप्रतापी आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने स्व पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म के सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे कन्धा पर रख दिया था तब प्रतापी तेजस्वी महापुरुषों के आसन पर बैठते हुए उन महापुरुषो की अपेक्षा अपनी कमजोर स्थिति का अनुभव हुआ

था। फिर भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म की आज्ञा को स्वीकार करना और श्रीसघ के आग्रह पर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझकर मैंने भार को ग्रहण किया।

'इसके पश्चात् सादड़ी में वृहत्साधु-सम्मेलन ने भी मेरी सेवा लेनी चाही। मेरी इच्छा नहीं होने पर भी श्रमणवर्ग के आग्रह को मैं टाल नहीं सका।

'मैंने शासनोन्नति के लिये सम्यक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ जो भी उचित जान पड़ा वह आज दिन तक कर्तव्यदृष्टि को सामने रखकर किया जिस पर मुझे आज भी सात्त्विक गौरवानुभूति है। यथोपयोग कर्तव्यदृष्टिपूर्वक आत्मसाक्षी से सघहितार्थ किये गये कार्यो से भी यदि किसी को चोट पहुची हो तो उस सम्बन्ध मे मेरा इतना ही कहना है कि मेरी भावना किसी के हृदय को चोट पहुचाने की नहीं रही है बल्कि वीतराग देव की पवित्र साधु-सस्कृति की शुद्धता सदा अक्षुण्ण रहे इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं।

श्रमण सघीय या शास्त्रीय समाचारी तथा उसके सरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाए यहा से दी गईं और निवेदन प्रसारित किया गया। उन व्यवस्थाओ और निवेदन को मेरी अन्तरात्मा आज भी सघहितार्थ उचित मानती है। अत पुन चतुर्विध सघ को सावधानी दिलाता हूँ कि दी गई व्यवस्था और निवेदन को अमली रूप देता-दिलाता हुआ रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति व शासनोन्नति मे किचिदपि असावधानी एव प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायो को सदा ध्यान मे रखे-

1 शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशाति सभावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति समाज राष्ट्र एव विश्व की शाति सभावित नहीं।
2 गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग विकास और शाति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।
3 भगवान महावीर की निर्ग्रंथ श्रमण सस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।
4 वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों का जहा हनन होता हो परिवर्तन किया जाता हो समय के नाम से पचमहाव्रतधारी मुनिजीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो वहा किचिदपि सहयोग न दिया जाये।
5 शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरों के प्रति शुद्ध श्रद्धा भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनि जीवन के लिए तो दूर मानव-जीवन के लिये भी कलकस्वरूप है। अत कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना न बचाव करना न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

उपाचार्यश्रीजी द्वारा व्यक्त किये गये उद्‌गारो के पश्चात् प र मुनिश्री नानालालजी म सा ने सक्षेप मे उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की व्याख्या करते हुए फरमाया कि सयम रक्षणार्थ पूज्यश्री का अपवाद मार्ग म गमन करने का प्रसग उपस्थित हो रहा है। फिर भी आपश्री ने जो अविधियुक्त शल्यचिकित्सा सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित्त न कर लेने तक वदन न करने का फरमाया है वह पूज्यश्री जैसे महापुरुषों की महानता का द्योतक है।

अनन्तर आपने प्रार्थना करते हुए उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे निवेदन किया कि मैं सदा ही आपश्री की आज्ञाओ का पालन करता रहूँगा।

श्रावक समुदाय की ओर से श्री जवाहरलालजी मुणोत ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे निवेदन किया कि विश्वास दिलाते हैं कि हम सब एकमत होकर आपके आदेशो का पालन करते रहेगे और आपके जीवनकाल में ही वह समय निश्चित आयेगा जब शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु आपश्री द्वारा किये गये प्रयत्न सफल होकर रहेगे। समाज को आपश्री के नेतृत्व की जरूरत है और हमें विश्वास है कि ऑपरेशन सफल होगा एव आपश्री का वरद नेतृत्व हम लोगो को बराबर प्राप्त रहेगा।

उपाचार्यश्रीजी के व्याख्यान के अविकल भाव इस प्रकार हैं–

'सर्वप्रथम मैं मेरे अन्त करण से अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके उनके प्रति अपने अन्तस्थभाव व्यक्त करता हूँ कि भगवन्तो ! मैं आपके यथार्थ स्वरूप को अपनी अल्पमति के कारण पूरा समझ नहीं पाया हूँ और किसी भी प्रकार से अनन्तभवो से लेकर आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा कोई भी अविनय आसातना हुई हो तो क्षमा प्रदान करें। मैं मनसा वाचा कर्मणा अन्तरात्मा द्वारा अनन्त सिद्ध भगवतो से माफी चाहता हूँ, आपका सदाकाल शरण हो।

'इसके पश्चात् अरिहन्त भगवन्तो से अत्यन्त विनय भावपूर्वक हार्दिक प्रार्थना है कि वीतराग भगवन्तो ! आप द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को समझने में प्ररूपणा मे स्पर्शना आदि मे किसी भी प्रकार की त्रुटि हुई हो एव अनन्त तीर्थकरों के शासन की प्रकारान्तर से भी जरा भी अविनय आसातना अपराध आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा हुआ हो उसके लिये मैं वारम्बार मनसा याचा कर्मणा क्षमा मागता हूँ। आपका भव-भव मे शरण हो।

'तदनन्तर चतुर्विध सघ से कहना चाहता हूँ कि मेरे जन्म का यह 70वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी 54 वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लेने के बाद मेरा चतुर्विध सघ से विशेष सपर्क रहा है।

'जब श्रीसघ ने व परमप्रतापी आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने स्व पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म के सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे कन्धो पर रख दिया था तब प्रतापी तेजस्वी महापुरुषों के आसन पर बैठते हुए उन महापुरषों की अपेक्षा अपनी कमजोर स्थिति का अनुभव हुआ

था। फिर भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म की आज्ञा को स्वीकार करना और श्रीसघ के आग्रह पर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझकर मैंने भार को ग्रहण किया।

'इसके पश्चात् सादडी में वृहत्साधु-सम्मेलन ने भी मेरी सेवा लेनी चाही। मेरी इच्छा नहीं होने पर भी श्रमणवर्ग के आग्रह को मैं टाल नहीं सका।

'मैंने शासनोन्नति के लिये सम्यक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ जो भी उचित जान पड़ा वह आज दिन तक कर्तव्यदृष्टि को सामने रखकर किया जिस पर मुझे आज भी सात्त्विक गौरवानुभूति है। यथोपयोग कर्तव्यदृष्टिपूर्वक आत्मसाक्षी से सघहितार्थ किये गये कार्यों से भी यदि किसी को चोट पहुची हो तो उस सम्बन्ध मे मेरा इतना ही कहना है कि मेरी भावना किसी के हृदय को चोट पहुचाने की नहीं रही है बल्कि वीतराग देव की पवित्र साधु-सस्कृति की शुद्धता सदा अक्षुण्ण रहे इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं।

श्रमण सघीय या शास्त्रीय समाचारी तथा उसके सरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाए यहा से दी गई और निवेदन प्रसारित किया गया। उन व्यवस्थाओ और निवेदन को मेरी अन्तरात्मा आज भी सघहितार्थ उचित मानती है। अत पुन चतुर्विध सघ को सावधानी दिलाता हूँ कि दी गई व्यवस्था और निवेदन को अमली रूप देता-दिलाता हुआ रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति व शासनोन्नति मे किचिदपि असावधानी एव प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायों को सदा ध्यान में रखे-

1 शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशाति सभावित है। इस आधार के विना व्यक्ति समाज राष्ट्र एव विश्व की शाति सभावित नहीं।
2. गुण और कर्म के अनुसार वर्ग विभाग विकास और शाति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।
3 भगवान महावीर की निर्ग्रंथ श्रमण सस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।
4 वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तो का जहा हनन होता हो परिवर्तन किया जाता हो समय के नाम से पचमहाव्रतधारी मुनिजीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो वहा किचिदपि सहयोग न दिया जाये।
5 शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरों के प्रति शुद्ध श्रद्धा भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनि जीवन के लिए तो दूर, मानव जीवन के लिये भी कलकस्वरूप है। अत कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना, न बचाव करना न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

6 शुद्ध आत्मीय समता के चरमविकास का लक्ष्यबिन्दु अन्त करण मे सदा बना रहे एव तदनुरूप सम्यकज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता साधना को यथाशक्ति जीवन मे उतारना यानी कार्यान्वित करना।

7 श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभाति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

8 श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरो से अपने-आप को दूर रखने मे तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने मे अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा पूरा ज्ञान रखे। जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने में तथा स्वय अपने श्रावकोचित कर्तव्यपालन करने मे भलीभाति सफल हो सके।

9 निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता में नहीं किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है। उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण चाहे अल्प मात्रा मे भी क्यों न हो उन्हीं से निर्गन्थ श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सकता है। अत स्वगृहीत प्रतिज्ञाओं को भलीभाति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

'जहा सच्चे श्रमण नहीं पहुच सकते हैं और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहा पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषयो की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ-साथ अहिसादि मर्यादाओ का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासन-सेवा मे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके।

'मैं जिसको ह्रदय से सत्य मानता हूँ, उसका आदेश उपदेश आदि के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियो से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य तथा न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार विमर्श चर्चा आदि का प्रसग भी आया है। उस समय भी जहा तक उपयोग रहा है वहा तक मेरा व्यक्तियों के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र समझा है और अब भी समझता हूँ।

फिर भी मैं तो आत्मा की विशेष शुद्ध्यर्थ चतुर्विध सघ को तथा 84 लक्ष योनि जीवराशि को–

खामेमि सव्वेजीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूयेसु, वेर मज्झ न केणई।।

'इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत क्षमापना करता हुआ–

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

'इसके साथ मेरी आत्मा को जोडने के लिये वीतराग प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

'मैंने ससार त्याग करके अनन्त आनन्दघनस्वरूप तथा स्व पर-प्रकाशस्वरूप आत्मा के चरमविकास की अखड ज्योति की परम साधना के लिये जो भागवती दीक्षा अगीकार की उस भागवती दीक्षा के मुख्य अग सम्यक ज्ञान-दर्शन चारित्र रूप सयम हैं। सयम-आराधना मे यह शरीर सहायक रूप है। एतदर्थ इसको स्वस्थ रखना भी आवश्यक है।

'जावरा चातुर्मास मे मेरे शरीर मे असातावेदनीय का उदय हुआ और उस असाता ने आज तक कई रूप दिखाये। व्याधि के उग्र आक्रमण को भी मैं अपनी पूरी शक्ति से शान्त रहकर सहन करने का आज दिन तक प्रयत्न करता रहा हूँ। औषधोपचार भी किया गया। मगर औषधि का कोई स्थायी परिणाम नहीं हुआ बल्कि अब तो इस असाता का आक्रमण पहले से अधिक उग्रतापूर्वक होने लगा है। जिससे कभी कभी सयमाराधना में बाधा हो जाती है।

'यद्यपि डाक्टर लोग कई महीने पूर्व ही इस निर्णय पर पहुच चुके थे कि मेरे शरीर के वर्तमान रोग-निवारण का एकमात्र स्थायी उपाय शल्यचिकित्सा है परन्तु मेरी अन्तरात्मा शल्यचिकित्सा के प्रति न पहले राजी थी और न आज है। इसलिये अन्य-अन्य औषधोपचार से ही काम लिया गया।

'मैंने डॉक्टर साहब से यह भी कहा कि यदि इस व्याधि के आक्रमण से होने वाली असमाधि तपस्या द्वारा रुक सकती हो चाहे उसमें थोड़ा कष्ट भी सहन करना पड़े तो भी मैं दृढतापूर्वक एकान्तर व बेला बेला की तपस्या करते हुए एक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन समाधिपूर्वक भगवद्-भजन म व्यतीत करना श्रेयस्कर समझता हूँ। मगर डाक्टरो का कहना है कि यह व्याधि रही तो असमाधि होने की विशेष सभावना है जिससे आपकी शाति साधना में बाधा ही उपस्थित होगी।

'डाक्टर लोग अब तो दृढतापूर्वक सम्मति ही नहीं देते हैं बल्कि आग्रहपूर्वक विनती भी

करते हैं कि यदि इस रोग का यथाशीघ्र निवारण नहीं हुआ तो यह रोग अपना उग्ररूप धारण करेगा और समय बीत जाने पर फिर शल्यचिकित्सा भी उपयोगी नहीं रहेगी।

'इधर उदयपुर आदि श्रावक सघो ने गभीरता से विचार करने के बाद एकमत होकर तथा समाज के अन्य प्रमुख श्रावकगणो ने आग्रहपूर्वक विनती की है कि 'डाक्टरों के अभिमत को स्वीकार किया जाये। यह शरीर केवल आपका ही नहीं सघ का भी है। स्वस्थ शरीर से ही आपकी साधना और जनहित दोनो सभव हैं। साथ ही मेरे समीपस्थ साधु एव साध्वियों ने भी श्रावक समुदाय के अभिप्राय को दोहराते हुए साध्वोचित भाषा में रोग निवृत्त होने की भावभरी विनती की है।

श्रमणवर्ग एव श्रावक समुदाय तथा विशिष्ट चिकित्सको के अभिप्राय पर चिन्तन मनन करने के पश्चात् सयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा अपवाद मार्ग मे गमन करने का प्रसग आ रहा है। अब तक औषधि आदि के प्रयोग से जो भी प्रायश्चित्त लगा है। उसकी तो मैंने आलोचना कर ली है और भावी शल्यचिकित्सा में जो भी दोष लगेगे उनका भी प्रायश्चित्त लेने के लिये मेरी आत्मा सदा तत्पर है। फिर भी मेरी यह इच्छा है कि जब तक शल्यचिकित्सा सम्बन्धी लगे दोषो का प्रायश्चित्त न कर लू, तब तक मुझे वदन न करें।

'वीतराग प्रभु के सिद्धान्तानुसार पाडित्यमरणपूर्वक आत्मसमाधि के सत्सकल्प अन्त करण में पूर्णरूपेण परिणत हो यही भावना निरन्तर बनी हुई है और भविष्य मे भी इसी तरह सदा बनी रहे यही अन्तर्भावना है।

चतुर्विध सघ के समक्ष अपनी अन्तर्भावना व्यक्त करने के अनन्तर पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा करीब 10 बजे सन्तो के सहारे डोली मे बैठकर अस्पताल के स्वतन्त्र कमरे में पधार गये।

ऑपरेशन के पूर्व हजारों श्रद्धालुओ ने दर्शन किये

दि 24 11 59 को आपरेशन होने के पूर्व डाक्टरो ने एक बार पुन शरीर परीक्षण कर रोगाक्रान्त अग के बारे मे पूरी तरह से अपना समाधान कर लिया था।

आपरेशन तो करीब 11 बजे से प्रारम्भ होने वाला था लेकिन प्रात काल ही अस्पताल के प्रागण मे हजारों श्रद्धालु बधु एकत्रित हो चुके थे और वे एक बार पुन गुरुदेव के दर्शन करने के इच्छुक थे। डाक्टरों ने उनकी भावना का आदर कर पूज्यश्री को पहली मजिल की चादनी पर ले जाने की मुनिवरो को अनुमति दे दी। जनता ने उपाचार्यश्रीजी म सा के दर्शन कर जय जयकार किया और मागलिक श्रवण कराकर पुन उपाचार्यश्रीजी म सा को विश्राम के लिये वापस कक्ष में ले जाया गया।

अव सिर्फ डा श्री वी एन शर्मा के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा हो रही थी। अपने कौशल की सफलता के प्रति दृढ आत्मविश्वास एव उल्लास के साथ करीव 1 15 वजे डा सा ने अस्पताल मे प्रवेश किया। उनके प्रवेश करते ही 'डा शर्मा जिन्दावाद' के घोष से उपस्थिति ने स्वागत किया और डा सा ने स्मित हास्यपूर्वक स्वागत के लिये आभार माना।

जिन दिन उपाचार्यश्रीजी का आपरेशन होने वाला था उस दिन अन्य सभी आपरेशन वद थे। अस्पताल के दूसरे डाक्टर एक ही जगह इकट्ठे हो गये और डॉ शर्मा की प्रतीक्षा कर रहे थे। डॉ शर्मा को विलम्व से आने का कारण पूछा तो उत्तर मिला– मैं प्रतिदिन एक घण्टा भगवान् का नाम लेता हूँ। आज वड़े महात्माजी का ऑपरेशन है इसलिए दो घण्टा तक भगवान् का नाम लिया इसलिए देर हो गई।

ऑपरेशन की सफलता हेतु मुख्यमत्री सुखाड़िया की शुभकामना

डा वी एन शर्मा को आपरेशन की गभीरता गुरुतर दायित्व और अपने शल्यकौशल की शत-प्रतिशत सफलता के लिये आत्मविश्वास था और इसीलिये इस कार्य को सपन्न करने का भार लिया था। जयपुर में राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया से उदयपुर श्रीसघ के प्रतिनिधियो के समक्ष हुए वार्तालाप के अवसर पर भी इस वात को आपने स्पष्ट कर दिया था। वार्त्तालाप उल्लासपूर्ण वातावरण में पूर्ण हुआ था और उसका उपसहार करते हुए श्री सुखाड़ियाजी ने कहा था कि आप एक महान विभूति का ऑपरेशन करने जा रहे हैं। आप अपने कौशल मे प्रवीण हैं फिर भी सावधानी रखे। ऑपरेशन की सफलता से आपको अपरिमित आदर-समान यश प्राप्त होगा। आपकी सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है।

ऑपरेशन कक्ष मे प्रारम्भिक तैयारिया करने मे योग्य व्यक्ति एव चिकित्सक लगे हुए थे। इधर उपाचार्यश्रीजी म सा भी चतुर्विध सघ की व्यवस्था सम्वन्धी आदेश आदि देकर एव शास्त्रीय पद्धति के अनुसार ऐसे समय मे की जाने वाली विधि करके सागारी सथारा लेकर ऑपरेशन कक्ष मे पधार गये। ऑपरेशन-कक्ष के वाहर एक दो सतो और कतिपय प्रमुख श्रावको के सिवाय अन्य सव अपने-अपने योग्य स्थान पर लौट आये।

आपरेशन सफल, जनता को अपार हर्ष

करीव 11 वजे ऑपरेशन प्रारम्भ हुआ। डाक्टर न्याति क्लोरोफार्म सुघाने के साथ साथ नाड़ी हृदय की गति आदि देखने में तत्पर थे। अन्य सहयोगी डाक्टर आवश्यकतानुसार शल्य उपकरण देने का ध्यान रख रहे थे। डा वी एन शर्मा रोगग्रथि को विलग करने मे दत्तचित्त थे। निस्तब्धता के वातावरण में सिर्फ नेत्र सकेतों से अवसरानुकूल प्रवृत्ति द्वारा

ऑपरेशन चल रहा था। क्षण-क्षण में ऑपरेशन की स्थिति की सूचना बाहर उपस्थित जनसमूह को दी जा रही थी।

करीब दो घटे मे आपरेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। डाक्टरों को अपने श्रम के प्रति पूर्ण सन्तोष था। यथावश्यक मरहम पट्टी आदि करने के पश्चात् करीब 3 बजे डा बी एन शर्मा ने प्रागण मे उपस्थित जनसमूह के समक्ष आकर आपरेशन के बारे मे सभी जानकारी दी कि बाय गुर्दे में गाठ थी अत उसे पूरा-का पूरा निकाल दिया गया है और परीक्षण के लिये आगरा जयपुर बीकानेर मुबई आदि के अस्पतालो में गाठ के टुकड़े भेजे जायेगे। आपरेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है और मेरा विश्वास है कि गुरुदेव शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करेंगे।

ऑपरेशन की सफलता और स्थिति को जानकर जनता को सतोष हुआ और उपाचार्यश्रीजी म सा के जयघोष के साथ विसर्जित हुई। इस ऑपरेशन में डा श्री बी एन शर्मा के अतिरिक्त सर्वश्री डा ऋषि डा माथुर डा गुप्ता डा शूरवीरसिह डा मुरलीमनोहर, डा न्याति डा नाहर आदि के अलावा उनके अन्य सहयोगियो का भी पूरा सहयोग रहा।

ऑपरेशन के समय शाति जाप आदि होने के अतिरिक्त अनेक व्यक्तिया द्वारा मुक्तहस्त से दान किया गया। जिससे पशुओं को घास दाना गरीबो को भोजन आदि दिया गया।

यद्यपि ऑपरेशन गुरुतर था किन्तु चिकित्सको के आत्मविश्वास एव प्रवीणता से सफल हुआ और सायकाल तक उपाचार्यश्रीजी म सा की स्वास्थ्य-स्थिति मे काफी सुधार दिखलाई देने लगा था।

चिकित्सको का सम्मान

इस गुरुतर कार्य की सफलता के लिये डा शर्मा एव उदयपुर जनरल अस्पताल के अन्य डाक्टरो व उनके सहयोगियो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने एव धन्यवाद अर्पण करने के लिये उदयपुर श्रीसघ की ओर से दि 25 11 59 को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें समाज के अग्रणी प्रमुख-प्रमुख श्रावको ने डा शर्मा का आभार मानते हुए धन्यवाद दिया। अनन्तर ऑपरेशन की सफलता की स्मृति में उदयपुर की मुख्य अस्पताल में वार्ड निर्माण हेतु समाज की ओर से 11 11 100 की थैली भेंट की गई।

डा शर्मा ने भेट को स्वीकार करते हुए कहा कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। मैं तो इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि आप लोगों ने एक उच्च चारित्रवान महात्मा की सेवा का अवसर मुझे दिया। महाराज केवल आपके ही नहीं हैं वे मेरे व सबके हैं। अन्य डाक्टरो ने भी इसी प्रकार के उद्‌गार व्यक्त किये।

श्री जवाहरलालजी मुणोत ने डाक्टर साहब को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री सुखाडिया सा का आभार मानते हैं जिन्हाने महाराज सा के आपरेशन के लिये डा शर्मा सा जैसे सुयोग्य सिद्धहस्त कुशल चिकित्सक की सेवाए उपलब्ध कराने म सहर्ष स्वीकृति दी। डा शर्मा सा तो विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं उन्होने ऐसे महापुरुष को सयम पालने मे योग दिया जिनका चारित्र आदर्श है और समाज जिनका क्रातिकारी नेतृत्व चाहता है।

स्वागतसभा उल्लास एव उत्साहपूर्ण वातावरण मे हुई। 'न हि कृतमुपकार साधव विस्मरन्ति' की उक्ति मे ही सभा की सफलता गर्भित थी। डाक्टरो को अपने प्रति सतोष था कि हम एक महापुरुष की सेवा करने का सुयोग प्राप्त कर अपने कौशल को कसौटी पर परखने मे सफल हुए हैं एव चतुर्विध सघ को विश्वास हो गया कि जनता के श्रद्धेय स्वस्थ होकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये आदेश उपदेश और प्रेरणा देकर हमारे मार्गदर्शक बनेगे। यह उपलब्धि सदैव स्मरणीय रहेगी।

श्रमण सघ की सुदृढता के लिये प्रयत्न

समाज के सौभाग्य से ऑपरेशन के बाद उपाचार्यश्रीजी म सा के स्वास्थ्य मे दिनोदिन सुधार होता गया। अत श्रमण सघ की सुदृढता के लिये पुन प्रयत्न प्रारम्भ किये जाने के बारे मे विचार-चर्चा शुरू हुई कि गत्यवरोध के कारणों का उन्मूलन होकर श्रमण सघ सबल बने। लुधियाना से शिष्टमण्डल के असफल होकर लौट आने के बाद यह धारणा बन चुकी थी कि श्रमण सघ निष्क्रिय और नाममात्र का रह गया है। उसके नियमोपनियम पालन करने के प्रति श्रमणवर्ग मे कोई उत्साह नहीं है। साधुओं द्वारा चतुर्थव्रत के खडन होने की घटनाओं से तो समस्त श्रमण सगठन लडखडा गया था।

उपाचार्यश्रीजी म सा के दर्शनार्थ उन दिनो मे जो भी विचारक सेवा में आते और श्रमण सघीय चर्चा चलती तो उपाचार्यश्रीजी म सा स्वय या आपश्री के आदेश से प र मुनिश्री नानालालजी म सा सारे तथ्यो को उनके समक्ष रखते थे और वे सपूर्ण स्थिति को समझकर उपाचार्यश्रीजी म सा द्वारा दिये गये व्यवस्था सम्बन्धी निर्णयो के प्रति अपना सतोष व्यक्त करके उन्हे सगठन के लिये आवश्यक मानते थे। लेकिन श्रमण सघ बनने के बाद भी मेरे तेरे की भावना साधुओं और उनके अनुयायी वर्ग मे विद्यमान थी। जिससे योग्य बात को भी पक्षपात और व्यामोह से उचित मानने की तैयारी नहीं थी। श्रमण सघ नामक सगठन तो छिन्न भिन्न था ही लेकिन उसका दायित्व लेने के लिये कोई तैयार नहीं था। इन्हीं दिनों श्रमण सघ के गत्यवरोध के निराकरण हेतु उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म सा ने अपनी सप्तसूत्री योजना श्री अ भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरस कार्यालय को भेजी।

कॉन्फरेस के नेताओं की स्थिति समाज मे बहुत ही आक्षेपयोग्य बन गई थी। अत उन्होने इस सप्तसूत्री योजना के आधार पर श्रमण सगठन को सबल बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। दि 23-24 जनवरी 60 को कॉन्फरेंस की साधारण सभा की विशेष बैठक का आयोजन किया गया। उस अवसर पर उपाध्यायश्री की योजना एव उससे सम्बन्धित उपाध्याय एव मत्री मुनियों के अभिप्राय आचार्य उपाचार्यश्री से एव अन्यान्य श्रावक प्रमुखों से हुए पत्र-व्यवहार की जानकारी उपस्थित सदस्यो को दी गई। इसके अनन्तर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बतलाया कि समाज मे सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में दो विचारधाराएँ हैं। एक का अभिप्राय है कि आज तक कॉन्फरेंस ने श्रमणवर्ग के प्रश्नो मे अपनी शक्ति लगाई है इसी कारण कॉन्फरेस सामाजिक कार्यों मे प्रगति नहीं कर सकी। अत कॉन्फरेंस को श्रमणवर्ग के प्रश्नो में पड़ना नहीं चाहिये सिर्फ सामाजिक प्रवृतिया ही करनी चाहिये। दूसरा मत यह है कि श्रमणवर्ग मे जो-जो प्रश्न उपस्थित हों उनको तय करने में कॉन्फरेस को रस लेकर यथाशक्य सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये। कॉन्फरेंस यह कार्य नहीं करेगी तो करेगा कौन ? कॉन्फरेस ने आज तक श्रमणवर्ग के प्रश्न में रस लिया है और रस लेते रहना चाहिये।

उक्त मतव्यो के बारे मे अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होने कहा कि श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जो उनके अन्तरग जीवन को स्पर्शते हैं। जैसे कि श्रमणवर्ग की समाचारी व अन्तरग आचारादि विषय उनके अन्तरग जीवन को स्पर्शते हैं और इन प्रश्नों का निर्णय श्रमणवर्ग स्वय करे यह इच्छनीय है परन्तु श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रत्याघात श्रावकवर्ग पर भी पड़ता है। ऐसे प्रश्नों में श्रावकवर्ग को भी रस लेना चाहिये और सन्तोषप्रद निर्णय लेने के लिये शक्य प्रयत्न करना चाहिये।

जैन-शासन में चतुर्विध सघ की रचना है और चारों ही तीर्थ परस्पर सकलित हैं अत एक भी वर्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके सिवाय शास्त्रो मे तो श्रावकों को अम्मापियरो माना गया है। अत श्रमणवर्ग के प्रश्नों मे श्रावकों को रस लेना चाहिये और श्रावको की प्रतिनिधि सस्था कॉन्फरेस को सक्रिय कार्रवाई करनी चाहिये।

वर्तमान मे श्रमणवर्ग मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है और संगठन टूटनें जैसा वातावरण दिख रहा है उसकी जड़ में श्रमण सघ मे प्रवर्तमान ऊचनीच के भेदभाव की भावना मुख्य है। 'हमारे आचार ऊचे दूसरे हमसे चारित्रपालन में नीचे' ऐसी मान्यता अभी तक कतिपय श्रमणों में चलती है और उसके फलस्वरूप सगठन के दृढ़ होने की अपेक्षा विघटन जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है। श्रमण सघ में अभी जो विवादास्पद प्रश्न पैदा हुए हैं और अनिर्णीत हैं इनके मूल में उक्त प्रकार का मानस ही कार्य कर रहा है।

इस द्व्यर्थक वक्तव्य का आशय स्पष्ट था कि श्रमण सघ के समक्ष समाधान के लिये उपस्थित ज्वलत प्रश्नो और उनके बारे म उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा दी गई व्यवस्था से समाज का ध्यान हटाकर उनको मुनिवरो के अपने को ऊचा और दूसरे को नीचा मानने के रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। जिससे शिष्टमडल की असफलता के प्रति व्याप्त रोष का रुख उपाचार्यश्री या मुनिवरो की ओर बदल जाये और समाज पुन सगठन हेतु नये सिरे से प्रयत्न करने के लिये कॉन्फरेस को आग्रह करे और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा अभी तक किये गये प्रयत्ना की ओर ध्यान ही न दिया जाये। इसी को ध्यान म रखते हुए उक्त अवसर पर प्रस्ताव भी पारित किया गया। जिसका साराश यह है– इस कमेटी को यह जानकर गहरा दु ख और खेद होता है कि अधिकारी मुनिराजो के मतभेद के कारण श्रमण सघ की स्थिति निर्वल हो रही है। जिससे समस्त स्थानकवासी जैन समाज को वहुत हानि हो रही है। यह जनरल कमेटी श्रमण सघ के मुनिवरो से आग्रहपूर्वक विनती करती है कि वे अपने मतभेद मिटाकर श्रमण सघ की व्यवस्था सगठित और कार्यशील वनाये। इस पुण्यकार्य मे जो मुनिराज और श्रावकगण सहयोग देते हैं उनका यह कमेटी स्वागत करती है।

आज की जनरल कमेटी श्रमण सघ क समस्त स्थानकवासी जैनों के हित मे समाज की एकता चाहती है। इस कार्य के लिये निम्न सज्जनों की एक प्रभावक समिति नियुक्त करती है। यह समिति पुन भगीरथ पुरुपार्थ करके स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति के लिये श्रमण सघ मे ऐक्य दृढ़ करने का प्रयत्न करे। इस समिति के प्रयत्न के वाद समिति की रिपोर्ट के वाद पुन यह समग्र प्रश्न आगामी जनरल कमेटी के समक्ष विचारार्थ पेश करे।

1 श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया अहमदनगर
2 चिमनलालभाई चकुभाई शाह मुवई
3 श्री मोहनमलजी चोरड़िया चैन्नई
4 श्री अचलसिहजी (कॉन्फरेस प्रमुख) आगरा
5 श्री गिरधरभाई दफ्तरी मुवई
6 श्री छगनमलजी मूथा वेगलोर
7 श्रीमती केशरवेन जौहरी पालनपुर

इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमण सघ में आगत निर्वलता का मुख्य कारण मुनिवरो का आपसी मतभेद है और उसे दूर करने का प्रयत्न करने के लिये समिति कार्रवाई करे। जवकि वात ऐसी नहीं थी। श्रमण सघ की अपनी व्यवस्था थी और उसके अनुसार ही श्रमण सघ के उलझे प्रश्नों के निराकरण एव शिथिलाचार के काडो से समाज में व्याप्त

कॉन्फरेस के नेताओ की स्थिति समाज म वहुत ही आक्षेपयोग्य बन गई थी। अत उन्होने इस सप्तसूत्री योजना के आधार पर श्रमण सगठन को सबल बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। दि 23-24 जनवरी 60 को कॉन्फरेस की साधारण सभा की विशेष बैठक का आयोजन किया गया। उस अवसर पर उपाध्यायश्री की योजना एव उससे सम्बन्धित उपाध्याय एव मत्री मुनियों के अभिप्राय आचार्य-उपाचार्यश्री से एव अन्यान्य श्रावक प्रमुखों से हुए पत्र-व्यवहार की जानकारी उपस्थित सदस्यों को दी गई। इसके अनन्तर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बतलाया कि समाज में सम्बन्धित प्रश्नो के बारे मे दो विचारधाराएँ हैं। एक का अभिप्राय है कि आज तक कॉन्फरेस ने श्रमणवर्ग के प्रश्नो में अपनी शक्ति लगाई है इसी कारण कॉन्फरेस सामाजिक कार्यों में प्रगति नहीं कर सकी। अत कॉन्फरेंस को श्रमणवर्ग के प्रश्नो मे पडना नहीं चाहिये सिर्फ सामाजिक प्रवृतिया ही करनी चाहिये। दूसरा मत यह है कि श्रमणवर्ग मे जो-जो प्रश्न उपस्थित हों उनको तय करने म कॉन्फरेस को रस लेकर यथाशक्य सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये। कॉन्फरेंस यह कार्य नहीं करेगी तो करेगा कौन ? कॉन्फरेंस ने आज तक श्रमणवर्ग के प्रश्न में रस लिया है और रस लेते रहना चाहिये।

उक्त मतव्यो के बारे मे अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होने कहा कि श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जो उनके अन्तरग जीवन को स्पर्शते हैं। जैसे कि श्रमणवर्ग की समाचारी व अन्तरग आचारादि विषय उनके अन्तरग जीवन को स्पर्शते हैं और इन प्रश्नों का निर्णय श्रमणवर्ग स्वय करे यह इच्छनीय है परन्तु श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रत्याघात श्रावकवर्ग पर भी पड़ता है। ऐसे प्रश्नों मे श्रावकवर्ग को भी रस लेना चाहिये और सन्तोषप्रद निर्णय लेने के लिये शक्य प्रयत्न करना चाहिये।

जैन-शासन मे चतुर्विध सघ की रचना है और चारों ही तीर्थ परस्पर सकलित हैं अत एक भी वर्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके सिवाय शास्त्रो में तो श्रावकों को अम्मापियरो माना गया है। अत श्रमणवर्ग के प्रश्नो में श्रावकों को रस लेना चाहिये और श्रावको की प्रतिनिधि सस्था कॉन्फरेस को सक्रिय कार्रवाई करनी चाहिये।

वर्तमान में श्रमणवर्ग मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है और सगठन टूटनें जैसा वातावरण दिख रहा है उसकी जड़ में श्रमण सघ में प्रवर्तमान ऊचनीच के भेदभाव की भावना मुख्य है। 'हमारे आचार ऊचे दूसरे हमसे चारित्रपालन में नीचे' ऐसी मान्यता अभी तक कतिपय श्रमणो में चलती है और उसके फलस्वरूप सगठन के दृढ होने की अपेक्षा विघटन जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है। श्रमण सघ में अभी जो विवादास्पद प्रश्न पैदा हुए हैं और अनिर्णीत हैं इनके मूल में उक्त प्रकार का मानस ही कार्य कर रहा है।

इस द्व्यर्थक वक्तव्य का आशय स्पष्ट था कि श्रमण सघ के समक्ष समाधान के लिये उपस्थित ज्वलत प्रश्नों और उनके बारे में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा दी गई व्यवस्था से समाज का ध्यान हटाकर उनको मुनिवरों के अपने को ऊचा और दूसरे को नीचा मानने के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। जिससे शिष्टमडल की असफलता के प्रति व्याप्त रोष का रुख उपाचार्यश्री या मुनिवरों की ओर बदल जाये और समाज पुन सगठन हेतु नये सिरे से प्रयत्न करने के लिये कॉन्फरेंस को आग्रह करे और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा अभी तक किये गये प्रयत्नों की ओर ध्यान ही न दिया जाय। इसी को ध्यान मे रखते हुए उक्त अवसर पर प्रस्ताव भी पारित किया गया। जिसका साराश यह है– इस कमेटी को यह जानकर गहरा दु ख और खेद होता है कि अधिकारी मुनिराजो के मतभेद के कारण श्रमण सघ की स्थिति निर्बल हो रही है। जिससे समस्त स्थानकवासी जैन समाज को बहुत हानि हो रही है। यह जनरल कमेटी श्रमण सघ के मुनिवरो से आग्रहपूर्वक विनती करती है कि वे अपने मतभेद मिटाकर श्रमण सघ की व्यवस्था सगठित और कार्यशील बनायें। इस पुण्यकार्य म जो मुनिराज और श्रावकगण सहयोग देते हैं उनका यह कमेटी स्वागत करती है।

आज की जनरल कमेटी श्रमण सघ के समस्त स्थानकवासी जैनो के हित मे समाज की एकता चाहती है। इस कार्य के लिये निम्न सज्जनों की एक प्रभावक समिति नियुक्त करती है। यह समिति पुन भगीरथ पुरुषार्थ करके स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति के लिये श्रमण सघ में ऐक्य दृढ करने का प्रयत्न करे। इस समिति के प्रयत्न के बाद समिति की रिपोर्ट के बाद पुन यह समग्र प्रश्न आगामी जनरल कमेटी के समक्ष विचारार्थ पेश करे।

1 श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया अहमदनगर
2 चिमनलालभाई चकुभाई शाह मुबई
3 श्री मोहनमलजी चोरडिया चैन्नई
4 श्री अचलसिहजी (कॉन्फरेस प्रमुख) आगरा
5 श्री गिरधरभाई दफ्तरी मुबई
6 श्री छगनमलजी मूथा बेंगलोर
7 श्रीमती केशरबेन जौहरी पालनपुर

इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमण सघ में आगत निर्बलता का मुख्य कारण मुनिवरों का आपसी मतभेद है और उसे दूर करने का प्रयत्न करने के लिये समिति कार्रवाई करे। जबकि बात ऐसी नहीं थी। श्रमण सघ की अपनी व्यवस्था थी और उसके अनुसार ही श्रमण सघ के उलझे प्रश्नों के निराकरण एव शिथिलाचार के काडों से समाज में व्याप्त

असतोष को दूर करने के लिये दी गई व्यवस्थाओं का पालन करवाने दोषी व्यक्तियों का निर्मूलन कर शुद्ध वातावरण बनाने की आवश्यकता थी। इस प्रस्ताव से यह उद्देश्य सफल नहीं होने वाला था। इस प्रस्ताव से दोषी व्यक्तियों को सतुष्ट करने का विशेष लक्ष्य रखा गया था।

ऐसे प्रस्ताव तो तभी कार्यकारी हो सकते थे जब निर्दोष को दोषी घोषित किया गया हो अथवा आगमिक मर्यादाओ के प्रतिकूल किसी प्रकार का निर्णय दिया गया हो। ये दोनों बात तो थी ही नहीं अत ऐसे प्रस्ताव समस्या को उलझाने वाले एव मूल बात को दूसरे रूप मे प्रस्तुत करने वाले सिद्ध होते हैं। जबकि होना यह चाहिये था कि सगठन की शुद्धता के लिये दिये गये आदेशो व व्यवस्थाओ का पालन करवाने के लिये प्रयत्न कर समाज का वातावरण दोषी व्यक्तियो को उच्छृखल खेलने न देता। लेकिन इससे विपरीत प्रक्रिया ही अपनाई गई।

अगर इसी बात को और स्पष्ट के रूप मे कहा जाय तो वस्तुस्थिति यह है कि कुछ साधुओ ने साधुवेष मे रहकर ब्रह्मचर्य भग जैसी हरकते कीं और उनके गुट का भण्डाफोड हुआ जिससे समाज को नीचा दिखाने का प्रसग आ रहा था। उस समय कॉन्फरेस के वरिष्ठ नेताओ ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के चरणो मे प्रार्थना की कि आपश्री इन सबका फैसला देकर समाज के गौरव को सबल बनाइये। तब उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा ने उन दोषी साधुओ के विषय मे अधिकारी मुनिवरो के परामर्शपूर्वक निर्णय दिये जिनको सभी ने स्वीकार किया। लेकिन जब अमली रूप देने का प्रसग आया तब उन काण्डा से कुछ औरों के भी सम्बन्धित होने से राजनीतिक ढग से कुत्सित गुटबदिया बनाकर अमली रूप देने में गोलमाल करने लगे। यहा पर कॉन्फरेस का कर्तव्य था कि इन सब गुटबदियों का विरोध कर सभी को सही मार्ग दिखाना लेकिन कॉन्फरेस म न सक्रियता थी न सत्य को सत्य रूप में स्थापित करने की भावना।

इसके अतिरिक्त ध्वनि-यत्र आदि की जटिल समस्याओं के विषय म भी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने अधिकारी मुनिवरा के परामर्श से सुलझाने वाली स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया और उसको स्वीकार कर लिया। लेकिन कुछ निहित स्वार्थी तत्वों ने उसमें भी गडबड़ी पैदा कर दी और पुन समाज को अन्धकार में रखने के लिए अनेक तरह के प्रयत्न किये गये। उनका परिमार्जन करने के लिए कॉन्फरेंस के नताओं को पत्र दिखाये। इस पर उन्होंने स्पष्टरूप से उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा के चरणों में स्वीकार किया था कि यहा पर कोई त्रुटि नहीं है। आपश्री ने जो व्यवस्थाए दी हैं वे समाज के लिए हितावह हैं और इस प्रकार के प्रयास से ही समाज का शिथिलाचार दूर होगा। सगठन मजबूत बन

सकेगा। लेकिन जिन व्यक्तियो ने आपश्री की व्यवस्था मे गडवड़ी की है उन व्यक्तियो को हम समझाने का प्रयास करना चाहते हैं आदि कहकर समझाने का प्रयास करने के लिए शिष्टमडल भी वनाया गया लेकिन शिष्टमडल के दृढतापूर्वक कार्य करने की क्षमता अति-कमजोर बन गई और हतोत्साह होकर शिष्टमण्डल लौट आया। इसलिये कॉन्फरेस के प्रति समाज का उपेक्षा भाव दिनोदिन वढता गया एव सत्य को स्वीकार करके उसे दृढतापूर्वक समाज के समक्ष रखने की शक्ति कॉन्फरेंस के नेताओ मे न रही।

कॉन्फरेस की प्रतिष्ठा गिरी

कॉन्फरेस के कुछ नेता लोगो ने किसी तरह से अपनी प्रतिष्ठा वनाने के लिए सत्य स्थिति को तोड़-मरोडकर ऊच-नीच आदि के व्यर्थ वाक्यों का प्रयोग किया। जिससे सैद्धान्तिक स्थिति और वस्तुस्थिति से जनता का ध्यान हट जाये और येन-केन-प्रकारेण कॉन्फरेस व उसके वरिष्ठ नेताओ को प्रतिष्ठा वनी रहे। लेकिन यह स्थिति समाज भलीभाति समझता था। इसलिए कॉन्फरेस की कमेटी के प्रसग पर भूमिका के रूप मे श्री चिमनलाल चकूभाई शाह आदि के वक्तव्य एव पारित प्रस्ताव आदि का समाज पर कोई असर नहीं हुआ वल्कि यह कहने लगा कि अपनी गलती को छिपाने के लिए यह सब-कुछ किया जा रहा है। यही कारण है कि उसके पश्चात् कॉन्फरेंस की प्रतिष्ठा अत्यधिक गिरती गई। कॉन्फरेंस के नेता अन्त मे तो प्राय उसका अनुभव करने लगे थे लेकिन उसको प्रगट करने में सकोच करते रहे। फिर भी समय-समय पर कुछ शब्द निकल ही जाते थे। जैसे कि कॉन्फरेस की जनवरी 67 मे हुई जनरल कमेटी के अवसर पर कॉन्फरेस के उपाध्यक्षश्री सौभाग्यमलजी जैन ने अपने वक्तव्य मे कहा था कि–

'स्थानकवासी जैन समाज मे एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरेस की समाज में उतनी मान्यता आज नहीं है कि जितनी स्वर्गीय उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. के श्रमण सघ के पृथक होने के पूर्व थी।

कॉन्फरेस की जनरल कमेटी ने अपना प्रस्ताव पारित कर लिया था। अव उसके अनुसार कुछ-न कुछ कार्रवाई करने के लिये दि 16.2.60 को कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की वैठक में शिष्टमडल को प्रयत्न करने की सूचना देने का निश्चय किया गया। कॉन्फरेस के अध्यक्ष ने देश के विभिन्न क्षेत्रो का प्रवास कर समाज की भावनाओं को समझने का प्रयास किया। लेकिन शिष्टमडल ने अभी तक अपने प्रयत्न प्रारम्भ नहीं किय थे। इस प्रकार यह अव्यवस्था की कूटग्रथि जैसी की-तैसी वनी हुई थी और उसकी ओर दखने का किसी को समय नहीं था। यह सच है कि जव सत्य वात भी कूटनीति के चगुल में फस जाती है तो उसको लवे समय तक टालते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता है।

ऑपरेशन के पश्चात् प्रायश्चित्त सम्बन्धी घोषणा

आपरेशन के पश्चात् पूज्य उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षा उत्तरोत्तर सुधार पर था और साध्वोचित क्रियाओं का भी यथापूर्व अप्रमत्तभाव से अनुसरण करने लगे थे तथा यथाशीघ्र आपवादिक स्थिति मे लगे दोषों का प्रायश्चित्त कर लेना चाहते थे।

इस विषय में शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेने में उपाचार्यश्रीजी म सा स्वय स्वतन्त्र थे। लेकिन उनकी यह महानता थी कि अपने से दीक्षा मे और पद मे छोटे उपाध्यायश्री आनन्दऋषिजी म व बहुश्रुत प रत्न मुनिश्री समर्थमलजी म को आलोचना भेजकर प्रायश्चित्त लेने के बारे में राय मागी। उन्होने 'प्रायश्चित्त लेने मे आप समर्थ होते हुए भी छोटे मुनिवरों से जो राय माग रहे हैं यह आपकी महानता है' आदि लिखाते हुए चार मास के तप अर्थात् गुरुचौमासी की सूचना करवाई। इस गुरुचौमासी में तप और छेद दोनो आते हैं लेकिन उनका इशारा तप की तरफ था। फिर भी आचार्यश्रीजी म सा ने चार मास का छेद प्रायश्चित्त लिया जो तप की अपेक्षा अधिक भारी होता है। तदनुसार ता 9 4 60 स 2017 महावीर जयन्ती के दिन सघ के समक्ष आपवादिक स्थिति में लगे दोषो का शुद्धिकरण करने के लिए दोनों मुनिवरो की राय बताते हुए छेद प्रायश्चित्त ग्रहण किया और साथ ही सेवा में रहने वाले सतो को भी यथायोग्य प्रायश्चित्त दिया।

प्रायश्चित्त लेने सबधी घोषणा करने के पूर्व सर्वप्रथम उपाचार्यश्रीजी म सा ने सयमी जीवन के सम्बन्ध मे विशद विवेचन किया। पश्चात् प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में भाव व्यक्त किये-

'मेरे असातावेदनीय कर्म के उदय से मेरी जो-कुछ भी स्थिति बनी वह समाज के सामने है। जिस परिस्थिति के अन्दर मुझे ऑपरेशन के लिये बाध्य होकर आपवादिक स्थिति मे गमन करना पड़ा उस प्रसग पर आपरेशन के एक दिन पूर्व मैं अपना वक्तव्य आप जनता के समक्ष दे चुका हूँ।

'चतुर्विध सघ की शुभकामनाए मेरे साथ थीं और सातावेदनीय का उदय हुआ जिससे मेरा स्वास्थ्य आज पूर्वापेक्षा ठीक है और मैं आज आप लोगो के समक्ष इस अवस्था मे बैठा हूँ।

ऑपरेशन के निमित्त विवशता से कुछ क्रियाए लगीं। फलत सयमी मर्यादाओं में दोष लगा। ऑपरेशन के बाद डाक्टरों के अभिप्रायानुसार डीप एक्सरे भी लेना पड़ा। उस सबका शुद्धिकरण मैं जनता के सामने करना चाहता हूँ।

आज महावीर स्वामी का जन्मदिन है। जनता की उपस्थिति भी अच्छी है। अत मैं स्पष्ट करता हूँ कि आपवादिक हालत में ऑपरेशन सम्बन्धी जो भी दोष लगा उसकी मैं शुद्धि करता हूँ।

'इसके लिये मैंने प रत्न उपाध्यायजी आनन्दऋषिजी म से व बहुश्रुत प रत्न समर्थमलजी म से अभिप्राय मगवाये। दोनो मुनिवरों ने गुरुचौमासी के लिये अपना अभिप्राय दिया। गुरुचौमासी का मतलब उत्कृष्ट 120 उपवास अथवा चार मास का छेद होता है।

'मैं समस्त चतुर्विध सघ के सामने अपनी शुद्धि के लिये चार मास का दीक्षाछेद रूप प्रायश्चित्त लेता हूँ। तदनुसार जो सभोगी सत मेरे से मेरी निश्चित दीक्षा तिथि से एक दिन से लेकर चार महीने छोटे हैं वे मेरे से बडे गिने जायगे। पहले वे मुझे वदन करते थे पर अब मैं उनका वदन करूगा क्योंकि अब मैं उनसे छोटा हो गया हूँ।

'मेरी इस रुग्ण-अवस्था मे मेरे लिये सतो को पथ्य आदि के लिये जो भी लाना पडा उसमे कभी उनको निर्दोष नहीं मिला तो परिस्थितिवश जो कोई भी दोष लगा हो उसके लिये मैं उनको 120 उपवास का दण्ड देता हूँ।

'इसके अतिरिक्त जिन्होंने मेरे साथ ऐसी परिस्थिति मे केवल सभोग रखा उनको मैं चार-चार उपवास का दड देता हूँ।

कूटनीतिक प्रयास श्रमण सघ की स्थिति और उलझी

श्रमण सघ की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न अवश्य चालू किये गये लेकिन वास्तविकता को परे रखने से श्रमण सघ की स्थिति को और अधिक उलझाने के प्रयत्न किये जा रहे थे।

श्रमण सघ की अव्यवस्था के मुख्य तीन प्रश्न थे– ध्वनि-यत्र विषयक निर्णय 'सुत्तागमे' में होने वाले सूत्रों के पाठान्तरो को रोकने बाबत पाली शिथिलाचार काड के निर्णय को कार्यान्वित करना। लेकिन ये तीनो प्रश्न तो अब गौण बना दिये गये और आचार्य-उपाचार्य के मतभेदों को मुख्यता दी जा रही थी। मूल प्रश्न से ध्यान हटाने के लिये पहले से ही प्रयत्न चालू हो गये थे जिनका सकेत दिनाक 23-24 जनवरी 60 को मुबई मे हुई कॉन्फरेस की विशेष साधारण सभा में पारित प्रस्ताव और उनके सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये विचारो से मिलता है।

इसके अनन्तर दिल्ली मे 23-24 अप्रैल 60 को कॉन्फरेंस की ओर से आयोजित वृहत् जैन कार्यकर्ता सम्मेलन व गोलमेज परिषद मे व्यक्त विचारों से भी इसकी पुष्टि होती है। गोलमेज परिषद मे पारित प्रस्ताव का मुख्य अश इस प्रकार है–

...श्रमण सघ के प्रमुख अधिकारियों मे और विशेषकर पूज्य आचार्यश्रीजी एव पूज्य उपाचार्यश्रीजी के बीच कितनी ही बातो मे मतभेद हो गया और गलतफहमी बढती गई।

श्रमण सघ की व्यवस्था को बनाय रखना तो मुनिराजा और श्रमण सघ के अधिकारियो

का दायित्व है। इस परिषद को हार्दिक खेद और दुख होता है कि प्रमाण में साधारण सी दिखने वाली बातो मे यह मतभेद तीव्र हुए हैं और परिस्थिति विषम हुई है। यह परिषद दृढता से मानती है कि इन मतभेदों का निराकरण कर श्रमण सघ के कार्यों में आगत शिथिलता और अवरोध को दूर करने का उत्तरदायित्व मुख्यतया पूज्य आचार्यश्रीजी और पूज्य उपाचार्यश्रीजी पर ही है। श्रमण सघ के प्रमुख मुनिवरो उपाध्याय मुनिवरों और मत्री मुनिराजो को शीघ्र ही इस कार्य मे सहायता देनी चाहिए।

ध्वनिवर्धक यत्र-प्रयोग के प्रस्ताव सबधी मतभेदो को दूर करने के लिये तत्काल आवश्यक स्पष्टीकरण करके उत्पन्न विषमता को दूर करना चाहिये।

'यह स्पष्ट है कि शिथिलाचार को कोई भी उत्तरदायित्वपूर्ण मुनि अथवा श्रावक प्रोत्साहित नहीं करना चाहता किन्तु पचमहाव्रतो का पालन और सामान्य नियमों का पालन, इन दोनो की वास्तविकता के प्रमाण को भी ध्यान में रखना आवश्य है।

'इन सबको लक्ष्य मे रखकर पूज्य आचार्यश्रीजी और पूज्य उपाचार्यश्रीजी से अपने मतभेदों को दूर करने के लिये यह परिषद आग्रहपूर्वक अभ्यर्थना करती है और साथ ही इस कार्य में सहयोग देने की प्रमुख मुनिराजो से विनती करती है।...

इसी प्रस्ताव मे यह भी उल्लेख था कि सवत्सरी तक मतभेदो का निराकरण न हो तो आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों और श्रावको की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लें। इसका आशय यह था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के वैधानिक आदेशों और वैध उपायो की अवहेलना कर प्रकारान्तर से उनकी अवगणना करके सिद्धान्त और चारित्रहीन थोथे सगठन को टिकाये रखने के लिए एव समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने का प्रयास हो।

इस प्रकार के वक्तव्य देना और प्रस्ताव पारित करना सिर्फ अपनी गलती को महसूस न करके दूसरों पर उत्तरदायित्व डालने आदि से जनता को गुमराह करने का कुटिल प्रयास राजनीतिक तरीको से पैंतरा बदलना कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण का परिणाम ही यह हुआ कि शनै-शनै श्रमण सघ का अनुशासन भग होता गया और साधु-सतों को यथेच्छ प्रवृत्ति करन का अवसर मिलता रहा। इससे श्रमण सघ की विस्फोटक परिस्थिति दिनोंदिन गभीर बनती गई।

आचार्य-उपाचार्य के मतभेद मिटाने की प्रार्थना करना निरर्थक था। वस्तुत उपाचार्यश्री का मतभेद क्या था ? उपाचार्यश्री तो हर निर्णय अधिकारी मुनिवरो के परामर्शपूर्वक करते थे। उपाचार्यश्रीजी द्वारा प्रदत्त निर्णयों को अमली रूप देना कॉन्फरेंस के अधिकारियों का कर्तव्य था और जो अमली रूप देने में बाधक तत्त्व थे उनको गोलमेज परिषद द्वारा निरस्त करना था। लेकिन ऐसा नहीं करके श्रमण सघीय परिस्थितिया पर विचार किये बिना गोलमेज परिषद द्वारा किया गया निर्णय निर्बल विचारों का पोषक ही कहा जाएगा।

श्रावकवर्ग और साधुवर्ग यह अच्छी तरह से मानता है कि श्रावक को श्रावकधर्म और साधु को साधुधर्म का पालन करना चाहिये लेकिन अन्धश्रद्धा और धार्मिक भावुकता की ओट मे बढ़ने वाले स्वच्छन्दाचार के कारण श्रमण-जीवन की स्थिति निर्बल होना पूज्य और पूजक दोनो के लिये भयावह है। उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा इस भयावह स्थिति के परिणामो से चतुर्विध सघ को परिचित कराकर निर्ग्रथ श्रमण-परम्परा की सुरक्षा के साथ श्रमण सघ को मजबूत बनाने मे प्रयत्नशील थे। जबकि समाज के कतिपय कार्यकर्ता इस ओर लक्ष्य न कर नाममात्र के श्रमण सघ की रट लगाते थे। उनका मतव्य था कि जैसे-तैसे श्रमण सघ का नाम बना रहे। इसी विचारधारा को केन्द्रविन्दु मानने का यह परिणाम हुआ कि वे उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की विचारधारा के मूल तक नहीं पहुच पाये और उसका कुछ इस प्रकार रूप बनाया गया कि मानो श्रमण सघ को खडित करने मे उपाचार्यश्रीजी के आदेश कारण-रूप हैं।

लेकिन जो साध्वाचार की मर्यादाओ से परिचित हैं तथा जिन्हे श्रमणधर्म का ज्ञान है वे उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के निर्णयो को आवश्यक सवैधानिक एव उपादेय मानते थे। लेकिन ऐसे मर्मज्ञ सख्या मे अल्प थे। बहुमत की दृष्टि से अल्पमत हेय उपेक्षणीय रहता है और यही वात इनके लिये भी हुई। उनकी सत्य एव तथ्यपूर्ण बात को सुनने का किसी को अवकाश नहीं था और अवकाश भी हो तो अपने पूर्वाग्रह से निर्मित विचारो को बदलने का साहस नहीं था।

विवाद मरुधरकेशरी के गले की फास बना

तपस्वी मुनिश्री सूरजमलजी म सा विहार करते हुए रामगढ पधारे। उधर मरुधरकेशरीजी म सा खवासपुरा चातुर्मासार्थ विहाररत थे और उनका भी रामगढ पधारना हुआ। तपस्वी श्री सूरजमलजी म सा श्रमण सघ की वर्तमान दशा से व्यथित थे। उन्होंने सहज-सरल भाव से मरुधरकेशरीजी से निवेदन किया– उपाचार्यश्रीजी म एव आपश्रीजी के मध्य जो मतभेद चल रहे हैं उन्हें समाप्त कर दीजिए ताकि श्रमण सघ में शान्ति का निर्माण हो जाए। मरुधरकेशरीजी ने कहा– 'मैंने तो श्रमण सघ का वातावरण विगाड़ा नहीं। जिन्होने विगाड़ा है वे ही सुधार सकते हैं। वस्तुत श्रमण सघ का वातावरण मरुधरकेशरीजी के साथ रहने वाले एक सदस्य के कारण बिगडा था। मरुधरकेशरीजी उसे सुधारना चाहते थे परन्तु विवाद उनके गले की फास बन चुका था। उपाचार्यश्रीजी को जब इस चर्चा की जानकारी हुई तो उन्हे भी विचार आया कि पक्षपात से ऊपर उठकर अगर सैद्धान्तिक आधार पर विचार किया जाय तो समाधान सहज ही सभव है। पर उपाचार्यश्री की भावना को नजरअन्दाज करके कार्य किया गया जो अन्तत श्रमण सघ की एकता को ले डूबा।

शिष्टमडल का परिभ्रमण

आचार्यश्रीजी म सा का ऑपरेशन के पश्चात् स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था। थोडा बहुत घूमना भी प्रारम्भ हा चुका था। स 2017 के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक सघो के प्रतिनिधिमडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेषकाल के लिये भी उन क्षेत्रो की ओर विहार हो सके और उदयपुर श्रीसघ की बार-बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ही आत्म-साधना करते हुए हमें ज्ञान ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोनों स्थितियों को देखते हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार समय-समय पर उदयपुर के उपनगरों में विहार कर पुन नगर के मध्य स्थित पचायती नोहरे मे पदार्पण करते थे।

स 2017 के चातुर्मास मे उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमण सघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी दि 23 24 अप्रैल 60 को कॉन्फरेंस की ओर से आयोजित गोलमेज परिषद के पारित प्रस्तावानुसार सवत्सरी तक श्रमण सघ के गत्यवरोध का निराकरण सभव नहीं हो सका था।

सवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्यवाई करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजो एव श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी को देने का सकेत किया गया था।

अत इस सकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी शीघ्र बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजों व श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जावे। इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि 24 25 सितम्बर 60 को मुबई में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक करने एव प्रमुख मुनिराजो की सेवा मे श्रावकों का शिष्टमडल भेजने का निश्चय किया गया।

शिष्टमडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म.सा एव उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म से मिला और आचार्यश्री आत्मारामजी म की सेवा में भी उपस्थित होना था लेकिन वहां क्यों नहीं गया आज तक ज्ञात नहीं हो सका। दिनाक 19.9.60 को दिल्ली में होने वाली कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा से आश्चर्य

समिति की बैठक के बाद शिष्टमडल पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा की सेवा

मे भी उपस्थित होने वाला था कि इसी बीच अन्दर-ही अन्दर जोड-तोड़ करने वाले तत्त्वो ने दि 15 9 60 को आचार्यश्री आत्मारामजी म सा से श्रमण सघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के अधिकार लेने सम्बन्धी निम्नलिखित अवैधानिक घोषणा प्रकाशित करवाई—

श्रमण सघ की व्यवस्था करने हेतु सन् 1952 में जो अधिकार मैंने उपाचार्यश्रीजी म सा को दिये थे वे अधिकार सघ-एकता और सघ-शाति की दृष्टि से सघ को अखडित रखने के लिये वापस लेता हूँ और जब तक साधु-सम्मेलन न हो तब तक श्रमण सघ के उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म प्रातमत्री श्री पन्नालालजी म तथा प्रान्तमत्री श्री शुकलचन्दजी म—इन पाच मुनिराजो की कार्यवाहक समिति को सौंपता हू जो प्रायश्चित्त आदि श्रमण सघ सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करेगी। इस समिति का कार्य सचालन उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म करेगे। मुझे आशा है कि श्रमण सघ के मन्त्रिमडल तथा समस्त मुनि महाराज एव महासतीजी म कार्यवाहक समिति को श्रमण सघीय प्रत्येक कार्य में सक्रिय सहयोग देंगे।

लुधियाना
15 9 60

रामरतनलाल
प्रेसीडेन्ट एस एस जैन ब्रादरी लुधियाना

शिष्टमडल के उदयपुर प्रस्थान करने तक भी उक्त अवैधानिक घोषणा की जानकारी चतुर्विध सघ को नहीं हो सकी थी। शिष्टमडल दि 19 9 60 को दिल्ली से प्रस्थान कर अजमेर ब्यावर गुलाबपुरा विजयनगर होते हुए उदयपुर पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ। शिष्टमडल मे सर्वश्री सेठ अचलसिहजी आगरा सेठ मोहनमलजी चोरडिया चैन्नई सरदारमलजी काकरिया कोलकाता खीमचदभाई वोरा मुबई धीरजलालभाई तुरखिया चिमनलाल चकूभाई मुबई सेठ छगनमलजी मूथा बेगलौर जवाहरलालजी मुणोत अमरावती और श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम आदि सज्जन सम्मिलित थे। शिष्टमडल की श्रमण सघ सबधी प्रश्नो के प्रत्येक पहलू पर चर्चा हुई। शिष्टमडल के समक्ष श्रमण सघ की समस्याए और उनके सम्बन्ध मे उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की विचारधारा स्पष्ट थी। आपश्री शास्त्रीय मर्यादाओ और साध्वाचार के विपरीत अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सुविधा के नाम पर ऐसा कोई भी समाधान नहीं चाहते थे जिससे श्रमण सस्था मे अनाचार स्वैराचार को प्रश्रय मिले। उनकी एक ही भावना थी कि साधु साधु रहे उसकी निष्ठा साधुता के प्रति हो और चतुर्विध सघ मे अकर्मण्यता को प्रसार का मौका न मिले।

शिष्टमडल के समक्ष इन्हीं सब बातो को स्पष्ट कर दिया गया था। शिष्टमडल

शिष्टमडल का परिभ्रमण

आचार्यश्रीजी म सा का ऑपरेशन के पश्चात् स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था। थाडा-बहुत घूमना भी प्रारम्भ हो चुका था। स 2017 के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक सघो के प्रतिनिधिमडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेषकाल के लिये भी उन क्षेत्रों की ओर विहार हो सके और उदयपुर श्रीसघ की बार-बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ही आत्म साधना करते हुए हमें ज्ञान ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोनों स्थितियो को देखते हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसार समय-समय पर उदयपुर के उपनगरों में विहार कर पुन नगर के मध्य स्थित पचायती नोहरे मे पदार्पण करते थे।

स 2017 के चातुर्मास में उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमण सघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी दि 23 24 अप्रैल 60 को कॉन्फरेंस की ओर से आयोजित गोलमेज परिषद के पारित प्रस्तावानुसार सवत्सरी तक श्रमण सघ के गत्यवरोध का निराकरण समव नहीं हो सका था।

सवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्रवाई करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों एव श्रावको की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी को देने का सकेत किया गया था।

अत इस सकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी शीघ्र बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजों व श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जावे। इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि 24 25 सितम्बर 60 को मुबई में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक करने एव प्रमुख मुनिराजों की सेवा में श्रावकों का शिष्टमडल भेजने का निर्णय किया गया।

शिष्टमडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म सा एव उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. से मिला और आचार्यश्री आत्मारामजी म की सेवा मे भी उपस्थित होना था लेकिन वहां क्यों नहीं गया आज तक ज्ञात नहीं हो सका। दिनाक 19.9.60 को दिल्ली में होने वाली कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की बैठक म शिष्टमडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा से आश्चर्य

समिति की बैठक के बाद शिष्टमडल पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा

में भी उपस्थित होने वाला था कि इसी बीच अन्दर ही-अन्दर जोड़-तोड़ करने वाले तत्त्वो ने दि 15 9 60 को आचार्यश्री आत्मारामजी म सा से श्रमण सघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के अधिकार लेने सम्बन्धी निम्नलिखित अवैधानिक घोषणा प्रकाशित करवाई–

श्रमण सघ की व्यवस्था करने हेतु सन् 1952 में जो अधिकार मैंने उपाचार्यश्रीजी म सा को दिये थे वे अधिकार सघ-एकता और सघ-शाति की दृष्टि से सघ को अखडित रखने के लिये वापस लेता हूँ और जब तक साधु-सम्मेलन न हो तब तक श्रमण सघ के उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म प्रातमत्री श्री पन्नालालजी म तथा प्रान्तमत्री श्री शुकलचन्दजी म–इन पाच मुनिराजो की कार्यवाहक समिति को सौंपता हू जो प्रायश्चित्त आदि श्रमण सघ सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करेगी। इस समिति का कार्य सचालन उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म करेगे। मुझे आशा है कि श्रमण सघ के मन्त्रिमडल तथा समस्त मुनि महाराज एव महासतीजी म कार्यवाहक समिति को श्रमण सघीय प्रत्येक कार्य मे सक्रिय सहयोग देगे।

लुधियाना

15 9 60 रामरतनलाल

प्रेसीडेन्ट एस एस जैन ब्रादरी लुधियाना

शिष्टमडल के उदयपुर प्रस्थान करने तक भी उक्त अवैधानिक घोषणा की जानकारी चतुर्विध सघ को नहीं हो सकी थी। शिष्टमडल दि 19.9 60 को दिल्ली से प्रस्थान कर अजमेर ब्यावर गुलाबपुरा विजयनगर होते हुए उदयपुर पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ। शिष्टमडल म सर्वश्री सेठ अचलसिहजी आगरा सेठ मोहनमलजी चोरड़िया चैन्नई सरदारमलजी काकरिया कोलकाता खीमचदभाई वोरा मुवई धीरजलालभाई तुरखिया चिमनलाल चकूभाई मुवई सेठ छगनमलजी मूथा बगलौर जवाहरलालजी मुणोत अमरावती और श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम आदि सज्जन सम्मिलित थे। शिष्टमडल की श्रमण सघ सबधी प्रश्नो के प्रत्येक पहलू पर चर्चा हुई। शिष्टमडल के समक्ष श्रमण सघ की समस्याए और उनके सम्बन्ध मे उपाचार्यश्री गणशलालजी म सा की विचारधारा स्पष्ट थी। आपश्री शास्त्रीय मर्यादाओ और साध्वाचार के विपरीत अथवा द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की सुविधा के नाम पर ऐसा कोई भी समाधान नहीं चाहते थे जिससे श्रमण-सस्था म अनाचार स्वैराचार को प्रश्रय मिले। उनकी एक ही भावना थी कि साधु साधु रहे उसकी निष्ठा साधुता के प्रति हो और चतुर्विध सघ मे अकर्मण्यता को प्रसार का मौका न मिले।

शिष्टमडल के समक्ष इन्हीं सब बातो को स्पष्ट कर दिया गया था। शिष्टमडल

शिष्टमडल का परिभ्रमण

आचार्यश्रीजी म सा का ऑपरेशन के पश्चात् स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था। थोडा-बहुत घूमना भी प्रारम्भ हो चुका था। स 2017 के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक सघो के प्रतिनिधिमडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेषकाल के लिये भी उन क्षेत्रो की ओर विहार हो सके और उदयपुर श्रीसघ की बार-बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ही आत्म-साधना करते हुए हमें ज्ञान-ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोनों स्थितियो को देखते हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार समय-समय पर उदयपुर के उपनगरों में विहार कर पुन नगर के मध्य स्थित पचायती नोहरे म पदार्पण करते थे।

स 2017 के चातुर्मास मे उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमण सघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी दि 23 24 अप्रैल 60 को कॉन्फरेंस की ओर से आयोजित गोलमेज परिषद के पारित प्रस्तावानुसार सवत्सरी तक श्रमण सघ के गत्यवरोध का निराकरण सभव नहीं हो सका था।

सवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्रवाई करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों एव श्रावको की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी को देने का सकेत किया गया था।

अत इस सकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फरेस की जनरल कमेटी बैठ बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजों व श्रावको की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जाये। इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि 24 25 सितम्बर 60 को मुबई में कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक करने एव प्रमुख मुनिराजों की सेवा में श्रावकों का शिष्टमडल भेजने का निर्णय किया गया।

शिष्टमडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म सा एव उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म सा से मिला और आचार्यश्री आत्मारामजी म की सेवा म भी उपस्थित होना था लेकिन वहा क्यों नहीं गया आज तक ज्ञात नहीं हो सका। दिनाक 19.9 60 को दिल्ली में होने वाली कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा से आश्चर्य

समिति की बैठक के बाद शिष्टमडल पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा की सेवा

'वातावरण की शुद्धि और भविष्य मे कार्य की सरलता के लिय पूज्य आचार्यश्री व पूज्य उपाचार्यश्री की तरफ से भीनासर सम्मेलन के बाद जो परस्पर निवेदन प्रगट हुए हैं जिनमे पूज्य आचार्यश्री की तरफ से ता 15 सितम्बर 60 के रोज हुई घोषणा का तथा पूज्य उपाचार्यश्री की तरफ से उनके 22 9 60 को दिये गये उत्तर का समावेश होता है– वे सब तुरन्त ही वापस लेने की यह जनरल कमेटी पूज्य आचार्यश्री व पूज्य उपाचार्यश्रीजी को आग्रहपूर्वक विनती करती है।

इस अश से स्पष्ट हो जाता है कि जनरल कमेटी ने श्रमण सघ के गत्यवरोध के निराकरण में वास्तविकता को छिपाकर परिस्थिति को बिगाडने मे और अधिक योग दिया। इसी कारण सदस्यो द्वारा प्रस्ताव का विरोध हुआ और सिर्फ बहुमत के बल पर पारित कराकर श्रमण सघ की खाई और चौडी कर दी।

घोषणा की अवैधानिकता के सम्बन्ध मे प्रकाश

श्रमण सघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि 15 9 60 को आचार्यश्री आत्मारामजी म द्वारा प्रसारित घोषणा क्या श्रमण सघ के विधान के अनुकूल थी या नहीं और क्या आचार्यश्री आत्मारामजी म ऐसी घोषणा करने के अधिकारी भी थे या नहीं ? एतद्विषयक कुछ तथ्यो पर प्रकाश डालते हैं।

सादडी मे श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ की स्थापना विभिन्न सप्रदायो के एकीकरण पारस्परिक प्रेम और ऐक्यवृद्धि करने एव सयममार्ग मे उत्पन्न विकृतियो को दूर करने के उद्देश्य से हुई थी। उस अवसर पर श्रमणवर्ग मे वृद्ध और जैनागमो के ज्ञाता होने से पूज्यश्री आत्मारामजी म के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शन हेतु श्रमण सघ ने उनको सिर्फ सम्मान के लिये आचार्य नियुक्त किया था। साथ ही उनकी शारीरिक अक्षमता को दृष्टि में रखते हुए पूज्यश्री गणेशलालजी म. को आचार्य के समस्त अधिकारों के साथ उपाचार्य नियुक्त किया और श्रमण सघ के सचालन का उत्तरदायित्व उन्हे सौंपा था। अत आचार्यश्री आत्मारामजी म की उक्त घोषणा श्रमण सघ मे प्रारम्भ से विद्यमान उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की वैधानिक स्थिति को प्रभावित करने मे निष्फल एव निष्क्रिय थी।

इसी बात की पुष्टि श्रमण सघ के विधान की धाराओं और कार्रवाई तथा उसमें भाग लेने वाले सतो के विचारो व श्रावको की ओर से उपस्थित श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के मतव्य से भी होती है।

श्रमण सघ के विधान की धारा 1 2 इस प्रकार हैं-

1-इस श्रमण सघ के एक आचार्य रहेंगे जिनकी नेश्राय में सघ के सब साधु -साध्वी रहेंगे।

उपाचार्यश्री के विचारा से सहमत था। शिष्टमडल के सदस्यों ने आपस में भी चर्चा वार्ता की और निश्चय किया कि आगामी दि 24 25 सितम्बर 60 को मुबई में होने वाली कॉन्फ्रेंस की जनरल कमेटी की बैठक मे पूज्यश्री गणेशलालजी म सा के विचारो के अनुकूल कार्रवाई करने का निर्णय किया जाये।

श्रमण सघीय गत्यवरोध के निराकरण के लिये आचार्यश्री आत्मारामजी म द्वारा की गई अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध में उदयपुर श्रीसघ के सदस्यों ने जब शिष्टमडल के प्रमुख सदस्य श्री चिमनलाल चकूभाई शाह से जानकारी चाही तो उनकी भाव भगिमा से प्रतीत हुआ कि कम-से-कम घोषणा के सम्बन्ध मे उनको कुछ भी जानकारी नहीं है और न ऐसा करने म उनका हाथ है। शिष्टमडल के रुख से ऐसा दिखा कि मुबई पहुचते ही उक्त घोषणा को वापस लिवाने का प्रयत्न करेगा। उदयपुर से शिष्टमडल रतलाम होते हुए मुबई रवाना हो गया।

जनरल कमेटी का अवैधानिक प्रस्ताव

दि 24 25 सितम्बर 60 को कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी में श्रमण सघ के गत्यवरोध के बारे मे चर्चा हुई। किसी ने कहा कि इसके बारे मे अपने माने हुए दायरे की दृष्टि से विचार न कर समस्त समाज व श्रमण सघ को दृष्टि मे रखकर विचार करे तो किसी ने कहा कि पुराना भूल जाये और फिर नई कार्रवाई प्रारम्भ की जाये तो यह प्रश्न बड़ी सरलता से सुलझ सकता है। इन विचारों का साधारण आशय यह हुआ कि अभी तक श्रमण सघ के सगठन को निर्बल बनाने वाले प्रश्नों पर किसी प्रकार का विचार न किया जाये और संगठन की आड़ में चलने वाले पापाचार पर पर्दा डाल दिया जाये। सगठन के नाम पर हुई अवैधानिक घोषणा भी बरकरार रहे और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा से प्रार्थना की जाये कि वे पूर्ववत् श्रमण सघ का सचालन करते रहें। लेकिन उक्त विचारों के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि क्या अवैधानिक कार्रवाई के साथ वैधानिक परम्परा का सुमेल बन सकता है ? क्या अवैधानिकता से उत्पन्न उच्छृखल स्थिति मे वैधानिक नियमो का पालन होता रहेगा ?

इस चर्चा से एक और तथ्य सामने आया कि शिष्टमडल का लुधियाना न जाना एक नाटक ही था तथा अवैधानिक घोषणा करवाने में कॉन्फरेस के अग्रणी सज्जनों का हाथ अवश्य था। अन्यथा जो श्री चिमनलाल चकुभाई शाह उदयपुर मे कह गये थे कि घोषणा को वापस लिवाने के लिये प्रयत्न करेग वे ही जनरल कमेटी के समक्ष भ्रमात्मक प्रस्ताव न रखते जिसमे अवैधानिक घोषणा के साथ सवैधानिक न्याय नीति युक्त आदेशों को भी वापस लेने का उल्लेख किया गया था। तत्सम्बन्धी अश इस प्रकार है–

उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखते हुए उनसे यह काम का बोझ उठाया नही जा सकेगा। उसके लिये साथ-साथ उपाचार्य की नियुक्ति की। यह करने का कारण ही बधारण कलम 2 मे दिया हुआ है। यह उनका मतव्य न होता तो साथ-साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति करने की जरूरत न थी। आचार्यश्री फिलहाल (वर्तमान समय में) अपना काम सम्हालने योग्य होते तो उपाचार्य की नियुक्ति तावडतोड करने की जरूरत न थी। .....परन्तु यहा तो वर्तमान परिस्थिति मे ताबड़तोड ही आचार्य की नियुक्ति के साथ उपाचार्य नियुक्त हुए इससे आचार्यश्री को सम्मान का स्थान दिया गया। परन्तु कार्य करने का सब अधिकार उपाचार्यश्री को ही है यह बात पृष्ठ 56 कलम 2 मे स्पष्ट है। पृष्ठ 60 पर जो बात लिखी गई है वह वर्तमान समय में लागू न होते हुए भविष्य मे कोई आचार्य वृद्धावस्था के कारण अथवा अन्य कारणो के सबब से आचार्य का पूरा काम सम्हालने में स्वत को समर्थ न समझे तो वे उपाचार्य की नियुक्ति मत्रिमडल की सलाह से कराकर कुछ अधिकार और कार्यक्षेत्र उनको दे सकते हैं।

इस वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण से वर्तमान और भविष्य की दोनो दृष्टिया स्पष्ट हो जाती हैं एव वर्तमान मे आचार्यश्री द्वारा अधिकार देने-लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी सम्बन्ध मे मत्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी के विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उन्होने कॉन्फरेस को दिये गये उत्तर में व्यक्त किये थे–

'बधारण की द्वितीय धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्यश्री की नियुक्ति आचार्यश्री की अति वृद्धावस्था व कार्य करने की अक्षमता से हुई है। यदि आचार्यश्री कार्य करने मे सक्षम होते तो प्रथम धारा के अनुसार उपाचार्यश्री की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। इस दृष्टि से कार्यवाहक तरीके उपाचार्यश्री ही माने जा सकते हैं जैसे राजस्थान के महाराजप्रमुख व राजप्रमुख। उपाचार्य के कर्तव्य और अधिकार की धारा साररहित है।

इस स्पष्टीकरण से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्यश्री का पद सम्मान की दृष्टि से है और उपाचार्यश्री ही श्रमण सघ के सचालन के लिये अधिकारसम्पन्न हैं। अत आचार्यश्री की अवैधानिक घोषणा का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और न वैसा करने का उन्हें कोई अधिकार ही था।

आचार्यश्री के विचारो मे उपाचार्यश्री के अधिकार

अब स्वय पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म के विचार भी उपस्थित करते हैं। जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे स्वय अपने को श्रमण सघ के सचालन मे योग देने वाला नहीं मानते

2-आचार्यश्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में अक्षम हों तो मंत्रिमडल उपाचार्य नियुक्त करेगे और उपाचार्यजी आचार्यजी के सब अधिकार सम्हालेंगे।

आचार्य आत्मारामजी म की घोषणा मूल्यहीन

पूज्य आत्मारामजी म को सम्मान की दृष्टि से आचार्य नियुक्त अवश्य किया गया था किन्तु उनके अक्षम होने से सघ-सचालन के लिये सभी अधिकारो के साथ उसी समय उपाचार्य पद (वस्तुत जिसमे शाब्दिक भेद है किन्तु आचार्य पद के पूर्ण अधिकार थे) पर पूज्यश्री गणेशलालजी म सा को प्रतिष्ठित कर प्रस्ताव स 21 के अनुसार उपाचार्य पद की चदर स 2009 वैशाख शुक्ला 13 बुधवार को दिन के 11 बजे सादड़ी में पूज्यश्री गणेशलालजी म सा को ओढ़ाई गई थी तथा उपस्थित मुनियों ने आपश्री के चरणों में प्रतिज्ञापत्र भेट किये थे। इससे सिद्ध हो जाता है कि आचार्यश्री आत्मारामजी म को श्रमण सघ के सचालन की व्यवस्था अथवा उसके सम्बन्ध मे हस्तक्षेप करने के अधिकार नहीं थे। अत आचार्यश्री आत्मारामजी म की इस अवैधानिक घोषणा का न तो कोई मूल्य था और न उसको करने के वे अधिकारी ही सिद्ध होते हैं।

विधान की धाराओं और उनकी पालना के उल्लेख के पश्चात् कुछ और तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्यश्री आत्मारामजी म सम्मान की दृष्टि से ही आचार्य थे और सघ-सचालन की सत्ता उनमें निहित नहीं थी।

साधु सम्मेलन के पश्चात् पजाब से आचार्य उपाचार्य के पद व अधिकारों के सम्बन्ध में कुतर्क उठाये गये तब कॉन्फरेंस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री चपालालजी बाठिया ने श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो श्रावको की ओर से साधु-सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेते थे को पत्र लिखकर इस सम्बन्ध में पूछा। प्रत्युत्तर म श्री फिरोदियाजी ने अहमदनगर से दि 19 6 52 को पत्र द्वारा स्पष्टीकरण किया। पत्र का सम्बद्ध अश इस प्रकार है–

उपाचार्य-अधिकार के सम्बन्ध मे फिरोदियाजी के विचार

'मुख्य प्रश्न यह है कि जब यह सब बना तब बनाने वाले का हेतु क्या था ? प्रस्ताव न 18 के अनुसार आचार्य और उपाचार्य इन दोनों की नियुक्ति मुनिराजों ने की है।— पजाबसघ के मत्री श्री कृष्णकातजी ने जो अर्थ निकाला है कि उपाचार्य का पद यों ही है —इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। आचार्यश्री आत्मारामजी महाराज अभी मौजूदा जो मुनिराज हैं उनमें से वृद्ध अनुभवी और ज्ञानी हैं। इसी सबब से उनकी आचार्य के पद वास्ते पसदगी हुई। परन्तु यह पसन्दगी करने के वक्त पर ही सभी मुनिराजों ने यह सोचा कि

उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखते हुए उनसे यह काम का बोझ उठाया नहीं जा सकेगा। उसके लिये साथ-साथ उपाचार्य की नियुक्ति की। यह करने का कारण ही वधारण कलम 2 मे दिया हुआ है। यह उनका मतव्य न होता तो साथ-साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति करने की जरूरत न थी। आचार्यश्री फिलहाल (वर्तमान समय मे) अपना काम सम्हालने योग्य होते तो उपाचार्य की नियुक्ति तावड़तोड़ करने की जरूरत न थी।... परन्तु यहा तो वर्तमान परिस्थिति मे तावड़तोड़ ही आचार्य की नियुक्ति के साथ उपाचार्य नियुक्त हुए इसस आचार्यश्री को सम्मान का स्थान दिया गया। परन्तु कार्य करने का सब अधिकार उपाचार्यश्री को ही है यह बात पृष्ठ 56 कलम 2 मे स्पष्ट है। पृष्ठ 60 पर जो बात लिखी गई है वह वर्तमान समय मे लागू न होते हुए भविष्य मे कोई आचार्य वृद्धावस्था के कारण अथवा अन्य कारणों के सबब से आचार्य का पूरा काम सम्हालने में स्वत को समर्थ न समझें तो वे उपाचार्य की नियुक्ति मत्रिमडल की सलाह से कराकर कुछ अधिकार और कार्यक्षेत्र उनको दे सकते हैं।

इस वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण से वर्तमान और भविष्य की दोनों दृष्टिया स्पष्ट हो जाती हैं एव वर्तमान मे आचार्यश्री द्वारा अधिकार देने-लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी सम्बन्ध मे मत्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी के विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उन्होने कॉन्फरेंस को दिये गये उत्तर में व्यक्त किये थे–

'वधारण की द्वितीय धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्यश्री की नियुक्ति आचार्यश्री की अति वृद्धावस्था व कार्य करने की अक्षमता से हुई है। यदि आचार्यश्री कार्य करने मे सक्षम होते तो प्रथम धारा के अनुसार उपाचार्यश्री की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। इस दृष्टि से कार्यवाहक तरीके उपाचार्यश्री ही माने जा सकते हैं जैसे राजस्थान के महाराजप्रमुख व राजप्रमुख। उपाचार्य के कर्तव्य और अधिकार की धारा साररहित है।

इस स्पष्टीकरण से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्यश्री का पद सम्मान की दृष्टि से है और उपाचार्यश्री ही श्रमण सघ के सचालन के लिये अधिकारसम्पन्न हैं। अत आचार्यश्री की अवैधानिक घोषणा का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और न वैसा करने का उन्हें कोई अधिकार ही था।

आचार्यश्री के विचारों मे उपाचार्यश्री के अधिकार

अब स्वय पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म के विचार भी उपस्थित करते हैं। जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे स्वय अपने को श्रमण सघ के सचालन मे योग देने वाला नहीं मानते

थे। वे श्रमण सघ का निर्माण हो जाने के निकटवर्ती काल मे यह मानते थे कि श्रमण सघ के सचालन के पूर्ण अधिकार विधान की दृष्टि से उपाचार्यश्री को ही हैं। एक बार कॉन्फरेंस का प्रतिनिधिमडल जब लुधियाना गया था तब आचार्यश्री ने प्रतिनिधिमडल को फरमाया था कि उपाचार्यश्री को सब अधिकार प्राप्त हैं। अत प्राप्त फरियादो पर यथार्थ प्रकार से यथाशीघ्र निर्णय करना चाहिये और करेगे। उसी समय दूसरे प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री ने फरमाया था कि उपाचार्यश्री को इस पर अधिक विचारने का है क्योंकि श्रमण सघ का सक्रिय सचालन आप ही के ऊपर है।

श्रमण सघ के सवैधानिक अधिकारी उपाचार्यश्री थे

उक्त उद्धरण यह स्पष्ट सकेत कर रहे हैं कि श्रावकवर्ग साधुवृन्द और स्वय पूज्य आत्मारामजी म मानते हैं कि श्रमण सघ-सचालन के पूरे अधिकार विधानानुसार पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को प्राप्त हैं। अत आचार्यश्री आत्मारामजी म द्वारा अधिकार लेने-देने सम्बन्धी ता 15.9 60 की घोषणा साररहित है अवैधानिक है और श्रमण सघ की व्यवस्था को खडित करने वाली है।

अब श्रमण सघीय विधान की सम्बन्धित धाराओं के बारे मे भी चर्चा कर देना चाहते हैं। श्रमण सघीय विधान की धारा 2 में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्यश्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में अक्षम हों तो मन्त्रिमडल उपाचार्य नियुक्त करेगा और उपाचार्यश्री आचार्यश्री के सब अधिकार सभालेंगे।" इस धारा में 'तो' और 'सब अधिकार' वाले शब्द बहुत महत्व के हैं। *आचार्यश्री कार्य करने मे अक्षम हो तो ही उपाचार्य की नियुक्ति का विधान किया गया है।* सादड़ी साधु सम्मेलन ने आचार्यश्री की नियुक्ति के साथ साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति की है। इसका स्पष्ट अर्थ ही यह है कि सम्मेलन में एकत्रित सभी प्रतिनिधि मुनिराजों ने आचार्यश्री को कार्य करने में अक्षम मान लिया था और इसीलिये सर्वानुमति से पूज्यश्री गणेशलालजी म सा को उपाचार्य पद पर विभूषित किया। यदि प्रतिनिधि मुनियों का ऐसा मतव्य न होता तो उसी समय ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति की जरूरत न थी। इसलिये पूज्य गणेशलालजी म.सा जब उपाचार्य पद पर विभूषित किये गये तो विधानानुसार श्रमण सघ के सचालन के आचार्य पद के सब अधिकार उपाचार्यश्री को स्वत ही प्राप्त हो गये। यह बात इतनी निर्विवाद है कि और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रहती है।

एक बात का और सकेत कर देना चाहते हैं कि श्रमण सघ के आचार्य उपाचार्य को आजीवन के लिये साधु सम्मेलन में प्रतिष्ठित किया गया था और श्रमण सघ के कार्यसचालन का समस्त अधिकार पूज्यश्री गणेशलालजी म सा को सौंपा गया था। इसलिये आचार्यश्रीजी

म द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ नहीं रहता है। अधिकार किसको है यह पूर्व मे उल्लिखित उद्धरणो से सुस्पष्ट है।

अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध मे उदयपुर श्रीसघ का उत्तर

जब आचार्यश्री आत्मारामजी म का पत्र और अवैधानिक घोषणा श्री वर्धमान स्था जैन श्रावक सघ उदयपुर को प्राप्त हुई तो उसे पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा की सेवा मे उपस्थित कर अपने भाव फरमाने की प्रार्थना की। इस पर उपाचार्यश्रीजी म सा ने जो भाव फरमाये उन का समावेश करते हुए दि 22 9 60 को उदयपुर सघ के मत्री द्वारा लुधियाना सघ के मत्री को निम्नलिखित उत्तर दिया गया–

उदयपुर
दि 22 9 60

सेवामे

श्रीमान् ईश्वरदासजी
मत्री श्री स्थानकवासी श्रावक सघ
लुधियाना।

सादर जयजिनेन्द्र।

आपका पत्र दि 17 सितम्बर 1960 का रजिस्ट्री द्वारा प्राप्त हुआ। उसके साथ आचार्यश्रीजी म सा की घोषणा की नकल भी मिली। मैंने पत्र तथा उस घोषणा की प्रतिलिपि परम श्रद्धेय श्रमण सघ-शिरोमणि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा में उपस्थित कर जिज्ञासा प्रकट की कि क्या आचार्यश्रीजी म को अधिकार देने-लेने सम्बन्धी यह घोषणा सादडी सम्मेलन मे उपस्थित प्रतिनिधि मुनिवरों द्वारा श्रमण सघ सचालन की व्यवस्था सम्बन्धी सर्वानुमति से जो निर्णय हुआ उसके अनुसार है या क्योकर ? तो मेरी प्रार्थना पर उत्तर मे निम्न आशय के भाव फरमाये वे आपके सूचनार्थ लिख रहा हूँ-

'सादड़ी में एकत्रित समस्त प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर श्रमण सघ-सचालन की व्यवस्था हेतु, सर्वानुमति से जो चुनाव किया वह कार्यवाही आप देख सकते हैं। मैं अपने मुह से कुछ कहूँ, इसके मुकाबले तो प्रतिनिधि मुनिवरो ने क्या कहा है उसे ही आप देख ले। जिससे सारी स्थिति आपको स्पष्ट हो जायेगी।

'सम्यग्ज्ञान दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो इस दृष्टि से मैं सादडी सम्मेलन में गया था। अधिकार सबधी मेरी कोई भावना नहीं थी और न मैं इस दृष्टिकोण से ही गया था। परन्तु सादड़ी बृहत्साधु सम्मेलन मे एकत्रित प्रतिनिधि मुनिवरों ने श्रमण सघ-सचालन के लिये मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी मैं श्रमणवर्ग के

आग्रह को नहीं टाल सका। जब श्रमणवर्ग ने मिलकर सर्वानुमति से श्रमण सघ सचालन का भार मुझे सौंपा तो मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण सस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण रखने के लिये सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सरक्षणार्थ आत्मसाक्षी से सघहितार्थ कार्य करू। तदनुसार इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं और श्रमण सघीय व शास्त्रीय समाचारी तथा उसके सरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनि यन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाए दीं और निवेदन प्रसारित किया। उन व्यवस्थाओ और निवेदन को मेरी अतरात्मा आज भी सघहितार्थ उचित मानती है। मैंने निवेदन मे स्पष्ट कहा है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एव श्रमण सघीय समाचारी का तथा उनके सरक्षणार्थ यहा से की गई व्यवस्था का पालन करेगा उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमण सघीय साम्भोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा। मैं उस पर आज भी दृढ़ हूँ।

उपाचार्यश्रीजी म सा द्वारा उपर्युक्त भाव फरमाने पर मैंने उनसे पुन प्रार्थना की कि श्रमण सघीय विधान और नियमानुसार आचार्यश्रीजी द्वारा उपाध्यायों और कुछ मन्त्री मुनिवरों को समान अधिकार के एक स्तर पर लाकर उनकी कार्यवाहक समिति बनाकर श्रमण सघ सम्बन्धी कार्य सौंपना क्या वैधानिक है ? तो उत्तर में भाव फरमाये कि श्रमण सघीय नियम और विधान मे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिये ऐसे कार्य को वैधानिक नहीं ठहराया जा सकता।

इसके बाद मैंने सादड़ी सम्मेलन की आचार्य पद पर नियुक्ति सम्बन्धी कार्यवाही देखी। शायद आपके ध्यान में वह कार्यवाही नहीं हो अत आपकी जानकारी हेतु उस कार्यवाही का सम्बन्धित अश यहा उदधृत कर रहा हूँ।

सादड़ी सम्मेलन में प रत्न उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म.सा ने उपस्थित सभी प्रतिनिधि मुनियो की तरफ से पूज्यश्री गणेशलालजी म के उपाचार्य पद ग्रहण करने के समय पर निम्न वक्तव्य फरमाया-

मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन मे पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं उससे ज्यादा नर्म एव उदार भी हैं।

हमने आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म को नियत किया है परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही येन्द्रित हैं। उनकी साहित्यसेवा से सघ परिचित है। इसी हेतु उनके प्रति श्रद्धा एव सद्भावना प्रगट की गई है परन्तु हमारे विराट सघ को

अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है जो साधु-साध्वीवर्ग और श्रावक सघ मे श्रद्धा और प्रेम की लहर पैदा कर सके। पूज्यश्री गणेशलालजी म ही इस पद के योग्य हैं। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं उसमें भी एकाध व्यक्ति अडे रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियुक्त कर रहे हैं। मुनिमडल आपके शासन की आवश्यकता महसूस करता है। अत मैं निवेदन करूगा आप हमारी तुच्छ विनती को जरूर स्वीकार करेगे।

आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेगे हम उसे मूर्त रूप देगे। बहुत दिनो का बिछुड़ा हुआ सघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है। परन्तु आचार्यश्री ! आप उदार एव अनुभवशील है। ऊची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को समालने के लिये मन्त्रिमडल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य समालेगा। अत मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर ले।

पूज्यश्री के उपाचार्य पद ग्रहण करने के बाद सभी प्रतिनिधि मुनियो की ओर से मरुधरकेशरी मुनि मिश्रीमलजी म ने धन्यवाद निम्न शब्दों मे दिया--

अत्यन्त खुशी का समय है कि आज अखिल भारतवर्षीय स्था जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहा तक पहुचे तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो और हमारे पर नई गिरह क्यों खड़ी करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और सगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात है कि जैन-जगत् के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म ने इस पद को स्वीकार करके हमे कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमडल की ओर से उन्हे कोटिश धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

यह है वह कार्यवाही। इसको पढ़ने के बाद आपको स्पष्ट हो जायेगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म सा की आचार्य पद पर नियुक्ति उनकी साहित्यसेवा के कारण श्रद्धा एव सद्भावना हेतु सम्मान की दृष्टि से हुई है।

श्रमण सघ के कार्य-सचालन का समस्त अधिकार तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा के सक्षम कधों पर ही रखा गया है। इसलिये आचार्यश्री आत्मारामजी म सा द्वारा अधिकार देने लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ ही नहीं रहता है। क्योकि जब आचार्यश्रीजी म सा के पास श्रमण सघ सचालन के कोई अधिकार हैं ही नहीं तो अधिकार देने और लेने का प्रश्न ही कहा उपस्थित होता है ?

आपको विदित रहे कि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. के सन्मुख जब कभी अधिकार सम्बन्धी कोई चर्चा-वार्त्ता आती है तो वे इस विषय में प्राय तटस्थ रहते हैं। क्योंकि वे तो कर्तव्यपालन की दृष्टि को मुख्यता देते हैं। मगर मुझे लगता है कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. की तटस्थता का गलत अर्थ लगाया और सभवत इसी का यह परिणाम है कि आचार्यश्री जैसे ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध महात्मा भी अधिकार की दृष्टि से सोचने और फरमाने लगे हैं।

उपरोक्त विवरण से यह सुस्पष्ट है कि श्रमण सघ के सचालन का कार्यभार सादड़ी सम्मेलन ने पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के सक्षम कन्धों पर ही रखा है।

इस विवरण द्वारा सही स्थिति जानने से उन बन्धुओं को भी सोचने विचारने का अवसर मिलेगा जो सम्भवत अभी तक भ्रम में हों या यह नहीं जान पाये हों कि समाज की इस समय जो स्थिति बनी है और बनाई जा रही है उसका दायित्व किस पर है ? शेष आनन्द है।

आपका

तख्तसिंह पानगड़िया

मन्त्री श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक सघ उदयपुर

उपर्युक्त उत्तर एव पूर्व में उल्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमण सघ मे आचार्यश्री और उपाचार्यश्री का क्या स्थान है और पाठक स्वय निर्णय कर सकेंगे कि पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को श्रमण सघ-सचालन के पूरे अधिकार विधान से प्राप्त थे। अत आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने सम्बन्धी दि. 15.9.60 की घोषणा साररहित है।

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है कि जब आचार्यश्री आत्मारामजी म. को श्रमण सघ की व्यवस्था-सचालन का कोई अधिकार नहीं था तो यह अवैधानिक घोषणा कैसे की ? इसका एक ही कारण हो सकता है कि विरोधीपक्ष या उसके समर्थकों या उनके पृष्ठपोषकों की ओर से आचार्यश्री को उक्त घोषणा निकालने के लिये विवश किया गया है और शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से अशक्त पूज्यश्री आत्मारामजी म. ने उनके प्रभाव में आकर और विधान सम्बन्धी जानकारी होते हुए भी कुत्सित राजनीति की तरह गुटबन्दी बनाकर एवं अपने पूर्वलिखित वचनों का भी ध्यान न रखकर वैसी अवैधानिक घोषणा प्रकाशित कर दी, जो निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की अक्षुण्णता को ठेस पहुंचाने वाली थी।

कॉन्फरेस की जनरल कमेटी के प्रस्ताव पर दृष्टिपात

श्रमण सघीय गत्यवरोध के निवारण के नाम पर दि. 15.9.60 को पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई घोषणा के अवैधानिक होने के कारणों का सकेत करने के अनन्तर भी ऽ

भा श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की दि 24 25 सितम्बर 60 को मुम्बई में होने वाली जनरल कमेटी के प्रस्ताव न 8 पर भी दृष्टिपात कर ले।

प्रस्ताव के मुख्य-मुख्य अश इस प्रकार हैं-

1 ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध मे अपवाद प्रायश्चित्त और स्वच्छन्दता का स्पष्टीकरण कर दिया जाये।

2 मुनि रूपचन्दजी के बारे मे दिये गये निर्णय को अमल में लाया जाये।

3 इसका अन्तिम निर्णय उपाध्यायमडल कॉन्फरेंस के अध्यक्ष से परामर्श करके दो माह के अन्दर दे देंवे। उक्त निर्णय सर्वमान्य रहेगा।

4 श्रमण सघ के विधान मे आवश्यक परिवर्तन करने एव आचार्य उपाचार्य के अधिकारों के स्पष्टीकरण करने एव कितनेक दूसरे सुधार करने की आवश्यकता है। अत इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये पूज्य आचार्यश्री उपाचार्यश्री अथवा उनके प्रतिनिधि मुनियो और मन्त्रिमडल तथा अन्य मुनिराजो के सम्मेलन का आयोजन किया जाये।

5 जब तक यह सम्मेलन न हो तब तक के लिये श्रमण सघ की व्यवस्था उपाध्यायमण्डल द्वारा किये जाने की घोषणा पूज्य आचार्यश्री और पूज्य उपाचार्यश्री की ओर से हो जाये।

6 पूज्य आचार्यश्री की दि 15 9 60 की घोषणा व पूज्य उपाचार्यश्री द्वारा दि 22 9 60 को दिया गया उत्तर वापस ले लिया जावे।

प्रस्ताव की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्ताव श्रमण सघ को सबल बनाने के प्रयत्नों और समस्याओ के समाधान में सहायक है। लेकिन गम्भीरता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म द्वारा दि 15 9 60 को की गई श्रमण सघीय कार्यवाहक समिति के गठन की अवैधानिक घोषणा भी वैध है और तदनुकूल प्रक्रिया अपनायी जाये। यदि इस अवैधानिक घोषणा को वापस भी लेना पड़े तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा द्वारा दि 22 9 60 को की गई घोषणा भी वापस ली जाये।

इस प्रस्ताव का परिणाम यह हुआ कि श्रमण सघ की दिनोंदिन निर्बल होती जा रही व्यवस्था और अधिक तीव्रता से निर्बल होने लगी। सघ मे अनुशासन का नाम न रहा और मुनिमडल को अपनी सुविधानुसार कार्य करने की छूट मिल गई।

किन्हीं किन्हीं महानुभावों ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा को प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करने के नाम पर पदलोलुप आदि कहने में अपने विवेक की इतिश्री कर दी। लेकिन सादडी सम्मेलन से लेकर इस प्रस्ताव के पारित होने तक की कार्यप्रणाली को देखें तो ज्ञात होगा

कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. को न तो पद या अधिकार की पहले चाह थी और न इस समय भी। वे तो श्रमण भगवान महावीर के मार्ग का निर्दोष पालन करने और उनके मार्ग पर चलने वाले दूसरों को भी निर्दोष पालन कराने म सहायक बनने म ही अपना अधिकार मानते थे। इसी को लक्ष्य में रखकर ही श्रमण सघ की व्यवस्था में आगमानुमोदित व्यवस्था देने में तत्पर रहे। यदि ऐसा करना ही अधिकारलिप्सा या पदलोलुपता मानी जाये तो कहना पड़ेगा कि यह उनके अज्ञान की पराकाष्ठा है।

असवैधानिक घोषणा पर समाज की प्रतिक्रिया

पूज्यश्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोषणा से निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति में निष्ठा रखने वाले समाज मे वैसे ही क्षोभ का वातावरण व्याप्त था और कॉन्फरेस की जनरल कमेटी के इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया कि समाज के साथ अन्याय हुआ है। वह नहीं समझ सका कि एक ओर तो प्रकारान्तर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की घोषणा को मान्यता दी जा रही है और उसके साथ ही दूसरी ओर दोनों घोषणाओ को वापस लिये जाने का अनुरोध किया जा रहा है। श्रमण सघ से सम्बन्धित घटनाओ के लिये उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की घोषणाओ को उचित मानते हुए भी घोषणाकर्ता को व्यवस्थानुसार कार्रवाई कराने से विरत किया जा रहा है और उसको पालन करवाने का भार उपाध्यायमडल के मुनिराजों को सौंपने का सकेत किया जाता है। स्थिति की वास्तविकता को समझने वाले समाज के प्रबुद्धवर्ग को खेद ही हुआ और यह खेद प्रस्ताव पारित करते समय भी व्यक्त कर दिया गया था और बाद मे तो विभिन्न श्रावक सघो द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया में कॉन्फरेस से अपना प्रस्ताव वापस लेने की माग की गई थी। लेकिन न तो प्रस्तावको ने और न कॉन्फरेस ने विरोध को समझकर शाति के उपाय किये और न प्रस्ताव पर पुनर्विचार करना योग्य समझा।

कॉन्फरेस का प्रस्ताव उपाचार्यश्रीजी का अभिमत

कॉन्फरेस के पूर्वोक्त प्रस्ताव से चतुर्विध सघ मे रोष व्याप्त था और इस सम्बन्ध में उपाचार्यश्रीजी के विचारो को जानने के लिये उत्सुक ... ।चाय ... ऐसे प्रस्तावों पर मौन रहना ही उचित मानते ... समाज को ... ति से परिचित कराने एव प्रस्ताव के सम्बन्ध मे आपश्री ... जानने के ... श्रावक सघ के बार बार विनती करने पर उपाचाय ... । अपने ... उन्हें जानकारी के लिये ... दि 5 11 60 के ... को ... त्र

उदयपुर
ता 5 11 60

श्रीमान्मान्यवर खीमचन्दभाई वोरा
मन्त्री - श्री श्वे स्था जैन कॉन्फरेंस मुम्बई
सादर जयजिनेन्द्र

अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कॉन्फरेस की ता 24 25 सितम्बर 1960 को मुम्बई मे हुई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि वापिस लेने की उपाचार्यश्रीजी म सा से भी प्रार्थना आदि की।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म ने निम्न आशय के भाव व्यक्त किये हैं कि कॉन्फरेस को मुम्बई जनरल कमेटी द्वारा पारित श्रमण सघ सम्बन्धी प्रस्ताव की अनौचित्यता पर मैं अभी विशेष न कहता हुआ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि श्रमण सघ सम्बन्धी मुम्बई जनरल कमेटी का यह प्रस्ताव ध्वनि-यन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक दी गई व्यवस्थाओ को भग करने के लिये ही पास किया गया है ऐसा आभास होता है। यदि ऐसा नहीं है तो मेरे निवेदन आदि को वापस लेने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता क्योकि ध्वनि-यन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक जानकारी के लिये कॉन्फरेस का शिष्टमण्डल कई बार मेरे पास उपस्थित होकर सारी स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका है और समय-समय पर सतोष व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ– कॉन्फरेस के शिष्टमण्डल ने कपासन मे 4 3 58 को ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचना-पत्र के सम्बन्ध में निम्न विचार लिखित रूप मे प्रकट किये थे–

'ध्वनि-यन्त्र विषयक जो सूचनापत्र ता 16 10 57 को श्रमण सम्पर्क-समिति के सदस्यो के परामर्शपूर्वक उपाचार्यश्रीजी म की ओर से सम्बन्धित सभी अधिकारी मुनियो के पास भेजा गया वह समय-अनुकूल है और शिष्टमण्डल यह भी अनुभव करता है कि भीनासर सम्मेलन के बाद जिन सत सतियो द्वारा ध्वनि-यन्त्र का प्रयोग हुआ हो वे अपनी स्थिति स्पष्ट लिखकर ब्यौरेवार उपाचार्यश्रीजी म के चरणो मे भेजकर आलोयणा करे ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। निवेदक-अचलसिह (अध्यक्ष) मोहनमल चोरडिया कानमल नाहटा।

जावरा जनरल कमेटी ने शिथिलाचार विषयक दी गई व्यवस्था को उचित ठहराते हुए सर्वानुमति से जो प्रस्ताव पास किया वह निम्न-प्रकार है-

'मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्यश्रीजी म ने फरमाया है उसके लिये आचार्यश्रीजी ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये पीछे जाने का प्रश्न ही नहीं रहता है। तथापि आचार्यश्री जो कागजात देखना चाहते हैं वे कागजात कॉन्फरेंस की कमेटी जिसके

नाम श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो सूचित करेंगे वो मान्य होगा वो कमेटी उपाचार्यश्री के पास जाकर उन्हे बता दे व आचार्यश्री से विनती करे कि वे कॉन्फरेस का योग्य मार्गदर्शन करें।

सर्वसम्मति से स्वीकृत।

प्रस्तावक - जवाहरलाल मुणोत

अनुमोदक - खीमचद बोरा

(नोट - रूपचन्दजी सम्बन्धी कागजात शिष्टमण्डल को दे दिये गये।)

इतना हो जाने पर भी मुम्बई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि को वापस लेने का जो प्रस्ताव पास किया है वह आश्चर्यजनक है। कॉन्फरेस का तो यह कर्तव्य था कि जहा से अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ उसको ठीक कराने मे सहायक होती।

मैं अपने निवेदन आदि को आज भी सघहित व सुव्यवस्था के लिये उचित मानता हूँ। अत उसको वापस लेने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है।

रहा प्रश्न जब तक आगामी साधु सम्मेलन न हो तब तक श्रमण सघ की सब कार्यवाही उपाध्यायमडल करे ऐसी घोषणा करने का । सो इस विषय मे मेरा कहना है कि यह विषय श्रमण सघ का होने से कॉन्फरेंस की विनती निराधार है।

-लालचन्द मुणोत

ताकड़िया भवन उदयपुर

इस पत्र से स्पष्ट है कि कॉन्फरेंस ने पूर्व में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा दी गई व्यवस्थाओं को मान्य किया और उनके अनुसार ही कार्रवाई होना वैध माना था। लेकिन ऐसे प्रस्तावो द्वारा उसकी अवहेलना करके श्रमण सघ की स्थिति को त्रिशकु-सा बना दिया।

श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के लिये श्रमण सघ का त्याग

प्रस्ताव के पारित होने से समाज में रोष तो था ही और कॉन्फरेस के अधिकारियों ने समाज की भावनाओं को न समझकर प्रस्ताव उचित है ऐसा करने से ही श्रमण सघ की स्थिति का समाधान हो सकता है आदि के विचार से प्रस्ताव के समर्थन हेतु पत्र पत्रिकाओं में लेखमाला चालू करके उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा पर आक्षेप लगाना प्रारम्भ कर दिया।

उपाचार्यश्रीजी म सा इस स्थिति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचते रहे कि समाज व्यवस्था के लिये अन्य अधिकारी मुनिवरों द्वारा मान्य निर्णयों को ही क्रियान्वित कराने एव समाज के धार्मिक वातावरण को शुद्ध रखने के लिये मेरी व्यवस्थाए हैं। उन्हें प्रमाणित मानते हुए भी

उनका पालन न करके लाछित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो उस स्थिति मे मेरा श्रमण सघ मे रहना सार्थक नहीं है। इस स्थिति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अत दि 30 11 60 को अचानक ही व्याख्यान मे श्रमण सघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके श्रमण सघ से पृथक होने की घोषणा कर दी। घोषणा इस प्रकार है-

'सिद्धान्त व चारित्र के सरक्षणपूर्वक साधुसमाज का सगठन सुदृढ होकर सघ की उन्नति हो इस उद्देश्य को लेकर मैं सादडी (मारवाड) साधु सम्मेलन मे निर्मित श्री वर्धमान स्था जैन श्रमण सघ मे सम्मिलित हुआ था जहा सब प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर मुझको आग्रह से उपाचार्य पद दिया तथा श्रमण सघ के सचालन का कार्यभार सौंपा। मैंने अपनी आत्मसाक्षी एव निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य बजाया।

'उद्देश्य के अनुसार श्रमण सघ का सुसगठन बना रहे जिससे शासनोन्नति हो और जनता की श्रद्धा मे वृद्धि होकर आत्मकल्याण का मार्गदर्शन मिले यह मेरी आतरिक भावना रही और अब भी है। मगर उचित बात को भी अशाति और मताग्रह का रूप देकर भ्रम फैलाया जा रहा है और ऐसा प्रदर्शित किया जा रहा है कि मानो मैं सघ-उन्नति मे गत्यवरोध का कारण हूँ। इस पर मैंने स्वय भी सोचा तो मुझे ऐसा नहीं लगता बल्कि मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं सम्मेलन मे सम्मिलित हुआ था उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है और प्राय यह देखा जा रहा है कि व्यर्थ वाद-विवाद का रूप दिया जाकर अब तो जैनप्रकाश जैसे पत्र के माध्यम से भी भ्रामक प्रचार किया जाने लगा है। मैं ऐसे व्यर्थ के वाद-विवाद मे न पड़ता हुआ वर्तमान परिस्थितियो मे सादडी सम्मेलन मे निर्मित श्रमण सघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण सघ से अलग घोषित करता हूँ।

'रहा प्रश्न श्रमणवर्ग के साथ साभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का सो मुझे जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखने के भाव हैं।

'सादडी सम्मेलन से लेकर अब तक के कार्यकाल मे कर्तव्यदृष्टि से कार्य करने से किसी को दु ख पहुचाने की भावना न होने पर भी जिन किन्हीं सन्त सती व श्रावक-श्राविकाओ का मन दु ख पाया हो तो उसके लिये सबको क्षमाता हूँ।

घोषणा की प्रतिक्रिया

उपाचार्यश्रीजी की उपर्युक्त घोषणा से समस्त समाज को दु खानुभव हुआ। राजनीतिक चाल चलकर उपाचार्यश्रीजी म सा को अपने अनुकूल बना लेने में विश्वास रखने वाले और अधिकार लेने का तीर फेकने वाले भी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पता नहीं था कि उपाचार्यश्रीजी म सा चारित्रसाधना के सरक्षणार्थ बडे से बडा लौकिक सम्मान ठुकरा सकते हैं। सगठन बनाये रखने के लिये सिद्धान्तों पर कुठाराघात सहन नहीं किया जा सकता है।

श्रमण सघ-त्याग की घोषणा पर पुनर्विचार की प्रार्थनाए

उक्त घोषणा पर पुन विचार करने के लिये उपाचार्यश्रीजी म सा की सेवा में श्रमणवर्ग श्रावकवर्ग पत्रकारो आदि ने विनतिया की। उनमे से कुछ-एक का यहा सकेत कर रहे है

प्रान्तमन्त्री श्री पन्नालालजी म उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म ने सयुक्त रूप मे भू.पू. उपाचार्यश्रीजी से अपनी घोषणा वापस लेने की प्रार्थना करते हुए कहा था कि उपाचार्यश्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण सघ से अलग घोषित किया जिसे हम सघ-हितकर नहीं मानते हैं। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुनः सघहित व जिन-शासनोन्नति को लक्ष्य मे रखकर इस पर गम्भीरता से विचार करे और उलझी हुई समस्याओ को परस्पर विचार-विमर्श द्वारा या किसी माध्यम से हल करके सघ के श्रेय के भागी बने।

श्रमण सघ के आचार्यश्री आत्मारामजी म उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म (पुष्फभिक्खू) आदि मुनिवरो की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री श्रमण सघ से सम्बन्ध-विच्छेद के विचारा को वापस ले लें। अनेक श्रावको और श्रावक सघो की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री चतुर्विध सघ को अपने वरदहस्त से वचित न करे।

श्री अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरेंस के मुखपत्र जैन प्रकाश के सम्पादकीय स्तम्भ मे चतुर्विध सघ के समस्त विचारो का सामूहिक रूप से प्रकाशन करते हुए 'क्या श्रमण सघ खडित होगा ? शीर्षक मे आचार्यश्रीजी म सा से निवेदन किया कि .....भू.पू. उपाचार्यश्रीजी म की घोषणा के बारे मे हम विनम्र प्रार्थना कर देना चाहते हैं कि आचार्यश्री और उपाचार्यश्री समाज के सूर्य चन्द्र के समान हैं। उनके अपने अपने दायित्व हैं। श्रमणवर्ग और समाज ने जिस निष्ठा से उन्हे अपना सिरमौर बनाया था तो समाज अब इस मणि से वचित हो जाये क्या ? हमे स्वप्न मे भी विश्वास नहीं होता कि जो भू.पू. उपाचार्यश्रीजी महाराज सघ के निर्माण मे अगुआ थे उससे अलग होने की भी घोषणा कर देंगे। कहीं त्रुटि हुई है अवश्य जिससे समाज के प्रत्येक सदस्य को जिज्ञासा है प्रश्न है कि 'क्या श्रमण सघ खडित होगा ?

'हम अन्त मे समाज-हितैषियों कार्यकर्ताओ श्रावक सघो के पदाधिकारियों पत्रकारों और श्रावक श्राविकाओं से अपील करते हैं कि वे श्रमण सघ और इसके गत्यवरोधों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाकर उसके सरक्षण सपोषण का उत्तरदायित्व श्रमण सघीय मुनिराजों पर ही छाड़ दें और इस प्रकार का वातावरण बनायें कि जल्दी से जल्दी किसी केन्द्रीय स्थान पर आगामी साधु सम्मेलन होकर गत्यवरोध का निराकरण हो जाये।

इस प्रकार पूज्यश्रीजी म सा के सम्बन्ध-विच्छेद को लेकर समाज मे एक ही विचारधारा बह रही थी कि वे सम्बन्धविच्छेद न करे और शीघ्र ही किसी न किसी प्रकार सगठन की सुदृढता के लिये प्रयत्न हो जिससे उन (उपाचार्यश्री) की भावना के अनुसार सगठन की आधारशिला सुदृढ बने।

कॉन्फरेस ने समाज की भावनाओ की उपेक्षा की

समाज का बहुमत और पत्रकार तो सगठन को सुदृढ देखने के लिये उत्सुक थे। लेकिन कॉन्फरेस के पदाधिकारी इससे विपरीत विचार रखते थे। वे कॉन्फरस की मुम्बई जनरल कमटी के प्रस्ताव न 8 को ही उचित मानकर कार्रवाई करने के लिय तत्पर थे। वे उपाचार्यश्रीजी म सा के विचारो की अवहेलना करने मे श्रेय समझते थे। इस सम्बन्ध मे 20 नवम्बर 1960 को कॉन्फरेस की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया-

'उदयपुर मे दि 1 2 नवम्बर 60 के रोज पचायती नोहरे मे पृज्य उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओ की सभा का आयोजन किया गया उसमे पारित प्रस्ताव कॉन्फरेस ऑफिस को भी भेजे गये हैं। इन प्रस्तावो को पढकर कॉन्फरेस की मैनेजिग कमेटी को खेद और आश्चर्य हुआ है। मुम्बई की जनरल कमेटी में ता 24 25 सित 60 के रोज प्रस्ताव न 8 पारित हुआ है। उसे समझने का प्रयत्न इस सभा म हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। समस्त स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि सस्था कॉफरेस की जनरल कमेटी के प्रस्ताव का इस प्रकार का विरोध हो उसमे समाजहित की दृष्टि की अपेक्षा साप्रदायिक ममत्व का प्राधान्य दिखाई देता है।

श्रमण सघ और स्थानकवासी समाज की एकता और सगठन को कायम और सुदृढ करने के जनरल कमेटी के प्रयत्न को निष्फल बनाने के ऐसे प्रचार के प्रति कॉन्फरेंस की मैनेजिग कमेटी समाज को गम्भीर चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझती है।

इस प्रस्ताव का आशय यह हुआ कि या तो पूज्यश्रीजी अपनी घोषणा वापस ले और कॉफरेस की जनरल कमेटी मे पारित प्रस्ताव मान्य कर या श्रमण सघ के सम्बध मे आचार्यश्री आत्मारामजी म की अवैधानिक घोषणा के अनुसार कार्रवाई करने के लिये कॉन्फरेस स्वतन्त्र है तथा समाज को भी उसके विरोध में ननु नच करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार के प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया था कि कॉन्फरेस ने समाज की भावनाओं की उपेक्षा कर और शुद्धि के धरातल पर श्रमण सगठन को बनाये रखने के प्रति उदासीनता दिखाकर विघटित करने का सूत्रपात कर दिया। आचार्यश्री आत्मारामजी म की घोषणा से तो

श्रमण सघ का आधार ही कमजोर हुआ था किन्तु कॉन्फ्रेंस की जनरल कमेटी के प्रस्ता तथा कार्यकारिणी समिति के इस प्रस्ताव से तो उसका ढाचा ही नेस्तनागूद हो गया।

पुनर्विचार पर आचार्यश्री गणेशलालजी म का स्पष्टीकरण

उपाचार्यश्रीजी म सा की दि 30 11 60 की घोषणा पर पुनर्विचारणा करने के लिये आ प्रार्थनाओ मे प्रेमभाव प्रदर्शित करते हुए वापस लेने पर जो भार दिया गया था किन्तु सगठ हेतु आवश्यक सकल्पपूर्ति के बारे में एक भी सकेत नहीं था। अत उनके सम्बन्ध में अप स्पष्टीकरण करते हुए पूज्यश्री गणेशलालजी म सा ने फरमाया–

'मेरी तारीख 30 11 60 की घोषणा के पश्चात् मेरे पास आचार्यश्री उपाध्याय मडल मन्त्रिमडल व अन्य मुनिवरो की तरफ से एव श्रावक समाज की तरफ से पत्र आदि आये। जिनमे से कुछ जैन प्रकाश आदि समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए हैं। उन सब में यह भा दर्शाया गया है कि मैं अपनी उक्त घोषणा पर पुनर्विचारणा करके उसको वापस लेकर अप पद (उपाचार्य) पर रहता हुआ सघ का पूर्ववत् सचालन करते हुए समाज को मार्गदर्शन कर आदि। अत इस विषय में कुछ भाव व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ।

सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो इस दृष्टि से मैं सादड़ सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था। हमारा श्रमण सगठन किस ढग का हो इसकी मेरी अपन कल्पनाए थीं। इस सम्बन्ध में मैं समय-समय पर प्रकट रूप से भी अपने विचार व्यक्त करत रहा हूँ। वह यह है कि हमारा श्रमण सघ तब ही सुव्यवस्थित रह सकेगा जब उसका नेतृत्व एक के अधीन रहकर शिष्य परम्परा एक की रहे श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना एक हो चातुर्मास विहार एक ही की आज्ञानुसार हो और प्रायश्चित्त-व्यवस्था भी एक के ही आधीन रहे तथा उत्पन्न विकृतिया दूर हो आदि।

सादड़ी सम्मेलन के समय जब सघ-व्यवस्था की रूपरेखा पर विचारणा चली थी तब मैंने अपनी उक्त विचारणा सत-समुदाय के सन्मुख व्यक्त की थी। जहा तक मुझे स्मरण है मुनिवरों ने मेरे उन विचारों को पसन्द करते हुए ये भाव दर्शाये कि अभी तक हम सब बहुत दिनो से बिछुड़े हुए मिल रहे हैं अत यह सब धीरे धीरे बन सकेगा।

श्रमण सगठन की मेरी कल्पना के पीछे स्वर्गीय परम-प्रतापी आचार्यश्री 1008 श्री जवाहरलालजी म सा की भावना और मेरी व्यक्तिगत विचारणा रही थी। इसलिये सादड़ी में श्रमण सघ की जो कुछ व्यवस्था बनी उससे मुझे पूर्ण सतोष नहीं था। फिर भी उपस्थित मुनिवरो का सोत्साह आश्वासन होने से मुझे आशा थी कि शनै -शनै हम हमारे लक्ष्य तक पहुच जायेंगे। इस विचार से मैं सगठन में सम्मिलित हुआ।

जब श्रमण सघ के नेतृत्व का प्रश्न आया तो मैंने अपनी अनिच्छा प्रकट की क्योकि पद और अधिकार-ग्रहण सम्बन्धी मेरी कतई भावना न थी। मैं तो अपना शेष जीवन अधिक-से-अधिक आत्मसाधना मे लगाना चाहता था परन्तु जब प्रतिनिधि मुनिवरो ने अत्याग्रह किया और मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा न होते हुए भी मैं उनके आग्रह को टाल न सका और श्रमण सघ-सचालन की सेवा स्वीकार की।

इसके बाद मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण सस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आत्मसाक्षीपूर्वक सघहितार्थ कार्य करु। तदनुसार मैंने सघ-सचालन का कार्य किया और आवश्यकतानुसार अधिकारी मुनियो से परामर्श लेकर शिथिलाचार व ध्वनि-यत्र आदि विषयक व्यवस्थाए दीं एव दृढाचार विषयक सूचना भी की।

परन्तु भवितव्यता कहे या और कुछ ! सद्भावनापूर्वक किये गये कार्यो को अशान्ति आदि का कारण बताकर उन व्यवस्थाओ के विपरीत आदेश आदि निकाले गये फलत उन व्यवस्थाओ का परिपालन नहीं हुआ और सघ मे अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

इन व्यवस्थाओ के विपरीत आदेश आदि निकालने पर मैंने सोचा था कि अधिकारी मुनिवर जिन्होने इन व्यवस्थाओ मे अपना अनुकूल मत दिया था अवश्य अपने मत का प्रतिपादन करेगे किन्तु मुझे इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि वे प्राय मौन रहकर दर्शक बने रहे।

कॉन्फरेंस के कतिपय प्रमुख व्यक्तियो ने भी श्रमण सघीय व्यवस्थाओ को हाथ मे लिया परन्तु अव्यवस्था का सूत्रपात जहाँ से हुआ वहा से समस्या को नहीं उठाकर ऐसा कदम उठाया कि जिससे समस्याए सुलझने के बजाय उलझ गई।

बाद में तो जैन प्रकाश आदि समाचार पत्रो मे खुल्लम-खुल्ला टिप्पणी होने लगी और मेरे प्रति मताग्रही आदि कई विशेषणो से समाज मे भ्रामक प्रचार किया गया।

जब इस प्रकार का वातावरण बनाया गया तो स्वच्छन्दाचार एव शिथिलाचार को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप साधु-मर्यादाओं के प्रतिकूल कई अन्य प्रवृत्तिया भी विश्वस्त सूत्रों से सुनने को मिली। और तो क्या चौथे व्रत के सम्बन्ध में साधुवेश को कलकित करने वाली भी कुछ घटनाए घटित हुई जो श्रमण सस्कृति की पवित्रता के लिये घातक हैं।

अपने शिष्यों की छोटी गलती पर भी अनुशासन की कार्यवाही की गई तो बडी गलतिया कैसे बरदास्त की जा सकती हैं ?

जिन-जिन अनुचित प्रवृत्तियो के वृत्तान्त मेरे सामने आये उनका मैंने यथापयोग निराकरण करने का प्रयत्न किया और अन्त तक यही भावना रही कि किसी भी प्रकार सिद्धान्त और चरित्र सुरक्षित रहते हुए अनुशासन का समुचित ढग से पालन हो ताकि

सगठन सुदृढ वन सके। परन्तु अपेक्षित सहयोग के अभाव में मेरी आशाए धूमिल ही रहीं अत अन्य भी जो व्यवस्थाए देनी आवश्यक थीं वे नहीं दी जा सकीं।

अनुभव तो ऐसा भी हुआ कि राजनीतिक ढग के दावपेंच जैसी बाते भी होने लगीं, जो धार्मिक मामलो मे कदापि वाछनीय नहीं है।

जिन कल्पनाओं को लेकर मैं सादड़ी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए गया, जिस उज्ज्वल आशा से सघ में प्रवेश किया तथा उसको सुदृढ एव स्थायी बनाने के लिए क्या क्या प्रयत्न किये फिर भी उसकी क्या दशा रही ? इसका अनुभव सुसगठन का हिमायती सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है।

मैं अब दृढ़मत का वन गया हूँ कि जिन कल्पनाओ को लक्ष्य मे रखकर मैं श्रमण सघ म सम्मिलित हुआ था उनको साकार रूप दिये विना श्रमण-सगठन सुचारु रूप से व्यवस्थित रहना सभव नहीं।

मैं सुसगठन का किसी से भी कम हिमायती नहीं हूँ। मैं हृदय से चाहता हूँ कि मुझे मेरे जीवन में ऐसा शुभ दिन देखने को मिले कि साधु समाज का जो कि स्थानकवासी समाज की आधारशिला है सुसगठन द्वारा चारित्र उज्ज्वल से उज्ज्वलतर बने और सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि होकर समाज का कल्याण हो न कि सगठन के सहारे साधु सस्था नीचे गिरे।

जिन श्रमणो एव श्रावकों ने पुनर्विचारणा हेतु मेरे प्रति जो जो भाव व्यक्त किये यह उनका मेरे प्रति प्रेमभाव है।

परन्तु जिन परिस्थितियों को मद्देनजर रखकर मुझे तारीख 30 12 1960 की घोषणा करनी पड़ी उनका एव अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियों का तथा भविष्य के सुधार का सतोपजनक समाधान मुझे न हो जाये तव तक पुनर्विचारणा के विषय में श्रमणवर्ग एवं श्रावकवर्ग को विशेष क्या उत्तर दू ?"

आचार्यश्रीजी म सा ने अपने विचारों में उदात्त भावों को व्यक्त करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि श्रमण सगठन के मूलाधार को सुदृढ बनाने के लिये सामूहिक प्रयत्न करके निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जाये और स्खलना की प्रवृत्तियों का निराकरण होकर भविष्य मे वैसी प्रवृत्तियो की पुनरावृत्ति न होने देने के लिए श्रमणवर्ग एव श्रावकवर्ग को सचेत रहना जरूरी है। व्यवस्थाओं का उपयोग व्यवस्था के लिये हो और उनमें राजनीतिक दाव पेंचों का उपयोग न किया जाकर शुद्धि की भावना से शुद्धि के मार्ग पर बढ़े। मेरा विरोध सगठन की ओट में स्वच्छन्दाचार से है न कि सगठन से। इसीलिये उदेश्य में सफलता के लिये सगठन को सबल देखना अपने जीवन की महान् आकाक्षा मानता हूँ।

कॉन्फरेन्स ने आचार्यश्री के भावो की सदाशयता नहीं समझी

लेकिन आचार्यश्रीजी की भावना को सदाशयता से न समझकर और उसके अन्तर मे छिपे हुए रहस्य की अवहेलना कर श्रमण सघ तोडने के आरोपो की बौछारो के साथ-साथ सत्य तथ्यों पर आवरण डालने के प्रयत्न चलने लगे। जबकि स्पष्ट यह था कि आरोप लगाने वाले स्वय श्रमण सगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिये उसके निर्माण के साथ ही प्रयत्नशील हो गये थे। उदाहरण के रूप मे जैसे श्रमणवर्ग के प्रतिनिधियो द्वारा निर्मित विधान मे मनचाहे विचारों को सयुक्त किया। विधान की मूल धाराओ मे परिवर्तन किया। प्रधानमन्त्री के त्यागपत्र के कारणो की खोजबीन में उदासीनता दिखाई। प्रतिनिधिमडल यथास्थान न भेजने की प्रवृति दिखाई और सदैव सत्य तथ्यों से चतुर्विध सघ को अपरिचित रखा। लेकिन पूज्यश्रीजी ने *श्रमण सघ को छोडने के बाद भी यही भावना प्रदर्शित की थी कि हमारा श्रमण सघ तभी* सुव्यवस्थित रह सकता है जबकि उसका नेतृत्व एक के आधीन रहे श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना विहार आदि एक ही की आज्ञानुसार हो। लेकिन ऐसी स्थिति के निर्माण का साहस किसी ने नहीं दिखाया सो नहीं दिखाया। अखण्ड रहे यह सघ हमारा' जैसे लुभावने भाषणो की आड में शिथिलाचार को छुपाकर श्रमण सघ को कब तक जीवित रखा जा सकता था। यही विडबना समाज के साथ आज भी चल रही है।

चतुर्विध सघ की विनती

यद्यपि शल्यचिकित्सा से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि पूज्यश्रीजीके स्वास्थ्य में सुधार होगा। लेकिन सुधार सतोषजनक नहीं हुआ। हा इतना अवश्य माना जा सकता है कि कुछ दिनों के लिये रोग की भीषणता मे कमी आ गई किन्तु निर्मूल नहीं हो सका। स्वास्थ्य पहले से ही कमजोर था और शल्यचिकित्सा के बाद भी शारीरिक बल में कोई परिवर्तन नहीं आया। दिनोदिन स्वास्थ्य मे निर्बलता आती जा रही थी।

पूज्यश्रीजी म सा श्रमण सस्कृति की सुरक्षा को अपनी साधना का ध्येय मानते थे। लेकिन इसकी उपेक्षा करके सगठन को मुख्यता दिये जाने के प्रयत्न होने लगे तो इससे चारित्रप्रेमी चतुर्विध सघ मे एक प्रकार की चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उसको आध्यात्मिक धरातल का भविष्य अन्धकारमय दिखने लगा था।

इन्हीं दिनो पूज्यश्रीजी के स्वास्थ्य में अकस्मात् काफी निर्बलता बढने लगी। समाचारो के मिलते ही हजारों की सख्या में श्रावक-श्राविकाए अपने आराध्य के दर्शनार्थ उदयपुर में एकत्रित हो गये।

शरीर नाशवान है। इसका क्या भरोसा कि कब नष्ट हो जाये। आचार्यश्रीजी के

स्वास्थ्य की गम्भीरता से उनके मन मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प उठने लगे। समाज के अग्रणी विचारवान उपस्थित सज्जनो ने विचार किया कि वर्तमान स्थिति में अपने भावी आधार के बारे मे सोच लेना बुद्धिमानी होगा। समस्या गभीर थी और इस पर चर्चा-वार्ता होती रही। अन्त म निर्णय किया गया कि हम सब मिलकर आचार्यश्रीजी के चरणों मे विनती करें कि आपश्री की कल्पना के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन न हो जाये तब तक हम अपना भावी आधार किसको मानें ?

पूज्य आचार्यश्री के चरणो मे चारित्रात्माओ के प्रतिज्ञा-पत्र

अन्तर आचार्यश्रीजी म सा के आज्ञानुवर्ती निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग ने आपश्री के चरणों में अपना यह प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया-

निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय है अत इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान मे श्रमणवर्ग मे कुछ विकृतिया प्रवेश कर गई हैं उनको दूर करने के लिये पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा ने जो शान्त क्रान्ति का कदम उठाया वह उचित एव आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक सगठन को सुदृढ़ एव चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि सयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियों को दूर करने के लिए एव सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म के नेश्राय मे तथा नेतृत्व में आपश्री की निम्न बाते जीवन में उतारने की प्रतिज्ञा करते हैं-

1 चातुर्मास प्रायश्चित्त विहार व सेवा आदि व्यवस्था की सर्वसत्ता आपश्री के चरणों मे रहेगी।
2. शिष्य व शिष्याए आपश्री के निश्राय में होगे।
3 चातुर्मास के लिए व शेषकाल के लिए साधु-साध्वी ने जहा विहार किया या जहा विराजे वहा से वस्त्र-पात्रादि जो भी वस्तु साल भर मे लेगे उसकी नोंध रखेंगे। साथ ही सघ व्यवस्था कैसी है विशेष उपकार व उपसर्ग कहां कहां पर हुए उसकी भी नोंध रखेंगे और वह सब आलोचना की नोंध डायरी आपश्री की सेवा में अर्पण कर देगे।
4 चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आपश्री (आचार्यश्री) जिस समय जहा जिन साधु साध्वियो को याद फरमावेंगे वहा वे साधु, साध्वी उपस्थित होंगे।
5 साधु-साध्वी के कल्पनानुसार समान समाचारी जो आपश्री ने तय की है और

करेगे वह सब साधु-साध्वी को सहर्ष मान्य होगी। तथा सकारण व भूल से जो भी त्रुटि हो जाय उसका आपश्री जो भी उपालम्भ व प्रायश्चित्त देंगे उसको सहर्ष स्वीकार करेगे।

6 श्रमणवर्ग की धारणा विचारणा मे फर्क हो सकता है लेकिन गच्छाधिपति आचार्यश्री अर्थात् आपश्री की धारणा विचारणा के विरुद्ध कोई साधु-साध्वी साधु सघ मे या श्रावक सघ मे स्थापना नहीं करेगे।

7 जो भी वैरागी या वैरागिन हो उसको तैयार करके स्नेह श्रद्धा के केन्द्र आचार्यश्री के पास परीक्षा होकर जब तक आपश्री द्वारा आज्ञा प्राप्त न हो जाय तब तक कोई साधु, साध्वी उनको दीक्षा न देंगे और सादड़ी आदि मे तथा बाद मे भी जो सिद्धान्त चारित्र और सुसगठन विषयक आदेश आदि दिये हैं और देगे उसे हम सन्त-सती वर्ग साकार रूप देने को हर समय तैयार हैं और रहेगे। इति शुभम्।

उदयपुर
स 2018 वैशाख शुक्ला 3

आज्ञानवुर्ती
हम हैं आपके चरण-चचरीक
साधु-साध्वीवृन्द

प्रार्थना उचित और सामयिक थी। आचार्यश्रीजी भी विचारमग्न हो गये। आपश्री सगठन को शुद्ध सबल और अनुशासनबद्ध देखना चाहते थे तथा श्रावक सघ की आकाक्षा थी कि भविष्य की व्यवस्था के लिये रूपरेखा अभी से निर्धारित नहीं की गई तो अव्यवस्था फैल सकती है। अत किसी-न-किसी प्रकार की निर्णयात्मक स्थिति का निश्चय हो जाना जरूरी था।

प्रमुख सन्तो से परामर्श

आचार्यश्रीजी म सा ने उपाचार्य पद का त्याग-पत्र देने के पश्चात् चतुर्विध सघ की ओर से त्याग-पत्र वापस लेने की प्रार्थना के उत्तर में यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि जिन कारणों को लेकर त्याग-पत्र दिया गया है यदि उनका समाधान हो जाता है तो आगे के उत्तरदायित्व का भार हल्का बन जायेगा और सुसगठनप्रेमी चतुर्विध सघ की होने वाली व्यवस्था की प्रार्थना का भी समाधान हो सकेगा। लेकिन त्यागपत्र को वापस लेने की प्रार्थना करने वाले महानुभावों ने प्रार्थना के अनुरूप कार्य करने की एव आचार्यश्रीजी म सा के सतोषजनक समाधान की स्थिति का निर्माण काफी समय बाद भी नहीं किया और दिनोदिन निर्ग्रन्थ श्रमण

सस्कृति का ह्रास उससे भी अधिक अनुभव होने लगा तब मुख्य चारित्रवान् श्रमणों से परामर्श करना प्रारम्भ किया और उनको इस बात की भलीभाति जानकारी करवाई कि भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट श्रमण सस्कृति का अमुक-अमुक तरीके से ह्रास हो रहा है। अत इस समय श्रद्धालु श्रमणवर्ग को कटिबद्ध होकर निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षार्थ एक श्रद्धा एक प्ररूपणा एक समाचारी बनाकर सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत मूल उद्देश्य को साकार रूप देते हुए सुसगठन का आदर्श उपस्थित करने की आवश्यकता है। अत इस विषय में चारित्रवान सभी प्रमुख सन्तो को एकत्रित होकर भावी शासन की रूपरेखा स्पष्ट कर किसी भी चारित्रनिष्ठ श्रद्धालु, प्रभावशाली सत को उत्तरदायित्व सौंपकर समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहिए।

स्पष्टवक्ता व्याख्यानवाचस्पति प. रत्न श्री मदनलालजी म.सा., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म.सा व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म स आदि से परामर्श किया गया लेकिन इन मुनिवरों की तरफ से सोत्साह भावी सगठन की सतोषजनक रूपरेखा का उत्तर न मिला और बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म सा से भी परामर्श किया गया। उसमें दोनों तरफ की समाचारियों का मिलान कर श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना की एकरूपता बनाने के लिए प्रत्यक्ष के परामर्श की भी आवश्यकता थी।

बहुश्रुतजी ने पूज्य आचार्यश्री का नेतृत्व स्वीकार किया

इन्हीं दिनों बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म खींचन से विहार करते हुए भोपालपुरा (उदयपुर) मे आचार्यश्रीजी म सा की सेवा में पधार गये। तब सभी बातों के विषय में खुलकर विचार-विमर्श हुआ और मौलिक रूप से एक श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना की प्राय समाचारी बन गई और आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा के नेतृत्व में चलने के स्वीकृतपत्र पर बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। स्वीकृति पत्र इस प्रकार है-

वन्दे वीरम्-णमो णणा तस्स

ता 7 1 1961

आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति है। अत इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान मे श्रमणवर्ग में कुछ विकृतिया प्रवेश कर गई हैं। उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा ने शान्त क्रान्ति का कदम उठाया यह उचित एव आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक सगठन को सुदृढ एव चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि सयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियों

को दूर करने के लिए एव सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म का नेतृत्व स्वीकार करते हैं।

ऊपर मुजब काम का हम हृदय से निश्चय करते हैं।

द मुनि समर्थमल। स 2017 माघ कृ 5।

सहयोग का अभाव, एकला चलोरे

अव रहा प्रश्न इसको अमली रूप देने का। बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म ने इसके लिए मैं पहले सतियों को भी पूछ लेता हूँ, आदि आशय के भाव फरमाकर वहा से विहार कर दिया और यह प्रतीक्षा की जा रही थी कि समाचार मिलने पर आगे का कार्यक्रम सोचा जा सकेगा। लेकिन काफी समय वीत जाने पर भी जव समाचार नहीं मिले तो श्री कानमलजी नाहटा आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने जानकारी की तो बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म से उनको विदित हुआ कि सतिया नहीं मान रही हैं। इस पर श्री कानमलजी नाहटा ने अर्ज की कि आप सन्त और जितनी सतिया इसमें सहयोग दे उतना कार्य तो कर लीजिये। लेकिन इतनी साहस की स्थिति नहीं मालूम हुई और यह समाचार जव आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के पास पहुचे तो आचार्यश्रीजी म ने सोचा कि इतना प्रयत्न करने पर भी सत निर्ग्रन्थ सस्कृति की रक्षा के लिए साहस नहीं कर पा रहे हैं यह कैसी स्थिति है ? कोई साहस करे या न करे मुझे अपने इस जीवन के अन्दर शुद्ध भावना के साथ निर्ग्रन्थ सस्कृति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि इस पचमकाल में जो सर्वस्व के त्यागी कहलाते हैं वे भी इस स्थिति से पीछे हट रहे हैं और अपने सामने ही निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को ऊपर उठाने का साहस नहीं कर पा रहे हैं तो वीतराग शासन की उज्ज्वलता रह सकेगी ? यह एक विचारणीय विपय है।

चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था का भार प रत्न मुनिश्री नानालालजी पर डालने का विचार

साधु जीवन के अन्दर मान अपमान सत्कार सन्मान आदि भावनाओ को गौण करके शासन-सेवा में जुट जाना शासन-हितैपी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इस कर्तव्य पथ पर जितने भी आरूढ हो सकें वे ही इस कार्य को आगे वढायें। मैंने जिन महानुभावों की आशा रखी उन महानुभावो को अच्छी तरह से अवगत करा दिया गया अत मैं अपने प्रयत्नों की दृष्टि से स्पष्ट हूँ। अव मुझे सुसगठन-प्रेमी चतुर्विध सघ की प्रार्थना पर भी ध्यान देना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार काफी विचार-मथन के पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था

का सर्वाधिकार एव पूर्ण उत्तरदायित्व प र. मुनिश्री नानालालजी म सा को सौंपने के लिये दि 18 4 61 को घोषणा कर निम्नलिखित आदेश फरमाया-

'चतुर्विध सघ की भावभीनी भक्ति को देखकर मेरे मन मे भी अनेक कल्पनाए उठ रही हैं। उन सभी कल्पनाओ को इस समय सविस्तार व्यक्त करू इतना अभी समय नहीं है और मेरा स्वास्थ्य भी उसके अनुकूल नहीं है।

'मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की जा रही है उसको मैं वीर प्रभु के शासनस्थ शुद्ध चारित्र व सिद्धान्त की समझकर वीतरागभाव को अर्पण करता हूँ।

'मैं एक निश्चित उद्देश्य व कल्पना को लेकर सादड़ी साधु-सम्मेलन में सम्मिलित हुआ और उसकी पूर्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहा किन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई। साथ ही ऐसी कई परिस्थितियो का निर्माण भी हुआ कि जिनके कारण ता 30 11 60 को मुझे नवनिर्मित श्रमण सघ से पृथक होने की घोषणा करनी पडी। उस घोषणा पर पुण विचारणा करने के लिये श्रमणवर्ग व श्रावकवर्ग की तरफ से मेरे पास निवेदन आदि आये। मगर उनमें सुसगठन सम्बन्धी मेरी कल्पनाओं एव उत्पन्न कारणों के निराकरण की पूर्ति होती दिखाई नहीं दी अत आये हुए निवेदनो आदि का सामूहिक रूप से ता 24.2.61 को एक उत्तर दिया। उसको भी पर्याप्त समय हो गया किन्तु कोई सतोषजनक समाधान मेरे सामने नहीं आया।

'मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ। मैं अब भी यह चाहता हूँ कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व मे श्रमण सगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरे सतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमडल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आवद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एवं चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य माने और शिक्षा दीक्षा चातुर्मास विहार व शिष्य परम्परा आदि सब उसी आचार्य के अधीन रहे।

'ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे। मुझे ऐसा विश्वास है कि जब ऐसी परिस्थिति पैदा होगी तब सुसगठनप्रेमी सन्त सतीवर्ग उसमें मिलने को तत्पर रहेंगे और श्रावक समुदाय भी उसमें अपना पूर्ण समर्थन देगा।

'मेरा स्वास्थ्य कुछ काल से जितना चाहिये उतना अनुकूल नहीं चल रहा है और सुसगठनप्रेमी चतुर्विध सघ मेरे से भावी व्यवस्था के लिये प्रार्थना कर रहा है कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जाये तब तक हमारा भावी आचार क्या हो आदि ? इस तरफ भी ध्यान दकर व्यवस्था करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन मे न बन सके तो मेरे पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये प मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसगठन बनाने मे सदैव प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध सघ उनकी आज्ञाओ को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया

आचार्यश्रीजी म सा के उत्तराधिकारी के रूप मे प रत्न मुनिश्री नानालालजी म सा का चयन इतना उपयुक्त था कि घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया। घोषणा मे जहा उत्तराधिकारी का नामाकन किया था वहीं श्रमण सघ के सुसगठन की शुभ भावना और स्पष्ट मार्गदर्शन देकर समाज का आह्वान भी था। उक्त घोषणा म अस्त-व्यस्त श्रमण सघ को समालने का काफी अवकाश था। लेकिन खेद है कि सगठन को सबल बनाने और समाजोत्थान के इस कार्य में अधिकारो की चकाचौंध मे किसी ने लक्ष्य नहीं दिया और न आह्वान को सफल बनाने की ओर कोई प्रयास किया गया।

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी से श्रमण सघ की स्थिति पर विचार

इन्हीं दिनो उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म सा आचार्यश्रीजी के दर्शन करने और सुख-साता पूछने उदयपुर पधारे। इसी प्रसग मे श्रमण सघ की स्थिति पर विचार हुआ और उपाध्यायश्री ने आचार्यश्रीजी से निवेदन किया कि वर्तमान सामाजिक वातावरण कैसे शुद्ध हो सकता है ? इस पर आचार्यश्रीजी ने निम्नलिखित भाव-फरमाये थे।

आपश्री (उपाध्यायश्रीजी) ने साभोगिक विसाभोगिक विषय को लेकर शिथिलाचार और ध्वनि यन्त्र आदि के विषय मे जो बाते लिखित रूप मे भिजवाई थीं और आपश्री के परामर्श से भी जो हुआ उन पर आपश्री दृढता के साथ कायम रहने की कृपा करे।

अभी मरुधरकेशरी रूपचन्दजी सागरजी मथुराजी एव लछमाजी आदि के विषय को न छुआ जाये अर्थात् इनके साथ कोई सम्बन्ध न रखा जाये। इनके साथ साक्षात् व परम्परा से जिन्होने सम्बन्ध रखा उनका शुद्धिकरण हो और आपश्रीजी की लिखित बातों और परामर्श के प्रतिकूल जितनी श्रमणवर्ग की प्रवृत्तियाँ हुई हैं उनको भी व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त दिया जाये। यदि वे प्रायश्चित्त न ले तो उनके साथ आपश्री का साभोगिक सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

'सगठन को सुदृढ़ मजबूत एव स्थायी रखने के लिये श्रमण सघ ने जो उद्देश्य स्वीकार कर रखा है जैसा कि श्रमणवर्ग के प्रमुख मुनिवरा ने अपने निवेदन में प्रकट किया है– पूज्यश्रीजी जिस प्रकार के सगठन की अपेक्षा रखते हैं वैसा सगठन बनाने का श्रमण सघ का अन्तिम लक्ष्य निश्चित हुआ ही है – इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपश्री दृढ सकल्प के साथ प्रयत्नशील हो।

'यदि उपर्युक्त तीनो बातो को अमलीरूप देने मे आपश्रीजी भी तैयार हैं ऐसा मालूम हो जाये तो आपश्रीजी के साथ सम्बन्ध में कोई रुकावट नहीं रह जाती है।

'इसी प्रकार अन्य भी जो श्रमणवर्ग उपर्युक्त तीनो बातों मे आबद्ध हो जाते हैं तो उनके साथ भी अपनी समोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'इसके बाद जिन-जिन का सभोग परस्पर खुला हो जाता है– उस साभोगिक स्थिति में रहने वाले मुख्य मुख्य मुनिवरो के परामर्शपूर्वक श्रमण जीवन के लक्ष्य के अनुरूप सिद्धान्त एव शुद्ध चारित्र की रक्षा के लिये शास्त्रसम्मत एक समाचारी बनाई जाये।

'निश्चित की गई उस समाचारी के अनुकूल चलने वाले महानुभावो का समान उद्देश्य हो श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना एक हो एवं शास्त्रीय पद्धति को सामने रखते हुए सुव्यवस्था की दृष्टि से दृढ अनुशासन की स्थिति का निर्माण हो एव श्रमणवर्ग के उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति हो यानी इन सब बातो का अमली रूप हो जाये तो सगठन का मार्ग सुलभ होकर श्रमण सस्कृति की रक्षा हो सकती है। और फिर ऐसे श्रमण साघ म सिद्धान्त और चारित्रप्रेमी श्रमणों का रहना भी सुलभ हो सकता है।

आचार्यश्रीजी के उक्त विचारो मे श्रमण सघ की व्यवस्था स्थायित्व के प्रश्न और सगठन के लक्ष्य का स्पष्ट चित्रण कर दिया था। और इसी के लिये आपश्री ने प्रयत्न किये थे और भविष्य मे भी इसी भावना को साकाररूप मे देखना चाहते थे।

लकिन यह पारस्परिक वार्तालाप था और उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म किसी का प्रतिनिधित्व लेकर नहीं पधारे थे। अत आचार्यश्रीजी से श्रमण सघ मे वापस पधारने की बारम्बार प्रार्थना दुहराने के अतिरिक्त आचार्यश्रीजी के श्रमण साघ से पृथक होने के कारणो के समाधान का कोई समुचित मार्ग नहीं बता सके थे। अत कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल सका। सिर्फ पारस्परिक विचार-विनिमय के अतिरिक्त आग कार्यवाई होने की आशा नहीं की जा सकी।

कॉन्फरेंस के शिष्टमडल का आगमन

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म ने पारस्परिक विचार विनिमय कर और सुख साता पृछकर

चातुर्मास हेतु सैलाना की ओर विहार कर दिया। श्रमण सघ की स्थिति मे सुधार के कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे और न पूर्ण मनोयोग से कोई इस ओर प्रयत्न ही कर रहा था। सामयिक पत्रो और मौखिक रूप से होने वाले प्रचार की अपेक्षा उसका शताश भी विधेयात्मक रूप में नहीं हो रहा था। इससे समाज में आशका व्याप्त थी कि क्या श्रमण सघ खडित होगा ?

कॉन्फरेस भी मूकदर्शक की तरह यह सब देख रही थी। अपने प्रति बढते हुए समाज के रोष की शाति या रोष को दूसरी दिशा मे मोड़ने के लिये दि 23 8 62 को कॉन्फरेंस की ओर से सेठ श्री अचलसिहजी की अध्यक्षता में एक शिष्टमडल आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे उपस्थित हुआ।

शिष्टमडल ने आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे अर्ज की कि आपश्री अपना त्यागपत्र वापस लेकर श्रमण सघ का सचालन करे। हम जहा भी गये सबने यही इच्छा प्रगट की है। इस समय आप के अनुशासन की समाज को आवश्यकता है। अत आपश्री हमारी प्रार्थना की स्वीकृति फरमाये ताकि सगठन मजबूत हो। अब रूपचन्दजी का विषय तो समाप्त हो चुका है। अन्य प्रश्नो का समाधान शेष है।

इस पर आचार्यश्रीजी ने अपने भाव फरमाये कि रूपचन्दजी के लिये जैन प्रकाश में तो क्या प्रकट हुआ और प्रवृत्ति कुछ और ही हुई। यह जो कुछ भी हुआ है वह न तो विधिपूर्वक है और न सतोषजनक ही। किन्तु एक प्रकार से उपहास का विषय बनता जा रहा है।

श्रमण सघ का सगठन कैसा होना चाहिये आदि के बारे मे मैंने अपनी योजना समाज के सामने पहले ही रख दी है। फिर भी आप मेरे दो शब्द और लेना चाहते हैं तो साराश यह है कि श्रमण सघ मे रहते हुए मार्गदर्शन के रूप मे दी गई व्यवस्थाओ आदि के अनुसार श्रमणवर्ग पालन करे और प्रतिकूल प्रवृत्तियॉं करने वालो का शुद्धिकरण होकर अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियो का सुधार हो तथा श्रमण सघ के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार एक आचार्य की आज्ञा से शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित्त चातुर्मास विहार आदि होने को जिसकी मुख्य मुख्य मुनियो मे पुन पुष्टि की है अमली रूप के लिये श्रमणवर्ग दृढसकल्पी हो। ऐसी सतोषजनक स्थिति स्पष्ट रूप से मेरे सामने आये तो उस पर सोचने के लिये मैं सदैव तैयार हूँ। मैं सुसगठन को हृदय से चाहता हूँ।

आचार्यश्रीजी के भाव स्पष्ट थे। लेकिन उपर्युक्त बातों का शिष्टमडल के पास कोई समाधान नहीं था और इतना साहस भी नहीं था कि योग्य कार्य के लिये कुछ कार्रवाई कर सके। अत किसी प्रकार का निश्चय किये बिना शिष्टमडल दि 24 8 62 को वापस लौट गया।

'सगठन को सुदृढ मजबूत एव स्थायी रखने के लिये श्रमण सघ ने जो उद्देश्य स्वीकार कर रखा है जैसा कि श्रमणवर्ग के प्रमुख मुनिवरो ने अपने निवेदन म प्रकट किया है– पूज्यश्रीजी जिस प्रकार के सगठन की अपेक्षा रखते हैं वैसा सगठन बनाने का श्रमण सघ का अन्तिम लक्ष्य निश्चित हुआ ही है – इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपश्री दृढ सकल्प के साथ प्रयत्नशील हो।

'यदि उपर्युक्त तीनो बातो को अमलीरूप देने मे आपश्रीजी भी तैयार हैं ऐसा मालूम हो जाये तो आपश्रीजी के साथ सम्बन्ध मे कोई रुकावट नहीं रह जाती है।

'इसी प्रकार अन्य भी जो श्रमणवर्ग उपर्युक्त तीनों बातों में आबद्ध हो जाते हैं तो उनके साथ भी अपनी सभोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'इसके बाद जिन-जिन का सभोग परस्पर खुला हो जाता है– उस साभोगिक स्थिति मे रहने वाले मुख्य-मुख्य मुनिवरों के परामर्शपूर्वक श्रमण जीवन के लक्ष्य के अनुरूप सिद्धान्त एव शुद्ध चारित्र की रक्षा के लिये शास्त्रसम्मत एक समाचारी बनाई जाये।

निश्चित की गई उस समाचारी के अनुकूल चलने वाले महानुभावों का सगा। उद्देश्य हो श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना एक हो एव शास्त्रीय पद्धति को सामने रखते हुए सुव्यवस्था की दृष्टि से दृढ अनुशासन की स्थिति का निर्माण हो एव श्रमणवर्ग के उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति हो यानी इन सब बातो का अमली रूप हो जाये तो सगठन का मार्ग सुलभ होकर श्रमण सस्कृति की रक्षा हो सकती है। और फिर ऐसे श्रमण सघ मे सिद्धान्त और चारित्रप्रेमी श्रमणों का रहना भी सुलभ हो सकता है।

आचार्यश्रीजी के उक्त विचारा में श्रमण सघ की व्यवस्था स्थायित्व के प्रश्न और सगठन के लक्ष्य का स्पष्ट चित्रण कर दिया था। और इसी के लिये आपश्री ने प्रयत्न किये थे और भविष्य मे भी इसी भावना को साकाररूप मे देखना चाहते थे।

लेकिन यह पारस्परिक वार्त्तालाप था और उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म किसी का प्रतिनिधित्व लेकर नहीं पधारे थे। अत आचार्यश्रीजी से श्रमण सघ मे वापस पधारने की बारम्बार प्रार्थना दुहराने के अतिरिक्त आचार्यश्रीजी के श्रमण सघ से पृथक होने के कारणों के समाधान का कोई समुचित मार्ग नहीं बता सके थे। अत कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल सका। सिर्फ पारस्परिक विचार विनिमय के अतिरिक्त आग कार्यवाई होने की आशा नहीं की जा सकी।

कॉन्फरेंस के शिष्टमडल का आगमन

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म ने पारस्परिक विचार-विनिमय कर और सुख साता पूछकर

चातुर्मास हेतु सैलाना की ओर विहार कर दिया। श्रमण सघ की स्थिति में सुधार के कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे और न पूर्ण मनोयोग से कोई इस ओर प्रयत्न ही कर रहा था। सामयिक पत्रों और मौखिक रूप से होने वाले प्रचार की अपक्षा उसका शताश भी विधेयात्मक रूप मे नहीं हो रहा था। इससे समाज मे आशका व्याप्त थी कि क्या श्रमण सघ खडित होगा ?

कॉन्फरेस भी मूकदर्शक की तरह यह सब देख रही थी। अपने प्रति वढते हुए समाज के रोष की शाति या रोष को दूसरी दिशा मे मोडने के लिये दि 23 8 62 को कॉन्फरेस की ओर से सेठ श्री अचलसिहजी की अध्यक्षता मे एक शिष्टमडल आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे उपस्थित हुआ।

शिष्टमडल ने आचार्यश्रीजी म सा की सेवा म अर्ज की कि आपश्री अपना त्यागपत्र वापस लेकर श्रमण सघ का सचालन करें। हम जहा भी गये सबने यही इच्छा प्रगट की है। इस समय आप के अनुशासन की समाज को आवश्यकता है। अत आपश्री हमारी प्रार्थना की स्वीकृति फरमायें ताकि सगठन मजबूत हो। अब रूपचन्दजी का विषय तो समाप्त हो चुका है। अन्य प्रश्नो का समाधान शेष है।

इस पर आचार्यश्रीजी ने अपने भाव फरमाये कि रूपचन्दजी के लिये जैन प्रकाश मे तो क्या प्रकट हुआ और प्रवृत्ति कुछ और ही हुई। यह जो-कुछ भी हुआ है वह न तो विधिपूर्वक है और न सतोषजनक ही। किन्तु एक प्रकार से उपहास का विषय बनता जा रहा है।

श्रमण सघ का सगठन कैसा होना चाहिये आदि के बारे मे मैंने अपनी योजना समाज के सामने पहले ही रख दी है। फिर भी आप मेरे दो शब्द और लेना चाहते हैं तो साराश यह है कि श्रमण सघ में रहते हुए मार्गदर्शन के रूप मे दी गई व्यवस्थाओ आदि के अनुसार श्रमणवर्ग पालन करे और प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ करने वालो का शुद्धिकरण होकर अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियो का सुधार हो तथा श्रमण सघ के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार एक आचार्य की आज्ञा से शिक्षा-दीक्षा प्रायश्चित्त चातुर्मास विहार आदि होने को जिसकी मुख्य मुख्य मुनियो मे पुन पुष्टि की है अमली रूप के लिये श्रमणवर्ग दृढसकल्पी हो। ऐसी सतोषजनक स्थिति स्पष्ट रूप से मेरे सामने आये तो उस पर सोचने के लिये मैं सदैव तैयार हूँ। मैं सुसगठन को हृदय से चाहता हूँ।

आचार्यश्रीजी के भाव स्पष्ट थे। लेकिन उपर्युक्त बातो का शिष्टमडल के पास कोई समाधान नहीं था और इतना साहस भी नहीं था कि योग्य कार्य के लिये कुछ कार्रवाई कर सके। अत किसी प्रकार का निश्चय किये बिना शिष्टमडल दि 24.8 62 को वापस लौट गया।

युवाचार्य पद की भूमिका

कॉन्फरस का शिष्टमडल आया-गया हो गया था। लेकिन इसके बाद भी पूज्यश्रीजी प्रतीक्षा करते रहे कि श्रमण सघीय स्थिति मे सुधार के लिये प्रयत्न हो। लेकिन ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ।

श्रमण सघ की अव्यवस्था के कारण स्पष्ट थे और चतुर्विध सघ का प्रत्येक सदस्य उनके समाधान की अपेक्षा रखता था। लेकिन समस्याओ के समाधान का जो रूप सामने आया और रूपचन्दजी की नई दीक्षा का निर्णय जैन प्रकाश मे प्रकाशित कराके भी उसका जिस रीति से पालन किया या कराया और नई दीक्षा न देकर केवल 4 वर्ष 10 माह के दीक्षाछेद का जो प्रायश्चित्त दिया गया वह भी शास्त्रसमत आधार पर नहीं था। समाज ने यह सब स्थिति देखी तो सुसगठनप्रेमी चतुर्विध सघ निराश हो गया और आचार्यश्रीजी के चरणो मे समाज-सगठन को दृढ बनाने हेतु एक निश्चित व्यवस्था देने के लिये पुन आग्रहभरी विनती करने लगा।

आचार्यश्रीजी म सा ने बार-बार होने वाली इन विनतियो पर विचार किया कि निर्णय तो ऐसा हो जिससे किसी प्रकार की उलझन पैदा न हो और चतुर्विध सघ को भी सतोष हो जाये। इसलिये वीर शासनप्रेमी चतुर्विध सघ को इस समय उस परम्परा में स्थान देना उपयुक्त होगा जिससे कि परपरागत महापुरुषो के नाम से त्याग-वैराग्य की भावना जाग्रत रहे। यही सोचकर पूज्यश्रीजी म सा ने महातपोधनी त्यागी महापुरुष पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की परम्परा रखना हितकर समझा।

परम्परा रखना हितकर समझते हुए भी बार बार यह सलामण दी कि मेरी कल्पना के अनुसार श्रमण सघीय व्यवस्था होती हो तो उसमें शामिल होने के लिये सदा तत्पर रहना तथा वैसी स्थिति का निर्माण करने के लिये सचेष्ट रहना।

इस सलामण और त्याग वैराग्य की परम्परा पुनर्जीवित रखने व उसकी व्यवस्था हेतु प मुनिश्री नानालालजी म सा को युवाचार्य घोषित किया।

पूज्य आचार्यश्रीजी के चरणो में चतुर्विध सघ की विनती

इस सम्बन्ध में चतुर्विध सघ की विनती इस प्रकार है—

पूज्य आचार्यप्रवर

पुनीत चरणों में हमारा शत शत वदन !

सवत् 2018 के ग्रीष्मकाल में आपश्री के शरीर में असातावेदनीय कर्मोदय हुआ था तब

सारा समाज एकदम चिन्ताग्रस्त हो गया था। उस स्थिति से हमारे मन मे नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए थे। तव हमने अनुभव किया था कि हमारी समाजरूपी नौका डावाडोल हो रही है। उस समय जव एक ओर अन्तर् मे आपके स्वास्थ्यलाभ की शुभ कामनाए कार्यरत थीं तो दूसरी ओर हमे समाज के भविष्य की भी चिन्ता हो रही थी। हम जीवो को आत्मकल्याण के लिये आपका मार्गदर्शन सुलभ था इसलिये हमारे हृदय मे भावनाए उठ रही थीं कि उसी प्रकार मार्गदर्शन हमको आगे भी मिलता रहे तो कितना अच्छा हो ! उन्हीं अन्तर् भावनाओ से प्रेरित होकर उस समय आपकी पवित्र सेवा मे प्रार्थना की थी कि भगवन् ! आपके पश्चात् भी हमको वैसा ही मार्गदर्शन मिलता रहे। इसलिये चतुर्विध सघ किसका आज्ञानुवर्ती रहे ? इसकी घोषणा करने की महती कृपा करे।

आपने हमारी उस प्रार्थना पर विचार कर प मुनिश्री नानालालजी म सा को आपके पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये सौंपा था। उस घोषणा से हमारी चिन्ताए वहुत दूर हो गई थीं। इधर आपका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा तो हमारे आनन्द का ठिकाना नहीं रहा।

आपकी उक्त घोषणा से भविष्य के लिये जहा हम आश्वस्त हुए वहा हमारा ध्यान प मुनिश्री नानालालजी में और अधिक केन्द्रित होता गया और हमारी भावनाए उनकी गतिविधि की परख मे भी चलने लगीं।

'महामने इस गतिविधि से हमने अनुभव किया कि आप न केवल शुद्ध सयमाराधक उच्च निष्ठावान ज्ञानगभीर महापुरुष हैं बल्कि आप मे परखने की भी एक अद्भुत क्षमता है। आप द्वारा आपके उत्तराधिकारी के रूप मे प मुनिश्री नानालालजी म सा का योग्य चयन आपकी परख का स्पष्ट उदाहरण है।

'प मुनिश्री नानालालजी म सा की सयमाराधना के प्रति उत्कट अभिरुचि और वड़ो के प्रति आदरभाव के विनीत गुण एव शास्त्रीय ज्ञानगुण से हमको सतोष है। हम उनके प्रति भी अपनी भक्तिपूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

अभी असातावेदनीय कर्मोदय ने आपके स्वास्थ्य को पुन झकझोर दिया है। इससे हमारे मन पर पुन भार है। यद्यपि प मुनिश्री नानालालजी म को आपके योग्य उत्तराधिकारी के रूप मे पाकर हम गर्व अनुभव करते हैं तथापि समाज की दिन-प्रतिदिन विगड़ती हुई स्थिति एव सयममार्ग मे आई हुई विकृतियों को देखकर हमारी आपश्री से आतरिक प्रार्थना है कि समाज सगठन को सुदृढ वनाने के लिये प मुनिश्री नानालालजी म को युवाचार्य घोषित कर आपके वरदहस्त द्वारा ही चादर प्रदान की जाये। आपश्री के लक्ष्यानुरूप सगठन का यह वीज आपश्री के आशीर्वाद से पुष्पित पल्लवित होकर समाज में आत्म साधना की अभिरुचि

को और बढाता हुआ कल्याणदायक सिद्ध होगा।

'हमे विश्वास है कि आपश्री हमारी इस प्रार्थना अर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

अन्त मे हम आपश्री के अनुयायी श्रावक-श्राविका आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम प मुनिश्री नानालालजी म की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना कर्तव्यपालन करेंगे।

हम हैं आपके श्रावकवृन्द

(उदयपुर राजस्थान)
मिती आश्विन कृष्णा 9 स 2019 दि 22.9.62

आचार्यश्री गणेश की युवाचार्य पद हेतु घोषणा

चतुर्विध सघ की विनती के प्रत्युत्तर में आचार्यश्रीजी ने ये भाव फरमाये–

'लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व जब अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और मेरा स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन-हितैषी सुसगठनप्रेमी चतुर्विध सघ में चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि–

आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जाये तब तक हमारा भावी आधार क्या हो ?

'समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध सघ के मन में ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था। उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य बातों पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्तव्य समझा। उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध सघ की चिन्ता निर्मूल नहीं है। अत मैंने दि 18 अप्रैल 1961 को सुसगठन सम्बन्धी अपनी निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि–

'मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ। मैं अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसाकि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व मे श्रमण सगठन साकाररूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरे सतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमडल या यथासभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एव समाचारी में आबद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एव चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा दीक्षा चातुर्मास विहार व शिष्य परपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के अधीन रहे। ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और सन्त सतियों से भी यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें ...।

इन भावो को व्यक्त करते हुए चतुर्विध सघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके आदेश दिया था कि– 'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन

में न बन सके तो मेरे पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पडित मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ कि वे यथासमव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसगठन बनाने मे प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध सघ उनकी आज्ञाओ को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

'उक्त भावना एव निर्देशन म सन्निहित भावो से सुज्ञ वर्ग को ज्ञात होना चाहिये कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहाँ मैंने एक व्यवस्था दी वहा शास्त्रसम्मत एक समाचारी मे आवद्ध होकर सर्वाधिकारसम्पन्न एक के नेतृत्व मे श्रमण सगठन बनता हो तो उसमे विलीन होने के लिये भी मार्ग खुला रखा है। आज भी मेरे वही विचार हैं।

अभी गत ज्येष्ठ मास मे उपाध्याय प रत्नश्री हस्तीमलजी म उदयपुर पधारे तव श्रमण सघ सम्वन्धी उनसे वार्त्तालाप हुआ था। वाद मे पर्युषण पर्व से पूर्व अ भा श्वे जैन कॉन्फरेंस का एक शिष्टमडल भी आया था। उससे भी श्रमण सघ सम्वन्धी चर्चा-वार्त्ता हुई थी। सभी ने सुसगठन की मेरी उक्त भावना एव विचारो को भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के रक्षार्थ सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के वाद और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करने-कराने का कहीं से कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

'स 2009 मे सादड़ी सम्मेलन मे स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी विभिन्न सप्रदायों के मुनिवरो मे मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी मे एकता लाकर एकीकरण पारस्परिक प्रेममय ऐक्यवृद्धि एव सयममार्ग में उत्पन्न विकृतियो को निर्मूल करने की दृष्टि से एक आचार्य के नेतृत्व मे एक और अविभाज्य श्रमण सघ की स्थापना की थी। वहा एकत्रित सब प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर सर्वसम्मति से उपाचार्य पद पर मुझे आसीन कर श्रमण सघ-सचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। तव मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरो को मान देकर श्रमण सस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण वनाये रखने के लिये उस गुरुतर उत्तरदायित्व को सघसेवार्थ स्वीकार किया और जो भी समस्याए मेरे सामने आईं अथवा मुझे सौंपी गईं उन पर न्याय-नीतिपूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी से निर्णय दिये। यद्यपि विधि विधान के अनुसार ऐसी समस्याओं का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था परन्तु मेरी दृष्टि मे सघ सेवा ही मुख्य रही अत जहा भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई मैंने अधिकारी मुनिवरो आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सव होते हुए भी ऐसे निर्णयो की न केवल मौन अवज्ञा ही की गई वल्कि विपरीत अध्यादेशों आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गई और कराई गई। आश्चर्य तो इस वात का रहा कि मेरे द्वारा किये गये श्रमण सघीय ऐसे निर्णय पर जव भी किसी ने मुझसे चर्चा की तो जहा तक मुझे स्मरण है किसी ने भी उन निर्णयो मे मुख्यरूप से अमुक त्रुटिया या कमिया रहीं ऐसा नहीं कहा। फिर

भी उनकी पालना नहीं हुई। इस प्रकार न्याय-नीति और अनुशासन की अवहेलना होते हुए भी मैंने धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की परन्तु जब मुझे लगा कि अब मेरे जैसे व्यक्ति का श्रमण सघ में रहना व्यर्थ है तब मुझे विवश होकर उस नवनिर्मित श्रमण सघ से सकारण पृथक होना पडा परन्तु मार्ग खुला रखा।

'बाद में श्रमण सघीय अधिकारी मुनिवरों एव श्रावकसघों द्वारा मेरे त्यागपत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार के पत्र प्रार्थना आदि आये। उनमें मैंने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी मगर जिन कारणों को लेकर मैं श्रमण सघ से पृथक हुआ उनके निराकरण का कोई सतोषजनक समाधान आश्वासन नहीं दिया। इसलिए मैंने सधन्यवाद उनकी प्रेमभावना की सराहना करते हुए जब तक मेरा सतोषजनक समाधान नहीं हो जाये तब तक क्या करूँ, ऐसा उत्तर दिला दिया।

'यद्यपि इन सब बातों को काफी समय हो गया तथापि मुझे आशा थी कि सादड़ी सम्मेलन में स्वीकार किये हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कहीं से सक्रिय कदम उठेगा परन्तु अभी पिछले दिनों जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आई और रूपचन्दजी के विषय को शास्त्रीय मर्यादाओं को भी अलग रखकर जिस ढंग से निपटा हुआ मान लिया गया तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावनानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व के पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरो द्वारा मिलकर कम से कम निकट भविष्य मे सम्भावना नहीं है।

'इन दिनो मेरा स्वास्थ्य पुन गड़बड़ा गया है और शरीर मे अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराश्य से सुसगठनप्रेमी महानुभाव भी विचलित हैं और चाहते हैं कि सघ सचालन का कुछ ठोस निर्णय ले लिया जाये। मैं भी अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिए पं. मुनिश्री नानालालजी को शुभेच्छु श्रीसंघ की सम्मति से परमप्रतापी तपोधन यशस्वी महान सत पूज्यश्री 1008 श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की पाट परम्परा पर युवाचार्य घोषित करता हूँ। मेरे जीवनकाल में ये इस पद से विभूषित रहेंगे और मेरे बाद में आचार्यपद के अष्टम पाट की शोभा बढ़ायेंगे। यही मेरी भावना है।

'यदाकदा मेरे कान पर एक बात आती रहती है कि उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण सघ से पृथक हो जाने के बाद मेरे अगरूप श्रमणवर्ग सहित मेरी स्थिति क्या रहती है ? अब अवसर आ गया है कि इस बिन्दु पर भी प्रकाश डाल दू, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाये।

'सादड़ी में निर्मित श्रमण सघ में प्रवेश इस शर्त के साथ था कि यह सघ ऐक्य योजना अखड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हूँ।

श्रमण सघ-सचालन की अवधि में शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में तथा ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग नहीं करने के सम्बन्ध में मैंने विधिवत् व्यवस्थाए दी थीं। परन्तु उन

व्यवस्थाओ के विपरीत आचार्यश्री द्वारा अध्यादेश आदि निकाले गये जिससे तत्काल तो दिल्ली में विराजित पजाबी मुनिवरो मे और बाद मे अन्यत्र भी सामोगिक सम्बन्ध-विच्छेद हो गये। इस प्रकार विभेद पड़कर सघ-ऐक्य योजना अखडित नहीं रही। मेरी उपर्युक्त शर्त के अनुसार मैं उस नवनिर्मित श्रमण सघ से पृथक होने मे उसी समय से स्वतन्त्र था परन्तु इधर समाज मे मेरी उक्त व्यवस्थाओ का पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे इसलिये जावरा से निवेदन देकर मरी सामोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए मैंने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नहीं देकर प्रतीक्षा करता रहा। इसके बाद लम्बे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए सामोगिक सम्बन्ध में सुधार नहीं हुआ और दूसरी-दूसरी बातो द्वारा व्यवस्था और बिगड़ने लगी तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण सघ से पृथक होना पडा।

'इस प्रकार श्रमण सघ से पृथक हो जाने के बाद मैं मेरे अग-रूप श्रमणवर्ग सहित अपने-आप ही यथापूर्व स्थिति में आ गया। इसमे और विशेष कुछ कहने का नहीं रहता।•

'प मुनिश्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के बाद भी जहा तक श्रमणवर्ग के साथ सामोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का प्रश्न है उसके लिये मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ, तदनुसार जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखा जा सकेगा।

'मेरे में श्रद्धा रखने वाले सत-सतीवर्ग एव श्रावक-श्राविकाए प मुनिश्री नानालालजी की आज्ञाओं को शिरोधार्य करते हुए इनको पूर्णरूपेण सहयोग देवे और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि कर रहे।

'मैं यहा पुन निर्देश करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसगठन की) स्थिति का निर्माण हो उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें और सुसगठन बनाने मे सदा प्रयत्नशील रहें।

'सघ-सचालन के बृहत् कार्य मे सत-सतियों एव श्रावक-श्राविकाओं ने मुझे सहयोग दिया उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभार मानता हूँ।

श्रमण सघ के कार्यकाल में तथा बाद में मेरे द्वारा किसी का दिल दुखा हो तो मैं एक बार पुन अन्त करण मे क्षमा-याचना करता हूँ। इति शुभम्।

उदयपुर, आसौज कृष्णा 6 स 2019 दि 22 सितम्बर 1962

चतुर्विध सघ मे हर्ष की लहर

आचार्यश्रीजी की इस घोषणा से चतुर्विध सघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गयी। हर्ष होना

• अर्थात् उपाचार्यश्रीजी श्रमणसंघ से पृथक होते ही अपनी पूर्व परम्परा के आचार्य स्वत हो जाते हैं।

स्वाभाविक ही था कि आचार्यश्रीजी ने अपना उत्तरदायित्व एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न चारित्रशील मुनिराजश्री को सौंप था जो उनकी भावनाओ को मूर्तरूप देने में प्राणपण से चेष्टा करने की भावना रखते हैं तथा विवेकशील विनयी सयमप्रेमी विद्वान विचारक हैं।

दूसरा कारण यह था कि सन्त-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये आचार्यश्रीजी ने इस अस्वस्थ अवस्था मे भी एक व्यवस्था देकर भविष्य के लिये स्पष्ट आदेश दे दिया था। सत-जन सैद्धान्तिक सुसगठन के लिये सदैव तत्पर रहे हैं और इसके लिये मान सम्मान की अपेक्षा साधना को सर्वोपरि माना है।

आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा था। इन दिनों में तो विशेषरूप से स्वास्थ्य म उतार चढाव आ रहे थे और ऐसा कुछ नहीं कह सकते थे कि शरीर की भविष्य में क्या स्थिति बने।

चतुर्विध सघ के व्यवस्था-सम्बन्धी विचार व्यक्त कर देने के पश्चात् आचार्यश्रीजी म.सा ने इसी समय आत्मनिवेदन सम्बन्धी विचारो को भी व्यक्त कर देने का उचित अवसर मानकर अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये।

आचार्यश्री गणेश के हार्दिक उद्‌गार

मेरा शरीर इन वर्षों मे कुछ कमजोर-सा चल रहा है और इन दिनों में तो कमजोरी अधिक अनुभव हो रही है। यह शरीर भौतिक पिंड है। इसको एक रोज छोड़ना ही है। सम्भव है कभी यह अचानक अपनी प्रक्रिया को बदल दे तो ऐसी दशा में जब तक मेरी ज्ञान शक्ति अच्छी तरह काम कर रही है हिताहित को पहिचानने का प्रज्ञा प्रकाश भलीभाति विद्यमान है तब तक सभी से क्षमायाचना कर लेना हितकर है। यह सोच मैं अपनी आलोचना करके सभी प्राणियों से और खासकर चतुर्विध सघ से शुद्ध हृदयपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

इस समय मेरा 73वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी 56 वर्ष होने जा रहे हैं। इस कार्यकाल में मैंने यथास्थान रहते हुए जिसको हृदय से सत्य मानता रहा हूँ, उसका आदेश उपदेश के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य और न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार विमर्श व चर्चा आदि का प्रसग भी आया है। उस समय भी जहा तक उपयोग रहा है वहा तक मेरा उन व्यक्तियो के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र ही समझा है और अब भी समझता हूँ। फिर भी आत्मा की विशेष शुद्धि के लिये उन सभी व्यक्तियो से क्षमा मागता हूँ।

मेरा साधुवर्ग के साथ गुरु और शिष्य के रूप मे, शासक और शास्य के रूप मे, रोग्य

और सेवक के रूप मे तथा दूसरे कई प्रकार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसी तरह सादडी मे निर्मित श्रमण सघ के साथ सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति एव निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये उत्पन्न विकृतियो को दूर करने के लिये एव सुसगठन के लिये व्यवस्थाए आदि दीं। दी गई व्यवस्थाओ आदि का जिन्होंने पालन नहीं किया उनके साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करनी पड़ी और अपने विचार सघ के सामने रखे। उनसे किसी के चित्त को किसी प्रकार का कष्ट पहुचा हो तो-

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वैर मज्झ न केणई।।

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत क्षमापना करता हुआ-

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम् क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ता हूँ।

प र मुनिश्री नानालालजी म सा को चतुर्विध सघ की व्यवस्था का उत्तरादायित्व सौंपने से चतुर्विध सघ की प्रसन्नता का पारावार नहीं था किन्तु युवाचार्यश्री के लिये यह आत्मनिरीक्षण का अवसर था। अत आपश्री ने निम्नलिखित आशाय के भाव व्यक्त किये—

युवाचार्यश्री के हृदयोद्‌गार

आज जो-कुछ हुआ उससे मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है अपितु कुण्ठित ही है। मुझे इस समय कुछ बोलने का भी उत्साह नहीं है। अभी जो-कुछ हुआ उसकी मैं तो आवश्यकता अनुभव नहीं करता। फिर भी महापुरुषो के हृदय में महान् आशय रहा हुआ होता है। उस आशय को हम समझने का प्रयत्न करें- यह हमारे लिये वरदानस्वरूप हो सकता है। इस भावना से दो शब्द बोल रहा हूँ।

गत वर्ष अक्षय तृतीया के दिन मेरा नाम-निर्देश किया गया। उस समय मैंने चतुर्विध सघ के समक्ष प्रार्थना की थी कि मेरा नाम इस चित्र से हटा लिया जाकर किसी अन्य महामुनि को इस गुरुतर उत्तरदायित्व को दिया जाये। चतुर्विध सघ मेरी ओर से पूज्यश्री के चरणों मे भी प्रार्थना कर मुझे मुक्त करावे। परन्तु उस समय मुझे प्रभाव डालकर मौन किया गया। गुरुदेव के सन्मुख विनययुक्त प्रार्थना ही तो कर सकता था। उसे स्वीकार करना नहीं करना उनके हाथ था।

अभी पूज्य आचार्यश्री का स्वास्थ्य जब पुनः निर्बल बना तो लोगों में हलचल मच गई। लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे। मेरे कान पर भी शब्द आये तो विनयपूर्वक मैंने आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना की कि आपश्री जो-कुछ भी सोचें किसी अन्य योग्य मुनिवर के लिये सोचें। परन्तु आचार्यश्री ने फरमाया कि बिना पूछे तुम्हारे बोलने की आवश्यकता नहीं। जब तुमसे पूछा जाय तब उत्तर देना आदि। इतना फरमाते समय जब मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्री को इससे कुछ कष्ट हो रहा है तो मैं मौन हो गया। परन्तु प्रमुख श्रावकों से कहा कि आप लोग ही विनयपूर्वक आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना कर इससे मेरे नाम को हटवा दें। लेकिन समय की बात कहूँ या अन्य कुछ ये महानुभाव भी मेरे सहायक नहीं बने, बल्कि जो-कुछ अभी हुआ इसी के लिये मुझे कहते रहे। अधिकांश प्रमुख श्रावक तो एक कदम और आगे बढ़कर किसी-न-किसी रूप में मुझको भी कहते रहे कि आचार्यश्री की आज्ञा का आपको पालन करना होगा। आप मनाही कैसे कर रहे हैं ! श्री जुगराजजी सेठिया श्री सुन्दरलालजी तातेड़ श्री हीरालालजी नादेचा आदि ने अपने-अपने ढंग से एकान्त में बहुत-कुछ कहा। वे तो यहा तक कह बैठे कि क्या आचार्यश्री के चित्त को शांति देना नहीं चाहते आदि। इस प्रकार मुझे चुप कर दिया। अन्य भी कई सज्जनों ने इसी प्रकार कुछ-न-कुछ कहा। मगर मेरे विचारों के समर्थन में कोई नहीं बोला। अब मैं इस प्रसंग के उपस्थित होने पर नतमस्तक हो सुन रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा का मुख्य लक्ष्य और ही है। मैं तो विद्यार्थी जीवन में रहते हुए अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के साथ जिस उद्देश्य से निकला हूँ, इस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ। इसलिये मुझे उसी तरह की स्थिति में रखा जाये तो बहुत आनंदित हूँ। एक बात और, चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री के चरणों में पहले भी प्रार्थना की थी और आज उन्हीं श्रीचरणों में पुनः प्रार्थना कर रहा है। लेकिन चतुर्विध संघ को यह तो विदित ही होगा कि ऐसा करके उसने अपने ऊपर एक महान उत्तरदायित्व ले लिया है। इसलिये इस गुरुतर उत्तरदायित्व का परिवहन चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य को करना ही होगा। मुझे जो भार सौंपा जा रहा है उसमें चतुर्विध संघ की भी जवाबदारी है। इसलिये एक दृष्टि से मैं चिन्ता जैसी बात अनुभव नहीं करता हूँ, क्योंकि मैं तो बालक विद्यार्थी हूँ। माता की गोद म बालक जैसे सभी चिन्ताओं से मुक्त रहता है उसी प्रकार मैं माता की गोद के समान चतुर्विध संघ और आचार्यश्री के बीच बैठा हूँ। चतुर्विध संघ मुझे ज्ञान-दर्शन चारित्र की उन्नति के लिये सहायक हो और आचार्यश्री का वरदहस्त मेरे सिर पर हमेशा बना रहे जिससे मेरा व चतुर्विध संघ का जीवन मंगलमय प्रसंग में बीते। यही शुभकामना है।

समय अधिक हो गया है और आचार्यश्री को अस्वस्थता के कारण कष्ट हो रहा है अत अब अधिक बोलना नहीं चाहता।

युवाचार्यश्री के उपर्युक्त प्रवचन के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

चादरप्रदान समारोह का निश्चय

पूज्य आचार्यश्रीजी म सा की सघ-व्यवस्था विषयक घोषणा से चतुर्विध सघ को सतोष हुआ। अब उसकी आकाक्षा थी कि युवाचार्य चादर-प्रदान की तिथि निश्चित करके चादर-प्रदान समारोह मनाया जाये। सघ ने विचार-विमर्श करके स 2019 मिती आसोज शुक्ला 2 रविवार दि 30 सितम्बर 1962 का दिवस समारोह के लिये निर्धारित किया।

समारोह आठ दिन बाद था और इतने अल्प समय मे विभिन्न श्रीसघो को सूचना देने एव समारोह मे आने वाले श्रावक-श्राविकाओ के आवास आदि की व्यवस्था करने का महत्त्वपूर्ण कार्य था। लेकिन उदयपुर श्रीसघ समारोह को सफल बनाने के लिये सोत्साह सलग्न हो गया। तार टेलीफोन पत्र आदि के माध्यम से देश के समस्त श्रीसघो को समारोह में उपस्थित होने के आमत्रण-पत्र भेज दिये तथा अनेक स्थानों पर अपने प्रतिनिधियो को भी भेजकर आमत्रण दिया तथा आवास आदि की व्यवस्था भी बहुत ही सुव्यवस्थित कर ली।

समय थोड़ा था किन्तु सूचना मिलते ही बाहर से हजारों भाई-बहिन समारोह मे सम्मिलित होने के लिये उदयपुर में एकत्रित होने लगे। मार्गों चौराहों गली गलियारों में जहा भी देखो वहीं विभिन्न नगरवासियो के समूह दिखलाई देते थे।

समारोह दिवस का दृश्य

आसोज शुक्ला 2 के प्रात भुवनभास्कर अशुमाली की स्वर्णिम किरणों के झाकने के साथ ही आबाल-वृद्ध नर-नारी टोलियो मे पूज्य आचार्यश्रीजी के वासस्थान पचायती नोहरे की ओर बढ़ चले। प्रातःकालीन मगलगीतों से दिशाए मुखरित हो रही थीं।

प्राकृतिक सुषमा मे एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर हो रहा था। शीतल मद पवन के झोंके शरदकालीन सुखद वातावरण की अनुभूति करा रहे थे। हरे-भरे खेतो से सुसज्जित प्रकृति नटी इस समारोह के स्वागत मे नवधान्यों की अजलि अर्पित कर रही थी। बडे-बडे सरोवर अपने सरोरुहो के विकास से समारोह के स्वागत और अभिनन्दन मे सलग्न थे। विहगवृद दूर गगन में कलरव करते हुए समारोह की शोभा-प्रसार मे प्रयत्नशील थे। मानो प्रकृति का कण-कण समारोह के समर्थन मे अपना सहयोग अर्पित कर रहा हो।

सूरजपोल के विस्तृत प्रागण मे समारोह के आयोजन का प्रबन्ध किया गया था।

आचार्यों से चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुष हुए हैं उन्होंने पाट-परम्परा पर चादर धारण की है। यह चादर श्वेत एव उज्ज्वल है। निष्कलक पवित्र तथा धब्बों से रहित है। इसके समान अपने जीवन मे स्वच्छता निर्मलता पवित्रता एव उज्ज्वलता आदि रखने का जो सदेश चादर के रूप में पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है उसको मैं आप तक पहुचा रहा हूँ।

आज का यह चतुर्विध सघ जिस रूप मे यहा एकत्रित हुआ है उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो भी घटनाए घटित होती हैं और उनमें जो धार्मिक संस्कार गतिमान हैं उन सस्कारों को जीवन में उतारकर उन्नत बनाने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करना है।

"ससार म जितने भी प्राणी हैं सब एक हैं। आत्मीय दृष्टि में हममे कोई भेद नहीं है। हम सब विश्वकल्याण की कामना लेकर चलें। इसका प्रतीक कोई-न कोई चाहिए ही। ससार में अनेक तरह के रग हैं जो अलग-अलग रूप मे आते हैं। राष्ट्रीय झडे में तीन रग हैं। ये तीना रग तीन भावनाओ को व्यक्त करने वाले हैं। लेकिन इस चादर का रग केवल सफेद है। जो सात्त्विक गुण और शाति का प्रतीक है। यह बताता है कि इस भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई-भाई में शान्ति प्रेम एव सात्त्विक गुणों का सचार हो हमारा जीवन ठीक ढंग से चले और चतुर्विध सघ अपना कर्तव्य लेकर निरतर आगे बढ़े।

सहयोग के लिए तैयार - 'पूज्य आचार्यश्री के साथ साथ मुनिवृन्द भी इस चादर को हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुए हैं। दूसरे मुनियों व साध्वियों की शुभकामनाए प्राप्त हुई हैं। पजाबी मुनिवर प र श्री सत्येन्द्रमुनिजी पं श्री लखपतरायजी व प मुनिश्री पद्मनयनजी म सुदूर पजाबभूमि से यहा पधारे। तपस्वी केशूलालजी म जो बेले-बेले की तपस्या करते हैं मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म व लघु मुनिश्री बाबूलालजी म आदि एवं साध्वीवृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त कर रहे हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को आगे बढ़ायेंगे।

हितैषी भावना अविस्मरणीय - आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणों में बैठे हैं। पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा का लाभ कई भाइयों ने लिया है और ले रहे हैं। यहा उपस्थित डॉ शूरवीरसिंहजी सा न्यातीजी एव प्राकृतिक चिकित्सक डा हिम्मतसिंहजी और अनुपस्थित डा शर्मा सा डा माथुर सा., डा पी एम ओ., डा. ऋषि एव डा गुप्ता सा आदि महानुभाव तथा वैद्य बाबूभाई ने अनन्य भाव से आचार्यश्री की सेवा की है। उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नहीं जा सकती।

महाराणा सा भी आज यहां उपस्थित हुए हैं। आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है जिन्होंने धर्म व सस्कृति और दुर्गों को बचाते हुए

अकेले रहना मजूर किया घास की रोटिया खाईं परन्तु धर्म से विमुख नहीं हुए। उन्हीं महाराणा प्रताप की पुण्यभूमि उदयपुर में पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है। यह महापुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि कमजोर है परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें इतनी शक्ति है कि वह तरुणो में भी नहीं है।

सम्प्रदाय मात्र कलेवर- 'निष्पक्ष भावना से जो यह चादर ओढाई गई है इसमें ऊँचा-नीचा धागा नहीं है। सब धागे सगठित हैं समान हैं पतले अथवा मोटे नहीं हैं। ठीक इसी तरह इस चादर को ओढाने में सम्मिलित होने वाले चतुर्विध सघ को भी मन वचन काया से एकरूपता लाना है। श्रद्धा प्ररूपणा स्पर्शना का भी एकरूप होना नितात आवश्यक है। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्बी हो किसी भी सप्रदाय का नाम धराता हो प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप मे समान है। मैं तो सप्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ।

आज हम पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आया है। मैं चाहता हूँ कि आप और हम सब विद्यार्थी के रूप मे होकर मानव-जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभाये। बीच मे जो भी बाधाए आयें उनको सम्यक रीति से पाटने का एव विश्व मे अशाति के बादल मडरा रहे हैं उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करे।

उत्तरदायित्व चतुर्विध सघ पर- 'मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध सघ पर पूर्णरूपेण आ गया है। चतुर्विध सघ ने अपने ऊपर बडी-भारी जिम्मेदारी ली है। मैं एक विद्यार्थी हूँ। आपका कर्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बने। मेरे मे कोई त्रुटि दिखाई दे तो आप लोगो का कर्तव्य है कि आप मरे सहायक बनकर त्रुटि को निकालकर मेरे जीवन को उन्नत बनावें। मैं एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ। आचार्यदेव के चरणों में आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था। इन महापुरुष ने मुझ ग्रामीण छोटे-से व्यक्ति को अपने चरणों म स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया है उससे मैं जन्म-जन्मान्तर मे भी उत्रण नहीं हो सकूगा। आज ये महापुरुष शरीर से अस्वस्थ हैं आप सब यही चाहते हैं कि आचार्यश्री स्वास्थ्यलाभ कर दीर्घायु बने।

वरदहस्त मस्तक बना रहे- 'मेरे अन्तर् मे क्या क्या भावनाए काम कर रही हैं उनको शब्दो द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये कठिन हो रहा है। इनके श्रीचरणों म रहते हुए आज जो मैं सयम पालने मे अपने-आप को थोडा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्हीं के आशीर्वाद एव कृपादृष्टि का प्रताप है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत कुछ और प्राप्त करना है। इसलिये मेरे अन्तर्मन मे रह-रहकर यही भावना उठती है कि प्रभो ! पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घकाल तक बना रहे ताकि इनकी साधना के अनुभव द्वारा मैं अपनी साधना

में यत्किंचित कुछ बढ़ोतरी करके अपने-आप को धन्य मान सकूं। आप लोगो की भावना का समूह विराट् एव महान् है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने मे सहायक होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है वह चतुर्विध सघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानव-जीवन की उच्चता प्राप्त करने में और इस पद के भार को वहन करने में शक्ति प्राप्त हो तथा शान्तिपूर्वक निर्बाधगति से प्रगति होती रहे यही आचार्यश्री से शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

शुभकामना की चाह- 'मैं इस पद को अपने-आप के लिये महत्त्व नहीं दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतुर्विध सघ की सेवा में मुझे रखा है। अत मैं चतुर्विध सघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध सघ मेरे लिये माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध सघ के बीच मुझे रखा है तो बीच में रहने वाले की सुरक्षा की जिम्मेदारी चतुर्विध सघ पर आ जाती है। यहा पर उपस्थित साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका तथा अन्य महानुभावों से भी मैं शुभकामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जनकल्याण विश्वमैत्री एव विश्वशांति तथा निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सके ऐसा शुभ सकल्प आप लोगों का हो।

उदयपुर सघ की सेवा चिरस्मरणीय- 'उदयपुर सघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है उस कार्य को सारा चतुर्विध सघ कभी भूल नहीं सकता यह सदा के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। उदयपुर सघ का आभार इस रूप में साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

महाराणा को क्षत्रिय धर्म अपनाने का आह्वान- 'भगवान महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिंहासन का परित्याग करके जनपद के बीच आये। जनता के दुखों की अनुभूति की। दुख निवारण के उपायो को उन्होंने घोर साधना करके ढूढ निकाला। कष्ट और बाधाओं को सहन कर निर्मल ज्योति जगाई। उन्हीं भगवान महावीर की यह शासन परम्परा चल रही है। इसमें क्षत्रिय वीरों को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

'यहां उपस्थित महाराणा साहब भी क्षत्रिय हैं। अत आपके ऊपर भी उत्तरदायित्व है। महाराणा सा को भी मैं तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रिय धर्म को अपनाकर भगवान महावीर की तरह राज छोड़कर धर्म का उपदेश दें तो जनकल्याण की भावना के साथ भगवान महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

सम्पत्ति से मोह दूर कर शासन सेवा करें- आप सेठिया लोग एव अन्य सामान्य प्रजाजन यहाँ एकत्रित हुए हैं व अपनी सपत्ति का तिरस्कार न करें। अपनी सेठाई की मन को अलग रखकर सपत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करें अथवा त्याग की भावना

से कुछ उदारता करके जनशान्ति के लिये कुछ करके दिखावे। आप भी क्षत्रिय हैं। वीर हैं। आज बनिये हो गये तो क्या हुआ ? आप मे भी वही क्षत्रिय तेज है। आप अपने निज रूप को पहचानें और जनमानस की भावनाओं को लक्ष्य में रखकर अपने कर्तव्य पर विशेष ध्यान देवें।

'इस चादर का अभिप्राय शुभ भावना का प्रतीक भी है। शुभ भावनाए उज्ज्वल होती हैं और यह चादर भी उज्ज्वल एव खादी की होकर सादी है। सादगी ही आजादगी का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते हैं कि 'सादगी ही आजादगी है और फैशन ही फासी है। अत भारत के अन्दर इस सादगी की तरफ भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

'मैं इस चादर पर पूरे विचार नहीं रख पाया हूँ। फिर कभी प्रसगोपात्त समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल सादा पवित्र निर्मल एव मनसा वाचा कर्मणा एकरूपता मे रखकर सहयोगी बनेगे तो यह सघ चिरकाल तक उन्नत दशा पर पहुचेगा। इसी भावना को रखते हुए मैं अपना वक्तव्य पूरा करता हूँ।

चतुर्विध सघ की ओर से समर्थन

समारोह मे पूज्य आचार्यश्री समस्त उपस्थित साधु-साध्वीवृन्द की ओर से प र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म सा एव युवाचार्यश्री नानालालजी म सा के प्रवचनों के पश्चात् बीकानेर श्रीसघ की ओर से श्री जेठमलजी सेठिया तथा अन्य समस्त श्रीसघों की ओर से श्री कानमलजी नाहटा ने युवाचार्य चादर-प्रदान का समर्थन किया।

उपस्थित चतुर्विध सघ की ओर से समर्थन हो जाने के अनतर चादर-प्रदान के लिये अपना समर्थन देने एव समारोह की सफलता के लिये अनेक सत-मुनिराजो एव श्रावक सघों से प्राप्त सदेशों को उदयपुर श्रीसघ के मन्त्री श्री तख्तसिहजी पानगड़िया ने पढकर सुनाया।

प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन

समारोह करीब सवा घटे मे सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर करीब नौ बजे तक मेघमडल में सूर्य भी छिपा रहा। सिर्फ उस समय एक क्षण के लिये पूर्ण प्रभामडल के साथ प्रगट हुआ जब पूज्य आचार्यश्रीजी ने युवाचार्यश्रीजी को चादर ओढ़ाई। इस प्रकार इस चादर-प्रदान का समर्थन जनमेदनी द्वारा तो किया ही गया था किन्तु चादर ओढाते समय प्रगट सूर्य-प्रकाश से प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ कि ये सत-मुनिराज अपने ज्ञान सूर्य के प्रकाश से समस्त विश्व को प्रकाशित करेंगे।

अन्तिम पटाक्षेप

लेखनी कुंठित हुई

जो लेखनी महापुरुष आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के उदय विकास का चित्रण करने में जितनी उत्साही थी उतनी ही उनके जीवन का अन्तिम चरण चित्रित करने में अनेक भावनाओं से ग्रस्त होकर कुण्ठित हो गई है और घनीभूत वेदना से इस अवसर की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर विश्राम के लिये आतुर है।

इस सक्षिप्त रूपरेखा को प्रस्तुत करने के अवसर पर भी उनकी महानता के आदर्शों का चित्रण करेगी। क्योंकि 'छूकर जिनके चरण अमर हो गया मरण'। वे जन-जन की श्रद्धा के आस्पद है। आज भी उनकी साधना सर्वभूतहितेरत की कामना वाले प्रत्येक विवेकशील को श्रद्धावनत कर देती है। उनका जाज्वल्यमान जीवन आकाशदीप की तरह सद्विवेक की प्रेरणा देकर सदैव जीवन के उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर रहा है।

वे श्रमण थे। उनका श्रम, शम सम आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये था। उनका श्रामण्य जीवन-शुद्धि के लिये आत्म-साधना के लिये सर्वोच्च पुरुषार्थ था और 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्' की उक्ति को सामने रखते हुए अपने पौरुष को व्यक्त करने का सकेत करता था।

अत एक ऐसे महापुरुष के अन्तिम चरण को चित्रित करने के लिये किंचित् प्रयास कर रही है।

निर्भयता का अन्तिम डग

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा सघ-व्यवस्था के दायित्व से उपरत हो चुके थे। अब गुरु-शिष्य शास्य-शासक सेव्य-सेवक पूज्य-पूजक आदि उपाधियों से परे होकर स्वय में ही केन्द्रित हो चुके थे। अब आत्मा ही ध्याता ध्येय ध्यान बन चुकी थी।

शरीर की उपाधि अवश्य साथ थी किन्तु अब उससे इतना ही सम्बन्ध रह गया था कि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन में जितनी दूर तक यह सहयोगी बना रहे तो ठीक अन्यथा यह भी साथ छोड़ना चाहे तो छोड़ सकती है। यह केंचुली आज नहीं तो कल, अपने-आप ही विलग हो जायेगी अत इससे भी प्रीति कहा तक निभ सकेगी !

ऐसे ही विचारों में रमण करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. कैंसर जैसे महाव्याधिग्रस्त जर्जरित शरीर की उपेक्षा कर आत्मचिन्तन में लीन रहने लगे।

आचार्यश्रीजी का शारीरिक स्वास्थ्य दिनोंदिन गंभीर रूप धारण कर रहा था। डाक्टर शूरवीरसिंहजी एव उनके सहयोगी अन्य डाक्टर श्री न्याति श्री माथुर बडी ही लगन एव भावना से उपचार करते आ रहे थे। सबकी एक ही भावना थी कि इन महान् आत्मार्थी सत की सेवा-परिचर्या कर स्वस्थ बनाये। जिस तरह से चतुर्विध सघ आचार्यश्रीजी के दीर्घायु होने की कामना करता था उसी प्रकार चिकित्सकगण भी उनके उपचार में लीन हो स्वास्थ्य के लिये प्रयत्नशील थे। उनकी बुद्धि विवेक कौशल इसी एक प्रयत्न के लिये केन्द्रित थे। लेकिन मानवीय प्रयत्नों की भी एक सीमा होती है। वे क्रम-क्रम से असफल होने लगे और आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोदिन निर्बल होने लगी।

दीपशिखा की लौ की तरह यह जीवन-ज्योति कब विलीन हो जाये इसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। आशकाओं के बीच मनों म शका बनी रहती थी। लेकिन आचार्यश्रीजी म.सा इस गिरती हुई शारीरिक स्थिति में सचेत थे। वे आत्मजयी इस स्थिति म भी प्रफुल्ल थे। उन्होंने अनक बार युवाचार्यश्री समीपस्थ सतमडल एव अनेक श्रावकों के समक्ष सथारा ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। चिकित्सको का अभिमत था कि आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के बारे मे कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। अत चतुर्विध संघ आचार्यश्रीजी से बराबर निवेदन करता रहा कि गुरुदेव आप सथारे के लिये शीघ्रता न करें, अवसर आने पर आपकी सेवा में स्वय अर्ज कर देगे। लेकिन वह दिन भी आया जब आचार्यश्रीजी म.सा ने मृत्यु-महोत्सव मनाने की घोषणा करदी।

सथारा की सक्षिप्त झाकी

पूज्य आचार्यश्रीजी के रोगाक्रान्त शरीर के विलय होने की सभावना-सी बन रही थी। संथारा अगीकार करने के छह-सात दिन पूर्व अन्नाहार का त्याग कर ही दिया था सिर्फ प्रवाही पदार्थ लेते थे। लेकिन उन पदार्थों के प्रति भी विरक्ति सी थी।

अपनी शारीरिक स्थिति के बारे में आचार्यश्रीजी डाक्टर शूरवीरसिंहजी स पूछते रहते थे कि डाक्टर सा मुझे स्थिति से परिचित रखना स्थिति बताने में संकोच मत करना। डा सा प्रत्युत्तर में निवेदन करते थे कि जो भी स्थिति होगी बिना हिचक के बतला दूगा। इसमें मोह को आडे नहीं आने दूगा। आचार्यश्रीजी म.सा सदैव आत्मध्यान में लीन रहते थे। औषधि आदि से भी विरक्ति हो चुकी थी किन्तु चतुर्विध सघ के सतोष के लिये कभी कभी थोडी बहुत औषधि ले लेते थे।

प्रभु के ध्यान मे लवलीन

सथारा सीजने के तीन दिन पहले की बात है। डा रामावतारजी ने आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर औषधि लेने की अर्ज की। आचार्यश्रीजी म ने फरमाया–अब मुझे परमात्मनाम-स्मरण की दवा लेनी है। वही मेरे इस ससार-रोग के उन्मूलन की कारगर औषधि है। तब डा रामवतारजी ने युवाचार्यश्रीजी को एकात में ले जाकर कहा कि इन महापुरुष के बारे में अपने सोचने की सीमा समाप्त है। इनका ध्यान प्रभु मे लग चुका है। शरीर की तरफ तो इनका लक्ष्य रहा ही नहीं है। डा शूरवीरसिहजी आदि अन्य चिकित्सको की भी यही धारणा बन चुकी थी।

इन्हीं दिनो की बात है। एक दिन युवाचार्यश्रीजी अपूर्व अवसर क्यारे आवशे' आदि सुना रहे थे। आचार्यश्रीजी ध्यानमग्न हो यह सब सुन रहे थे कि सुनाते-सुनाते एक कडी दुबारा बोल गये। तत्काल इस भूल को सुधारते हुए फरमाया कि यह कड़ी तो बोल चुके हो आगे सुनाओ। इस ध्यानमग्न मुद्रा मे जब भी कोई दर्शनार्थी आपश्री के मुखमण्डल को निहारता तो मुख के चारो ओर एक अलौकिक प्रभामडल के दर्शन होते थे। उस समय किसी को यह कहने का साहस नहीं होता था कि यह रोगाक्रान्त शरीर है। सभी ओज तेज और सौम्य के दर्शन कर अपूर्व सतोष का अनुभव करते थे।

दिनाक 9 1 63 के सायकाल का समय था। सायकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आचार्यश्रीजी म दूसरे दिन के प्रात काल तक का सागारी सथारा करके पौढ़ गये। रात्रि मे युवाचार्यश्रीजी एव अन्य सन्त आपके निकट ही थे और जब भी उन्होने आपको देखा तो सतत आत्मध्यान मे लवलीन पाया। रोगजन्य वेदना की अशमात्र भी अनुभूति लक्षित नहीं हुई।

मृत्यु-महोत्सव की तैयारी

दि 9 1 63 को पौष शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। ऊपर नीलगगन में चन्द्र अपनी अमीवर्षा से अमृत उडेलते हुए प्रकृति के कण-कण को प्रकाशित कर रहा था और इधर आचार्यदेव ज्ञानामृत से आत्मा को आप्लावित कर उसके अनन्त गुणों को विकसित कर रहे थे। दोनो अपने-अपने ढग से कल्याण के कार्य मे क्रियाशील थे।

दिनाक 10 1 63 माघ कृष्णा 1 का सूर्य उदित हुआ। सूर्य की स्वर्ण किरणें प्रकृति में नया उल्लास भरते हुए आगे बढ रही थीं। आचार्यदेव भी प्रात कालीन प्रतिक्रमण आदि करने के उपरान्त पद्मासन से विराज गये। दर्शनार्थियों का आवागमन समाप्त होने के उपरान्त दैनंदिन कार्यक्रम से निवृत्त हुए। अनन्तर थोडा सा जल पीकर पुन आत्मध्यान में ध्यानस्थ हो गये।

ध्यान-समाप्ति के उपरान्त योगिराज ने आखें खोलीं। उनमे एक अलौकिक तेज झलक रहा था। युवाचार्यश्रीजी को निकट बुलाकर फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अत इस विषय में मैं तो सावधान हूँ ही स्वय भी सावधानी रखना। डाक्टर सा आ जाये तो उनसे भी कुछ बात करनी है।

इतने में डाक्टर शूरवीरसिहजी भी आ गये। पहले की तरह उन्होंने शारीरिक परीक्षा की और कमरे से बाहर चले आये। अत पुन सकेत कर डा सा को बुलाया और उनसे पूछा कि अब मैं सथारा लेना चाहता हूँ, इसमें आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से जो जानते हों कहिये।

शारीरिक स्थिति बहुत ही चिन्तनीय हो चुकी थी। रोग अपनी सीमा को पार कर चुका था। रक्तचाप और नाड़ी की गति में काफी अन्तर आ गया था। अत उन्होंने प्रत्युत्तर में निवेदन किया कि हमारे उपचार का सिद्धान्त और विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये नहीं है। फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

तिविहार सथारा शान्ति का साम्राज्य

आचार्यश्रीजी ने डाक्टर सा के सकेत को समझ लिया और युवाचार्यश्रीजी की ओर सकेत करते हुए फरमाया कि मैं तो अपने में सावधान हूँ ही और तुम भी ध्यान रखना। अनतर सथारा अगीकार करने के लिये 'इच्छाकारेण' आदि की पाटिया, छह जीवनी दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन आदि सुनाने और सुनाते समय किसी दूसरी ओर ध्यान न जाने देने का संकेत किया।

इच्छाकारेण आदि की पाटी सुनने के बाद आचार्यश्रीजी म ने पुन फरमाया कि तीन दिन पूर्व मैंने स्थविर प मुनिश्री सूरजमलजी म.सा के पास सब आलोचना कर ली है और अभी पुन आलोचना कर छह जीवनी सुन ली है। अब मुझे डाक्टर, वैद्य या अन्य कोई गृहस्थ स्पर्श न करे। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ, और प्रात 10.20 बजे तिविहार सथारा ग्रहण कर ध्यानस्थ हो गये। एकान्त स्थान था। सिर्फ युवाचार्यश्री व स्थविर पद-विभूषित तपस्वी प मुनिश्री सूरजमलजी म सा देख-रेख के लिये वहा उपस्थित थे। कुछ समय बाद नेत्र खोले तो उनमें अलौकिक तेज चमक रहा था मुखमडल पर शाति का साम्राज्य अठखेलिया कर रहा था। श्वसोच्छ्वास गति कुछ तीव्र अवश्य हो गई थी लेकिन चेतना में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं था।

माघ कृष्णा 1 दिनाक 10 1 63 का दिन इसी प्रकार आत्मरमण करते हुए आगम पाठों को सुनते हुए पूर्ण शाति से व्यतीत हुआ। दर्शनार्थियों का आवागमन भी सीमित कर दिया गया था और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दर्शन करने वालों के द्वारा किसी प्रकार की आवाज आदि न हो।

पूर्ण सजगता के साथ चौविहार सथारा

माघ कृष्णा 2, दि 11 1 63 ज्योतिपुज के विलय का दिन था। दि 10 1 63 को सागारी सथारा लेते समय आचार्यश्रीजी जिस आसन से विराजे थे उसी प्रकार से ध्यानस्थ होकर युवाचार्यश्रीजी से प्रात कुछ नित्यनियम के पाठ सुन रहे थे कि उस समय वे एक कड़ी कहना चूक गये तो उसको पुन सुधारने का सकेत किया तथा प्रतिक्रमण के समय स्थविर प र मुनिश्री सूरजमलजी म सा ने मागलिक कुछ धीरे सुनाई। लेकिन आचार्यश्रीजी को सुनाई न पड़ने पर फरमाया कि कुछ उच्चस्वर से मागलिक सुनाओ। अत युवाचार्यश्रीजी ने पुन मागलिक सुनाई।

समय के साथ शारीरिक परमाणुओ में निर्बलता आती जा रही थी। स्थिति को समझकर आचार्यश्रीजी म सा ने दोपहर को दो बजे चौविहार सथारा का प्रत्याख्यान कर लिया। करीब 2 बजे महासती श्री सोहनकवरजी म आचार्यश्रीजी से खमत-खामणा करने पधारे। श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासतीश्री आपसे खमत-खामणा करते हैं तो आचार्यश्रीजी ने आख खोलीं और गर्दन हिलाकर खमत-खामणा का जवाब दिया।

हसा चला परदेश

करीब 3 बजे का समय था। शरीर में और भी निर्बलता के लक्षण दिखने लगे। शारीरिक स्थिति देखने के लिए युवाचार्यश्रीजी ने नाडी देखना चाही तो आपने मना कर दिया और 3-20 होते-होते तो पूर्ण चेतनावस्था में मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से निराकार आत्मा ने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। इस समय मुखमडल पर एक दैवी ओज झलक रहा था और स्मित हास्य से परिपूर्ण था।

उस समय निकटस्थ युवाचार्यश्रीजी आदि अन्य सन्तों ने जो अद्भुत दृश्य देखा वह अनुभूतिगम्य है। उसका शाब्दिक वर्णन करने की सामर्थ्य किसी मे भी नहीं है।

साधना की सफलता के साथ पूज्य आचार्यश्रीजी की जागरूक आत्मा ने 3 20 बजे इस भौतिक देह का त्याग कर दिया। हाँ रोगाकान्त देह यथावत् पद्मासन अवस्था में ध्यानस्थ इन चक्षुओं के दृष्टिगत हो रही थी।

अश्रुवर्षा, श्रद्धार्पण

पूज्य आचार्यश्रीजी के सथारा अगीकार करने की सूचना यथासमय सभी श्रीसघों को मिल चुकी थी। अत विभिन्न श्रीसघों के सदस्यो गणमान्य सज्जनों आदि का उदयपुर आने का ताता लग गया। सभी में एक ही उत्सुकता थी कि अपने आराध्य के चरणों के नतमस्तक

हो दर्शन कर ले। दि 10 के सायकाल और दि 11 के प्रात काल होते-होते तो हजारों भाई बहिन उदयपुर मे आ चुके थे।

आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए कब क्या हो जाये निश्चयात्मक रूप से कहना शक्य नहीं था। अत पचायती नोहरे के प्रागण मे हजारो नर-नारी शाति से खड़े हुए थे। इतने मे आचार्यश्रीजी के विराजने के कमरे में हलचल नजर आई। साधु-मुनिराजों का कमरे मे पहुचना और नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री को चादर ओढाना वदना करना देखा और दूसरे ही क्षण हजारों नेत्रों ने मूक श्रद्धाजलि के रूप मे अश्रुवर्षा प्रारम्भ कर दी। मन का भार आखो की धार मे बह निकला। आखो की बरसा ने वातावरण मे विषाद बिखेर दिया था।

पूज्य आचार्यश्रीजी के सथारा सीझने का समाचार उदयपुर नगर के इस छोर से उस छोर तक प्रसरित हो गया। जनता-जनार्दन ने अपने ही क्षेत्र मे उछरे यहा ही विकसित हुए और यहा ही विलय को प्राप्त हुए मानव से महामानव बनने वाले आचार्यश्रीजी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये अपना कारोबार बद कर दिया। विभिन्न गली-कूचो और चौराहो से आबाल-वृद्ध जन यथाशीघ्र पचायती नोहरे पहुचने के लिये निकल पडे। मुरझाये मुख और श्लथगति से बढता हुआ जनसमूह अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये उत्सुक था। सध्याकाल होते-होते तो सहस्रा का जमघट श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये एकत्रित हो चुका था।

चतुर्विध सघ के गगनागण मे सयम तप त्याग की किरणों से प्रकाशमान पूज्य आचार्यदेव के अवसान से सहस्ररश्मि सूर्य भी अपनी किरणे समेटते हुए अस्ताचल की ओर बढ़ चला। इस विषादवेला में अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये यथाशीघ्र अपने-आप को समेट लेना ही उसे उचित प्रतीत हुआ। उधर दिवाकर ने भी अपनी लघु रेखा के द्वारा श्रद्धेय के प्रति अपना श्रद्धापात्र प्रस्तुत कर दिया।

उदयपुर श्रीसघ के तारो तथा आकाशवाणी के प्रसारण से आचार्यश्रीजी के देहविलय का समाचार समस्त देश मे फैल गया। देश के विभिन्न स्थानो के श्रीसघों ने सामूहिक रूप मे एकत्रित होकर श्रद्धाजलि अर्पित की और अनेक व्यक्ति समाचार सुनते ही अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर की ओर चल पड़े।

अतिम यात्रा महायात्रा

अन्तिम यात्रा दि 12 1 63 को प्रात 11 बजे प्रारम्भ होने वाली थी और प्रात होते होते तो हजारों जन उदयपुर मे आ चुके थे। उदयपुर नगर के व्यापार व्यवसाय केन्द्र तो कल दोपहर से ही बद थे और भौतिक देह-विसर्जन के अनन्तर श्रद्धाजलि अर्पित हो जाने तक बद रखने का निश्चय हो चुका था।

दि 12 1 63 माघ कृष्णा 3 के प्रात 11 बजे पवित्र अग्नि मे देह विसर्जन के लिये यात्रा-जुलूस पचायती नोहरे से प्रारम्भ हुआ। नगर के राजमार्गों के दोनो और पक्तिबद्ध जनसमूह खड़ा था। मकानो की छते और खिडकिया बच्चो और महिलाओ से अटी पड़ी थी और करीब 50 हजार का जनसमूह आचार्यश्री के जयघोष गुणगान करते हुए मथरगति से साथ-साथ चल रहा था। करीब ढाई मील लम्बा यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गो से होता हुआ अग्नि-सस्कार के लिये निश्चित स्थान गगोद्भव में 2 बजे के करीब पहुचा। राज्याधिकारियो की व्यवस्था और अनुशासित जनसमूह के फलस्वरूप किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं हो सकी थी।

चदन काष्ठ नारियल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यो से निर्मित रथी पर आचार्यश्रीजी के पार्थिव शरीर को अधिष्ठित कर ठीक 3 बजे अग्नि प्रज्वलित की गई और देखते-देखते पार्थिव शरीर अपने मूल तत्त्वो मे समाहित हो गया। और अन्तिम श्रद्धाजली के रूप मे नतमस्तक हो जनता उदास मुख लिये हुए अपने-अपने स्थान पर आने के लिये लौट पड़ी।

गुणानुवाद सभा

पूज्य आचार्यश्रीजी म सा का पार्थिव देह भी आखो से ओझल हो गया था। जिस उद्देश्य के लिये जीवन का श्रीगणेश किया उसमें सफलता प्राप्त कर महाप्रयाण की ओर चल पड़े थे। अब तो उनके गुणो की सौरभ व्याप्त थी। उनकी अनुभूति पूर्ववत् विद्यमान थी। उन गुणो का गान करने पुनरावृत्ति करने के लिये दि 13 1 63 को प्रात देश के कोने-कोने से आगत श्रावक-श्राविका समुदाय ने नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री नानालालजी म सा की सेवा मे प्रार्थना की कि आपश्री सतमडल सहित पचायती नोहरे मे पधार कर स्व आचार्यश्रीजी के बारे मे अपने हार्दिक उद्गार प्रगट करने की कृपा करें।

सामूहिक प्रार्थना पर लक्ष्य देकर नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री सत-सतीवर्ग सहित पचायती नोहरे मे पधारे और अपनी-अपनी श्रद्धाजलि समर्पित की। मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म सा आदि सतो एव सतियाजी म सा तथा नव-आचार्यश्रीजी म सा ने श्रद्धाजलिस्वरूप जो भाव व्यक्त किये वे इस प्रकार हैं–

प र मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म सा

आज मैं आप लोगों के सामने क्या कहूँ ? करीब 8-9 माह पूर्व जिस समय हम उदयपुर आये उस समय कुछ और ही भावना लेकर आये थे पर इस समय कुछ और ही भावना चल रही है। हमे भरोसा था कि सब शुभजनक ही होगा लेकिन आज हम [illegible] एक दु खपूर्ण स्थिति में बोल रहे हैं।

हमारे ऊपर आचार्यश्रीजी का हाथ था वह उठ गया है। इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है। लेकिन चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आचार्यश्रीजी म. ने भावी शासन व्यवस्था के लिये सुन्दर व्यवस्था कर दी है। जिस समय आचार्यश्रीजी म.सा. ने भावी शासन-व्यवस्था की थी मैं श्रीजी के चरणों में उपस्थित था। मैंने उस समय कहा था कि शासन का भार बोझिल होता है। उसको वहन करने की हम किसी में क्षमता नहीं होती। आचार्यश्री नानालालजी म., जिन पर शासन का भार रखा है वे सक्षम हैं तथा चारित्र सम्पन्न शात दान्त गभीर हैं। उनको सभी सत-सतियों एव श्रावक-श्राविकाओं की तरफ से पूरा सहयोग मिलता रहे ताकि वे शासन को अधिक-से-अधिक दीपा सकें।

भगवान महावीर की श्रमण सस्कृति सदियों से चली आ रही है। उसे अक्षुण्ण एव पवित्र बनाये रखने के लिये आचार्यश्री साधनापूर्वक सच्चाई पर चले रहे थे। उनके मार्ग में अनेक बाधाए आईं पर वे शाति से सहन करते हुए मानापमान की परवाह न कर उत्तरोत्तर आगे बढते रहे। उसी पथ पर हमें भी आगे बढना है। हमारे सामने कितनी भी चट्टानें व पहाड़ आवे उनका डटकर सामना करना है। हमें विरोधियों से नहीं घबराना है। आचार्यश्रीजी ने इसके लिये जो मार्ग रखा है उस पर दृढता के साथ आगे बढते हुए रास्ता तय करना है।

मैं पजाब-सप्रदाय का था परन्तु मुझे स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी म. की गुणगरिमा ने आकर्षित कर लिया। मैं मेरा व मेरे साथियों का सौभाग्य समझता हूँ कि हमें छह महीने तक आचार्यश्रीजी का पूर्ण सहयोग मिला पर दुर्भाग्य है कि इन आखिरी कुछ दिनो में हम अलग रह गये।

आचार्यश्रीजी ने शात क्रान्तिकारी कदम उठाकर भगवान महावीर की श्रमण सस्कृति को आगे बढाने के लिये जो आदेश उपदेश आदि दिये हैं उन पर हमें चलना है। सकटो एव बाधाओं का सामना करना है। कोई प्रचार करे, भले बुरे शब्द कहे तो हमें उसके उत्तर-प्रत्युत्तर मे नहीं पड़ना है। अगर हम उत्तर-प्रत्युत्तर के झगडे मे पड़ गये तो हमारा मार्ग रुक जायेगा। हा असलियत को तो समाज के सामने रखना ही होगा।

मैं सन्त-सतियो को भी कहूँगा कि स्वर्गीय आचार्यश्रीजी म के आदेशों का पालन करने में वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी को पूर्ण सहयोग देवें और उनके हाथों को मजबूत बनावें। स्वर्गीय आचार्यश्री के गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जो शास्त्र मैंने नहीं पढा जिसकी मेरे में कमी थी उसको आचार्यश्री ने रुग्णावस्था में भी मुझको पढाया। मेरे पर आचार्यश्रीजी का यह महान उपकार है इसे मैं भूल नहीं सकता। उन महान् आत्मा के प्रति मस्तक श्रद्धा से सदा नत रहा है और है। उनकी मधुर स्मृति आज भी ताजा है। उनके प्रति

श्रद्धा के यही पुष्प मैं चढ़ाता हूँ। हम गुडली मे थे। हमको खबर मिली कि आचार्यश्रीजी की तबीयत बहुत अस्वस्थ है। खबर मिलते ही हमने उदयपुर की तरफ विहार कर दिया पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवासी होने के बाद पहुचे।

हम वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जैसा भी सहयोग लेना चाहे हम देने के लिये तैयार हैं।

भगवान महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति मे आगे बढते ही चले जायें।

प र मुनिश्री जनकमुनिजी म सा (गोंडल सम्प्रदाय)

निर्मल निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सुरक्षक आचार्यश्रीजी की निर्मल सुयशधारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है। हमें अनेक बार गुणगाथाओं के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप दर्शन की आकाक्षा ने हमे यहा तक आने की प्रेरणा दी। अमलनेर से 425 मील भूमि कुल 38 दिनो मं काटकर श्रीचरणो में उपस्थित हुए। थककर चूर-चूर हो चुके थे पैर उठाना भी भारी हो रहा था। किन्तु आचार्यश्रीजी के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया। हमने सुनी वार्तो का साक्षात् अनुभव किया।

अहा ! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्यभाव एव कडक आचार-निष्ठा ! सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पड़े। 2000 बिच्छू डक मारे जैसी घोर वेदना मे उफ तक का शब्द नहीं। तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं किन्तु ज्ञानमय शरीर चर्यामय भाव निर्ग्रन्थ सस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख हैं। हमें इस निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति से पूर्ण प्रेम है। जब तक यह चोला है मैं हृदय से इसे जीवन में उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एव मैं यहाँ आये हुए प्रत्येक बघु यानी चतुर्विध सघ से निवेदन करूगा कि वे सच्चे हृदय से पालन करे। कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नहीं।

नियमो के पालने का सुन्दरतम तरीका यह है कि आचार्यश्री की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करें। निर्ग्रन्थ सस्कृति तभी सुरक्षित रह सकती है। स्वर्गीय आचार्यश्रीजी ने तो विरोधों की परवाह न कर निर्ग्रन्थ सस्कृति को कायम रखने में बहुत बड़ा योग दिया है। आज उसी का उत्तरदायित्व इन नव्य भव्य आचार्यश्री नानालालजी म पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक का कर्तव्य है। हम भी आपकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन में यथार्थ रूप से उतारेंगे और आपके बताये हुए मार्ग का प्रचार-प्रसार करेंगे यही हमारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा की पुष्पाजलि है।

स्थविर पद-विभूषित प मुनिश्री सूरजमलजी म सा

आप लोग बाहर से बहुत दूर-दूर से यहा एकत्रित हुए हैं। इसलिये नहीं कि यहा कोई नाटक सिनेमा है। किन्तु इसलिये कि यहा पर जीवन है। अत जीवन का उत्कर्ष करने के लिये ही आप यहा पर आये हैं। आचार्यश्रीजी की साधना के प्रति आपकी श्रद्धा भक्ति है।

आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने उदयपुर नगर मे जन्म लेकर मेवाड भूमि के शिखर को ऊचा उठाया है। जैसे ससारपक्ष मे राणा प्रताप ने मेवाड़ का गौरव बढाया वैसे ही आचार्यश्री ने आध्यात्मिक क्षेत्र मे मेवाड का ही नहीं बल्कि सारे देश का गौरव बढ़ाया है। आचार्यश्री ने अपने जीवनकाल मे भगवान महावीर के शासन मे रहकर शासन को और चमकाया और पूर्ण आत्मदशा मे रहकर अपना कल्याण किया है। आज वे आचार्यश्री हमारे सामने नहीं हैं। हमारे से उनका भौतिक शरीर ओझल हो गया है। ससार का यह नियम है कि जिन्होने ससार मे जन्म लिया है वे कोई आज कोई कल कोई घड़ी-पलक मे तो कोई कभी इस भौतिक शरीर को छोड़ेगे। काल सबके सिर पर घूम रहा है।

अत मनुष्य को धर्म मिला है तो खा पीकर धींगामस्ती मे गवाने के लिये नहीं बल्कि धर्म कमाने के लिये मिला है। अत आचार्यश्री ने धर्ममय जीवन बिताने के लिये जो आदेश आदि दिये हैं उनको सच्चे हृदय से अमल मे लाये। आचार्यश्री ने असह्य घोर वेदना के समय जिस प्रकार अपने जीवन को ऊपर उठाया उस आदर्श को सामने रखकर हम भी अपने जीवन को साधनामय बनायें ताकि हमारा जीवन भी एक दिन सफल हो।

आचार्यश्रीजी के तप तेज से आकर्षित होकर गोंडल सम्प्रदाय के जनकमुनिजी और जगदीशमुनिजी 700 मील का लम्बा विहार कर आचार्यश्री के चरणो मे पधारे हैं। आचार्यश्रीजी का मैं क्या गुणगान करू हमारे जैनाचार्य ने भगवान महावीर के शासन को दीपाया है। मेवाड भूमि मे जन्म लिया है वीर चारित्रचूड़ामणि हैं।

इन्द्र मुकुट समान दर्शन से चित्त रहे प्रसन्न वर्ते मगलाचार।

वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म भी गुणों के पूर्ण भडार हैं। स्वर्गीय आचार्यश्री ने अपना वरदहस्त इन पर रखा है। अत चतुर्विध सघ इनकी आज्ञा का बराबर पालन करे। धर्म क्या है ? बड़ों की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। अत वर्तमान आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करे इसी मे हमारा कल्याण है।

साध्वियो द्वारा गुणानुवाद और समर्पणा

इसी प्रकार विदुषी महासती श्री नानूकवरजी म विदुषी महासतीश्री मनोहरकवरजी म.,

विदुषी महासतीश्री कौशल्याजी म ने भी सतीवृन्द की ओर से स्वर्गीय आचार्यश्रीजी के गुणगान करते हुए फरमाया कि स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी म ने श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये जो आदेश आदि दिये उनका हम पूर्णरूपेण पालन करेगी और वर्तमान आचार्यश्रीजी म हम श्रमण सस्कृति के उत्थान हेतु जो भी आज्ञा प्रदान करेगे उसको सहर्ष शिरोधार्य करती हुई पालन करने-कराने मे तत्पर हैं और रहेगी।

अनन्तर आचार्यश्री नानालालजी म सा ने स्वर्गीय आचार्यश्रीजी को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये कि–

नवाचार्य द्वारा श्रद्धाभिव्यक्ति

बधुओ ! मैं आज विशेष रूप से कुछ कहूँ, ऐसी मेरी स्थिति नहीं है। महामुनिश्री सत्येन्द्रजी म श्री जनकमनिजी म व स्थविर पदविभूषित प श्री सूरजमलजी म ने तथा तीन महासतियो ने और बीच-बीच मे श्री कानमुनिजी ने स्वर्गीय आचार्यश्री के सम्बन्ध मे अपने हृदय के उद्‌गार सबके सामने रखे हैं।

मेरे सामने स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन-चरित्र है। वह मैंने देखा व अनुभव किया है परन्तु उसको मैं आप लोगों के सामने हूबहू रखू, यह मेरी क्षमता नहीं है।

आचार्यश्रीजी म जैसी दिव्य विभूति ने शात क्राति को जन्म देकर जो आदर्श समाज के सामने रखा अनेक सकटों व बाधाओ का सामना कर सत्यमार्ग पर अटल रहे उसका वर्णन करना मेरे जैसे के लिये बहुत ही कठिन है। मेरी जिह्वा मे इतनी क्षमता नहीं है कि मैं उसका सागोपाग वर्णन कर सकू।

जिनके लिए भगवान का मार्ग ही श्रेय था- आचार्यश्रीजी म को एक ओर तो सारे स्थानकवासी समाज से मान-सम्मान मिलने का अवसर था और दूसरी ओर अनन्त तीर्थकरो से आई हुई श्रमण सस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न था। श्रमण वर्ग मे प्रवेश पाई हुई शिथिलता को देखकर स्वर्गीय आचार्यश्री ने अनुभव किया यदि प्रभाव में आकर और प्रवाह में बह कर जो ठीक नहीं है उसमे हा मे हा मिला दी गई तो इस शासन की ही नहीं अनन्त तीर्थंकरो की आशातना का भागीदार हो जाऊगा। यह सोचकर आचार्यश्री ने वही मार्ग अपनाया जो उनके जैसे युगद्रष्टा महापुरुष के लिये श्रेय था। मान-सम्मान उनको अपने श्रेयमार्ग से विचलित नहीं कर सके। भगवान की आज्ञा और उनका बताया हुआ मार्ग ही उनके लिये श्रेय था। इसलिये अनेक विघ्न बाधाओ के होते हुए भी आचार्यश्री श्रमण सस्कृति की पवित्रता हेतु आचार विचार मे दृढता लाने के लिये अन्त समय तक सतत प्रयत्नशील रहे।

श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिए चल पड़े- श्रमण सघ का जो रूपक बना उसके लिये आचार्यश्रीजी की यह भावना थी कि श्रमण सस्कृति की पवित्रता के लिये एव उसके सरक्षण के लिये सभी साथियों को साथ लेकर चलू। तदनुसार आचार्यश्रीजी ने लगभग 8 9 वर्ष तक अनेक प्रयत्न किये। परन्तु आचार्यश्रीजी के सतत प्रयत्न के उपरान्त भी उनको ऐसा अनुभव हुआ कि अनुशासन मे रहकर उचित सलाह मे सबके चलने की तैयारी कम है कुछ श्रमणो की तो बिल्कुल ही नहीं। इससे उनके विश्वास को धक्का लगा। फिर भी प्रयत्नशील रहे और जो समस्याए सामने आईं उन पर आचार्यश्रीजी ने श्रमण सस्कृति के सरक्षणार्थ जो व्यवस्थाए आदि दीं वे आज भी समाज के सामने खुले रूप में मौजूद हैं। ऐसा करते समय आचार्यश्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा रखी किन्तु रुके नहीं। उन्होने कभी यह नहीं सोचा कि मेरे पीछे कौन आता है और कौन नहीं। उन्होंने सिर्फ यही देखा कि श्रमण सस्कृति मेरे सामने है और चल पडे उसकी रक्षा के लिये। आचार्यश्रीजी के मार्ग का विरोध हुआ कइयों ने भले बुरे शब्द कहे पर आचार्यश्रीजी अपने सत्पथ से विचलित न हुए। धैर्य के साथ सब-कुछ सहन करते रहे।

शिथिलाचार को प्रश्रय मत दो ! - विरोधियो के विरोध को एव सत्य को ठुकराया हुआ देखकर हमारे मन मे तो कभी-कभी उत्तेजना आ जाती थी कि क्यों न सयम-विपरीत दूषित प्रवृत्तियो को प्रगट कर दिया जाये ? पर आचार्यदेव फरमाया करते कि कोई कितना ही तिरस्कार करे अनुचित शब्द कहे उनका स्वागत करो और जिस प्रकार मैं सहन करता हूँ तुम भी सहन करना सीखो। अश्लीलतायुक्त सामग्री को प्रगट करने से विशेष कोई लाभ नहीं। इसलिये शात रहकर सयम-मार्ग पर दृढ़ता से चलो और शिथिलाचार को किसी भी प्रकार से प्रश्रय मत दो। इसके लिये आचार्यश्रीजी ने अपने आदेश आदि द्वारा जो कुछ फरमाया वह मौजूद है। उन आदेशो को आचार्यश्रीजी म. मेरे तुच्छ जीवन के साथ सम्बन्धित कर चुके हैं। मैं उनकी आज्ञाओ एव धारणाओ के अनुसार चलने को दृढ़प्रतिज्ञ हूँ तथा इसके लिये कितने भी सकट उपस्थित हो उनको झेलने के लिये कटिबद्ध हूँ, सब-कुछ न्योछावर करने को तत्पर हूँ।

गुजरात सौराष्ट्र के सन्त भी प्रहरी बनकर आये मैं पहले कह चुका हूँ कि आचार्यश्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा अवश्य रखी मगर सहयोग की स्थिति सामने नहीं आई तो वे लक्ष्य की ओर आगे बढते गये। उस समय किसी को स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि दूर-देशान्तर से भी कोई अन्य मुनि प्रहरी बनकर श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये आयेगे। परन्तु महापुरुषों की शक्ति अदृश्य भी होती है। उनका प्रभाव कहा और किस ढग से काम करता है इसका सहज ही अनुमान नहीं लग पाता है। ठीक यही बात आचार्यश्रीजी म. सा

के श्रमण सस्कृति-रक्षा के कार्यों की हुई। उनके कार्यों की सुगध दूर-दूर तक फैली और ज्यो सुगध से आकर्षित होकर भ्रमर बिना आमत्रण-निमत्रण स्वय खिचा हुआ चला आता है उसी प्रकार मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गुजरात सौराष्ट्र जैसे दूरवर्ती देश से करीब 700 मील का लम्बा विहार कर गोडल सम्प्रदाय के श्री जनकमुनिजी तथा श्री जगदीशमुनिजी आचार्यश्रीजी के चरणो मे आये हैं। न ये मुनिवर श्रमण सघ के हैं और न इस सप्रदाय के मगर गुणो के कारण ये उग्र विहार करके भी यहा आये हैं। श्री जनकमुनि ने कहा कि हम यह विश्वास दिलाते हैं कि हम आचार्यश्रीजी के आदेशो का पालन करेगे और जहा भी जायेंगे प्रचार करते हुए चलेंगे।

सयमप्रेमी प श्री सत्येन्द्रमुनिजी म ने भी फरमाया कि सत्पथ पर कितना भी विरोध हो हमे उसका डटकर मुकाबला करना है और आचार्यश्रीजी ने हमारे लिये जो मार्ग रखा है उस पर दृढ़ता के साथ चलते हुए रास्ता तय करना है।

तपस्वी प मुनिश्री सूरजमलजी म वृद्ध दिखते हैं और हैं। पर इनमे इतनी स्फुरणा है कि हर काम को करने के लिये तैयार रहते हैं। इस अवस्था मे भी आदर्श सेवाभावी हैं। यह सब प्रेरणादायक है। उनके उद्‌गार भी आप सुन ही चुके हैं।

समाचारी का अन्तरहृदय से पालन करना है- हमारे लिये अत्यन्त दु ख का विषय यह है कि हमारे आचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर आज हमारे सामने नहीं है वह हमारे से ओझल हो गया है लेकिन उनके उपदेश आदेश हमारे सामने हैं। आचार्यश्रीजी म ने प्रेरणा दी है कि श्रमण सस्कृति की रक्षा का ठीक रूप से ध्यान रखना। किसी बात के मोह मे आकर सत्य पथ से विचलित न हो जाना। मैंने जो निर्ग्रन्थ श्रमण-समाचारी बनाई है उनके अनुसार चलने वाला कहीं भी किसी भी देश में विचरने वाला मुनि हो उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़कर चलना और यदि पास में रहने वाला श्रमणवर्ग भी विपरीत प्रवृत्ति करे अनुशासन म न रहे श्रमण सस्कृति के रक्षार्थ जो आदेश आदि दिये गये हैं उनका पालन न करे तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना आदि। आचार्यश्रीजी ने अपने जीवन की साधना करते हुए जो समाचारी एव आदेश दिये हैं उनका हमे अन्तर्हृदय से पालन करना है।

देहातीत अवस्था- मनुष्य जीवन की साधना का निष्कर्ष अन्तसमय म उपस्थित होता है। जिसकी साधना जीवन-भर अच्छी चलती है उसका अन्तिम समय मे पण्डितमरण होकर जीवन सुधर जाता है।

आचार्यश्रीजी म की जीवन-साधना कठोर थी अद्‌भुत थी। यही कारण है कि उनका भव्य पण्डितमरण हुआ। मैं उनके अन्तिम समय का क्या वर्णन करू !

यह बात आप सब जानते हैं कि एक तरफ तो विरोध चल रहा था और इधर कैंसर के कारण शारीरिक सघर्ष चल रहा था जिसकी अत्यन्त वेदना थी। लेकिन आचार्यश्रीजी ने कभी उफ तक नहीं की। डॉक्टर लोग यह देखकर चकित थे कि इस महापुरुष मे ऐसी कौनसी शक्ति है कि जिससे इतनी दारुण वेदना होने पर भी चू तक नही। डॉक्टर सा कहते थे कि रोग की ऐसी भीषण थिति में साधारण मनुष्य तो डॉक्टरो से मृत्यु की माग करने लगता है। विप लेकर मर जाना चाहता है परन्तु धन्य है इन महात्मा को कि जिन्हाने देह पर एक प्रकार से विजय पा ली है।

तपस्वी श्री लालचन्दजी म ने तो यहा तक कहा कि मुझे कभी-कभी ऐसा खयाल होता है कि आचार्यश्रीजी की वेदना गजसुकमाल की वेदना का-सा दृश्य उपस्थित कर रही है। फिर भी जिस शान्ति और धैर्य के साथ बरदाश्त कर रहे हैं यह हमारे लिये एक अपूर्व आदर्श है।

जब अत्यन्त वेदना होती है तब मनुष्य अपना भान भूल जाता है। फलत अन्तसमय को बिगाड भी देता है लेकिन आचार्यश्रीजी शान्तचित्त से वेदना को सहते रहे। आत्मा और शरीर के भेद को भली प्रकार समझ कर चलते रहे।

आचार्यश्रीजी म का सथारा सीझने के तीन दिन पूर्व डॉक्टर रामावतारजी आचार्यश्रीजी म. की सेवा में उपस्थित हुए और औषधि के लिये अर्ज की। आचार्यश्रीजी म ने फरमाया- मुझे अब परमात्मा की दवा लेनी है अन्य कोई दवाई नहीं। इसी तरह डाक्टर शूरवीरसिहजी आदि को भी ऐसा ही जवाब दिया।

उसी समय डॉक्टर रामावतारजी ने मुझे एकान्त मे लेकर यह कहा कि इन महापुरुष के लिये अपन क्या सोचे ? अपना सोचना सब व्यर्थ है। इन महापुरुष का ध्यान प्रभु म लग चुका है। शरीर की तरफ इनका ध्यान कतई नहीं है। ये एक महान दिव्य अलौकिक मूर्ति हैं।

घोर वेदना में भी सजग- *उन्हीं दिनो की बात है कि एक दिन मैं आचार्यश्रीजी म को* अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे' आदि सुना रहा था। सुनाते-सुनाते दर्शनार्थियो की तरफ मेरा ध्यान चला जाने से भूल से मैं एक कड़ी का दुबारा उच्चारण कर गया। परन्तु आचार्यश्री तो आत्मरमण मे लीन एकचित्त से सुन रहे थे। उनको मेरी भूल मालूम हुई और उसी समय झट से आचार्यश्रीजी म ने फरमाया यह कड़ी तो बोल गये हो आगे चलो। यह सुनकर मैं सोचता हूँ कि आचार्यश्रीजी को इस अत्यन्त वेदना म भी कितना ध्यान है। जब मैं चेहरे की तरफ देखता हूँ तो मुझे अपूर्व तेज नजर आता है मानो आध्यात्मिक ज्योतिपुज जल रहा है। उस समय मैंने सोचा यह क्या ही अलौकिक विभूति है। मालूम होता है आचार्यश्री ने अपने शरीर

का ध्यान छोड दिया है और एकान्त समभाव मे लीन होकर आत्मचिन्तन मे चल रहे हैं। आचार्यश्रीजी ने उसी दिन यानी ता 9 की शाम को करीब 5.20 बजे से दूसरे दिन सुबह तक सागारी सथारा ग्रहण कर लिया और लेट गये। ता 10 को प्रात काल आगन्तुक दर्शनार्थियों को दर्शन देने के बाद शारीरिक चिन्ता से निवृत्त हुए। बाद मे मैंने थोडा पानी पिलाया और उन्होने कुछ विश्राति ली। इसके बाद दूध के लिये पूछा क्योंकि अन्न तो 7-8 दिन से बद था। आचार्यश्रीजी म ने दूध के लिये मना कर दी कि रुचि नहीं है। आचार्यश्रीजी आत्मध्यान मे लीन थे। कुछ ही समय पश्चात् फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पडता है। अत इस विषय में मैं अपने-आप तो सावधान हूँ ही तुम भी पूरी सावधानी रखना। डॉक्टर सा आ जाये तो उनसे भी बात करनी है। इतने मे डॉक्टर शूरवीरसिहजी आ गये। डॉक्टर सा ने पास खडे होकर तबीयत देखी और हमेशा की भाति चले गये। आचार्यश्रीजी ने डॉक्टर सा को वापस इशारा कराया। डॉक्टर सा वापस आये। आचार्यश्रीजी ने डॉक्टर सा को पूछा कि मैं अब सथारा लेना चाहता हूँ। इसमे आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से भी कुछ कहिये। डॉक्टर सा ने कहा कि हमारा सिद्धान्त तथा विज्ञान आप जैसे महापुरुषो के लिये फेल सा हो चुका है फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है। डॉक्टर सा ने मुझे कहा कि केसर का बीमार जिसके सेकेन्ड्रीज फार्म हो जाती है वह डेढ साल से अधिक जीवित नहीं रह सकता। परन्तु मैं तीन साल से महाराजश्री के शरीर की शक्ति देख रहा हूँ, पर अब ब्लडप्रेसर व नाडी की गति मे काफी अन्तर आ गया है। अत सावधान तो रहना ही चाहिये।

इसके बाद आचार्यश्रीजी ने मुझे फिर फरमाया कि निगरानी रखना। मैं तो सावधान हूँ ही। मैंने कहा गुरुदेव क्या आज्ञा है ? गुरुदेव ने फरमाया कि सथारा करने के लिय इच्छाकारेण आदि की पाटिए सुनाओ फिर छह जीवनी दशवैकालिक का चौथा अध्याय सुनाओ। तब मैंने क्रम से सबका उच्चारण किया। पाठ-उच्चारण में आचार्यश्रीजी ने यह भी फरमाया कि अब बीच मे किसी से बोलना मत फिर कहा खयाल रखो। मैंने तीन दिन पूर्व स्थविर प मुनिश्री सूरजमलजी म सा के पास सब आलोचना कर ली है। अब फिर मैंने मेरी आलोचना करके छह जीवनी सुन ली हैं। अब मुझे कोई डॉक्टर वैद्य आदि गृहस्थ छुए नहीं। मैं अपने जीवन को आगे बढाना चाहता हूँ।

आँखों में प्रेम और विश्व-वात्सल्य की भावना- उसी दिन प्रात 10.20 बजे तिविहार सथारा ग्रहण किया और फरमाया कि अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिये। सब अलग हो जाओ। ऐसा कहकर आखे बद कर लीं। थोड़ी देर बाद जब आखें खोलीं तो मैं देखता हूँ कि आखो मे अपूर्व प्रेम एव विश्व-वात्सल्य की भावना टपक रही थी। उस वक्त

श्वास की गति थोडी जोर से चल रही थी मगर चेतना पूरी थी। ता 11 को प्रात जब मैं कुछ नित्य-नियम सुना रहा था उस वक्त भी मैं एक कडी चूक गया तो गुरुदेव ने फरमाया कि यह क्या करते हो ! कहने का तात्पर्य यह है कि सथारा सीझने के दिन प्रात काल तक भी इतनी ताजा स्मृति एव जागरूकता थी। प्रतिक्रमण के वक्त स्थविर प मुनिश्री सूरजमलजी म ने मागलिक कुछ धीरे सुनाई जिससे आचार्यश्रीजी म के कान मे न पडी तो फरमाया कि मागलिक क्यो नहीं सुनाते हो ? फिर मैंने जोर से सुनाई। इतना ही नही सथारा सीझने के अन्तिम समय तक दोपहर को करीब 2 बजे महासतीजीश्री सोहनकवरजी पधारे तब श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासतीजी खमत-खामणा करते हैं तो आचार्यश्रीजी ने आखे खोलीं और उनके सामने देखकर गर्दन हिलाई। तब भी आचार्यश्रीजी म जागरूक थे। इसके पूर्व करीब 12 बजे आचार्यश्रीजी म चौविहार सथारा पचख चुके थे। इस तरह 29 घण्टा सथाराकाल व्यतीत होने के बाद ता 11 को 3.20 बजे अन्त तक जागरूक अवस्था मे सथारा खीझा। सथारा सीझने के पूर्व दर्शनार्थिया की भीड काफी सख्या मे जमा थी। दर्शन के लिये सब आतुर थे। पर मैं सोचता था कि अन्तिम समय मे समाधि के अन्दर किसी प्रकार व्यवधान न पहुचे। बिल्कुल शात वातावरण रहे तो अच्छा है। इसलिये दर्शनार्थियो को कुछ रुकना भी पडा। चौविहार सथारे के दरम्यान आचार्यश्रीजी म के शरीर मे जब खुजाल हुई तो स्वय खुजाल करने लगे। मुझे इनकार कर दिया। शरीर के हाथ नहीं लगाने दिया। इसी जागरूक और पूर्ण चेतनावस्था में ही मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से आखिर इस भौतिक शरीर को छोड़ स्वर्ग सिधार गये।

मैं चतुर्विध सघ की गोद में- आचार्यश्रीजी म सा का अन्तिम दृश्य अलौकिक था अपूर्व था। मैंने ऐसा दृश्य न कभी सुना और न देखा। आचार्यश्रीजी म ने जिस जागरूकता के साथ अपने जीवन का उत्कर्ष किया वह उनकी साधना का प्रतीक है। आचार्यश्रीजी म के जीवन मे साधना का जो स्थान रहा उसका वर्णन शब्दो द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये बहुत ही कठिन है। इतना अवश्य कहता हूँ कि निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के सरक्षणार्थ आचार्यश्रीजी ने आचार-विचार और उच्चार को दृढ़ता के साथ समाज के सामने रखकर आदर्श उपस्थित किया। हमारा कर्तव्य है कि उसको हम श्रमणवर्ग आगे बढाते हुए चले। श्रावक श्राविकाओ का भी अपने-आप मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत आप लोग भी कटिबद्ध होकर चलने की प्रतिज्ञा लेकर उठेगे तो शिथिलाचार एव स्वेच्छाचार को दूर होने म दर न लगगी। आचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं है लेकिन आध्यात्मिक शरीर हमारे सामने मौजूद है। उसको जीवन मे लाना है और जिस प्रकार सथारा-सलेखनापूर्वक पडितमरण से

उन्होने अपने को सफल बनाया उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास द्वारा हम भी अपने जीवन को आगे बढाते हुए अन्तिम समय म उत्तम भावना द्वारा पाडित्यमरणपूर्वक जीवन को सफल बनायेंगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि है। मैं आचार्यश्रीजी की आज्ञा आणा धारणा के अनुसार चलने को कटिबद्ध हूँ। इन महात्माओं ने मेरे प्रति जिन शब्दो का प्रयोग किया है उनकी रक्षा आपके हाथ मे है। मैं बच्चा हूँ, चतुर्विध सघ की गोद में बैठा हूँ, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा का ध्यान रखना आपका कर्तव्य है। आचार्यश्रीजी के शुभाशीर्वाद से हम ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें और आचार्यश्रीजी म की दिव्य आत्मा स्थायी एव अखड पूर्ण शाति के साथ शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष में पधारे इस भावना के साथ मैं अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

• •

विचार खण्ड

महावीर ने कहा

महावीर ने दृढ़ता से आह्वान किया

पुरिसा अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एव दुक्खापमोक्खसि।

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयों (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको क्योकि इसी से तुम दुख से मुक्ति पा सकोगे।

जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है। परिग्रह के ममत्व को काटकर सग्रहवृत्ति का जब त्याग किया जाएगा तभी कोई पूर्ण अहिंसक और पूर्ण स्वाधीन बन सकता है। स्वाधीनता ही आत्मा का स्वधर्म अथवा निजी स्वरूप है। मोह मिथ्यात्व एव अज्ञान के वशीभूत होकर आत्मा अपने मूल स्वभाव को विस्मृत कर देती है और इसीलिए वह दासता की शृखलाओ मे जकड़ जाती है।

महावीर ने स्वाधीनता के इसी आदर्श को बता कर विश्व में फैली बड़े-छोटे छूत-अछूत धनी निर्धन आदि की विषमता एव भौतिक शक्तियो के मिथ्याभिमान को दूर हटाकर सबको समानता के अधिकार बताये। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी महावीर के अहिसा और त्याग के अनुभवो की गूज बराबर बनी रही है।

महावीर ने जो कहा पहले उसे किया और इसीलिए उनकी वाणी मे कर्मठता का ओज व भावना का उद्रेक दोनो हैं। हिंसा के नग्न ताडव से सतप्त एव शोषण व अत्याचार से उत्पीडित जनता को दुखों से मुक्त करने के लिए अहिसा की क्रातिकारी तथा सुखकारी आवाज उठाई। स्वार्थोन्मत्त नर-पिशाचो को प्रेम सहानुभूति शान्ति एव सत्याग्रह के द्वारा स्वाधीनता का दिव्यपथ उन्होने प्रदर्शित किया।

जिन्हे अपनी आत्मा का गौरव होगा वे कभी उसे पतित नहीं होने देंगे चाहे कितनी ही विवशतापूर्ण परिस्थितिया उनके सामने आकर खड़ी हो जायें। अपनी आत्मा का गौरव बनाइये उसे निभाइये और अपने साथियों के गौरव की रक्षा कीजिये। व्यक्ति से लेकर समूह तक के जीवन विकास की यही कहानी है।

प्रतिज्ञा कीजिए कि आप सर्वोच्च स्वाधीनता की अन्तिम सीमा तक गति करते ही रहेंगे।

गौरव प्राप्यते दानात्

जीवन का गौरव प्रदान करने मे है न कि ग्रहण करके एकत्र कर लेने में। वास्तव में इस प्रदान करने को दान कहिये या त्याग जीवन के विकास का प्रधान कारण समझना चाहिए। प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण में ही इस सत्य का स्पष्टत दर्शन किया जा सकता है

गौरव प्राप्यते दानान्नतु वित्तस्य सचयात्।
स्थितिरुच्चै पयोदाना पायोधिनामध स्थिति ।

आज के सामाजिक जीवन का भी यही सत्य है। दान उदार हृदय की विशालता को अधिकतम क्षेत्र मे प्रसारित करता है। सचयवृत्ति हृदय को अत्यधिक सकुचित बनाती हुई उसे घृणित रूप दे देती है।

अत जीवन-विकास के क्षेत्र मे दान अत्यावश्यक है। जो दान देकर उसके बदले की आशा लगाये रहता है वह एक दृष्टि से वास्तव में दान नहीं करता है बल्कि एक तरह का सौदा करता है। दान के शुद्ध दृष्टिकोण से अर्पित की जाने वाली धनराशि ही सच्चा जन-कल्याण कर सकती है।

अन्त मे यही कहना चाहूगा कि त्याग और दान ही जीवन के विकासक हैं। दान सरल भी है यदि हृदय मे सच्ची भावना व उदारता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पास से दान-हित कुछ-न-कुछ निकाल सकता है। मोक्ष के चार उपाय - दान शील तप व भावना बताये हैं। उनमे भी दान को सर्वप्रथम कहा गया है। अत यदि आप जीवन में प्रगति चाहते हैं तो अपनी शक्ति गिरे हुए को उठाने में और दुखियो का दर्द दूर करने मे लगावे।

आत्मदर्शन का साधन

देह और आत्मा का अभेद समझने की मूढ दृष्टि जब तक विद्यमान रहती है तब तक बहिरात्म दशा बनी रहती है। सर्वप्रथम आत्मा के पृथक अस्तित्व को समझना आवश्यक है। अन्तरात्मा बनने के लिए आपको मानना चाहिए कि देह अलग है और मैं अलग हू। देह के नाश में मेरा नाश नहीं है। मैं अविनाशी हू, अनन्त हू, अक्षय हू, अनन्त आनन्द और चैतन्य का आगार हू।

अन्तरात्म दशा प्राप्त होने पर जीव के विचार और व्यवहार में बड़ा अन्तर आ जाता है। यह नाशशील दु ख के बीज और आत्मा को मलिन बनाने वाले सासारिक सुख की अभिलाषा

नहीं करता। अन्तरात्मा जीव का विवेक जब परिपक्व होता है तो इसे सासारिक सुख से अरुचि हो जाती है। तब आत्मा अपने ही स्वरूप मे रमण करने लगती है। उस अवस्था को इन शब्दो में व्यक्त कर सकते हैं -

वह परम आत्मा अनन्त सुख से सम्पन्न ज्ञानरूपी अमृत का स्रोत अनन्त शक्ति से समन्वित है। उसमे किसी प्रकार का विकार नहीं है उसके लिए किसी आधार की आवश्यकता नहीं है वह समस्त परपदार्थों के ससर्ग से रहित है और विशुद्ध चैतन्य स्वरूपी है। आत्मा का समर्पण करने से आत्मा की उपलब्धि होती है उसका स्वरूप अधिकाधिक निर्मल रूप से समझ में आने लगता है।

•

महावीर-सन्देश

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयो (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको क्योकि इसी से तुम दु ख से मुक्ति पा सकोगे।

समस्त जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है।

आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ है - सपूर्ण भौतिक पदार्थों एव भौतिक जगत् से सम्बन्ध-विच्छेद करना। अतिम श्रेणी मे शरीर भी उसके लिये एक बेडी है क्योकि वह अन्य आत्माओ के साथ एकत्व प्राप्त कराने में बाधक है। पूर्ण स्वाधीनता की इच्छा रखने वाला विश्वहित के लिये अपनी देह का भी त्याग कर देता है। वह विश्व के जीवन को ही अपना मानता है सबके सुख-दु ख मे ही स्वय के सुख-दु ख का अनुभव करता है व्यापक चेतना मे निज की चेतना को सजो देता है। एक शब्द मे कहा जा सकता है कि वह अपनी व्यष्टि को समष्टि में विलीन कर देता है। वह आज की तरह अपने अधिकारों के लिये रोता नहीं वह कार्य करना जानता है और कर्तव्यो के कठोर पथ पर कदम बढाता हुआ चलता जाता है। जैसा कि गीता मे भी कहा गया है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

फल की कामना से कोई कार्य मत करो। अपना कर्तव्य जानकर करो तब उस निष्काम कर्म में एक आत्मिक आनन्द होगा और उसी कर्म का सम्पूर्ण समाज पर विशुद्ध एव स्वस्थ प्रभाव पड़ सकेगा। कामनापूर्ण कर्म दूसरों के हृदय में विश्वास पैदा नहीं करता। स्वार्थ छोडो से परमार्थ की भावना पैदा होती है और तभी आत्मिक भाव जागता है।

महावीर ने स्वाधीनता के इसी आदर्श को बताकर विषमता एव भौतिक शक्तियो के

मिथ्याभिमान को दूर हटा कर सबको समानता के अधिकार बताये। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी महावीर के अहिसा और त्याग के अनुभवो की गूज बराबर बनी है।

आत्मा से विश्वासघात न करो

मानव-जीवन की भौतिक शक्तियो के पा लेने मे विशेषता नहीं है पाकर उन्हे निस्पृह भाव से त्याग देने में उसकी परम विशेषता रही है। दशवैकालिक सूत्र (अध्याय 2, गाथा 3) में कहा है

जे य कते पिये भोए लद्धे विपट्ठि कुव्वई।
साहीण चयई भोए से दु चाई त्ति वुच्चई।।

अर्थात् जो सुन्दर भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त करके भी उन्हें आत्मोन्नति हेतु त्याग देता है वही सच्चा त्यागी कहलाता है। धन सग्रह जहाँ दु ख क्लेश का मूल है वहा उसी धन का निस्पृह भाव से त्याग करने मे महान् आत्मिक आनन्द का निवास है। फिर भी इस शाश्वत सिद्धात से विमुख होकर जो क्षणिक सुखाभास के दलदल मे अपने आप को फसाकर मानव जीवन को पतित बनाता है वह त्यागी भर्तृहरि के शब्दो में 'तिल की खल को पकाने के लिये अमूल्य रत्नो के पात्र का उपयोग करने वाले ओक की खेती के लिये स्वर्ण-हल से धरती को खोदने वाले और कोदरे अन्न के लिये कपूर की खेती को नष्ट करने वाले व्यक्ति की तरह' अपने-आप को वज्रमूर्ख ही सिद्ध करता है। इस जीवन में आत्मोत्थान के सभी सयोग उपलब्ध होने पर भी उनकी ओर ध्यान न देकर धनलिप्सा व मिथ्या व्यामोहो मे फस जाना अपनी ही आत्मा के साथ भीषण विश्वासघात करना और मानव-जीवन की अनुपम विशिष्टता को व्यर्थ ही में खो देना है।

दुराग्रह को दूर करो

मानव जीवन म अनेक प्रकार की दुर्बलताए देखी जा सकती हैं। प्रथम तो मनुष्य का अपने विचारो के प्रति स्वभावत एक विशिष्ट आकर्षण या मोह होता है। उसके कारण वह सत्य का साक्षात्कार करके भी यकायक अपने विचार या मतव्य मे परिवर्त‌ा नहीं कर पाता। दूसरी दुर्बलता है परम्परा के प्रति अन्धश्रद्धा। जब मनुष्य अपने विचार या मन्तव्य को असमीचीन

समझ लेता है तब भी परम्परा से आया हुआ होने के कारण उस विचार को छोड नहीं पाता।

आज अधिकाश जनता इसी प्रकार के दुर्वल विचारो की शिकार हो रही है। जानते हैं कि अमुक रूढि हानिकर है वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल नहीं है और उसके चालू रहने से समाज के बहुत लोगा को कष्ट उठाना पडता है फिर भी उसे त्यागने का साहस नहीं होता है। क्योकि वह पुरखाओ के जमाने से चली आ रही है। इस प्रकार के लोग अपने विवेक का अपमान करते हैं। विवेक न होगा तो साधन मिलने पर भी कार्य अच्छा न होगा।

इस तथ्य को सामने रखकर विचार करे।

समता लक्ष्यप्राप्ति का साधन

यह निश्चय है कि जब तक सासारिक क्षेत्र मे ही एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं होगी समाज मे परस्पर व्यहार की रीति नीति समान व सम्यक नहीं वनेगी तो निवृत्ति के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति भी साधारण रूप से पैदा नहीं हो सकेगी। इसलिये सगाज म समान और सम्यक वातावरण पैदा हो तथा सामाजिकता की भावना का प्रसार हो यह निवृत्ति के प्रत्यक्ष लक्ष्य का परोक्ष साधन माना गया है। क्योकि यह ससार मे प्रवृत्ति करने की वात नहीं वरन् सामाजिक सुधार द्वारा निवृत्ति के लक्ष्य को मस्तिष्क मे स्पष्ट कराने का अथक प्रयास है।

जैन सिद्धातो की जो गति है वह निवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की है प्रवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की नहीं। निवृत्ति का प्रसार उसी समाज मे हो सकेगा जिसमे गुणो और आचरण की पूजा होती होगी। किन्तु जब तक ऐसा स्वस्थ समाज नहीं वनेगा तो यह भी सभव नहीं हो सकता कि निवृत्ति का व्यापक प्रचार हो सके। 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'-हमारे यहाँ कहा गया है। धर्म का आचरण तभी शुद्ध बन सकेगा जब समाज का व्यवहार शुद्ध होगा और समानता के जो स्रोत जैन सिद्धान्तों के अनुसार बताये गये, वे ही ऐसे सशक्त साधन हैं जिनके आधार पर समाज के व्यवहार का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

सजग सामाजिकता आत्म कल्याण की ज्योति जगाये यही जैन सिद्धान्तो का सदेश है।

विचार-समन्वय का सुमार्ग

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है तथा उसका मस्तिष्क ही उसे प्राणी समाज में उच्च स्थान प्रदान करता है। मनुष्य सोचता है स्वय ही और स्वतत्रतापूर्वक भी अत उसका परिणाम

स्पष्ट है कि विचारो की विभिन्न दृष्टिया ससार मे जन्म लेती हैं। वस्तु के एक ही स्वरूप पर भी विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियो मे सोचना शुरू करते हैं। किन्तु उसके आगे एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियो से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकान्तिक दृष्टिकोण व हठवादिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार जो सत्यज्ञान की ओर बढा सकते थे पारस्परिक समन्वय के अभाव मे सघर्ष के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

अगर विचारों को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती है तो वह एकागी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या मे बदल जायेगा। अत सत्य को जोडकर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाये।

यही जगत् के वैचारिक सघर्ष को मिटाकर उन विचारों को आदर्श सिद्धातो का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

कर्मवाद का अन्तर्रहस्य

कर्मबन्धन के प्रधान कारणो का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मोह अज्ञान या मिथ्यात्व यही सबसे बड़े कारण हैं। क्योकि इन्हीं के कारण राग द्वेष का जन्म होता है व तज्जन्य विविध विकारो से आत्मा कर्म से लिप्त हो जाती है। तत्त्वार्थसूत्र में कर्मबन्ध के कारणो पर कहा गया है-

सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध

राग-द्वेषात्मक कषाय-परिणति से आत्मा कर्मयोग्य पुद्गलो को जब ग्रहण करती है तो वही बन्ध है तथा इसके कारण मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग बताये गये हैं। यह उल्लेखनीय स्थिति है कि कर्मबन्ध का मुख्य कारण बाहर की क्रियाए उतनी नहीं जितनी आतरिक भावनाए मानी गई हैं। क्रियाओं में अनासक्त भाव का प्राबल्य बनाने से विकारों का प्रभाव नहीं पड़ता। शैलेषी नाम की क्रिया में तो अनासक्ति क्या मन वचन काया की प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध ही कर लिया जाता है।

कर्मबन्ध से सर्वथा मुक्त होने के लिए नये आने वाले कर्मों को रोकना पड़ता है। इस रोकने को सवर तथा जिन स्रोतो से कर्म आते हैं उन्हें आस्रव कहा गया है। आस्रव का विरोध

सवर है। सम्यक ज्ञान दर्शन व चारित्र की शक्तियों से आत्मा के विकार - कर्मों को दूर करना चाहिए ताकि आत्मा कर्ममुक्त होकर अपने मूल रूप की ओर गति कर सके।

जैन धर्म का कर्मवाद सिद्धात मानव को अपना निज का भाग्य स्वत ही निर्माण करने की प्रेरणा देने के साथ ही उसे जीवन की ऊची-नीची परिस्थितिया मे शाति उत्साह सहनशीलता और कर्मठता का जागरूक पाठ पढाता है। अपने पर छा जाने वाली आपत्तियो के बीच भी वह उन्ह अपना ही कर्मफल समझकर शान्तिपूर्वक सहन करने की क्षमता पैदा करता है तथा उज्ज्वल भविष्य के निर्माण-हित सद्रप्रयत्नो मे प्रवृत्त हो जाने पर दृढ निश्चय कर लेता है। कर्मवाद को मानकर वह पूर्वकृत कर्मो के फल को अपने कर्ज चुकाने की तरह स्वीकार करता है। कर्मवाद के जरिये मनुष्य में स्वावलम्बन व आत्मविश्वास के सुदृढ भाव जाग्रत होते हैं और यह इस सिद्धात का सबसे बड़ा व्यावहारिक मूल्य है।

कर्मवाद का यही सदेश है कि जो स्वरूप परमात्मा का है वही प्रत्येक आत्मा का है किन्तु उसे प्रकटाने के लिए विजातीय भौतिक पदार्थो से मोह हटाकर सजातीय आत्मिक शक्तियों को प्रकाशित करना होगा।

परमात्मा आत्मा का परमोत्कृष्ट रूप

जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि परमात्म पद कोई अलग वस्तुस्थिति नहीं बल्कि उसका स्वरूप आत्मा के ही परमोत्कृष्ट रूप में जाज्वल्यमान होता है। आत्मा पर लगा हुआ कर्म का कलुष ज्यो-ज्यो धुलता जाये गुणस्थान की सीढियों पर चढता जाये तब चरम स्थिति होती है कि वही परमात्म-पद पर पहुच जाता है। आत्मा से परमात्मा की गतिक्रम रेखा है एक ही मार्ग के दो सिरे हैं जिनमे कर्म स्वरूप भेद हैं मूल भेद नहीं। हमारी यह मान्यता नहीं कि ईश्वर इस जगत् या जगवर्ती आत्माओं से प्रारम्भ ही मे विलग रहा है और उसका जगत् की रचना से कोई सम्बन्ध हो। जगत् का क्रम कर्मानुवर्ती माना गया है और उसी आवर्तन में पुद्गल तथा आत्माए प्रेरित व अनुप्रेरित होते हैं और चक्कर लगाते रहते हैं। आत्माए कर्म चक्र में फसती हैं और धर्म वह आधारशिला है जिस पर चढकर वे इस चक्र से निकलने का पराक्रम भी करती हैं। इसी पराक्रम की सफलता का अन्तिम बिन्दु परमात्म पद है।

स्पष्ट है कि विचारो की विभिन्न दृष्टिया ससार में जन्म लेती हैं। वस्तु के एक ही स्वरूप पर भी विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियो मे सोचना शुरू करते हैं। किन्तु उसके आगे एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियो से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकान्तिक दृष्टिकोण व हठवादिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार जो सत्यज्ञान की ओर बढा सकते थे पारस्परिक समन्वय के अभाव मे सघर्ष के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं।

अगर विचारो को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती है तो वह एकागी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। अत सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाये।

यही जगत् के वैचारिक सघर्ष को मिटाकर उन विचारो को आदर्श सिद्धातो का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

कर्मवाद का अन्तर्रहस्य

कर्मबन्धन के प्रधान कारणो का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मोह अज्ञान या मिथ्यात्व यही सबसे बड़े कारण हैं। क्योकि इन्हीं के कारण राग द्वेष का जन्म होता है व तज्जन्य विविध विकारो से आत्मा कर्म से लिप्त हो जाती है। तत्त्वार्थसूत्र में कर्मबन्ध के कारणो पर कहा गया है-

सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध

राग-द्वेषात्मक कषाय-परिणति से आत्मा कर्मयोग्य पुद्गलो को जब ग्रहण करती है तो वही बन्ध है तथा इसके कारण मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग बताये गये हैं। यह उल्लेखनीय स्थिति है कि कर्मबन्ध का मुख्य कारण बाहर की क्रियाए उतनी नहीं जितनी आतरिक भावनाए मानी गई हैं। क्रियाओ मे अनासक्त भाव का प्राबल्य बनाने से विकारो का प्रभाव नहीं पड़ता। शैलेषी नाम की क्रिया मे तो अनासक्ति क्या मन वचन काया की प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध ही कर लिया जाता है।

कर्मबध से सर्वथा मुक्त होने के लिए नये आने वाले कर्मों को रोकना पड़ता है। इस रोकने को सवर तथा जिन स्रोतों से कर्म आते हैं उन्हें आस्रव कहा गया है। आस्रव का विरोध

सवर है। सम्यक ज्ञान दर्शन व चारित्र की शक्तियों से आत्मा के विकार - कर्मों को दूर करना चाहिए ताकि आत्मा कर्ममुक्त होकर अपने मूल रूप की ओर गति कर सके।

जैन धर्म का कर्मवाद सिद्धात मानव को अपना निज का भाग्य स्वत ही निर्माण करने की प्रेरणा देने के साथ ही उसे जीवन की ऊची-नीची परिस्थितियो मे शाति उत्साह सहनशीलता और कर्मठता का जागरूक पाठ पढाता है। अपने पर छा जाने वाली आपत्तियो के बीच भी वह उन्हे अपना ही कर्मफल समझकर शान्तिपूर्वक सहन करने की क्षमता पैदा करता है तथा उज्ज्वल भविष्य के निर्माण-हित सद्प्रयत्नो मे प्रवृत्त हो जाने पर दृढ निश्चय कर लेता है। कर्मवाद को मानकर वह पूर्वकृत कर्मो के फल को अपने कर्ज चुकाने की तरह स्वीकार करता है। कर्मवाद के जरिये मनुष्य मे स्वावलम्बन व आत्मविश्वास के सुदृढ भाव जाग्रत होते हैं और यह इस सिद्धात का सबसे बडा व्यावहारिक मूल्य है।

कर्मवाद का यही सदेश है कि जो स्वरूप परमात्मा का है वही प्रत्येक आत्मा का है किन्तु उसे प्रकटाने के लिए विजातीय भौतिक पदार्थो से मोह हटाकर सजातीय आत्मिक शक्तियों को प्रकाशित करना होगा।

परमात्मा आत्मा का परमोत्कृष्ट रूप

जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि परमात्म-पद कोई अलग वस्तुस्थिति नहीं बल्कि उसका स्वरूप आत्मा के ही परमोत्कृष्ट रूप मे जाज्वल्यमान होता है। आत्मा पर लगा हुआ कर्म का कलुष ज्यों-ज्यों धुलता जाये गुणस्थान की सीढियों पर चढ़ता जाये तव चरम स्थिति होती है कि वही परमात्म-पद पर पहुच जाता है। आत्मा से परमात्मा की गतिक्रम रेखा है एक ही मार्ग के दो सिरे हैं जिनमे कर्म स्वरूप भेद हैं मूल भेद नहीं। हमारी यह मान्यता नहीं कि ईश्वर इस जगत् या जगवर्ती आत्माओ से प्रारम्भ ही में विलग रहा है और उसका जगत् की रचना से कोई सम्बन्ध हो। जगत् का क्रम कर्मानुवर्ती माना गया है और उसी आवर्तन मे पुद्गल तथा आत्माए प्रेरित व अनुप्रेरित होते हैं और चक्कर लगाते रहते हैं। आत्माए कर्म चक्र में फसती हैं और धर्म वह आधारशिला है जिस पर चढकर वे इस चक्र से निकलने का पराक्रम भी करती हैं। इसी पराक्रम की सफलता का अन्तिम बिन्दु परमात्म पद है।

विकास का मूल सिद्धान्त

मनुष्य स्वय ही अपने व समाज के भाग्य का निर्माता है - इस तथ्य को जब जब उसने भुला देने की कोशिश की तब-तब मानव-समाज मे शिथिलता व अकर्मण्यता का वातावरण फैला। किसी अन्य पर अपने निर्माण को आश्रित बनाकर विकास करने का उत्साह मनुष्य मे नहीं बन पडता चाहे वैसा आश्रय खुद ईश्वर को ही सौंपा गया हो। मनुष्य गतिशील प्राणी है और जहा भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया कि उसका विकास रुक गया। मनुष्य स्वय ही पर आश्रित रह सकता है किसी अन्य पर उसे आश्रित बनाकर उसको गतिशील नहीं बनाया जा सकता है।

जैन दृष्टि के अनुसार आत्मा ही परमात्मा बन जाता है भक्त स्वय भगवान बन कर दिव्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है और आराधक एक दिन आराध्य के रूप मे अपने उच्चतम स्वरूप को ग्रहण करता है और जैन धर्म के इस प्रगतिशील विकासवाद का मूलाधार सिद्धान्त है कर्मवाद का सिद्धान्त।

अत कर्मवाद का सिद्धान्त इस सत्य का प्रतीक है कि प्राणी के लिए कोई भी विकास चाहे वह चरम विकास के रूप म ईश्वरत्व की प्राप्ति ही क्यो न हो असभव नहीं। वह स्वय कर्ता है और फलभोक्ता है।

इस विचारणा के पीछे जो मजबूती है वह स्वत प्रेरित फलवाद की धारणा है। अगर फलवाद का कार्य ईश्वर पर छोडा जाये जैसा कि अन्य दर्शन मानते हैं तो वही आश्रित अवस्था पैदा हो जाने पर मनुष्य मे से स्वाश्रय का भाव जाता रहेगा और तदुपरान्त प्रगति की ओर बढने की वैसी लक्ष्यसाधित विचारणा उसमे बनी न रह सकेगी।

जैन दर्शन का तत्त्ववाद

जैन शास्त्रों में तत्त्ववाद का बड़ा विशद विवरण है। इस समूचे तत्त्ववाद को नौ भागो में विभक्त किया गया है-

1 जीव 2 अजीव 3 बध 4 पाप 5 पुण्य 6 आश्रव 7 सवर 8 निर्जरा 9 मोक्ष।

जीव तत्त्व - जो सच्चिदानन्दमय हो। इसमें तीन शब्द मिले हुए हैं - सत् चित् और आनन्द। सत् का अर्थ है जो तीनों काल मे स्थायी रहता है। अर्थात् जो पर्याय बदलने की दृष्टि से पैदा हो नष्ट हो जाये किन्तु द्रव्य रूप से नित्य व शाश्वत रहे वह सत् होता है।

चित् अर्थात अपने से ऊपर साधन की अपेक्षा न रखते हुए स्वय ही प्रकाशमान होकर दूसरों को भी प्रकाशित करता है। चेतन का तीसरा गुण है आनन्द। हम हैं और हम अनुभव करते हैं उसका परिणाम जो निकलता है वह आनन्द है।

अजीव तत्त्व - यानी जड पुद्गल का स्वभाव सड़ना गलना बदलना और नित्यप्रति इसकी पर्याये बदलती हैं।

बध तत्त्व - जीव-अजीव को बाधने वाले तत्त्व का नाम है।

पाप-पुण्य तत्त्व - बध के फलस्वरूप सामने आते हैं और दोनो अशुभ या शुभ फलदायक होते हैं। इन्हीं के कारण आत्मा सासारिक सुखों या दुखो का अनुभव करती रहती है।

आस्रव तत्त्व - अशुभ लगावट आत्मा के साथ होती है उसे आस्रव तत्त्व कहा है। आस्रव तत्त्व से आत्मा की मलिनता बढ़ती है।

सवर तत्त्व - शुभ योग तथा योग-निरोध को सवर कहा है। यद्यपि सवर तत्त्व आत्मोत्थान में सहायक होता है किन्तु उसी तरह जिस तरह नाव नदी को पार करने मे सहायक होती है।

निर्जरा तत्त्व - सलग्न कर्म-पुद्गलो से आत्मा को छुडाने वाला तत्त्व है। निर्जरा का अर्थ है कर्मक्षय।

मोक्ष तत्त्व - जब आत्मा जड की उगावट को पूरे तौर पर खत्म कर देती है और शरीर के अन्तिम बन्धन से जब वह छूट जाती है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

शुद्धि सिद्धिदायिनी

पहले हमें यह देखना होगा कि धर्म को हृदय मे विराजने के आह्वान के पूर्व उसके धरातल का निर्माण किया गया है या नहीं ? यदि प्राथमिक हृदय-शुद्धि नहीं की है और धर्म का आह्वान किया तो क्या उसका निवास फिर स्थायी हो सकेगा ? यह सोचने की बात है।

परन्तु साधारणतया देखा जाता है कि अन्तकरण की बिना शुद्धि किये ही धर्माराधन किया जाता है - भगवान धर्मनाथ को हृदय म पधारने का आमत्रण दिया जाता है। आप ही उस किसान को क्या कहेगे जो बिना खेत को जोते और कृषियोग्य बनाये ही वर्षा को बुलाने के लिए मल्हार राग गाने के लिए बैठ जाये ?

एक फारसी कवि ने कहा है-

गैर हकराभी देही दर हीरी मे दिलचरा

अर्थात् हे मनुष्य ! तू अपने हृदयरूपी भवन मे परमात्मा के अतिरिक्त किसी को स्थान मत दे और परमात्मा धर्म का प्रतीक है तथा है विश्व मे अपने-आप को व्याप्त कर अपने मूल स्वभाव की ओर गति करने वाला। किन्तु हृदय के विकारो से मुक्त हुए बिना उसमें धर्म का प्रवेश नहीं हो पाता।

इतना विश्लेषण इसीलिए किया है कि मनुष्य अपनी प्रगति की राह को पहचान सके और अपनी भूमिका एव गति को माप-तौल सके। अत इसका सीधे शब्दो मे यही सार है कि मनुष्य के मूल स्वभाव की ओर बढने मे सभी सद्गुणो व सत्कार्यों का समावेश हो जाता है जहा स्वार्थ वृत्ति की समाप्ति होकर उसके हृदय मे सबके लिए उत्कृष्ट आत्मीय प्रेम का मिठास होगा तथा होगी उसकी प्रवृत्तियो मे ससार भर की पवित्र सेवा करने की अटल कर्मठता। तब विश्वानुभूति को हृदय में समाकर वह अपने चरम विकास धर्म की मजिल की ओर उन्मुख हो उधर तेजी से बढने लगेगा।

विश्वशाति का मूल

ममत्व से जागता है राग और द्वेष। अपनी सम्पत्ति के प्रति राग बढेगा और उसकी रक्षा की जायगी और राग जितना गाढ़ा होता जायगा उस सपत्ति की वृद्धि व रक्षा में वह उचित-अनुचित कार्य-अकार्य सब कुछ बेहिचक करने लग जायगा। इसके साथ ही दूसरों की सपत्ति से अपने मन में द्वेष जागेगा और उस सपत्ति के प्रति विनाश की बात सोचेगा। इन राग और द्वेष की वृतियों के साथ मान माया लोभ ईर्ष्या अन्याय की कई बुराइया मानव-मन मे प्रवेश करती जायेंगी तथा इन बुराइयो की फैलावट से दुनिया का स्वरूप 'त्राहिमाम्-त्राहिमाम्' हो जाता है। उसका अनुभव मैं समझता हू, वर्तमान व्यवस्था मे आपको हो रहा होगा।

आज के साम्यवाद समाजवाद अपरिग्रह सिद्धान्त के ही रूपान्तर हैं। यदि अपरिग्रह का क्रियात्मक रूप जैनी भी अपने जीवन मे उतारें तो वे अपने जीवन में तो आनद का अनुभव करेंगे ही साथ ही सारी दुनिया मे एक नई रोशनी नया आदर्श भी उपस्थित कर सकेंगे। अपरिग्रह का सिद्धात साम्यवाद व समाजवाद के लक्ष्यों की पूर्ति कर देगा किन्तु उनकी बुराइयों को भी चारित्र एव सयम की आधारशिला पर नागरिकों को खडा करके पनपने नहीं देगा।

परिग्रह की परिभाषा

परिग्रह की व्याख्या की गई है 'मूर्च्छा परिग्रह । पदार्थों का नाम परिग्रह नहीं उनमे ममत्व रखकर आत्मज्ञान से सज्ञाशून्य हो जाना परिग्रह कहा गया है। जब जड पदार्थो मे गृद्धि बढती है और प्राणी अपने चेतन तत्त्व को भूलता है तब उसको परिग्रही कहा। यह ममत्व जब मनुष्य के मन में जागता है तो आत्मा को कलुषित करने वाले सैकड़ो दुर्गुण उसमे प्रवेश करने लगते हैं।

इसीलिए भगवान् महावीर ने अपरिग्रहवाद के सिद्धात पर विशेष प्रकाश डाला और निवृत्तिप्रधान मार्ग की प्रेरणा दी। उन्होने साधु व गृहस्थ धर्मों के जो नियम बताये वे इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

साधु के लिये तो उन्होंने परिग्रह का सर्वथा ही निषेध किया उसे निर्ग्रन्थ कहा। साधु को इसीलिए सयमोपकरण रखते हुए अपरिग्रही कहा है कि उसका उनमे ममत्व नहीं होता और ममत्व क्यों नहीं होता कि उन पदार्थो पर वह अपना स्वामित्व नहीं मानता। वे पदार्थ वह भिक्षा द्वारा प्राप्त करता है। साधु के लिए तो भगवान ने कहा कि उसको अपने शरीर में भी ममत्व नहीं होना चाहिये इसीलिए जैन साधु का जीवन जितना सादा जितना कठोर और जितना त्यागमय बतलाया गया है उसकी समता अन्यत्र कठिनता से देखने में आयेगी।

भगवान् महावीर ने साधु-जीवन को कतई परिग्रह से मुक्त रखा ताकि ये गृहस्थों में फैले परिग्रह के ममत्व को घटाते रहे।

जो तृष्णा के दास हैं

आज के मानव को अपने स्वार्थों को पूरा करने की आशा आकाक्षा इच्छा तृष्णा वासना या कुछ भी कह लीजिए इतना पागल बना रही है कि ऐसा पागलपन आज तक नहीं देखा गया। उसकी मदान्धता ने सामाजिक जीवन मे भीषण उथल पुथल मचा दी है। इसका कारण यह है कि आज की इच्छाओ ने व्यक्तिगत से सामूहिक रूप धारण कर लिया है और इसीलिए पूर्ति के साधनो में भी सामूहिकता का भाव आने से इसकी भीषणता व बर्बरता अधिक बढ गई है। लेकिन यह सामूहिकता व्यापक सामूहिकता नहीं किन्तु कुछ शक्तिसम्पन्नों की सामूहिकता है जो अपने मानवता-घातक सगठनों द्वारा अशक्त विशाल जन समाज का क्रूर शोषण करवाती है।

इस स्थिति का वास्तविक कारण सहज ही मे जाना जा सकता है। तृष्णा के पागलपन मे मनुष्य अन्धा हो जाता है। तब उसकी जीवन-शाति में अशाति के भीषण अधड़ आया करते हैं जो केवल उसके जीवन को ही अशात नहीं बनाते बल्कि सारे समाज के लिये भी अभिशाप-रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाए उठती जाती हैं जिनकी पूर्ति म मनुष्य हर बुरे-से-बुरा तरीका काम में लाकर समाज में शोषण अन्याय और उत्पीडन की भयकर आग जलाता है। यही कारण है कि व्यवहार मे धार्मिक चिन्तन एव क्रियाए करने वाला व्यक्ति आन्तरिक विचारधारा से आशापूर्ति के नवीन-नवीन उपायों की खोज करता रहता है।

दरिद्रता का उन्मूलन कैसे ?

आज के मानव को अपने स्वार्थों को पूरा करने की आशा आकाक्षा इतना पागल बना रही है कि ऐसा पागलनपन आज तक नहीं देखा गया है। पागलपन में वह इतना अधा हो गया है कि उसकी जीवन-शान्ति में अशाति के भीषण अधड आया करते हैं जो केवल उसके जीवन को ही अशात नहीं बनाते बल्कि सारे समाज के लिये भी अभिशाप रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाए उठती जाती हैं जिनकी पूर्ति मे मनुष्य हर बुरे-से-बुरा तरीका काम में लाकर समाज मे शोषण अन्याय और उत्पीड़न की भयकर आग जलाता है।

तृष्णा के इस विषाक्त व्यापक प्रसार के कारण सासारिक व धार्मिक - दोनों क्षेत्रों में दरिद्रता घर कर गई है। इस दरिद्रता से आज मानवता पिस रही है और पशुता का नगा नाच हो रहा है। यह दरिद्रता तृष्णा परित्याग से हटाई जा सकती है। तृष्णा का त्याग करके ही मानव-समाज की आर्थिक एव अन्य क्षेत्रीय दरिद्रताओं का विनाश सहज ही मे हो सकता है।

शाति का उपाय

शान्ति जीवन-विकास के लिये एक प्रमुख आवश्यकता है और जब तक किसी भी प्रकार से हम हमारे हृदय व मस्तिष्क मे शाति के सचार का प्रयास नहीं करेगे आपत्तियों के तूफान में पडकर कभी हम आत्मोन्नति की ओर ध्यान दे नहीं सकेंगे। सच्ची शान्ति के लिए विकृत मनोविकारों का आवरण हटाना होगा। राग द्वेष मोह-माया तृष्णा स्वार्थ आदि रागात्मक

वृत्तियो का त्याग करके हृदय को अधिकाधिक उदार व विशाल बनाना होगा। जो भी महापुरुष शाति की परम स्थिति को पहुँचे हैं उनके स्पष्ट अनुभव हैं कि ज्यो-ज्यो मनुष्य निजी स्वार्थों को भूलकर परहित मे अपने स्वार्थों को विसर्जित करता चला जाता है त्यों-त्यो वह शाति की मजिल के समीप पहुचता है। इसके साथ ही अपने ही स्वार्थ मे निरत रहने पर जीवनाकाश को अशाति के बादल ही घेरे रहते हैं। इस रहस्य मे आत्मा की मूल प्रवृत्ति का प्रदर्शन हमें मिलता है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और इसलिये ऐसे कार्य सम्पादित करने मे उसे आनन्द व शाति की प्राप्ति होती है जो उसको नीचे गिराये रहने वाले भार को हल्का करते हैं। अपने ही दृष्टिकोण से दूसरो के लिये सोचना - यह सकुचित मनोवृत्ति आत्मा को पतन की राह पर नीचे ढकेलने वाली होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक स्थायी शाति का निवास स्वार्थ-त्याग तथा आत्म बलिदान में ही रहा हुआ है। पहली श्रेणी है कि अपने निजी स्वार्थों की भावना को खत्म कर दिया जाय और तदनन्तर दूसरो के व्यापक हितो के लिये अपना हर तरह का बलिदान प्रस्तुत किया जाय। यह बलिदान-पथ कठोर अवश्य है किन्तु बाहरी सुख और आन्तरिक शाति का कोई सम्बन्ध नहीं है। आन्तरिक शाति की साधना तो आत्मविसर्जन की भावना के साथ ही सफलतापूर्वक की जा सकती है। आत्मविसर्जन की चरम सीमा पर पहुचने के साथ ही कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है और यही कैवल्य ज्ञान परम-शाति का मुखद्वार है।

आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता

आत्मा के सम्बन्ध मे मनन और चिन्तन करना हमारी जिज्ञासा का चरम बिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहिचानना ही परमात्मपद को उपलब्ध करना है जहा से ससार के बदलते हुए भावो का अवलोकन किया जा सके। आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण ही आज ससार में इतना अज्ञानान्धकार व दुख छाया हुआ है।

जीवन में नित्य परिवर्तन होते रहते हैं और विचारों एव भावनाओ मे नई क्रातिया हो जाती हैं किन्तु यदि हम आत्म-तत्त्व को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो ज्ञात होगा कि मूलत जीवन मे एक ऐसा केन्द्र-स्थल है जो शाश्वत स्थिर और शात है और जिसे विशाल प्रभजन महान् भूकम्प प्रचड ज्वालामुखी तथा भौतिक युग के सहारक शस्त्र और बम भी स्पर्श तक नहीं कर सकते। अशाति का ताडव नर्तन भी आत्मशाति को बाधित नहीं कर सकता।

आत्म-शक्ति का अन्तर्दर्शन ही व्यक्ति-विकास की कुजी है। आत्मिक शक्ति को प्रकाशित करने का अपूर्व साधन है - आध्यात्मिक ज्ञान। आज के जडवादी युग ने इस ज्ञान को लुप्त करने के प्रयास किये हैं किन्तु भारतीय सस्कृति-पटल से इसे मिटाया नहीं जा सकता और जिस दिन यह पुनीत स्थिति पूर्ण रूप से हमारे ह्रदयो से लुप्त हो जायेगी उस दिन एक सास्कृतिक प्रलय आयगा जो मानवता को क्रूर बर्बरता में परिणत कर देगा। अत सच्चे विकास के लिए हमे आत्म-स्वरूप को यथार्थ रूप मे समझ लेने के बाद आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्रगति की उस पावन मजिल तक आत्मा को पहुचाना है।

मनुष्य को अपने स्वरूप को समझकर विवेक रखने की आवश्यकता है। ससार म रहते हुए अध्यात्म-ज्ञान ससार से भागना नहीं सिखाता है। वह तो मानव को अनासक्ति योग की शिक्षा देता है।

अध्यात्म-ज्ञानी 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को केवल समझता ही नहीं अपितु अपने जीवन मे उसका यथाशक्य आचरण करता है। वह समझता है कि वह जैसा व्यवहार दूसरो के प्रति करेगा यदि वैसा ही व्यवहार उसके प्रति भी किया जाय तो उसकी अनुभूति कैसी होगी तथा उसी विचारणा के अनुसार वह अपनी सारी प्रवृत्तिया निर्धारित करता है।

सम्यक् चारित्र का आचरण करो

जैनागमो में विस्तारपूर्वक चारित्र-चित्रण का व्याख्यान किया गया है। ज्ञान की महत्ता चारित्र्य के साथ ही कही गई है। बिना चारित्र्य के ज्ञानी की उपमा शास्त्रों मे है कि चन्दन के भार को वहन करता हुआ भी गधा जैसे उसकी सुगन्ध को नहीं समझता वह तो उसे भार की तरह ही उठाये फिरता है उसी तरह आचरणहीन ज्ञान भी भाररूप ही है। ज्ञान और चारित्र्य के सगम से ही मनुष्य अपने अतिम ध्येय तक पहुच सकता है। ज्ञान के बिना चारित्र्य अन्धा है और चारित्र्य के बिना ज्ञान लगड़ा अत अन्धे और लगड़े के परस्पर सहयोग करने से ही दोनों का त्राण हो सकता है। आचरणहीन ज्ञान की तरह ही शास्त्रो मे ज्ञानहीन आचरण को भी महत्त्व नहीं दिया गया है। बिना सम्यग्ज्ञान के की जाने वाली कठोरतम क्रियाए भी चारित्रिक विकास का कारण नहीं बन सकतीं। लोभी व्यक्ति भी अपने धनार्जन के लिए साधु की तरह शीत ऊष्ण वर्षा के कष्ट सह सकता है पर उनका कोई महत्त्व नहीं। जैसे बिना सुवास के पुष्प का मोल ही क्या ? उसी तरह आत्म-भावना बिना तपादिक की क्रियाए

आत्म विकास मे सहायक नहीं हो सकतीं। दशवैकालिक सूत्र मे स्पष्ट कहा है कि तपस्यादि आचार का पालन न तो इस लोक मे प्रशसा प्राप्त करने के हेतु करे न परलोक के सुखो की प्राप्ति के लिए। किन्तु केवल अपने आत्म विकास के लिए पूर्ण निष्काम भाव से ही करे। जैन शास्त्रो मे ऐसी किसी भी क्रिया का विधान चारित्र्य की श्रेणी मे नहीं किया गया है जिससे किसी भी रूप मे मानसिक वाचिक या कायिक हिसा होती हो।

कई लोग जैनो द्वारा वर्णित चारित्र्य धर्म को सिर्फ निवृत्ति व प्रवृत्ति का ही रूप बताते हैं किन्तु जैन धर्म निवृत्ति व प्रवृत्ति उभय रूपक है। प्रवृत्ति के बिना निवृत्ति का कोई अर्थ ही नहीं होता। असत् से निवृत्ति करने के लिए सत् मे प्रवृत्ति करनी ही पडेगी। जैनागमो मे जहाँ बुराई के त्याग का वर्णन है वहीं अच्छाई के आचरण का भी। 'कु' को 'सु' में बदल देना ही सच्चा आचरण है। जैन दर्शन मे साहजिक योग सुमति का वर्णन है जिसका अर्थ ही है कि सम्यक प्रकार से गति करना।

इस तरह के वर्णित आचरण के अनुसार जो अपने जीवन को ढाल लेता है उस आत्मा का चरम विकास सुनिश्चित बताया गया है। इस सारे आचरण का मूल हमारे यहाँ विनय को कहा गया है- 'विणयो धम्मस्स मूल ।

समय का मूल्याकन करो

समय का समुचित मूल्याकन ही नियमितता एव व्यवस्थितता की कुजी है। जबकि हम देखते हैं कि आज के साधारण जीवन मे समय को यथायोग्य महत्त्व नहीं दिया जाता। जीवन का कोई नियमित व्यवस्था-क्रम ही नहीं। पैसे ही हाय-हाय ऐसी देखी जाती है कि सुबह से लेकर रात तक घाणी के बैल की तरह जुटे ही रहते हैं तृष्णा के पीछे पागल होकर। उन्हें अपने जीवन मे शाति का अनुभव ही नहीं होता और उसका स्पष्ट कारण है कि समय का सद्‌विभाजन व सदुपयोग किये बिना मानव का मन कभी भी सुखी नहीं बन सकता। इसी दृष्टि से शायद समय के महान् महत्त्व को सुप्रकट करने के लिये महावीर ने निर्देश किया कि-

समय गोयम ! मा पमायए......

हे गौतम ! तू 'समय' मात्र का भी प्रमाद - आलस्य मत कर।

मनुष्य अपने जीवन के क्रमबद्ध विकास की ओर तभी मुड सकता है जबकि उसे अपने जीवन अपने विचारों व अपनी प्रवृत्तियो को स्वयमेव भलीभाति पहचानने व परखने का मौका

मिले और यह तभी हो सकता है कि वह अपने दैनिक कार्यक्रम मे कुछ भी निश्चित समय आत्मचिन्तन के लिये निकाल ले। आत्मचिन्तन व आत्मालोचन से अपने जीवन को सुव्यवस्थित बनाने की ओर सुदृढ मनोवृत्ति का निर्माण होता है और यही मनोवृत्ति बुद्धि को सुष्ठु बनाते हुए जीवन के सभी पक्षो को समुन्नत बनाती है।

आनन्द-प्राप्ति कब !

मन और इन्द्रियो की गुलामी से छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आतरिक आवाज का अनुकरण करने लगे तो वह आनन्द वास्तव मे विशिष्ट आनन्द होगा और उसी आनन्द की निरन्तर बढ़ती हुई अनुभूति मे आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जायगा।

जब तक यह आनन्द देश काल और वस्तु की परिधियो मे बन्द रहेगा तब तक वह आनन्द न होकर आनन्दाभास मात्र रहेगा। क्योकि देश की अपेक्षा में आप सोचते हैं कि ग्रीष्मकाल मे नैनीताल या नीलगिरि शीत प्रदेश होने से आनन्ददायक होते हैं किन्तु वे ही प्रदेश शीतकाल मे आपको आनन्ददायक नहीं हो सकते। इसी प्रकार काल और बाह्य का भी हाल है। वह आनन्द एक समय में होगा एक प्रदेश में होगा अथवा कि एक पदार्थ में होगा किन्तु दूसरे ही समय प्रदेश या पदार्थ की उपलब्धि होते ही वह नष्ट हो जायगा।

अत यह आत्मिक आनन्द देश काल वस्तु से वर्णादिक भाव-शून्य आत्मा में ही निहित है और उसी मे रमण करती हुई आत्मा आनन्द को प्राप्त होती है।

आत्मविस्मृति का कारण

आत्मस्वरूप के प्रति अनभिज्ञता का एक प्रधान कारण यह भी है कि हमारे देश का बहुत बड़ा हिस्सा अवतारवाद' में विश्वास करता है। 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' के सिद्धान्तानुसार ससार को सकटो से उबारने के लिये स्वय ईश्वर ही भिन्न भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूप मे अवतरित हुए हैं और उन्होंने ससार की गति को सत्पथ की ओर मोड़ा। इसके सिवाय वे लोग यह भी विश्वास रखते हैं कि वही ईश्वर सृष्टि का कर्ता भी है तथा उसकी मर्जी के बिना धरती का एक भी कण और पेड़ का एक भी पत्ता नहीं हिलता। मनोवैज्ञानिक रूप से सोचें तो इस मान्यता के द्वारा साधारण जनता मे आत्मविस्मृति व अकर्मण्यता का भाव फैलता गया। निज की शक्ति के प्रति अविश्वास समाता गया और यह

सोचा जाने लगा कि इस विशाल विश्व में उसका अस्तित्व किसी महत्त्व का धारक नहीं। इस प्रकार की हीन मान्यता (Inferionty Complex) की भावना ने जनता मे फैलने वाली सजगता व चेतनता का विनाश किया और उसे यह मनाने पर मजबूर किया कि परमात्मा ही सब कुछ है जो उनकी आत्मशक्तियो से परे एक अलग विशिष्टतम तथा अनोखी आत्मशक्ति है। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग मे इस अन्धवादिता से दूर होने की और यह समझने की आवश्यकता है कि हमारा अपना अस्तित्व हमारे लिये क्या महत्त्व रखता है और उसे किस विकास की तरफ ले जाने से प्रगमनशीलता के क्षेत्र मे पूर्णतया प्रस्फुटित हो सकता है ?

जैन दर्शन के किसी सिद्धात मे अन्धवादिता व प्रतिक्रियावादिता की बू नहीं मिलेगी। वह न तो अवतारवाद मे ही विश्वास करता है और न ईश्वर-सृष्टि कर्तव्य मे ही। वह तो आत्मा की निज की अमित शक्ति पर विश्वास करता है जिसका चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जैन दर्शन स्पष्ट कहता आया है कि जीवन का विकास किसी बाह्य शक्ति की प्रेरणा से नहीं अपितु निज मे रही हुई शक्ति को पहचान लेने से होता है। मानव स्वय अपने जीवन का निर्माता है और उसके उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व केवल उसी पर है।

•

चारित्र-निर्माण की बात करते हैं तो

अपरिग्रहवाद की गहराई मे घुसकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वहा व्यक्ति और समाज - दोनों को सतुलित करने का विचार किया गया है। समाज में विषमता शोषण एव अन्याय की जननी ममत्वबुद्धि है जो दूसरी तरफ व्यक्ति के चारित्र और अध्यात्म को भी नीचे गिराती है। जिस समाजवादी सिद्धान्त की कल्पना की जाती है वह भी क्या है - एक तरह से समाज में सम्पत्ति धनधान्य एव उपभोग-परिभोग की वस्तुओ की समान रूप से मर्यादा बाधने की ही तो बात है।

जब साधन-सामग्री का नियमन किया जाये तो निश्चित है कि उसका कम हाथो में सग्रह नहीं होगा बल्कि वही सपत्ति और सामग्री अधिकतम हाथो में बिखर जायगी। जीवन निर्वाह के लिये शोषण की आवश्यकता नहीं होती है वह तो होती है सग्रह के लिये इसलिये सग्रह ही समाज मे सारी बुराइया पैदा करता है। फलस्वरूप समाज के सभी वर्गों पर इस विषमता का कुप्रभाव होता है अनैतिकता फैलती है।

जहा हम व्यक्ति का चारित्र उठाना चाहते हैं उसे नीतिमान व सयमशील बनना चाहते हैं वहा ममत्व को मर्यादित कर दिया जाय व उसे निरन्तर घटाते रहने का क्रम बनाया जाये तो निश्चित रूप से समाज में एक कुटुम्ब का-सा भ्रातृत्व व समता का भाव फैलेगा तथा धर्म

के क्षेत्र मे निष्काम निवृत्तिवाद का प्रसार होगा जिसका उपदेश भगवान महावीर ने दिया।

इसकी ओर आप लोगो का ध्यान जाय और उस मार्ग पर चले तथा इसका प्रकाश सारे ससार म फैलायें - यह आज के युग की माग है।

सर्वोदय के लिये क्या करे ?

परमात्मा की जय मे ससार के सभी प्राणिया की जय है चाहे उन प्राणियों मे जैन हिन्दू मुस्लिम हो या पूजीपति-मजदूर हो या मित्र शत्रु व मानव पशु हो। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सब का उदय हो सब मानवता के रहस्य को समझकर अपनी अन्यान्यपूर्ण विशेषताओ को छोडे और विश्वबन्धुत्व की स्थापना करें इसी मे परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है। आज हम अपनी जय चाहते हैं उसका विनाश देखने की उत्सुकता रखते हैं। यही अज्ञान है और परमात्मा के स्वरूप को वास्तविकता से नहीं समझने का फल है। परमात्मा के स्वरूप को पहचानने वाला सच्चा भक्त अपनी जय नहीं चाहता। वह तो समस्त प्राणियों की जय मे ही अपनी जय समझता है। सभी पर उसकी समतामरी दृष्टि होती है।

मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्त्व को समझें और परमात्मा की जय बोलने मे सब प्राणियों के साथ साम्यदृष्टि को अपनाए। वैभव और शरीर आदि सब नश्वर हैं एक दिन नष्ट हो जायेगे और साथ रह जायेगा वही जो-कुछ किया है। समाज की सघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये। इसके लिये अपनी वासनाओ और आवश्यकताओ को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यों के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये। समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझे सबसे प्रेम करें सबकी रक्षा करें यही सर्वोदयवाद है।

जब तक एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं होगी तब तक समाज मे परस्पर व्यवहार की रीति-नीति समान व सम्यक नहीं बनेगी। अत आज के युग की माग है कि जैन धर्म के पुनीत सिद्धातों का आचरण किया जाये। उनके आचरण का अर्थ होगा कि आप समानता के अनुभव को हृदय में जमा ले और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उसका व्यावहारिक प्रयोग करें। मानव के मानवोचित सम्यक कर्तव्यों का पुज ही तो धर्म है जो समाज में बधुता और ममता की धारा बहाते हुए आत्म विकास की दिशा में पराक्रमशाली बनाता है।

यही सर्वोदय के विकास का मूलाधार है। इसी ओर लक्ष्य देने और उसके अनुकूल जीवन व्यवहार करने से सर्वोदय की भावना को सफल बनाया जा सकता है।

जीवन के केन्द्रबिन्दु

जीवन के आचार-विचार इन तीन केन्द्रबिन्दुओ पर आधारित हैं - अहिसा अपरिग्रह अनेकान्तवाद। ये तीनो बिन्दु जीवन को पूर्ण बनाने वाली सीढिया हैं।

जैन धर्म का हृदय है - अहिसा। जैन धर्म में अहिसा का जो स्वरूप-दर्शन तथा निरूपण किया गया है वह सर्वाधिक सूक्ष्म है। अहिसा की आराधना के लिए मन वचन और काया - इन तीनो मे एक साथ शुद्धि की आवश्यकता हे। इन तीनो मे अहिसा वृत्ति के सहज प्रवेश पर ही अहिसा धर्म का सुचारु रूप से पालन किया जा सकता है। अहिसा का साधन वीरो का है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिसा से ही अधिक पीडित हैं। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिसा से दूसरो को तो गिरा सके या नहीं किन्तु अपने-आप को तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा डालता है।

परिग्रह की व्याख्या है - मूर्च्छा परिग्रह। पदार्थो का नाम परिग्रह नहीं उनमे ममत्व रखकर आत्मज्ञान से शून्य हो जाना परिग्रह कहा गया है। जब जड पदार्थों मे गृद्धि बढती है और प्राणी अपने चेतन तत्त्व को भूलता है तब उसको परिग्रही कहा जाता है। ममत्व जब मनुष्य के मन मे जागता है तो आत्मा को कलुषित करने वाले सैकडों दुर्गुण उसमे प्रवेश करने लगते हैं। शोषण एव अन्याय की जननी ममत्व बुद्धि है जो दूसरी तरफ व्यक्ति के चरित्र और अध्यात्म को भी नीचे गिराती है।

किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमे स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमे विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अत उसके सारे पक्षों व दृष्टिकोणो की दृष्टि को समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धात के गहन चिन्तन के आधार पर ही सभव हो सकता है।

सत्य का साक्षात्कार जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनुभवों व विभिन्न प्रयोगा का कर्मस्थल है जहाँ हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं। जीवन के आचार विचार की सुघडता व सत्यता मे व्यक्ति समाज व विश्व की शाति रही हुई है। अत आज आचार विचार की उदारता पवित्रता की प्रेरणा के लिए अहिसा अपरिग्रह और अनेकान्तवाद के सिद्धान्तो को समझने परखने और अमल मे लाने की आवश्यकता है।

मानव-जीवन की विशिष्टता का आधार

चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणिय जन्तुणो।
माणुसत्त सुई सद्धा सजममिय वीरीय।।

विश्व के समस्त प्राणियो में मानव-जीवन का स्थान सर्वोच्च है इसीलिये शास्त्रकारों ने भी उसे दुर्लभ कहकर पुकारा है। परन्तु यह गम्भीर विचार का प्रश्न है कि मानव-जीवन की यह सारी विशिष्टता किस भूमिका पर टिकी हुई है क्योकि उसका स्पष्टत ज्ञान होने पर ही किसी वस्तुस्थिति के मूल से लेकर उसके पूर्ण विकासक्रम को पहिचाना जा सकता है। जब भूमिका के विषय मे ही अस्पष्ट धारणा हो तो तत्सम्बन्धी विकास और उपयोगिता की पूरी जानकारी नहीं होगी और जिसका परिणाम हो सकता है - पूर्ण स्वरूप से अनभिज्ञता। मानव-जीवन के सम्बन्ध मे भी आज कई गलत धारणाएँ प्रचलित हैं जिनसे इस जीवन के अमूल्य हाने का भान नहीं हाता एव उसे उस दृष्टि से सार्थक बनाने के प्रयास नहीं हो सकते।

यहा मानव-जीवन के सम्बन्ध मे उन धारणाओं की मीमासा की जा रही है जिनके कारण मानव-जन्म पा लेने पर भी मानवता की प्राप्ति नहीं होती। मानव का रूप मिल जाना एक बात है किन्तु भावनात्मक दृष्टिकोण से मानवता प्राप्त कर लेना कतई दूसरी बात। मानव मे जिन सद्‌गुणो का सद्‌भाव होना चाहिये यदि ये विकसित नहीं होते तो मानव-जीवन भी पशुवत ही है।

अगर कोई मानव जीवन की विशिष्टता उसके शारीरिक बल में स्थापित करता है तो यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होगा। क्योकि चिघाड़ते हुए मदमत्त हाथी वन प्रदेश को अपनी भीषण गर्जना से कम्पायमान बना देने वाले सिह और विकराल रूप-धारी अन्य जगली जन्तुओं के समक्ष बेचारे मानव-शरीर का बल ही क्या ?

मनुष्य ने यदि अपने रूप और सौन्दर्य में मानव-जीवन की विशेषता मान रखी है तो वह भी व्यर्थ है। रूप आखिर क्या है ? यही तो कि मिट्टी के पुतले पर जो रग-रोगन किया हुआ है वह समयरूपी वर्षा की बौछार लगते ही धुल जाता है। तरुणाई मे निखरा हुआ सौन्दर्य चार दिन बाद झुलस जाता है। आज का छलछलाता हुआ रूप का प्याला कल जरा से काल के झोंके से ढुलक जाता है। इसलिये रूप का अभिमान पतन का चिह्न है।

इसके अतिरिक्त परिवार और वैभव स भी मानव जीवन की कोई प्रतिष्ठा नहीं। रावण के विशाल परिवार एव स्वर्णिम लकापुरी के वैभव का क्या कहना ! और क्या कोटि यादव एव

दिन भारत के भाग्यविधाता नहीं बने हुए थे ? किन्तु क्या सभी विनाश के विशाल गर्भ में विलीन होने से बच गये ? नहीं ऐसा नहीं हो सका।

जीवन के दो पहलू

वास्तव में जीवन एक साधनस्वरूप है जिसे किसी निश्चित साध्य के पीछे विसर्जित कर देने में ही उसकी विशेषता रही हुई है। यदि साध्य तक पहुचने मे साधन शिथिल व अयोग्य प्रतीत होता है तो साधन के प्रति साधक को सचेत होने की आवश्यकता होती है। जीवन का साध्य मुक्ति है जो आत्मा का मूल स्वभाव है। आत्मा को विकारो के मल से मुक्त करके उसी परमशुद्धता मे स्थायित्व ग्रहण करने का नाम मुक्ति है। मुक्ति साध्य जीवन साधन और आत्मा साधक है। साध्य गतिशील नहीं होता वह तो सुनिश्चित होता है अत उसके प्रति दृष्टि ठहरा कर साधक को अपने साधन काम मे लेने होते हैं। साधक को साधन मे परिवर्तन व शुद्धिकरण भी उसी केन्द्रबिन्दु के अनुसार करने होते हैं। अत हमारे लिये मुक्ति साध्य है परन्तु उसके साधनो मे विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं। इसी बात को लेकर हमारे जीवन की समस्या पर हमे गहराई से सोचना चाहिये और इस सत्य को समझ लेना चाहिये कि हम अपने जीवन को कैसे पथ की ओर अग्रसर करे ताकि हमे अपना मुक्ति का उद्देश्य प्राप्त हो सके।

अध्यात्मवाद का स्पष्ट मत है कि जो निजात्म को पूर्ण रूप से पहिचान लेता है उसके लिये मुक्ति का मार्ग आसान हो जाता है। अपने आत्मभावो मे रमण करने से निज की शक्ति का अनुभव होता है और उस अन्तर्शक्ति की अद्भुत प्रेरणा से उसमे ऐसा साहस केन्द्रित हो जाता है ऐसे ज्ञान और क्रिया का सम्मिलन हो जाता है कि फिर उसके मार्ग की बाधाए नष्टप्राय हो जाती हैं। आत्मरामी होने से अपने जीवन का उत्थान मार्ग तो शोधा ही जाता है परन्तु उसके साथ ही आत्मशक्ति और उसके सचालन का ऐसा दृढ अनुभव होता है कि जिसके द्वारा अन्य आत्माओ के मनोभावो और प्रवृत्तियो को समझने का ज्ञान उत्पन्न होता है। अनुभव ही यथार्थत किसी भी क्षेत्र की गहराई को पहचानने की कसौटी का काम करता और इसी तरह आत्मसाधना की परिपक्वता के फलस्वरूप आत्मा आत्मरामी से अन्तर्यामी बन जाती है।

पुरुषार्थ करो !

पापपूर्ण आर्थिक व्यवस्था की बुनियाद मे यह भावना काम कर रही है कि पुरुषार्थ और श्रम न किया जाय। प्राय हर व्यक्ति यह चाहता है कि वह व्यापार नौकरी या सट्टा आदि ऐसा व्यवसाय पकड़ ले कि मेहनत तो कम-से-कम करनी पड़े और लाभ अधिक-से-अधिक पैदा हो सके। जब मनुष्य श्रम से दूर भागता है तो उसमें दूसरे की वस्तु छीनने की भावना होती है क्योंकि आवश्यकताओ को तो वह दबाता नहीं बल्कि किन्हीं अशो मे बढाता है और वैसी स्थिति मे शोषण और मुनाफावृत्ति की नींव जमती है।

विकास की राह पर आगे बढ़ने का यह विशिष्ट उपाय है कि आप लोग स्वावलम्बी बनें स्वावलम्बन द्वारा अपने ही पैरों पर खड़े होवे। तभी आपको दूसरो से सम्मान भी प्राप्त हो सकता है। ऊपर की चटक-मटक और बाहर के आडम्बर से किसी को क्षण भर के लिए धोखा देकर अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है किन्तु वास्तविक सरलता व श्रम की भावना के बिना ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह किसी के हृदय को स्थायी रूप से प्रभावित नहीं किया जा सकता। आडम्बर टिक नहीं सकते उन्हें स्वप्नो के समान नष्ट होना पड़ता है। यह तो अपने जीवन के प्रति गहराई से सोचने और समझने की बात है। जो पुरुषार्थी नहीं उन्हे समाज भले ही क्षण-भर के लिए अपनाता दीखे किन्तु अन्ततोगत्वा वे सब बुरी तरह फेक दिये जाते हैं।

आलसी आदमी ही नाना प्रकार के बहाने बनाते हैं और नाना तरह की युक्तियां देकर अपनी आदतो की पुष्टि करते हैं। 'भाग्य मे जो होगा वही होगा' यह भी आलस्य की ही मूल भावना है। भाग्य भी तो मनुष्य का ही बनाया हुआ होता है और इसलिए मनुष्य उसे बदल भी सकता है। जीवन के ह्रास और विकास में भाग्य मुख्य नहीं है पुरुषार्थ और श्रम प्रधान कारण हैं। परिश्रम से दूर भागने वाले अधिकतर भाग्य की दुहाई देकर अपनी आलस्यवृत्ति को छिपाना चाहते हैं। साहस के साथ आगे बढ़ने वाले भाग्य को नहीं देखते वे तो एकमात्र कर्तव्य पर अपना अधिकार समझते हैं और कर्तव्य की एकनिष्ठा तथा पुरुषार्थी प्रतिभा से भाग्य के बहाव को भी मोड़ देते हैं। भाग्य और पुरुषार्थ की टक्कर मे पुरुषार्थ की ही विजय होती है।

आलस्य दुख और पौरुष सुख

मैं कई बार सोचता हू और इस निर्णय पर पहुचता हू कि मनुष्यो का जीवन स्वावलम्वी बने और वे पुरुपार्थ से अपना जीवन-निर्वाह करने में स्वतत्र हा तब ही वे सही रूप मे धर्म का पालन कर सकते हैं और साधु भी अपनी साधना मे शुद्धि बनाये रख सकते हैं।

सभी खराबियो व बुराइयो का मूल आलस्य है। पुरुषार्थ करने की शक्ति होते हुए भी जो आलस्य मे माग खाते हैं उनकी भिक्षा पौरुषहरी भिक्षा है। आज मैं आपसे प्रश्न करू कि भारत के लोग इतने आस्तिक है फिर भी इतने दुखी क्यो हैं ? इसकी तह मे उतरे तो यही पायेगे कि दूसरो के पसीने पर गुलछर्रे उडाने की भावना ने घर कर लिया है पर यह सवसे बड़ा पाप है। दुनिया मे सभी पापो की जड आलस्य है। अधिकाश चोरिया लडाइया व अन्य अनैतिकता के कार्य भी इसी आलस्य के कारण ही होते हैं।

जिस तरह मस्तिष्क की मशक्कत के लिये ज्ञान व विचार की आवश्यकता है उसी तरह शरीर-स्वास्थ्य के लिए शारीरिक श्रम भी जरूरी है। शरीर-श्रम के विना मस्तिष्क की गति भी सुस्थिर नहीं रह सकती। इस तरह शरीर-श्रम की सवके लिए अनिवार्यता समाज मे एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है। जैसे शरीर मे रक्त-सचरण बद हो जाये तो लकवा होता है या हार्टफेल उसी तरह सवके शारीरिक श्रम न करने से समाज मे भी एक तरह का पगुपन पैदा होने लगता है।

आलसी आदमी ही नाना प्रकार के बहाने बनाते हैं और नाना तरह की युक्तिया देकर अपनी आदतो की पुष्टि करते हैं। 'भाग्य मे जो होगा वही होगा' - यह भी आलस्य की ही मूल भावना है। भाग्य भी तो मनुष्य का ही बनाया हुआ होता है और इसलिए मनुष्य उसे बदल भी सकता है। जीव के ह्रास और विकास मे भाग्य मुख्य नहीं है पुरुपार्थ और श्रम प्रधान कारण हैं।

अत मैं फिर दोहराऊगा कि समाज व धर्म के सभी क्षेत्रो म आगे बढ़ने व सुखी बनने का यह सीधा मार्ग है कि प्रत्येक व्यक्ति पुरुपार्थी बने। सत्पुरुपार्थ वृत्ति जीवन विकास की निश्चित सीढी है।

वर्तमान विश्व की एक झलक

कर्मण्यता की भूमिका पर ही व्यक्ति समाज व राष्ट्र का उत्थान सम्पादित किया जा सकता है। वैभव और विलास तो पतन के कारण बनते हैं क्योकि विलासिता का दूसरा नाम निकम्मापन भी है। विलासी कायर होता है वह विपदाओ से लड़ नहीं सकता और अपनी हीन आसक्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता।

क्रोधरूपी कालिय नाग अपने तीव्र विषदन्त से सरल प्राणियों में कटुता भर रहा है व ससार मे अनेक अनर्थ करवा रहा है। तृष्णा रूपी पूतना राक्षसी दूध पिला कर आत्मबल को जैसे मार देना चाहती है। लोग सयम नियम नीति से विमुख होकर ऐश्वर्य बढ़ाने की प्रतिद्वन्द्विता मे लगे हैं। भ्रष्टाचार की महामारी-सी फैली हुई है।

अभिमान रूपी कस सारे विश्व को ग्रस रहा है। लोग धन या सत्तावल पा जाने पर अपने आप को मूल स्वेच्छाचारिता की ओर मुड़ जाते हैं एव निर्वलो के अधिकारों को हड़पने व उनका शोषण करने मे आनन्दानुभव करते हैं। मोहरूपी जरासघ आज अन्याय का कारणभूत हो रहा है क्योकि मोह मे मनुष्य की एकान्त बुद्धि हो जाती है और वह सत्यासत्य के सद्विवेक से विमुख होता चला जाता है। लोभरूपी दुर्योधन साधनो को केन्द्रीभूत कर सच्चे हकदारो को भी 'सुई की नोक के बराबर भूमि' देने को तैयार नहीं। लोभ को शास्त्रों मे काल कहा है और यह पाप का बाप भी कहा जाता है क्योकि इसी के वशीभूत होकर मनुष्य अत्यधिक स्वार्थी और हीन स्वभावी हो जाता है।

आज ये सारी कुटिल मनोवृत्तियाँ खुलकर खेलती हुई देखी जाती हैं और ऐसे जटिल समय मे सत्यस्वरूप हृदय मे जगाया जाय और उन कुविचारों एव असद्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने की अमिट शक्ति पैदा की जाय। जीवन के इस विशाल क्षेत्र में सद्कर्म करते जाइये निरपेक्ष और निस्वार्थ होकर तो लौकिक व आत्मिक उत्थानों की मजिल दूर नहीं रहेगी। इसी सन्देश को आज के दिन सब को सुनना और समझना चाहिये तभी किसी प्रकार की सार्थकता हो सकती है।

आज की आवश्यकता

यह दुख का विषय है कि देश में त्याग की भावना का ह्रास होता जा रहा है। छोड़ देने की भावना के बजाय ले लेने की भावना का अधिक प्रसार होता हुआ देखा जा रहा है। स्वार्थ

का महादैत्य लोगो के हृदयो पर छा गया है और इसीलिये त्याग नहीं भोग की भावना प्रबल वन रही है। स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ऐसी विकृत अवस्था बनती जा रही है जिसे सुधारे बिना भारतीय सस्कृति की गौरवान्वित परम्परा का निर्वाह नहीं किया जा सकेगा।

आज चारो ओर देखने से ऐसा लगता है कि कर्तव्य की वृत्ति लुप्त हो रही है और अधिकारों की लोलुपता वढ रही है। परन्तु यह सोचने की बात है कि कर्तव्यो की नैतिक भूमिका पर ही अधिकारो का जन्म होता है। इसमे कोई सदेह नहीं कि धोखा देने वाले 'वकवास' बहुत बढ़ गये हैं। नेता भी वक्तव्यों पर वक्तव्य देते हैं योजनाओं के कागजी घोडे दौडाते हैं और देश के महान् विकास का स्वप्न दिखाते हैं। लेकिन समझ मे नहीं आता कि जब त्याग का अभाव हो रहा है तो किसके सयम और नैतिकता के बल पर देश का विकास हो सकेगा ?

इधर जनता भी अधिकार मागती है अपने कर्तव्यों की ओर नहीं निहारना चाहती। कर्तव्यो ही से अधिकार की प्राप्ति होती है चाहे वे अधिकार नागरिक के हों अथवा शासक के। क्योकि कर्तव्य का तात्पर्य भी एक दृष्टि से दूसरो की सुख-सुविधा के लिये अपना त्याग करना है सबके समान सुख के लिये अपने-आप को सबमे त्यागमय बना देना है। जब कोई दूसरा एक नागरिक के लिए त्याग करता है तो वही उसका अधिकार हो जाता है। एक का कर्तव्य दूसरे का अधिकार होता है। मूल वस्तु तो कर्तव्य है - त्याग है जिसके आधार पर सार्वजनिक सुख व कल्याण की भित्ति चिरस्थायी रह सकती है।

आज के मानव के पीछे स्वार्थ का महादैत्य इस बुरी कदर पडा है कि उसे अपने कर्तव्यो का भान नहीं रहता। उसे तो भान होता है अपनी स्वार्थपूर्ति का - फिर भले ही उसमे किसी का कितना ही नुकसान क्यो न होता हो। यही नहीं गुरुदेव से आशीर्वाद मागा जाता है परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वे उसे सुखी बनावे किन्तु आप विचार करे कि वह सुख कैसा हो ? क्या आज का मानव अधिकाशत वैसे सुख की कल्पना नहीं करता जिसकी रचना दूसरो के शोषण के आधार पर निर्मित होती हो ? और अगर ऐसा है तो वर्तमान मानव के मानस का यह नग्न अन्तर्चित्र बदलना होगा - उसमें आत्मविकास की प्रकाश-रेखाए खींचनी होंगी।

आज उस महान् आदर्श को भुलाया जा रहा है कि अपना सब कुछ निछावर करके भी दूसरो की सहायता करो। यही कर्तव्य है यह त्याग भी है और यह धर्म भी है।

युग की माग है

जगत् का प्रत्येक प्राणी अपने जन्म से किन्हीं आशाओं इच्छाओं व वासनाओं को

पालता-पोसता है तथा जीवन-भर उनकी पूर्ति हित सघर्ष करता रहता है। मनुष्य इसके पागलपन मे अन्धा हो जाता है तब उसकी जीवन-शाति मे अशाति के भीषण अन्धड़ आया करते हैं जो केवल उसके जीवन को ही अशात नहीं बनाते बल्कि सारे समाज के लिये भी अभिशाप-रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाए उठती जाती हैं जिनकी पूर्ति मे मनुष्य हर बुरे-से-बुरा तरीका काम मे लाकर समाज में शोषण अन्याय और उत्पीड़न की भयकर आग जलाता है।

तृष्णा के इस विषाक्त व्यापक प्रसार के कारण दरिद्रता घर कर गई है। इस दरिद्रता मे आज मानवता पिस रही है और पशुता का नगा नाच हो रहा है। अत इस निष्कर्ष पर पहुचना पड़ेगा कि इस दरिद्रता व दु ख का मूल कारण तृष्णा ही है जिसकी गुलामी आत्म-हित व पर-हित घातक है। किन्तु इसके विपरीत तृष्णा को जो अपनी दासी बना लेता है ससार उसका दास हो जाता है।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है। प्राप्त साधनो का व्यापक लोकहित के लिये परित्याग कर देने मे ही त्याग की वास्तविक महत्ता रही हुई है। आज विश्व को भौतिकवादी क्रूरता से मुक्त होने के लिये तृष्णा त्याग मानव प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की आवश्यकता है जो मानव समाज में समता व बन्धुता का वातावरण प्रसारित कर सके।

यह करना ही होगा

आज मनुष्य को अपने दु ख और पतन के कारण ढूढने ही होगे, क्योकि अपने हिताहित का भान रखने की भी एक सीमा होती है और उससे आगे निकल जाने पर तो पतन से निकल आने की सभी सभावनाए शिथिल हो जाती हैं। आज ससार की गति भी तेजी से उसी सीमा के समीप सरकती जा रही है और यदि इस समय सम्यक चेतना और सजगता का प्रसार नहीं किया गया तो ससार महापुरुषों की प्रदत्त विचार निधि को खोकर असभ्यता और असस्कृति के अधकार मे भटकता ही रह जायेगा।

आज चारो ओर देखने से ऐसा लगता है कि कर्तव्य की वृत्ति लुप्त हो रही है और अधिकारों की लोलुपता बढ़ रही है। परन्तु यह सोचने की बात है कि कर्तव्यों की नैतिक भूमिका पर ही अधिकारो का जन्म होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि धोखा देने वाले बकवास बहुत बढ गये हैं नेता भी वक्तव्यों पर वक्तव्य देते हैं।

आज के मानव के पीछे स्वार्थ का महादैत्य इस बुरी कदर पडा है कि उसे अपने कर्तव्यो का भान नहीं रहता उसे तो भान होता है अपनी स्वार्थपूर्ति का - फिर भले ही कितना ही नुकसान क्यो न होता हो ?

समाज का तथ्यात्मक वातावरण पुकार-पुकार कर कहता है कि आज अपने जीवन में त्याग का सर्वोदय करने की आवश्यकत्ता है ताकि स्वार्थों का भीषण अन्धकार कट जाये। आज न तो सिर्फ बाह्य वेश-रूप त्याग का ढोग या पाखण्ड चलेगा और न त्याग को किसी सीमित दायरे में बद रखा जा सकेगा उसे तो सब ओर प्रसारित कर देना है।

जहा सुमति

विश्व की समस्त समस्याओ का चाहे वे किसी भी क्षेत्र की हों मूलत एक ही हल है और वह है बौद्धिक तथा नैतिक। राजनीतिक व आर्थिक समस्याए समाज-विकास मे बाधक अवश्य बन सकती हैं किन्तु बौद्धिक परिपक्वता व नैतिक सहृदयता के अभाव में उक्त समस्याओं का हल भी समाज मे सच्चे सुख व स्थायी शान्ति की सृष्टि नहीं कर सकता। पूर्ण स्वतत्रता एक-एक व्यक्ति के अपने कर्तव्य व अधिकारो के प्रति विवेकपूर्ण ढग से सजग होने से ही उपलब्ध हो सकती है। जब तक बुद्धि का अभाव व उसकी विकृति का अस्तित्व रहेगा समाज में शोषण उत्पीडन तथा अन्याय की समाप्ति असभव है।

सम्पत्ति की प्राप्ति सुमति पर निर्भर है। वह सम्पत्ति चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक लेकिन दोनो की प्राप्ति का उद्देश्य बनाने से पहले यह सोच लेना चाहिये कि अगर सुबुद्धि से - विवेक से काम नहीं लिया गया तो आध्यात्मिक सम्पत्ति तो मिल ही नहीं सकती और एक बार भौतिक सम्पत्ति घातक तरीको से मिल भी गई तो वह टिक नहीं सकती एव बड़े बुरे परिणाम दिखाकर खत्म हो जायगी।

आज चारो ओर दिखाई देता है कि अधिकतर सम्पत्तिप्राप्ति (भौतिक) की दौड लगी हुई है किन्तु पहले सुमति प्राप्त हो - इसकी ओर बहुसख्यकजनों का लक्ष्य नहीं है। बल्कि सम्पत्ति-प्राप्ति मे कुमति से ही अधिक काम लिया जाता है और उसका परिणाम आज समाज में फैली अनैतिकता असमानता व अव्यवस्था में देखा जा सकता है। जो सम्पत्ति कुमति से प्राप्त की जाती है वह कभी भी शान्तिदायक नहीं हो सकती वरन् वह तो अन्त में कभी कभी विनाश का कारण हो जाती है।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ कि सारे ससार की आधारगत समस्या बौद्धिक व नैतिक

है सुमति-सपादन मे ससार का विकास समाया हुआ है। मति बौद्धिकता की ओर इंगित करती है तथा उसके पहले लगा हुआ 'सु' नैतिकता को सम्मिश्रित करता है अत 'सुमति' ही मूल समस्या है और यदि हमको हमारा निज का भविष्य और समाज का भविष्य उन्नत व आदर्श बनाना है तो हमें सुमति-सम्पादन करने में लग जाना चाहिये ताकि इस कलियुग के स्थान पर सतयुग का निर्माण किया जा सके।

सुमति-प्राप्ति का सरल साधन

विकास की मूल आधारशिला सुमति श्रेष्ठ बुद्धि पर टिकी हुई है तथा प्रयोजन का निर्धारण व निर्णय सदैव बुद्धि की भूमिका पर ही होता है। इसलिये अगर बुद्धि 'सु' हुई तो वह गति को विकास पथ की ओर मोड़ देगी तथा बुद्धि की मलिनता व कुत्सितता जीवन को पतन के गड्ढे की ओर ढकेलती हैं। इस दृष्टिविन्दु से सुमति जीवन की प्रगति की प्रमुख साधिका होती है।

अब यह देखना जरूरी है कि ध्येय की तरफ अग्रसर कराने वाली 'सुमति' की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

भवरा सदैव फूलो की सुवास की ओर ही मुड़ता है वैसी ही तन्मयता सुमति प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। परन्तु ऐसी तन्मयता नियमित एव व्यवस्थित जीवनक्रम से ही प्राप्त हो सकती है।

नियमितता का मूलमन्त्र है कि प्रत्येक कार्य को यथासमय सम्पन्न कर लिया जाय। अगर इस कथन को पूर्णतया हृदयगम कर लिया जाय तो दिशासूचक यन्त्र की सुई की तरह जीवन के कठिन क्षणों मे भी अपने लक्ष्य के प्रति सफल सकेत करता रहेगा।

नियमित व व्यवस्थित जीवन का यह अवश्यभावी प्रभाव होता है कि विकास का प्रवाह सुयोग्य विचारों के साथ स्वयमेव ही फूट पडता है। किन्तु इस स्थिति के अभाव ने आज चारों ओर विकृति की काली छाया फैला रखी है।

समय का सर्वोत्तम उपयोग करने वाला व्यक्ति ही अपनी सच्ची प्रगति साध सकता है।

तात्पर्य यह है कि जीवन को नियमित व व्यवस्थित रखने वाला व्यक्ति विकास की तरफ आगे-आगे कदम बढाता रहता है।

इसलिए मैं यही कहना चाहूंगा कि आप समय को व्यर्थ में न गुमायें तथा उसे अपने जीवन को नियमित व व्यवस्थित करने में लगायें ताकि आप अपने अन्तर का सम्मार्जन कर सकें।

यह कभी न भूले

ससार के वर्तमान गतिक्रम पर नजर डाली जाय तो दिखाई देता है कि किन्हीं अशो में आज कस की वृत्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। सासारिक वैभव को प्राप्त करने की कुटिल होड़-सी लगी हुई है जिसमे अपनी प्रवृत्तियो के न्याय-अन्याय का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। यह सोचना कर्तव्य की सीमा के अन्दर ही नहीं समझा जा रहा है कि जो-कुछ अर्जन व प्राप्त किया जाता है काश वह न्याय से उपलब्ध हुआ है या अन्याय से ? इसी का फल है कि भ्रष्टाचार चोरबाजारी रिश्वतखोरी आदि अनेक असामाजिक प्रवृत्तिया समाज व देश के नैतिक स्तर को निरन्तर नीचे गिरा रही हैं। जब पिता-पुत्र और भाई-भाई तक इस दौडधूप में अपने कर्तव्यो को भूल रहे हैं तो अपने करोडो राष्ट्रबन्धुओ के हितो की ओर ध्यान देना तो कठिन प्रतीत हो ही सकता है।

आज यह देखने की जरूरत है कि भोग-पिपासा की क्रूर अन्धता मे ससार के निर्बल एव असहाय प्राणी पिसे जा रहे हैं। जिस प्रकार कस ने अपनी शक्ति का उपयोग पिता की सेवा व जनता की रक्षा में न करके सिर्फ अपने स्वार्थों व अह की पूर्ति में किया उसी तरह आज भी समाज के अधिकतर लोग व्यवहार करते व उसी में सुखानुभव समझते देखे जाते हैं। फलस्वरूप चारों ओर शोषण एव उत्पीडन के कारण त्राहि-त्राहि-सी मची हुई है।

इस अवसर पर यह तथ्य मनन किया जाना चाहिये कि अन्यायोपार्जित वैभव स्थायी रहने वाला नहीं है। जब तक आपका पुण्य-फलोदय शेष है आप कुछ करे - उसके दुष्परिणाम आपके सामने नहीं आते हैं किन्तु इससे यह समझने का प्रयास करना उचित नहीं कहा जा सकता कि आपकी सारी प्रवृत्तिया न्यायानुकूल हैं। प्रकृति में विलम्ब हो सकता है किन्तु उसके नियम का क्रम नहीं टूटता। और तो क्या चक्रवर्ती वासुदेव जैसे भी महान् वैभवशाली पुरुष हुए परन्तु उनका वैभव भी यहीं धरा रह गया। मोहम्मद गजनवी ने सत्रह बार भारत-भूमि को पदाक्रात किया व अगणित वैभव लूटा किन्तु मरते समय तो वही 'सब ठाठ पड़ा रह जायगा जब लाद चलेगा बनजारा' हुआ। कोई भी उसे मृत्यु से नहीं छुडा सका। वैभव की भूख आखिर जाकर पश्चात्ताप की अग्नि मे झुलसा डालती है। अत बुद्धिमत्ता इसी में है कि निज के समाज के नैतिक स्तर को ऊपर उठाकर जीवन का सत्य-साधनों से सर्वोच्च विकास करने का सत्प्रयास किया जाय।

प्रार्थना की शक्ति

प्रार्थना एक परमपवित्र दैनिक अनुष्ठान है और सभी आध्यात्मिक नेताओं ने इसके महत्त्व को स्पष्ट किया है तथा इसके आचरण पर जोर दिया है।

प्रार्थना मे एक ऐसी विशिष्ट शक्ति है जो हमे श्रद्धाशील बना देती है। उन महान् आत्माओ के गुण-गानो से जिन्होने उत्कृष्टतम शुद्धावस्था-रूप परमात्मपद को प्राप्त कर ईश्वरत्व धारण कर लिया है और जो सासारिकता से सर्वथा विमुक्त होकर निजानन्द में तल्लीन हो गये हैं प्रभावित होकर हम भी हमारे जीवन के लिये उसी लक्ष्य तक पहुचने की जो आदर्श कामना करते हैं उसी अपनी आत्मा के प्रति की गई याचना का नाम ही प्रार्थना है। साधारण मनुष्यो की बुद्धि इतनी सूक्ष्म नहीं होती है कि योगी की तरह केवल शास्त्रों में वर्णित रहस्यपूर्ण जटिल सिद्धातो को समझ कर उनके आधार पर ही अपने विकास का मार्ग शोध निकाले। अत प्रार्थना इसलिए करनी चाहिए और वह भी उसकी दैनिक आदत होनी चाहिये कि उन विशिष्ट विभूतियो का जीवन स्वरूप अर्थात् उनके आत्म विकास का मार्ग हमारे मस्तिष्क पटल मे स्पष्ट तौर पर अकित हो जावे। यही जीवन-सत्य हमारे समक्ष प्रार्थना प्रकट करती है।

श्रद्धा और बुद्धि की प्राप्ति हित हम परमात्मा की प्रार्थना करते हैं किन्तु आत्मा से कहा गया है कि आत्मा ! जब तक तू अर्जुन की तरह एकाग्र होकर लक्ष्य व लक्षी के सिवाय सभी वस्तुओं को अपनी दृष्टि से हटा नहीं लेगी तब तक निजत्व का उद्धार व पूर्ण विकास करना अवश्य ही दुष्कर रहेगा।

अत सत्य अर्थ मे अगर देखा जाय तो परमात्मा की जो प्रार्थना करना है वह केवल अपनी आत्मा 'सोऽहं' की ही सजग साधना करना है।

अब हम सीधे अपने मूल विषय पर आते हैं कि आन्तरिक निर्माण के लिये हमारी चेतना में जो अटूट जागृति पैदा होनी चाहिये और अपार शक्ति का स्रोत फूट पड़ना चाहिये वह प्रार्थना के बिना नहीं हो सकता।

सन्त तो इनको कहते हैं

सन्त कैसा होना चाहिये? इसका उत्तर श्री आनदघनजी के शब्दों में यह है-

परिचय पातक घातक साधु शु रे अकुशल अपचय चेत।

सन्त वह है जो पातक का घातक हो आत्मा के समस्त पापो को जिसने धो डाला हो। ऐसा सन्त अपने वचन और व्यवहार से दूसरे के पापो का भी नाश कर देता है।

जो आस्रव से निवृत्त हो गया है अर्थात् जिसने पापो के आगमन के छिद्रों को रुद्ध कर दिया है जो छल कपट दम आदि पापो से दूर रहता है जो एकेन्द्रिय प्राणी के वध में भी आत्मवध मानता है और आत्मा के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान है जो सृष्टि के समस्त प्राणियों को मित्रभाव से देखता है लाभ-अलाभ मे समभाव रखता है जो अनासक्ति का मूर्तिमान आदर्श है सब प्रकार के सासारिक प्रपचो से परे और देहाध्यास से भी अतीत है जो आत्मरमण मे ही परमाह्लाद की अनुभूति करता है और जिसके लिये सन्मान-अपमान निन्दा-स्तुति वदना-तर्जना एकरूप हो गये हैं वह सच्चा सन्त है।

वह आकाश की तरह उदार भूतल की तरह क्षमाशील चन्द्र की भाति सौम्य सूर्य की भाति तपस्तेज से दीप्त अग्नि के समान जगत् की अपावनता को भस्म करने वाला और वायु की भाति सतत परिव्रजनशील होता है। उसकी अमृतमयी एक ही दृष्टि भव्य मनुष्य के अन्तर मे व्याप्त वासना विष को नष्ट कर देती है।

ऐसा सन्त अपनी कलुषता का विनाश तो करता ही है अपनी सगति में आने वाले जिज्ञासु साधको के भी पापों का अन्त कर देता है।

ससार मे ऐसे सतो का आगमन आज विरल है और जो पुण्यवान उनके समागम से अपना कल्याण कर लेते हैं वे धन्य हैं अतिशय धन्य हैं।

अन्य दृष्टि-बिदुओ पर भी विचार करो

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है तथा उसका मस्तिष्क ही उसे सारे प्राणी समाज में एक विशिष्ट व उच्च स्थान प्रदान करता है। मनुष्य सोचता है स्वय ही और स्वतत्रतापूर्वक भी अत उसका परिणाम स्पष्ट है कि विचारो की विभिन्न दृष्टिया ससार में जन्म लेती हैं। एक ही वस्तु के स्वरूप पर भी विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों से सोचना शुरु करते हैं। यहा तक तो विचारो का क्रम ठीक रूप में चलता है। किन्तु उससे आगे क्या होता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियों मे सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक ही वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकातिक दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार

जो सत्यज्ञान की ओर वन सकते थे पारस्परिक समन्वय के अभाव में विद्वेषपूर्ण सघर्ष के जटिल कारणो के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। तो हम देखते हैं कि एकागी सत्य को लेकर जगत् के विभिन्न विचारक व मतवादी उसे ही पूर्ण सत्य का नाम देकर सघर्ष को प्रचारित करने मे जुट पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति मे स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हे बताना चाहता है कि सत्य के टुकडों को पकड़कर उन्हे ही आपस में टकराओ नहीं बल्कि उन्हें तरकीब से जोड़कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़ो। अगर विचारो को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकागी सत्य के साथ ही हठ को बाध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकागी सत्य भी न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। क्योंकि पूर्ण सत्य को न समझने का हठ करना सत्य का नकार करना है। अत यह आवश्यक है कि अपने दृष्टि-विन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टि-विन्दुओं पर उदारतापूर्वक मनन किया जाय तथा उनमे रहे हुए सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाय। यही जगत् के वैचारिक सघर्ष को मिटाकर उन विचारों को आदर्श सिद्धान्तों का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

नवीनता का अर्थ

कल्याण मार्ग की ओर आगे बढ़ने से ही जीवन मे नवीनता का उद्भव हो सकता है। क्योंकि जागतिक विकृतियों में फस कर आत्मा अत्यधिक जीर्ण-सी बन गई है। उसमें नवीनता लाने के लिये शास्त्रीय सनातन व सत्यरूपी जीवनौषधि की आवश्यकता है। जहा जीवन में सम्यक गति नहीं वहा वैचारिक नवीनता नहीं तो वैसा जीवन जीवन नहीं उसे मृत्यु का दूसरा नाम कह सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि नवीनता के प्रति आकर्पणवृत्ति मनुष्य के हृदय में सलग्न क्यों है? जीवन में इस वृत्ति से क्या लाभ भी है?

यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्मज्योति आकर्पण का केन्द्रबिन्दु बनती है जिससे मनुष्य स्वय सोचता है जानता है सीखता है और स्व पर के लिये वस्तुत कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क स्वतन्त्र व्यक्तित्व के शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन निर्माण कर सकता है।

अत जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों शुद्ध-सयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूंकने वाले हों उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन समझना चाहिये।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिये ग्रहण करनी चाहिये और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रकट करना चाहिये तभी नवीनता का पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है।

समय तेजी से बदलता और बढता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे बुद्धिमत्ता इसी मे है कि सही नवीनता - आत्म-ज्योति के महत्त्व को हृदयगम करके आज का मानव सही प्रगतिशीलता की ओर गति करने मे पीछे न रहे।

महावीर का स्वाधीनता-सन्देश

महावीर ने जो कहा पहले उसे किया और इसीलिए उनकी वाणी मे कर्मठता का ओज व भावना का उद्रेक दोनो हैं। हिंसा के नग्न ताडव से सन्तप्त एव शोषण व अत्याचार से उत्पीड़ित जनता को दु खों से मुक्त करने के लिये भगवान महावीर ने स्वय अहिसा धर्म की प्रव्रज्या लेकर अहिंसा की क्रातिकारी तथा सुखकारी आवाज उठाई। स्वार्थोन्मत्त नर-पिशाचों को प्रेम सहानुभूति शाति एव सत्याग्रह के द्वारा उन्होंने स्वाधीनता का दिव्य-पथ प्रदर्शित किया।

माया-सग्रह-रूप पिशाचिनी के कराल जाल मे फसे हुए मानवो को उन्होने पथभ्रष्ट विलासिता के दलदल से निकाल कर निर्ग्रन्थ अपरिग्रहवाद का आदर्श बताया। उन्होने स्वय महलों के ऐश्वर्य व राजसुख का त्याग कर निर्ग्रन्थ साधुत्व का वरण किया तथा अपने सजीव आदर्श से स्पष्ट किया कि भौतिक पदार्थों के इच्छापूर्ण त्याग से ही आत्मिक सुख का स्रोत फूट सकेगा। क्योंकि ग्रन्थि (ममता) को ही उन्होंने समस्त दु खों का मूल माना चाहे वह ग्रन्थि जड़ द्रव्य-परिग्रह मे हो कुटुम्ब परिवार में हो या काम क्रोध लोम मोहादि मनोविकारों में हो - यह ग्रन्थि ही कष्टो का सृजन करती है। इसीलिए महावीर ने दृढता से आह्वान किया -

पुरिसा अत्ताणमेव अभिणिगिज्ज एव दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयो (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको क्योंकि इसी से तुम दु खमुक्ति पा सकोगे।

समस्त जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है। परिग्रह के ममत्व को काटकर सग्रहवृत्ति का जब त्याग किया जायेगा तभी कोई पूर्ण अहिंसक और स्वाधीन बन सकता है। ऐसी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना ही जैन धर्म का मूलभूत ध्येय है। स्वाधीनता ही आत्मा का स्वधर्म अथवा निजी स्वरूप है। मोह मिथ्यात्व एव अज्ञान के

जो सत्यज्ञान की ओर बन सकते थे पारस्परिक समन्वय के अभाव में विद्वेषपूर्ण सघर्ष के जटिल कारणो के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। तो हम देखते हैं कि एकागी सत्य को लेकर जगत् के विभिन्न विचारक व मतवादी उसे ही पूर्ण सत्य का नाम देकर सघर्ष को प्रदीप्त करने मे जुट पडते हैं। ऐसी परिस्थिति मे स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हें बताना चाहता है कि सत्य के टुकडो को पकड़कर उन्हे ही आपस मे टकराओ नहीं बल्कि उन्हें तरकीब से जोड़कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़ो। अगर विचारों को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकागी सत्य के साथ ही हठ को बाध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकागी सत्य भी न रहकर मिथ्या मे बदल जायेगा। क्योंकि पूर्ण सत्य को न समझने का हठ करना सत्य का नकार करना है। अत यह आवश्यक है कि अपने दृष्टि-बिन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टि-बिन्दुओ पर उदारतापूर्वक मनन किया जाय तथा उनमे रहे हुए सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाय। यही जगत् के वैचारिक सघर्ष को मिटाकर उन विचारों को आदर्श सिद्धान्तो का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

नवीनता का अर्थ

कल्याण मार्ग की ओर आगे बढ़ने से ही जीवन में नवीनता का उद्भव हो सकता है। क्योंकि जागतिक विकृतियो मे फस कर आत्मा अत्यधिक जीर्ण-सी बन गई है। उसमें नवीनता लाने के लिये शास्त्रीय सनातन व सत्यरूपी जीवनौषधि की आवश्यकता है। जहा जीवन में सम्यक गति नहीं वहा वैचारिक नवीनता नहीं तो वैसा जीवन जीवन नहीं उसे मृत्यु का दूसरा नाम कह सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि नवीनता के प्रति आकर्षणवृत्ति मनुष्य के हृदय में सलग्न क्यों है ? जीवन में इस वृत्ति से क्या लाभ भी है ?

यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्मज्योति आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बनती है जिससे मनुष्य स्वय सोचता है जानता है सीखता है और स्व पर के लिये वस्तुत कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क स्वतन्त्र व्यक्तित्व के शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

अत जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों शुद्ध-सयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूकने वाले हों उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन समझना चाहिये।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिये ग्रहण करनी चाहिये और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रकट करना चाहिये तभी नवीनता का पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है।

समय तेजी से बदलता और बढता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे बुद्धिमत्ता इसी मे है कि सही नवीनता - आत्म-ज्योति के महत्त्व को हृदयगम करके आज का मानव सही प्रगतिशीलता की ओर गति करने मे पीछे न रहे।

•

महावीर का स्वाधीनता-सन्देश

महावीर ने जो कहा पहले उसे किया और इसीलिए उनकी वाणी मे कर्मठता का ओज व भावना का उद्रेक दोनों हैं। हिंसा के नग्न ताडव से सन्तप्त एव शोषण व अत्याचार से उत्पीड़ित जनता को दु खो से मुक्त करने के लिये भगवान महावीर ने स्वय अहिंसा धर्म की प्रव्रज्या लेकर अहिसा की क्रातिकारी तथा सुखकारी आवाज उठाई। स्वार्थोन्मत्त नर-पिशाचो को प्रेम सहानुभूति शाति एव सत्याग्रह के द्वारा उन्होंने स्वाधीनता का दिव्य-पथ प्रदर्शित किया।

माया-सग्रह-रूप पिशाचिनी के कराल जाल मे फसे हुए मानवो को उन्होने पथभ्रष्ट विलासिता के दलदल से निकाल कर निर्ग्रन्थ अपरिग्रहवाद का आदर्श वताया। उन्होने स्वय महलों के ऐश्वर्य व राजसुख का त्याग कर निर्ग्रन्थ साधुत्व का वरण किया तथा अपने सजीव आदर्श से स्पष्ट किया कि भौतिक पदार्थों के इच्छापूर्ण त्याग से ही आत्मिक सुख का स्रोत फूट सकेगा। क्योंकि ग्रन्थि (ममता) को ही उन्होंने समस्त दुखों का मूल माना चाहे वह ग्रन्थि जड़ द्रव्य परिग्रह में हो कुटुम्ब परिवार मे हो या काम क्रोध लोभ मोहादि मनोविकारो मे हो - यह ग्रन्थि ही कष्टो का सृजन करती है। इसीलिए महावीर ने दृढता से आह्वान किया -

पुरिसा अत्ताणमेव अभिणिगिज्ज एव दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयो (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको क्योकि इसी से तुम दुखमुक्ति पा सकोगे।

समस्त जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है। परिग्रह के ममत्व को काटकर सग्रहवृत्ति का जब त्याग किया जायेगा तभी कोई पूर्ण अहिंसक और स्वाधीन बन सकता है। ऐसी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना ही जैन धर्म का मूलभूत ध्येय है। स्वाधीनता ही आत्मा का स्वधर्म अथवा निजी स्वरूप है। मोह मिथ्यात्व एव अज्ञान के

वशीभूत होकर आत्मा अपने मूल स्वभाव को विस्मृत कर देती है और इसीलिए वह दासता की शृखलाओ मे जकड जाती है।

स्वाधीनता का सही अर्थ

आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ है - सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों एव भौतिक जगत् से सम्बन्ध-विच्छेद करना। अतिम श्रेणी में शरीर भी उनके लिए एक बेड़ी है क्योंकि वह अन्य आत्माओं के साथ एकत्व प्राप्त कराने मे बाधक है। पूर्ण स्वाधीनता की इच्छा रखने वाला विश्वहित के लिए अपनी देह का भी त्याग कर देता है। वह विश्व के जीवन को ही अपना मानता है सबके सुख-दु ख में ही स्वय के सुख-दु ख का अनुभव करता है व्यापक चेतना में स्वय की चेतना को सजो देता है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वह अपनी व्यष्टि को समष्टि मे विलीन कर देता है। वह आज की तरह अपने अधिकारा के लिए रोता नहीं, वह कार्य करना जानता है और कर्तव्यों के कठोर पथ पर कदम बढ़ाता हुआ चलता जाता है।

फल की कामना से कोई कार्य मत करो अपना कर्तव्य जान कर करो तब उस निष्काम कर्म में एक आत्मिक आनन्द होगा और उसी कर्म का सम्पूर्ण समाज पर विशुद्ध एवं स्वस्थ प्रभाव पड़ सकेगा। कामनापूर्ण कर्म दूसरों के हृदय में विश्वास पैदा नहीं करता क्योंकि उसमें स्वार्थ की गध होती है और सिर्फ स्वार्थ परार्थ का घातक होता है। स्वार्थ छोड़ने से परार्थ की भावना पैदा होती है और तभी आत्मिक भाव जागता है। इसी पथ पर आगे बढो ताकि आत्म विकास की सच्ची स्वतत्रता प्राप्त की जा सके। इसीलिए बधुओ प्रतिज्ञा कीजिए कि आप सर्वोच्च स्वाधीनता की अन्तिम सीमा तक गति करते ही रहेगे।

स्वतत्रता का सन्देश

स्वतत्रता ही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य है। जो स्वतन्त्र हो जाता है वही विजेता है क्योंकि विजय का परिणाम ही स्वतन्त्रता के रूप में प्रकट होता है और जहां विजय है वहा पराजितों का झुकना और वैभव सम्पन्नता अवश्यम्भावी हैं।

आज 'स्वतन्त्रता' शब्द का हमने बहुत ही सकुचित अर्थ मान रखा है। स्वतन्त्रता की पूर्णोज्ज्वल ज्योति जहा चमकती है वह स्थान है आत्मिक स्वतन्त्रता का। जब तक मनुष्य

निज की मनोवृत्तियो को नहीं समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नहीं कर सकता वहा आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सच्ची और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती।

पूर्ण स्वतन्त्रता की राह पर आगे बढने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख और दु ख के रहस्य को समझे। यह सुनिश्चित तथ्य है कि ससार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और दु ख से व्याकुल होता है। इसी प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक प्राणी अपने समस्त प्रयासो को भी इसी दिशा मे नियोजित करना चाहता है कि उसे उनसे सुख ही सुख प्राप्त हों। परन्तु फिर भी यदि हम चारो ओर दृष्टिपात करे तो विदित होगा कि ससार के बहुसख्यक प्राणी दु खी हैं। अत जब भी विचार करते हैं यही सनातन प्रश्न मुह वाये सामने खड़ा रहता है कि ससार मे इतना दु ख क्यो है ?

सुख और दु ख का अनुभव विशेष रूप से मनुष्य के हृदय-निर्माण पर निर्भर करता है। दु ख मे मनुष्य यदि सही रूप से सोचे तो विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

इस सिलसिले मे आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सुख और दु ख की काल्पनिक अनुभूति के परे ही आत्मानन्द का निवास है एव जब आत्मानन्द का सचार होता है तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब आत्मा सदैव आनन्द ही आनन्द मे रमण करेगी तो उसमें अपने विकारो अपनी वासनाओ से लडने की एक अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो जायगी और उस शक्ति के सहारे ही आत्मा के शत्रुओं को झुका दिया जा सकेगा। दासता की काली छाया हटेगी तथा मानस मे पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रकाश फैलेगा। वही प्रकाश विजेता का साम्राज्य होता है और वही प्रकाश उसकी वैभव सम्पन्नता है जो उसे त्रिभुवन का स्वामित्व प्रदान करती है। बन्धुओ ! इसी प्रकाश को पाने के लिए हमें सुख और दु ख के वास्तविक रहस्य को समझकर अपने जीवन-पथ का निर्माण करना चाहिये।

स्वतन्त्रता का आशय

प्रधान साध्य सत्य का साक्षात्कार करना है जिसके प्रकाश में जीवन का कण कण आलोकित होकर चरम विकास को प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए जैन दर्शन के सभी सिद्धान्त साधन रूप बनकर उक्त साध्य की ओर गमनशील बनाते हैं। इनमें भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रमुखता न देकर आध्यात्मिकता को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। क्योंकि

समस्त प्राणीसमूह की सेवा के लिये यह अनिवार्य है कि सासारिक प्रलोभनो को छोडकर आत्मवृत्तियों का शुद्धिकरण किया जाये जिसके विना इस अनवरत सघर्षशील जगत् के बीच स्व पर कल्याण सम्पादित नहीं किया जा सकता। सक्षेप में जैन दर्शन विश्वशाति के साथ-साथ व्यक्तिशाति का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

यदि इस सिद्धान्त को विभिन्न क्षेत्रों में रहे हुए ससार के विचारक समझने की चेष्टा करें, तो कोई सन्देह नहीं कि वे अपनी सघर्षात्मक प्रवृत्ति को छोडकर एक दूसरे के विचारों को उदारतापूर्वक समझकर उनका शान्तिपूर्ण समन्वय करने की ओर आगे बढ सकेंगे।

विश्वशाति का प्रश्न धर्म सभ्यता व सस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियों के हित का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रहा हो इस प्रश्न से अवश्य ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्याकन किया जा सकता है और विश्वशांति की नींव को मजबूत करने का आज की परिस्थितियों में, सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारों ओर फैला हुआ विचारों का विषैला विभेद शात किया जाये।

पर्युषण स्वाधीनता का महापर्व

राजनीतिक स्वाधीनता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्वाधीनता है - आध्यात्मिक स्वाधीनता। हम वस्तुत आत्मा हैं अतएव आत्मिक दृष्टि से अगर हमें स्वाधीनता प्राप्त हो तो ही हम पूर्ण स्वाधीन कहला सकते हैं।

स्वतत्र का अर्थ है अपने पर आप ही शासन करने वाला। जिस पर किसी दूसरे का शासन न हो वही वास्तव मे स्वतन्त्र है। अगर आपके शरीर पर, बुद्धि पर और मन पर पूरी तरह आपका ही शासन है और इन्हें आप अपनी इच्छा के अनुसार सचालित कर सकते हैं तो आप स्वतन्त्र हैं अन्यथा नहीं।

अगर आपने स्वाधीनता के मर्म को समझा है धर्म के स्वरूप को जाना है तो आपका जीवन विराट् होना चाहिये।

जिस देश की प्रजा अपने लोकोत्तर एवं लौकिक धर्म का श्रद्धा के साथ पालन करती है राग-द्वेष का त्याग करके प्रीतिभाव रखती है वही स्वाधीनता का चिरकालपर्यन्त उपभोग कर सकती है। वही स्वाधीनता साकार होती है। यही कल्याण का मार्ग है। यही परमात्म प्राप्ति का मार्ग है। जो इस मार्ग पर चलेगा उसका कल्याण होगा।

◆ ◆ ◆

प्रकाश का सन्देश

दीपमालिका ! अमावस के अन्धकार को चीर कर झिलमिलाते हुए अगणित दीपक मानो यह सन्देश देते हैं कि घनी विपदाओ और निराशाओं के बीच भी साहस व त्याग के ऐसे दीपक जलाओ कि आत्मविकास का पथ प्रकाशमय हो जाये।

दीपमालिका ! अपने नन्हे-नन्हे दीपो की ज्योति से उस प्रकाश की झलक दिखाती है जिसका विस्तार प्रेम अहिसा सेवा और त्याग के विकास-पथ पर फैला रहता है। वह प्रकाश की झलक जिसका अनुकरण करती हुई आत्म-लक्ष्मी का पदार्पण होता है। ये दीप उस प्रकाश के प्रतीक कहे जाये जो प्रकाश अन्तरात्मा से उत्पन्न होता है और घनीभूत होता हुआ एक दिन परमात्मरूप मे परिवर्तित हो जाता है।

दीपमालिका के इन दीपो की ज्योतियो मे आत्मविजय की लक्ष्मी मुस्कराया करती है। दीपको के अन्तर मे निहारो ज्योति मे गहराई से प्रवेश करो तो दिखाई देगा कि पतन और अन्धकार के समुन्दरी तूफान मे जीव-नौका को विकास का मार्ग दिखाने वाले अन्तर्दृष्टि के ऐसे दीप आत्मा के लिए प्रकाशस्तम्भ का काम कर रहे हैं।

अत दीपमालिका का पहला आयोजन होना चाहिए जीवन की स्वच्छता और सजावट का। भावनामय जगत् इस प्रकार स्वच्छ व सम्यकप्रकारेण सुसज्जित हो कि मानसिक विकारों के विनाश के साथ-साथ सद्विचारो का निर्माण भी हो। इसमे सफल बनने के लिए निर्लेपता तथा शुद्ध कठोर कर्मठता की अधिक आवश्यकता होती है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

आज दीपमालिका है। अमावस के अन्धकार को चीरकर झिलमिलाते हुए अगणित दीपक मानो यह सन्देश देते हैं कि घनी विपदाओ और निराशाआ के बीच साहस व त्याग के ऐसे दीपक जलाओ कि आत्म-विकास का पथ प्रकाशमय हो जाय।

यह ठीक है कि दीपको की माला से बाह्य प्रकाश तो होता ही है किन्तु इन छोटे-छोटे मिट्टी के लघु दीपो को अन्तर्जगत् का प्रतीक मानकर आत्मक्षेत्र को ज्योतित करना चाहो तो इस दीपमालिका के पर्व का सच्चे दिल से भावनात्मक स्वरूप पहचानने का प्रयास किया जाना चाहिए।

दीपमालिका अपने नन्हे-नन्हे दीपो की ज्योति से उस प्रकाश की झलक दिखाती है

जिसका विस्तार प्रेम अहिंसा सेवा और त्याग के विकास-पथ पर फैला रहता है। वह प्रकाश की झलक जिसका अनुसरण करती हुई आत्म-लक्ष्मी का पदार्पण होता है। इस पर्व की ऐतिहासिक आधारशिला भी बताती है कि ये दीप उस ज्योति से जल रहे हैं जिसके लिये विश्व की महान् विभूतियो ने अपने आदर्शों का स्नेहदान दिया है नया प्रकाश फैलाया है।

अत दीपमालिका का पहला आयोजन होना चाहिए - जीवन की स्वच्छता और सजावट का। आपका भावनामय जगत् इस प्रकार स्वच्छ व सम्यकप्रकारेण सुसज्जित हो कि मानसिक विकारों के विनाश के साथ-साथ सद्विचारो का निर्माण भी हो। तदनन्तर आपके वचन और आपके कार्य शुद्धिकृत व नवसज्जायुक्त मन के अनुरूप ढलने लगेगे। इस तरह से व्यक्तिगत जीवन के निर्माण का अभाव होगा और उस पवित्र सम्पर्क से समाज में भी उस वातावरण की रचना हो सके - ऐसी प्रेरणा मिलेगी। जितना बाहरी स्वच्छता और सजावट का कार्य आसान है उतना ही आतरिक एव सामाजिक स्वच्छता व सजावट का कार्य कठिन है। अत इसमें सफल बनने के लिए निर्लेपता तथा शुद्ध कठोर कर्मठता की अधिक आवश्यकता होती है।

अत आज के पर्व-दिवस का कर्तव्य है कि इन लघुदीपा की पृष्ठभूमि में महापुरुषों के दिव्य चरित्र का पुनीत स्मरण किया जाय और इस मगलपर्व के जाग्रत सन्देश को इस रूप में हृदयगम करने का शुभ प्रयास किया जाय कि जिस तरह उन विश्व विभूतियों ने त्याग सच्चे प्रेम और सेवा के पथ पर चलकर अपनी अडिग अकर्मण्यता का परिचय दिया और निज के साथ-साथ जगत् के जीवन को प्रकाशित किया उसी तरह आप भी सत्कर्मठ कर्मण्यता का व्रत लें और अपनी समस्त सत्शक्तिया लगाकर निज के एव समाज और धर्म के क्षेत्र में प्रगतिशील तथा प्रकाशमान नवीनता का सचार करें।

जीवन का बसन्त

जीवन में ऊचे स ऊचा विकास सभव है और कोई भी लक्ष्य असभव नहीं है। जीवन के ऊबड खाबड रास्तों पर जब कोई पथिक पग बढ़ाता है और उस समय भयकर प्रतिकूलताए अगर उसके कदमो को डगमगा दें तो यह स्थिति परिस्थितियों की दासता के रूप में देखी जायगी। जीवन में सफलता उस पथिक को मिलती है जो मजबूत कदम बढ़ाता हुआ हर प्रतिकूल परिस्थिति को सभव बनाता हुआ आत्म विकास के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता चला जाता है। ऐसी ही अवस्था में जीवन का बसन्त [illegible] है जिसके पत्र पल्लवो की हरीतिमा आत्म सुख की अनुभूति [illegible] पुष्पो की [illegible] आकार एवं शृगार वैभव को सुवासित बना देती और [illegible] की [illegible] देती है।

जीवन में प्रस्फुटित होने वाले ऐसे 'नव-वसन्त' का अभिनन्दन करने के लिये आपको अपने सामाजिक जीवन का भी कायापलट करना पडेगा तब मिथ्या और आत्मघातक सामाजिक रूढियो का दाह-सस्कार इसलिये आप जरूरी महसूस करेगे कि ऐसी मनोवृत्तिया सदैव प्रगतिपथ को अवरुद्ध करती हैं। आप चाहे कि अधोगति मे ले जाने वाले सडे-गले कुसस्कारो मिथ्या रीति-रिवाजो एव खतरनाक अन्धविश्वासो को भी अपने दैनिक जीवन से चिपकाये रखो और जीवन मे वसन्त के आगमन का भी आह्वान करो तो ये परस्पर विरोधी बाते एक साथ कैसे चल सकती हैं ? अभिमान ईर्ष्या द्वेष व ऐसे सभी मनोविकारो को अपनी प्रकृति से विदा देने पर ही वात्सल्य प्रेम नम्रता विश्वबन्धुत्व तथा स्व-स्वरूपरमण एव अन्य नवीन सद्‌गुणों के अतिथि आपके जीवनरूपी प्रागण मे प्रवेश कर सकते हैं। इनका प्रवेश आत्मा को वसन्तश्री से सुसज्जित कर देगा।

प्रकृति पतझड मे जब सूखे पत्तो को नीचे गिरा देती है तभी वसन्त खिलता है। अत आपके समाज मे हो या साधु समाज मे - विकृतियों की सूखी पत्तियो को झाड़ना ही पड़ेगा। एकता और सही विकास की कड़ी में बध जाने के लिये अहितकर दाम्भिक प्रवृत्तियों को त्यागना पड़ेगा।

जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा

जो कर्म मे शौर्य प्रदर्शित करेगे वे ही तो आखिर धर्म के विराट क्षेत्र मे भी साहस और सजगता के साथ आगे बढ सकेगे। जहा शौर्यत्व का ही अभाव है वहा तो ऐसे लोगो की किसी भी क्षेत्र मे अपेक्षा नहीं की जा सकती। कर्मशक्ति से भागने वाला ससार के अपने पुनीत व नैतिक कर्तव्यो से सहज ही स्खलित हो जाने वाला धर्म की दुनिया मे भी स्थिरचित्त कैसे बना रह सकता है ?

कोरी कल्पनाए व वाणीविलास किसी भी क्षेत्र मे कार्य की सपन्नता में सफल नहीं हो सकते। कार्य की सफलता जिस तत्त्व की तह मे निहित है वह है पुरुषार्थ और उसे जगाये बिना न व्यक्ति जाग सकता है और न ही समाज बल्कि अन्तरतम का विकास भी इसके बिना साधा नहीं जा सकता।

पुरुषार्थ के लिये कठिनतम कार्य भी असभव नहीं होते और जहा असभावना की विचारधारा ही नहीं वहा रुकना और गिरना कैसा ? यहा तो निरतर बढते रहना है और बीच में आने वाली आपदाओ से सफलतापूर्वक लडते भिड़ते रहना है। इसी पुरुषार्थ के प्रबल

आवेग में नेपोलियन ने ललकार कर कहा था कि असमव शब्द सिर्फ मूर्खों के कोष में होता है और उसने किसी अपेक्षा से बिल्कुल ठीक कहा था। अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा के लिये महान् से महान् कार्य-सपादन भी कतई असमव नहीं। पौरुष के आगे हमेशा राह होती है।

कार्यशक्ति कभी असफल नहीं होती - यह एक तथ्य है किन्तु फिर भी लोगों में विपरीत वृत्ति देखी जाती है कि वे सुख और आनन्द तो चाहते हैं मगर काम से घबराते हैं आलस्य की शरण में अधिक जाते हैं। इस तरह उन्हे सफलता नहीं मिलती क्योंकि बिना सतत प्रयासों के वह समव नहीं।

कर्म के शूर ही धर्म में भी शूर सिद्ध होते हैं क्योंकि बिना शौर्य व पुरुषार्थ के धर्माराधना भी कहा ? प्रमादी व्यक्ति तो कहीं भी सफल नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने इसीलिये स्पष्ट कहा है कि 'समय गोयम मा पमायए' अर्थात् हे गौतम ! समय मात्र के लिये भी प्रमाद मत कर ! छोटा-से-छोटा क्षण भी जहा मनुष्य आलस्य से खो देता है वहा उसमें उसके जरिये कुछ न-कुछ बुराई घुस ही जाती है।

नवीनता के अनुगामियो से

जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों शुद्ध-सयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सदेश फूकने वाले हों उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एव आत्म ज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दों में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम हों वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिएं। उन शब्दों में समय का मापदण्ड ठीक नहीं हो सकता किन्तु सयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

इस दृष्टि से तत्त्वों का चयन किया जाना चाहिये न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य हैं सभ्यता से पिछड़ी हुई हैं और नई सभ्यता की सारी चीजें ज्यों की त्यों अपनाने योग्य हैं। मैं उन नवयुवकों को भी कहना चाहूगा कि दुराग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्ण समझना अलग बात है एव मेरा खयाल है सही समय के लिये प्राचीन एव नवीन का ऊपर जो मापदण्ड बताया गया है वह सभी दृष्टियों से सर्वथा समुचित जान पड़ेगा।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिये प्रारम्भ करनी चाहिये और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रगट करना चाहिये तभी नवीनता का

पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है। किन्तु होता क्या है कि कई सुधारक दूसरो के जीवन में सुधारमय नवीनता लाने के लिए बडा जोर लगाते हैं और अपने जीवन का खयाल कम रखते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में कुछ भी न उतार कर दूसरो से कुछ कहे यह एक प्रभावहीन तरीका है।

जानो और करो

यह साधारण विवेक की बात है कि हम कोई कार्य निष्प्रयोजन नहीं करते। एक स्थान से उठकर हमें यदि कहीं जाना होता है तो पहले हम सोचते हैं कि यह हमे किसलिये करना है। करने से पहले जो पूर्व-विचारणा है वही ज्ञान है और इसके प्रकाश में ही हमारा करना सफल हो सकता है। पहले योजना बनाना और फिर उसका अमल करना ही सफलता की कुजी है। आत्मोत्थान के लिए या किसी कार्य के लिये बिना ज्ञानयुक्त क्रिया के कोई लाभ नहीं। न अधे की तरह इधर-उधर भटकने से कोई प्रयोजन हल हो सकता है न आखों की रोशनी लेकर एक जगह बैठ जाने से। किसी स्थान पर पहुचना तो तभी हो सकता है कि आखे खोलकर ठीक रास्ते पर आगे बढते जाये। इसके लिये पहले ज्ञान का प्रकाश होना चाहिये ताकि उस उजाले में मार्ग ठीक-ठीक दिखाई दे और ठीक उसी के लक्ष्यानुसार आगे बढा जा सके। 'जानो और करो' का सिद्धान्त ही आनन्द प्रदान कर सकता है।

कतिपय भाई स्वार्थवशात् भोली जनता में शास्त्राविरुद्ध भ्रमणा फैलाने के लिये ज्ञान और क्रिया के सयुक्त महत्त्व पर आघात करते हैं और धर्म एव पुण्य की असबद्ध व्याख्याओं का निर्माण करते हैं। भले ही इस प्रकार की व्याख्याओं से पहले भोली जनता को भ्रमित करने में सफलता मिल जाये लेकिन वास्तविक उत्थान चाहने वाले जब इन सिद्धातों के विषय में गभीरता से सोचेंगे तो उन्हें निश्चय ही सत्य के धरातल पर आना पड़ेगा।

सही बात यही हे

समाज की गति पारस्परिकता पर निर्भर होती है और जब यही मानवीय वृत्ति व्यापक होकर समाज के विशाल आगन में चारों ओर प्रसारित हो जायेगी तो फिर सभी नागरिक अपने पारस्परिक व्यवहारों में इस प्रवृत्ति के अनुसार कार्यरत होंगे। इसका निश्चय ही या

फल होगा कि कष्टो का उद्भव ही खत्म होने लगेगा। एक दुख नहीं देगा और दूसरे भी दुख नहीं देंगे। इस तरह ही पहले को कभी दुख का सामना नहीं होगा।

इसलिये यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिये कि दुख दूर करने का यही प्रधान मार्ग है कि हम पहले किसी को दुख देना छोड़ दे क्योकि सामाजिक रचनात्मक कार्य का प्रारम्भ व्यक्ति से ही सभव हो सकेगा अगर प्रत्येक व्यक्ति पहले प्रारम्भ की अपेक्षा दूसरे से ही करता रहे तो सामाजिक कार्यों का सपादन दुष्कर क्या असम्भव ही रह जायगा। अत सबसे पहले हम लोग यह सकल्प करें कि हम किसी को कभी किसी तरह की पीडा नहीं पहुचायेंगे कभी किसी को हम से कोई कष्ट हो जायगा तो उसके लिये प्रायश्चित्त करेंगे तथा सबकी भविष्य में सुखप्राप्ति की निरतर कामना करते रहेगे। इस प्रकार की भावना हृदय के सारे कलुष को धोकर उसे दर्पणवत् चमकाकर प्रकाशित कर देगी।

इसलिए क्या तो राजनीति मे व क्या अन्य सभी मानवीय नीतियों में स्वार्थ त्याग की धर्ममय नीति का प्रवेश कराने की आवश्यकता है। जहा हृदयों मे सकुचितता है वहा सुखों का द्वार नहीं खुलता। सुखो के लिये तो हृदयो की उदारता का त्याग के आधार पर अधिक-से-अधिक विस्तार होना चाहिये।

* * *

गोपनीयता का परिणाम

गोपनीयता सदैव सत्य विरोधिनी होती है क्याकि सच्चाई और छिपावट का कोई मेल नहीं। जो बात सत्य है उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं और जिस किसी बात को छिपाने की कोशिश की जाती है उसमें कहीं-न-कहीं झूठ की बू अवश्य मिलेगी।

गोपनीयता से मिथ्यावाद बढता है और उससे कुटिलता एव कुटिलता से दुष्कृत्यों की एक बाढ सी आ जाती है। गोपनीयता की नींव पर अधर्म का महल बन जाता है जो व्यक्ति के शुद्ध आत्म-तत्त्वों को अपने नीचे गाड़े रखता है।

चूकि गोपनीयता सत्य विरोधिनी होती है इसलिए वह अहिंसा की भी विरोधिनी होती है। प्रवचना का परिणाम प्रतिहिंसा अधिकतर होता ही है। क्योकि उस व्यक्ति को रोष आना व रोष को रोक न पाना मानवीय कमजोरी के अनुसार सभव है।

बुराई से बुराई ही पैदा हो सकती है और उसकी पैदाइश की परम्परा इस तरह बन पड़ती है कि अगणित बुराइयों के टेढे-मेढे चक्रव्यूह से बाहर निकलना दुश्वार सा हो जाता है। एक बुराई को छिपाने के लिए न जाने कितनी और बुराइयों का आसरा लिया जाता है। छिपाई गई बुराई हमेशा भयकर परिणाम लेकर ही खुलती है।

अत सरलता और सच्चाई का सीधा रास्ता ही यह है कि पहले अकेली बुराई को ही रहस्य बनाकर छिपाये रखने की कोशिश न की जाये तथा विनम्र भाव से उस बुराई को प्रमुख अपने गुरु अथवा अपने वडील के समक्ष क्षमावनत होकर सबके सामने प्रगट कर दी जाये तो अगली बुराइयों की जड़ें ही कट जाती हैं।

अत कैसा भी क्षेत्र हो नीति पर बने रहने के लिए सबसे अधिक सरल उपाय यह है कि छिपाने की मनोवृत्ति ही न हो। तभी सत्यपथ पर आत्म-कल्याण साधा जा सकेगा।

विकट समस्या सरल समाधान

आज साधारणजन के समक्ष बड़ी विकट समस्या है कि उसका जीवन कैसा हो ? किस प्रकार आवश्यक जीवनोपयोगी पदार्थो को सरलता से उपलब्ध कर वह अपने जीवन को शातिमय नीतिमय और धर्ममय बना सके ? वस्तुस्थिति यह है कि आज अशाति एव असतोष के बादल मडरा रहे हैं जिन्होने जीवन के सुखरूपी सूर्य को ढक लिया है।

तो प्रश्न उठता है कि आखिर सुख क्या है ? इसका उत्तर अतिगभीरता से विचारने का विषय है। सुख का निवास किसी पदार्थ-विशेष व स्थिति-विशेष में नहीं है। वह तो अन्तर की प्रगाढ़ अनुभूति मे ही प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य पदार्थों के समागम से उपलब्ध होने वाला सुख केवल सुखाभास है तथा वह भी क्षणिक है। लेकिन वर्तमान युग में दुनिया की दौड़ बाह्य पदार्थों मे ही सुख खोजने मे हो रही है।

किन्तु यह एक नग्न सत्य है कि जब तक जीवन को त्याग की ओर नहीं मोड़ा जायगा मानव जीवन में शाति एव सुख का सचार होना कठिन है।

जिन जिन व्यक्तियो ने त्याग का मार्ग अपनाया है वे ही जनता के श्रद्धेय हो सके हैं महापुरुष बन सके हैं। महावीर को ही ले लीजिये वे इसलिये विश्वविभूति नहीं बने कि वे राजपुत्र थे विशाल वैभव व ऐश्वर्य के धनी थे बल्कि इसलिये कि उपलब्ध होने पर भी उन्होंने उस सारे विशाल वैभव को निर्ममत्व रूप से त्याग कर प्राणी कल्याणार्थ अपना समग्र जीवन साधना में समर्पित कर दिया। हजारो वर्ष बीत जाने पर भी ऐसे महापुरुषों की स्मृतिया भुलाई नहीं जा सकतीं। उनके दिव्य सन्देश जन हृदय में सदैव गुजायमान होते रहते हैं उनमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

त्याग की भावना और त्याग की प्रवृत्ति अपना दुहरा असर डालती हैं। एक ओर तो इनका असर त्यागकर्ता के निज के जीवन पर पड़ता ही है दूसरी ओर इस वृत्ति का प्रभाव समूची समाज व्यवस्था पर भी पड़ता है।

व्यक्ति का त्याग समाज मे फैलता है उसके वैभव का विकेन्द्रीकरण होता है विषमता घटती है और ऐसी स्थिति सामाजिक न्याय एवम् धार्मिक भावना को प्रोत्साहन देती है। समाज मे उस त्याग के आधार पर एक नया वातावरण भी फैलता है।

सर्वदु खो की औषधि

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्म-शक्ति को ही प्रज्वलित करे, अपने-आप को अधिकाधिक शिथिल न बनाता जावे क्योंकि आत्मा ही आत्मा की बन्धु और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है अर्थात् अपने उत्थान-पतन का कारण अपनी ही आत्मा है। यह सन्देश आज कितनी प्रेरणा देता हुआ प्रतीत होता है। जब हम आत्म-शक्ति की आलोचना और दृढता पर डट जाते हैं तब हमारे अन्दर एक विशेष प्रकार का तेज उद्‌भूत होता है और उस तेज के समक्ष अन्याय की बुनियाद पर टिकी हुई दुनिया की कोई शक्ति ठहर नहीं सकती।

अत शोषण-विरोध के किन्हीं साधनों का आश्रय लेने से पहिले यह सोच लिया जाय कि शोषण का मूल कारण शोषितों की मरी हुई आत्माए हैं और जब तक उनमें जीवन नहीं डाला जायगा शोषण का स्थायी अन्त कदापि नहीं हो सकता। यदि हिंसात्मक साधनों या अन्य ऐसे ही हीन व अशुद्ध साधनों से शोषण को समाप्त करने की चेष्टा की गई तो हानि के अतिरिक्त उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा क्योंकि यह खतरेभरा रास्ता है और माना कि इसमें एक बार सफलता मिल गई फिर भी शोषण किसी न किसी दूसरे रूप में आकर अपना वैसा ही आधिपत्य जमा लेगा।

अभिप्राय यह है कि आज इस भौतिकवादी सङाध से ऊपर उठने की नितान्त आवश्यकता है जिसके आधार पर महान् विग्रह मचे हुए हैं और यह समझने की जरूरत है कि हमारी स्वय की आत्मा प्रकाशमान है और आनंद का मधुर स्रोत है। बाहरी जो सुख हैं वे केवल हमारी आत्ममूर्च्छा को ही बढाते हैं और हमें पतन की राह पर ढकेलते हैं। वास्तविक आनन्द तो इन्द्रियों के क्षेत्र से परे रहता है। आनन्द करने वाली तथा विशेष जिज्ञासु होने के कारण ज्ञानप्राप्ति में आनन्द लेने वाली आत्मा है और उस का आनन्द समय और वस्तु के प्रभाव से रहित है। जब आत्मा इसी आनन्द की शोध में तल्लीन होती है तभी सच्ची शान्ति का अनुभव कर सकती है।

❖ ❖ ❖

यदि इसको समझ ले !

ससार में सुख की अविरल धारा प्रवाहित करने के लिए यह ध्रुव मार्ग है कि अगर तुम्हे दु ख नहीं चाहिए तो अपनी ओर से भी किसी को दु ख न दो किन्तु सुख दो।

इस विचारणा को अगर गम्भीरतापूर्वक समझने की चेष्टा की जाय तो आत्म-स्वरूप के समीप पहुचा जा सकता है। उस समय ऐसी अनुभूति होगी कि अपने दु खो के लिए दूसरो को दोष देना व्यर्थ है। अगर हम ही अपनी प्रवृत्तियो को सीमित व वृत्तियो को सयमित रखे अर्थात् अपनी ही आत्मा को निकट से समझें व कर्तव्यपथ पर चलावे तो दु:खो की सृष्टि ही नहीं होगी बल्कि निजत्व का विसर्जन कर देने से स्वर्गिक भावो के साथ अमिट सुख का अनुभव होने लगेगा।

वैसे सामने मे यह सिद्धान्त बडा सरल प्रतीत होता है कि दु ख न दो दुख नहीं होगे किन्तु अगर आज के अशात व हिंसात्रस्त विश्व मे व्यक्ति व राष्ट्र सही तौर पर इसे आचरण मे लाना प्रारम्भ कर दे तो निश्चय समझिये कि शान्ति एव सुख के नये वातावरण की सुन्दर रचना की जा सकती है। *क्योंकि आज की सामाजिक व राजनीतिक अवस्था का मूल ही यह* है कि दूसरों के दु खो पर कुछ लोगो के सुखो का ससार बसाया जाता है जिसका आखिरी परिणाम सबके दु:ख के सिवाय कुछ नहीं निकलता।

ऐसी ही कुछ स्थिति आज विभिन्न राष्ट्रो के बीच भी बनी हुई दिखाई देती है। जो शक्तिशाली राष्ट्र हैं वे किसी भी तरह कमजोर राष्ट्रो को अपने कब्जे में करना चाहते हैं।

वर्तमान राष्ट्र अगर दु खवाद के इस रहस्य को समझ जावे और उनके शासक अपनी नीतियों सहृदयता व ईमानदारी बरतने लगे तो कोई कारण नहीं कि युद्धों को न रोका जा सके तथा विश्वशाति की बुनियाद मजबूत न बनाई जा सके।

अनमोल मानव-जीवन

यही वह जीवन है जहा ससार के गतिचक्र मे भटकती हुई आत्मा अपने उत्थान के लिए सघर्ष कर सकती है और विकारों को काट कर चरम विकास को भी प्राप्त कर सकती है। चूकि विकास का विवेक और प्रयासों की सफलता इस जीवन में चोटी तक पहुच सकते हैं मानव जीवन की यह सबसे बडी विशिष्टता है इसलिए यह दुर्लभ है कि जहा मनुष्य को अपनी प्रगति दिशा का सकेत मिलता है अन्तिम विकास तक को पा लेने की शक्ति मिलती है।

मानव-जीवन की भौतिक शक्तियों को पा लेने में विशेषता नहीं है पाकर उन्हें निस्पृहभाव से त्याग देने मे उसकी परम विशेषता रही हुई है। दशवैकालिक सूत्र (अध्याय 2, गाथा 3) मे कहा है-

जे य कते पिए भोए लद्धे विपिट्ठि कुव्वई।
साहीण चयई भोए सेदु चाई त्ति वुच्चई।।

अर्थात् जो सुन्दर भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त करके भी उन्हें आत्मोन्नति हेतु त्याग देता है वही सच्चा त्यागी कहलाता है। धनसग्रह जहा दु ख-क्लेश का मूल है वहा उसी धन का निस्पृह भाव से त्याग करने में महान् आत्मिक आनन्द का निवास है। फिर भी इस शाश्वत सिद्धान्त से विमुख होकर जो क्षणिक सुखाभास के दलदल मे अपने आप को फसा कर मानव-जीवन को पतित बनाता है वह त्यागी भर्तृहरि के शब्दो मे 'तिल की खल को पकाने के लिए अमूल्य रत्नो के पात्र का उपयोग करने वाले ओक की खेती के लिए कपूर की खेती को नष्ट करने वाले' व्यक्ति की तरह अपने-आप को वज्रमूर्ख ही सिद्ध करता है। इस जीवन मे आत्मोत्थान के सभी सयोग उपलब्ध होने पर भी उनकी ओर ध्यान न देकर धन लिप्सा व मिथ्या व्यामोहों मे फस जाना अपनी ही आत्मा के साथ भीषण विश्वासघात करना और मानव-जीवन की अनुपम विशिष्टता को व्यर्थ ही मे खो देना है।

आज का ससार जो केवल भौतिक पदार्थों की प्राप्ति मे ही सुख के अस्तित्व और मानव जीवन की सफलता मानता है वह अवश्य ही मिथ्या भ्रमणा मे है और इस तरह मानव-जीवन की यथार्थ महत्ता नष्ट हो रही है। मानव-जीवन और जगत् का विशाल धरातल मानव को सच्चे सुख की अनुभूति उसी समय करा सकेगे जब धर्म के मर्म को समझ कर जीवन की दिशा विशुद्ध धर्माचरण की ओर मोड़ी जायगी।

समझ लो ! परख लो !!

विवेकशील व्यक्ति सुख और दु ख दोनो मे तटस्थ वृत्ति रखते हैं। वे जानते हैं कि शुभ कर्मों के उदय से सुख और अशुभ कर्मों के उदय से दु ख प्राप्त होता है तथा कर्म बधन का कारण उसकी ही निज की आत्मा है अत निज के किये हुए कर्मों का फल शात भाव से ही सहन करना चाहिए। यह विचारणा ही मनुष्य के जीवन को सतुलित बनाये रख सकती है अन्यथा जीवन अत्यत ही विशृखल व विषम अवस्था वाला हो जाएगा।

सुख और दु ख का अनुभव विशेष रूप से मनुष्य के हृदय-निर्माण पर निर्भर करता है। दु ख में मनुष्य यदि सही रूप मे सोचे तो विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेता है। किसी कवि ने कहा भी है -

दु:ख है ज्ञान की खान......मानव।

शात बुद्धि और दृढ भावना के आधार पर दु ख से नई-नई शिक्षाए मिलती हैं और यहा तक कि वे शिक्षाए इतनी अमिट रूप से अकित हो जाती हैं कि भावी जीवन के विकास हित वे वरदान-रूप सिद्ध होती हैं। अधिकाशत सुख और दु ख की अनुभूतिया चित्त के विशिष्ट मनोभावो के कारण ही होती हैं। एक ही स्थिति व वस्तु मे सुख व दु ख का अनुभव किया जा सकता है। यह तो अनुभव करने वाले पर निर्भर है कि वह चित्त को किस प्रकार से सतुलित रखता है।

इस सिलसिले मे आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सुख और दु ख की काल्पनिक अनुभूति के परे ही आत्मानन्द का निवास है एव जब आत्मानन्द का सचार होता है तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है।

बधुओ ! इसी प्रकाश को पाने के लिए हमे सुख और दु ख के वास्तविक रहस्य को समझ कर अपने जीवन-पथ का निर्माण करना चाहिए।

भले ही देर हो, किन्तु

झूठ सदा डरने वाला होता है क्योकि रहस्य खुल जाने के भय की तलवार हमेशा उसके सिर पर लटका करती है। झूठ की हमेशा रक्षा करते रहने के लिए मनुष्य कुटिलता का सहारा लेता है और उसके सहारे से वह धोखेबाजी और विश्वासघात में सफल बनता देखा जा सकता है।

परन्तु इस सारी परिस्थिति के साथ यह नग्न सत्य भी मजबूती से जुड़ा हुआ है कि असत्य अधर्म का भडा फूटता है। लाख तौर-तरीको से छिपाई हुई बात भी एक दिन बिना प्रगट हुए नहीं रहती दिखाई देती है। यह अवश्य है कि इस कुटिलता में जो कुशल हुआ तो उस छिपावट की मियाद भले ही बढ जाती है लेकिन मियाद तो मियाद ही ठहरी एक दिन तो खत्म हो जाने वाली है।

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् भी कोई यह शका व्यक्त कर सकता है कि माना बुराई छिपती नहीं और आखिरकार प्रकट होकर ही रहती है किन्तु प्रत्यक्ष मे तो इस दुनिया में सच्चे आदमी को हर जगह निराश होकर ठोकरे खानी पडती हैं।

ऐसी शका करने वालो की कठिनाई को समझा जा सकता है। क्योंकि आज विपरीत वृत्तियो की बाढ वर्तमान जागतिक वातावरण मे कुछ ऐसी आई है कि झूठे और अवसरवादी बिना कुछ किये अच्छे लाम (भौतिक) उठा लेते हैं और सच्चे एव सेवाभावी व्यक्ति कुटिल प्रपचो मे फसा दिये जाकर दु खी बना दिये जाते हैं। परन्तु इस स्थिति के होते हुय भी यह तथ्य हृदय मे दृढतापूर्वक बिठा दिया जाना चाहिये कि सत्य वह ज्योति है जो कभी भी, किसी के द्वारा किसी भी दशा में किन्हीं भी उपायों से बुझाई नहीं जा सकती। ससार उस प्रकाश के समक्ष नतमस्तक होता हुआ हर युग मे देखा गया है।

शाति का निवासस्थान

शाति जीवन-विकास के लिए एक प्रमुख आवश्यकता है और जब तक किसी भी प्रकार से हम हमारे हृदय व मस्तिष्क मे शाति के सचार का प्रयास नहीं करेगे आपत्तियों के तूफान मे पडकर कभी हम आत्मोन्नति की ओर ध्यान दे ही नहीं सकेगे। सच्ची शान्ति के लिए विकृत मनोविकारो का आवरण हटाना होगा राग-द्वेष मोह माया तृष्णा स्वार्थ आदि रागात्मक वृत्तियो का त्याग करके हृदय को अधिकाधिक उदार व विशाल बनाना होगा। जो भी महापुरुष शाति की परम स्थिति को पहुचे हैं उनके स्पष्ट अनुभव हैं कि ज्यों ज्यो मनुष्य निजी स्वार्थों को भूलकर परहित मे अपने स्वार्थों को विसर्जित करता चला जाता है त्यो त्यों वह शांति की मजिल के समीप पहुचता है। इसके साथ ही अपने ही स्वार्थ में निरत रहने पर जीवनाकाश को अशाति के बादल ही घेरे रहते हैं। इस रहस्य मे आत्मा की मूल प्रवृत्ति का प्रदर्शन हमें मिलता है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और इसलिए ऐसे कार्य सपादित करने में उसे आनन्द व शाति की प्राप्ति होती है जो उसको नीचे गिराये रहने वाले भार को हल्का करते हैं। अपने दृष्टिकोण से दूसरों के लिए सोचना - यह सकुचित मनोवृत्ति आत्मा को पतन की राह पर नीचे ढकेलने वाली होती है। चाहे इस दृष्टिकोण मे प्रत्यक्ष सुख दिखाई देता हो सकता है किन्तु वह केवल सुखाभास होगा। दूसरो के दृष्टिकोण से अपने को भी सोचना - यह हृदय की विशालता का लक्षण है और चूकि इसमे किसी भी प्रकार की विकृति की छाप नहीं होती आत्मा को आन्तरिक सुख व स्थायी शाति प्रदान करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक स्थायी शाति का निवास स्वार्थ-त्याग तथा आत्म बलिदान मे ही रहा हुआ है।

` ` `

अनिवार्य आवश्यकता

धर्म की दिशा मे आगे बढने का सबसे पहला और सबसे ऊचा साधन है कि अन्त करण को निर्मल एव शुद्ध बनाकर धर्म के लिये समुचित धरातल का निर्माण किया जाय। धर्म की दिशा को समझकर उसके अनुकूल धरातल का निर्माण नहीं करना और धर्माराधना का प्रयास करना अयोग्यता का सबूत देना है। धर्म की दिशा मे आगे बढने से पूर्व यह सोचा जाना परम आवश्यक है कि मैं इस दिशा मे बढ़ने की भावना रखता हू या नहीं।

अन्त करण की शुद्धि के लिये मनुष्य को अपने अन्तरतम में झाकना होगा अपनी आलोचना स्वय करनी होगी और देखना होगा कि वह अपने विकारों को किस प्रकार नष्ट करके पवित्रता के स्वरूप को पहचान पायगा ? उसे परखना होगा कि उसने धर्म के आह्वान के लिये योग्य भूमिका की रचना कर ली है। इस हेतु उसे अपने हृदय की विशुद्धता के विविध उपायों पर दृष्टिपात करना होगा।

धर्म के धरातल का निर्माण अन्त करण की शुद्धि पर आधारित होना चाहिये जिसके साधन हैं - आत्मलाघवता विनम्रता निष्कामवृत्ति आदि। जब तक मनुष्य अपने भीतर सहज विनम्रता व लाघवता का अनुभव नहीं करता वह स्पष्ट रूप से तब तक अपने दोषो को नहीं पहचान सकता है आत्म-प्रवचना उसे भुलावा देती रहेगी। धर्म का मूल स्वरूप हमारे विशुद्ध मूल स्वभाव की मार्मिकता को पाने के लिये दोषरहित हृदय म निष्काम वृत्ति से प्रवेश होना चाहिए। कामनाओ से मुख मोड़ना ही एक तरह से विषमय सासारिकता को छोडना है और आत्मोत्थान के मार्ग पर आगे बढ़ना है।

इस दृष्टिबिन्दु से जब वर्तमान समाज की परिस्थितियो का अध्ययन किया जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज के धार्मिक व पुण्य कृत्यो में अधिकतर कीर्तिलिप्सा की दुर्गन्ध है। अपना नाम कमाने के लिए लोग लाखो की सपत्ति भी द देंगे चाहे उसका सदुपयोग हो अथवा नहीं। किन्तु जहा सच्ची आवश्यकता है पर नाम कमाने का सुअवसर नहीं तो कम ही उदाहरण सामने आते हैं।

नवीनता के अनुगामियो से

वास्तविक कल्याणमार्ग की ओर आगे बढ़ने से ही जीवन मे नवीनता का उद्‌भव हो सकता है क्योंकि जागतिक विकृतियो मे फसकर आत्मा अत्यधिक जीर्ण-सी बन गई है। उसमे नवीनता लाने के लिये शास्त्रीय सनातन व सत्यरूपी जीवनौषधि की आवश्यकता है। इस अवसर को हाथ से न जाने दे। तो क्या आप इस चेतावनी से सचेत होकर आगे बढ़ने के लिये तैयार हैं ? सासारिकता मे निरतर डोलते हुए चचलचित्त को नियत्रित करके विकास के लक्ष्य की ओर स्थिर करने के लिये क्या उद्यत हैं ? क्योकि आपकी इस प्रकार की तैयारी ही नवीनता की तरफ गति करने का लक्षण होगी।

प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से जो विकार आ जाते हैं उनको हटाने और चेतना जाग्रत करने के लिये मूल स्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हे भी नवीनता की सज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थो मे नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जा परिवर्तन और एकरूपता को सतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को सतुष्ट करती है और उसे सत्यलक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने मे जाग्रत रखती है। ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगति-मार्ग को निष्कटक बनाते हैं।

यदि मनुष्य ने हृदय के अपवित्र विचारों को नहीं छोडा अपने-आप को स्थिर-चित्त बनाकर जीवन के महत्त्व को नहीं समझा और सही कर्तव्याकर्तव्य का भी भान नहीं रखा तो उसके लिये केवल भौतिकवादी नवीनता निस्सार ही सिद्ध होगी।

नवीनता के अनुगामियों मे जीवन-विकास की ऐसी एकनिष्ठा होनी चाहिये कि ससार के कोई भी प्रलोभन उनके लिये अग्राह्य हों।

अत इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में यही कहना चाहता हू कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें ताकि जीवन को सच्चे अर्थों में सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनो का सम्यक सन्तुलन और सही अर्थों में समन्वय जीवन में स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें। आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला शुद्ध व्यावहारिक जीवन पर टिकी हुई है - 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'। अत व्यावहारिक जीवन में भी सत्य नवीनता फूकना उतना ही आवश्यक है।

आत्मदर्शन का साधन

देह और आत्मा का अभेद समझने की मूढदृष्टि जब तक विद्यमान रहती है तब तक बहिरात्म दशा बनी रहती है। यह घोर अज्ञान का परिणाम है। सर्वप्रथम आत्मा के पृथक अस्तित्व को समझना आवश्यक है। अन्तरात्मा बनने के लिये आपको मानना चाहिये कि देह अलग है और मैं अलग हू। देह के नाश मे मेरा नाश नहीं है। देह की दुर्बलता मेरी दुर्बलता नहीं है। देह पुद्गलों का परिणमन है और इस कारण क्षण-क्षण मे परिवर्तनशील है नाशवान है। मैं अविनाशी हू, अनन्त हू, अक्षय हू, अनन्त आनन्द और चैतन्य का आगार हू।

अन्तरात्म दशा प्राप्त होने पर जीव के विचार और व्यवहार मे बडा अन्तर आ जाता है। यह नाशशील दु:ख के बीज और आत्मा को मलिन बनाने वाले सासारिक सुख की अभिलाषा नहीं करता उसमे आसक्त नहीं होता। अन्तरात्मा - जीव का विवेक जब परिपक्व होता है तो सासारिक सुख से अरुचि हो जाती है। तब आत्मा अपने ही स्वरूप में रमण करने लगती है। दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और दिव्यशक्ति प्रकट होने पर जो आनन्द मिलता है वही ज्ञानानन्द है। इस ज्ञानानन्द म मग्न रहने वाली आत्मा समस्त उपाधियों से विमुख हो जाती है।

उस अवस्था को इन शब्दो में व्यक्त कर सकते हैं - वह परम आत्मा अनन्त सुख से सपन्न ज्ञानरूपी अमृत का स्रोत अनन्त शक्ति से समन्वित है उसमे किसी प्रकार का विकार नहीं है उसके लिये किसी आधार की आवश्यकता नहीं है वह समस्त पर पदार्थो के ससर्ग से रहित है और विशुद्ध चैतन्य-स्वरूपी है।

आत्मा का समर्पण करने से आत्मा की उपलब्धि होती है उसका स्वरूप अधिकाधिक निर्मल रूप से समझ मे आने लगता है।

नवीनता और प्राचीनता का भाष्य

प्रचलित परिपाटियो मे इधर-उधर से जो विकार आ जाते हैं उनको हटाने और चेतना जाग्रत करने के लिए मूल स्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हे भी नवीनता की सज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थो मे नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिए कि जो परिवर्तन और एकरूपता को सतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को सतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने म जाग्रत रखती है उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कटक बनाते हैं।

जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों शुद्ध-सयमी जीवन की उपयोगिता के लिए समाज व व्यक्ति मे जीवन का सन्देश फूकने वाले हों उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिए। किन्तु विवेक एव आत्म-ज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दों मे नवीन बने हुए कितने भी नियमोपनियम हों द प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिए। इन शब्दों में समय का मापदड ठीक नहीं हो सकता किन्तु सयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिए ग्रहण करनी चाहिए और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरो पर प्रगट करना चाहिए तभी नवीनता का पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है।

□□

आचार्यश्री गणेशलालजी म सा द्वारा रचित दो कविताएँ

(1)

जैन और आदर्श कर्तव्य

जैन वह जिसके चरण से आत्मा अविकार हो।
प्रेम का प्रत्येक प्राणी पर अमर व्यवहार हो।।
जैन के प्रतिकर्म मे कल्याण की झकार हो।
आत्मजय पथ एक चित्त पर पूर्ण चित्रकार हो।।
जैन के मृदु बैन मे अति ओज अनुपम प्यार हो।
कठिन अरिजन का हृदय सुन शुद्ध शुभ सुकुमार हो।।
जैन शक्ति और शान्ति का अजय भण्डार हो।
दिव्य जीवन पर जगत् कल्याण का आकार हो।।
हिस्सा गरीबो का अमीरी मे जिन्हे स्वीकार हो।
जैन की शक्ति अशक्तो का अमर आधार हो।।
समय के पीछे नहि समय जिनके लार हो।
जैन के सम्मुख अनीति रूढियो की हार हो।।
आत्मश्रद्धा का विमल रस चित्त मे सचार हो।
जैन जीवन दीन दु खियो पर सदा उपहार हो।।
साधको को जैन बनना ही सदा स्वीकार हो।
जैन के सच्चरण मे नतशीश सब ससार हो।।
'जीवो' जीवस्य रक्षण' के पाठ का व्यवहार हो।
वीर आदेशानुकूल हमेश देश विहार हो।।

(2)
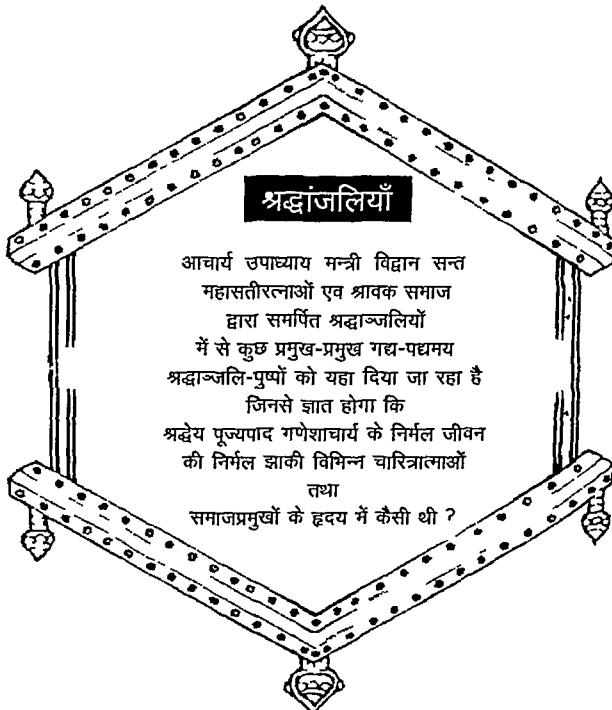
सृष्टि रूप और आत्मबोध

हा ! हा ! हाहाकार !
सकल सृष्टि मे युद्ध मचा एक जड चेतन साकार।
क्षण मे छत्र युक्त हो राणा।
क्षण मे तणे सूत का ताणा।।
कभी नरक तिर्यंच कर्मवश कभी अमर अवतार।
जीवन है जीवन की रेखा।
यह देखा आगम मे लेखा।।
स्वप्न तुल्य अवलोकित होगा इस वेला ससार।
फूला है क्या फूल सैलानी।
नहि रहने की अमर जवानी।।
इन दिन आशा हीन करेगा अतक मालाकार।
मानव-तन चन्दन-तरु तेरा।
काल व्याल बल से यह घेरा।।
कर दे तू सुन्दर सौरभ से तेरा-सा व्यवहार।
चाहे सुख पछी उड़ जाना।
जाना जहाँ आजाद ठिकाना।।
करम-रचित दु खमय सृष्टि का नहि हैं कारागार।
मोह-चरण मोह-दर्शन हरकर।
वन निर्ग्रन्थ सदा वहि-अतर।।
अवगत हो इङ्गित करिये जड़ चेतन भेद विचार।

श्रद्धांजली खण्ड

गद्य

श्रद्धांजलियाँ

आचार्य उपाध्याय मन्त्री विद्वान सन्त
महासतीरत्नाओं एव श्रावक समाज
द्वारा समर्पित श्रद्धाञ्जलियों
में से कुछ प्रमुख-प्रमुख गद्य-पद्यमय
श्रद्धाञ्जलि-पुष्पों को यहा दिया जा रहा है
जिनसे ज्ञात होगा कि
श्रद्धेय पूज्यपाद गणेशाचार्य के निर्मल जीवन
की निर्मल झाकी विभिन्न चारित्रात्माओं
तथा
समाजप्रमुखों के हृदय में कैसी थी ?

श्रद्धेय के प्रति जन-जन की श्रद्धाजलि

उदयपुर मे उपस्थित जनसमूह ने तो अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धाजलि समर्पित की ही थी किन्तु जो अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके उन्होंने अपने-अपने स्थानो पर सभाओ का आयोजन कर सामूहिक रूप मे श्रद्धाजलि समर्पित की थी।

श्रद्धाजलि समर्पण करने वालो मे साधु, साध्वी श्रावक श्राविकाओं ने व्यक्तिश तथा श्रीसघो ने सामूहिक रूप में जो श्रद्धाजलि समर्पित की थीं उनमे से कुछ विशिष्ट श्रद्धाजलियाँ श्रद्धाजलि खण्ड मे प्रस्तुत कर रहे हैं। जिनको पढने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने जीवन की महानता-प्राप्ति के लिये प्रयत्नों का श्रीगणेश किया था और प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हुए महान्-से-महान् होते गये।

उनकी महानता उनके जीवन के आदर्शों में गर्भित है और वे सदैव महान् रहे। आज उनकी महानता हमारे समक्ष है और उसका प्रकाश हम सबको भी महान बनने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

पूज्य आचार्यश्री महान् थे हैं और रहेंगे एव हम उनके आदर्शों से शिक्षित अनुशासित हों महान् बनें यही हमारा लक्ष्य हो।

उनके सयमी और तपस्वी जीवन के प्रति मैं श्रद्धान्वित हूँ

व्या वा, प रत्न श्री मदनलालजी

मेरे गुरुवर्ग का तथा पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म की सम्प्रदाय का पुराना सम्बन्ध रहा है। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की मुझ पर अनन्य कृपा थी। उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. के दर्शन अजमेर सम्मेलन मे भी हुए थे। सादडी सम्मेलन मे मैंने उनका विराट रूप देखा। सोजत सम्मेलन तथा जोधपुर के सयुक्त चातुर्मास मे मुझे उनकी सेवा मे खुल कर रहने का मौका मिला। मैंने उन्हे खूब अच्छी तरह देखा और परखा है। साधुता के प्रति उनकी पूर्ण आस्था थी। वे साधु सस्था मे सयमपूर्वक सुव्यवस्था लाना चाहते थे। उन्होने बड़ी उदारता तथा अनासक्त भाव से हमें मार्गदर्शन दिया। उनकी दृष्टि किसी के लिए अहितकर नहीं थी। श्रमण सघ मे रहते हुए सरलता निष्पक्षता तथा तटस्थ भाव से उन्होने जो किया मैंन उसे ठीक समझा है बेशक बहुमत के लिए वह गलत हो। उनके जिस तरीके को लोग दृढवादिता और गतिरोधकता कहते हैं मैं उसमे उनकी सत्य-निष्ठा और सिद्धात-निष्ठा देखता हू। श्रमण सघ की ओर से उन्हे अधिकतर विरोध और अनास्था ही मिली। इस पर भी वे सन्तुष्ट थे और यही उनकी महानता थी। उनके सयमी और तपस्वी जीवन के प्रति मैं श्रद्धान्वित हूँ।

विशुद्ध चरित्र पर उनका विशेष ध्यान था

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी

अंगीकृत सयमरत्न को ज्ञान के सहयोग से परित प्रकाशित करने वाले आचार्यश्री गणेशलालजी म का नाम स्थानकवासी परम्परा के सन्तो में प्रथम श्रेणी मे था। पजाबकेशरी पूज्यश्री काशीरामजी म और श्रद्धेय पूज्यश्री जवाहरलालजी म प्रभृति प्रख्यात आचार्यो ने सगठन की आवश्यकता का विशेष अनुभव कर इसके लिए अपनी आवाज सारे समाज मे

बुलन्द की थी। उस आवाज को जिन लोगो ने सुना उनमें आचार्यश्री गणेशलालजी म भी एक अग्रगण्य सन्त थे।

सादडी के वृहत्साधु-सम्मेलन को यशस्वी बानने वाले नेताओ मे पूज्यश्रीजी का नाम विशेष उल्लेखनीय था। समाज का अत करण विकसित हो उठा जब आचार्य और उपाचार्य पद पर पूज्यश्री आत्मारामजी म और पूज्यश्री गणेशलालजी म ने आसीन होकर स्थानकवासी समाज के नवीन इतिहास का प्रारम्भ करते हुए सकल साधु समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

कहना होगा कि सादडी साधु-सम्मेलन से श्रमणगण के एकत्रित होकर युग की माग की पूर्ति का प्रथम सोपान बना। वह अवसर अपूर्व रहा और वह घटना स्वर्णिम अक्षरो मे अकित करने योग्य बनी। इस सफलता पर बड़ी-बडी खुशियाँ मनाई गईं। सघ को अपने भविष्य की उज्ज्वलता का विश्वास हो गया। परन्तु समय परवर्तनशील है। बहुत ही थोडे समय मे घटना कुछ और बनी। जिसके परिणामस्वरूप उपाचार्यश्रीजी श्रमण सघ से पृथक हो गये और उनका मन उदासीन हो गया। इस प्रसग पर उदासीनता के कारणो की समीक्षा असगत होगी इसलिए उसकी चर्चा न करते हुए हम श्रद्धेय उपाचार्यश्रीजी के सद्गुणो पर ध्यान दें जिनके कारण वे सकल सघ के श्रद्धास्पद बने रहे।

पूज्यश्री गणेशलालजी म के सपर्क मे रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उनकी वैयक्तिक विशेषता अनुभव मे आती रहती थी आत्मा सरल थी व्यवहार सुस्पष्ट था विशुद्ध चरित्र पर उनका विशेष ध्यान था। इन विशिष्ट गुणों के कारण ही वे सबके लिए आदरणीय थे।

शरीर दुर्बल हो जाने पर भी आत्मबल और मनोबल के सहारे वे उस दुर्बलता पर काफी समय तक विजय प्राप्त करते रहे। आखिर पौद्गलिक पदार्थ कहा तक टिक सकता था ? वे आज समाज में नहीं रहे पर समाज आज भी उनके सद्गुणो का मानसिक अनुभव करता है और चिरकाल तक वे स्मृति-पथ मे बने रहेगे।

व्यक्तिगत मेरे ऊपर उनकी बड़ी कृपा थी यों श्रमण सघ के प्रधानमत्री पद पर रहने के कारण मेरा उनसे विशेष सम्पर्क था पर उससे पहले भी हम दोनों एक दूसरे को समीप से पहचानते थे।

अन्तत मैं उस श्रद्धेय आत्मा को अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए यह भावना रख रहा हूँ कि आपश्री के सुयोग्य शिष्य वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म श्रमण सघ सस्थापन के पवित्र उद्देश्य को अपने सामने रखकर उसके गठन को सुदृढ बनाने में अपना योग प्रदान करेंगे। वह दिन समाज के लिए धन्यता का होगा जब कि आपश्री सादड़ी की भूमिका पर आरूढ होंगे। बीच के समय के लिए भी मेरा सुझाव है कि भले ही तरीके दो हो गये हो पर

आचार-प्रचार मे हम अपने मूल उद्‌गम ध्यान मे रखे। प्रवाह पृथक होकर भी पुन एकत्र सगम हो जाने के पश्चात् जैसे नदी का नाम एक ही रह जाता हो वैसे ही सयोग या भवितव्यतावश जितने दिन पृथकता के हो उनमें विभिन्नता बढाने का प्रयत्न किसी ओर से न हो किन्तु भावात्मक एकता पर ही बल दिया जाय।

पूज्यश्री ज्योतिर्धर महापुरुष थे

उपाध्याय पण्डितरत्न श्री हस्तीमलजी म सा

श्रद्धेय पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म सा का स्वर्गवास हो गया है इस समाचार से उपाध्यायश्रीजी व श्रीसघ को हार्दिक खेद हुआ और सब सन्तो ने निर्वाण कायोत्सर्ग किया। स्व पूज्यश्रीजी स्थानकवासी जैन साधु समाज के एक ज्योतिर्धर महापुरुष थे। आपके स्वर्गवास से उपाध्यायश्रीजी साधु समाज मे एक महती क्षति का अनुभव करते हैं और हार्दिक कामना करते हैं कि स्व महापुरुष अपनी दीर्घकालीन साधना के सुफलस्वरूप चिरशान्ति प्राप्त करेगे। आपके उत्तराधिकारी पू श्री नानालालजी म सा के प्रति उपाध्यायश्रीजी ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए यह आशा व्यक्त की है कि वे अब श्रमण सघ मे अपनी सेवा देकर शासन के गौरव को बढाने मे हाथ बटावें। उपाध्यायश्रीजी एक समाचारी के निर्माण में उनको पूर्ण सहकार देने की भावना रखते हैं। आशा है कि पू श्री नानालालजी म सा स्व पू श्री जवाहरलालजी म सा की हार्दिक कामना को पूर्ण करने में सक्रिय कदम बढ़ावेगे।

पूज्यश्री वस्तुत शत-प्रतिशत् पूज्यश्री ही थे

उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म सा

स्व पूज्यश्री वस्तुत शत-प्रतिशत पूज्यश्री ही थे। उनका व्यक्तित्व महान् था साथ ही सरल उदार और धर्मप्राण भी। जिन-शासन के प्रति उनकी सेवाएं जैन सघ के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के नवनिर्माण और पुनर्गठन में

उनके योगदान का मूल्य भले ही कोई भूल जाय परन्तु मैं तो कभी भूल नहीं सकता। यह ठीक है कि इधर मतभेद की खाई चौडी हो गई थी इतनी चौड़ी कि उनके उपाचार्य पद पर अन्त तक बने रहने का सौभाग्य एव गौरव श्रमण सघ न पा सका। भूल कहाँ थी किस ओर से थी और क्या थी उक्त विवेचन का यह प्रसग नहीं है और न इससे कुछ लाभ ही है। काश ! उनका वरद हस्त वही पहले जैसी मूल भावना के अनुसार श्रमण सघ पर बना रहता तो आज श्रमण सघ क्या से क्या होता।

खैर कुछ भी हुआ हो और जनमानस ने उन्हे कुछ भी समझा हो पूज्यश्री का निर्मल प्रेम अपने प्रति तो परिचय के प्रारम्भ से ही कुछ ऐसा रहा है कि उनकी मधुर स्मृति आज भी हृदय के कोने-कोने को गद्‌गद किये दे रही है।

राजगृह के गत वर्षावास मे कितनी ही बार सकल्प हुआ कि 'पूर्वी भारत की विहार यात्रा से लौटकर पूज्यश्री के दर्शन करूँ। यदि हो सके तो मतभेदो का परिमार्जन कर श्रमण सघ के लिए पूज्यश्री का पवित्र आशीर्वाद पुन प्राप्त करूँ। और जब-जब किसी परिचित से इस सम्बध में वार्त्ता हुई तो वह भी यही कहता था कि अवश्य ही आप सेवा मे गए तो सफल होगें और अपना मन भी यही सब-कुछ सोचे हुए था। परन्तु विधि का विधान विचित्र है अतर्क्य है।

कालचक्र की गतिविधि विलक्षण है कल्पना से परे है।

यच्चिन्तित तदिह दूरतर प्रयाति
यच्चेतसा न गणित तदिहाभ्युपैति।

पूज्यश्री का महाप्रयाण जैन सघ की वह क्षति है जिसकी निकट भविष्य मे तो क्या सुदूर भविष्य मे भी पूर्ति न हो सकेगी। इस प्रकार की दिव्य विभूति एक बार गयी सो गयी दुबारा कहा मिलने को है ? श्रद्धेय आचार्यश्री गए युग की महाविभूति गयी और अब उपाचार्यश्री !

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्

स्वर्गीय पूज्यश्री के स्नेहमूर्ति शिष्यमण्डल से विशेषत उनके योग्य वरिष्ठ उत्तराधिकारी प मुनिश्री नानालालजी से इस दुखद प्रसग पर मेरी हार्दिक समवेदना एवम् सहानुभूति निवेदन की जाए। आशा ही नहीं दृढ विश्वास है और शासनेश से अभ्यर्थना भी है कि वे सत्साहस के साथ इस मर्मान्तक चोट को सहन करेंगे पूज्यश्री के निर्मल गौरव को सर्वतोभावेन अक्षुण्ण रखेंगे तथा वर्तमान समयचक्र की गति स्थिति पर तटस्थ भाव से पुनर्विचारणा करके श्रमण सघ को वही पहले सा एकात्म भावरूप सहयोग प्रदान करेंगे। हमारे हृदय के मगल द्वार उनका सम्मानपूर्ण स्वागत करने के लिए सदा खुले हैं।

जैन समाज की अमूल्य निधि

बहुश्रुत पडितरत्न श्री समर्थमलजी म सा

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा जिनके कि बहुत से भाई-बहिनो ने दर्शन किए हैं समाज की चमकती विभूति थे। आप सयमप्रिय थे। म सा की सेवा का लाभ मुझे सर्वप्रथम खींचन मे मिला था। उसके बाद कई जगह सेवा का लाभ मिलता रहा। आप विद्वान होते हुए भी सरल थे। आपकी वाणी मे मधुरता थी। जैन समाज की अमूल्य निधि थे। आपने 16 वर्षीय अवस्था मे दीक्षा ली और कुछ वर्ष कम 60 वर्षपर्यंत चारित्रपर्याय का पालन किया। आपने पूज्यश्री श्रीलालजी म सा और जवाहराचार्यजी म सा की भी सेवा की। विशेषत जवाहराचार्यजी म सा की सेवा की। आपने सस्कृत प्राकृत न्यायादि का ज्ञानाभ्यास भी खूब किया। आपको सर्वप्रकारेण योग्य समझ कर पूज्य जवाहराचार्यजी म सा ने युवाचार्य पद दिया। सघ में आपका बहुत मान था। आपके वचन में मृदुता थी। जैन अजैन आदि आपकी अमृतमय वाणी को सुनकर प्रसन्न होकर जाते थे। समग्र जैन समाज मे आपकी यहा तक जहोजलाली थी कि सादडी मे आपको स्थानकवासी साधुओ ने मिलकर आचार्य पद से सुशोभित किया। आप इस पद को लेना नहीं चाहते थे किन्तु सघ-सेवा के हेतु इस पद को भी स्वीकार किया। इस पद का यथावत् पालन करते हेतु भी कई बाधाएँ आई। उन सब बाधाओ को सहन करते हुए आगे बढे कितु जब उन्नति मे कई रोडे आने लगे तो धैर्य एवम् निडरता के साथ उस सघ से अपनी आत्मा को पृथक कर दिया। त्यागपत्र से समाज को दुख हुआ और पुन सम्मिलित करने का भरसक प्रयत्न किया गया किन्तु अपने फरमाया कि शिथिलाचारादि प्रवृत्तियो को छोड देगे तो मैं आपके साथ ही हूँ। आपकी निन्दा एवम् छींटाकशी भी खूब की, परन्तु आप शान्तिपूर्वक सहन करते रहे।

कुछ अरसे से आप बीमार थे। तो स्वत यह प्रश्न होता है कि महापुरुषो को बीमारी क्यो आती है ? इसका उत्तर यह है कि कर्मो को भोगते हुए भी जो कर्म शेष रह जाते हैं उसका यह कारण है। इस (बीमारी) ने तो श्रीलालजी म सा और जवाहराचार्यजी म सा को भी सताया था। अभी जो करनी की है वह अपवर्ग के लिए ही की है।

आपके असह्य वेदना थी। यह नश्वर देह है वह तो कभी-न कभी छूटने वाली है यह जानकर आपने धैर्यता आनन्द के साथ आलोचना करके चतुर्विध सघ से क्षमायाचना करके

सावधानीपूर्वक दस बजकर बीस मिनट पर सथारा ग्रहण किया। लगभग दस पहर का सथारा आया और दूसरे दिन तीन बजकर तीस मिनट पर सथारा सीझा।

जो महापुरुष होते हैं वे पापों से अपनी आत्मा को हटाकर महाव्रतों को शुद्ध करके पाण्डितमरण को प्राप्त करते हैं। हमारा भी यही कर्तव्य है कि धर्म की आराधना करके समाधिमरण को पाव।

सघ के लिए यह सन्तोष का विषय है कि पूज्यश्री ने अपनी मौजूदगी में ही अपने ही हाथो अपना उत्तराधिकार सौंप कर युवाचार्य की चादर ओढा दी। पडितरत्न श्री नानालालजी म सा सब प्रकार से इस पद के योग्य हैं। मैं आशा करता हूँ कि वे इस उत्तरदायित्व को योग्यतापूर्वक निभावेगे।

दिवगत आत्मा सरल एव उच्चकोटि की थी

प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म सा

विशेष समाचार यह है कि शुक्रवार की रात्रि के 7 बजे रेडियो से दुखद समाचार मिला कि श्रद्धेय प प्रवर श्रमण सघ के भूतपूर्व उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा का स्वर्गवास हो गया है। यह सम्वाद गुरुदेवश्री के पास पहुँचते ही गुरुदेवश्री ने निर्वाण काउसग्ग कर दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि—

स्थानकवासी समाज का यह दुर्भाग्य है कि उच्च कोटि की आत्माए आखो से ओझल होती जा रही हैं। समाज अभी तो गत वर्ष दिवगत आचार्यश्री के वियोग को विस्मृत नहीं कर पाया कि यह नूतन वियोग सहने का प्रसग समुपस्थित हो गया।

दिवगत आत्मा सरल एवम् उच्च कोटि की थी। श्रद्धेयश्री से मुझे साक्षात्कार करने का प्रसग श्रमण सघ के उपाचार्यश्री के रूप में विशेष रूप से मिला है। प्रत्येक प्रसग पर श्रद्धेयश्री मेरे से विचार-विनिमय किया करते थे एवम् पारस्परिक विचारणा का तत्त्व समाजहित के लिए मार्गदर्शन बनता था। विधि कहिए या समाज की भावी ही ऐसी मानिए जो कुछ समय से श्रद्धेयश्री का श्रमण सघ से मतभेद बना। फिर भी मुझे तो आगन्तुकों के साथ श्रद्धेयश्री की ओर से सौहार्दपूर्ण सम्वाद मिलते रहे हैं। ऐसे उच्च आत्मा के स्वर्गारोहण से स्थानकवासी समाज को जो क्षति पहुँची है वह निकट भविष्य में पूर्ण नहीं हो सकेगी।

पूज्यश्री शुद्धाचार-समर्थक, सुसयमी सतरत्न थे

शास्त्रज्ञ प रत्न श्री अम्बालालजी म सा

दिवगत आत्मा के जीवन पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेवश्री ने फरमाया कि स्वर्गीय पूज्यश्रीजी शुद्धाचार समर्थक सुसयमी सतरत्न थे साथ ही शास्त्रज्ञ तथा प्रखर वक्ता थे। आपश्री के स्वर्गवास से समाज मे बड़ी क्षति हुई लेकिन क्या किया जावे कराल काल के सामने कौन क्या कर सकता है ? किसी के बस की बात नहीं।

पूज्यश्रीजी की जिन सन्तों ने तन मन से जो सेवा की उन्हें कोटिश धन्यवाद है। स्वर्गीय पूज्यश्रीजी के आदर्श गुण उनका शिष्य परिवार अपने भौतिक जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नशील हो। ऐसे ही चतुर्विध सघ भी उनके सदगुणों को ध्यान में रखते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाने की कोशिश करे।

उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ

प रत्न मुनिश्री सुशीलकुमारजी म सा

परमश्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म के निधन स एक ऐसी क्षति हुई है जिसकी पूर्ति हम और हमारा निकट भविष्य नहीं कर सकेगा। उनका शुभ जीवन और उदात्त विचार हमारे लिए सदा से प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उनके चले जाने से मालूम नहीं क्यों मैं अपने-आप को अकेला और असहाय-सा अनुभव करता हूँ। मुझे उनके प्रति एक स्वाभाविक अनुराग था। मैं नहीं कह सकता हूँ कि ठीक-ठीक इसका कारण क्या है ? हालाकि मैं कठोर क्रिया की प्रतिस्पर्धा करने वाले सतो और स्वच्छद सुधारवादियों के सदा विरुद्ध रहा हूँ। मेरा प्रारम्भ से निश्चय रहा है कि साधु का लक्ष्य आत्मा का सतत जागरण करते हुए निरन्तर आत्म-साक्षात्कार की भावना को प्रबल बनाना है और उसके लिए नैसर्गिक जीवन में स्वभावतया सयम और निष्ठापूर्वक विवेक तथा गहरी आत्म-श्रद्धा की अपेक्षा रहती है। यह भी मेरे लिए एक आकर्षण का केन्द्रबिन्दु रहा है कि मैंने परमपूज्य महाराजश्रीजी के जीवन मे पवित्र अन्त करण की जो झाकी देखी वह मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकी।

आज जिन दो-तीन सतो ने मेरे मन और आत्मा को अपने जीवन की महत्ता और वात्सल्य से अभिभूत किया है उनमे महाराजश्रीजी सबसे प्रमुख थे। उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ तो भी अपने जीवन मे जो-कुछ हमे वो दे गये हैं वो हमारे विचारों की शुद्धि और आचरण की पवित्रता के लिए प्रकाशस्तम्भ की तरह है। दुर्भाग्य से हम वो सब-कुछ भूल गये तो हमारे हाथ मे कुछ नहीं रहेगा।

कष्ट की अथाह अनुभूतियो मे और वेदना के गहरे सागर मे चमक की किरण जो उनके चहेरे पर आभान्वित होती थी और कैंसर जैसे दुर्दान्त भयकर रोग की असह्य पीड़ा होते हुए भी जो विलक्षण श्रद्धा और अप्रतिम तेज उनके चेहरे पर चमकता रहा था वह उनके समग्र जीवन की परम पवित्रता का दिव्य प्रमाण है और हमारे लिए वो आदर्श है।

उनकी याद में हम उनके आदर्श और विश्वासा को साकार कर सके यही हमारी भावभरी श्रद्धाजली है।

स्मृतिपुरुष

प रत्न श्री श्रीमलजी म सा

परम श्रद्धेय पूज्यश्री गणेशलालजी म का तपपूत शरीर वह क्षणभगुर मानव काया हमारे बीच मे नहीं है जिसकी छत्रछाया मे लगातार गत 40 वर्षों से मैं निश्चित था फिर भी वे हृदय में देव-दुर्लभ अमरत्व के रूप में महान आदर और श्रद्धा के साथ आसीन हैं।

उनके अस्तित्व की अनुभूति अभी भी प्रतिपल हो रही है।

कल की-सी बात है। मैं बारह वर्ष का अबोध बालक था। निपट देहाती। साधु सगति के पुण्य प्रताप ने मुझे युगप्रभावक आचार्य जवाहर के चरणों में पहुँचा दिया। उस समय मुनिश्री गणेशलालजी म गुरुदेव के शिष्यों मे सर्वप्रिय थे।

वसे गुरुकुले निच्च जोगव उवहाणव
पियकरे पियवाई सो सिक्ख लद्धुमरिहई।

इसके मूर्त रूप थे। इसलिए मेरी शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व उन्हीं पर आया। उन्होंने बहुत ही लाड़-प्यार से मुझे सयम-साधना की समस्त प्रक्रिया समझाई। मैं कैसे चलूँ, उठूँ बैठूँ,

बोलूँ, पढ़ूँ यह सब वे विस्तार से समझाते। बालसुलभ चपलता के कारण मुझसे कभी कोई गलती हो जाती थी तो वे पितृतुल्य उसका परिमार्जन कर देते थे।

प्रात काल चार बजे मुझे बहुत ही मधुर वाणी से उठाते और स्वाध्याय कराते। बचपन मे नींद खूब आती। किन्तु उनकी स्नेहमयी सावधानी के कारण आखिर वह भी डरने लगती। मैं अध्ययन करने लगा। व्याकरण जैसे दुरूह विषय भी वे बातों ही बातो में पढ़ा देते थे। बाल मस्तिष्क पर भार न पडे और बालक समझ भी जाय यह कला बहुत कम लोग जानते थे। वे इस विषय मे पारगत शिक्षक थे। शिक्षणकाल मे जब-कभी मैं अध्ययन से जी चुराने लगता तो वे मनोवैज्ञानिक की भाति दिल के चोर को पकड लेते और मुझमें अखण्ड उत्साह भर देते थे। आज कई युगो के बाद भी जब मैं कभी अध्ययन या स्वाध्याय में प्रमाद करने लगता हूँ तो मुझे वही मोहिनी मुद्रा प्रबुद्ध कर देती है।

गुरुदेव लम्बे लम्बे विहार भी करते थे। इससे कभी-कभी मैं बहुत थक जाता था। तब पूज्यश्री गणेशलालजी म ही होते जो मेरा सारा बोझ स्वय उठाते और मीठी मीठी कहानियाँ सुना कर मुझमें मजिल तक पहुँचने की स्फूर्ति भर देते थे। उनके पास आते ही मेरे पावों में पख लग जाते थे।

जलगाव (खानदेश) की बात है। गुरुदेव (जवाहराचार्य) अस्वस्थ हो गये। असाध्य कष्ट ! मरणान्तिक वेदना ! हम सब घबरा गये। तब पूज्यश्री गणेशलालजी म जिस तत्परता से परिचर्या करते रहे वह अविस्मरणीय घटना है। वे न कभी दिन मे आराम लेते थे और न रात में विश्राम। उनका पल-पल गुरुदेव की सेवा मे बीतता था। गुरुभक्ति की अपार निष्ठा को मूर्तिमान देख कर हम सब साधुओ के मस्तक उनके चरणों मे झुक जाते।

तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी म. बीमार पड़े। उन्हे शरीर की भी सुध-बुध न रही। दिन में कितनी ही बार उनके वस्त्र अशुचि से भर जाते थे। उस समय पूज्यश्री ने जिस मनोयोगपूर्वक तपस्वीजी म की सेवा की उसे कौन भूल सकता है ? अशुचि भावना से ऊपर उठकर सेवा करने वाले नन्दिषेण जैसे सेवा मूर्ति मुनि के इतिहास को आपने वर्तमान का दर्शन बना दिया था। साधुता सार्थक हो गयी।

थली-प्रदेश ! रेगिस्तानी क्षेत्र !! ग्रीष्म ऋतु !!! हमारे लिए सरदारशहर चूरू रतनगढ आदि का इलाका बिल्कुल नया-नया था। वहा के लोग हमारे विधि-निषेधों से लगभग अपरिचित थे। जो कुछ परिचित थे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण नफरत ही बरसाते थे। न कभी अनुकूल आहार और न अनुकूल व्यवस्था। उस भयकर गर्मी में जिस सहिष्णुता के साथ पूज्यश्री आने वाले कष्टो को सहन करते थे उससे हमारी सहनशक्ति को पर्याप्त बल मिलता था। उन सब प्रतिकूलताओ के बीच भी वे सदा मधुर मुसकान बिखेरते रहते थे। उन्हें

दिन मे घण्टो तक चर्चाए करनी पड़ती। कई-कई बार व्याख्यान भी देने पडते किन्तु इससे वे कभी घबराते नहीं थे। वे निष्काम भाव से गाव-गाव जाते। जो भी उनके पास शका लेके आते सबका समाधान करते। उनका अविचल स्वभाव हमारे लिए जीवत प्रेरणा का प्रतीक बना रहा।

पूज्यश्री गणेशलालजी म का बचपन मेवाड मे बीता। यौवन मे वे मारवाड मध्यप्रदेश महाराष्ट्र आदि-आदि प्रदेशो की पदयात्रा करते रहे। वृद्धावस्था मे दिल्ली आगरा अलवर आदि शहरों मे घूमते हुए उन्होने जैन धर्म के प्रचार का अभूतपूर्व कार्य किया। अन्तिम समय में वे फिर अपनी जन्मभूमि मे पहुँच गए। मेवाड का शौर्य और भक्ति उनके जीवन के प्रमुख अग रहे। जो-कोई उनसे एक बार मिला उसे उनकी मधुरता ने सदा के लिए अपना बना लिया।

पूज्यश्री श्रमण धर्म के सजग साधक थे। उनकी साधना से अनेको को प्ररेणा मिली। मेरे जीवन पर उनका अनन्त ऋण है। कितना अच्छा होता यदि मैं अन्तिम समय मे उनकी सेवा कर अपने को कृतार्थ कर पाता। उन्हीं की आज्ञा से वृद्ध सतो की सेवा मे रहने के कारण मैं अपनी इस भावना को क्रियान्वित नहीं कर सका। वृद्धो की सेवा ही उनकी सेवा है और यह उन्हीं के द्वारा प्रशस्त किया हुआ पथ है। इसलिए इस मार्ग पर अग्रसर होता हुआ मैं अपने अनत भाव-भक्तिभरे हृदय से उस स्मृतिपुरुष के प्रति श्रद्धान्वित हूँ।

स्नेहशील सन्त-हृदय

मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी म सा

होता स्वजन वियोग न यदि इस वसुधातल मे
बन जाता तो यही अमरपुर निश्चय पल मे

भूतपूर्व उपाचार्य पण्डितप्रवर श्रद्धेयश्री गणेशलालजी म के सम्बन्ध में लिखना बड़ा ही कठिन है वे हीरा थे किन्तु उस मूल्यवान हीरे के चमकदार पहलुओं की व्याख्या से परे थे। उनके स्वर्गवास से स्थानकवासी जैन समाज का ही नहीं अपितु वसुन्धरा का एक रत्न कम हो गया। मैं उनका हृदय से आदर करता था और आज जब वे स्वर्ग सिधार गय हैं तो मैं अपने जीवन मे एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव कर रहा हूँ।

उनके साथ जीवन के बहुत-से मधुर क्षण व्यतीत हुए हैं। उन मधुर क्षणो की स्मृतियाँ आज इस तरह एकसाथ स्मरण आ रही हैं कि उन्हें सिलसिले मे पिरोना मुश्किल हो रहा है।

जहा तक मुझे स्मरण आता है उनसे प्रथम परिचय अजमेर सम्मेलन के पूर्व ब्यावर में हुआ था। उन दिनों व जवाहराचार्य के अतेवासी विद्यार्थी सत थे उनका न्याय और व्याकरण का अध्ययन चल रहा था। प्रतिभा की तेजस्विता के कारण राजस्थान् मे् काफी् प्रख्यात् हो चुके थे। मेरी चिरकाल से अभिलाषा थी कि आपसे वार्त्तालाप किया जाय पर सम्प्रदायवाद के कारण वह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। एक बार अरण्य में प्रसग भी आया पर वह भी किन्हीं कारणो से सफल न हो सका।

सन 1949 से 51 तक धर्म-दर्शन समाज आदि विविध विषयों पर आपसे पत्राचार चला। आपके मौलिक विचारो से परिचय हुआ और जब सादड़ी सन्त सम्मेलन के सुहावने अवसर पर आपके प्रथम दर्शन हुए तब गिर्वाणगिरा के यशस्वी तेजस्वी कवि की वाणी में निवेदन किया –

दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्ति
कर्णौ च तृप्तौ न च चक्षुसि मे।
तयो विवाद परिहर्तु काम
समागतोऽह तव दर्शनाय।।

सादड़ी सन्त सम्मेलन मे सन्निकट रहने का असर मिला। मैंने उस पुराणपुरुष में पुरानी पीढी की सब खूबिया देखीं। मैंने अनुभव किया कि तन काला है पर मन उज्ज्वल है बाल रूखे हैं पर हृदय स्निग्ध है कपडे मैले हैं पर मन साफ है आवाज कड़कती है पर व्यवहार मधुर है।

तन के कण कण मे मन के अणु-अणु में बालसुलभ सरलता के सदर्शन कर पुराणों का प्रसग स्मृतिपटल पर चमक उठा। विष्णु के प्रसन्न होने पर सनत्कुमारों ने पाच साल की उम्र मागी थी और कहा था कि हम लोग हमेशा सरलता के रूप वाले पाच साल के बालक ही बने रहे वैसे ही आपने भी समवत यही वरदान मागा था। पाच साल के बच्चे की तरह आप भी सरल थे निष्कपट थे सरल मति थी सरल गति सरल प्रकृति थी सरल भाषा थी सभी-कुछ सरल था।

सोजत मे मन्त्रिमण्डल की बैठक के पश्चात् अजमेर और उदयपुर मे लम्बे समय तक आपश्री की सेवा में रहने का सुअवसर मिला। उन दिनो आपश्री से घण्टों तक सामाजिक विषयो पर बातचीत होती रही।

सन् 1961 में पुन आपश्री के दर्शनार्थ मैं उदयुपर गया। उस समय आपने उपाचार्य

के पद और श्रमण सघ से त्याग पत्र दे दिया था। मुझे आशा नहीं थी कि पूर्व स्नेह के सन्दर्शन होग पर मुझे देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि स्नेह-समुद्र मे से वही स्नेह छलक रहा है जो पूर्व मे अनुभव किया था।

मैं उस सन्तपुरुष के श्रीचरणो मे भावभीनी श्रद्धाजलि समर्पित करता हुआ शायर की भाषा मे कहूँगा -

मरने वाले मरते हैं लेकिन फना होते नहीं।
ये हकीकत में कभी हमसे जुदा होते नहीं।।

श्रमण सघ का सर्वस्व अब न रहा

प रत्न श्री रामप्रसादजी म सा
(व्या वा श्री मदनलालजी म सा के सुशिष्य)

खबर मिली है कि उदयपुर मे आचार्यश्री गणेशलालजी म सा समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवासी हो गये हैं। अत आज उन्हीं के बारे मे मुझे कुछ कहना है। आचार्यश्रीजी का जन्म उदयपुर (मेवाड़) के एक ओसवाल घराने मे हुआ। इनकी दीक्षा लगभग 16 वर्ष की छोटी उम्र मे हुई। ज्ञानाराधना के साथ-साथ सन्त समुदाय की सेवा भक्ति तथा तपश्चरण मे वे तन्मय रहते थे। अजमेर सम्मेलन मे उन्हे पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म की सम्प्रदाय का युवाचार्य निर्वाचित किया गया था। बाद मे वे अपनी उस सम्प्रदाय के आचार्य बने। श्रमण सघ बनने पर उसका नेतृत्व उन्हें सभालना पड़ा और उस नेतृत्व से पृथक होने पर वे फिर पूर्ववत् अपनी सम्प्रदाय के अधिनायक थे।

मुझे उनके चरणो मे रहने का विशेष प्रसग नहीं हुआ है। पर मेरे पूज्य गुरुदेव (व्या वाच श्री मदनलालजी म) का उनके साथ अच्छा-खासा सम्पर्क रहा है। बहुत पुराने समय मे हमारी गुरु-परम्परा तथा आचार्यश्रीजी की गुरु-परम्परा परस्पर सन्निकट रही है। परमपूज्य चारित्रचूड़ामणि श्री मायारामजी महाराज जब मालवा पधारे तब श्रद्धेय पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज से उनका सम्मिलन हुआ। दोनों महापुरुषो की उत्कृष्ट आचार प्रणाली सुदृढ अनुशासकता तथा प्रवचन-प्रभावकता ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। दोनों महापुरुषो ने भिन्न सम्प्रदायो का घटक होते हुए भी 11 सभोग स्थापित किये। ग्यारह सभोगो मे शिष्यों का आदान प्रदान भी एक सभोग है। उसी के अन्तर्गत पूज्य उदयसागरजी महाराज ने अपने होनहार शिष्य श्री छोटेलालजी म को श्रद्धेय मायारामजी म के चरणों मे अर्पित किया। श्री

छोटेलालजी म उस समय पूज्यश्रीजी के चरणो मे दीक्षित होने की भावना से ज्ञानाभ्यास कर रहे थे। उस समर्पण में पारस्परिक स्नेह तथा आचार-विचार सम्बन्धी समानता मूल कारण थे। श्री छोटेलालजी म के अतिरिक्त श्री किरपारामजी म श्री जडावचन्द्रजी म श्री वृद्धिचन्द्रजी म श्री रामसिहजी म श्री कॅवरसेनजी म श्री नाथूलालजी म श्री राधाकृष्णजी म तथा श्री रतनलालजी म आदि मेवाड की अन्य कई विभूतियाँ श्रद्धेय मायारामजी म के चरणों तक पहुँची थीं। इस प्रकार दो परम्पराओ के मधुर मिलन की यह पुरानी कहानी है। जिस समय पूज्यश्री जवाहरलालजी म पजाब तथा देहली पधारे उस समय मेरे गुरुदेव उनके साथ साथ कई क्षेत्रो मे विचरते रहे। आचार्यश्री गणेशलालजी म से तो गुरुदेव का काफी सम्पर्क रहा है। गुरुदेव कई बार कहा करते हैं कि इन जैसी आचारनिष्ठ सरल तथा तप पूत आत्माएँ विरल ही हैं।

सादडी सम्मेलन मे सारे श्रमण सघ ने अपने सचालन का भार इनके कन्धों पर डाला था। गुरुदेव उस सभा के अध्यक्ष थे। जिसमे न चाहते हुए भी श्रमणो द्वारा अत्यन्त बाध्य किये जाने पर उपाचार्य के रूप में इन्होने श्रमण सघ का नेतृत्व स्वीकार किया था और उपस्थित श्रमणो ने उस महान आध्यात्मिक सेनानी की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए एकस्वर से घोषणा की थी। सादड़ी सम्मेलन की कार्यवाही का लेख अब तक भी इन सबका साक्षी है। पर खेद के साथ कहना पडता है कि वे सब बाते प्राय लेख और भाषणो तक ही सीमित रहीं।

उपाचार्यश्रीजी को अनुशासन कायम रखने के लिए कई कड़े कदम उठाने पड़े। उन्होंने इस विषय में अपने शिष्यो तक का मोह न किया। कुछ लोग उन्हे सम्प्रदायवादी समझते हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि जब तक वे श्रमण सघ मे रहे श्रमण सघ की व्यापक दृष्टि से सोचते रहे। कठिन से कठिन प्रसगों मे भी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति उनके आस पास न फटक सकी। जिस समय विनयचन्द भाई का देहान्त हुआ और सवत्सरी विषयक विवाद उठने लगा उस समय उपाचार्यश्रीजी म ने अपनी गहरी असाम्प्रदायिक भावना का परिचय दिया। उनका यही कहना था कि श्रमण सघ ने जिस व्यवस्था को सादड़ी सम्मेलन में स्वीकार किया है मैं उस से तिलमात्र इधर-उधर होने को तैयार नहीं चाहे मेरी पूर्व-संप्रदाय की धारणा से वह विरुद्व ही क्यों न हो। आज उन्हें जो साम्प्रदायिक समझते हैं वे जरा इस घटना का पुनरावलोकन करलें।

यह ठीक है कि उपाचार्यश्रीजी म मे सबको खुश करने की पदुता नहीं थी। सरल ढग से खरी बात वे कहते थे और उस पर दृढ़ रहते थे। जबकि आज का समाज अनुशासक की नीति में इतनी लचक की अपेक्षा रखता है कि उसे जितना चाहे अपने पक्ष में मोड लिया

जाय। इस सामाजिक मनोवृत्ति के कारण ही वे समाज को अनुपयुक्त जचे। इसी असामजस्य के कारण अन्तत उन्हे केवल अपने साधुमण्डल की व्यवस्था पुन सभालनी पडी। इस व्यवस्था में वे सभी उलझनो तथा असमाधि के प्रसगो से अलग हो गये। उनकी आत्मा को जीवन की अन्तिम घडियो मे आराधक होने का अवसर मिला। रोग के तीव्र प्रहारो के बावजूद भी वे तप और सयम मे ही लीन रहे। कई महीनो के शारीरिक सघर्ष के बाद उन्होने स्वय ही इस भौतिक जीवन से निवृत्ति प्राप्त की। सथारा ग्रहण करके जीवन की सर्वागसम्पूर्ण साधना पर उन्होंने स्वर्णकलश चढाया। ऐसी ज्योतिष्मान आत्मा को हमारी विनम श्रद्धाजली है।

महान् आदर्श एव तेजस्वी सत की क्षति

प र प्रवर्तक मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म सा

दीक्षा सहचर प रत्न पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म सा का देहावसान सुन कर अतीव दु ख हुआ परन्तु करालकाल के सामने तीर्थंकर जैसे तीन लोक के नाथ का भी वश नहीं चलता तो औरों की तो बात ही क्या !

पू. श्री गणेशलालजी म मेरे दीक्षा सहचर थे। स 1962 की कार्तिक शुक्ला 13 को मेरी दीक्षा हुई और मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष मे आपश्री की दीक्षा हुई। आप वास्तव मे मूलत मेरे गुरुभाइयों मे थे। हम सब श्री राजमलजी म की शिष्य-परम्परा मे थे।

दीक्षा के पश्चात् समय पर हमारा स्नेह-मिलन प्राय होता रहा। स 1963 में प्रथम बार मिले। फिर स 1964 मे रतलाम में स 1965 मे तखतगढ में मिलन हुआ। इसके बाद भी अनेक बार मिलने का प्रसग आया।

सवत् 1977 में आपके दीक्षागुरु श्री मोतीलालजी म का देवलोक प्रयाण होने पर गुरुवर श्री नन्दलालजी म के साथ इदौर मे एक ही मकान मे ठहरना हुआ। उसके बाद भी अनेक मिलन प्रसग उपस्थित हुए। बाद में 2009 मे जावरा मे साक्षात्कार हुआ। उस समय दो दिनो में डेढ घण्टे तक अनेक उलझनों को सुलझाने के लिए प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप हुआ। फिर स 2009 म सादडी सम्मेलन के अवसर पर मिलन हुआ और मेरे तथा उनके बीच महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ।

इन सब मिलनों की मधुर स्मृतिया आज भी मेरे मन में ताजा हैं। उनकी सहृदयता सरलता और भद्रता की गहरी छाप मेरे हृदय मे अकित है।

सादडी सम्मेलन के अनन्तर आपका और उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी म का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ। जब सोजत सम्मेलन के अवसर पर हम सब एकत्र हुए तो मैंने उपाचार्यजी म से पूछा 'उपाध्यायजी कैसे रहे ? तब प्रसन्न मुखमुद्रा मे उन्होने बतलाया 'चेले की तरह रहे ! खूब प्रेमभाव रक्खा।

उपाध्यायजी से भी यही प्रश्न किया तो वे बोले 'बहुत ही स्नेह रहा। जैसे दिवाकरजी म प्रेम रखते थे वैसा ही प्रेम उपाचार्यजी म का रहा। इससे स्वर्गस्थ महात्मा की उदारता का अनुमान लगाया जा सकता है।

भीनासर सम्मेलन मे हमारा अन्तिम बार सम्मिलन हुआ वहाँ भी गहरा प्रेमसम्बन्ध रहा।

आप उच्च कोटि के विद्वान और उच्च पदवी के धारक होकर भी अत्यन्त विनयवान थे यद्यपि मेरी दीक्षा उनसे कुछ ही अधिक दिनो की थी तथापि जब मैं मिला तभी वे भाव भक्तिसहित वन्दना करते थे और बहुमान प्रदर्शित करते थे। बडे गुरुश्री जवाहरलालजी म की शिक्षा थी कि कोई मुनिवर दीक्षा में छोटा हो किन्तु पदवीधर हो तो उसका अवश्य विनय करो। इस शिक्षा के अनुसार मैं भी उनका बहुत आदर करता था।

आप अन्तिम समय चार वर्ष उदयपुर मे विराजे। इस अन्तराल मे स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार बराबर आते-जाते रहे। तबीयत अधिक खराब होने के समाचार मिले तो यहा विराजित ठाणा 19 की ओर से खमतखामणा लिखाई गई सघ ने तार भी दिया। सेठ नोरतनमलजी कोठारी सेठ सरूपचन्दजी तलेडा देवराजजी सुराणा यहा दर्शन करके उदयपुर दर्शनार्थ जाने लगे तब सुख साता पुछवाई गई।

उसके कुछ ही दिन बाद उदयपुर से सथारे का तार और पत्र भी आया। आपका स्वर्गवास होने पर यहा अनेक मुनिराजों ने चोला तेला बेला और उपवास किये। स्व श्री सोहनलालजी श्री चादमलजी म आदि मुनिराजों ने आपके अवसान का समाचार सुनकर बहुत अफसोस प्रगट किया। पूज्यश्री के निधन से स्था समाज में एक महान् आदर्श एव तेजस्वी सन्त की क्षति हो गई। हार्दिक कामना है कि स्वर्गस्थ आत्मा को अखण्ड शाति प्राप्त हो।

उनका तप, तेज, ज्ञान, वैराग्य समाज के लिए आदर्श

प रत्न श्री कन्हैयालालजी म सा

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा समाज के महान् सतों मे से एक थे। उस रत्न का हाथ

से लुट जाना यह समाज का महान् दुर्भाग्य है। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की सम्प्रदाय के आप भूतपूर्व आचार्य थे जिनका तप तेज ज्ञान वैराग्य समाज के लिए आदर्श था। उनके स्वर्गवास से हृदय को महान आचका लगता है।

आपके वहाँ विराजित पूज्य पण्डितरत्न श्री श्री 1008 श्री नानालालजी महाराज साहब आदि सर्व मुनिराजों को सात्वना विदित हो। पूज्यश्री हुक्मीचदजी म सा के महान् आचार को लक्ष्य मे लेकर उनकी सम्प्रदाय का गौरव कैसे बढे सघ और सगठन मजबूत बने व आचार की उन्नति हो इस दृष्टि को लक्ष्य मे लेकर पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के जितने भी मुनिगण हैं उनका एक वक्त एक जगह मिलना हो तो आशा है कि भविष्य के लिए कुछ उज्ज्वल मार्ग निकले ऐसी आशा रखते हैं।

पूज्यश्री गणेशलालजी आचार प्रिय थे

प रत्न श्री पारसमुनिजी म सा

आचार्यप्रवर पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा आचारप्रिय थे। आपश्री ने जैन-अजैन सिद्धान्तों का खूब अध्ययन किया था। आपश्री ने कई भाषाओ का भी अभ्यास किया था। शरीर आपका सम्पदायुक्त था। वाणी ओज माधुर्य आदि गुणसहित थी। आपश्री सग्रह-सम्पदा के भी धनी थे। चर्चाओ मे विजयश्री भी आपश्री को प्राप्त हुई थी।

अनेकगुणसम्पन्न प्रभावक सन्त होने के कारण आपश्री ने न केवल पूज्यश्री 1008 श्री हुक्मीचन्दजी म सा की अपनी सम्प्रदाय मे आचार्य पद प्राप्त किया वरन् सादड़ी साधु सम्मेलन मे बहु सम्प्रदायो से निर्मित श्रमण सघ मे भी आचार्य पद प्राप्त किया।

आपश्री के प्रथम दर्शन का लाभ छह चातुर्मास पूर्व गुलाबपुरा मे प्राप्त हुआ। दूसरी बार असाता वेदनीय का चिन्तनीय उदय हो जाने पर आपश्री के दर्शन उदयपुर म आकर किए। पश्चात् तीसरी बार और चौथी बार भी आपश्री के दर्शनो का लाभ उदयपुर में हमे प्राप्त हुआ। उस समय असाता वेदनीय मे भी वाचना देने एव चर्चा करने की सलग्नता समाधिभाव बनाये रखने की भावना एव भविष्य के लिए पडितमरण के मनोरथ-चिन्तन को देखकर एक और बड़ी प्रेरणा मिली। दूसरी ओर आपश्री द्वारा श्रमण सघ के लिए की गई व्यवस्था के स्वरूप को एव पदत्यागपूर्वक श्रमण सघ से अपने-आप को पृथक कर लेने के कारणो को साक्षात् समझने का अवसर भी प्राप्त हुआ। मुझे पूज्यश्री द्वारा की गई व्यवस्था न्यायसगत दिखाई दी एव पदत्यागपूर्वक पृथकता के कारण वास्तविक प्रतीत हुए।

वर्षो की प्रतीक्षा के पश्चात् शरीर की विषम स्थिति मे आपश्री ने अपने पश्चात् सघ के लिए योग्यतासम्पन्न मुनिश्री नानालालजी म को युवाचार्य पद प्रदान किया। जिसका बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म सा जैसो ने समर्थन किया है। सम्मति देने के क्षणों में मैं उनके चरणों म ही उपस्थित था। प्रथम समय मे सहज प्रकट किए गए सम्मति के विशिष्ट शब्दों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका। लिपिबद्ध करने के लिए दूसरे समय प्रकट किए गए शब्दों मे प्रयत्न करने पर भी वह विशिष्टता नहीं आ सकी।

इस बार पूज्यश्री के अन्तिम दर्शनो का प्रयत्न करने पर भी हमे लाभ नहीं मिल सका। नागौर से देवगढ सात दिनो मे लगभग 65 कोस पहुँचे। पहुँचने पर ज्योही सथारे के समाचार मिले वहाँ न ठहरते हुए आगे के लिए विहार कर दिया। किन्तु हम मार्ग में चलते ही रह गये और इधर पूज्यश्री काल कर गए। कुँआथल स्टेशन पर समाचार पाते ही हार्दिक खेद हुआ। अनन्तर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। दर्शनप्राप्ति में लगभग तीस कोस का अन्तर बाधक रह गया।

पूज्यश्री चैतन्य अवस्था मे स्वय सलेखनापूर्वक भत्त प्रत्याख्यान कर सके एवम् बहुत ही समाधिपूर्वक सथारा चला यह उनकी लघुभूत आत्मा को प्रकट करने वाला हमारे लिए स्पृहणीय दृष्टान्त है। पण्डितमरण विरल आत्मा को प्राप्त होता है। जिन्हे वह प्राप्त होता है वे ही चारित्र के आराधक बनते हैं। शासनदेव हमे भी ऐसे मरण को वरण करने का सौभाग्य दें।

हम कालधर्मप्राप्त आचार्यश्री के लिए शीघ्र ही मुक्तिलाभ की कामना करते हैं तथा वर्तमान आचार्यश्री द्वारा चतुर्विध श्रीसघ के रत्नत्रय की रक्षा एवम् वृद्धि की कामना करते हैं।

महान् ज्योतिर्धर

प रत्न श्री चम्पकमुनिजी म सा (बरवाला सम्प्रदाय)

आज नी सभा शाकसभा छै। खरे-खरे समाचार शोकजनकज छै। भारतवर्षनो तेजस्वी चमकतो तारलो अस्त थई गयो। जिनेश्वर रूप सूर्य गया बाद गणधरादि चद्रमा प्रकाश मा शासन चमकतूँ हतू। आज भारतवर्ष मा सूर्य-चन्द्र ना अभाव मा कई तारलाओ शासन नी शोभा मे वृद्धि करी रेया छै।

पूज्य उपाचार्यश्री तेमाना एक शासन-प्रभावक सम्यग्-ज्ञानवारिधि अने चारित्र मा चूडामणि समाहता। तेओश्री ना ज्ञानक्रिया नी प्रभा जैन जैनेतर पर पूरा प्रमाण मा पडती हती। दृष्टि तेओ नी सामे जताज मस्तक ने झुकवानु मन थयें जतू हतू।

जगत मा सर्वकार्य मा प्रथम श्रीगणेश ना पूजन थाय छै। अमारा आराध्य गुरुदेव आ गणेश पण सर्व ना हृदय मा प्रथम स्थान लेता हता। चारित्र प्रत्ये अनन्य प्रेम हतो। सयम माटे तो पोते सदा जाकरूकज रहता हता।

आपश्री नी हृदय नी विशालता सादडी सम्मेलन वक्ते हरेक मुनिवरो ए अनुमवी हर्ती। महान सन्मान नी त्याग करी सरलतापूर्ण जीवन बनावी 'सत पुरुषो वज्र समान कठोर होवा छता पुष्प समान कोमल होय छै। ए वाक्य ने सिद्ध करो बताव्यु अर्थात् सम्मेलन ने सफल बनावी दीघु। चारित्र मा पूरे पूरा कट्टर होवा छता सघ ऐक्य नी खातर तेओश्री ए सर्व मुनिवरो साथे प्रेममय वातावरण बनावी लीधु, अने तेथ सर्व मुनिवरों ए पण पोताना हृदयना सिहासन ऊपर आपश्री ने वेसाडी दीघा। अने तेओ श्री एकज सम्प्रदाय ना मटी आखा भारतवर्ष ना बनी गया। सादड़ी सम्मेलन नू अे अपूर्व दृश्य नयनोथी अदृश्य थतु नर्थी। पचायती नोहरा माथि सर्व मुनिवरों गुरुकुल मा जवा निकले छै बे बाजू श्रावक श्राविकाओ नी लाइन लागी छै। आगले आपणा श्रीगणेश अने पाच्छाल मुनिवरों नो समूह। अे शास्त्र मा श्री सुधर्मा स्वामी 500 शिष्य सह पधारिया नूँ अपूर्व दृश्य दृष्टिगोचर थतू हतू, ते आज पण तरवरे छै।

बाल्यवयनी दीक्षा अने पूज्य जवाहरलालजी म सा जेवा गुरुदेव ना सान्निध्य मा विनयपूर्वक रहीं। शास्त्रो नू विशाल अध्ययन कर्यु। अने ध्यानाधि योगे मन्थन करी मेलवेल तत्त्व वितरण करवा प्राय हरेक प्रदेश मा विचरण कुर्यु छै। पूज्य गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म सा नी साथे पधारी अमारा गुर्जर देशने पण अमृतमय वाणी थी पावन करेल छै। जे फूल खिले छै ते सर्व ने फरमावा नु सरजए सूझ होय छै। तेम जे-जे मानवी के प्राणी जनमें छै ते सर्व ने जवानुज होय छै। युवानि चपल छै जीवन पाणी ना पर पोता जेवु चचल छै। विजली ना चमकारा जेटलाज समय मा सोय परोगी लेवा ना न्याये जे मानवी टूका आयुष्य मा आत्मसाधन साधी ले छै। तेज जीवन खरेखर धन्यवान ने पात्र छै। महापुरुषो कदी मरताज नथी। तेओं पोताना सद्गुण थी सदा जीवितज छै। आजे आपने शोक शब्द वापरता होई अे तो ते आपना स्वार्थ ने लीधेज छै। नमी राजरिषी इन्द्र महाराज ने फरमावे छै कि पशु, पक्षी के मानवी ए गम्भीर वड़ने नथी रोता पण कोई नू घर गयू, कोई नी छाया गई कोई नी बैठक गई। आप पोताना स्वार्थ ने ज रूअे छै। तेम आपने आपना तसरनो चमकतो तेजस्वी ताज गुमायु, तेनूँज आपण ने दुख छै। बाकी ते आत्मा तो आनन्दपूर्ण जीवन जीवी गया। मानव जीवन ने सार्थक करी गया। पोते आत्मसाधना नीं सफलता ना राह पर चढी अनेक आत्माओं ने अे राह ऊपर चढाव वानृ पुनीत कार्य करी गया। ऐटले तेओश्री माटे शोक ने स्थानज नथी। प्राण जाय पण प्रतिज्ञा न जाए ऐ रीते महान पदवी नों पोते सहर्ष त्याग करी दीधा। किन्तु

शासन मा शिथिलता ना द्वार समा माइक ने अपनाववा तैयार नज थया। आ तेओश्री नो भव्य आदर्श हतो। साथो-साथ पदवी छोडया बाद पण पोते केटला शात रया ? गमे तेवी तकोरें ने पण शान्त भावे सही लिधी प्रत्युत्तर बलवानी पण इच्छा करी नथी। आ हतु तेमनू गाम्भीर्य सागरवर गभीरा ना पद थी तेवो विभूषित बनी गया। जीवन ना छेल्ला छेडा सुधी समाज ने ऊँचो लाववानी हीज भावना राखी गया छे। तेओश्री ना सर्वगुणो ना वर्णन करवाने मारी शक्तिज नथी। मारा अनुभव मा जे काईं आयु तेमा थी यत्किचित केयू छे। समय पण वधारे थई गयो छे।

आसू ने दूर करो तेओश्री नो आदर्श ने याद करो अने जीवन मा वनवा कमर कसो। प्रभो स्वर्गगामी अे आत्मा ने चिरशान्ति अर्पो ऐ अभ्यर्थना।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

मुनिश्री शान्तिप्रियजी शास्त्री, प्रभाकर

जीवन वह पर्वतीय निर्झर है जो लघु किन्तु नित्य-निरन्तर प्रवहमान धारा मे उमड़ता हुआ किशोर बचपन और जवानी तक के भोलेपन मस्ती कार्यशीलता विवेक अनुशीलन एव अनुभव आदि आत्मा के समस्त स्वाभाविक गुणों के साथ कतिपय दोषो को समेट कर विस्तृत-विशाल फैलाव करता हुआ अथाह अनन्त की ओर उन्मुख होता है। वही जीवन है जो जीवन तट पर क्षीर-नीर न्याय से दोषों के भार से एव व्यर्थ के व्यामोह से स्वय को मुक्त करले। ग्रहण का नहीं त्याग का नाम जीवन है। उसी का नाम जीवन है जो शत शत आँधियो और झझावातो में भी अपने लक्ष्यबिन्दु की ओर अग्रसर रहे। सघर्ष मे लड़खड़ाने या पग-पग पर घुटने टेक कर दीन हीन कातर भयभरी आँखो से यश और प्रतिष्ठा की भीख माँगने वाला जीवन नहीं मृत्यु है। भीख से पेट भर सकता है सम्मान नहीं मिलता।

वह जीवन था या जादू, लेकिन उसमे वजहृदय भूमि मे प्रेमाकुर उगाने की महान शक्ति थी। आकर्पण महान आकर्पण। सैकड़ो नही सहस्रों वर्षों तक हमारी भावी सन्तति को उस जाज्वल्यमान दीप-स्तम्भ से मार्गदर्शन मिलेगा। पगो की दृढता चेहरे का भोलापन और अन्तर्हृदय की गहन गम्भीरता उनके महान् व्यक्तित्व की परिचायक थी। उस नयनाभिराम के जिन जिन नयनकोरो ने दर्शन किये वे धन्य। जिस मस्तक ने चरण स्पर्श किया वह भी धन्य। उस तपपूत आध्यात्मिक युगपुरुष की बीकानेर-भीनासर वृहद् सम्मेलन में मेरे

आँखों-देखी जीवन-झाकी सदा-सदा को स्मृति-पटल पर अकित रहेगी। वह कुछ भी थे लेकिन समाज के आकर्षण का केन्द्र थे। मालूम नहीं क्यो ?

मैं गुजर रहा था। सैकडो साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाएँ बैठी थी। मुझे कर-सकेत किया। मैं चरणों में जा बैठा और बैठा ही रहा। सबके सामने 'शान्ति मुनि ! मेरे पास बैठने को आपके पास समय ही नहीं बन पड़ता ? मैंने लजाकर सर नीचा कर लिया। वस्तुत मुझे विश्वास नहीं था कि मैं भी उनकी दृष्टि मे किसी गिनती मे होऊँगा। मेरा नाम भी स्मरण है ? मेरे नाम का कैसे मालूम हुआ उन्हें यह भी मेरे लिए आश्चर्य था। मधुर वर्षण के साथ फिर बोले 'समय बहुत भयकर आने वाला है। न कोई किसी की सुनेगा और न कोई किसी की मानेगा। सन्यासाश्रम और गृहस्थाश्रम दोनों टूटे तटो के महानद की तरह बहेगे। साधुता का वेश धारण कर रोटी खाने और विष-वमन करने वाले अधिक होगे। सदा सावधान रहो। मुह से अमृत लगे विष-कुम्भों से बचे। समाज के लिए वही दिन सौभाग्य का होगा जब उसे सच्चे और अच्छे रहबर मिलेंगे ? कैसा अमृत ? कितना अपनत्व और कितना समत्व ?

परोपकाराय फलन्ति वृक्षा ।
परोपकाराय सता विभूतय ।।

ऐसे ही व्याख्यान सभाभवन तथा इतर चर्चावार्त्ता में विचार-सम्पदा को उड़ेलते हुए मुखरित होते तो लगता मानो मधुर गर्जन के साथ सावन का मेघ उमड़ पड़ा है मरुभूमि को आप्लावित करने।

भीनासर सम्मेलन से पूर्व बीकानेर में एक दिन प्रात साथ-साथ जगल-दिशा को निकल पड़े। बीकानेर के ऊबड़-खाबड़ खड्डो मे निपट कर हम एक छोटी-सी टेकरी पर बैठ कर जल वगैरह बर्तने लगे। चैत्र-वैसाख की खुली ऋतु, भोर का मन्द-मधुर समीर, एकान्त सुनसान में निर्भय-निश्शक मनमयूर मचल उठे और देखते ही देखते मदीय अग्रज गुरभाई पंडितरत्न श्री सुशीलकुमारजी म यौगिक प्रक्रिया पर उतर आये। अभ्यास और रुचि के साथ योग पर पर्याप्त अधिकार है उनका। वह कहा करते हैं - 'योग भी चमत्कारों से भरा है और इसका धीत अन्त मे आध्यात्मिक महानद मे ही प्रविष्ट होता है। कुछ देर शीर्षासन कर सिद्ध मयूर आदि कितने ही योगासन लगा दिये। मैं भी मैदान में कूद पड़ा और आसन पै आसन जमाने लगा। मुझे देखकर एक-दो मुनि और आगे बढे तब हम सब समान थे। कौन विश्वास कर सकता है कि समस्त समाज की कमान सभालने वाली दिव्य विभूति भी बच्चों के खेल में भाग ले सकती है।

कहने लगे - 'साधुओ को यौगिक प्रक्रिया अवश्य करनी चाहिए। योग से शरीर शुद्ध रहता है। शारीरिक शुद्धि और बल ही हमारी मानसिक बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहायक होते हैं। बैठने वाले के लिए योगासन अनिवार्य है। प्राय हम तो सामाजिक परिस्थितियों मे उलझकर आध्यात्मिक ज्ञान तक ही रह गये हैं। न शरीर स्वस्थ है न मन। आज मुनिवर्ग अनेकानेक व्याधियों का शिकार बन चला है। फिर ऊपर की चादर नीचे बिछ गई और लगे हमारी ही तरह आसन जमाने। हम सब एक-दूसरे की ओर गद्गद झाक रहे थे और वह सम्राटो के सम्राट योग की कठिनतम प्रक्रियाओ में देह को दुहरा तिहरा उलटा पुलटा तोड़ते-मरोड़ते चले गये। बुद्धि मन और विचारो पर जितना अधिकार था उतना ही बल्कि उससे भी अधिक अधिकार देह आदि इन्द्रियो पर था। तमाम आसन उसी सहजता से कर गये जैसे एक बच्चा अथवा प्रतिदिन का अभ्यासी युवक अखाड़े मे अपनी समस्त कलाबाजिया दिखा डालता है। योग में ही उलझे हुए बोले 'समाज की चिन्ताएँ देह को गला देती हैं। कोई-न-कोई बीमारी घुन की तरह लग जाती है और शरीर खा डालती है। हमारी ही भूल है जो पक्षी की तरह बड़प्पन के मिथ्या व्यामोह जाल में सदा-सदा को फँसा डालते हैं। फिर पद्म सिद्ध शीर्ष सर्प आदि कितने ही आसन लगा डाले।

हम सब साथ-साथ आगे-पीछे चल रहे थे। रास्ते पर आगन्तुक दर्शनार्थियों के झुण्ड यत्र-तत्र उपाचार्यश्री के जयघोष से गगन गुजा देते। वन्दन-पाठ के साथ शत शत मस्तक एक साथ झुक जाते और मुझे कवि की वह उक्ति याद आ जाती-

फूल तो लाखो थे चमन में पर हमें तुम ही नजर आए

दार्शनिक की सूक्ष्मता सम्राट् की उदारता सैनिक की धैर्यता तपस्वी और योगी की पवित्रता आपको विरासत में मिली थी वह कट्टर परम्परावादी थे किन्तु वर्तमान की कभी उपेक्षा नहीं की। वास्तव में जिस प्रस्तुत विषय का भविष्य समुज्ज्वल हो उसे झुठलाया भी नहीं जाता। सत्य ही सिद्धान्त और सयम ही उनका जीवन था। अनाचार को आपने कभी आदर नहीं दिया। समाज ने आपको केवल न्यायरक्षा के लिए ही वरण किया था। जब जब भी अन्याय और अविवेक ने सर उठाया तब-तब वह उससे जूझे। शिथिलता को प्रश्रय देना आपने कभी सीखा ही नहीं था। व्यक्तिगत ममत्व और स्वार्थ के कारण भले किसी को शिकायत रही हो किन्तु वास्तव में आप सपूर्ण समाज के थे और सब के थे। इसलिए आज समस्त स्थानकवासी समाज में सदा-सदा खलने वाला अभाव चिंता का विषय बन चला है। उनके वे शब्द आज भी मुझे स्मरण हैं - 'शान्तिमुनिजी ! स्वय सभल कर चलो न कभी किसी पर विश्वास करो और न अविश्वास। जवान के सच्चे आँख के सुच्चे और लंगोट के पक्के रहो। इन्हीं शब्दों से मैंने अन्दाज लगाया था कि बड़े आदमी बहुत स्नेहशील और दयालु होते हैं।

सघर्ष से उन्हे सकोच नहीं था लेकिन वितण्डावाद से सदा परहेज करते थे। वास्तव में ससार के समस्त महारथी सिद्धान्तो के लिए लडे हैं सिद्धान्त ही उन का जीवन रहा है। सिद्धान्त ही हमारा आधार नींव और मूल है। सिद्धान्तो को त्याग कर हम जी नहीं सकते यही उनका विश्वास था। इसीलिए वह कोमल अतिकोमल होने पर भी वज्र- से कठोर बन जाते हैं। यही नहीं ससार के समस्त महापुरुष स्वभाव से ऐसे ही हुए हैं। उन्हीं के लिए 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' की यह उक्ति चरितार्थ होती है। दिवगत पवित्र आत्मा के पावन चरणो में अपनी भावभीनी श्रद्धा-सुमनाजलि समर्पण करता हूँ।

आकर्षक व्यक्तित्व

मुनिश्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री साहित्यरत्न

रात का प्रथम प्रहर समाप्त होने जा रहा था। एक सज्जन घबराते हुए आये और कुछ क्षण रुक कर बोले - मुनिजी ! मैं अभी रेडियो सुनकर आ रहा हूँ। उसमे समाचार है कि पूज्यश्री गणेशलालजी म का स्वर्गवास हो गया है। 'स्वर्गवास हो गया' - ये अत्यन्त कठोर व अप्रिय शब्द कर्ण श्रवण करना नहीं चाहते थे किन्तु उन्हे बालात् श्रवण करना पड़ा। वस्तुत काल का कराल आघात विकराल है। उसकी क्रूरता दुर्दान्त और दारुण है।

श्रद्धेय श्री गणेशलालजी म स्थानकवासी जैन समाज के मूर्धन्य मनीषी महाराज थे। मैं उन्हें कब से जानता हूँ, इस प्रश्न का उत्तर आज तक मेरे से नहीं बन पड़ा है। प्रश्न के साथ ही मेरी स्मृति अतीत के एक धूमिल पृष्ठ पर अगुली रख देती है। जिस पर न वर्ष की रेखाए हैं और न तिथियों के रग ही केवल परिस्थितियो का एक सुन्दर छायाचित्र उभर आता है।

मेरे सासारिक परिवार वाले श्री जवाहराचार्य और आपके श्रद्धालु श्रावक रहे हैं महीनों तक सासारिक प्रवृत्तियो से निवृत्ति ग्रहण कर सेवा का लाभ लेते रहे हैं। एक बार पितामह के साथ मैं भी प्रवचन मे गया था पर प्रवचन मे विलम्ब था। बालसुलभ चचल प्रकृति होने के कारण मैं आचार्यश्री के विराजने के उच्च प्रवचन पट्ट पर आसीन हो गया। इधर से आपश्री पधार गये और मुझे पट्ट पर बैठे हुए देखकर पितामह से कहा - यदि यह दीक्षा ले तो इनकारी न करना। पितामह ने आपश्री के आदेश-निर्देश को शिरोधार्य किया। उस दिन से आपश्री की मेरे पर असीम अनुकपा रही और जब-कभी भी किसी-न किसी से मेरे सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करते रहे।

मैंने महास्थविर श्रद्धेय श्री ताराचन्दजी म. व मन्त्री प प्रवर श्री पुष्करमुनिजी म के पास जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। दीक्षान्तर सर्वप्रथम आपके दर्शनो का सौभाग्य सादड़ी सन्त सम्मेलन मे सम्प्राप्त हुआ। उन मधुर सस्मरणो की वह रसधारा आज भी अन्तर्मानस को आप्लावित कर रही है। मेरा अनुमान है कि उस जगम तीर्थ के सभी यात्रियो को आनन्द का वैसा अनुभव सदा छकाये रहता था।

सादडी सोजत पुष्कर अजमेर और उदयपुर प्रभृति स्थलों मे जब-जब सन्निकट रहने का अवसर प्राप्त हुआ तब-तब मैं आपके महान् व्यक्तित्व के गभीर सरोवर मे उमडते हुए स्नेह-सलिल से कृत-कृत्य होकर लौटा। आपके व्यक्तित्व में कितना माधुर्य कितना उल्लास कितनी सरलता कितना स्नेह और कितना तेज है इसका अनुभव जैसा प्रथम बार मैंने किया, वैसा ही बार-बार मुझे हुआ। आपका ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व सूत्र सविता की रश्मियों के समान जिस वितान का निर्माण करता था उसका सस्पर्श शरद् ऋतु के उषाकालीन आतप के समान अतीव सुखकर प्रतीत होता था।

आपका जगमगाता जीवन सेवा का सतत स्रोत था क्रिया का शान्त और अथाह प्रवाह था निर्भयता का निकेतन था श्रद्धा का आश्रय था उदारता का निर्मल निर्झर था सादगी का सुन्दर सदन था स्नेह का सुहावना स्तम्भ था सरलता का सरोवर था पवित्रता का परिमल था और था 'सकल गुण वरेण्य पुण्य लावण्य राशि' आपकी प्रवचन शैली मधुर और आकर्षक थी। उसमें ओज था प्रवाह था और व्यावहारिकता की सरसता थी तथा जैन सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन था दया-दान के विरोधियो के सम्बन्ध मे आपके तर्क त्रिशूल हो उठे थे आपकी गभीर गर्जना से वे तिलमिला उठते थे। प्रभु-प्रार्थना आपका प्रिय विषय था। उस पर आपके प्रवचन बडे ही कमाल के होते थे। प्रवचनों के प्रारम्भ में आचार्य देवचन्द्र विनयचद्र और आनन्दघन के अध्यात्मरस से छलछलाते हुए पद्यो को श्रवण कर भावुक भक्त झूम उठते थे। गभीरता के वातावरण में भी हास्य के फूल खिलाने मे आप गजब के कलाकार थे।

आज आपका पार्थिव शरीर हमारे सामने नहीं है किन्तु जिसके लिए महाकवि भर्तृहरि ने कहा था कि 'नास्ति येषा यशःशरीरे जरामरणम् भयम्' के रूप में आज भी विद्यमान है। आपकी क्रिया निष्ठा की कीर्ति-कौमुदी आज भी जगमगा रही है। आपका प्रेरणाप्रद जीवन त्याग वैराग्य के महामार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है। स्नेह और सौजन्य के अवतार उस महासन्त के चरणारविन्दों में मैं श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूँ और मैं अपने स्नेही साथी, सन्त पडितप्रवरश्री नानालालजी आदि से प्रबल प्रेरणा करता हूँ कि वे श्रमण सघ में पुन पधारे और सगठन का सुहावना वातावरण निर्माण कर अपनी प्रकर्ष प्रतिमा का परिचय दें।

पूज्यश्रीजी के चरणो मे दो सुमन

प मुनिश्री भानुऋषिजी म 'जै सि आचार्य'

परम श्रद्धेय पूज्यश्री बहुत बड़े धार्मिक एव समाजसुधारक महान् सन्त थे। उन्होने जैन समाज की जीवन-भर सेवा की। समाज-उत्थान के लिए बडे-बडे कष्ट सहे। उनका जीवन त्यागमय एव तपस्यामय था। सस्कृत प्राकृत उर्दू फारसी मराठी हिन्दी राजस्थानी आदि सभी भाषाओ का अच्छा अध्ययन किया और जैनागम एव साहित्य के उच्च कोटि के विद्वान बन गय।

पूज्यश्रीजी आदि से सत्यप्रिय थे। सदा सत्य पर हिमालय की तरह अटल रहते थे। सत्य की रक्षा के लिए वे किसी की भी चिन्ता नहीं करते थे।

पूज्यश्रीजी बचपन से ही निडर थे। क्योकि वे ऐसा कोई कार्य ही नहीं करते थे जिससे उन्हें डरना पड़े। अपने कर्तव्य की रक्षा के लिए बड़ी से बडी मुसीबत सह लेने को तैयार रहते थे। अपने इसी गुण के कारण उनकी सारे ससार मे प्रतिष्ठा हुई और वे आचार्य कहलाये।

किसी भक्त ने पूछा - 'गुरुदेव ! आपको अपने जीवन में कौनसी वस्तु प्रिय है ?

पूज्यश्रीजी ने उत्तर दिया - अपना कर्तव्य। सचमुच पूज्यश्रीजी को अपने कर्तव्य का सदा ज्ञान रहता था। उन्होंने जीवन-भर अपने कर्तव्य का पालन किया। कभी कर्तव्यविमुख नहीं हुए।

इस लेखक को पूज्यश्रीजी की सेवा में रहने का अल्प लाभ अजमेर में मिला था। इसके पूर्व सम्मेलन सादड़ी (मारवाड़) ब्यावर आमेट लावा सरदारगढ सोजत सिटी बेगू आदि स्थानों पर भी दर्शनो का लाभ मिला। पूज्यश्री का हसमुख प्रतिमासम्पन्न चेहरा ललाट की चमक भव्य मूर्ति सचमुच कृष्ण कन्हैया के समान श्यामवर्ण वाला शरीर स्मरण करते ही साकार हो उठता है।

ऐसे पूज्यश्रीजी ने अपना सारा जीवन समाजसेवा में व्यतीत किया। अन्त मे पूज्यश्री का स्वास्थ्य बिगड़ता गया और जिस नगरी मे जन्म लिया था उसी उदयपुर नगरी में समाज के कर्णधार का स्वर्गवास हो गया।

पूज्यश्रीजी का विहार-क्षेत्र बहुत विशाल था। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी से जनता का कल्याण किया। इसी कारण वे देवता के समान पूजे जाते थे। ऐसे ही व्यक्ति महान् होते

हैं और युग-युग तक उनके गुणगान गाये जाते हैं। पूज्यश्री अपने समय की महान् आत्मा थे। वे आज भी भारत की जनता के हृदय-सम्राट हैं और भारत युग-युग तक उनका गुणगान करता रहेगा।

लेख को समाप्त करते हुए पूज्यश्रीजी के चरणों मे श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

वे हमारे महापुरुष थे

श्री हीरामुनिजी महाराज

परम श्रद्धेय महास्थविर श्री गणेशलालजी म का स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से बडा दु ख हुआ। उन दिवगत महापुरुष की जीवनचर्या का मैंने ध्यान किया उस निर्वाण ध्यान मे उनके आचार-पूत विचार-कण मेरे दिल की दीवारो पर क्रमश आने लगे। क्षणिक समय के लिए मेरे हृदय म वही स्थिरता आई जो गुरु-वियोग होने पर जयपुर में आई थी।

मैंने सादड़ी सम्मेलन में आपश्री के प्रथम बार दर्शन किये थे। सध्या वेला में आप प्रतिक्रमण पूर्व दस-पाच मिनट बरामदे में विराजते थे तब दर्शनार्थियों का ताता लग जाता था। वह सुरम्य सभा मुझे खूब याद आती रहती है। श्रमण सघ का निर्माण होने के पश्चात् सभी सन्त प्रतिक्रमण के लिए दीक्षा क्रम से वन्दन करते थे और क्रमश बैठ जाते थे। सादड़ी सत-सम्मेलन में सद्गुरुवरीय महास्थविर श्री ताराचदजी म दीक्षा मे बड़े थे। उन्हे वदन करते हुए आपने फरमाया था कि आज का कितना सुहावना दिन है कि सप्रदायवाद के कारण एक दूसरे को चाहते हुए भी मर्यादा के कारण वदन नहीं करते थे। मैंने गृहस्थाश्रम में आपश्री को वदन किया था और आज फिर इतने लम्बे समय के बाद वदना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

उस समय का स्नेह-सम्मेलन अपूर्व था। आपश्री के मुखमण्डल पर सदा प्रसन्नता बनी रहती थी। स्नेहसिक्त मधुर वाणी सर्वमुनिमुण्डल को प्रभावित करती थी। वस्तुत आपश्री का प्रभाव ही निराला था।

उसके पश्चात् फिर से मुझे सोजत पुष्कर अजमेर तथा उदयपुर म आपश्री की सेवा मे रहने का अवसर मिला। मुझे आपश्रीजी के प्रति अतीव निष्ठा थी श्रद्धा थी सेवा में रहने की अभिरुचि थी। आपश्री का दर्शनमात्र ही जीवन मे नवजागृति पैदा कर देता था। आपश्री का आचार विचार मुझे अतिप्रिय था और उससे भी बढ़कर था आपका स्नेह।

मैं समझता हूँ, सामाजिक वातावरण मे विषमता आने पर परिस्थितियो ने उन पुनीत महापुरुष के विचारो मे भारी सघर्ष पैदा किया। पारस्परिक विरोधी आदेश निर्देश प्रकट होने पर हमारी जैन जनता का मानस भी वडे दायरे मे विगड चुका था जिससे चन्द व्यक्तियों के विचारों मे आपके विचार वहुत कडक अनुभव हुए। मगर जव मैंने आपश्री के समीप रह कर देखा तो मुझे ठीक ढग से अनुभव हुआ कि आप के विचार जितने कडक थे उनसे वढ कर कोमल भी थे। महापुरुषो के ये स्वाभाविक लक्षण कहे गये हैं।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

वे हमारे समाज मे एक ही रीति एक ही आवाज कायम करना चाहते थे। यह उनकी वहुत पवित्र विचारधारा थी। इसलिए एक शास्ता और एक आचार्य के नेश्रयित शिष्य-परम्परा वने– इसके लिए आपश्री ने अपनी वुलन्द आवाज में वक्तव्य दिया था। मगर वडे खेद की वात है कि विचार-विनिमय म कोई निर्णय नहीं हो पाया।

आपश्री की विद्या-वाणी और वपु मे भारी आकर्षण था प्रभाव था तेज था। आपश्री सभा मे विराजते तव वह सिहगर्जना सुन कर पर पाखण्डियो का मद ओले की तरह गल जाया करता था और श्रद्धालुओ का मन-मयूर नाच उठता था। प्रवचन शैली वहुत सुन्दर थी। सरल तथा प्रभावक थी। शास्त्रीय वाचन आपका प्रमुख विषय था। गम्भीर तथा गूढार्थ को सरल वनाने की अनूठी कला थी। जव आप हेतु-दृष्टात तथा कथा फरमाते तव जनता की एकाग्रता और अधिक वढ जाती थी। पाच वर्ष पूर्व वडी सादडी का प्रसग है। शेष काल में उदयपुर से विहार कर आपश्री के दर्शनार्थ हम तीन सत पहुँचे थे। आपश्री ने हमारे साथ वहुत स्नेहपूर्वक व्यवहार किया। उस समय आपश्री जसमा सती की चौपाई फरमा रहे थे-

राजा आलोके परलोके मारए पति रे
प्रीते परिण्या चौही मारा प्राण
एना शत्रु नु हू कदी मुखडू जोती नथी रे।

यह पद्य फरमाते हुए आपश्री ने हाथों का अभिनय किया था कि श्रोता चकित हो गए और हसी के फव्वारे छूटने लगे। इसी प्रकार अजना सती का पुनीत चरित्र भी आपश्री अतीव रोचक ढग से फरमाया करते थे।

आपश्री का वह नश्वर शरीर भले ही वूढा हो गया था मगर मन वाणी और पुरुषार्थ से आप युवक प्रतीत होते थे।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलित शिर।

उत्तरदायित्व आपश्री जैसे महापुरुष के कन्धो पर ही रहेगा और हम श्रमण वर्ग यानी इस सघ का प्रत्येक सदस्य आपश्री का सहायक बनकर सघ शोभा के चार चाद लगायेगे। श्रमण वर्ग के इस अनुरोध को मान देकर श्रमण सघ के कार्य-सचालन की सम्पूर्ण सत्ता के साथ आप उपाचार्य पद पर विभूषित हुए थे।

मानव-जीवन कुशा की नोक पर रखी हुई ओस की बूद के समान है जो क्षण भर में अपने अस्तित्व से रहित हो जाती है। ऐसा जानकर जनजीवन के हृदय सम्राट् ने अपनी काया के मोह को भी त्याग दिया। असह्य वेदना को कितनी दृढता और धैर्य के साथ सहन किया ! कभी मुख पर म्लानता नहीं आई कभी जिह्वा से सिसकिया नहीं सुनाई। उनकी कष्टसहिष्णुता को देखकर चिकित्सक वर्ग भी आश्चर्यचकित होकर कहा करता था कि हजार बिच्छुओ का डक एक साथ लगे ऐसी अक्षप्त वेदना के समय में भी आप वीरभट्ट की भाति जागरूक बनकर रहते थे। इसे कहते हैं अनुपम सहनशीलता।

अन्तिम समय में आपके मुखमण्डल की आभा देदीप्यमान हो उठी आप पूर्णतया स्वस्थ प्रतीत होने लगे। जैन सिद्धान्त के अनुसार पालथी आसन लगाकर अपने पर लगे दोषों की आलोचना करके नये दीक्षात बनकर मन वचन और काया से प्राणीमात्र के साथ मैत्री भावना को प्रकट करते हुए 'खामेमि सव्वे जीवा' के पाठ का उच्चारण करके सथारा ग्रहण किया।

इस प्रकार लगभग 29 घटा के सथारे के साथ अमरलोक की ओर प्रयाण किया यानी पण्डितमरण को प्राप्त हुए। आपश्री ने जैन सस्कृति की रक्षा के लिए और अपने अनुयायियों के हित की तीव्र भावना से प्रेरित होकर भारतभूषण प्रकाड पडितरत्न श्री नानालालजी म. सा रूपी मणी को आचार्य पदरूपी स्वर्ण में अकित करके एक दक्ष जौहरी का परिचय दिया है। इन महान योगीराज वर्तमान सन्तशिरोमणि आचार्य को प्राप्त करके चतुर्विध सघ अपने-आप को धन्य मानता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री की आत्मा के प्रति मैं क्या मगलकामना करू उनका महान उत्कृष्ट जीवन ही मगलमय है जिसके लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रीमद्भगवती सूत्र में श्रीमुख स फरमाया है

आयरिया उवज्झाएण भते ! सविसय सिगण
अगिलए सागण्हमाणे
अगिलाए उवगिण्ह माणे कतिहि भवग गणेहि
सिज्झति जाव अत
करेति ! गोयमा ! अत्थे गतिए तेणेव भवग्गहणेण
सिज्झति अत्थे गतिए

दोच्चेण भवग्गहणेण सिज्झति तच्च पुण
भवग्गहण गातिक्क मति

(भगवती श 5 उ 6 सू 211)

शुद्ध भावना से गच्छ की सार-समार करन वाला आचार्य तीसरे भव से अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है। इससे बढ़कर जीवन की सफलता के सम्बन्ध मे और कौनसा मगल प्रमाण हो सकता है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिन्होने दिवगत आत्मा के अन्तिम क्षणो में दर्शन किये। मेरे जैसी महाअभागी कौन होगी जो पिछले 9 साल तक परिस्थितिवश मेवाड़ की पुण्यभूमि मे विचरण करती रही केवल गत वर्ष ही गुरु-आज्ञा से मरुभूमि मे आना पडा।

आचार्यदेव ! आप भौतिक देह से भले ही आखा से ओझल हो गये हो किन्तु आपका यश रूपी शरीर अमरता को धारण किय हुए सदा के लिए मेरा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा और हम सब उस पथ पर आगे बढ कर आत्मकल्याण करे तब ही हमारा सही अर्थ मे श्रद्धा-अर्पण करना है।

महानात्मा के प्रति

महासतीश्री रोशनकँवरजी म सा

महात्माओं का जीवन जनसाधारण के लिए देन है। उनके जीवन से हमें ससार रुपी सागर से विमुक्त होने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही उच्च आत्मा जैनाचार्य पूज्यपाद चारित्रचूड़ामणि श्री गणेशलालजी महाराज हुए हैं जिनके जीवन पर मैं प्रकाश डाल रही हूँ।

दीनबन्धु, महान् त्यागी श्रद्धेय श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा का जन्म मेवाड के सुविख्यात नगर उदयपुर मे शुभ सम्वत् 1947 की श्रावण कृष्णा तृतीया को ओसवश के धर्मनिष्ठ श्री साहबलालजी मारू के घर हुआ। आपकी माता का नाम इन्द्रा था। मा बाप का दुलारा यही होनहार बालक हमारा हृदय सम्राट बन कर जैन धर्म का प्राण बना। छोटी ही उम्र में आपकी प्रतिभा जाग उठी। तीव्र बुद्धि के कारण ही आपमे 5 वर्ष की उम्र म ही विद्याध्ययन की उत्कृष्ट भावना जागरूक हो उठी। कुछ अवस्था आने पर आपका विवाह कर दिया गया। किन्तु आपकी रुचि ससार से अलग रहने की थी। हुआ भी ऐसा ही। छोटी उम्र मे उनके माता पिता व पत्नी का शरीरान्त हो गया। अब उन्हें योगी मार्ग अपनाने म असुविधा

नहीं हुई। 16 वर्ष की अवस्था ही मे आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी हार्दिक अभिलाषा पूर्ण हुई। साधना मार्ग में प्रविष्ट होने पर आप जिज्ञासु बन कर ज्ञानोपार्जन करते हुए सौराष्ट्र पधारे। आपने अनेक भाषाओ का अध्ययन किया। सस्कृत प्राकृत हिन्दी उर्दू, गुजराती मराठी आदि भाषाआ का अध्ययन कर पूर्ण शिक्षित बन कर जैन धर्म के व अन्य धर्मों के धर्मग्रन्थो का समुचित रूप से अध्ययन किया। तप और साधना आपके जीवन के प्रधा। अग थे। उग्र तपस्वी आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की पाट परपरा के अनुसार आपश्री ने ज्योतिपुञ्ज जैनाचार्य प्रखर विद्वान श्री जवाहरलालजी म सा के पश्चात् आचार्य पद को सुशोभित किया।

मैं अबोध आर्या उनके गुण रूपी महान् गौरव-गाथा का उल्लेख करने मे असमर्थ हूँ फिर भी भक्ति-वश कहती हूँ। आपकी व्याख्यान-शैली रोचक थी। आपके अमृतमयी उपदेश जनमानस को आकर्षित कर लेते थे। आप सरल और शान्त थे। आपका अनुशासन कठोर था नियम-उपनियम मे किंचित् भी त्रुटि सहन नहीं कर सकते थे तत्काल दण्ड प्रायश्चित्त देकर शुद्धि करवाते थे। स्वयम् भी नि सदेह आत्मशुद्धि करने मे सतत प्रयत्नशील थे। ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि आपका मुख्य लक्ष्य था। क्षमा से आपका जीवन ओत-प्रोत था। जैसे कहा भी है -- क्षमा वीरस्य भूषणम्। कैसी भी भीषण बाधाएँ आतीं उन्हे धैर्यपूर्वक सहन करने मे तत्पर थे। आपका महान् व्यक्तित्व अनेक चमत्कारो से भरा पडा है। जैसे-

आचार्य गणेश गुरु गुण ज्ञान गम्भीर थे।
शान्तचित्त क्षमा विभूषित नम्र सज्जन धीर थे।।

इधर वेदनीय कर्मोदय से आपके शरीर में Cancer (केन्सर) का रोग उत्पन्न हो गया। शरीर शिथिल होता गया। किन्तु शान्ति के साथ अपने कर्मों का कर्ज चुका रहे थे। इसी बीच मे भावी व्यवस्था के लिए चतुर्विध सघ ने भावभीनी प्रार्थना गुरुदेव के चरणों मे की कि प रत्न मुनिश्री नानालालजी म सा को आपश्री वरद हस्त द्वारा विधिवत् युवाचार्य पदवी प्रदान कर व्यवस्था को सम्पूर्णरूपेण दृढ बनाने की महती कृपा करे। पूज्यश्री ने प्रार्थनाओं पर ध्यान देकर प रत्न मुनिश्री नानालालजी म सा को श्रमण सस्कृति की सुव्यवस्था के लिए सघ-सचालन का कार्य सौंप दिया। आपश्री आत्मरमण मे विशेष तल्लीन रहते थे। आगमों का आदान-प्रदान करते हुए तप-सयम मे सजग रहते थे जैसे शास्त्र मे है-

जह दीवो दीव सीय पइप्पए जसो दीवो।
दीव समा आयरिया दीव्वति पर च दीवन्ति।।

अर्थात् आचार्य दीपक के समान होते हैं जैसे दीपक अनेक दीपकों को जलाता है और

स्वयम् भी प्रज्वलित होता है इसी तरह आचार्यदेव अपने ज्ञानादि गुणों से स्वय दीपते हैं और प्रवचनादि से दूसरो को दिपाते हैं।

श्रद्धेय गुरुदेव अन्तिम समय तक दीपते रहे हैं और शारीरिक भयकर पीडाओं को सरलता से धैर्यपूर्वक सहन करने मे समर्थ हुए। असह्य वेदना में भी आचार-विचार की महान् पराकाष्ठा जगमगा रही थी। 29 घण्टे के सथारे के साथ समाधिपूर्ण पण्डितमरण से स 2029 की माघ कृष्णा द्वितीया को 73 वर्ष की आयु मे स्वर्ग पधारे।

आज हमारे नेत्रों से उनका नश्वर शरीर ओझल हो गया है परतु ज्ञानादि गुणो की अलौकिक सौरभ से पूज्यश्री हमारे सन्निकट हैं। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि प्रभु हमे आपके सद्उपदेशों पर और नवीनाचार्यश्री के आदेशों पर चलने की शक्ति प्रदान करें। मनसा वाचा कर्मणा आपके निर्धारित मार्ग पर चलेगी तव ही हमारी श्रद्धाजलि सफल होगी।

साधना-पथ का समुज्ज्वल जीवन

महासती नानूकवर

चारित्रचूड़ामणि श्रद्धेय मज्जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी म सा इस प्रगतिशील युग के महान तत्त्ववेत्ता एव आध्यात्मिक सन्त थे।

आचार्यश्री का जन्म मेवाड़ भूमि मे हुआ था। आपको माता-पिता के द्वारा बाल्यावस्था में ही आध्यात्मिक सस्कार के अमृतमय रस का सिचन मिला था।

पूज्यश्री का जीवन सर्वांगीण था। क्षमाशील तथा कठोर तप एव सयमी जीवन वाले थे। आपके प्रवचन में कल्पनाशक्ति आदि सद्गुणों का माधुर्य था। शास्त्रों की टीकाओं का विवेचन सुन्दर ढग से फरमाते थे। ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि ही आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आप जब भी उपदेश फरमाते सहसा आपश्री के मुखारविन्द से अमृतमयी वाणी के स्रोत का उद्गम होता था।

कतिपय वर्षों से आपके शरीर में व्याधि ने घेरा डाल रखा था। धीरे-धीरे केन्सर व्याधि ने उग्र रूप धारण कर लिया। आप समभावपूर्वक सहन करते थे मुह से उफ तक नहीं निकला। चिकित्सक वर्ग को भी आश्चर्य हो रहा था। लेकिन आचार्यश्री आत्मजागरण में तल्लीन थे। उस तपोमयी शात मूर्ति के दर्शन कर हमारा हृदय आनन्दविभोर होकर खिल

उठा। अन्तिम समय मे शास्त्रीय आधार से चढते परिणामो से सलेखाना सथारा कर पडितमरण को प्राप्त हुए।

आचार्यश्री क्षणमगुर देह से हमारे समक्ष नहीं हैं परन्तु आपके आध्यात्मिक जीवन की स्वर्णमयी सौरम हमारे सन्निकट है। हम भी स्वर्गीय आचार्यश्री के साधना-पथ को अपनावे तब ही हमारा श्रद्धाजली देना सफल होगा।

आपश्री के उत्तराधिकारी श्रद्धेय परमप्रतापी आचार्यश्री नानालालजी म सा सूर्य की भाति सुशोभित हों यही मेरी हार्दिक मगलकामना है।

शिथिलाचार के कट्टर विरोधी

सेठ मनसाराम जैन जींद (पजाब)

आचार्यश्री के निधन से जो क्षति जैन ससार को पहुँची है वह महान है उसकी पूर्ति सम्भव प्रतीत नहीं होती। इस प्रसग पर हम हार्दिक वेदना प्रगट करते हैं और शासनदेव से आपश्री की आत्मशाति के लिये प्रार्थना करते हैं।

आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा-भक्तिरूप कुछ अर्पित करने की तो हममे सामर्थ्य ही कहा है। वे महान थे। साधुता के परम रसिया थे। तो भी चुप्पी तो नहीं साधी जा सकती।

महाराजश्री की सयम मे अटल श्रद्धा आगमो मे दृढ़ विश्वास परम्परागत धारणाओं में पूर्ण आस्था और अभावरहित प्ररूपणा हमें चिरस्मरणीय रहेगी। आप बड़े साहसिक थे। श्रीसघ सम्बन्धी साध्वाचार सबधी निर्णयो में बेजोड़ निर्भीकता से आगमसम्मत निर्णय दे डालते थे। आपको साधुता सयमाचार त्यागपूर्ण और निवृत्तिमूलक जीवन ही प्रिय था। शिथिलाचार के आप कट्टर विरोधी थे। मानव-जन्म सफल बनाना साधु-जीवन सार्थक बिताना आत्मज्योति को अधिकाधिक प्रकाशित करना ही आपश्री का ध्येय रहा है। आप जैन सस्कृति के भारी मर्मज्ञ थे उच्च कोटि के विद्वान थे। यह तो आप को परम्परागत पाट से ही उत्तराधिकार में मिली थी। उच्च कोटि के वक्ता स्फूर्ति उत्पादक लेखक शका सामाधान करने में प्रवीण थे आप।

व्याख्यान वाचस्पति श्री स्वामी मदनलालजी महाराज के कारण आपश्री की हम पर भारी कृपादृष्टि रहती रही है जिसके लिये हम आपश्री के परम आभारी रहेंगे। हम विशुद्ध जैन

सस्कृति मे विश्वास रखते हैं। जैनागमो मे पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आगमसम्मत धारणा प्ररूपणा श्रद्धान मे ही आस्था रखते हैं। आज के मनमाने अर्थ परमार्थ शिथिलाचार नये मोड़ दिये हुए आचार-विचार हमे अभीष्ट नहीं हैं। इन्हीं कारणों से आचार्यश्री के प्रति प्रगाढ श्रद्धा रखते रहे हैं। ठीक यही आशा हमे युवाचार्य म सा से भी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि युवाचार्यश्री जैन ससार मे आदर्श साध्वाचार की प्रतिष्ठा प्रसारित करने मे पूर्ण सफल होगे।

सच्ची श्रद्धाजली

हीरालाल नादेचा, खाचरोद

इस ससार मे अनन्त जीव जन्म लेते हैं और मरते हैं लेकिन उन्हीं महापुरुषों की चिरस्मृति रहती है जो अपने जीवनकाल मे कुछ आदर्श रख जाते हैं। पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब एक आदर्श साधु थे जो हमेशा हसमुख रहते थे और ज्ञान दर्शन चारित्र की तरफ लक्ष्य रखते हुए अपना शुद्ध सयम पालते थे। वे चाहते थे कि साधुमार्गी समाज की तरक्की हो। इसके लिए वे अपनी मर्यादा मे रहकर वक्त-वक्त पर सुझाव भी देते थे। लेकिन समाज उनके विचारानुसार अमल नहीं कर सका। यदि समाज उनकी आज्ञा का पालन करता तो स्थानकमार्गी समाज का एक आदर्श सगठन होता। खैर वे अपने विचार समाज को देते हुए अपनी आत्मसाधना में लीन रहे। महाराजश्री के अनुयायी उनके विचारों को अपनाएगे और सक्रिय कदम उठाने मे कसर नहीं रखेगे। यही महाराजश्री के प्रति श्रद्धाजली अर्पित है।

सच्ची श्रद्धाजलि

इन्द्रनाथ मोदी, जज हाईकोर्ट (राजस्थान) जोधपुर

पूज्यश्री के देहावसान की खबर सुनकर मुझे व यहाँ के सभी लोगों को अत्यधिक दुख पहुँचा है। महाराजश्री ने जैन धर्म की जो सेवा की है वह चिरस्मरणीय रहेगी। वे ज्ञान ध्यान शान्ति त्याग व समभाव के मूर्तरूप थे। उनके निधन से समूचे जैन समाज को ऐसी क्षति

पहुँची है जिसका निकट भविष्य में पूरा होना कठिन-सा प्रतीत होता है। वीर प्रभु से यही प्रार्थना है कि पूज्यश्री की आत्मा चिरशाति को प्राप्त हो।

सच्ची श्रद्धाजली

जवाहरलाल मूनोत, अमरावती

सारे जैन समाज और मुख्यतया स्थानकवासी जैन समाज के वर्तमान इतिहास में श्री गुरुदेव के कार्य और प्रतिभा का मूल्याकन तो भविष्य ही करेगा। शायद मैं इस का अधिकारी भी नहीं परन्तु उनके सम्पर्क और दर्शन से प्रेरणा पाने वाले साधारण श्रावक के नाते स्वय मेरा शोक उनके हजारों श्रावक-श्राविकाओं के शोक के साथ आज एकरस हो गया है।

इस शोकाकुल समय मे श्री गुरुदेव के प्रति सही श्रद्धाजली का प्रतीक भी यही होगा कि हम सब उन सब आदर्शों और विश्वासों के लिये जीयेगे जो श्री गुरुदेव को उनके इस जीव-योनि म सतोष और समाधान देते थे। इस अवसर पर मैं यह भी प्रार्थना दुहराता हूँ कि श्री गुरुदेव के उत्तराधिकारी व सभी अनुयायी श्रावक-श्राविकाए उस दिन को पास लाने के लिए कृत सकल्प रहे जब सारा स्थानकवासी समाज फिर से एक नेतृत्व और समाज कल्याण की दृढ-निश्चयी प्रतिज्ञा में अधिकाधिक समाजोपयोगी और आत्म-कल्याण के मार्ग प्रशस्त करेगा।

सच्ची श्रद्धाजली

आनन्दराज सुराणा, प्रधानमत्री, श्री अ भा स्था जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली

महातेजस्वी परमप्रतापी पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म.सा. तथा जैन समाज के ज्योतिपुञ्ज पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा का मैं एक विनम्र सेवक उपासक और भक्त रहा हूँ। पूज्य गणेशलालजी म.सा भी उन्हीं के आज्ञानुवर्ती आध्यात्मिक नेता और सयममूर्ति सत होने के कारण मैं उनका भी भक्त शिष्य कहलाने में गौरव अनुभव करता रहा हूँ। व्यक्तिगत रूप से

विचारभेद होने पर भी मैं उनकी सरलता सौम्यता और अहिसा सयम और तप की साधना के प्रति जागरूकता की ओर हमेशा आकृष्ट और प्रभावित रहा हूँ। श्रमण सघ के निर्माण मे उनकी त्यागवृत्ति और एकनिष्ठता देख कर मेरी आत्मा उनके चरणो मे सहज ही झुक जाती है। उनके निधन से मुझे कितना आघात पहुँचा है यह मैं स्वय ही जानता हूँ। वे श्रमण-शिरोमणी थे आध्यात्मिक थे और थे साधुत्व और जैनत्व के प्रखर प्रहरी। वे भौतिक शरीर से हमारे बीच नहीं होने पर भी अहिसा सयम और तप की सजीव मूर्ति होने के कारण आज भी हमारे बीच में ही हैं। उनकी पुण्यात्मा की अमर वाणी आज भी हमे मार्गदर्शन और सचेत करती रहेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। श्रमण सघ की एकता और अखण्डता के प्रति उनके हृदय मे जो अन्तर्भावना थी उसको फलीभूत करने में उनके हम जैसे अनुयायी सक्रिय कदम उठाने में कसर नहीं रखेगे यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजली होगी।

सच्ची श्रद्धाजली

शातिलाल व शेठ, सपादक, जैन प्रकाश, नई दिल्ली

पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म सा का भौतिक शरीर अब नहीं रहा है। लेकिन उन्होंने अहिसा सयम और तप की दीर्घकालीन जीवन-साधना की है। उनका गौरव-गरिमायुक्त यशशरीर आज हमारे समक्ष है।

पूज्य गणेशलालजी म सा न केवल जैन समाज के अपितु समस्त भारतवर्ष के तपपूत सत थे। एक दृष्टि से कहा जाय तो वे श्रमण सस्कृति के प्रतिनिधि सत थे। उन्होंने बहुत ही छोटी आयु मे भागवती दीक्षा अगीकार की और जीवन के अतिम क्षणा तक अहिंसा सयम और तप के परिपालन द्वारा अपनी जीवन साधना को सफलीभूत किया। स्व पू. आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा जैन समाज के ज्योतिपुज प्रकाशमान नक्षत्र थे। पूज्य जवाहरलालजी म सा ने धर्म की परम्परा की और समाज की रूढिगत भावनाओं को बदल कर धर्म की नई व्याख्या को उपस्थित किया और उनकी जैनत्व की नूतन विचारधारा ने सारे देश और समाज को प्रभावित किया।

आपश्री भी उसी प्रभावशाली प्रतापी पू. श्री की पाट परम्परा पर प्रतिष्ठित किए गये और उनके प्रतिनिधि बनकर समाज मे आचार और विचार की उदात्त परम्परा को निभाये रखने का महान प्रयत्न किया। आपमें विचार की उदारता और आचार की सुदृढता थी।

पूज्यश्री के निधन से भारत ने एक आध्यात्मिक सत और जैन समाज ने अपना आध्यात्मिक नेता गवा दिया है। समाज की जो क्षति हुई उसकी निकट भविष्य में पूर्ति होना समव नहीं है।

हम उनके अहिसा सयम और तप के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति विनम्र होकर श्रद्धाजली अर्पित करते हैं और आत्मा को शाश्वतिक शाति प्राप्त हो यह कामना करते हैं।

सच्ची श्रद्धाजली

मेहता कन्हैयालाल हिम्मतलाल, मदसौर

प्रात स्मरणीय परम श्रद्धेय चारित्रचूड़ामणि श्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा ज्ञान दर्शन चारित्र तथा तप के प्रकाशपुन्ज थे। आपका आत्मबल अद्वितीय था। आज जैन समाज को इस महापुरुष के नहीं होने से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असभव है। शासनदेव से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को शाति प्रदान करे व उनके द्वारा दिये गये उपदेशो का हम सब सहृदय पालन कर सके ऐसी शक्ति प्रदान करे। इस प्रकार हम श्री व स्था जैन सेवा सघ की ओर से हृदयसम्राट के प्रति अपनी श्रद्धा के पुष्प समर्पित करते हैं।

सच्ची श्रद्धाजली

प सूर्यभानु हारीत, अध्यापक श्री जैन पाठशाला, बीकानेर

श्रीमान् परम पूजनीय विद्वद्वर श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज बहुत ही तपस्वी महात्मा थे। उनकी वक्तृत्व कला अपूर्व थी। जिसे उन्होंने अपने गुरु महाराजश्री जवाहरलालजी से प्राप्त किया था। हम उनके गुणों का कहा तक वर्णन कर सकते हैं ? निम्नलिखित श्लोक ही उनकी प्रसशा के लिये उपयुक्त हो सकता है -

असित गिरि समस्यात्कज्जल सिन्धु पात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखिनी पत्रमुर्वि

लिखति यदि ग्रहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश पार न याति।।

महाराजश्री नानालालजी से भी हम इस विकट समय मे अधिक आशा रखते हैं।

सर्वे सन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु ख भाग्भवेत्।।

सच्ची श्रद्धाजली

जवाहरलाल लालचद मुथा, गुलेदगुड़

पूज्य गुरुदेव उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के स्वर्गवास का सामाचार रेडियो द्वारा सुनकर अत्यन्त दु ख हुआ। श्रीसघ मे भी शोक छा गया। आप एक महान विभूति थे। आप ज्ञानवृद्ध सरल प्रेममय थे। श्रमण सघ सम्बन्धी अपना कर्तव्य निष्पक्ष रूप से आपने बजाया। श्रमण सघ सगठन सुव्यवस्थित-सुदृढ बनाने के बारे मे आपके विचार सही थे। हम एक महान् सत को खो बैठे जिससे समाज में बडी क्षति हुई है। उसकी पूर्ति निकट भविष्य में असम्भव-सी है। अत मे श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ स्वर्गस्थ आत्मा को अक्षय शान्ति मिले ऐसी कामना करता हूँ।

सच्ची श्रद्धाजली

कन्हेयालाल मुलावत मत्री, साधुमार्गी जैन सघ, भीलवाड़ा

प्राय हमारी प्रवृत्ति-सी हो गई है कि महान आत्माओ के जीवनकाल म उनके महान व्यक्तित्व द्वारा सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र को उज्ज्वल व उन्नत बनाने हेतु आदेशित उपदेशा की हम उपेक्षा करते रहते हैं। यही नहीं प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विरोध करते हैं कपाय वृत्ति बढाकर घृणात्मक आलोचना करते हैं और जब वही महान् आत्मा स्वर्गारोहण कर जाती है तो हमें सद्‌बुद्धि आती है और उनके गुणानुवाद करते हैं।

पूज्यश्री के निधन से भारत ने एक आध्यात्मिक सत और जैन समाज ने अपना आध्यात्मिक नेता गवा दिया है। समाज की जो क्षति हुई उसकी निकट भविष्य मे पूर्ति होना सभव नहीं है।

हम उनके अहिसा सयम और तप के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति विनम्र होकर श्रद्धाजली अर्पित करते हैं और आत्मा को शाश्वतिक शाति प्राप्त हो यह कामना करते हैं।

सच्ची श्रद्धाजली

मेहता कन्हैयालाल हिम्मतलाल मदसौर

प्रात स्मरणीय परम श्रद्धेय चारित्रचूड़ामणि श्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा ज्ञान दर्शन चारित्र तथा तप के प्रकाशपुञ्ज थे। आपका आत्मबल अद्वितीय था। आज जैन समाज को इस महापुरुष के नहीं होने से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असभव है। शासनदेव से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को शाति प्रदान करें व उनके द्वारा दिये गये उपदेशों का हम सब सहृदय पालन कर सकें ऐसी शक्ति प्रदान करे। इस प्रकार हम श्री व स्था जैन सेवा सघ की ओर से हृदयसम्राट के प्रति अपनी श्रद्धा के पुष्प समर्पित करते हैं।

सच्ची श्रद्धाजली

प सूर्यभानु हारीत, अध्यापक श्री जैन पाठशाला बीकानेर

श्रीमान् परम पूजनीय विद्वद्वर श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज बहुत ही तपस्वी महात्मा थे। उनकी वक्तृत्व कला अपूर्व थी। जिसे उन्होने अपने गुरु महाराजश्री जवाहरलालजी से प्राप्त किया था। हम उनके गुणो का कहा तक वर्णन कर सकते हैं ? निम्नलिखित श्लोक ही उनकी प्रसशा के लिये उपयुक्त हो सकता है -

असित गिरि समस्यात्कज्जल सिन्धु पात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखिनी पत्रमूर्यि

लिखति यदि ग्रहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश पार न याति।।

महाराजश्री नानालालजी से भी हम इस विकट समय मे अधिक आशा रखते हैं।

सर्वे सन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुख भागभवेत्।।

सच्ची श्रद्धाजली

जवाहरलाल लालचद मुथा गुलेदगुड़

पूज्य गुरुदेव उपाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के स्वर्गवास का सामाचार रेडियो द्वारा सुनकर अत्यन्त दु ख हुआ। श्रीसघ मे भी शोक छा गया। आप एक महान विभूति थे। आप ज्ञानवृद्ध सरल प्रेममय थे। श्रमण सघ सम्बन्धी अपना कर्तव्य निष्पक्ष रूप से आपने बजाया। श्रमण सघ सगठन सुव्यवस्थित-सुदृढ बनाने के बारे मे आपके विचार सही थे। हम एक महान् सत को खो बैठे जिससे समाज मे बडी क्षति हुई है। उसकी पूर्ति निकट भविष्य मे असम्भव-सी है। अत में श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ स्वर्गस्थ आत्मा को अक्षय शान्ति मिले ऐसी कामना करता हूँ।

सच्ची श्रद्धाजली

कन्हैयालाल मुलावत मत्री साधुमार्गी जैन सघ भीलवाड़ा

प्राय हमारी प्रवृत्ति-सी हो गई है कि महान आत्माओं के जीवनकाल मे उनके महान व्यक्तित्व द्वारा सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र को उज्ज्वल व उन्नत बनाने हेतु आदेशित उपदेशों की हम उपेक्षा करते रहते हैं। यही नहीं प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विरोध करते हैं कषाय वृत्ति बढाकर घृणात्मक आलोचना करते हैं और जब वही महान् आत्मा स्वर्गारोहण कर जाती है तो हमें सद्बुद्धि आती है और उनके गुणानुवाद करते हैं।

इसको अज्ञानता कहें या और कुछ ! नि सदेह ऐसी दुष्प्रवृत्तियों से हमारे परिवार सघ ाष्ट्र का अध पतन हुआ है। यदि उनके जीवनकाल में ही निर्देशानुसार चलने की सद्‌बुद्धि मे आजावे तो कितना कल्याणप्रद हो सकता है– यही मननीय विषय है।

ठीक ऐसी कुप्रथा का दुष्परिणाम हमारा स्थानकवासी समाज भोग रहा है।

जैन सस्कृति के उन्नायक स्थानकवासी जैन जगत् के सम्राट परम श्रद्धेय स्वर्गीय ज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा के सर्वोच्च चारित्र विद्वत्ता दयालुता का आज ारत-भर का प्रत्येक वर्ग गुणगान कर महान शोक मना रहा है।

काश ! यह सद्‌बुद्धि हमे उनके जीवनकाल में आजाती तो आज जो दशा बनाई गई ह नहीं बनती।

शान्त क्राति के अग्रदूत श्रमण सस्कृति के रक्षक अहिसा सयम तप की साक्षात् मूर्ति वम् सुसगठन के प्रबल हिमायती श्रद्धेय आचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर यद्यपि आज नहीं फिर भी उनके प्रेरणात्मक सदेशों पर अमल कर हम अपना कल्याण कर सकते हैं और ही सच्ची श्रद्धाजली हो सकती है।

सच्ची श्रद्धाजली

ादमल नाहर, छोटी सादड़ी

परम प्रतापी पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज सा का स्वर्गवास होने की ाकाशवाणी द्वारा सूचना सुनते ही सारा समाज शोकातुर हो गया।

श्रद्धेय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहब अहिंसा सयम व तप की ाक्षात् मूर्ति एव एक महान आध्यात्मिक सत थे।

आपश्री का स्वर्गवास हो जाने से जैन समाज ने एक महापुरुष खो दिया है। पूज्यश्री ान सस्कृति के युगद्रष्टा एव युगस्रष्टा थे। आपश्री की निकट भविष्य में कमीपूर्ति होना ासभव है। मैं श्रद्धेय पूज्यश्री को अपनी हार्दिक श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ स्वर्गस्थ आत्मा ; लिये शाति की कामना करता हूँ।

सच्ची श्रद्धाजली

मनोहरलाल पोखरना, चित्तौडगढ (राजस्थान)

इस विश्व मे अनेक ऐसे त्यागी महापुरुष हुए हैं जिनके सच्चे परोपकारितापूर्ण कार्य स नाशवान सृष्टि के अज्ञान रूपी अन्धकार से पूर्ण पथ के लिए एक दिव्य प्रकाशमान और थरदीपक की भाँति मानव-जाति के लिए अत्यत प्रेरणात्मक रहे हैं। जिनके त्यागमय ाचरण और सचोट साधुवादिता और परोपकार की प्रवृत्ति व पूर्ण अविराम लगन ने जन-जन े मस्तिष्क मे धर्म भावना को जागरूक कर आत्मबोध के द्वारा आत्मकल्याण की ओर ले ाने मे आदर्श पथ-प्रदर्शन किया है। सच है महापुरुषो का जीवन प्रेरणा और मार्गदर्शन का ोत होता है। ऐसे दिव्य महापुरुषो में स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहव का र्वोत्कृष्ट स्थान रहेगा। उन्होने जीवनपर्यन्त समाज राष्ट्र और जनमानस के मस्तिष्क मे र्म-भावना को जागरूक करने का अथक प्रयास किया। 11 जनवरी की रात्रि को जब ाचार्यश्री के स्वर्गवास का सन्देश राष्ट्र भर मे पहुँचा तो शोक की लहर दौड गई। हमारा र्तव्य है कि हम पूज्यश्री की प्रेरणाओ और उनके महान् कार्यो को मूर्तरूप दिए जाने हेतु सघ' का सगठन सुदृढ़ कर उनकी स्मृति मे विशाल सामुदायिक योजनाए वनाए और उनके ति अपनी अनुपम श्रद्धाजली अर्पित करे। और प रत्न आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी हाराज साहव को स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की कल्पनाओ को मूर्तरूप देने मे पूर्ण सहयोग करे।

सच्ची श्रद्धाजली

मेहता वुधसिह वैद बीकानेर

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य गुरुदेवश्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहव के स्वर्गवास से केवल स्थानकवासी जैन समाज मे ही नहीं परन्तु तमाम जैन समाजा मे अथवा यों कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि तमाम मजहवो की समाजा में वड़ी क्षति पहुँची है जिसकी निकट भविष्य मे पूर्ति होनी कठिन है। उन महात्मा में अनन्त गुण थे जो मेरी एक

जिह्वा से क्या बल्कि अनेक जिह्वाओं से भी पूर्णतया वर्णित नहीं किये जा सकते। आचार्य महाराज की आठ सम्प्रदाय शास्त्र में चली हैं। वे प्राय उन महात्मा मे पाई जाती थी। इस समय उन महात्मा की तुलना रखने वाला मुझे तो पाया नहीं जाता। इस सम्बन्ध मे प्रात स्मरणीय श्रीमद् आचार्य गुरुदेव पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज जो प्रात स्मरणीय पूज्यश्री हुक्मीचदजी महाराज साहब के पचम पाट पर महाप्रतापी और प्रभावक आचार्य हो गये हैं उनकी दीर्घदृष्टि की प्रशसा किये बिना मेरी कलम नहीं रुकती। जब पूज्यश्री गणेशलालजी म सा ससार में बाल-अवस्था में ही थे उस समय पूज्य गुरुदेवश्री श्रीलालजी म.सा उदयुपर पधारे तब उन्होंने श्री सायबलालजी जो पूज्यश्री गणेशलालजी म सा के पिताश्री थे उनको फरमाया कि यह आपका बालक ससार में रहने वाला नहीं साधू होगा और जैन मार्ग को अच्छा दीपायगा। जब दीक्षा धारण करली तब पूज्य गुरुदेव श्री जवाहरलालजी म.सा को फरमाया 'जवाहरलालजी यह अपनी सम्प्रदाय मे बहुत योग्य साधू है इनको जितना पढाओगे उतना ही आपको आनन्ददायक होगा। तात्पर्य यह है कि उन महात्मा पुरुष की भविष्यवाणी पूर्णतया सफलता को प्राप्त हुई। पूज्यश्री गणेशलालजी म सा केवल अपनी सम्प्रदाय के साधुओं से ही नहीं परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधु-महात्माओं से भी जिनका आचार-विचार सुन्दर होता उन सब से पूर्ण प्रेम रखते थे।

पूज्यश्री पूर्ण वैरागी त्यागी और दृढ प्रतिज्ञा वाले थे। यहा तक कि जब-कभी अपना हस्तदीक्षित शिष्य भी अपने दोषों का प्रायश्चित्त लेने में इनकार हो जाता तो फौरन सम्भोग से अलग करने मे विलम्ब नहीं करते। उनका फरमाना रहता था कि मैं अच्छे चरित्र और विचार रखने वालों का साथी हूँ, चाहे मैं अकेला ही क्यो न रह जाऊं। उन महात्मा की मुझ पर भी परम कृपा थी। जब कभी मैं उन महात्मा का चरण भेटने को जाता तब बहुधा फरमाया करते थे कि किसी विषय में भी मेरी बाबत कोई सूचना हो तो करो किसी किस्म का सकोच न करना इत्यादि। अत मैं योग्य न होता हुआ भी उन महात्मा की कृपा का ऋणी हूँ और रहूँगा। पूज्यश्री की इस प्रकृति से स्पष्ट है कि वो महात्मा पूर्ण खटके वाले थे यानी मुझको अपनी गलती न मालूम पडती हो तो दूसरों के जरिये मालूम हो जाय। उन महात्मा के स्वर्गवास हो जाने से जितना अफसोस है उसके साथ प्रसन्नता भी है क्योंकि इन महात्मा का अपूर्व पडितमरण हुआ जिस अनुमान से पाया जाता है कि पूज्यश्री की आत्मा शीघ्र मोक्ष पहुँचने वाली है। अन्तिम वीर प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि स्वर्गवासी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले यानी मोक्ष प्राप्त होवे और उनके उत्तराधिकारी आचार्य नानालालजी महाराज में, जो महाप्रभाविक साधुओ में से हैं उनका पाट दीपाने की पूर्ण शक्ति पैदा हो। ॐ शान्ति शान्ति

सच्ची श्रद्धाजली

चम्पालाल कोचर, I A S , जिलाधीश, बीकानेर

आदरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज के स्वर्गवास से जैन समाज को भारी क्षति हुई है। यद्यपि मैं उनके निकट सम्पर्क में नहीं आ सका फिर भी उनके यशोगान को सुनने का काफी मौका मिला। उनके सौम्य स्वभाव व गुणो की बड़ी प्रशसा है। आशा है जैन समाज व अन्य श्रद्धालु सज्जन उनका यत्किञ्चित् अनुकरण करने का प्रयास करेगे।

सच्ची श्रद्धाजली

डाक्टर मेघराज शर्मा, एच एम वी रिटायर्ड ओनरेरी मजिस्ट्रेट बीकानेर (राजस्थान)

परम श्रद्धेय आचार्यवर श्री गणेशलालजी महाराज महातपस्वी त्यागमूर्ति सर्वगुणसम्पन्न थे आप दया-दान के प्रचारक थे। सस्कृत के प्रगाढ विद्वान सरल प्रकृति के श्रीगणेशमूर्ति थे। आपके प्रवचनों से श्रोतागण सुन्दर भाषण श्रवण करके मुग्ध हो जाते थे। आप जैन के अतिरिक्त अन्य समाज वाले सज्जनो को भी समदृष्टि से देखते थे। आपकी क्रियापालना बड़ी कठिन थी। आप उग्र विहार करते थे। शीतकाल और ग्रीष्मकाल मे भी ग्राम-ग्राम देश-देश में जो दया-धर्म का डका बजाया है वह प्रशसनीय है। मुझे भी आपके दर्शन तथा प्रवचनो से हार्दिक प्रेम था क्योकि मैंने रुग्णता के समय कई बार चिकित्सा करके औषधि आदि द्वारा सच्चे हृदय से सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया है।

इन श्री पूज्यवरजी की जितनी महिमा करें उतनी ही थोडी है। वास्तव मे आप उच्च कोटि के सद्बुद्धि के सागर विद्या के भडार धर्म के मर्मज्ञ परोपकारी सच्चा मार्ग दिखलाने वाले महापुरुष थे। आपके स्वर्गवास के समाचार सुनते ही मन मे बड़ी चिन्ता हुई। मैंने भी अपने औषधालय मे पाच मिनट तक मौन धारण करके श्रद्धाजली अर्पण की और उसी रोज बधी रखी और उपवास भी किया था। परमात्मा से मेरी यही नम्र प्रार्थना है कि उस आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

सच्ची श्रद्धाजली

मुन्नालाल लोढा 'मनन' वीर प्रिंटिग प्रेस, पाली

श्रीमान् जैनाचार्यश्री गणेशलालजी म सा के स्वर्गवास पर हम हार्दिक शोक प्रकट करते हैं। आप जैन ससार की एक महान विभूति त्याग-तपस्या-क्रिया-उपासना के अग्रदूत थे। शिथिलाचार के विषय मे तो आप कट्टर विरोधी थे जो समय पड़ने पर आपने बहुत बड़ी पदवी उपाचार्य पद छोडने म कोई परवा नहीं की और अपने कई शिष्यों का भी त्याग करने मे हिचकिचाहट नहीं की जो कि स्थानकवासी जैन मुनियो व समाज के सामने उपासक का एक आदर्श उपस्थित किया है। आपके स्वर्गवास से जैन समाज मे भारी कमी पडी है। हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करे और इस महान विभूति की समाज मे शीघ्र से शीघ्र पूर्ति हो यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है और इस शुभकामना के साथ हम श्रद्धाजली अर्पित करते हैं कि आचार्यश्री की ज्ञान ध्यान तथा आचार विचार की साधना सदैव हमारा मार्गदर्शन करती रहे।

सच्ची श्रद्धाजली

रामरतन कोचर, सदस्य अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी, बीकानेर

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी महाराज के निधन से जैन समाज की ही नहीं राष्ट्र की क्षति मानता हूँ। जब इस समय मे ससार हिंसा में लिप्त हो रहा है वह इस समय अहिंसा का सन्देश ग्राम ग्राम म फैला रहे थे। उन्होंने अपने गुरुवर आचार्यवर श्री जवाहरलालजी महाराज के चरणो मे रहकर जो प्राप्त किया उसी के द्वारा समाज और देश की सेवा की। पूज्यवर श्री जवाहरलालजी महाराज की याद को भुला तो नहीं सके लेकिन उनके द्वारा बतलाये हुए मार्ग पै अपन तपोबल द्वारा समाज और देश को पूर्ण सन्तोष दिलवाते रहे।

इन दोनो महापुरुषो को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यवर श्री गणेशलालजी की क्षति निकट में पूरी नहीं हो सकती। मैं अपनी श्रद्धाजली अर्पण करता हूँ।

सच्ची श्रद्धाजली

तोलाराम भूरा देशनोक

सन्त शिरोमणी जैन जगत् के भास्कर परम प्रतापी धर्माचार्य पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा के निधन से जैन जगत् को जो अपूरणीय क्षति हुई उसकी पूर्ति होनी निकट भविष्य में दुर्लभ है। आप महान् विभूति एव सरलता के प्रतीक थे। आपका विचार था कि पवित्र और निर्मल सयम-पालन ही साधु-जीवन का परम और चरम लक्ष्य होना चाहिए। आज उनका भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु उनका आदर्शमय जीवन हमारे सामने है। महापुरुष अपने आदर्श जीवन द्वारा ही अमर रहते हैं। हमे अगर उनके प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट करनी है तो उनके दिखाये मार्ग पर चलने की कोशिश करे। उनके दिखाये मार्ग पर चलना और उनके आदर्श का सम्मान करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा करना है।

सच्ची श्रद्धाजली

उगमराज मेहता जोधपुर

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा के स्वर्गवास का समाचार सुनकर आत्मा को वडा अधिक दुख पहुँचा। महात्माजी के त्याग-तपस्या और उनकी सेवा हमारे हृदय मे सदैव वनाई रखी गयी क्योंकि वे महान् आत्मा थे। उनकी तुलना करने के लिए इस ससार में कोई व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता है। परन्तु उनका दिया हुआ उपदेश हम लोगों को हमेशा मार्ग दिखलाता रहेगा।

मेरी वीतराग प्रभु से यह प्रार्थना है कि पूज्यश्री की आत्मा को शाति प्रदान करें।

सच्ची श्रद्धाजली

प सुजानमल गोस्वामी, साहित्य सुधाकर मत्री,
श्री राजस्थान सस्कृत साहित्य सम्मेलन, बीकानेर

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय श्रद्धेयास्पद तपपुञ्ज योगीश्वर श्री गणेशलालजी महाराज भारत भूमि के एक सुप्रसिद्ध महात्मा थे। आपके पुनीत प्रवचनो को सुनने का मुझे भी कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके प्रवचनों में जादू का-सा असर था। आप दया धर्म के एकमात्र उपासक थे। जैन धर्म के तत्त्वों के ज्ञाता गण-मान्य विद्वान थे। आपकी भाषा सरल और भावपूर्ण थी। आपके ओजस्वी भाषण को सुनकर लोगों के हृदय में दया भाव का उद्रेक एव जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। यो तो बाईस सम्प्रदाय में अनेक विद्वान एव महात्मा हुए हैं किन्तु आप विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। आपकी स्मृति सदा हृदय में बनी रहती है। जब आपके निधन का सवाद सुना तो जनसमुदाय का हृदय दुःख से भर गया। भगवान् आपकी दिवगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करे यही मेरी कामना है। श्री राजस्थान सस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से हिन्दी विश्वभारती बीकानेर में सस्कृत के विद्वानों की सभा हुई उसमें समस्त विद्वानो ने आपको श्रद्धाजली समर्पित की। नागरी भडार के सदस्य भी उसी सभा मे सम्मिलित थे-

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा
नास्ति येषा यशःकाये जरा-मरणज भयम्

यद्यपि आप इस समय हम लोगों के साथ नहीं हैं किन्तु आपकी यशरूपी काया सदा ही अमर है और रहेगी।

सच्ची श्रद्धाजली

मानिकचद सुराना, सदस्य राजस्थान विधानसभा, बीकानेर

आचार्यश्री गणेशलालजी जैन समाज व भारत की सास्कृतिक परम्परा मे हमेशा अमर

रहेगे। उन्होने अपनी सेवाओ से धर्म का प्रसार किया व समाज को ऊँचा उठाया। उनका सदेश हमे अभी भी प्रेरणा देता है कि हम त्याग के रास्ते पर चलें। आचार्यश्री गणेशलालजी भारतवर्ष के इने-गिने व्यक्तियो मे एक थे। ऐसे महान व्यक्तियो के स्मरण से भी मनुष्य ऊँचा उठता है।

सच्ची श्रद्धाजली

उत्तमचदजी लुकड, पाली-मारवाड

आचार्यश्रीजी म सरल शान्तस्वभावी गभीर व निर्भीक सन्त थे। तप सयम चारित्रपालन करने में आपका हृदय भी अधिक कठोर था। वहीं दूसरी तरफ आपका दिल सन्तो व श्रावको के प्रति कमल से अधिक नरम था। आचार्यश्री का हसमुख चेहरा देखते व दर्शन करते ही कोई भी मनुष्य कितना ही दु ख मे क्यो न हो एक बार उसे शाति का अनुभव हो ही जाता था। यह आचार्यश्रीजी म के तप-सयम का ही प्रभाव था। आचार्यश्रीजी म की सबसे पहले मैंने सवत् 1976 (चींचवड-पूना) के चातुर्मास मे चार महीने सेवा की थी। तब से लगाकर आज तक आचार्यश्री के प्रति मेरा हार्दिक धर्मप्रेम रहा है। प्रत्येक मनुष्य ससार मे आता है और चला जाता है। परतु जीवन उसी का सार्थक बनता है जो अपने व दूसरा के लिए भी कठिनाइयाँ सहन कर अपने जीवन को आदर्शमय बनावे। आचार्यश्री ने भी अपने जीवन मे खुद की आत्मा को उज्ज्वल बनाते हुए जैन समाज की ही नही बल्कि सब समाजो को धर्म पर आरूढ रखने की कोशिश की व लाखो मनुष्यो को भगवान् की वाणी सुनाकर धर्ममार्ग पर लाये–ऐसे सन्ता का स्वर्गवास होना स्थानकवासी समाज के लिए ही नहीं वरन् सारे जैन समाज के लिए दु ख की बात है। आचार्यश्री म की आत्मा को पूर्ण रूप से शान्ति मिले यही मेरी मनोकामना है और हम सब आचार्यश्री द्वारा बताय हुए मार्ग पर चलेगे यही सबसे बड़ी आचार्यश्रीजी म के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि है।

सच्ची श्रद्धाजली

श्रीमत् परमहस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हिज होलीनेस श्री 108 पूज्यपाद स्वामीजी श्री सोमेश्वरानन्द भारतीजी महाराज अधिष्ठाता, श्री धनीनाथगिरिजी का पचमदिर, बीकानेर

जो अपना देव-दुर्लभ जीवन उत्कृष्ट भावो के प्रचार में ही अर्पित कर एक श्रेष्ठ समाज के श्रद्धाजन रहे उन महान जैनाचार्यश्री गणेशलालजी का भिन्न रूप से व्यक्त किन्तु तत्त्वत आत्मा के रूप मे सदा अभिनन्दन किया और अव्यक्तावस्था में विश्वात्मा रूप में अभिनन्दन करता हूँ तथा उनके श्रद्धालु वर्ग के लिए भी सत्प्रज्ञा की शुभकामना करता हूँ।

अनभ्र वज्रपात

छगनलाल वैद अध्यक्ष, श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ

परम श्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के असामयिक निधन से स्थानकवासी समाज पर ही नहीं अपितु समस्त जैन समाज पर अनभ्र वज्रपात हुआ है। आज उनको खोकर सम्पूर्ण समाज अपने को एकाकी अनुभव कर रहा है।

आचार्यश्री तप सयम और त्याग की परम पावन त्रिवेणी थे जिसमें निमज्जन कर जनमानस अपने को धन्य समझते थे। उनकी वाणी से सत्य और अहिंसा की निर्मल स्रोतस्विनी निरन्तर प्रवाहित होती रहती थी। वे 'सम्यग् ज्ञान' 'सम्यग् दर्शन' और 'सम्यग्-चारित्र' की ज्वलन्त ज्योति थे तो शील और सदाचार के साकार रूप थे।

उनका आकर्षक व्यक्तित्व और ओजपूर्ण उपदेश जन जन को भावविभोर कर दे... उनकी कथनी और करनी में जो अद्भुत साम्य था वह इस नश्वर विश्व में विरल... संघर्ष उनका जीवन था और एकता उनका लक्ष्य। संगठन को दृढ बनाने के लिए... भगीरथ प्रयत्न किये। भौतिकता के घटाटोप अधकार में उनके आध्यात्मिक ज्ञान की... प्रकाश रेखा हमारे हृदयों को आलोकित किये हुए थी। वे संतों के आदर्श थे तो...

श्रद्धेय। कृत्रिमता से वे सदैव दूर रहते थे। उनकी इस शालीनता और सारल्य के समक्ष वडो बडो का मस्तक श्रद्धा से विनत हो जाता था।

मुझे उनके दर्शनो का सौभाग्य तीस वर्ष से प्राप्त होता रहता है। इसी दीर्घ अवधि की स्मृतिया जव मेरे मानसपटल पर उभरती हैं तो मन और मस्तिष्क पुलकित हो जाते हैं और उस प्रात स्मरणीय महात्मा का साकार स्वरूप प्रतिफलित हो उठता है। लगता है जेसे वे आज भी विद्यमान हैं और कर्त्तव्य-पथ का निर्देश कर रहे हैं। उनके अभाव में मेरा हृदय मर्मान्तक पीडा की अनुभूति कर रहा है। मैं स्वर्गस्थ आत्मा की चिर-शान्ति के लिए हार्दिक प्रार्थना करता हूँ और उस पवित्र मनीषी के प्रति श्रद्धापूर्वक श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

अडिग रक्षक

श्री कानमल नाहटा जोधपुर

युग युगान्तर मे भी मानव-मात्र सत्त-महात्माओ का सदा ऋणी रहा और रहेगा कि जिन्होंने अपने गहरे आध्यात्मिक ज्ञान तथा तप और त्याग से अनेक परीषह तथा परेशानियो का दृढतापूर्वक सामना करते हुए हिमालय की भाति अटल और अचल रहकर विश्व को सही सत्य और शाश्वत विचार प्रदान कर इस उक्ति को चरितार्थ किया कि अध्यात्म तर्क का विषय नहीं है। वह हृदय की ध्वनि है। अध्यात्म के पास हृदय होता है इसलिए वह विवादो को समेट लेता है।

कठोर तप और सयम के साधक सौम्यमूर्ति स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भी उनमे से एक थे। युवावस्था ही मे ससार की असारता का अनुभव कर विरक्त वन ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना करते हुए आपने यह सिद्ध किया कि 'सामर्थ्य का विकास साधना से होता है और साधना तप के विना नहीं होती। सतत साधना और कठिन परिश्रम से ही जीवन-निर्माण सभव है। पार्थिव रूप में तो वे आज हमारे समक्ष नहीं हैं मगर उनका अनुकरणीय चारित्र और अमर सदेश प्राणी-मात्र का मार्गदर्शन करता रहेगा।

स्वर्गीय आचार्यश्री के विशेष सम्पर्क मे मैं उस समय आया जवकि श्रमण सघ के सगठन की योजना वन रही थी। निस्सकोच मैं यह कह सकता हूँ कि उन्होने श्रमण सघ के सगठन हेतु अपने आचार्य पद तथा सम्प्रदाय का तनिक मात्र भी मोह न कर समाज के समक्ष एक अनूठा उदाहरण रखा। एक सच्चे प्रहरी की भाति समाज व सघ के आग्रह से श्रमण सघ

के सगठन की बागडोर समालते हुए वे आगे बढे। आपके मार्ग मे अनेक कठिनाइया आई मगर यथानाम तथागुण के अनुसार उनका सामना करते हुए अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते ही रहे। आपका यह लक्ष्य था– श्रमण सघ जो कि समाज की आधार भित्ति है उसमें शिथिलाचार का प्रवेश न हो तथा साधु और साध्वी अपनी साधु-समाचारी का पालन करते हुए अणगार धर्म के सही पालक बनें। अतिम समय तक आप इसके लिये प्रयत्नशील रहे।

एक ओर जबकि केसर जैसी भयकर बीमारी आपको घेरे थी और दूसरी ओर समाज में भी विचारों का सघर्ष चल रहा था उन क्षणो में भी निकट रह कर मैंने आपको अविचलित और अपनी साधना में सतत आगे बढते हुए ही पाया एव इस वातावरण का अतिम क्षणों मे भी आपकी साधना पर कोई असर अनुभव नहीं हुआ तथा आपके त्याग प्रत्याख्यान आलोचना सथारा एव साधु की अनेक क्रियाओ को सजग रहते हुए पूरी तरह से साधा एव समाधि तथा पडितमरण की प्राप्ति की। यह आपकी साधना की ही विशेषता थी।

आपका अतिम उपदेश जो कि अपने उत्तराधिकारियो को दिया बडा ही मार्मिक और आपकी उदारता का द्योतक था। आपने फरमाया कि आगमोक्त साधु समाचारी का कोई भी पोषक सत उसका पूर्णतया पालन करते हुए तुम से मिलना चाहे तो सहर्ष उसे अपने में सम्मिलित करना और तुम्हारे साधुओ में भी कहीं शिथिलता देखो तो उसे अविलम्ब दूर करने मे किसी प्रकार की कसर न रखना। इसी से तुम वीतराग मार्ग में उन्नति करते हुए आगे बढोगे और अपने ध्येय को प्राप्त करोगे। इस बात का भी विशष ध्यान रखना कि सिद्धान्तानुसार श्रमण सघ का सगठन बनता हो तो अपने को सदा आगे रखना।

दु ख है कि आज आचार्यश्री हमारे समक्ष नहीं हैं। मगर यह दृढ विश्वास है कि उनके उपदेश व आदेश का अनुकरण कर साधु व श्रावक समाज अवश्य ही सगठित एव सुखी बन सकता है। इसमे कोई शका नहीं और यही मेरी आचार्यश्री के प्रति सच्ची श्रद्धाजली है।

एक क्षति

बच्छराज सचेती सम्पादक जैन भारती कोलकाता

उदयपुर में दिनाक 11 जनवरी 63 को स्थानकवासी पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. के स्वर्गवास से जैन समाज की एक महान् क्षति हुई है। स्थानकवासी सम्प्रदाय की परम्परा

मे स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उत्तराधिकारी के रूप मे व स्थानकवासी श्रमण सघ के उपाचार्य के रूप में आपसे जैन समाज खास करके स्थानकवासी समाज को जो प्रेरणा प्रस्तुत होती रही है वह स्तुल्य और स्मरणीय है।

आपकी अनुपस्थिति मे आपके उत्तराधिकारी श्री नानालालजी महाराज आपकी तरह ही चतुर्विध सघ की प्रतिपालना करते रहेगे तथा जैन समाज की प्रगति और एकता विषयक तथ्यों को भी दृष्टि मे रखेंगे ऐसी आपसे अपेक्षा है। मैं इन शब्दो के साथ उस दिवगत महात्मा के मौलिक गुण और प्राकृतिक विशेषताओ के प्रति श्रद्धानत हूँ।

श्रमण सस्कृति के आधार स्तम्भ

प कृष्णचन्द्राचार्य, सम्पादक श्रमण', वाराणसी

साधु-शिरोमणि श्रमण सस्कृति के आधारस्तभ आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज का इसी 11 जनवरी 1963 को उदयपुर मे समाधिपूर्वक पडितमरण हुआ। आपका जन्म सवत् 1947 में उदयपुर मे ही हुआ था। पिताश्री का नाम श्री साहबलाल ओसवाल और माताश्री का नाम श्रीमती इन्दिराबाई था। युगप्रभावक जैनाचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के चरणों मे स 1962 मे 16 वर्ष की लघुवय मे ही दीक्षा लेकर वे साधु बन गए थे। बाद में आचार्य भी बने और कुल आयु 72 वर्ष की पाई।

आपका जीवन त्याग-वैराग्य के रग मे रगा हुआ था। भव्य भद्रात्मा थे। ज्ञान-चारित्र के आराधक-साधक थे। स्व-पर कल्याण के परम अभिलाषी थे। सारा जीवन इसी साधना म बीता। जीवन की कड़ी से कडी परीक्षाओं मे साधुभाव बनाए रखा। पाडित्य और ज्ञान की गहराई होने पर भी जीवन-भर जिज्ञासु और भावनाशील बने रहे। गुणियों को देखकर प्रमुदित होते और उनकी सराहना करते। जीवन मे सदा सावधान थे। चारित्र विशुद्ध और निष्कलक था। साधुत्व की साक्षात् मूर्ति थे। दूसरो से भी इन्हीं गुणों की अपेक्षा रखते थे। इसलिए कुछ कड़े गिने जाते थे। सभवत इसी कारण उन्हे कुछ लोग रूढिवादी तक कह डालते थे। उनके साधुत्व की यह पहचान थी कि किसी की परवाह न करते हुए चारित्रमार्ग का ही पक्ष लेते थे। श्रमण सस्कृति के परम प्रेमी और सच्चे प्रतिनिधि थे।

श्रमण सघ के निर्माण मे उनका बहुत बडा प्रेरक हाथ था। इसके लिए उनने अपने आचार्य पद तक का त्याग कर दिया था। श्रमण सघ के निर्माण से वे चाहते थे कि साधुमार्ग

की रक्षा व वृद्धि हो। उनके हृदय की इस भावना को सहयोगी साधुओ तक ने नहीं पहचाना वरना किसी तरह का विवाद ही खडा न होता। साधुसघ उनके निर्देशो पर चलता तो चारित्र-शुद्धि के साथ-साथ वह समुन्नत एव गौरवशाली बनता इसमें सदेह नहीं। खेद है साधुमार्गी होने का दावा रखते हुए स्थानकवासी समाज ने भी उन्हे नहीं पहचाना। समाज या कान्फरेस के कर्णधार अपना अन्तर्निरीक्षण करेगे तो उन्हे मालूम होगा कि स्थानकवासी जैन समाज का एकमात्र लक्ष्य ही सच्चा साधुमार्ग था। साधुओ की सख्या थोडी ही क्यों न हो कोई हानि नहीं। भगवान् महावीर ने अकेले ही रहकर साधुमार्ग का आचरण किया था। धर्मप्राण लोकाशाह का प्रयत्न भी लुप्त होते हुए साधुत्व को प्रकाश मे लाने का था। साधुओं का सप्रदाय या पथ चलाने का रचमात्र भी उनका भाव न था। उनसे प्रेरणा लेकर कुछ सच्चे साधु बने जिससे पुन साधुमार्ग की प्रतिष्ठा हुई। उन्हीं का अनुयायी स्थानकवासी जैन समाज यदि साधुमार्ग की वस्तुत प्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे पहले साधुओ की सख्या का मोह छोड़ना होगा। सारे भारत मे दस साधु भी सच्चे होंगे तो साधुमार्ग की कोई क्षति नहीं होगी। स्थानकवासी जैन समाज के गौरव मे भी कोई कमी नहीं आएगी।

जहा तक हम समझते हैं दिवगत आचार्यश्री साधुमार्ग की मर्यादाओ की पूरी रक्षा चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि इसी से साधुमार्ग का उद्धार व सुधार भी होगा। श्रमण सघ के निर्माण से उन्हे आशाएँ बधी थी। पर सप्रदाय एव समाज के मोह में पड़कर स्थानकवासी जैन समाज के कर्णधारों और स्वय साधुओ ने इस मूलभूत लक्ष्य को जब ओझल-सा कर दिया और उनकी एक नहीं सुनी तो उन्हे निराश हताश होना पड़ा। उनके पास कोई सैनिक शक्ति तो थी नहीं जिसके बल पर वे समाज को रास्ते पर ला सकते। अन्ततोगत्वा उन्हे साधु वृत्ति के अनुरूप अहिसक असहयोग का मार्ग अपनाना पड़ा। यह घटना स्थानकवासी समाज और श्रमण सघ दोनो के लिए दु ख और पश्चात्ताप की है। प्रायश्चित्त दोनों को करना है। तभी भूल का सुधार हो सकेगा। और साधुमार्ग का दावा रखनेवाला स्थानकवासी जैन समाज दिवगत आत्मा के प्रति तभी सच्ची श्रद्धाजली देने का अधिकारी बन सकेगा।

दूसरी ओर आचार्यश्री के उत्तराधिकारी शिष्यमडल और भक्तों की भी यह कड़ी कसौटी का क्षण है। जिस श्रमण सघ के निर्माण से वे साधुमार्ग की अपेक्षा रखते थे उसके लिए उन पर सबसे ज्यादा जिम्मेवारी आ गई। आचार्यश्री साधुमार्ग के सदेशवाहक थे इतने मात्र से वे अपने-आप मे फूल नहीं सकते। शरीर की असहाय अवस्था के कारण उनका जो अभीष्ट लक्ष्य अधूरा रह गया है उसे अब उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्यमडल और श्रद्धालु भक्तो को पूरा करना है। तभी वे उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्य कहला सकेंगे।

आचार्यश्री की हृदयगत भावनाओ को मूर्तरूप देने का अब यह एक ही उपाय है कि शुद्ध चारित्र और ज्ञान के आधार पर श्रमण सघ की रचना का फिर से दृढ निश्चय किया जाय। इसके लिए आचार्यश्री के श्रद्धालुओ और कॉन्फरेंस के कर्णधारों को एक बार फिर जी-जान से प्रयत्न करना होगा। और इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि श्रमण सघ मे वे साधु साध्वी ही सम्मिलित किये जाए जो साधुत्व की निश्चित मर्यादाओं पर चलने-चलाने को तैयार हो। तभी साधुत्व और साधुमार्ग की रक्षा हो सकेगी।

हम समझते हैं स्वर्गीय आत्मा के प्रति साधुओ और साधुमार्ग के भक्तो की यही सच्ची श्रद्धाजली होगी।

शान्त क्रान्ति के जन्मदाता

प लालचन्द मुणोत

इस अनादि-अनन्त ससार-रूपी उद्यान में अनेक पुष्प खिलते हैं और समय पर अथवा समय के पहिले ही मुरझा जाते हैं जिनमे बहुत-से अगणित पुष्प तो ऐसे होते हैं कि वे कब खिले और कब मुरझाये उनकी कोई कीमत नहीं लेकिन कुछ पुष्प ऐसे होते हैं जो विकसित होते ही अपने सुगधमय वातावरण से सोये प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित कर जाग्रत् कर देते हैं।

आचार्यप्रवर पूज्यश्री गणेशलालजी म सा ऐसी ही अहिंसा सयम और तप-रूप एक महान् विभूति थे जिन्होने ससार मे अवतरित होकर अनेको को जाग्रत् किया है। आपश्री श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के आधारमूत स्तम्भ थे मुमुक्षु आत्माओं में अध्यात्म-रूप प्रकाश करने वाले देदीप्यमान सूर्य-स्वरूप थे। आपश्री के सामने सिद्धान्त और चारित्र मुख्य था। अन्य सब-कुछ गौण।

आचार्यप्रवर ने जब यह देखा और अनुभव किया कि श्रमण समाज के कतिपय सदस्यों द्वारा शिथिलाचार को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रश्रय मिल रहा है तथा समय के प्रवाह में प्रवाहित होकर सन्तजन भी अपने लक्ष्य से विचलित होते चले जा रहे हैं तो आपश्रीजी ने अनन्त तीर्थंकरो से चली आई श्रमण सस्कृति की परम्परा को पवित्र एव अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए एक शान्त क्रान्तिकारी कदम उठाया और शिथिलता का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पोषण करने वालो के साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर नवनिर्मित [illegible] से पृथक हो गये। [illegible]

की रक्षा व वृद्धि हो। उनके हृदय की इस भावना को सहयोगी साधुओ तक ने नहीं पहचाना वरना किसी तरह का विवाद ही खड़ा न होता। साधुसघ उनके निर्देशों पर चलता तो चारित्र-शुद्धि के साथ-साथ वह समुन्नत एव गौरवशाली बनता इसमे सदेह नहीं। खेद है साधुमार्गी होने का दावा रखते हुए स्थानकवासी समाज ने भी उन्हे नहीं पहचाना। समाज या कान्फरेंस के कर्णधार अपना अन्तर्निरीक्षण करेगे तो उन्हे मालूम होगा कि स्थानकवासी जैन समाज का एकमात्र लक्ष्य ही सच्चा साधुमार्ग था। साधुओ की सख्या थोड़ी ही क्यो न हो कोई हानि नहीं। भगवान् महावीर ने अकेले ही रहकर साधुमार्ग का आचरण किया था। धर्मप्राण लोकाशाह का प्रयत्न भी लुप्त होते हुए साधुत्व को प्रकाश मे लाने का था। साधुओं का सप्रदाय या पथ चलाने का रचमात्र भी उनका भाव न था। उनसे प्रेरणा लेकर कुछ सच्चे साधु बने जिससे पुन साधुमार्ग की प्रतिष्ठा हुई। उन्हीं का अनुयायी स्थानकवासी जैन समाज यदि साधुमार्ग की वस्तुत प्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे पहले साधुओ की सख्या का मोह छोड़ना होगा। सारे भारत मे दस साधु भी सच्चे होगे तो साधुमार्ग की कोई क्षति नहीं होगी। स्थानकवासी जैन समाज के गौरव मे भी कोई कमी नहीं आएगी।

जहा तक हम समझते हैं दिवगत आचार्यश्री साधुमार्ग की मर्यादाओं की पूरी रक्षा चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि इसी से साधुमार्ग का उद्धार व सुधार भी होगा। श्रमण सघ के निर्माण से उन्हे आशाएँ बधी थी। पर सप्रदाय एव समाज के मोह मे पडकर स्थानकवासी जैन समाज के कर्णधारो और स्वय साधुओं ने इस मूलभूत लक्ष्य को जब ओझल सा कर दिया और उनकी एक नहीं सुनी तो उन्हें निराश-हताश होना पड़ा। उनके पास कोई सैनिक शक्ति तो थी नहीं जिसके बल पर वे समाज को रास्ते पर ला सकते। अन्ततोगत्वा उन्हें साधु वृत्ति के अनुरूप अहिंसक असहयोग का मार्ग अपनाना पड़ा। यह घटना स्थानकवासी समाज और श्रमण सघ दोनों के लिए दु ख और पश्चात्ताप की है। प्रायश्चित्त दोनो को करना है। तभी भूल का सुधार हो सकेगा। और साधुमार्ग का दावा रखनेवाला स्थानकवासी जैन समाज दिवगत आत्मा के प्रति तभी सच्ची श्रद्धाजली देने का अधिकारी बन सकेगा।

दूसरी ओर आचार्यश्री के उत्तराधिकारी शिष्यमडल और भक्तो की भी यह कडी कसौटी का क्षण है। जिस श्रमण सघ के निर्माण से वे साधुमार्ग की अपेक्षा रखते थे उसके लिए उन पर सबसे ज्यादा जिम्मेवारी आ गई। आचार्यश्री साधुमार्ग के सदेशवाहक थे इतने मात्र से वे अपने-आप में फूल नहीं सकते। शरीर की असहाय अवस्था के कारण उनका जो अभीष्ट लक्ष्य अधूरा रह गया है उसे अब उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्यमडल और श्रद्धालु भक्तों को पूरा करना है। तभी वे उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्य कहला सकेंगे।

(1) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशान्ति समवित्त है। इस आधार के बिना व्यक्ति समाज राष्ट्र एव विश्व की स्थायी शान्ति सम्भावित नहीं।

(2) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग विकास और शान्ति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिए सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।

(4) वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तो का जहा हनन हो परिवर्तन किया जाता हो समय के नाम से महाव्रतधारी मुनि जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति करते हों वहा किचिदपि सहयोग न दिया जाय।

(5) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरो के प्रति शुद्ध भक्ति रहे शिथिलाचार मुनि-जीवन तो दूर मानव जीवन के लिए भी कलक स्वरूप है। अत कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना न बचाव करना न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(6) शुद्ध आत्मीय समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्त करण मे सदा बना रहे एव तदनुरूप सम्यक ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन म उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(7) श्रमण वर्ग अपन लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभाति पालन करें और श्रावक के श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(8) श्रावक वर्ग भी अपने ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना मे उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरो से अपने-आप को दूर रखने मे तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने मे अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमण वर्ग की भूमिका का पूरा पूरा ज्ञान रखे। जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को अपने श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने मे तथा स्वय अपने श्रावकोचित कर्तव्यपालन करने मे भलीभाति सफल हो सके।

(9) निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता मे नहीं किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है। उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण चाहे अल्प सख्या मे भी क्यो न हो उन्हीं से श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सकता है। अत स्वगृहीत प्रतिज्ञाओं को भलीभाति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी म सा के इन उपर्युक्त आदेशों का हम यथास्थान सदा ध्यान रखेंगे। साथ ही आचार्यश्रीजी म ने चतुर्विध सघ की भावी सुव्यवस्था के लिए जि

लम्बे समय की प्रतीक्षा के उपरान्त भी जब स्थिति मे सुधार न देखा बल्कि सयम एव शास्त्र-विपरीत वातावरण ही विशेष रूप से सामने आया तो आपश्री ने शासन की सुव्यवस्था हेतु सुसगठन का मार्ग प्रशस्त रखकर चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था का सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व प रत्न मुनिश्री नानालालजी म के समर्थ कन्धो पर रखकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

आचार्यप्रवर का जन्म स 1947 की श्रावण कृष्णा 3 के दिन मेवाड की राजधानी उदयपुर मे हुआ था और लगभग 16 वर्ष की अवस्था में स 1962 की मार्गशीर्ष कृष्णा 2 को आचार्यप्रवर पूज्यश्री 1008 श्री जवाहरलालजी म सा के सान्निध्य मे आपश्री ने भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होकर लगभग 57 वर्ष प्रव्रज्या पाल 63वें वर्ष मे सथारा सलेखनापूर्वक स्वर्ग सिधारे। 57 वर्ष के घोर साधना-काल मे अनेक सकट उपस्थित हुए, लेकिन आपश्रीजी भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सच्चे मार्ग से विचलित न होते हुए शान्ति एव धैर्यपूर्वक साधना मे सलग्न रहे।

आचार्यप्रवर सिद्धान्त और चारित्र की सुरक्षापूर्वक सुसगठन के सदा हिमायती रहे। केवल नाम मात्र के थोथे सगठन को वे आत्मोत्कर्ष में बाधक समझते थे। यही कारण था कि आपश्री ने अपने साधनाकाल में आत्मोत्कर्ष मे बाधक आलोचनाओं पर तथा विरोधी कुकृत्यो पर कभी ध्यान न दिया। लेकिन सयमानुष्ठान मे तल्लीन रहकर आत्मोत्कर्ष मे सहायक श्रमण सस्कृति की सुरक्षा का सदा ध्यान रखा और आत्मसाक्षीपूर्वक ईमानदारी के साथ अबाध गति से आगे बढते ही रहे।

आचार्यश्रीजी म सा की सेवा मे रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्रीजी म जितने उदार एव क्षमा के सागर थे उस से कहीं अधिक सयम पालने व पलवाने मे कठोर भी थे। आपश्री की रग-रग मे सिद्धान्त और चारित्र की सुरक्षा समाई हुई थी। आपश्री का साधनाकाल इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था कि शारीरिक घोर वेदना के समय कभी मुह से उफ तक नहीं किया और अन्त समय में जब आपश्री ने यह देखा कि अब यह शरीर ज्ञान दर्शन चारित्र मे सहायक-रूप नहीं है तो आलोचनापूर्वक पूर्ण जागरूक अवस्था में सथारा पचखा। 29 घटे तक अलौकिक शान्ति एव आत्मचिन्तन में सथारा चला और अन्त मे जागरूक अवस्था में ही इस नश्वर शरीर को छोड दिनाक 11 1 63 को दिन के 3.21 बजे स्वर्ग सिधार गये।

आचार्यश्रीजी म का भौतिक शरीर अब हमारे सामने नहीं है परन्तु आध्यात्मिक शरीर अब भी हमारे सामने जगमगा रहा है। आपश्री के सम्यक आचार-विचार और उच्चार की प्रभा से हमारा मार्ग प्रकाशित है। आचार्यश्रीजी म ने चतुर्विध सघ को यह आदेश दिया था कि

(1) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशान्ति समवित है। इस आधार के विना व्यक्ति समाज राष्ट्र एव विश्व की स्थायी शान्ति सम्भावित नहीं।

(2) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग विकास और शान्ति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को लक्ष्यानुरुप शुद्ध रखने के लिए सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।

(4) वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तों का जहा हनन हो परिवर्तन किया जाता हो समय के नाम से महाव्रतधारी मुनि जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति करते हों वहा किचिदपि सहयोग न दिया जाय।

(5) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरो के प्रति शुद्ध भक्ति रहे शिथिलाचार मुनि-जीवन तो दूर मानव-जीवन के लिए भी कलक स्वरूप है। अत कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना न बचाव करना न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(6) शुद्ध आत्मीय समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्त करण मे सदा बना रहे एव तदनुरुप सम्यक ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन मे उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(7) श्रमण वर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभाति पालन करे और श्रावक के श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(8) श्रावक वर्ग भी अपने ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना मे उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरो से अपने-आप को दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमण वर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को अपने श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने मे तथा स्वय अपने श्रावकोचित कर्तव्यपालन करने मे भलीभाति सफल हो सके।

(9) निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता मे नहीं किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है। उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण चाहे अल्प सख्या मे भी क्यो न हो उन्हीं से श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सकता है। अत स्वगृहीत प्रतिज्ञाओ को भलीभाति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी म सा के इन उपर्युक्त आदेशों का हम यथास्थान सदा ध्यान रखेगे। साथ ही आचार्यश्रीजी म ने चतुर्विध सघ की भावी सुव्यवस्था क लिए जिन

प्रतिभासम्पन्न शान्त-दान्त-गाभीर्य आदि गुणो से सयुक्त चारित्रनिष्ठ परम श्रद्धेय प रत्न मुनिश्री नानालालजी म को अपना युवाचार्य (भावी आचार्य) नियुक्त किया उन वर्तमान आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा की आज्ञाओ का यथार्थ रूप से पालन करने कराने में तत्पर हैं और रहेगे। मैं स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धाजली अपर्ण करता हूँ।

श्रद्धा के समुन

सम्पतराज धाड़ीवाल

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म के सप्तम पट्टघर शान्तमूर्ति पूज्यश्री गणेशलालजी म सा एक विशुद्ध एव सात्त्विक सगठन को लक्ष्य मे रखकर श्रमण सघ के उपाचार्य बने। उनकी अभिलाषा अधूरी रही और लक्ष्य की पूर्ति हेतु भी अतराय कर्मोदय से मैं उन महापुरुष की सेवा से वचित रह गया।

वर्तमान आचार्यश्री दिवगत आत्मा की अभिलाषा को पूर्ण करने मे अग्रसर हों यही शुभ कामना।

महान कलाकार के प्रति श्रद्धाजली

श्रीमती नगीनादेवी चोरड़िया दिल्ली

जैनागम-रत्नाकर चारित्रचूड़ामणि श्री श्री 1008 प्रात स्मरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के स्वर्गवास का दुखद समाचार आकाशवाणी दिल्ली से सुनकर हृदय सन्न रह गया।

समस्त ससार एक गहन अवसाद मे डूब गया। चूकि भारत-भूमि से ससार का एक महान कलाकार विदा हो गया था। मानव सस्कृति का सुनियोजित रूप उस कलाकार मे प्रतिबिंबित था। भव्य प्राणियो के जीवन को सवार कर उनका अभ्युदय करने की उसमे अद्‌भुत क्षमता थी। जो भी उस महान कलाचार्य के सपर्क मे आया सदा सदा को उसकी

जीवन-यात्रा प्रशस्त हो गई। आध्यात्मिक कला की अनुपम ज्योति आज हमारे बीच नहीं है लेकिन उसकी शाश्वत आभा सदैव हमारे जीवन-पथ को आलोकिन करती रहेगी।

उस महान कलाकार के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजली तभी होगी जबकि हम सब आज निश्चय करे कि उनकी अहिंसा सयम व तप की मशाल को उसी सरगर्मी के साथ प्रज्वलित रखते हुए उनके बताये मार्ग पर सही रूप मे आचारण करेगे। ॐ शान्ति।

कर्मनिष्ठ महात्मा

श्री मोहननाथ मोदी, सेसन्स जज, उदयपुर

आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी महाराज साहब का भौतिक शरीर इस ससार मे नहीं रहा परन्तु उनका दिव्य सदेश उनकी शिष्य-परम्परा मे ही नहीं वरन् उन सभी के हृदयो में जो यदा-कदा उनके सम्पर्क मे आये व्याप रहा है।

आचार्यश्री महान योगी प्रखर विद्वान कर्मनिष्ठ महात्मा और चरित्रवान साधु थे। सम्प्रदाय से ऊचा उठकर मानवता का इतिहास लिखने वाला यदि कभी भी उनके सम्पर्क में आया होगा तो उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हे विस्मरण करने का साहस नहीं कर सकेगा। अपने असीम धैर्य अतुल शान्ति और विशाल दया की छाया से उन्होंने आने वाले जिज्ञासुओ को जो प्रेरणा दी मुझे विश्वास है वह सदैव उनको सत्यपथ पर अग्रसर करती रहेगी।

आचार्यश्री 'बहुजन हिताय' ही नहीं वरन् 'सवजन हिताय' के अखण्ड प्रेरणास्रोत थे। उनके निधन ने समाज मे जो क्षति पहुँचाई है वह कालान्तर में पूर्ण होनी सभव नहीं।

भगवान से प्रार्थना है कि आचार्यश्रीजी का जीवन-सदेश हम सबको कर्तव्य शान्ति और सयम का पाठ पढाता रहे।

क्षमा के सागर

श्री हिम्मतसिह सरूपरिया, सेल्स टैक्स ऑफिसर, श्रीगगानगर

वीर प्रसविनी मेदपाट भूमि की राजधानी उदयपुर में आज से 73 वर्ष पूर्व सवत् 1947 की श्रावण कृष्णा 3 को ओसवाल वश मे एक महान् विभूति का अविर्भाव हुआ जो आगे चलकर भारत मे जैन सस्कृति के जगमगाते सितारे श्री गणेशाचार्य के नाम से विख्यात हुए। आपश्री जब से युवाचार्य पद पर स्वर्गीय पूज्य जवाहराचार्य द्वारा स्थापित हुए तब ही से मैं सपर्क में रहा। आपश्री प्रकृति के भद्रिक विनयशील सरलस्वभावी व मधुरभाषी थे। ज्ञान दर्शन चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि शुद्धतम चारित्र व अक्षुण्ण निर्ग्रन्थ समाचारी पालने व पलवाने में आपका सर्वदा लक्ष्य रहा। इन्हीं असाधारण गुणों के कारण प्रभावित होकर सादड़ी सम्मेलन मे आपको अखिल भारतवर्षीय निर्ग्रन्थ श्रमण सघ ने अपना कर्णधार निर्वाचित किया। आप जनसाधारण मे लोकप्रिय व आदर्श महात्मा गिने जाते हैं। जीवन-रहस्य को आपने भलीभाति समझा अपना व पर का जीवन सफल बनाया व भगवान महावीर स्वामी के सिद्धात व शुद्ध श्रमण सस्कृति को आपने दिपाया और सत्य न्याय व शिथिलाचार उन्मूलन के आप अडोल विजेता बने तथा क्षमा के सागर रहे। ऐसे अध्यात्म मार्ग के सत्पथ प्रदर्शक शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्र के महान् पुजारी अक्षुण्ण चारित्रपालन के सतत प्रहरी निश्रेयस परम कल्याण के निष्ठावान् शाति के अग्रदूत विश्वमैत्री के स्रोत सघ-ऐक्य की भावना के द्योतक भव्य प्राणियो के प्रबोधक स्वर्गीय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशाचार्य के प्रति मैं अपनी विनीत एव हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पण करता हुआ शासन देव से प्रार्थना करता हू कि जो अध्यात्म ज्योति भगवान महावीर से परमरागत पाटानुपाट प्रवाहित हो स्वर्गीय पूज्य श्री 1008 हुक्मीचन्दजी महाराज ने अकुरित की स्वर्गीय पूज्यश्री 1008 श्री जवाहराचार्य ने प्रसारित व पल्लवित की। आपश्री द्वारा प्रतिष्ठित व पुष्ट की हुई वही ज्योति पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी महाराज को हस्तातरित होने से दिन-प्रतिदिन वृद्धि करे। आपश्री के चरणचिह्न भवाटवी को पार करने में मार्ग-निदर्शन करते रहें।

सयम की शिथिलता आपको असह्य थी

श्री भीखणचन्द्र भन्साली, कोलकाता

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा ने आगम ग्रन्थ दर्शन सस्कृत एव व्याकरण जैसे गहन विषयो मे अपने को आत्मसात् कर दिया। आपने गहरे पैठकर ज्ञान और सयम की साक्षात् मणियाँ ग्रहण कीं पर सग्रह न कर मुक्तहस्त से लुटाया ही।

आप उदार वृत्ति के सरल स्वभावी सन्त थे। आपने सबके साथ समभाव और हार्दिकता का व्यवहार किया। 'किसी भी धर्म को किसी भी अपेक्षा से निम्न नहीं मानना चाहिए यह आपका विशाल दृष्टिकोण था। आपके व्याख्यान मे सभी वर्ग जाति एव धर्म के व्यक्ति आकर अपने मन के विकारों को विस्मृत कर जाते थे।

आप हिन्दी सस्कृत प्राकृत पाली उर्दू एव अरबी भाषाओ के पारगत विद्वान थे। छोटे-से दृष्टान्त के माध्यम से आप गूढ एव शास्त्रीय शिक्षा देने मे निपुण थे। आपने दीक्षार्थियो की सख्या पर ही ध्यान नहीं दिया वरन् दीक्षार्थी की योग्यता और सहनशीलता को सयम की कसौटी पर कस कर ही दीक्षा की अनुमति प्रदान करते थे।

आपने 57 वर्ष पर्यन्त सयमशील जीवन व्यतीत किया और करीब सारे भारत की पद यात्रा कर भगवान महावीर की वाणी का प्रचार एव प्रसार किया। आपने स्वभाव की सरलता और व्यवहार की मृदुलता से ही अपार जनसमूह के हृदयों पर शासन किया। सघैक्य आपको प्राण से भी अधिक प्रिय था। इसी कारण अपने श्रमण सघ की एकता एव सुगठन के हरसम्भव प्रयत्न किये। अपने सम्प्रदाय के विलीनीकरण मे आपने सबसे प्रथम कदम उठाया।

सयम की शिथिलता आपको असह्य थी। अपने उपाचार्यकाल मे स्वशासित मुनियों मे शिथिलाचार के उन्मूलन के लिए आपने कठोर कदम उठाये पर अपनी अवज्ञा होते देख आपने श्रमण सघ से पृथक होना ही उपयुक्त समझा।

आपश्री प्राचीन परम्परा और जीवन के परिवर्तित मूल्यो के युग मे एक कडी-स्वरूप थे। मानव मात्र के लिए आपने जो सेवा की है उसे विस्मरण नहीं किया जा सकेगा। वास्तव में आप एक युगपुरुष थे। चिन्तनशीलता के साथ साथ आपने नैतिक सत्य और सयम की दृढता पर जोर दिया। सन्तो की तनिक असावधानी पर आप उन्हे सस्नेह समझाते और उचित आदेश फरमाते। सेवावृत्ति मे आपको सेवाभावी नन्दीषेण की उपमा से विभूषित किया

जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आपने रुग्ण एव अस्वस्थ सन्तो की सेवा करने मे एक अनूठा आनन्द पाया है।

स्वास्थ्य-शुद्धि के लिए आपने प्राकृतिक चिकित्सा को सर्वोत्तम साधन माना। बड़ी बड़ी तपस्याएँ करके आपने श्रमण-वर्ग के सम्मुख उच्च आदर्श स्थापित किया। आपके मुखमण्डल पर शान्ति और क्रान्ति का सम्मिश्रित आलोक दृष्टिगत होता था। आप समाज और श्रमण सघ के सजग प्रहरी थे।

आपका महान् जीवन हमें भी अपने जीवन को महान् बनाने की प्रेरणा देता है क्योंकि

Lives of great men all remind us
we can make our lives sublime

अर्थात् महान् व्यक्ति के जीवन हमें भी अपना जीवन उच्च बनाने का स्मरण दिलाते हैं।

आपकी वाणी युगो तक हमारे पथ मे प्रकाश-स्तम्भ की तरह से रहेगी और हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

आपश्री अपनी परम्परा निभाने हेतु हमे एक सुयोग्य एव विद्वान् सत श्री नानालालजी म सा को कार्यसचालन के लिए प्रदान कर गये हैं। आपने पूर्वाचार्यश्री की सेवा पूर्ण लगन से की। आप आचार्यश्री के प्रधान एव सेवाभावी शिष्य हैं।

समाज को आशा है कि हमारे अष्टम् आचार्यश्री हमें सूर्य की तरह प्रकाश देकर स्थानकवासी जैन समाज का मार्गदर्शन करेगे जिससे हमारे पूर्वाचार्यों के नाम भी उद्योत होंगे।

सच्चा उपदेशक

पारसमल काकरिया, कोलकाता

परम श्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के देवगति प्राप्त होने पर समस्त जैन समाज को गहरा धक्का लगा है। जैन सतों की महान परम्परा में आचार्यश्री उस नक्षत्र की तरह थे जिसकी ज्योति देश के समस्त क्षेत्रो मे फैली हुई थी।

त्याग और सयम की प्रतिमूर्ति इस महात्मा के प्रति लाखों पुरुषों की श्रद्धा थी। आपकी वैराग्यभरी वाणी में अद्भुत जादू था। जहा जहा आप विचरते थे उस पुण्यभूमि के असख्य [illegible] भक्त हो जाते थे। लाखों पुरुषो ने आपके सद्उपदेशो के प्रभाव में आकर

मास जुआ और शराव आदि का जीवनपर्यन्त परित्याग किया। जगह-जगह धर्म और दया दान की आवृद्धि हुई। इन सब सत् कार्यो के पीछे एक वीर हृदय सत की पवित्र प्रेरणा थी जो लोगों को जीवन की सच्ची राह दिखाती थी।

आचार्यश्री में क्षमा सहनशीलता तपश्चर्या ऐक्यभावना नियमबद्धता आदि कतिपय ऐसे गुण थे जो आज विरले सतो मे पाये जाते हैं। आपका चरित्र कसौटी का था। त्याग तपस्या और सयम का ऐसा सगम अन्यत्र देखने को नही मिलता।

स्थानकवासी समाज के इतिहास मे ऐसे सन्त का प्रादुर्भाव एक विशेष महत्त्व रखता है। जिनदेव की वाणी का सही रूप से पालन कर आपने आत्मकल्याण पर विशेष जोर दिया। कष्टसहिष्णु तो आप इतने थे कि कैन्सर जैसे भयानक रोग से ग्रस्त होने पर भी आप विचलित नहीं हुए।

अन्त मे पुण्यभूमि उदयुपर मे जहा आप का जन्म हुआ वहीं आप देवलोक सिधारे। आपके यहा निर्वाण से समस्त जैन समाज मे शोक की लहर व्याप्त हो गई। आज आचार्यश्री नहीं रहे किन्तु उनकी पवित्र वाणी हमे युगो तक उनकी याद दिलायेगी।

मैं भी उस परम पूज्य महात्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

महान् विभूति

श्री खेलशकर, दुर्लभजीभाई झवेरी जयपुर

पू श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज अपने समस्त भक्तजनो को शाकाकुलित करके ता 11 1 63 को इस नश्वर ससार को छोड़कर चले गए। जिसने इस ससार मे जन्म लिया है वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होता है यह एक शाश्वत सत्य है। कितु एक व्यक्ति अपने जीवन को किस तरह व्यतीत करता है यही वात हम मानवो के लिए महत्त्वपूर्ण है। पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज ने सासारिक भोग-विलास को छोडकर अपने आप को आध्यात्मिक व आत्मिक जीवन मे लगाकर मानव मात्र का आध्यात्मिक क्षेत्र मे पथ-प्रदर्शन किया। आपके स्वर्गवास से स्थानकवासी श्वेताम्बर समाज ने एक महान् धार्मिक विचारक मानवमात्र ने एक कल्याणकारी विभूति तथा उनके शिष्यो ने एक वास्तविक गुरु खो दिया है। महाराज साहब को यदि हम वास्तव मे श्रद्धाजली अर्पित करना चाहे तो हमारा कर्तव्य होगा कि हम उनके सदेश को अधिक से अधिक फैलावे उनके वताए हुए मार्ग का अनुसरण करे और उनके

उपदेशों को अपनी आत्मा मे उतारें। उनका जीओ और जीने दो का सिद्धात इस भूलोक पर रहने वाले प्रत्येक प्राणी मे आत्मरत होना चाहिए।

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

सच्चे श्रमण

चपालाल बाठिया, भीनासर,
भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा को मैंने जिस रूप में समझा वे सरल हृदय सच्चे श्रमण अपने समझे हुए जैन सिद्धातो पर पूर्ण श्रद्धा के साथ चलने वाले थे। अदर और बाहर एक समान सुदृढ स्पष्टवक्ता थे। जमाने के अनुरूप चलना उन्होंने नहीं सीखा था। इसलिए उपाचार्य पद को छोड़ना पड़ा और श्रमण सघ से ही अलग होना पडा। नवम्बर 1962 में उदयपुर जाकर मैंने अन्तिम दर्शन किये थे। काफी अस्वस्थ थे फिर भी मेरे से कुछ वार्तालाप किया। और प मुनिश्री नानालालजी म सा से फरमाया कि सारी स्थिति इनको समझावो। फिर दूसरे दिन फरमाया कि आपकी राय में क्या करना था ? आप क्या चाहते थे ? मैंने तो यही अर्ज किया कि यो सारी स्थिति से मैं परिचित हूँ। मेरी भावना तो यह थी कि आप को श्रमण सघ के आचार्य के रूप में इस नश्वर देह को छोड़ते हुए देखता।

आज पूज्यश्री इस ससार मे अपने बीच में नहीं रहे। मैं अपनी श्रद्धाजली समर्पित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि महाराजश्री की आत्मा को स्वर्ग से मोक्ष पहुँचावे।

आचारहीनता उन्हे बिल्कुल नापसद थी

श्री रत्नकुमार जैन 'रत्नेश' भूपू सम्पादक 'जैन प्रकाश'

जब कभी स्व पूज्यश्री से मिलने का प्रसग आया मैंने उनमें दो बातें स्पष्ट देखीं आचार-दृढ़ता और सयमजन्य मधुरता।

बहुत पुराना प्रसग याद आ रहा है। पूज्यश्री (उस समय के युवाचार्य) जवाहराचार्य की सेवा मे बीकानेर मोहताजी की धर्मशाला मे विराज रहे थे। मैं भी उन दिनो सेठियाजी के यहा अध्ययन कर रहा था। सेठिया जैन लायब्रेरी से जो भी नई जैन पत्र-पत्रिकाए आती उन्हे लेकर मैं सेठियाजी के पास उनके निवासस्थान ऊन प्रेस (Wollen Press) जाया करता था। मार्ग में ही मोहताजी की धर्मशाला आती थी जहा पूज्यश्री अपने आचार्य जवाहराचार्य की सेवा में ठहरे हुए थे। एक दिन की बात है मैं जैन प्रकाश लेकर जा रहा था। पूज्यश्री अपने कमरे मे टहल रहे थे। मैंने वदना की और जैन प्रकाश सामने करते हुए कहा— अगर आप इसे देखना चाहें तो रखले शाम को मैं वापस लेता जाऊगा। पूज्यश्री ने युवाचार्यश्री गणेशलालजी मसा को बुलाया और कहा - देखो ये जैन प्रकाश लाये हैं देखना हो तो रखलो शाम को ये आवेगे तब वापस कर देना। युवाचार्यश्री ने कहा आप फरमाओ तो मैं ले लू, बाकी मुझे तो लेना कल्पे नहीं है। मैंने अपनी सफाई पेश करते हुए कहा 'महाराजश्री मैं तो रोज इसी रास्ते से आता-जाता हूँ, आपके लिए तो मैं नहीं लाता हूँ। युवाचार्यश्री ने फरमाया 'ठीक है भाई हम को अगर जरूरत होगी तो हम अपने सन्तो से मगा सकते हैं। गलत परम्परा डालना उचित नहीं है।

बात बहुत छोटी-सी है परन्तु आचार के प्रति दृढता की हृदय पर गहरी मोहर मार जाती है। जो व्यक्ति इतनी सामान्य बातों पर भी इतना गम्भीर बन सकता हो वह कभी अपने सामने या परोक्ष में भी क्यो न हो क्या कभी साध्वाचार के प्रति शिथिलाचार को सहन कर सकेगा ? कभी नहीं कर सकेगा। शिथिलाचार के प्रति वे प्रारम्भ से ही कठोर रहे। वज्र से भी कठोरहृदयी रहे। फिर चाहे अपना परमप्रिय शिष्य ही क्यो न हो ? आचारहीनता उन्हें बिल्कुल नापसन्द थी। अनुशासन मे रहना और शुद्ध आचार का पालन करना उनका जीवन-ध्येय था। परिणाम चाहे कुछ भी क्यो न हो वे अपने नियम के पक्के थे। श्रमण सघ के निर्माण में उनका योगदान उपाचार्य पद निर्वाह और अन्त मे श्रमण सघ से सघ-विच्छेद तक की सारी कार्यवाही उनकी आचार-दृढ़ता और अनुशासनप्रियता को लेकर ही की गई थी जिसे आज मानने से कौन इनकार कर सकता है ? आचार के प्रति जहा वे इतने अधिक सजग और कठोर थे स्वभाव से वे उतने ही मधुर और स्नेहिल थे। कोई भी व्यक्ति एक बार उनके पास आ जाता जीवन-भर उनकी मधुरता विस्मृत नहीं कर पाता। श्रमण सघ के निर्माण के बाद कई वृद्ध सत-सतियों की सेवा में उन्होंने अपने सन्त-सतियों को भेज कर उनकी सेवा-सुश्रूषा ही नही कराई कइयो का अकेलापन भी दूर किया। एक बार आपने कहा था - श्रमण सघ के सयमशील साधु-साध्वियाँ मेरे ही एक अग हैं। उनका मानापमान मेरा मानापमान है। उनका दुख-दर्द मेरा दुख-दर्द है। इसलिये सघ के प्रत्येक व्यक्ति का यह फर्ज है कि

वह मेरी तरह ही मेरे अग-उपागों (साधु-साध्वियो) का भी समुचित आदर करे हिफाजत करे और देख-रेख रखे। उपेक्षावृत्ति से काम न ले। इस तरह उनकी मधुरता का कोई माप नहीं था। उनका सयमजन्य अनुराग असीम था लेकिन अन्धअनुराग नही था।

बड़ी सादड़ी (राजस्थान) के चातुर्मासकाल में तो मुझे और भी निकट रहने का सौभाग्य मिला था। वह समय साम्प्रदायिक गठबन्धन का था फिर भी मैं यह स्पष्ट रूप से लिखने की हिम्मत कर रहा हूँ कि पूज्यश्री की दृष्टि साम्प्रदायिकता से परे थी। परिग्रह के प्रति फण्ड-फाला करने-कराने के प्रति वे सदैव निर्लिप्त ही रहा करते थे। सयमजन्य नम्रता उनमें एकाकार हो गई थी। अपने से बड़े दीक्षा-स्थविर से वदना करते हुए उनका हृदय उछालें मारने लगता था। वृद्ध या रोगी सन्त की सेवा में उन्हें अपूर्व आनन्द आता था। साधक जीवन के प्रति उनकी सजगता वस्तुत आदर्श थी। अपने जीवन के अन्तराल मे तो यह और भी अधिक खिल गई थी। वर्षों तक वे रुग्ण रहे भयकर बीमारियो ने उन पर हमला किया परन्तु ऐसा लगता था जैसे कि उन्होने अपने शरीर पर या शरीरजन्य वेदना पर अपूर्व काबू पा लिया हो। अन्तिम समय तक भी वे अपनी चर्या मे ही सजग रहे। देहोत्सर्ग भी हुआ तो पण्डितमरण के साथ ही हुआ। सचमुच वे एक युगपुरुष आचार्य थे जिनका हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी सुकोमल था। उनकी आचारदृढता और सयमजन्य मधुरता स्था जैन इतिहास में एक मशाल की तरह सदैव चमकती रहेगी।

स्पष्टवक्ता

हिम्मतसिह बाबेल उदयुपर

स्वर्गीय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा उन महापुरुषो मे से एक थे जिन्होंने अपने मान सम्मान एव शिष्यमोह को सदा ही सिद्धातो की पालना हेतु बलि चढ़ा दिया था। वे जीए तो भगवान महावीर की अक्षुण्ण परम्परा को निभाने के लिए और स्वर्गस्थ हुए तो भी उसी परम्परा को निभाते हुए। सक्षेप में बस यही उनके जीवन की पूर्ण झाकी रही थी। उनके साधुत्व की सफलता भी यही रही और आलोचकों की दृष्टि मे उनका हठीपन भी यही रहा।

मुझे गत 25 वर्षो मे विविध सम्प्रदायों के अनेक अग्रणी सन्ता के सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ किन्तु स्वर्गीय पूज्यश्री के आचार विचार कथनी और करनी मे जितनी

समानता के दर्शन हुए उतने अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुए। यही कारण था कि पूज्यश्री ने समस्त आबाल-वृद्ध के हृदयोपासक का स्थान ले लिया। बहुधा देखा गया था कि उनके कट्टर आलोचक भी इस तथ्य को स्वीकार करते थे और उनकी साधुता एव स्पष्टवादिता के आगे नतमस्तक हो जाया करते थे। सघ-हित के लिये उन्होने अपनी अथवा अपनी सम्प्रदाय की मान्यता को सदैव गौण समझा था। उदाहरणार्थ श्रावण अथवा भाद्र मास दो होने पर 'सवत्सरी सम्बन्धी निर्णय'। पूज्यश्री श्रमण सघ को जो रूप देना चाहते थे उसमे यदि श्रमण सघ के एक-दो अग्रणी सन्तो का भी उन्हे हार्दिक सहयोग मिला होता तो आज श्रमण सघ अथवा समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय का रूप ही दूसरा होता।

पूज्य आचार्यश्री अपनी धुन व विचारो के पक्के थे। उनका हृदय यदि स्वीकार न करता तो वे अपने निकटतम सन्तों की प्रार्थनाओ को भी मान नहीं देते थे। उनका मत हमेशा निर्णायक होता था। श्रमण सघ से पृथक होने एवम् प मुनिश्री नानालालजी मसा को युवाचार्य पद से विभूतिषत करने के प्रसगो पर उनकी इसी दृढ निर्णायक शक्ति का परिचय मिलता है।

लगभग चार वर्ष के अन्तिम उदयपुर प्रवास मे स्वर्गीय आचार्यश्री के चरणों में बैठकर विविध समस्याओ पर विचार-विमर्श करने का सौभाग्य मुझे मिलता ही रहा था। कई बार गम्भीर मतभेद हो जाने पर भी उस समय केवल अटूट श्रद्धा एवम् भक्ति के कारण ही आचार्यश्री के मत को मैंने शिरोधार्य किया था किन्तु आगे जाकर मैंने बहुधा यही अनुभव किया कि आचार्यश्री का मत उचित हितकर समाज-व्यवस्था को टिकाये रखने वाला एवम् जैन सस्कृति को भौतिकता रूपी मृगमरीचिका से बचाने वाला होता था।

रुग्णावस्था के कारण उदयपुर के अतिम प्रवास मे आचार्यश्री मे व्याख्याना द्वारा उपदेश देने की क्षमता नहीं रह गई थी। फिर भी उनका दैनिक जीवन एवम् असीम धैर्यपूर्वक रोग का सामना करने की उनकी क्षमता ही उपदेश से भी अधिक असरकारक थी। जैन समाज का सौभाग्य ही होता यदि वे और कुछ वर्ष हमारे बीच होते और उनकी मूक चर्या ही आज के हमारे भौतिकता मे बढते विश्वास को चुनौती देती रहती। उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण जैन समाज की जो हानि हुई है उसका अनुमान लगाना कठिन प्रतीत होता है।

स्वर्गीय पूज्य आचार्यश्री के जीवन की अनेक विशेषताओ म से एक-आध ही हमारे जीवन मे साकार हो जावे तो हमे अपना जीवन सफल समझना चाहिये। इन्हीं भावा के साथ मैं परम श्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी मसा के चरणा में अपनी श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

आध्यात्मिक विज्ञानी को श्रद्धाजली

डा दौलतसिह कोठारी, अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

आज का युग भौतिकवाद का युग है। इस युग मे भौतिक विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है। यदि इस भौतिक विज्ञान के साथ आध्यात्मिक विज्ञान की प्रगति नहीं हुई तो सभव है कि आज का विज्ञान विश्व के लिए वरदान होने की बजाय अभिशाप-रूप सिद्ध हो सकता है। यही बात आज सन्त विनोबाजी विश्व को सुना रहे हैं।

आज के भौतिक विज्ञान के युग में आध्यात्मिक विज्ञान के प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता है तब एक आध्यात्मिक विज्ञानी का ससार मे से उठ जाना न केवल जैन समाज की अपितु सारे विश्व की एक महान क्षति है।

पूज्यश्री गणेशलालजी म सा एक महान आध्यात्मिक सन्त थे और आध्यात्मिक विज्ञान के प्रतिष्ठापक और प्रसारक थे। ऐसे आध्यात्मिक विज्ञान वीर को मैं अपनी नम्र श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ। उन आध्यात्मिक विज्ञानी पुण्यात्मा को चिरशाति प्राप्त हो यही मेरी प्रार्थना है।

ओजस्वी महापुरुष

गिरधरलाल के झवेरी, मुम्बई

श्रमण-शिरोमणि परम श्रद्धेय जैनाचार्य पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा का दिनाक 11 जनवरी 1963 के दिन दोपहर 3 20 पर 73 वर्ष की आयु में उदयपुर मुकाम पर अत्यन्त शोकजनक स्वर्गवास होने से समस्त भारत के स्थानकवासी जैन समाज में गहन शोक की अनुभूति हुई है।

शान्तमूर्ति स्व आचार्यश्री समस्त स्थानकवासी जैन समाज के बहुमूल्य आभूषण-रूप थे। आपश्री के देहावसान से एक पुरातन युग समाप्त हुआ हो ऐसा लगता है। और इस महान् तेजस्वी महापुरुष की विदाई से जो क्षति हुई वह दीर्घकाल तक पूरी होना सभावित नहीं है। अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक लम्बे समय के स्वर्गीय आचार्यश्रीजी आदर्श और चारित्रशील सयमी जीवन की जितनी प्रशसा की जाय उतनी कम है।

अन्तिम चार वर्ष मे कैन्सर जैसे भयकर दुर्दान्त महारोग के सामने जीवन के अन्तिम क्षण तक अत्यन्त धैर्य सहनशीलता और पूर्ण स्वस्थतापूर्वक आपश्री जूझते रहे और अन्त समय में 29 घन्टे का सथारा सम्पूर्ण शुद्धि और जाग्रत् अवस्था मे पालते हुए स्वाध्याय मे लीन रहकर पडितमरणपूर्वक स्थूल देह का त्याग कर अनत में लीन हुए। इस दु खद प्रसग पर स्थानीय तथा बाहर गाव के हजारों की सख्या मे एकत्रित भक्त श्रावक-श्राविकाओं की आखो में से अश्रुधारा बह निकली। वह हृदयविदारक दृश्य स्मृति-पटल से भूला जाय ऐसा नहीं था। भयकर असातावाले इस महादर्द को भी अत्यन्त समभाव से सहन कर इस आध्यात्मिक महापुरुष ने सेवा करने वाले उपचारकों को भी आश्चर्यचकित कर दिया। और ऐसा प्रतीत हुआ कि आपश्री के तपबल के सामने जैसे विज्ञान भी असफल होकर हार मान गया हो। निष्कामभाव से सेवा करने वाले स्थानीय डाक्टर शूरवीरसिहजी डाक्टर माथुर डाक्टर न्याती डाक्टर उडेरालाल तथा अन्य वैद्य डाक्टरो ने पूज्यश्री की लम्बी बीमारी के दरमियान अनन्य भक्तिपूर्वक एकनिष्ठा से जो सेवा की वास्तव में वह प्रशसनीय और स्मरणीय है इसलिए स्थानकवासी जैन समाज उन सब महानुभावों का अत्यन्त ऋणी है।

उदयपुर श्रीसघ का यह महान् सद्भाग्य था कि ऐसे महापुरुष की दीर्घकाल तक अलभ्य सेवा का सुअवसर उसको मिला। जिस श्रद्धा-भक्ति और हार्दिक उल्लास से उदयपुर श्रीसघ ने तन-मन और धन से स्वर्गीय पूज्यश्री की सेवा-सुश्रूषा की और दर्शनार्थी बन्धुओं और श्रीसघो का भावभीना आथित्य-सत्कार किया वह इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे लिखा जायगा।

स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की मुखमुद्रा सदैव प्रसन्न रहती थी और आपश्री प्रकृति से अत्यन्त सरल निखालस गभीर और उदार थे।

इस ओजस्वी महापुरुष के जीवन का एकागी दृष्टि से अवलोकन करने वाला उनका यथायोग्य मूल्याकन कर सके यह सभव नहीं है। आपश्री श्रमण सस्कृति के सरक्षक महापुरुष थे। उनके विरले जीवन का और विशिष्ट जीवन-प्रसगों का उचित मूल्याकन तो भावी इतिहासकार ही करेंगे।

जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा की पाट-परम्परा में आपश्री सप्तम पाट पर प्रतिष्ठित थे। अजमेर साधु-सम्मेलन में समस्त भारतवर्ष के सतों ने मिलकर एकमत से आपश्री को युवाचार्य तरीके घोषित किया था और स्व पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा के शुभ हस्त द्वारा इन महापुरुष को चादर प्रदान की गई थी।

स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन आपश्री के परमप्रतापी पूर्वजों के जीवन की तुलना में कई दृष्टि से भिन्न प्रकार का था। स्व आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के

जीवनकाल में विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त समस्त भारत के स्थानकवासी जैन श्रमणों के बहुल भाग का सगठन हुआ और श्रमण सघ अस्तित्व मे आया। ऐसे दुर्लभ सगठन के कार्य का बहुत महत्त्व का यश स्व आचार्यश्री के भाग मे जाता है। इन्होंने अपने हाथ से इस श्रमण सघ मे अपनी सम्प्रदाय का विलीनीकरण करके अपनी पूज्य पदवी का त्याग किया और इस प्रकार सगठन को पूर्णरूपेण दृढ़ बनाया। यह कदम समाज मे अत्यन्त आदरणीय और अनुकरणीय बना और उस महासघ के उपाचार्य पद पर आपश्री सुशोभित हुए।

उसके बाद जोधपुर का सम्मिलित चातुर्मास अभी अपनी स्मृति मे ताजा ही है। उस ऐतिहासिक चातुर्मास मे समाज की शोभास्पद अनेक विभूतियों के साथ मिलकर सगठन को दृढ बनाने का भरसक प्रयत्न किया। जो वह कार्य निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ा होता तो इस मे सन्देह नहीं कि जो-जो सम्प्रदाय श्रमण सघ मे विलीन नहीं हुए थे वे सम्प्रदाय भी श्रमण सघ मे अवश्य सम्मिलित होते ऐसी सभावना थी। परन्तु काल की विचित्र गति है। पिछले समय मे कई-एक समस्याए उठ खड़ी हुई जिन का अनेक प्रयत्नो के उपरान्त भी सर्वसम्मत निराकरण नहीं हो सका और मतभेद तीव्र बनते गये। परिणामस्वरूप स्व आचार्यश्री अपने उपाचार्य पद से निवृत्त हुए और अन्तत आपश्री ने श्रमण सघ का भी त्याग किया। स्थानकवासी जैन समाज का यह अतिदुर्भाग्य था।

स्व आचार्यश्री इतना होते हुए भी अपने मधुर हृदय में अपने से भिन्न विचारधारा रखने वाला के प्रति भी अत्यन्त सहिष्णु रहे और सब के साथ समान आत्मीयता और आदर भाव रखते थे। आपश्री से भिन्न विचार रखने वालो के लिये भी यह सौम्य मूर्ति आकर्षण का केन्द्र थी। स्व पूज्यश्री अन्त समय तक समाज की गभीर समस्याओ पर गभीर विचारणा करते रहे और सब के साथ चर्चा-वार्त्ता द्वारा समस्याओं के समाधान का मार्ग निकालने में सदा प्रयत्नशील रहे। दुर्भाग्य कहे कि चर्चास्पद समस्याओं का सर्वमान्य निर्णय आपश्री के जीवनकाल मे नहीं लाया जा सका।

स्था जैन समाज के ये ज्योतिर्धर शिथिलाचार के कट्टर विरोधी थे। साथ ही अनुशासन का पूर्णरूपेण पालन होना ही चाहिये ऐसा आप का आग्रह था। स्वय कड़क आचार-पालनकर्ता महासन्त थे। यह उनके उज्ज्वल जीवन की महानता थी।

इन महान् प्रतिभाशाली सत के विशाल और उदार आदर्शों का प्रतिबिम्ब उनकी दिनाक 22.9 62 की घोषणा म परिलक्षित होता है। श्रमण सघ से पृथक होने का आपश्री का पगला अल्पकालीन और उपचार रूप था। उस निवेदन से यह स्पष्ट झलक मिलती है कि आपश्री इस महान सघ के समर्थक और दृढ़ बनाने के हिमायती थे। आपश्री ने फरमाया है कि उनकी भावनानुसार जब भी सुसगठन की स्थिति का निर्माण हो तब उनके अनुयायी पुा

विलीनीकरण के लिये तैयार रहे और सुसगठन बनाने मे सदा प्रयत्नशील रहे। ऐसे महापुरुष को हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जली हो सकती है कि उनके विशाल हृदय के उन उत्तम भावो को मूर्तरूप देने के लिये हम सब परस्पर सहकार और विचार-विनमय द्वारा समाज की वैसी स्थिति का निर्माण करने मे भगीरथ प्रयत्न करे और उस ध्येय की सिद्धि करे।

श्रमण सघ के द्वितीय पाट पर विराजित वर्तमान आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म सा स्व आचार्यश्री गणेशलालजी म सा के अनुगामी प रत्न आचार्यश्री नानालालजी म सा पारस्परिक सहयोग द्वारा स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की भावना अनुसार सघ-सगठन का महान् कार्य सिद्ध करने मे प्रयत्नशील बने ऐसी हम सब मिलकर उनकी सेवा में प्रार्थना करें। साथ ही उनके ऐसे सद्प्रयत्नो मे हम भी सहायकभूत बने और प्रभु से प्रार्थना करे कि सघ-सगठन दृढ बनाने के इस महान् कार्य मे हमको सिद्धि प्राप्त हो।

स्व आचार्यश्री स्थूल देह से अब अपने बीच मे नहीं हैं मगर आपश्री का आदर्श जीवन हम सब को निरन्तर मार्गदर्शन और प्रेरणा देता रहेगा।

स्व पूज्यश्री की भव्य श्मशान यात्रा यह उदयपुर का एक अनुपम दृश्य था। उदयपुर की समस्त जातियों के लगभग 50 हजार से एक लाख की सख्या मे नागरिको ने उस महान् आत्मा की अन्तिम यात्रा मे भाग लिया था। सथारा सीझने के बाद आपश्री की स्थूल देह को पौषधशाला में ध्यानस्थ मुद्रा में विराजमान कराया गया। उस रात्रि-भर और दूसरे दिन 10 बजे तक दर्शनार्थियों की लम्बी कतारें बराबर बनी रही। प्रात 10 बजे स्वर्गस्थ के मृतदेह को सोना चादी से मढित भव्य पालिका मे विराजमान कर के जुलूस रवाना हुआ। श्मशान यात्रा का वह जुलूस अति दर्शनीय था। हाथी घोड़े बैंड और भजन मडलिया-युक्त श्मशान यात्रा का वह जुलूस आहड गाव मे दोपहर को करीब 3 बजे निश्चित स्थान पर पहुँचा। वहा सम्पूर्ण चन्दनकाष्ठ आदि से रचित रथी मे इस निराले ज्योतिर्धर के स्थूल देह का अग्निसस्कार किया गया। वह दृश्य भी हृदय-विदारक था। हजारो की सख्या मे वहा उपस्थित शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति था कि जिस ने नेत्राबु द्वारा अपने आराध्य गुरुदेव की अन्तिम अर्चना नहीं की हो।

उदयपुर मे हिन्दू, मुसमान जैन आदि समस्त नागरिकों ने स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति और सम्मान प्रदर्शन हेतु अपना समस्त कारोबार बन्द रखा। सारे शहर में पूर्ण हडताल रखी। कसाईखाने मे भी उस दिन हिसा बन्द रखी गई।

शासनदेव दिवगत आत्मा को चिरशान्ति दे और उस महापुरुष के दिव्य जीवन के अपूर्ण रहे हुए कार्य को सिद्ध कर शासन का सुसगठन बनाने में हम सब को शक्ति प्रदान करें, इस प्रार्थना के साथ स्वर्गीय आचार्यश्री को मेरे अन्तर् हृदय की भक्तिपूर्ण श्रद्धाजली अर्पण करता हू।

पुनीत सस्मरण

लाजमल बोथरा, बीकानेर

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के साथ मेरा सम्पर्क लगभग 30 वर्ष तक रहा। उनमें कई-एक ऐसी विशेषताए थीं कि जिनसे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। मैं ही क्यों कोई भी व्यक्ति जो उनके परिचय मे आता उनके गुणों से अवश्य प्रभावित होता।

उनकी गुरुभक्ति तो भगवान महावीर और गौतम स्वामी का पावन प्रसग उपस्थित करती थी। उनका गाम्भीर्य गुण भी अनोखा था। सरदारशहर की बात है। उन दिनों साम्प्रदायिक सघर्ष जोरो पर था। सदर बाजार में जब आचार्यश्री प्रवचन फरमा रहे थे एक अन्य सम्प्रदायी सज्जन ने उन पर कटु शब्दो से प्रहार किया। प्रत्युत्तर मे जैसे अमृत की वर्षा हुई हो आपने अत्यन्त मधुर स्वर द्वारा सम्बोधित किया 'भले म्हारा श्रावकजी बोल्या तो सही' आदि-आदि। आज भी ये शब्द मेरे कानों मे गूजा करते हैं और सम्भवत मैं उस प्रसग को जीवन-भर नहीं भूलूगा। कई आलोचनाआ के अवसरों पर देखा कि वे उनकी शान्ति एव धैर्य को भग नहीं कर सकीं। इसी तरह आप सत्यप्रिय भी थे। साथ ही प्रतीत होता था कि जैसे वे अत्यन्त धर्मभीरु हों। यही कारण था कि वे प्राय विवाद से दूर रहना चाहते थे।

उनकी उल्लेखनीय महत्ताए और सौम्य मुद्रा चिरस्मरणीय रहेंगी। ऐसे उनके विषय में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। सक्षेप में कहूँ तो वे बड़े ही भव्य त्यागी वैरागी एव भद्रात्मा थे।

श्रद्धाजली

शातिलाल भरद्वाज 'राकेश' प्रोफेसर महाराणा भूपाल कॉलेज, सेक्रेटरी, भूपालपुरा समिति, उदयपुर

आज हम इस सभा में एक दिवगत सत की अनुपस्थिति को पीड़ा के साथ महसूस कर रहे हैं। यह स्थिति पीड़ाजनक है कि महाराज सा जो परसों तक हमारे साथ थे आज हमारे साथ नहीं हैं।

मृत्यु सदैव से एक पहेली रही है लेकिन हम जीवन को शाश्वत मानते हैं। व्यक्ति का मात्र भौतिक अस्तित्व ही नष्ट होता है। उसकी आत्मा अमर है।

महाराज सा एक सत थे। वे सुलझे हुये विचारों के भविष्य के प्रति आस्थावान और नैतिक तथा धार्मिक मर्यादाओ के पोषक थे। साध्य को ही नहीं साधना को भी वे महत्त्व देते थे। उनका जीवन मानवता के कल्याण के लिए सदैव प्रवाहित रहा और आज हमारा यही कर्तव्य है कि महाराज सा को अपने हृदयो मे जीवित रखे। जो उनके सदेश थे उनकी छाया मे हम अपने जीवन को ढाले और इस प्रकार मानवता का पथ प्रशस्त करे।

सत किसी जाति या समाज की बपौती नहीं होता। महाराज सा अकेले जैन समाज के नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज के प्रेरणास्रोत थे। आज हम यह महसूस करते हैं कि हमारे पथ को प्रशस्त करने वाला एक सत आज हमारे बीच नहीं रहा।

मैं भूपालपुरा समिति की ओर से तथा व्यक्तिगत रूप मे स्वय अपनी ओर से महाराज सा श्री गणेशलालजी को हार्दिक श्रद्धाजली निवेदन करता हूँ।

साथ ही आचार्यप्रवर (श्री नानालालजी) पथ के नये आचार्य के रूप मे आज पहली वार हमारे पडौस में पधारे हैं। मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

सम्यग्दर्शन की श्रद्धाजली

रतनलाल डोशी, सम्पादक-सम्यग्दर्शन सैलाना

जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब का स्वर्गवास स्था जैन समाज की वडी भारी क्षति है। पूज्यश्री शान्त गम्भीर और दृढनिश्चयी आचार्य थे। श्रमण-परम्परा के पोषण और रक्षण मे आप सक्रिय रहते थे। आपका आचार्य पद सदा सघर्षमय ही रहा और इस सघर्ष में आपका लक्ष्य चारित्ररक्षा और सयमशुद्धि के साथ सघ को शुद्ध एव निर्दोष वनाने का रहा। आपने शातिपूर्वक सुधार के प्रयत्न किये। कुछ वडे विषयो में अधीनस्थ अधिकारी मुनिवरों की सलाह से निर्णय दिये किन्तु जब वे निर्णय परिपालन नहीं होकर कागज में ही रहने और कुत्सित प्रपञ्चो द्वारा व्यवस्था विगाडने का प्रसग आया तो आपने ऐसी स्थिति का विरोध किया और निर्णय की पूरी तरह रक्षा की। परिस्थिति ऐसी वनी कि आपके साथिया मे से कोई प्रत्यक्ष रूप मे तो कोई परोक्ष रूप में दोषी व्यक्ति के साथी वन गए। पक्ष वन गया। आचार्यश्री को पक्ष मे करके आपश्री के विरुद्ध आदेश निकलवाया। एक ओर निर्णय में पालन में दृढता रही तो दूसरी ओर दोषी के बचाव मे शक्ति लगी।

निर्णय के परिपालन मे आचारशुद्धि दुराचार का नाश न्याय की रक्षा और निर्ग्रंथ सस्कृति की प्रतिष्ठा का महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। इससे हटना मानो धर्म से हटना था। इसकी उपेक्षा श्रमण सघ के चारित्रधर्म की उपेक्षा थी। स्वर्गीय पूज्यश्री इस महत्त्वपूर्ण विषय के रक्षण मे निर्ग्रंथ धर्म का उत्थान देखकर दृढतापूर्वक जमे रहे किन्तु विपक्ष की दृष्टि म यह महत्त्वपूर्ण वात नहीं आई। उनके सामने तो केवल पक्ष ही रहा और साथ ही पूज्यश्री का महत्त्व गिराने की भावना भी जिससे कि वे आगे कभी विकार हटाने का साहस ही नहीं कर सके। स्थिति विषम बनती गई। निर्णय के साथी मौन दर्शक रह गये। कुछ तो साहस की कमी कुछ साथियो की कमजोरी कहीं खुद की कमजोरी और वडे समूह से समान के आकर्पण ने साथियो मे उपेक्षा मर दी। वे अन्त तक दर्शक ही वने रहे। एक विषय मे पड़ा हुआ मतभेद दूसरे विषयो मे भी चालू रहा। गृहस्थ नेताआ के मन मे पूज्यश्री को अपमानित करने के प्रयत्न हुए। किन्तु उपाचार्यश्री एकदम शान्त धीर-गम्भीर होकर देखते रहे और न्याय-रक्षापूर्वक समाधान होने की प्रतीक्षा करते रहे। उत्तेजना का नाम नहीं। यदि दूसरा कोई तेज मिजाज होता तो इनके लम्बे समय तक आघातो को सहन करके शान्तिपूर्वक वैठा नहीं रहता। जव समाधान के लक्षण नहीं रहे और भेद-रेखा गहरी वनती गई तव निरुपाय होकर अपने को इस सारे प्रपञ्च से पृथक करके स्वतन्त्र कर लिया। सारे द्वद्व मिट गये। इतना सव-कुछ होते हुए भी सघैक्य के प्रति आपकी रुचि वनी रही और आप उस समय की प्रतीक्षा करते रहे जव कि आचार-शुद्धि के धरातल पर सुदृढ एकता बने। किन्तु ऐसा नहीं हो सका। विकारग्रस्त वहुत-से व्यक्ति वाणी-मात्र से या ठहराव मात्र से अथवा चाहने-भर से शुद्ध हो जाँय - ऐसा होना तो असमव ही नहीं अशक्य है। वाते चाहे जितनी कर ली जायँ ठहराव और नियम ऊँचे-से-ऊँचे वना लिये जायँ किन्तु तदनुसार पालन सारा समूह वह समूह कि जिसमे विकारी रुचिवाले प्रारम्भ से ही सम्मिलित हैं और सघैक्य के वाद जिसमे विशेष वृद्धि हुई - कर ले यह कदापि नहीं हो सकता। ककरो मे से गेहूँ के दाने पृथक हाकर ही अपनी उपयोगिता वनाये रख सकते हैं अन्यथा उनका नहीं तो उनके अन्तेवासियो का भी समूहवत् हो जाना समव है। यह सव समझते हुए भी साहस के अभाव में प्रतिक्रमण की हिम्मत किसी की नहीं हुई। यह सुसाहस तो स्वर्गीय आचार्यश्रीजी का ही था जो सारे समूह द्वारा प्राप्त सम्मान को लात मारकर पृथक हो गए और उसके द्वारा वाक वाण का प्रहार सहन के लिए हँसते हुए अपना सीना खुला कर दिया। एक वहुरूपिया लेखक 'साणासपूत' क वेश मे प्रचार पत्र के जरिये मीठे विषवुझे शब्द-वाणो से इस खुले सीने पर लम्वे समय तक प्रहार करता रहा - जैसे कोई अपराधी न्यायाधिकारी के सच्चे फैसले के विरुद्ध अपना रोप - कानूनी गिरफ्त से वचते हुए - मिसरी जैसे ढग से उगलता हो। उस वहुरूपिये विदूषक ने छोटे मुँह

वडी वातो से जैसे - 'ताणो मती सा खेंचो मती सा उकलतो मत पीओसा' आदि से अप
जैसो को भले ही खुश कर लिया हो किन्तु वास्तव मे उसकी धूल सूर्य पर धूल फेंकने ‹
तरह उसी पर पडी। वे वाक-प्रहार उस महापुरुष के हृदय तक नहीं पहुँच सके।

तटस्थ सुज्ञ विचारक जानते हैं कि पूज्यश्री का पृथक होना साम्प्रदायिक भावना ‹
परिणाम नही था। जब समूह मे रहने से सारे समाज द्वारा सत्कार-सम्मान और प्रतिष्ठा मि
रही थी तो पृथक होकर थोडे लोगो का ही आदर-पात्र बनना और विशाल समूह का अपम
सहना कौन प्रतिष्ठाप्रिय व्यक्ति चाहेगा ? ऐसा साहस तो वही कर सकता है जिसम सत
न्याय और सदाचार की रक्षा की भावना हो। ऐसे महापुरुष की निन्दा करने वाले और उ
निन्दा का मौन समर्थन करने वाले दुर्लभबोधि नहीं बने तो अच्छा ! विशेष खेद तो इस वा
का है कि 'मुम्बई के महासघ' ने आचार्यश्री के ऐसे धर्मानुकूल सस्कृति-रक्षण के कार्य ‹
'महान कुसेवा' कहकर ठहराव किया। यह अनधिकार चेष्टा तो है ही साथ ही अन
तीर्थंकर भगवतो और उनके निर्ग्रन्थ प्रवचन का घोर विरोध है। रत्नत्रय की सुदृढ आध
भूमिका से रहित मोक्षमार्ग की उपेक्षा करके और लौकिक रुचि से बने हुए थोथे सगठन ‹
लिए आचार्यश्रीजी के विरुद्ध ऐसा ठहरा होना और वह भी वर्तमान आचार्यश्री की उपस्थि
मे यह अछेरे (आश्चर्य) जैसी घटना है। मैं मानता हूँ कि इस ठहराव मे निर्माण में वद
की भावना वाले विशिष्ट व्यक्ति या कुछ ही व्यक्तियो का हाथ है और शेष ने तो बिन
सोचे समझे सिर हिलाकर स्वीकृति दी होगी और विशेष व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो ने वदल
पाने का सतोष मान लिया होगा। किन्तु मैं समझता हूँ, यह डवल पाप हुआ। खैर महापुरु
ने तो उस प्रहार को वज्रमय सीने पर सहकर व्यर्थ कर दिया।

हमारी श्रद्धाजली न तो उनकी शरीर-सम्पत्ति के कारण है न जनरञ्जक व्याख्यान ‹
कारण अथवा न पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण है
हमारी श्रद्धाजली उनकी निर्ग्रन्थ प्रवचन की रुचि उसके पालन और रक्षण के लिए लाख
उपासको और सारे श्रमण सघ द्वारा प्रदत्त महान् प्रतिष्ठा को ठुकराकर पृथक हो जाने औ
अपमान की परवाह नहीं करने वाले महावीर के शासन रक्षक होने के कारण है। यदि वे ऐसा
साहसिक कदम नहीं उठाते तो श्रमण सघ की हीनावस्था पर यथार्थता की सर्वसम्मत मुह
लग जाती - जैसे अभी यन्त्र एव छेद प्रायश्चित्त पर लगी है। यदि ऐसा होता तो हमारी
हार्दिक श्रद्धाजली अर्पित नहीं होती।

λ λ λ

कैन्सर की भयकर बीमारी। डॉक्टरो ने आपरेशन खतरनाक बतलाते हुए भी आपरेशन
की राय दी। आपने कहा - 'यदि आपरेशन नहीं कराया तो क्या होगा मौत ही न ? मैं मौत

से नहीं डरता'। डाक्टरो ने कहा - 'कदाचित् आपके मस्तिष्क में रोग का प्रभाव होकर उन्माद की स्थिति उत्पन्न हो सकती है'। आचार्यश्री चकित होते हुए बोले - 'उन्माद = पागलपन ? नहीं नहीं यह तो असयमी स्थिति है। इससे तो आपरेशन कराना ठीक होगा। उन्होने आपरेशन की स्वीकृति दी किंतु उनकी निर्ग्रन्थ आत्मा को इससे गहरी निराशा हुई। उन्हाने सतो से शिष्यो से कहा अब मैं असयम की स्थिति मे जा रहा हूँ। अतएव तुम कोई भी मुझे वन्दना नहीं करना। इन शब्दों के पीछे रहे हुए भावो में कितनी गहरी धर्मरुचि स्पष्ट हो रही थी ! वह हृदय वे भाव सचमुच निर्ग्रन्थ आत्मा के ही हो सकते हैं। ऐसे भावो के प्रति तो विशेष आदर होता है। आज भी उन भावो का स्मरण कर हृदय और मस्तक अपने-आप झुक जाते हैं।

ऑपरेशन के लिए जाते समय फिर आज्ञा हुई 'सतो ! मुझे तुम्हीं उठाना और चादर आदि अपनी ही ओढाना। हास्पिटल वाले मुझे नहीं उठावे और यहा की चादरें मुझे नहीं ओढाई जाय। यह सावधानी क्या बताती है ?

ऑपरेशन के समय तो प्रत्येक रोगी का शरीर डॉक्टरो के अर्पण होता है। वहा वे अपने ढग से ऑपरेशन आदि किया करते हैं। बड़े आपरेशन में रोगी बेहोश रहता है और बेहोश नहीं हो तो भी शरीर स्ववश नहीं रहता। शरीर सम्बन्धी व ऑपरेशन की सभी क्रिया सावद्य ही होती है। रोगी को यही मालूम नहीं होता कि क्या-क्या क्रिया की जा रही है। वह स्थिति तो पूर्ण विवशता की है। इसके बाद भी जब तक डॉक्टरों से टाके खोलने आदि कार्यों से छुट्टी नहीं मिल जाय तब तक थोड़ा-बहुत दोष-सेवन चालू रहता है। इस सब की श्रीजी ने खुले दिल से आलोचना की उस समय के उपाध्यायश्री आनन्दऋषिजी म तथा बहुश्रुत गीतार्थ प मुनिश्री समर्थमलजी म सा के पास और दोनो की राय से अधिक से अधिक छ'मास' का छेद देकर अपने को शुद्ध किया। आपने इस दोष और प्रायश्चित्त का जाहिर ऐलान करने मे तनिक भी सकोच नहीं किया।

उदय के जोर से विकट स्थिति उत्पन्न हो सकती है और परिस्थितिवश रुक्षभाव से दोष सेवन भी किया जाता है किन्तु दोष को दोष मानकर प्रायश्चित्त लेने पर ही साधुता की रुचि और निर्दोष सयम माना जाता है। आचार्यश्री ने दोष को दोष मानकर उसका परिमार्जन किया। यदि वे चाहते तो अपवाद को भी उत्सर्ग के समान चरित्र के दो चरण बताकर और निशीथ भाष्यचूर्णि का आधार उपस्थित कर अपने को बचा लेते। उनके सामने ये ग्रन्थ उपस्थित थे। किन्तु उन्होने इस कथित निर्दोषता का विचार ही नहीं किया और प्रायश्चित्त लेकर अपने को निर्दोष बना लिया। इस विकट स्थिति में भी उनके निर्ग्रन्थ मानस के दर्शन होते हैं।

x x x

जावरा चातुर्मास की बात है। व्याख्यान के बाद मुनिगण गोचरी के लिए पधार गये थे। अवसर देखकर मैंने श्रमण सघ की दशा और कुछ सदस्यो की स्वच्छन्दता का उल्लेख कर स्थिति सुधारने का निवेदन किया तो फरमाया -

'डोशीजी ! तुमने कहा वह सब ठीक है। ये बातें मुझे मालूम हैं। और भी कई बाते मुझे मालूम हुई जिन्हे तुम नहीं जानते। मैं भी चाहता हूँ कि इन सारी बुराइयो को दूर करदू, किन्तु पक्षपात का भूत बाधक हो रहा है। तुम देख ही रहे हो दुराचार के भीषण मामले मे भी दोषो के पक्षकार मिल गये और अधिकारी मुनि ही बाधक बन रहे हैं। जब अधिकारी मुनियो की सम्मति से किये हुए निर्णय की भी यह दशा है तो नई बाते उठाकर विशेष झझट मे पडने से सार ही क्या निकल सकता है ? पक्षपात का भूत तो सभी जगह और सभी विषया मे आगे आयेगा। मैं अपना बल लगाकर देखता हूँ। यदि मेरे सारे प्रयत्न बेकार जायँगे तब मुझे अपना दूसरा मार्ग तय करना पडेगा।

वास्तव मे आचार्यश्री शात और गम्भीर थे। वे जो कुछ करते खूब सोच-समझ कर आर विपक्ष को पूरा अवकाश देकर। दूसरा कोई मार्ग नहीं होने पर कठोर कदम उठाते।

रतलाम का झगडा तो व्यर्थ ही था। उसमे आधारभूत तथ्य कुछ भी नहीं था। आचार्यश्री ने खुद ने सीधा मार्ग बता दिया था। यदि उस मार्ग का अनुसरण किया जाता तो प्रश्न ही हल हो जाता किन्तु पक्षपात एव कषाय के भूत ने झगडा खडा करवा दिया और सारा वातावरण ही अशात बना दिया। आचार्यश्री शात और गम्भीर होकर सभी आघात सहते रहे। वे स्वय शात रहे और उपासका को भी शात रहने का उपदेश दिया। खाली चना खनकता रहा और जयगणेश और उसके उपासक उपेक्षाभाव से खाली चने की फुदक का तमाशा देखकर मुस्कराते रहे।

जब लुधियाना से पद-निवृत्ति का पत्र रजिस्टर्ड डाक द्वारा उदयपुर पहुँचा तब मैं भी वहीं था। व्याख्यान के समय ही वह पत्र पहुँचा। इस अनधिकार चेष्टा को देखते ही उपासकवर्ग तप्त हो गया। वह उसी समय उसका कठोर प्रत्याघात करना चाहता था किन्तु आचार्यश्री के चेहरे पर एक सल भी नहीं पड़ा। वे हँसते हुए उपासकों को शान्त करते रहे। उन्होंने जो भी निर्णय किया वह आवेश मे आकर अथवा शीघ्रता में नहीं किया किन्तु बहुत सोच समझकर किया और अत तक उस पर दृढ रहे।

श्रमण सघ मे बुराइयो से टक्कर लेने वाले एकमात्र आप ही देखे गये। यदि अन्य दो चार अधिकारी मुनिराज भी आपको सहयाग देते तो बुराइया कम होती बुरे सुधरते और हटते और आपके पृथक होने का प्रसग ही नहीं आता।

श्रमण सघ के अधिकारियो की उस समय की उपेक्षा और बाद की अभूतपूर्व अवमानिक

कार्यवाही से लगता है कि श्रमण सघ की दृष्टि में जैसा-तैसा सगठन ही सब-कुछ है। निर्ग्रन्थ परम्परा और आगम इसके सामने गौण हैं जो मात्र दो व्यक्तियों के सामने झुककर आगमिक विधान को तोड़ सकते हैं उनसे सस्कृति-रक्षण की क्या आशा रखी जाय ?

स्वर्गीय आचार्यश्री का ध्येय भी सघैक्य का था किन्तु निर्ग्रन्थ परमपरा की भित्ति पर। यह नहीं हो सकने के कारण ही उन्होंने अपने को पृथक कर लिया। उनके इस धर्मप्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के कारण ही हमारी श्रद्धाजली है।

तात्पर्य यह कि स्वर्गीय आचार्यश्री के चरणों मे हमारी श्रद्धांजली उनकी साधुता धर्मप्रियता और वीर-शासन के प्रति कर्तव्यपरायणता के कारण है। उन्होंने भगवान महावीर की परम्परा को कायम रखने के लिये अपनी मान-प्रतिष्ठा छोड़ी। बृहद् समूह के कोपभाजन बने क्षुद्र प्रकृति के पक्षपातियो की भर्त्सना सही और चिरसाथियों के मीठे व्यगबाण सहे, फिर भी अडिग रहे। उनके इस सत्साहस के प्रति हमारी श्रद्धाजली है। इस हीयमान समय में वे हमारे आदर्श रहेंगे। उनके इस वृद्ध एव रोगी शरीर में रही हुई युवक योद्धा-सी अडिग शक्ति से श्रद्धालुवर्ग शिक्षा प्राप्त करेगा और धर्म के प्रति कर्तव्यपरायण रहेगा।

हम वर्तमान आचार्य पू. श्री नानालालजी म के प्रति आशास्पद हैं। वे अपनी युवक शक्ति को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निर्दोष साधना एव रक्षा में लगा कर उत्तरदायित्व का द्विगुण उत्साह के साथ पालन करेगे। हमारी भावना है कि आप निर्ग्रंथ-प्रवचन के जाग्रत् प्रहरी व सबल नायक बनकर हमारी - समस्त श्रद्धालु समाज की श्रद्धा को बल दें, उत्साह बढ़ावें और स्वय धर्मोत्थान में आगे कदम बढ़ाते रहें - 'वड्ढमाणो भवाहिय' ।

जाज्वल्यमान सितारा

लूणकरण हीरावत, देशनोक

ता 11 1 63 रात्रि को रेडियो से परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट् श्री गणेशलालजी म.सा. के देहावसान का समाचार सुनते ही हृदय कापने लगा आँखों में अधियारा छा गया। ओह आज जैन समाज का जाज्वल्यमान सितारा अस्त हो गया। देश व समाज ने एक महान् विभूति खो दी जिसकी पूर्ति होना निकट भविष्य में असंभव है। आचार्यश्री को श्रद्धांजली अर्पित करने हेतु उनके प्रशसार्थ शब्द नहीं मिल रहे हैं। एक महान् आचार्य में जिन सद्‌गुणों की हम

कल्पना कर सकते हैं वे सबके सब इन सन्तशिरोमणि के जीवन मे साकार होकर उभरे हैं।

सरलता निष्कपटता सहिष्णुता निरभिमानता व मधुरता आदि महान् गुण आपके रोम रोम में विकसित थे। पदलोलुपता का आपको तनिक भी मोह नहीं था। आप सुसगठन को हृदय से चाहते थे लेकिन शिथिलाचार व स्वच्छन्दाचार के कट्टर विरोधी थे। आपके जीवन की एक खास विशेषता यह थी कि आपकी कथनी-करनी मे तनिक भी अतर नहीं था। यही कारण था कि आपने अपने प्रभावशाली अमृतमय वचनो से मानव-समाज को मुग्ध किया व उनके मानस पटल पर एक अटल छाप छोड गये। आप विरोधियो को भी अपना परम हितैषी समझते थे। आपकी सहनशीलता व धैर्यता को देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गये। यद्यपि आपकी देह मे चिरकाल तक असह्य वेदना रही किन्तु आपके मुखारविन्द से 'उफ' तक नहीं निकला। अन्तिम समय तक चेतनावस्था मे रहकर आपने पडितमरण प्राप्त किया। यद्यपि आज वो दिव्यात्मा स्थूल शरीर के रूप में ओझल हो चुकी है। किन्तु गुण-गरिमा से हमारे हृदय पटल पर चिरस्मरणीय रहेगी। साथ-साथ हमे इस बात का सन्तोष है कि आप अपने पीछे एक महान सन्त को अपना सुयोग्य उत्तराधिकारी छोडकर गये हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म सा के आदेशो को शिरोधार्य करते हुए उनको सामाजिक कार्यों में पूर्ण सहयोग दे।

अन्त मे उस महान विभूति को अपनी आन्तरिक श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ कि दिवगत आत्मा को चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो।

दृढ व्रतीत्व

जोधराज सुराणा, देवदत्त शर्मा बगलौर

सासारिक मायाजाल मे फॅसा मानव मशीन के पहिये की भाति अपने कृत्यो मे उलझा रहता है तो धर्म एव नैतिकता से दूर होता जाता है। ऐसे समय मे सन्त और महात्मा जो कि यम नियम तप व साधना के पुञ्ज होते हैं का सत्सग मानव को धार्मिक आशा की ओर बनाये रखने के लिये आवश्यक होता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ऐसे ही सन्त महात्माओ मे से थे जिन्होंने त्याग और तप विरक्त भावना एव कठोर साधना के द्वारा न केवल जैन समाज का अपितु मानव-प्राणी के हितार्थ अतिम घडी तक अमर सन्देश देकर मार्ग-प्रदर्शन किया।

कराल काल के कारण भौतिकरूप मे आज वे हमारे समक्ष नहीं हैं लेकिन उनकी कठोर साधना दृढ प्रतीत्व का चारित्र तथा अमर वाणी का थोडे अशो में भी यदि हम पालन कर पाये तो हमारी सच्ची श्रद्धाजली होगी ऐसी हमारी मान्यता है। स्वर्गीय आचार्यश्री के प्रति हम अपनी श्रद्धाजली अर्पित करते हैं।

श्रमण सस्कृति के रक्षक

डूगरसिह डूगरपुरिया, उदयपुर

आचार्यश्री के सम्पर्क में गत चार वर्षों मे मुझको निकटता से आने का सुअवसर मिला। पूज्यश्री अपने-आप में अत्यन्त ही सरल शुद्ध एव सादगीयुक्त किन्तु उत्कृष्ट विचार वाले कठोर से कठोर क्रिया एव शुद्ध आचार की पालना में रत उनका जीवन था। जहा उनके पास एक आचार्य के नाते कठोर अनुशासन था तो मानव समाज के लिए मातृत्व प्रेम एव स्नेह भी था। प्रेम का ही अमोघ शस्त्र उनके पास था जिससे वे लोगों के मन पर अनायास ही विजय पा लेते थे। श्रीजी कठिन से कठिन क्षणों में भी हसते हुए देखे जाते थे। अशाति के चिह्न कभी भी चेहरे पर दिखाई नहीं देते थे। जब-जब भी वार्तालाप करने का अवसर आया तब तब श्रमण सस्कृति की आराधना के लक्ष्य में दृढ़ आत्मविश्वास दिखाई दिया। युवा बाल वृद्ध सभी पर एक-सा प्रेम। उनमे सच्ची साधुता की साधना का अतिशय था। उनका मन बच्चे का-सा सरल किन्तु मस्तिष्क मे परिपक्व विचार उनकी साधना एव कार्यप्रणाली अन्तरात्मा की आवाज पर ही चलती थी। उनके अनुकूल होने पर बच्चे की बात भी मान लेते परन्तु प्रतिकूल होने पर बड़े से बड़े व्यक्ति की बात भी ठुकराने में सकोच नहीं करते थे। श्रमण सस्कृति में आचार्यश्री का पूर्ण विश्वास था। उन महान् आचार्य का जीवन राजनीतिक दावपेच से बिल्कुल ही मुक्त था। उनका एक ही विचार था एक ही चाह थी कि श्रमण सस्कृति अक्षुण्ण बनी रहनी चाहिये। इस वेश मे रहते हुए दुनिया के साथ कभी भी धोखेबाजी नहीं होनी चाहिये। इसके लिए कभी भी विचार नहीं किया कि मेरे पीछे कितना बल है या बहुमत मेरे प्रतिकूल है। उनका कहना था कि जो शुद्धता से साधु-जीवनयापन नहीं कर सकता वह इस पद से हट जाय। हट जाना उतना बुरा नहीं है जितना इस वेश में रहते हुए श्रमण सस्कृति के विपरीत कार्य करना है। यह बुरा ही नहीं अपितु अपनी आत्मा को धोखा देना है। इसी पर उन्हे विशेष चिढ़ थी। जहा आज मानव को अपनी मान बड़ाई में खुशी होती है वहा उनको अपना अपमान होने पर भी कभी भी रज भी नहीं हुआ। अपमान

करने वाले के प्रति कभी भी घृणा नहीं हुई। अपमान करने वाला भी जब सामने आया तो उसे भी वही शुद्ध एव सरल अन्तरतम का प्रेम दिया जो उनके प्रति आदरभाव रखने वाला को मिलता था।

मैं आचार्यश्री के जीवन पर क्या लिखू, कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है अन्त मे यह लिखना चाहूँगा कि उन महामना आचार्य की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो एव मुझमें उनके बताये हुए मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त हो।

हे महामना आचार्य ! कोटि-कोटि प्रणाम !!

श्रद्धा और प्रेममय जीवन

श्रीमती लक्ष्मीदेवी जैन

आचार्यवर पूज्यश्री गणेशलालजी म सा ने अपने ज्ञान दर्शन चारित्र और तप के पुण्य प्रकाश से ससार को प्रकाशित किया। आपके उपदेश से प्रभावित हो अनेक सद्‌गृहस्थो ने उन पूज्यश्री के मार्ग पर अपने जीवन को लगा दिया जिनमे मेरे पिता-माता भी हैं जिनके नाम क्रमश श्री चौथमलजी कोठारी एव श्रीमती राजकवरीजी हैं। पूज्यवर तो असार ससार का परित्याग कर सारभूत आत्मोपलब्धि कर चुके हैं लेकिन उनका गुण प्रकाश सदैव हमारा मार्ग निर्देशन करता रहेगा। आपश्री के गुणानुवाद रूप श्रद्धाजली अर्पित कर अपने को कृतार्थ समझती हूँ।

जन्म धर्म हित कर्म धर्म हित धर्म कर्म पर जो कुरबान।
जावो सन्त मा मार्ग पर अमर रहेगा तेरा नाम।

ओ महान् सत आपको शत-शत श्रद्धांजली

मोतीलाल बरड़िया, सरदारशहर निवासी, अहमदाबाद

माघ कृष्णा 1 का दिन था। चारित्रचूड़ामणी त्यागी वैरागी सतशिरोमणि जैनाचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा ने आज के दिन 10 बजकर 20 मिनट पर आलोचना करके

सथारा ले लिया। विद्युत की तरह भारत के समस्त नगरों व शहरो में खबर पहुँच गई। मुझे भी अहमदावाद में शाम को 7 बजे महान् सत के सथारे का तार मिला। सहसा गुरुदेव स्थानकवासी समाज के सूर्य आचार्य प्रवर के दर्शनो की तमन्ना जाग उठी।

माघ कृष्णा 2 सुवह 8 वजे रोडवेज सर्विस से उदयपुर रवाना हो गया। शाम को 6 वजे उदयपुर पहुँचा। महान् तेजस्वी आत्मा का 3 वजकर 20 मिनट पर स्वर्गवास हो चुका था। सथारास्थित आत्मा का मुझे दर्शन नहीं हो सका। मेरे भाग्य की वात थी। पौषधशाला के प्रागण मे आपके पार्थिव शरीर का ही मुझे दर्शन हुआ। वही मुस्कराता हुआ चेहरा मानो ऐसा लग रहा हो कि अभी प्रवचन शुरू करेंगे। दर्शनार्थियो का ताता लग रहा था। शहर की सभी जनता दर्शन करने आ रही थी।

माघ कृष्णा 3 शनिवार के सुवह दस बजे चादी के भव्य सिहासन मे आपके शव को वैठाया गया। पौने ग्यारह वजे आपके शव का जूलूस शुरू हुआ। ऐसा भव्य दृश्य देखने का उदयपुर के इतिहास मे पहला मौका था। ऐसा मालूम पड़ता था कि सारा शहर ही उमड़ पड़ा है। वाजार सारा वन्द था। मकानो की छतो पर वाजारो सडको पर नर-नारियो के झुड के झुड आपके दर्शनो को लालायित थे। जूलूस ढाई घटे से श्मशान भूमि में पहुँचा।

ओ महान् त्यागी तपस्वी सरलस्वभावी चारित्र के हिमायती आपने अपना प्रण पूरा निभाया ! श्रमण सघ के उपाचार्य पद को 'सर्पकाचलीवत्' आपने छोड़ दिया। बड़े-वडे नेता कहलाने वाले कहते रहे इनको आचार्य पद का मोह है ये श्रमण सघ मे काटे हैं। ऐसा कहने वालो को मैंने नजरो से देखा है और कानों से सुना है परन्तु इस महान् सन्त ने कोई परवाह नहीं की। त्याग और चारित्र को रखने के लिए अपने सही रूप मे आये। आपका दीक्षाकाल सघर्ष मे वीता।

स्वर्गीय जैनाचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के साथ मे स. 1984 मे स्थलि प्रान्त में आये। वह तेरापथियो का क्षेत्र था। आपको परीषह सहन करने पड़े। स 1985 1986 मे दो चातुर्मास चूरू मे किए। स्वर्गस्थ जवाहराचार्य के साथ स 1985 का स्वतन्त्र चातुर्मास चूरू किया था। ढाई वर्ष तक आप स्थलि में विचरे वहा बहुत सघर्ष रहा। आपने डटकर दया-दान का प्रचार किया। वाद म स 1990 मे अजमेर साधु-सम्मेलन में आये। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा की सम्प्रदाय के पाट पर आपको युवाचार्य वनाया गया। फिर वहुत सघर्ष रहा। वाद में 1998 में फिर आपका युवाचार्य पद में सरदारशहर चातुर्मास हुआ। खूब दया-दान का प्रचार हुआ। दो तीन दीक्षाए हुईं। फिर मारवाड मेवाड़ मालवा प्रान्त म विचरे व चातुर्मास करते हुए जयपुर चातुर्मास हुआ। फिर दल्ली व अलवर के चातुर्मास के वाद में सम्मेलन हुआ। वहा आप सर्वसम्मति से श्रमण सघ के सचालन के सपूर्ण अधिकारों के साथ उपाचार्य वनाये गये।

आपने श्रमण सघ में रहते हुए सयम और चारित्र के लिए जो आदेश और उपदेश दिये वे समाज के सामने खुली पुस्तक के रूप म मौजूद हैं। ओ महान् सन्त ! तेरा सत्य तेरा त्याग चारित्र जन जन के अन्दर चन्द्र-सूर्य के प्रकाश की तरह लाखो वर्ष चमकता रहेगा। भगवान् श्री महावीर भगवान् श्री गौतम बुद्ध और महात्मा गाधी को दुनिया याद करती है वैसे ही आपको भी करेगी। मैं आपका भक्त आपके चरणो मे शत-शत श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ। आपकी आत्मा को शान्ति मिले और आपके बताए हुए मार्ग पर हम सब डट कर चलें।

दृढ सयमी

धनराज बेताला भूतपूर्व अध्यक्ष, नगरपालिका, नोखा मडी

परमपूज्य प्रात स्मरणीय श्रद्धेय आचार्य पूज्यश्री श्री 1008 श्री श्री गणेशलालजी म सा ने इस नश्वर ससार से पडितमरण प्राप्त किया। आचार्य पूज्यश्री की एक आदर्श श्रमणोचित अभिलाषा थी कि मुझे पडितमरण प्राप्त हो। इसे वे अपनी रुग्ण अवस्था के दौरान समय-समय पर प्रकट करते रहे। आचार्यश्री एक लम्बे समय से रुग्ण चले आ रहे थे। रुग्ण अवस्था में भीषण उतार चढाव आते रहे किन्तु पूज्यश्री अविचल भाव से एक कुशल रणबाकुरे योद्धा के सम रुग्णता से जूझते रहे। ऐसी शारीरिक अवस्था में भी आचार्यश्री श्रमणोचित आदर्श पर दृढ रहे।

श्रमण सघ की स्थापना समय-समय पर हुए सम्मेलन समाज की एकता के लिए प्रयास थे। लेकिन श्रमणो की कॉन्फ्रेस के वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा पक्षपात तथा कलुषित विचार के सामाजिक पत्रो द्वारा निरन्तर आचार्यश्री की रुग्ण शारीरिक स्थिति में भी मानस को उत्तेजित करने वाली घटनाओ का क्रम जारी रहा। इन सारी परिस्थितियों के बावजूद भी आचार्यश्री अपने आत्मशक्ति के उद्देश्य की पूर्ति मे लगे रहे। आदर्शों की रक्षा में वे हमेशा दृढनिश्चयी रहे। आचार्यश्री ने इस श्रमण सघीय विषैली परिस्थिति से अपने को अलग घोषित किया एव श्रमण सस्कृति रक्षार्थ दी गई व्यवस्थाओ को पालन करने वालों के साथ ही अपना सम्बन्ध रखना फरमाया था। पूज्यश्री फरमाते थे कि उत्कृष्ट साधुता श्रमणो के जीवन का मुख्य लक्ष्य है इसे किसी भी दृष्टि से गौण नहीं किया जा सकता है। श्रमणों मे शिथिलाचार का होना श्रमणवर्ग के लिए सयम की साधना से गिराने वाला है। इसी प्रसग पर जिज्ञासा के समाधान में आचार्यश्री ने फरमाया था कि श्रमणो मे शिथिलाचार व उसका पोषण बिल्कुल नहीं होना चाहिए। प्रयास करने पर भी अगर यह नहीं रुकता हो तो इसके लिए आचार्यश्री ने एव

जलते हुए मकान का उदाहरण देते हुए फरमाया था कि जलते हुए मकान का जितना हिस्सा बचा सकते हो बचालो ताकि उस अखड बिना जलते हुए हिस्से से भविष्य में त्राण पाया जा सके। यदि समय रहते बचे हुए हिस्से को भी अलग नहीं किया सारे मकान को बचाने में ही लगे रहे तो आग की लपटों से सारे भवन के नष्ट हो जाने का पूर्ण खतरा है। श्रमणसस्कृति की रक्षार्थ जो दर्द पूज्यश्री के हृदय मे था उसके स्मरण मात्र से ही आत्मा स्वर्गीय आत्मा को कोटिश नमस्कार करने लगी है।

स्व आचार्यश्री व्यवहार में सरल-हृदय दया-मूर्ति व अधीनस्थ श्रमण वर्ग के लिए वात्सल्य भाव रखते थे व श्रमण-परम्परा को पालने मे मे वज्र के समान कठोर थे। दूसरों से भी इसी प्रकार की आशा रखते थे। नियम-विरुद्ध परिस्थिति उत्पन्न होने पर आचार्यश्री ने आदर्शो की रक्षार्थ अपने अगो को भी त्यक्त दिया किन्तु सिद्धान्तो पर अडिग रहे। साधु आचार की भाषा के विपरीत लेखन पर अपने शिष्य का मोह भी उन्हें श्रमण सघीय स्थिति में सम्बन्ध विच्छेद करने से न रोक सका। समस्त स्थानकवासी श्रमण सघ के आचार्य पद जैसे सम्मानित पद को भी सिद्धातो व आदर्शों के सामने त्याज्य माना। त्याग की ऐसी मिसाल दुर्लभ है। ऐसे त्यागी महान् आचार्यश्री को मेरे इन चन्द शब्दो द्वारा श्रद्धा के पुष्प अर्पित हैं।

उनका जीवन आदर्शमय था

माणकदेवी श्रीश्रीमाल

दिनाक 11 5 63 को दिन के 3.20 बजे जगत् के महान पुरुष प्रात स्मरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी म सा का स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनते ही सर्वत्र शोक छा गया पूज्यश्री महान् आत्मा थे। आपके सपर्क मे जो भी आया आपके मधुर प्रवचनों को जिसने भी सुना उसके हृदय पर आप सदैव के लिए छा गये। उनका जीवन आदर्शमय जीवन था। उनकी कथनी और करनी में कोई फर्क न था। आप करीबन 3 4 वर्ष से काफी अस्वस्थ थे इधर कई दिनों से तकलीफ काफी बढ गई थी। उस समय मैं उदयपुर मे ही थी जब आपश्री ने इस शरीर की असारता को जानकर सथारा कर के समाधिमरण प्राप्त किया। गुरुदेव म असीम धैर्य था महान् शान्ति थी। ऐसे महान् आत्मा के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाजली अर्पित करती हूँ।

महान् त्यागी

बिमलचन्द भण्डारी, जोधपुर

हमने सूत्रों मे भगवान महावीर के कर्मों से जूझने में कष्ट सहन की बात सुनी है किन्तु जिस प्रकार आचार्यश्री ने कैंसर रोग का सामना किया वह अत्यन्त प्रशसनीय था और इस भौतिकवादी विश्व मे प्रत्येक के लिये सच्चे जैन साधु की कष्टो के प्रति उपेक्षावृत्ति और सवेदनाशक्ति का परिचायक है। मेरा यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि हमने उनम एक महान् त्यागी एव निर्भीक जैन सन्त के दर्शन किये। उनका जीवन पवित्रता बलिदान और जैन सिद्धातो के प्रति न स्वार्थ आस्तिक्य का एक सुस्पष्ट अध्याय था।

यह महान् सन्त न केवल अपनी परम्परा वरन् आध्यात्मिकता के सिद्धातो और अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोगिता का उपदेश देकर मानवता को उत्कर्षोन्मुख बनाने हेतु जीवित रहा। इस अवसर पर हम सब यह प्रतिज्ञा लें कि जिन सिद्धातो के लिए वे जीवित रहे उनका प्रत्येक साधु दृढ़ता से पालन करे। उनकी आत्मा अनन्त शान्ति को प्राप्त करे। ॐ शाति शाति शाति।

दृढ सिद्धान्तवादी

छोगमल चोपडा बीए एल एल बी, गगाशहर

जो जन्म लेता है उसको एक दिन अवश्य परलोक जाना ही पड़ता है। ससार में जन्म मृत्यु का चक्र अनादिकाल से चला आता है। पर जन्म सार्थक उन्हीं का है जो अपने कार्यो से ससार को एक आदर्श दिखा जाते हैं। भौतिक वैज्ञानिक प्रगति के युग मे ससार को असार समझ कर समस्त बन्धनो को छोड अलग होने वाले महापुरुष थोडे ही होते हैं और उन थोडो मे जो अपनी आचार-निष्ठा से च्युत नहीं होते वे बहुत कम होते हैं। इस दृष्टि से स्वर्गीय श्री गणेशलालजी महाराज अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। स्थानकवासी समाज मे उपाचार्य का पद पाकर भी उसे अपने सिद्धात पर अटल रहते छोडकर जो मानसिक बल

उन्होंने दिखाया वैसा विरले ही दिखा सकते हैं। आज वे अपने बीच नहीं हैं पर उनकी स्मृति सदा अमर रहेगी। उनके स्वर्गवास से जो स्थान स्थानकवासी समाज मे रिक्त हुआ है वह शीघ्र पूरा होना असभव है।

धन्य है उनकी सहनशीलता !

सूरजचन्द डागी बड़ी सादडी

परमपूज्य प्रात स्मरणीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब की ज्योति मेरे आन्त्य प्रदेशो में प्रकाशमान है। मुझे उनके दर्शन-स्पर्शन का सौभाग्य इन अतिम दिवसो मे अधिक हुआ। बीमारी म उनकी आत्मा का प्रकाश अधिक से अधिक बढ गया था। सरलता और निपुणता गभीरता और स्फूर्ति सत्य और शील शौर्य धैर्य सभी गुणो का समन्वय उनमें अद्‌भुत पद्धति से हुआ था। अपनी भूल स्वीकार करने का अनुपम सामर्थ्य आप सरीखे विरले महात्माओं म ही देखा गया। आप सारे सघ को एक सूत्र मे बधा हुआ देखना चाहते थे। आगमानुसार सदाचार के वे मूर्तिमान प्रतीक थे। जब ऑपरेशन के लिये भक्तमडल ने उन्हें मजबूर कर दिया तो आप बोले 'जब तक मैं वापस ठीक होकर न आऊँ कोई मुझे साधु न माने न मुझे वदना-व्यवहार करे। जब तक प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध न हो जाऊँ मुझे एक साधारण मनुष्य समझें। परगुणानुराग सरीखे दुर्लभ सद्‌गुण की आप साक्षात् प्रतिमा थे।

जब मैंने रामकृष्ण परमहस के चरित्र की एक घटना सुनाई तब उनकी आखों में अश्रुओं का सचार हो आया। प्रमोद भावना उमड़ पड़ी। मैंने अर्ज किया जब परमहस श्री रामकृष्णदेव को अतिम समय कैंसर हो गया था तो भक्तों ने कहा प्रभो आप माताजी से ठीक करने की प्रार्थना करें। परमहस बोले भाई अगर माताजी पूछेंगी कि रामकृष्ण जीवन भर तो तूने अपने लिये कुछ नहीं मागा अब मरने पर माँगने आया तो कैंसर अच्छे करने के सिवाय (शरीर के स्वास्थ्य के सिवाय) और कुछ भी वस्तु तेरे पास माँगने को नहीं है ? ऐसा मगर माँ पूछेगी तो क्या उत्तर दूगा ? इसलिये हिम्मत नहीं होती कि यह तुच्छ माग प्रभु की अनुपम शक्ति के सामने रखूँ। प्रभु की अनुपम शक्ति माताजी से तो दु ख में धैर्य ही मागना चाहिये। आचार्यश्री ने फरमाया धन्य है उनकी सहनशीलता ! मैं तो कमजोर हूँ। परन्तु अपने-आप की कमजोरी ही देखने वाले इस महत्तम सत को प्रभु तीर्थंकर के प्रसाद से ऐसा धैर्य मिला कि अत में सर्वस्व त्याग करके क्षमाश्रमण का आखिरी धर्म सम्पन्न किया। आशा ही नहीं विश्वास

है कि पूज्यश्री नानालालजी महाराज उनकी आज्ञा का पालन करते कराते हुए और अनुमोदित करते हुए आपकी आत्मा को स्वर्ग मे भी शाति पहुँचाने में समर्थ हो सकेगे। श्रमण सघ की मति भी राजमति के अनुसार रह नेमियो पर मुग्ध न होकर प्रभु का अनुकरण करेगी और सादडी के इस अद्‌भुत नेमजी की जान के वरराजा का मोक्ष मार्ग में भी साथ देगी।

अगणित वन्दन

नेमचन्द चौपड़ा अजमेर

श्रमणशिरोमणि जैन समाज के ज्योतिपुञ्ज पूजनीय आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहब सत्य न्याय सिद्धान्त और जैनत्व के अडिग प्रहरी थे। उनका तप पूत शरीर वह क्षणभगुर मानव-काया हमारे बीच में नहीं है। आपके धैर्य की क्रूर कर्मों ने काफी परीक्षा ली और असह्य वेदना को भी आप शान्त भाव से सहन करते रहे तथा अन्त समय में आपने स्वय सथारा धारण कर अपने कर्मो पर विजय प्राप्त की। यह बड़ा आदर्श हमारे सामने हैं। सघ की एकता और अखण्डता के प्रति उनके हृदय मे जो अन्तर्भावना थी उसे साकार रूप देने मे हम सब प्रयत्नशील रहेगे। यही उन पूज्य पुरुषो के प्रति मेरी श्रद्धाजली है। ऐसे पूज्य पुरुप को मेरा अगणित वन्दन हो !

तेरे ध्यान मे लीन रहे

कुन्दरसिह खिमेसरा अध्यक्ष, श्री व स्था जैन श्रावक सघ उदयपुर

चारित्रचूड़ामणि परम श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के निधन से मुझे ऐसा भास हो रहा है कि मेरे पास करने को कुछ कार्य ही नहीं रहा गया है। आचार्यश्री इतने सरल एव भद्रपरिणामी थे कि चार वर्षो में मैं कई बार समय पर अपनी ड्यूटी पर नहीं पहुँचता कभी देरी कभी शीघ्रता हो ही होती थी लेकिन पूज्य गुरुदेव ने कभी उपालम्भ नही दिया और जाने पर यही फरमाते - "भाई गृहस्थी हो देर हो गई कोई बात नही है।

उपरोक्त शब्दो को सुनकर मैं स्वय द्रवित हो जाया करता था और मन ही मन प्रण करता था कि भविष्य मे समय पर ही उपस्थित होऊँगा लेकिन वैसा फिर भी नहीं कर सका।

पूज्य गुरुदेव एक आध्यात्मिक नेता थे ससारी झझटो से ऊपर उठ चुके थे। सुख दु ख को समान समझते थे। जब वे व्याधि-ग्रस्त हुए तब से मेरा सन्निकट-सा सम्बन्ध हो गया था लेकिन इतने लम्बे अरसे में कभी भी मैंने श्रीमुख से उफ शब्द का उच्चारण तक नहीं सुना था।

आचार्यश्री शरीर छोड व्याधि से मुक्त हो गए। बात भी सच है कि स्वर्गीय सुखो को तिलाजली देकर इस दु खी ससार मे रहते भी कैसे (जहा अवर्तनीय आनन्द है हजारो देवी देवता उनकी सेवा के लिए तरस रहे होगे) ? उन्हें हमारी सेवा पसन्द आती भी कैसे ?

जाओ गुरुदेव ! कहीं भी जाओ। लेकिन मेरा मन तेरे ध्यान में सदैव लीन रहे इस आशा के साथ मैं श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

साधुता के सच्चे प्रहरी

प पूर्णचन्द दक सचालक वीरवाल छात्रावास उदयपुर

जिस शान्त-दान्त और भव्य मूर्ति के कल तक हम दर्शन किया करते थे आज उसे स्वर्गीय कहते हुए हृदय भर आता है। पूज्यश्रीजी ने अपना मानव-जीवन सफल कर लिया। हर व्यक्ति जीवन मे वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। विरल व्यक्ति ही सफल होते हैं। पूज्यश्रीजी की सफलता का कारण उनके द्वारा धर्म की जड़ का सिचन करना है। सवत् 1984 में जब मैं बीकानेर में अध्ययन करता था पूज्यश्रीजी ने फरमाया 'मैं अपने गुरु के वचनों को भगवद्वचन मानकर उनका पालन करता हूँ।' आज्ञा पालन और विनय पूज्यश्रीजी में कूट-कूट कर भरे थे। आणाए धम्मो' और 'धम्मस्स मूल विणाओ' —इन शास्त्रीय वाक्यों को श्रीजी ने जीवन में साकार कर लिया था। यही उनकी सफलता का मुख्य कारण है। जीवन में यश और लोकप्रियता विनीत व्यक्ति ही पाते हैं।

साधु जीवन के वे सच्चे प्रहरी थे। स्वय जैन साधु के बारीक से बारीक क्रियाकाण्ड का दिल से पालन करते थे तथा दूसरो से करवाते थे। न करने पर हृदय मे दु खित होते थे। साध्वाचार के सरक्षण के लिए उन्होंने मान-अपमान का खयाल नहीं किया। अगर डोर थोड़ी ढीली कर देते तो सम्मान अवश्य मिलता। परन्तु निर्ग्रंथ सस्कृति और तीर्थकरो की आज्ञा का पालन न कर पाते। पूज्यश्री ने साधु-जीवन की विशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है। उनके जैसे सजग प्रहरी के चले जाने से जैन समाज मे एक महान् कमी हुई है।

परन्तु वन्धुओ ! चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। पूज्यश्रीजी अपने स्थान पर एक ऐसे योग्य शिष्य को प्रहरी के रूप में स्थापित कर गये हैं जो स्वय सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र की विशुद्धि म सजग है। खूटा मजबूत है। सत्य पर डटे रहने वालो की सदा जय-विजय होती है। मैं अपनी ओर से तथा कानौड श्रीसघ की ओर से पूज्यश्रीजी के प्रति श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

जैन समाज के सिरताज

प घेवरचन्द बाठिया 'वीरपुत्र'
न्याय व्याकरणतीर्थ सिद्धातशास्त्री

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर प र श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा के स्वर्गवास के समाचार रेडियो द्वारा जानकर हार्दिक दु:ख हुआ। वर्तमान समय मे समस्त साधु-समाज मे आपके समान प्रभावशाली कोई दूसरा साधु नजर मे ही नहीं आता है। आप समस्त स्थानकवासी जैन समाज के सिरताज वीर शासन के वीर सेनानी ज्ञान-क्रिया के अपूर्व भण्डार एव त्याग-वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थे। जिस प्रकार शुद्धाचार के आप पालक थे वैसा ही शुद्धाचार आप समस्त साधु-समाज मे देखना चाहते थे। इसके लिए अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी आप सदा प्रयत्नशील रहे किन्तु जब परिस्थिति को प्रतिकूल देखा तो उस से पृथक होने मे सत्साहस का परिचय दिया। आपने वीर-शासन को उन्नत रखने का सदा प्रयत्न किया और भगवदाज्ञा-आराधना में अपने जीवन को लगाया। आपके स्वर्गवास से जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। किन्तु आपने अपने वरद हस्तो से प र श्री नानालालजी म सा को युवाचार्य पद प्रदान कर समाज को एक योग्य नेता दिया है जिसमें कि समस्त जैन समाज का पूर्ण विश्वास और श्रद्धा है। आप इस पद के सर्वथा योग्य हैं। आशा है कि आप स्वर्गीय पूज्यश्री के पदचिह्नों पर चलकर समाज को सदा उन्नति की ओर अग्रसर करते रहेंगे।

शोक, शोक, महाशोक

बागमल चौहान, महागढ (म प्र)

पूज्य गुरुदेव समाज की एक महान निधि थे। उनका एसे समय मे उठ जाना समाज के लिए महान् दुख का कारण है। आपश्री के गुणों के कारण आप प्रातस्मरणीय पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी मसा के पाटानुपाट पर आचार्य एव जब श्रमण सघ का सगठन बना आप उपाचार्यश्री चुने गये और आप द्वारा समाज को समय समय पर योग्य मार्ग दर्शन मिलता रहा।

आपश्री सगठन के पूर्ण हामी व शिथिलाचार के हमेशा विरोधी रहे हैं। आप स्वय ने भी जब भी बीमारी वगैरह के समय लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त समाज के सामने किया जो भुलाया नहीं जा सकता है। ऐसा महापुरुष ही समाज को योग्य मार्ग प्रदर्शित कर सका है। इतनी लम्बी बीमारी के समय भी आप प्रसन्न मुद्रा मे रहते थे और पूर्वसचित कर्मों को खत्म करते रहते थे। आज जब भी गुरुदेव का स्मरण होता है वह सौम्य मूर्ति व मुस्कराहट वाला चेहरा सामने नजर आता है। उस दिन जब नानालालजी मसा को युवाचार्य पद की चादर समर्पण करने राजमहल के प्रागण मे जिस समय उठाकर ले जाया गया क्या प्रसन्न मुद्रा थी ! देखते ही बनता था। शरीर से कमजोर परन्तु चेहरे से वे दिव्यमान उस दिन के बाद दर्शनो की उत्कण्ठा लगी रही। परन्तु दुर्भाग्य थे कि दर्शन नहीं कर पाया और वो चमकता हुआ सूर्य सदा के लिये अस्ताचल की ओट मे छिप गया। उदयपुर शहर एक तीर्थधाम बन गया था। वो यात्रा टूट गई। उदयपुर का सघ भी महान पुण्यशाली श्रीसघ है जिसे गुरुदेव जैसे महापुरुष का वर्षों सेवा का लाभ मिला व उनने भी जो समाज की तन-मन धन से सेवा की वो चिरस्मरणीय रहेगी। उदयपुर का श्रीसघ भी धन्यवाद का पात्र है।

वर्तमान पूज्यश्री नानालालजी मसा एव पूज्यश्री के आज्ञानुवर्ती होनहार सत महात्माओं से यही विनम प्रार्थना है कि पूज्य गुरुदेव जो श्रमण सगठन के हामी थे उसी प्रकार श्रमण सगठन को पूर्ण सहयोग देकर पूज्य गुरुदेव के अधूरे कार्य को पूर्ण कर समाज को गौरवान्वित करें।

अन्त में परमश्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव को विनम्र श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ विराम लेता हूँ।

चमकता सितारा अस्त हो गया

धनराज शाहा बोथरा, तेजपुर

परमश्रद्धेय आचार्यवर श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज के निधन से जैन समाज को ही नहीं परन्तु सारे भारत को क्षति पहुँची है। आप सरल प्रकृति के धीर गम्भीर त्यागमूर्ति महातपस्वी धर्म के मर्मज्ञ सस्कृत के प्रगाढ विद्वान थे। मुझे भी अपने चाचाजी साहब श्री चतुरभुजजी शाहा बोथरा के सग आपके दर्शन तथा प्रवचनों का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके ओजस्वी सुन्दर भाषण श्रवण करने से वडा आनन्द आया। सभी श्रोतागण आपकी अमृतमयी वाणी श्रवण करके मुग्ध हो जाते थे। आपने उग्र विहार करके राजस्थान के ग्राम ग्राम मे तथा भारत मे दया धर्म का प्रचार कर अपने सदुपदेश द्वारा उनका जीवन सुधारा है यह प्रशसनीय है। आपका नाम अमर हो गया है। जिससे मेरे हृदय मे यह सद्भावना उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी छोटी बुद्धि से इन महातपस्वी के पावन चरणो में अपनी श्रद्धाजली अर्पण करू।

स्मृतिया दिल मे अकित रहेगी

मानसिह बैद मत्री श्री जैन श्वे तेरापथी सभा मुम्बई

आज की हमारी जनरल सभा वयोवृद्ध पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज के देह-परित्याग पर सवेदना प्रकट करती है। आपके स्वर्गवास से न केवल स्थानकवासी समाज को वल्कि सारे जैन समाज को वडी क्षति पहुँची है। आप वड़े विद्वान और योग्य आचार्य थे एव जैन धर्म की ख्याति मे आपने वहुत वड़ा योगदान किया। आपकी स्मृतियाँ हरेक जैनी के दिल मे अकित रहेगी।

श्रद्धाजली

शिखरचन्द्र कोचर बीए एलएलबी आरएच जेएस, सिविल एड एडीशनल सेशन्स जज सीकर (राजस्थान)

प्रात स्मरणीय परमपूज्य जैनाचार्यश्री गणेशलालजी महाराज जैन समाज के एक महान् नेता थे। उनकी वक्तृत्वशैली अत्यत प्रभावशालिनी एव युक्तिपूर्ण थी जिसके कारण श्रोतागण के हृदय पटल पर आपके सदुपदेशो की अमिट छाप अकित हो जाती थी। इतने महान् पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी आपका जीवन अत्यत सात्त्विक एव स्वभाव अत्यन्त सरल था जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति आपके सपर्क मे आते ही आनदित एव उल्लसित अनुभव करता था। मुझे आचार्यश्री के दर्शन करने तथा उनके निकट सम्पर्क मे आने का सुअवसर अनेक वार प्राप्त हो चुका है और मेरे मन में आचार्यश्री के प्रति अगाध श्रद्धा है। आचार्यश्री ने जैन समाज की उन्नति के लिए जो महान् कार्य किए वे सर्वविदित हैं। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि जैन-समाज आचार्यश्री द्वारा प्रदर्शित पथ पर चल कर स्व परहित साधन म समर्थ होगा। आचार्यश्री की पुनीत स्मृति मे उनका विशाल शिष्य समुदाय पार्थिव स्मारक वनाएगा परतु उनका वास्तविक स्मारक तभी वनेगा जव हम उनके अधूरे कार्य की पूर्ति में तन मन तथा धन से योगदान करेंगे और उनके प्रेरणादायक सदुपदेशों का पालन कर अपने-आप को राष्ट्र का सच्चा नागरिक सिद्ध करेंगे।

* * *

श्रद्धांजली खण्ड

पद्य

मन सहज तरलित बन गया

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म सा

पूर्ण सयम सगठन के मार्गदर्शक सो गये।
जब सुना हमने गणेशलाल मुनि सुर हो गये।।
गत दिनों की याद से मन सहज तरलित बन गया।
नेष्ट काल कराल ने हा कार्य निन्दा का किया।।1।।

शील सयम के धनी मुनिवर जगत से हर लिया।
लाभ क्या तुमको हुआ नरलोक सूना कर दिया।।
लघु चाल से सचम प्रदेशो का नहीं तेरे कहा।
जीत तेरी है नही अमरत्व चेतन मे रहा।।2।।

अनजान बदला रूप लख मन शोक करते मोह से।
मतिमत जन उत्सव मनाते ज्ञान के सदोह से।।
रज दूर करके कर्म की निज रूप पाना इष्ट है।
हों अमर पूज्य गणेश हार्दिक कामना यह श्रेष्ठ है।।3।।

ज्ञान सयम से सुशोभित सघ अविचल हो सदा
सुरलोक से दो शक्ति हमको ऐक्य चमके सर्वदा।
वीर-वाणी की विमल गगा हमे उज्ज्वल करे
आचार सह प्रचार औ सुविचार मन का मल हरे।
पूज्यवर तेरी सुजनता और दृढ विश्वास को
सयम निरत होकर दीपावें सघ और समाज को।

त्यागमूर्ति

प. श्री चपकमुनिजी म.सा. (बरवाला सम्प्रदाय)

अमारा सघना नायक ! अमोने याद आवे छै।।
अमारा सघ सचालक ! अमोने याद आवे छै।।

मेवाड़नी वीर भूमि मा उदयपुर शहर छै सुन्दर,
अमारा पूज्यश्री नो त्या थयो छै जन्म शुभ सुखकर ।।1।।

लघुवय माहीं जाणी ने स्वरूप अस्थिर ससार नों
विषयों ने विष समा जाणी लीधु शरणु जवाहर नो।।2।।

जगत ना बधनो छोड़ी मोहनी जाल ने तोड़ी
विकट आ पथ सयम नो जीवन माही लिधो जोड़ी।।3।।

गुरुनी सेवा मा रही ने थया पडित प्रखर ज्ञानी
मधुरी स्नेहमरी वाणी सुणी आवी नमे मानी।।4।।

हतो अमारा सघ माहीं एक चमकतो तेज सर्वा ओ तारो
सामल्यु अमें अचानक के झरी पड्यो दिव्य सतारो।।5।।

हृदय मा दुख थयु भारे वियोगे आघात लाग्यो छे
थही मा वेदना मन मा अन्तर मा शोक छायो छै।।6।।

अरे क्या गया पूज्य गणेश तप अने त्यागनी मूर्ति
शुभ सयमी ज्ञान नी ज्योति हवे क्या रे थसे पूर्ति।।7।।

विकट छै कालनी क्रीड़ा करमनी छै गति न्यारी
महाशक्तिशाली जीवों पण ऐनी सामे गया हारी।।8।।

हवे तो धैर्य धारीने जीवन मा त्याग अपनाओ
महापुरुष ना मार्ग मा चाली सयमनी भावना गाओ।।9।।

शिथिलिता ने भगावी ने हृदय मा वीरता लावो
आडम्बर थी रहो डरता प्रभु आज्ञा शिरे धारो।।10।।

'चपक मुनि' गुण-गान करी आजे श्रद्धाजली भाव थी आपे,
अमर छै आत्मा ते नो प्रभु चिर शाति तो आपे ।।11।।

एक ज्योति बुझी

श्री सौभाग्यमुनि 'कुमुद'

आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

जिसका उज्ज्वलतम प्रकाश
चिर निविड तिमिर पाखण्ड पाप।

नित्य चीर-चीर करता विकास
अवरोध तोड़ रहा गतिमान।।

पा चोट कभी प्रगति न रुकी
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

प्रखर तेज पर मृदुल कान्ति
शुद्ध सत्य तथ्य युत मधुर गिरा।

मुस्कान कोष आनन कमल।
प्रतिक्षण विराजित अतुल शाति।।

जिन-पथ वहा एक ध्वजा झुकी
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

रहा धन्य-धन्य उज्ज्वल जीवन
तप पूत विमल कही विध प्रेरक
शुभ भव मे हो मगल गमन
क्रमश निश्रेयस का आलिगन।

श्रद्धाभिसिक्त हृदय कली
पूज्य चरण मे ढली झुकी।
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।।

समाज के वो प्राण चले

श्री गणेशमुनिजी शास्त्री साहित्यरत्न

महाप्रयाण का वज्र सन्देश
जब कानो मे सुन पाया
गिर पडी लेखनी हाथो से
और दिल भी गद्‌गद हो आया।
यह वही कैसी प्रलय वायु
जो कर्णधार को ले चली
तेरी इस छलना पर दुनिया
रोती है हे काल बली !
उदियापुर का गौरव नायक
गजानन्द था नाम अभिराम
सकल जैन समाज को
देता आनन्द आठो याम।
कैसे छोड़ तुम चले गये।
हाय ! स्वप्न अधूरे रह गये
कुछ आशा के मूक स्वर भी
झकृत होने रह गये।
कोई जाकर कह दो उसे
जैन समाज पुकारती है
यह अभाव आज तुम्हारा
सहन नहीं कर पाती है।
समाज के वो प्राण चले
भक्तों के अभिमान चले
असहायों के भुजबल और
विज्ञों के अरमान चले।
अमर रहेगी अवनीतल पर
उज्ज्वल तेरी यश गाथा
आज श्रद्धाजली अर्पण हेतु
मैं चरणों में शीश झुकाता।

मन मे रह गई

महासती चम्पाकुवरजी म.सा

प्यारा पूज्यवर के दर्शन की म्हाँरे मन में रह गई रे।
मन में रह गई रे म्हाँरे दिल में रह गई रे।।टेर।।

श्यामली सूरत मोहनगारी लगती प्यारी रे।
कहाँ ढूढू और कहाँ मैं पाऊ सूरत तुमारी रे।।1।।

दर्शन की आशा मे मैं तो वर्षों गुजारी रे।
(पण) काल बली आगे जोर न चाले गयो डकारी रे।।2।।

असह वेदना सही आपने दृढ़ता समता धारी रे।
अद्‌भुत ज्योति जगा के बताई, लीला निराली रे।।3।।

रह-रह करके थारी प्रभुजी याद सतावे रे।
चरणों री चाकर चम्पाकुवर गुण प्रभु का गावे रे।।4।।

वन्दन हम करते मगलमय श्री गणेशस्वामी को

भवरलाल सेठिया, भूतपूर्व मत्री, बीकानेर सघ

वन्दन हम करते मगलमय श्री गणेशस्वामी को।
साघ शिरोमणी शासन नायक गुरुवर हितकामी को।।1।।

इन्दरा-नन्दन दुख-निकन्दन जीवन प्राण सहारे,
क्षेमकर निर्ग्रन्थ हितकर गुरुवर देव हमारे।
साहिब सुत गण ईश गुरुवर, सकल श्रेयकामी को।।2।।

जिन चरणों में महामुनियों ने अपने पद (पदवी) विसराये
जिन चरणों में सब सघों ने (भक्तों ने) अपने शीश झुकाये।
उन चरणों पर बलि-बलि जाए धन्य मोक्षगामी को।।3।।

सत्य-सरलता देख आपकी दुर्जन भी चकराए।
दिव्य-भव्य मुनि मानव गण सब फूले नहीं समाए।
मिल सबने माना निज अगुआ रक्षक इस स्वामी को।।4।।

पचमहाव्रत शुद्ध आराधक जिन-वाणी के ज्ञानी
अनुशासन सयम-रक्षा हित जब गूजी तव वाणी।
लख आज्ञा हुए श्रमण स्तब्ध तब गोपी निज हस्ती को।।5।।

भूलों को फिर पथ बतलाने अपना 'पद' विसराया
'कहेरी' जिस अतिशात भाव से सच्चा मार्ग (मर्म) बताया।
सत्पथ पर रहे अटल मेरु सम, धन्य-धन्य स्वामी को।।6।।

युवाचार्य पद समाचारी भी जिन-वाणी हित दीने
श्री काति अरु तुलसी से भी क्षमा-याचना कीने।
आलोचन अरु सथारायुत पाये शिव पदवी को।।7।।

रहे कृपा गुरुदेव तुम्हारी सघ सकल यह चाहे
खमो-खमो अपराध हमारे, सादर शीश झुकाए।
शरणागत हम होकर नमते श्री गणेशस्वामी को।।8।।

ज्योतिर्मय

चपालाल छल्लाणी

माघ कृष्णा दूज दिन हुआ तुम्हारा महा-प्रस्थान
जैसे मौसम की बाहों से चली गई मधुमय मुस्कान।

तेरा कोटि-कोटि अभिवन्दन हे ! जिन-सम्राट् यशस्वी
हे ! प्रकाश-पुञ्ज ज्योतिर्मय तू था वीर-तपस्वी।।

तुम गौरव-गरिमा के गायक जिन-शासन के सन्यासी
सयमी ध्यानी जिन-पथ-गामी आराधन-अभ्यासी।
धवलवस्त्र में हिमगिरि सदृश धवल-कीर्ति से मण्डित
श्रेयस्कर मेधावी तुम थे औ दर्शन के पण्डित।।

मेवाड़ भूमि के तपपूत ओ ! सस्कृति के नायक
शिवपुर पथ परिचायक तुम थे जिन-शासन उन्नायक।
तेरे चरण चिह्न पै चलकर बनी धरा कल्याणी
अक्षय प्रेम सुधा-कण बाँटे बनकर औघड़ दानी।।

जैन-जवाहर के परम शिष्य तुम गुरु-भक्ति के धारक
गुमराहों के लिए ज्योति बन, कहलाये तुम तारक।
तुम्हें नमन है आज देवते ! श्रद्धा-सुमन बिछा करके
सदा सघ यह नाज करेगा आशा मन में भरके।।

श्रद्धाजली शत-शत प्रणाम

लक्ष्मीराम पुगलिया, कोलकाता

ओ गुरुदेव ओ देवदूत,
निर्बन्ध मुक्त हे चिर महान् !
सपूर्ण देश में पावनतम।
फैला है तेरा यशोगान।
कर में तलवार सत्य की ले
औ ढाल अहिंसा की विशाल
घलते भीषण सघात वहन

सामर्थ्य नहीं हो स्वय काल
कर वहन क्षमा का विकट धनुष
अमृतवाणी का ले तीक्ष्ण बाण
जिस पर आघात किया तत्क्षण
पा गया सत्य वह अमर प्राण
तुम नवप्रभात के किरण पुरुष
अवलम्ब तुम्हारा अरिहत नाम
जिसका क्षण-भर ही स्मरण-मात्र
पूरा कर देता मनोकाम।
तुम जन-हितैषु सच्चे साधक
हे देव तुम्हारे श्रीचरणों में
श्रद्धाजली शत-शत प्रणाम।

क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करले

मुनीन्द्रकुमार जैन

क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें।
आज इतना रह गया कि याद में निश्वास भरलें।।

ज्ञान का वह सूर्य था आलोक जिसने भर दिया था
पूत पावन था कि जिसने विश्व पावन कर दिया था
प्रेम की वसी बजाई विश्व मोहित कर दिया था
तीर्थ था ऐसा निराला पाप सब के हर लिया था।
आज भाग्याकाश को बिन सूर्य के आभास कर लें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें।।

वह चला था छोड़कर जग त्याग के पथ पर बढ़ा था
धर्म के मेरु-शिखर पर वह बढ़ा था - वह चढा था
उसकी मुट्ठी में अरे ! चारित्र का झंडा गड़ा था
साच का वह पक्ष ले अन्तिम समय तक वह लड़ा था
आज सब मिल करके उसका याद हम इतिहास करलें।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

हार था अनमोल जिससे हम सुशोभित हो रहे थे
वह सजग प्रहरी था हम निश्चित होकर सो रहे थे,
मेघ वृष्टि का था वह हम बीज देखो वो रहे थे
दीर्घजीवी वह बनेगा बाट यह हम जो रहे थे
यह न सोचा था कि उसको काल अपना ग्रास करले।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

चारित्र के चूड़ामणि ने जो दिया सन्देश हमको
सत्य है यह वह गया पर दे गया आदेश हमको
मार्ग पर उसके चलें सशय नहीं लवलेश हमको
अपने विरोधी के लिये दिल में न लाना क्लेश हमको
जो चिरतन सत्य है उस सत्य का सन्धान कर लें।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

फूल जो बन कर खिला है एक दिन मुरझायगा वह
लालिमा लेकर उदित जो सूर्य भी ढल जायगा वह
आज बचपन हो भले कल वृद्ध भी बन जायगा वह
यह हमारा आज जीवन मृत्यु कल बन जायगा वह
पर बन सके यह मुक्त जीवन ऐसा कुछ अभ्यास करलें।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

तुम गणेश गये सदा को पर दीप जो तुमने जलाया
वह न बुझ सकता कभी हो लाख झझावात आया
हम बढ़ेंगे मार्ग पर, जिस पर चरण तुमने बढाया

याद वह हमको रहेगा गीत जो तुमने सुनाया
जो कमी बुझती नहीं वह प्रेम-जल की प्यास भरलें
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

आज धूमिल बन गई दूर की मजिल हमारी
आज सूनी बन गई है जो रही महफिल हमारी
आज कितनी बढ़ गई है रे अरे, मुश्किल हमारी
भावना के दीप की लौ जल रही तिल-तिल हमारी
आज पतझड़ आ गया जो अब उसे मधुमास करलें।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें ?

आज यह विश्वास हम गुरुदेव। तुमको दे रहे हैं।
भावाभीनी अजलि हम देव ! तुमको दे रहे हैं।
जो हमारे पास वह सर्वस्व तुमको दे रहे हैं।
भक्ति के दो बूद अश्रु, देव ! तुमको दे रहे हैं।
भक्त हम आये चरण में अब हमें भुजपाश भर ले।
क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास कर लें।
आज इतना रह गया कि याद में निश्वास भर लें।।

अपूर्व तपोधनी

कुम्भाराम शास्त्री, साहित्याचार्य

पलट गयी कर्तार की
जो बनी हुई थी यहा विधि।

था सौम्य विग्रह पुरुष का
समरसता उनकी अमूल्य निधि।
प्राणियो की बात ही क्या
चकित रह गई वहा स्वय विधि।

था न्योछावर ससार उन पर,
ओ इन्द्र भी कह दूँ यदि
देवों का तो कथन छोड़ो
झुक गई वहा नवोनिधि।

कर तपस्या घोर जिसने
जीत लिया था भवोदधि
भोगों की सत्ता नष्ट हुई
रोती रही यहा अष्टसिद्धि।

देख तपोवल अपूर्व जिसका
थी मौत भी आगे बढी
वन मृत्युञ्जय चल पड़े
रह गई देखती खुद विधि।

किसी वाणी से तेरा गान करू
'गुण इश' तुम्हारा अल्पबुद्धि
वस त्रिलोक के पूजित हो तुम
यह जानता है सव युग सुधि।

हे ज्योर्तिमय अमर आत्मन् !
है तू ही खेवनहार जलधि
कर समर्पित सत् श्रद्धाजलि
क्यों न होऊ पार पयोधि।।

अमर कहानी

जतनलाल हीरावत, कोलकाता

ओ जैन जगत प्रतिपाल गणेशीलाल महात्मा ज्ञानी जिनकी है अमर कहानी।।टेर।।

अवतार उदयपुर मे पाये जहा वीर अनेको प्रगटाये
उस वीर भूमि की वह अनमोल निशानी। जिनकी है।।1।।

वे साहिबलालजी के नन्दन थे दुनिया के दुख निकन्दन थे
इन्द्रा माता के लाल धर्म की शानी। जिनकी है।।2।।

व्याख्यान छटा कुछ न्यारी थी बोली अमृत-सी प्यारी थी
सुनने वालों की सफल बनी जिन्दगानी। जिनकी है।।3।।

शेरो की गर्जना करते थे पुरजोश धर्म का भरते थे
कर दो कुर्बान तुम धर्म पे जोश-जवानी। जिनकी है।।4।।

कथनी-करनी को एक किया दुर्जन जन से भी प्रेम कया
और क्षमाशीलता की दे गये अमर निशानी। जिनकी है।।5।।

पूर्वकर्म वेदनी उमड़ तब पड़े आत्मशक्ति से जूझ पड़े
असह्य वेदना सही शान्त रसलानी। जिनकी है।।6।।

रह-रह कर याद सताती है मधुर वाणी मन भाती है
सब बिलख रहे हैं मन ही मन मुरझानी। जिनकी है।।7।।

स्वर्ण अक्षरों में है जीवनी अमर, जब तक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्र
गुण गौरव गाथा गाये है हिन्दुस्तानी। जिनकी है।।8।।

सघ सरताज

कविवर श्री गोपीचन्द गोरख, चितोडगढ

जवाहर की बदौलत है कि परखा था गजानद को
कसौटी पर खरा उतरा कसा जब-जब गजानद को।
जो सौंपा भार तुझको था निभाया शान से तूने
श्रमण सघ का पसीना हो बहाया खून वहा तूने।

कि परखा तूने भी ऐसा गजानद नाम कर जाये
कि परखा जब श्रीसघ ने टच सौ पर नजर आये।
हमें भी गर्व है इस पर कि तू जन्मा उदयपुर में,
यही शादी यहीं दीक्षा स्वर्गवासी उदयपुर में।

नाना प्रकार से परखा तो नाना ही नजर आये
तेरे हाथों से दी चादर कि युवाचार्य बनवाये।
आशीर्वाद तेरे से कि नाना खूब दीपेगा
गादी प्रभाव ही ऐसा कि नाना मोटा दीखेगा।

रहेगा याद हम सबको सवत् 19 क्या निकला
कि खतरा एक सीमा पर दूसरा फिर ये आ निकला।
फिकर मत करना तू पूज्यवर कि यह नाना हमारा है
सघ सरताज है सबका कि यो पूज्यवर हमारा है।

शाबासी है उदयपुर को सघ कमाल का निकला
तन-मन धन सेवा करी वैकुठ भगवान का निकला।
मैं चरणों का सेवक हूँ, कि गढ़ चितौड़ रहता हूँ,
बदौलत है गजानन्द की कि जो कुछ भी मैं कहता हूँ।

ज्ञान का दीपक जलाया

शकर जैन, भीम

आन को तूने हटाया
ज्ञान का दीपक जलाया।

लक्ष्य से भटका जमाना
निर्ग्रंथता के बोल भूला।
तब मत्र सूत्रो का पुन
ससार को तूने सुनाया।।

हिसा करके जीत जाना
हार है सब से बड़ी।
लेकिन अहिसा का नया
फिर पाठ है तूने पढ़ाया।।

शिथिलता को दूर करना
और इस पै कडक रहना।
सयमी जीवन के लिए
आदर्श यह तूने बताया।।

इतनी असह्य वेदना में भी
वही सौम्यता थी झलकती।
कर एकाग्र चित्त को फिर
ध्यान प्रभु लौ में लगाया।।

मौत से इनसान डरता
पर न तू उससे डरा।
और उस पर विजय पाकर,
अन्त तक तू मुस्कराया।।

अल्प बुद्धि वाला हूँ मैं
पूज्यवर गुरुदेव मेरे।
ओर कुछ नहीं बन सका तो
श्रद्धा के दो पुष्प लाया।।

गणेश हस्त युगले श्रद्धाञ्जलीरिहार्प्यते

राजविद्वान वेदान्ती प बशीलाल, व्यास कानोड

स्वागत यो महाभाग जन भाग्यादिहागत
गणेशाख्युपाचार्य श्रमणोघैकनायक ।
कानोड़ीयोत्सुकजना जाता पूर्ण मनोरथा
जैन धर्मोपदेशाय चातुर्मासार्थमागता।।

साक्षान्महावीर जिनेन्द्र देवो गणेश रूपेण किमागतोऽत्र।
यो जैन धर्म परिरक्षणाय करोति यत्न मधुरोपदेशै ।

अधर्मो हि सगेधेत लोलुपैश्च निरकुशै
उपाचार्य समोवक्ता नोपदेष्ट परिभ्रमेत।
परिवर्तनमालोक्य जैनधर्मे पुरातनै
पुनस्तच्छुद्धिकामोऽत्र करुणो मुनिरागत ।।

अनेक विद्याम्बुधिपारगो यो निरस्तरागादिमनोमलश्च।
कृपानिधियश्चि परोपकारी भजे गणेशह्वदितं निरतरम्।
सशुद्ग सत्वैरुपगीय मानात्तापौपधात्करणमनोनुकूलात्
गणेश पीयूष समोपदेशात् कथं विरज्येत् नरस्सुपेयात्।।

प्रयागेण समतीर्थं कानोड़ भारतोऽज्ज्वल।
उपाचार्य गणेशेन सोपदेशत्रये कृतं।।

सत्प्रार्थना शास्त्र चरित्र युक्ता सद्ज्ञान सद्दर्शनसच्चरित्र ।
ब्राह्मीन पुत्री त्रिपथा त्रिवेणी गणेशवाणी दुरितौघ हन्त्री।
धर्मोयटो धर्म गुण वृणोति समीरितो यो गुरु पकजेन
स्यात्मा श्रम ज्ञाति यत्रदृष्ट कानोड़ ग्रामो जयति प्रयाग ।

पर्युपणे गणेशस्य चातुर्मासे च सगम।
हर्षवर्धन राडैव कृत कानोड़ श्रावकै।।

सत्प्रार्थना शास्त्र चरित्र सारे बाह्यादिरुपात्म परमात्मभेदै
येत्वन्त रायाऽखिल कर्म भेदा सुक्तावृता वर्तन वर्तकाश्च।।

शास्त्राभ्यासवती रसादरस विदा निष्कर्षिता या नवा।
दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थ विषया साक्षाच्च वैपश्चिति।
ते द्वेऽप्यपवलम्ब्य जैनमखिल तत्त्व पर श्रवित।
तत्वज्ञाय गणेशलाल मुनये तस्मै नमस्कुर्म हे।।

योवाक्सुधा विमलवृष्टि वहैकरूप
सानन्द सिन्धु परिपूर्ण रसैक पान
श्री जैन धर्म निरतोऽखिल ताप हर्ता
सत्यव्रतो विजयतेऽत्र मुनि महेन्द्र ।।

यद्वाक्स्मृते श्रवणभक्ति पराभवन्ति रागादिदोषनिरताश्च विशुद्ध सत्त्वा।
यद ध्यानतो निज चिदात्म सुखास्तिऽसोजी व्याचिरम् मधुर वाक मुनिराट गणेश।।

(हिन्दी पद्य)

यदि जैन सकल समाज को आकाशमण्डल मान लो।
तो उपाचार्य गणराज को तुम ज्ञान सूरज जान लो।

दोहा

जो थे हिरदे लोह से कीने कनक अमोल
मुनि गणेश परमारथी पारसपरसि अतोल।।

अहो धन्य तुम धन्य हो जैन सघ कानोर।
जो कीना उपकार सभी आभारी बहु और।।

मुनिवर चातुर्मास में श्रावक जन कानोर
तन-मन-धन-जन सेविके यश पायो चहुँ ओर ।

ज्ञान अपूर्व यज्ञ को कीनो जैन समाज।
धन्यवाद बहु देत हैं श्रोताजन मिलि आज।।

समर्पण

चतुर्दशाधिकेवर्षे द्वि सहस्रे च वैक्रमे
पूर्णिमाया कार्तिकस्य वशीलालेन निर्मिता।
वेदान्ते राजविदुषा कथाव्यासेन श्रद्धया
गणेश हस्त युगले श्रद्धाजलीरिहार्प्यते।

एक अच्छे-से मकान की छत छह गई

विमलकुमार राका, नीमाज (राजस्थान)

एक अच्छे-से मकान से मकान की छत ढह गई।
अब क्या रहा शेष, बात सब बह गई।।

पूज्य थे गणेशलालजी जैन साधु सघ के।
ज्यों रगों में एक काला आप भी थे उसी अग।।
यह बात सही तर्क-वितर्क में थे आप एक रग के।।
हस ताल से उड़ा चिड़िया चहचही।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।1।।

गम्भीर ये थे शूर थे वीर थे वो बाकुरे।
नेह कैसा लगाया है ऐ जैन जाति आंकरे।।
शीश चरणन में नत कर, 'जय गणेश भाव रे' ।।
प्रस्थान से चोट लगी गही राह गई।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।2।।

लापता होते-होते पाठ हम सबको सिखाया।
लय रटो प्रभु में हमेशा सुधर जायगी काया।।
जीओ जीने दो वीर का सदेश घर-घर जगाया।।
निर्दयी मोत क्यों तू यही यह यग को यह गई।
एक अच्छे से मकान की छत ढह गई।।3।।

मानो न मानो विनती यही ओ मोक्ष जाने वाले।
राह जिस पर तुम चले हमें भी उस राह बुलाले।।
जगत के हम जैनी सब ही जय सघ की गा ले।

खाक तन हुआ बस सौरभ रह गई।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।4।।

गुरुदेव

मागीलाल पिछोल्या, गगापुर

ओ पूज्य गणेशीलाल गुरु तुम प्राणो से प्यारे थे।
जीवन की आकुल घडियों के बस तुम्हीं एक सहारे थे।।
हम देश-विदेश कहीं भी हों पर होता तेरा ध्यान सदा।
तुम्हें गुरुदेव कहाने में होता था हमको अभिमान सदा।।
रग-रग में नाम तुम्हारा था बस हमको तो आधार तुही।
माता-सा निश्छल प्यार तुही पिता-सा विमल दुलार तुही।।
था राष्ट्रदूत था धर्मराज भारत का नयन-सितारा था।
शासन सिरताज हमारा था जैनों का एक सहारा था।।
तेरी समकित को धारणकर हमने सुख गाने गाये हैं।
बस देख राख की ढेरी को आखों से आसू बहाये हैं।।
ऐ जवाहर के पट्टधर तुमने जाने के पूर्व सब सोच लिया।
गुरु नाना को गुरुतर देकर हम सब का दुख कुछ दूर किया।।
इनकी आज्ञा सिर धारेंगे है आन हुक्म की शासन की।।
स्वर्गस्थ आत्मा की शान्ति रहे जय-जय हो पूज्य गणेशी की।।
पूज्य नाना गगापुर पर कृपा करें जैसी कृपा गुरुओं ने की।
मागीलाल श्रद्धाजलि भेंट करे जय रहे आपके शासन की।।

गणेश गुण महिमा

तोलाराम हीरावत 'प्रकाश' देशनोक

मैं तो उन्हीं सुगुरु का दास
जिन्होंने सद्‌ज्ञान दिया।।टेर।।
महावीर शासन में रहकर जैन धर्म चमकाया।
नाम जिन्हों का गणेश गजानद,
जवाहिर पाट दिपाया जिन्होंने.........।।1।।

गुरु गरिमा मैं कैसे गाऊ ये गुण के भडार।
नेम ओ पारस सम शोमते
जन जीवन के हार जिन्होंने.........।।2।।

त्याग तपस्या नम्र गुणों से निज जीवन चमकाया।
घोर वेदना सहकर तन पर
अद्‌भुत रग दिखाया जिन्होंने.........।।3।।

क्षमा श्रमण का नाम सुना पर प्रत्यक्ष देख हम पाये।
चिकित्सक वर्ग तेरी गाया को
देख-देख चकराये जिन्होंने.........।।4।।

रणभूमि में कूद पड़े थे बन केशरिया बनड़ा।
कर्मशत्रु से विजय प्राप्त कर,
लिया मुक्तगढ़ नेड़ा जिन्होंने.........।।5।।

कलिकाल में नाम आपका प्रभुजी एक सहारा।
सदबुद्धि देना सदबुद्धि दाता
बेड़ा हो पार हमारा जिन्होंने.........।।6।।

तेरे पुण्य प्रताप से गुरुवर आनन्द छाया।
वर्तमान पूज्यवर 'नाना' ने
जैन चमन चमकाया जिन्होंने.........।।7।।
नये शिष्य मण्डली विच शोभे जैसे चाँद अनोखा।
आपश्री के दर्शन करने का
'इन्द्र' चाहे मौका जिन्होंने.........।।8।।
जैसे कृपा रही 'गणीवर' की वैसी रहे तुम्हारी।
'हीरावत' हृदय मे वसजो
याही अर्ज गुजारी जिन्होंने.......।।9।।

श्रद्धाञ्जलियाँ विभिन्न सघो, सस्थाओ द्वारा

1 श्री बीकानेर श्रावक सघ - चम्पालाल लोढा उपमन्त्री
2. श्री अ भै सेठिया जैन पा सस्था बीकानेर - जेठमल सेठिया मंत्री
3 शिक्षा भवन सोसाइटी उदयपुर बी.एल.नाहर मन्त्री
4 श्री स्था जैन युवक सघ इन्दौर प्रसन्नचन्द छाबड़ मन्त्री
5 गोहाटी श्रावक सघ गोहाटी - सागरमल लुकड़ दुलीचद बेताला
6 श्री जैन तेरापन्थी भिक्षु अनुयायी श्रावक सघ सरदारशहर–मन्त्री
7 श्री व स्था जैन श्रावक सघ हिंगणघाट–हुकुमचद जवरीलाल जैन उपमन्त्री
8. शिक्षा भवन हाई स्कूल उदयपुर - प्रधानाध्यापक - हेमशकर नागर
9 मीरा विद्यालय उदयपुर व्यवस्थापक
10 टैगोर सोसाइटी उदयपुर - व्यवस्थापक
11 नगर जनसघ उदयपुर - भानुकुमार शास्त्री मन्त्री
12. श्री दिगम्बर जैन कन्या विद्यालय उदयपुर - गुलजारीलाल चौधरी व्यवस्थापक
13 गाधी अध्ययन केन्द्र उदयपुर - कन्हैयालाल दक व्यवस्थापक
14 शिक्षण सस्था उदयपुर - यू.एस भटनागर प्रधानाध्यापक
15 हिन्दी विश्व भारती शोध प्रतिष्ठान बीकानेर - विद्याधर शास्त्री डायरेक्टर
16 श्री श्वे स्था जैन सघ चैन्नई - मोहन मल चौरडिया अध्यक्ष
17 श्री व श्वे स्था जैन श्रावक सघ मेड़ता सिटी मंत्री
18 श्री साधुमार्गी जैन सघ मालेगाव (नासिक) - मंत्री
19 श्री श्वे स्था जैन श्रावक सघ मनासा भैंवरलाल रूपावत
20 श्री व स्था जैन श्रावक सघ राजनान्दगॉव भीखमचन्द टाटिया मंत्री
21 श्री देव आनन्द जैन शिक्षण सघ राजनान्दगॉव - कन्हैयालाल गोलछा सहमंत्री
22. श्री ओसवाल समाज रामपुरा - हस्तीमल कौमती अध्यक्ष
23. श्री व स्था जैन श्रावक सघ सोजत रोड - दीपचद गूगा अध्यक्ष
24 सोजत नगर हरीभाई किकार, नगर प्रमुख
25 श्री जैन मित्र मण्डल ब्यावर पारसमल चौरडिया मन्त्री
26 श्री श्वे स्था जैन सभा बोलवारा - मन्त्री
27 श्री जैन रत्न पुस्तकालय जोधपुर - सम्पतचन्द सिंगी मन्त्री
28 स्थानकवासी जैन समाज खाचरोद - चौदमल जैन एडवोकेट सुजानमल मुथा
29 श्री जवाहर विद्यापीठ कानोड उदय जैन अध्यक्ष

30 श्री जैन शिक्षण सघ कानौड़ - व्यवस्थापक
31 श्री साधुमार्गी जैन सघ कानौड - अध्यक्ष
32 श्री जैन जवाहर मण्डल देशनोक- हुलास मल सुराना मत्री
33 श्री व स्था जैन श्रावक सघ नोखामण्डी मूलचद पारख मत्री
34 श्री श्वे स्था जैन सघ रायपुर (म प्र) घेणकरण जैन मत्री
35 जैन समाज कोटा - राजेन्द्रसिह मेहता माणकचद पालीवाल
36 श्री स्था जैन सघ आगरा - मत्री
37 श्री व स्था जैन श्रावक सघ अलवर - अमयकुमार सचेती मत्री
38 श्री जैन युवक सघ अलवर नरेन्द्रकुमार पालावत
39 पूज्यश्री सोहनलाल जैन कन्या महाविद्यालय अमृतसर - शारदा प्रधानाध्यापिका
40 एस एस जैन सभा अमृतसर - रोशनलाल जैन मत्री
41 व स्था जैन सघ जैन महिला मण्डल जैन युवक सघ बुलढाणा
42 स्था जैन श्रावक सघ भूपालगज भीलवाड़ा
43 श्री व स्था जैन श्रावक सघ भीलवाड़ा शॉतिलाल पोखरना
44 श्री व स्था जैन श्रावक सघ भाटखेडी
45 श्री व स्था जैन श्रावक सघ बनेडा - मोहनसिह भण्डारी
46 श्री अ भा सा जैन सस्कृति रक्षक सघ धार माणक लाल पोरवाड़ अध्यक्ष
47 श्री स्था जैन सघ - इन्दौर (म प्र) मत्री
48 जैन सस्कृति रक्षक सघ शाखा जोधपुर सम्पतराज डोसी मत्री
49 व स्था जैन जवाहर सघ जावरा (म प्र) फकीरचन्द पावेंचा अध्यक्ष
50 श्री मध्य भारत मेवाड़ प्रातीय व स्था जैन सघ जावरा
51 सागर जैन विद्यालय किशनगढ़ (राज) बुधसिह भण्डारी मैनेजर
52 एस एस जैन बिरादरी लुधियाना (पजाब) - हसराज जैन मत्री
53 व स्था जैन श्रावक सघ सादड़ी घाणेराव अनोपचद पुनमीया
54 श्री व स्था जैन श्रावक सघ नमक मण्डी उज्जैन - गोकुलचद सूर्या अध्यक्ष
55 श्री देहली गुजराती स्था जैन सघ दिल्ली स म. अजमेरा मत्री
56 श्री जैन सघ हातोद (इन्दौर) - नथमल जैन मत्री
57 श्री स्था जैन सघ (श्रमण सघ) - मत्री
58 श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल ब्यावर - नवरलाल चोरडिया मत्री
59 महिला कला मन्दिर इन्दौर - मोतीलाल सुराना मत्री
60 श्री व स्था जैन सघ अहमदनगर (महा) मा कि मुथा मन्त्री
61 श्री व स्था जैन श्रावक सघ जलगॉव - नथमल लुक्ड मत्री

62. श्री व स्था जैन श्रावक सघ धारणगाव (पू.खा.) अ त ओस्तवाल
63 श्री व स्था जैन श्रावक सघ सवाईमाधोपुर - मूलचद श्रीश्रीमाल अध्यक्ष
64 श्री व स्था जैन श्रावक सघ अजमेर - सहमत्री
65. ज्ञान भवन भीलवाड़ा - यशवन्तसिह नाहर एडवोकेट तेजमल बाफना एम एल ए (एक्स)
66 श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अहमदनगर) - चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी मत्री
67 श्री चाँदकुवरी जैन दातव्य औषधालय बीकानेर - रघुनन्दन लाल शर्मा प्रधा चिकित्सक
68 श्री महावीर जैन मण्डल बीकानेर - रूपचन्द सुराना अध्यक्ष
69 श्री गणेश विद्यालय बीकानेर - बाबूलाल शर्मा प्रधानाध्यापक
70 लक्ष्मी औषधालय बीकानेर - वैद्य ज्वालादत्त शर्मा भिषगाचार्य
71 मोहता आयुर्वेदिक सस्था बीकानेर शकरदत्त वैद्य अध्यक्ष
72. श्री जैन पाठशाला (प्राथमिक स्कूल) बीकानेर - करणीदान पाण्डेय प्रधानाध्यापक
73 श्री शाकद्वीपीय ब्राह्मण युवक सघ बीकानेर
74 श्री जैन कॉलेज बीकानेर - जयचन्दलाल नाहटा (एडवोकेट) मत्री
75 श्री सार्दूल सस्कृत विद्यापीठ बीकानेर - गजाधरलाल त्रिवेदी प्रधानाचार्य
76 हिन्दी विश्व भारती शोध प्रतिष्ठान बीकानेर विद्यावाचस्पति विद्याधर शास्त्री डायरेक्टर
77 भारतीय विद्या मन्दिर बीकानेर - नरोत्तमदास स्वामी कुलपति
78. जैन समाज करीमगज दीपचन्द भूरा सम्पतलाल बोथरा

लो महान् !
अन्तिम प्रणाम

इन पृष्ठो मे पूज्य आचार्यश्रीजी की जीवनी और सयम-तप-त्याग-साधना से पूत पवित्रता का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। किन्तु यह सिन्धु में बिन्दु के तुल्य है और एक महान् व्यक्तित्व ज्योतिपुज महामना का सर्वांगीण जीवन-चित्रण इन थोडे-से पृष्ठों में करना अथवा कुछ-एक घटनाओ का सकेत कर देना असीम को ससीम में बाधना है।

इन पृष्ठों में वही लिखा गया जिसे दृष्टि देख सकी है। लेकिन जो देखा है उसे व्यक्त करने में अपने श्रम का गोपन नहीं किया है। इस विश्वास के साथ कि महापुरुषों का नामस्मरण ही विवेकोपलब्धि मे सहायक है। उनकी गभीरता विराटता उदारता के प्रति शत शत वदन और अभिनदन करते हुए श्रद्धावनत हूँ। उनके वरद उपदेश प्रबुद्ध और प्रगतिशील बनायेंगे इस विश्वास के साथ पुन -पुन श्रद्धाजलि समर्पित है।

परिशिष्ट खण्ड

श्री वीतरागाय नम ।

दिल्ली चर्चा-समीक्षा

भूमिका

जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज जिनका कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज म विशिष्ट स्थान है ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्वाभाविक ढग से दिल्ली पधारे। पूज्यश्री का विहार के ग्रामों की तरफ विशेष लक्ष्य रहता है। जहाँ कहीं श्रावक का एक भी घर होता है उस गाँव को स्पर्श किये विना आगे नहीं बढते। स 2007 का चातुर्मास अलवर करने का विचार निश्चित हो चुका था। कारणवश अन्यत्र करने का आगार रख कर ही सत लोग वचन दिया करते हैं। चातुर्मास्य लगने मे चार मास जितना लम्बा काल था। इस बीच के समय मे ग्रामानुग्राम विचरते हुए पूज्यश्री अपने सात विद्यार्थी सतो के साथ जिनका अध्ययन उनके सान्निध्य मे होता है दिल्ली पधारे। दिल्ली आने का अन्य कोई हेतु न था।

इधर दिल्ली में उन दिनो श्वे तेरापथ सप्रदाय के नवम आचार्यश्री तुलसी अपने दल-बल के साथ अपने सिद्धान्तो का प्रचार करते हुए विद्यमान थे। आचार्यश्री तुलसी बड़ी तैयारी के साथ राजधानी मे पधारे थे। उनके साथ करीब पचास साधु-शिष्य और पचास साध्वी-शिष्याए थीं। सैकड़ों की सख्या में सेठ व सेठानिया भी उपस्थित थीं। खास करके थली प्रदेश के सेठ अधिक थे जिन का कोलकाता की ओर वाणिज्य है। इसके अलावा प्रचार के आधुनिक सारे साधन साथ मे विद्यमान थे। कई लारिया कारें हिन्दी-अग्रेजी के टाइपराइटर लिथो प्रेस लेखक मण्डल प्रचारक समुदाय– जिसके कई विभाग थे। उनमें कुछ वेतनभोगी थे और कुछ धर्मप्रचार रसिक सेठ-साहूकार भी। सेठ लोग अपनी कारों के साथ हाजिर रहते थे। एक विभाग दैनिक पत्रों के सपादकों से सपर्क साधने में व्यस्त था। दूसरा नेताओं और बड़े कहे जाने वाले व्यक्तियों से आग्रहपूर्वक विनतिया करके आचार्यश्री

श्री वीतरागाय नम ।

दिल्ली चर्चा-समीक्षा

भूमिका

जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज जिनका कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज मे विशिष्ट स्थान है ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्वाभाविक ढग से दिल्ली पधारे। पूज्यश्री का विहार के ग्रामों की तरफ विशेष लक्ष्य रहता है। जहाँ कहीं श्रावक का एक भी घर होता है उस गाँव को स्पर्श किये बिना आगे नहीं बढते। स 2007 का चातुर्मास अलवर करने का विचार निश्चित हो चुका था। कारणवश अन्यत्र करने का आगार रख कर ही सत लोग वचन दिया करते हैं। चातुर्मास्य लगने मे चार मास जितना लम्बा काल था। इस बीच के समय में ग्रामानुग्राम विचरते हुए पूज्यश्री अपने सात विद्यार्थी सतों के साथ जिनका अध्ययन उनके सान्निध्य में होता है दिल्ली पधारे। दिल्ली आने का अन्य कोई हेतु न था।

इधर दिल्ली मे उन दिनो श्वे तेरापथ सप्रदाय के नवम आचार्यश्री तुलसी अपने दल बल के साथ अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए विद्यमान थे। आचार्यश्री तुलसी बड़ी तैयारी के साथ राजधानी मे पधारे थे। उनके साथ करीब पचास साधु शिष्य और पचास साध्वी-शिष्याए थीं। सैकड़ों की सख्या मे सेठ व सेठानिया भी उपस्थित थीं। खास-करके थली प्रदेश के सेठ अधिक थे जिन का कोलकाता की ओर वाणिज्य है। इसके अलावा प्रचार के आधुनिक सारे साधन साथ में विद्यमान थे। कई लारिया कारें हिन्दी-अग्रेजी के टाइपराइटर लिथो प्रेस लेखक मण्डल प्रचारक समुदाय– जिसके कई विभाग थे। उनमें कुछ वेतनभोगी थे और कुछ धर्मप्रचार-रसिक सेठ साहूकार भी। सेठ लोग अपनी कारों के साथ हाजिर रहते थे। एक विभाग दैनिक पत्रों के सपादकों से सपर्क साधने में व्यस्त था। दूसरा नेताओं और बड़े कहे जाने वाले व्यक्तियों से आग्रहपूर्वक विनतिया करके आचार्यश्री

की सेवा में उनको लाने के कार्य मे जुटा हुआ था। एक विभाग साधारण जनता और शिक्षित समुदाय से आचार्यश्री तुलसी का सपर्क कराने के कार्य मे नियुक्त था। हिन्दी व अंग्रेजी के अलग-अलग लेखक थे। पडित मडली में हिन्दी अंग्रेजी और सस्कृत के विशिष्ट विद्वान् अपनी-अपनी ड्यूटी पर सचेष्ट थे। दिल्ली के कई दैनिक पत्रों के सपादको और मालिकों से सम्बन्ध जोड लिया गया था मतलब कि आचार्यश्री तुलसी बड़ी व्यवस्था और आधुनिक तरीके से अपने सिद्धान्तो का प्रचार कर रहे थे।

अणुव्रती सघ का उद्घाटन भी दिल्ली में ही होने वाला था। जिसके लिए बड़े जोरों से अखबारी प्रोपेगण्डा चल रहा था। आखिर एक दिन सघ का उद्घाटन भी आचार्यश्री के स्वहस्तकमलों द्वारा म्युनिसिपैलिटी भवन के बाहर वाले मैदान में सपन्न हो गया। उद्घाटन समारोह में सभा की शोभा बढ़ाने के लिए किसी बड़े नेता के आगमन के लिए बड़ी कोशिशें की गई मगर कोई नेता अपना समय देकर उपस्थित न हो सका इसका बड़ा खेद अनुभव किया गया। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को लाने के लिए तो चार मील पैदल चल कर स्वय आचार्यश्री तुलसी गवर्नमेण्ट हाउस पहुँचे थे ऐसा सुना गया। किन्तु डा राजेन्द्रप्रसाद *सकारण न पधारे। इतने विशाल प्रचार के बावजूद भी दिल्ली की आम जनता ने अणुव्रती सघ* के उत्सव मे कोई दिलचस्पी न ली यह बात उपस्थिति से मालूम होती थी। आचार्यश्री के सघ के सिवा करीब एक सौ स्थानकवासी बतौर दर्शक के उपस्थित थे अथवा पच्चीस तीस *व्यक्ति वे थे जिनको कारों में बिठा कर लाया गया था।* इनमें पाँच सात अखबारनवीस और सवाददाता भी थे।

अणुव्रती सघ के जलसे के अलावा साहित्यिक गोष्ठी आदि कई उत्सवों के मिस से दिल्ली की शिक्षित और साधारण जनता से सपर्क साधने की प्रत्यक्ष चेष्टा की गई थी। किन्तु प्रोपेगण्डा मे अखबारों के जरिये जितनी सफलता मिली उतनी अन्य साधनों से न मिली। बल्कि कहना चाहिये कि अन्य साधनों से नहींवत् ही सफलता मिली। दैनिक पत्रों में दिये हुए सत्य असत्य और अर्द्धसत्य समाचारो से दूरस्थ जनता बड़ी-बड़ी कल्पनाए करने लग गई थीं।

आचार्यश्री तुलसी की महत्त्वाकाक्षा को यहाँ बड़ा पोषण मिला। कितनी खुशी होती यदि जैन धर्म के नाम से किया जाने वाला यह प्रचार अहिंसा के शुद्ध रूप का होता। हम जैनों को बड़ा गर्व होता कि एक जैन आचार्य भारत की राजधानी में अहिंसा के वास्तविक रूप का प्रचार कर रहे हैं। किन्तु खेद इस *बात का है कि जैन धर्म का नाम लेकर* एक ऐसी विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है जिसका समर्थन दुनिया का कोई धर्म मत सप्रदाय और पथ नहीं करता। पाठकों को आगे पता लगेगा कि आचार्यश्री तुलसी की जगह विलक्षण *क्या-क्या मान्यताएँ हैं।* दुनिया को आश्चर्य में डालने वाली अपनी मान्यताओं को छिपाकर

अणुव्रती सघ और ब्लैकमार्केटिग के विरोध की आड़ लेकर आचार्यश्री तुलसी प्रचार मे सफल हुए।

ऐसी विचित्र मान्यताएँ अपने मन में रख कर आचार्यश्री तुलसी राजधानी के जरिये भारत व दुनिया को अपना सदेश सुनाना चाहते थे। कई भोले भक्तों ने तो यहाँ तक कल्पना कर ली थी कि महात्मा गाधी के बाद आचार्यश्री तुलसी ही उनका स्थान ग्रहण करके अहिसा का प्रचार कर सकते हैं। बेचारे भक्तो को क्या पता कि आचार्यश्री तुलसी की अहिंसा कैसी अजनबी विकृत और अहिसा का नाम धराने वाली हिसा है। कल्पना की उड़ान मे उडने वालों ने तो यह भी लिख मारा कि दिल्ली में गाधीजी के बाद आचार्य तुलसी ने नियमित प्रवचन जारी किया है आदि। मगर दुःख है कि दिल्ली की जनता और नेताओं ने उन प्रवचनो से लाभ नहीं उठाया।

यह सब-कुछ चल रहा था कि इन्हीं दिनों आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली मे पधारे। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज तेरापथ और आचार्यश्री तुलसी की असली मान्यताओ से पूर्ण परिचित थे। उन्होने अपने दैनिक प्रवचनो मे अपने श्रावको और आम-जनता को सावध ाान रहने की दृष्टि से तेरापथ सप्रदाय के ग्रन्थों के उद्धरण बता कर उनकी असली मान्यताओं से परिचित कराना प्रारम किया। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के पास अपनी जबान के सिवा अन्य कोई साघन न था। कल्प मर्यादा मे बधे होने से इतर साघनो का उपयोग इष्ट न था। बिना आमत्रण के जो लोग उनके भाषणों मे उपस्थित हो जाते थे उन को प्रसगवश तुलनात्मक दृष्टि से दया-दान का परिचय करा दिया करते थे।

एक आक्षेप आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज पर उनकी भक्तमण्डली और तेरापथ सम्प्रदाय की तरफ से यह किया जाता है कि वे अकेले ही तेरापथ की मान्यताओ का खडन क्यों किया करते हैं ? क्या जैन समाज में अन्य साधु, श्रावक आचार्य या विद्वान् नहीं हैं ? अकेले यही क्यों इस मुद्दे पर इतना भार देते हैं ? बात सही है। इस वक्त आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ही तेरापथ की कुमान्यताओं का अन्यों की अपेक्षा अधिक खडन किया करते हैं। हमें कारण जानना चाहिये कि क्यो आचार्यश्री इस खण्डनात्मक प्रवृत्ति में भाग लेते हैं।

बात यह है कि जिस थली-प्रदेश और मेवाड मे आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के अनुयायी हैं उन्हीं प्रदेशों में आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी भी हैं। निकटवर्ती होने के कारण आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इसकी वास्तविक मान्यताओं से परिचित हैं। जीव रक्षा सहयोग और सेवा मे पाप मानते हुए भी किस कुशलता से ये अपना बचाव करते हुए प्रचार करते हैं यह बात आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज खूब जानते हैं। इनके पूर्ववर्ती प्रसिद्ध से

जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज ने कई ग्रथ लिखकर इस छिपी हुई विचारधारा को आम-जनता की नजरो मे ला रखा है।

क्या कोई इनसान ऐसी कल्पना भी कर सकता है कि शुद्ध निस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर मोटर की झपट मं आते हुए नादान बालक को हाथ से खींचकर बचा लेने वाला व्यक्ति अपनी इस चेष्टा से पाप-कर्म का बन्धन करता है ? वृद्ध माता-पिता की सेवा शुश्रूषा और भोजन-वस्त्रादि द्वारा सेवा करने वाला पापी है हिसक है ? किसी भूखे प्यासे को अन्न और निर्दोष पानी पिलाने वाला पाप करता है ? भूकप या अन्य प्रकृति-प्रकोप से पीड़ित की सहायता करना पाप है ? नहीं ऐसी कष्टकल्पना हमारे तेरापथी भाइया के अतिरिक्त विद्यमान जगत् का कोई मनुष्य नहीं कर सकता। हमारे तेरापथी भाई ही यह मानते हैं कि 'जैन साधु के सिवा इस जगत् के सब प्राणी हिसक हैं पापी हैं। अत हिंसको या पापियो की रक्षा करना हिंसा और पाप की रक्षा करना है। जैन साधु भी वही है जो तीन अगुल चौड़ी मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधता हो। वह एकमात्र अहिसक है उसकी सेवा रक्षा और उसको दान देने से परमार्थ सिद्ध होता है। बाकी सब प्राणी असयती हैं अत उनकी रक्षा करना या उनको किसी प्रकार का भौतिक सहयोग देना सर्वथा पाप है। भगवान् महावीर ने गोशालक की रक्षा करके भूल की है। इत्यादि विचित्र मान्यताएँ हैं जिनका स्पष्ट दर्शन इनके उद्धरण बताकर आगे कराया जायेगा। इन विचित्र धारणाओ को जानकर किस सहृदय व्यक्ति का दिल दु ख से न भर जायगा ! जब पवित्र जैन धर्म के नाम से इन निकृष्ट खयालात का प्रचार किया जाता है तब जानकार जैनी का दिल दु ख से भरे बिना नहीं रहता।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज जैन धर्म के नाम से होने वाले इस अधर्म प्रचार से बड़े दु खी हैं। कई मूर्ख लोग यह भी आक्षेप करते हैं कि हमारी वृद्धि को देखकर ईर्ष्यावश आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज हम पर झूठा दोषरोपण करते हैं। जो लोग आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के निकटवर्ती हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि वे धर्म के नाम से प्रचलित होने वाली असत्य धारणाओ से कितने व्यथित हैं। अपनी व्यथा को वे कभी कभी व्याख्यानो म व्यक्त किया करते हैं। यदि जैन समाज के इतर फिरकों के विद्वान् सन्त या श्रावक तेरापथ-मान्यता की रीढ को पहचानते होते तो वे भी अवश्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के साथ होते। वे भी इसी उत्साह और लगन के साथ इन मिथ्या धारणाओं के खण्डन और प्रकटीकरण के कार्य मे सलग्न होते।

महाराजश्री का तेरापथी भाइयों पर वास्तविक प्रेम है। इसी कारण उनकी कुधारणाओ का उन्हें ज्ञान कराकर सच्ची श्रद्धा कराना चाहते हैं। व्यक्तिगत कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। छींटाकशी करने की कल्पना व्यर्थ ही की जाती है। महाराजश्री अपने भूले हुए भाइयों को

मार्ग पर लाना चाहते हैं। जो भाई आचार्यश्री भीखणजी की कुशिक्षाओ के प्रभाव से उन्ही के सम्प्रदाय से विलग होकर मार्गभ्रष्ट हो गये हैं उन्हे सत्पथ पर लाना चाहते हैं। रोगी को कड़वी दवा पसन्द नहीं होती किन्तु भविष्य मे सुखकारी होने के कारण रागी की पसन्दगी-नापसन्दगी का खयाल किये विना वैद्यराज दवा पिलाते ही रहते हैं। कभी-कभी रोगी वैद्य को गालियाँ तक सुना देते हैं। किन्तु परोपकर करना जिनका स्वभाव है वे गालियो की परवाह नहीं करते। वे मन मे जानते हैं कि बीमारी मिटने पर रोगी की तरफ से धन्यवाद मिलने वाला है।

भारत के जैनेतर लोग भी तेरापथ की असली मान्यताओ से कतई अनभिज्ञ हैं। कोई ऐसी कल्पना भी तो नहीं कर सकता कि विवेकपूर्वक जीवरक्षा या सेवादि कार्यों में पाप होता है। कई बार बड़ी अडचन अनुभव की जाती है जब लोग यह कह देते हैं कि भला ऐसा भी कोई पथ हो सकता है जो रक्षा और सहायता मे पाप मानता हो ! तुम लोग दूसरो को गिराने के लिये द्वेषवश ऐसी मन-गढन्त बातें कर दिया करते हो। जब तेरापन्थ के मान्य ग्रथा के उद्धरण बताकर समझाया जाता है तब लोग विश्वास करते हैं और बडे हैरान होते हैं।

इस कथन का यह अर्थ न लिया जाय कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के अतिरिक्त अन्य लोग इस पाप-मान्यता का खण्डन या विरोध नही करते। करते हैं मगर कम।

पूज्यश्री के आगमन से पूर्व दिल्ली स्थित मुनिश्री सुदर्शनजी अपने दैनिक भाषणो में तेरापन्थ का वास्तविक परिचय करा रहे थे तथा प मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी समय समय पर तेरापन्थ की मान्यताओ पर प्रकाश डालते रहे हैं।

पूज्यश्री के आगमन के अनन्तर आगरा की तरफ से पधारे हुए उपाध्याय कविवर प मुनिश्री अमरचन्दजी महाराज ने भी दिल्ली के प्रवचनो मे तेरापन्थ की सकुचित और लोकहित-घातक मान्यताओ पर गहराई से प्रकाश डाला है। कविजी ने तो आगरा की तरफ भी इस विषय का अच्छा प्रचार किया था। कविश्री तेरापन्थ की नब्ज को पहचान चुके हैं। इतना ही क्यों कविश्री ने राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू को भी अपनी मुलाकात में इस लोकहित-नाशक विचारधारा से अवगत करा दिया है।

श्री बच्छराजजी सिघी सुजानगढ निवासी ने 'भीषण मान्यता' नामक टेक्स्ट लिखकर तेरापन्थ की मान्यताओ पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसी प्रकार समय समय पर जैन तथा जैनेतर व्यक्तियो ने जिनको तेरापन्थ की गुप्त मान्यताओं का पता लग चुका है खडन तथा विरोध किया है।

अभी पिछले दिनो पण्डित सुखलालजी का 'तेरापन्थी मित्रों के प्रति निवेदन' प्रकाशित हुआ था जिससे भारत की विद्वद्मण्डली परिचित है। प सुखलालजी समग्र जैन समाज में

बडे विद्वान बुजुर्ग और स्पष्टवक्ता हैं। पडितजी सत्य और अहिंसा का प्राणपण से पालन करने की चेष्टा किया करते हैं। उनके वचन जैन समाज बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से पढता है। पडितजी का प्रत्येक शब्द विचारपूर्वक लेखी-रूप धारण करता है। जिस हित-कामना से प्रेरित होकर आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज तेरापन्थी मित्रों की मान्यताओं का रहस्योद्‌घाटन करते हैं उसी हित-कामना से पडितजी ने भी तेरापन्थी मित्रों को सावधान किया है। कड़वी दवा से लाभ लेना-न लेना रोगी पर निर्भर है। दवा तो वही दी जाती है जो उस रोग पर लागू होती है। इस प्रकार की शुद्ध भावना या तत्त्वचर्चा में राग-द्वेष या ईर्ष्या का आरोप करना हृदय की क्षुद्रता ही कही जा सकती है। कौन आत्मार्थी पुरुष ऐसा होगा जो ईर्ष्या-द्वेष से अपने हृदय को कलुषित करके दूसरों का परमार्थ साधने की कोशिश करना पसन्द करता होगा ? मिथ्या कल्पना करने वाले स्वतत्र हैं उन्हें कौन रोक सकता है मगर मिथ्या कल्पना से वे अपना ही अनिष्ट करते हैं।

हाँ एक बात स्मरण में आती है कि तेरापथ के नवम आचार्यश्री तुलसी के पूर्ववर्ती आद्य व चतुर्थ आचार्यश्री भीखणजी व जीतमलजी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में अपनी मान्यताएँ जनता के समक्ष रखी थीं। वे खुले शब्दों में कहते थे कि साधु से इतर जीव असयती हैं और उनकी रक्षा या सहायता करना सर्वथा पाप है। रक्षा का अर्थ न मारना है तथा सहायता का अर्थ धर्मोपदेश देना मात्र है। कष्टग्रस्त प्राणी को कष्ट से मुक्त करने का प्रयत्न करना या भूखे को अन्न देकर सुख पहुँचाना या बचाना पाप है अधर्म है। आचार्यश्री तुलसी की मान्यता भी अतरग में तो यही है किन्तु चूकि वे प्रकाश में आना चाहते हैं - अपने सकुचित दायरे को भेद कर इस विस्तृत जगत् में प्रवेश करना चाहते हैं अत स्वसप्रदायगत मान्यताओं को बड़ी चतुराई से छिपाने की कोशिश करते हैं। रक्षा और सहयोग के कार्यों को लौकिक कार्य करार देकर व्यवहार में पुण्यफल की बात कहने लगे हैं। इस व्यवहार पुण्य का क्या स्वारस्य है यह साधारण जनता तो क्या समझे मगर बड़े बड़े पडित भी समझने में चक्कर खा जाते हैं।

एक कुआरी कन्या को गर्भ रह गया। वह अपने पाप को बड़ी कुशलता से छिपाये रहती थी। किन्तु पेट मे दर्द होने के कारण उसने एक दिन एक कुशल दाई को अपना पेट बताया। दाई ने पेट के हाथ लगाते ही झट से कह दिया कि बाई ! कर्म फूटा हुआ है। बहिन ! कब तक तू इस पाप को छिपाने में सफल रह सकेगी ? प्रतिदिन गर्भ बढ़ता जाता है। एक न एक दिन पाप का भण्डाफोड़ हुए बिना न रहेगा। कुछ दिन मोटी बुद्धि वाले लोग इस बात को न समझ सकेंगे किन्तु फल पकने पर जनसाधारण से यह बात छिपी न रह सकेगी तब तुझे दुनिया को अपना मुख दिखाना बड़ा कठिन हो जायगा। कन्या ने दाई के समक्ष

अपनी कठिनाई रखी कि मैं वडी उलझन मे हू। इतने दिनों से धारण किये हुए गर्भ के प्रति भी बड़ा ममत्व है और लोक लज्जा का भी बडा भय है। न गर्भ का मोह छूटता है और न लोक निन्दा का भय। मैं बडी विचित्र गति मे फसी हुई हूँ। छिप छिप कर रहना भी मेरे लिए मुश्किल है। और बडे प्यार से पालित-पोषित गर्भ को गिराना भी सहज कार्य नहीं है।

दाई ने दिल को कठोर बनाकर उस कन्या को यह सलाह दी कि यदि तू दुनिया मे इज्जत के साथ मुक्त विचरण करना चाहती है तो गर्भ को गिराये विना छुटकारा नहीं है। तू उस वदर की तरह आचरण करके उलझन से मुक्त नहीं हो सकती जो छोटे मुख के घट मे रखे लड्डू को हाथ से कट्ठा पकड़ लेता है और घट से छुटकारा पाना चाहता है। घट का मुख इतना छोटा है कि वदर का खुला हाथ उसमे प्रवेश कर सकता है लड्डू से युक्त मुष्टिवद्ध हाथ उसमे से निकलना शक्य नहीं है। लडडू का ममत्व छोड़े विना घट से छुटकारा नहीं हो सकता। लडडू को भी ममत्वपूर्वक पकड़े रहना और मुक्त विचरण की भी कामना करना एक उलझन ही है। अत प्यारी बहिन ! मेरी सीखामण है कि या तो तू घर मे छिप कर बैठी रह या अपने प्यारे गर्भ को गिराने की चेष्टा कर। दाई ने यह भी कहा कि बहिन ! तू अपने वैभव-वल के मद मे मत रहना कि दुनिया मेरा क्या बिगाड सकती है ! दुनिया बड़ी विचित्र है। वह बडो-बडो की छोटी-सी भूल भी सहन नहीं कर सकती। फिर तेरी भूल तो बहुत बड़ी और सच्ची है।

आचार्यश्री तुलसी की विचित्र धारणाओ को आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज खूब समझते हैं। अच्छा हो इनकी सलाह मान कर आचार्यश्री तुलसी अपना और दूसरो का भला करें।

इस प्रकार आचार्यश्री तुलसी अपने क्षेत्रो मे जिस तौर-तरीके से दयादान का स्वरूप बताते थे वह दिल्ली मे प्रयुक्त न करके नवीन ढग से नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की वार्ते करने लगे। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज बड़े हैरान थे कि जो आचार्य माता पिता की सेवा करने में पाप मानते हैं दीन-दु खियो की सहायता करने मे पाप मानते हैं एक मनुष्य द्वारा दूसरे की कष्ट मे मदद करना पाप मानते हैं वह दिल्ली मे नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की वार्ते कहते हैं यह कैसी विचित्रता है ! माता पिता को भूख लगने पर सथारा (यावज्जीवन अन्न-जल का त्याग) करा देने मे ही सच्ची सेवा मानने वाले अथवा उनको धर्मोपदेश सुनाने में ही वास्तविक सेवा मानने वाले और अन्न वस्त्र-औषधादि द्वारा सेवा करने मे पाप होने की प्ररूपणा करने वाले आचार्यश्री तुलसी राजधानी मे बडी चतुराई से पेश आ रहे हैं। एक तरह से इस रुख से आचार्य गणेशलालजी महाराज प्रसन्न थे कि अल्पकाल और सीमित क्षेत्र में

पहुचाना होला पहुँचा देते। इस चतुरतापूर्ण तरीके को विद्वानो ने पसद किया। वे चर्चा करने लगे कि आचार्यश्री तुलसी किसी सप्रदाय की निन्दा या खडन मडन नहीं करते। वे अपनी बात का विवेचन करते हैं। किन्तु विद्वानो को क्या पता कि बीच-बीच मे वे कैसा तीर चला जाते जो उनके विपक्षी को कितना घायल कर देता। 'घायल की गत घायल जाने और न जाने कोय'। इस घातक शैली से तो खुले शब्दो मे नाम लेकर किसी की कुधारणाओ का निराकरण करना ज्यादा बेहतरीन तरीका है। मगर यह तो स्वभाव या आदत का प्रश्न है। जिसकी जैसी आदत होती है वह उसी तरीके से बर्ताव करता है। पाठक उस वक्त के समाचार पत्रों मे प्रकाशित हुए भाषणो मे यह बात पढकर सत्य तक पहुँच सकते हैं।

इन्हीं दिनो मे अमर भारत' के ता 11 मई 1950 के अक मे आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी श्री शुभकरण सुराणा चूरू का एक लेख प्रकाशित हुआ जिसका कुछ अश इस प्रकार है -

विश्वस्त सूत्र से यह जानकर खेद हुआ कि इतर जैन सम्प्रदाय के लोग आचार्यश्री तुलसी के प्रभावशाली भाषणो एव उपदेशो को श्रवण कर प्रसन्न होने के बदले ईर्ष्या और डाह करते हैं।

जब से बाईस सम्प्रदाय के पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली पधारे हैं उनके अनुयायी लोग आचार्यश्री तुलसी एव उनकी सम्प्रदाय के प्रति पर्चेबाजी कर रहे हैं। किन्तु किसी पर्चे मे यह बताने का कष्ट किसी ने भी नहीं किया कि पूज्यश्री हुकमीचन्दजी महाराज से लेकर वर्तमान पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज तक उन महानुभावों एव उनके अनुयायी साधुओ ने -

(1) कितने चूहे बिल्ली के मुह से छुडाये ?

(2) कितने जलते हुए बाडो को खोलकर कितनी गायो की रक्षा की ?

(3) मोटर एव गाड़ियो से दबते हुए कितने बच्चो के प्राणो की रक्षा की ? यदि नहीं तो फिर दूसरो पर ऐसे आक्षेप क्यो किये जाते हैं ?

स्मरण रहे तेरापथ सम्प्रदाय की ओर से न तो कभी ऐसी पर्चेबाजी हुई और न भविष्य में होने की सम्भावना ही है। मिथ्या प्रचार से तेरापथ सम्प्रदाय की गतकाल में उन्नति ही हुई है। जहाँ आचार्यश्री भिक्षु स्वामी के समय सिर्फ 13 साधु एव 13 ही श्रावक थे वहा आज आचार्यश्री तुलसी के अनुसधान में करीब साढे छ सौ साधु एव साध्विया और लाखों की सख्या में श्रावक (उपासक) हैं। तथापि सभ्यता के नाते मैं पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज से नम्र निवेदन करुगा कि राष्ट्रपति के कथनानुसार आप भी आचार्यश्री तुलसी द्वारा स्थापित

अणुव्रती सघ के नियमो का प्रचार कर इस शुभ कार्य मे हाथ बटाए जिन्हें अपनाने से मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकता है और अपने अनुयायियो को मिथ्या प्रचार करने से फौरन रोक द। यदि किसी बात मे मतभेद भी हो तो आचार्यश्री तुलसी से मिलकर उनका समाधान करलें।

जब पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री श्री लियाकतअलीखा कराची से दिल्ली आकर भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलालजी नेहरू से विचार-विनिमय कर परस्पर के मनोमालिन्य को मिटा सकते हैं तो क्या पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली मे विद्यमान रहते हुए भी आचार्यश्री तुलसी से मिलकर अपनी शकाओं का समाधान नहीं कर सकते ? मैं तो कहूगा– अवश्य कर सकते हैं।

स्मरण रहे गन्दे प्रचार से तो परस्पर राग-द्वेष बढने एव जैन धर्म की अवहेलना होने की सम्भावना है।

-शुभकरण सुराणा चूरू

इस लेख को पढ़कर स्थानकवासी जैनों के दिलों को गहरी चोट पहुँची। कई लोग बड़े क्षुभित और उत्तेजित हो गये जिनको आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने शान्ति रखने का उपदेश देकर शान्त किया। दिल्ली में स्था जैनों के करीब एक हजार घर हैं। कई शरणार्थी बन्धुओं ने भी जैनी आबादी में वृद्धि की है। जोशीले पजाबियो ने बड़ी कठिनाई से अपने जोश को काबू म रखा। लेख पढ़कर सबका यह अनुमान हो गया कि अवश्य इस लेख के पीछे आचार्यश्री तुलसी का हाथ है।

इस लेख म शुभकरण सुराणा ने यहाँ तक लिख डालने की हिमाकत की है कि क्यों न आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इस एकता के जमाने में आचार्यश्री तुलसी की सेवा म उपस्थित होकर शकाओ का निराकरण कर लेते। श्री सुराणा यह जानते हैं कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज की अवस्था 61 वर्ष की है और आचार्यश्री तुलसी की 34 वर्ष की। सवत् 1962 के साल में जब आचार्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने जैन दीक्षा धारण की थी तब आचार्यश्री तुलसी का जन्म भी न हुआ था। दीक्षावृद्ध ज्ञानवृद्ध अनुभववृद्ध और अवस्थावृद्ध आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज को आचार्य तुलसी की सेवा मे उपस्थित होने का आह्वान एक धृष्टता नहीं तो क्या है ? जो तेरापथी जैनी अपनी मिथ्या धारणाओं के कारण आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के समाज मे से ही विलग होकर निकले हैं वे आज इस प्रकार लिखने की उद्दतता करते हैं यह उनका अविनय अक्षम्य है।

दूसरी बात इस लेख मे उन महान् आचार्यों की आशातना की गई है जिनका चारित्रमय जीवन तपस्या और विशुद्ध जीवन प्रसिद्ध हैं। आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज जिन्होने 21 वर्ष तक निरन्तर बेले-बेले पारणा किया था उनका नाम लेकर लेखक ने अपने हृदय की क्षुद्रता का परिचय दिया है। और आचार्यश्री जवाहर जिन्होने अनेक ग्रन्थ लिखकर दया और दान की भरपूर पुष्टि की है तथा जो तेरापन्थ की मान्यताओ की नाड के विशेषज्ञ और पूर्ण पारखी थे जिन्होने थली प्रदेश मे विचरकर जीवरक्षा और सेवा का जैन धर्म की मान्यतानुसार निधडक होकर प्रचार किया था उनसे पूछा जाता है कि आज तक कितने चूहों की बिल्ली से रक्षा की है ? लेखक ऐसा मान लेता है कि साधु जीवरक्षा नहीं कर सकता। उनके गुरुओ ने उनके दिमाग मे यही बात ठसा रखी है कि साधु या श्रावक मरते जीव की रक्षा नहीं कर सकते करने पर पाप लगता है। किन्तु जैन शास्त्रानुसार यह बात कतई गलत है जैन शास्त्र ऐसा नहीं मानता। जैन शास्त्र तो कहता है कि अपने प्राणों की बलि देने का अवसर आये तो बलि देकर भी दूसरों की रक्षा करो। जैसी तुम्हारी आत्मा है वैसी दूसरे की भी है। तुम्हे अपने प्राण प्रिय हैं और कोई दयालु आकर तुम्हारी रक्षा करता है तो वह तुम्हे कितना भला लगता है ? वैसे ही दूसरे प्राणियो को भी अपने प्राण प्रिय हैं। यदि वे कष्ट मे हों तो उन को कष्टमुक्त कर देना महान् अहिंसा है। इस कार्य को हिंसा कहना नितान्त अज्ञानता है। जैन धर्म के अतिरिक्त विश्व के सारे धर्म भी रक्षा और सेवाकार्य को हिंसा नहीं मानते। केवल तेरापथ और उसके आचार्यश्री तुलसी की ही यह प्ररूपणा है कि रक्षा और सहायता पापकार्य हैं। पाप भी साधारण कोटि का नहीं किन्तु चोरी जारी और ठगाई जितना पाप। ऐसी पाप-मान्यताओ को हृदय में धारण कर कोई पन्थ कब तक टिक सकता है ? हाँ यह अर्थ-युग है अत अर्थबल से कुछ दिन और टिक जाय। किन्तु अर्थ-युग मिटकर जब साम्यवाद का युग आयेगा तब अर्थवाद के साथ यह पापवाद भी खत्म हो जायगा।

सभव है कुछ पाठको को ये वचन कठोर प्रतीत हों। किन्तु उनसे हमारी विनय है कि वे जरा गहरे उतरकर गहराई से इन मान्यताओ की छानबीन करें तो उन्हें पता लग जायगा कि ऐसी विचारधारा एक क्षण के लिए भी मानव समाज के लिए उपयोगी नहीं है। ससार सहयोग पर आश्रित है। एक दूसरे को सहयोग देना भी जो पाप बतावें उनका अपराध अक्षम्य होना चाहिये।

कुतर्क करके वे लोग ऐसा पूछा करते हैं क्याजी तुम रक्षा करने में धर्म मानते हो तो सिह की रक्षा करने मे भी मानते हो ? और भूखे की आत्मा को तृप्त करने मे धर्म पुण्य मानते हो तो क्या मास खिलाने में भी मानते हो ? सिह और मास की बात थोडी देर के छोडकर ऐसे कुतर्की से उत्तर मे यह पूछा जाय कि महात्मा गाँधी ने हत्यारे नाथूराम

की गोली चलाने के वक्त पिस्तौल छीन लेने वाले को क्या फल होता ? पाप या पुण्य ? और भूखे की भूख बुझाने के लिए रोटी खिलाने पर क्या होता ? पाप या पुण्य ? रक्षा और सहायता मे पाप की प्ररूपणा करने के लिए सिह और मास के कुदृष्टान्त दकर जनता को भ्रम में डालने की व्यर्थ चेष्टा की जाती है। जो लोग रक्षा और सहायता मे सर्वथा पाप मानते हैं पुण्य का अश भी नहीं मानते वे लोग ऐसी कुतर्कें करके लागो के दिमाग खराव करते हैं। भाई शुभकरणजी का दिमाग भी ऐसी अनिष्ट धारणा के कारण विकृत बना हुआ था अत उन्होंने अपने लेख मे पूछा है कि इन आचार्यों ने कितने जीवों की रक्षा की है। ये सब आचार्य रक्षा करना परम धर्म मानते थे और मानते हैं।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने उसी दिन अपने व्याख्यान म इस लेख का स्पष्टीकरण किया। आचार्यश्री छापावाजी के धधे मे नहीं पड़ते। उनके पास जो आता है उसे समझा दिया करते हैं। आचार्यश्री ने प्रवचन में स्पष्टतया खुलासा किया कि जीव रक्षा करना परम धर्म है। हा उसमें विवेक परम आवश्यक है। हम साधु लोग भी प्राणी रक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिए शास्त्रों ने जो मर्यादाए बाधी हैं उनका उल्लघन न करते हुए निर्दोष साधनों से हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति में सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड जाय तो ध्यान खोलकर उसका कष्ट छुड़ाकर वापस ध्यान में आकर बैठ जाय। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। यह तो हृदय की विशालता है। आत्मवत् सर्वभूतेपु का पदार्थपाठ है। जिन लोगो का हृदय पत्थर का बना हुआ है वही यह कह सकते हैं कि 'रक्षा करना पाप है। मरने वाला अपने कर्मो को भुगत रहा है अपना पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा है तुम बीच में पड कर उसमें बाधा क्यो देते हो। यह कथन शास्त्र और अनुभव-विरुद्ध है।

उसी दिन यह तय किया गया कि दोनो सम्प्रदायों के आचार्य दिल्ली में विद्यमान हैं क्यों न दयादान सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा कर ली जाय ? आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के पूर्ववर्ती आचार्यश्री जवाहर अनेक बार थलियों में खासकर इनके गढ सरदारशहर में तथा श्री सुराणा के चूरू म भी दयादान सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए चेलेंज दे चुके थे। किन्तु छिपे तौर से अपनी मान्यताओं का प्रचार करने वाले सामने आकर कब चर्चा कर सकते हैं ? चेलेंज का कभी उत्तर नहीं दिया गया। मौनधारण ही उत्तम अस्त्र माना गया।

उक्त निर्णय के अनुसार कुछ स्थानकवासी जैन भाई [illegible] न श्री रामकृष्ण डालमिया के बगले पर पहुँचे जहा वे भाषण कर [illegible]
भादया का श्री डालमिया से व्यापारिक सम्बन्ध है इसी नाते
अपने दलबल के साथ आये हुए थे। सब आगन्तुक लोग [illegible]

व्याख्यान मे श्रोताओ की उपस्थिति देखकर अखवारी दुनिया को वास्तविक ज्ञान हुआ। वेचारे अखबार वाले क्या जानें कि हम जो खबर प्रकाशित कर रहे हैं वह कितने अशो म सत्य है। उनके पास जो-कुछ लिखकर भेज दिया जाता है उसे प्रकाशित कर दिया करते हैं। यह उनके लिए शक्य भी तो नहीं है कि हर वात की असलियत का पता लगाकर खवर छापा करें। अखवारो मे आचार्यश्री तुलसी के प्रवचनों की धूम के समाचार पढकर जिन लोगो को हैरानी हो रही थी उनका मन प्रत्यक्ष में उपस्थिति देखकर सतुष्ट हो गया। उनके मन का समाधान हो गया कि वास्तव मे कितनी उपस्थिति होती है और अखवारा मे कितनी वढा-चढाकर लिखी जाती है। उन्हे यह भी पता लग गया कि आचार्यश्री तुलसी के प्रचार विभाग के व्यक्ति वडे चतुर होशियार और एडवरटाइजिग में महाकुशल हैं। तिल को ताड और ताड़ को तिल वना देना उनके बायें हाथ का खेल है। यह उसी प्रचार विभाग का कौशल है कि सारे भारत में दिल्ली के दैनिक पत्रों के द्वारा तेरापथ का नाम खूब प्रसारित किया गया। दूर स्थित लोगों को क्या पता कि सचाई क्या है ? अखवार पढकर अन्दाजा लगाने वालों के लिए सचाई तक पहुँचना कठिन है।

उस दिन आचार्यश्री तुलसी के व्याख्यान मे उनके भक्तो के अतिरिक्त श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन प राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री राजकृष्णजी उपस्थित थे जिनको खासतौर पर बुलाया गया था। स्थानकवासी भाइयो के पहुँचने पर श्री डालमिया को भी बुला लिया गया था। इनके अतिरिक्त दिल्ली का कोई दीगर व्यक्ति व्याख्यान मे न था। अखवारी खवरें पढकर मन में जो उपस्थिति का कल्पना-चित्र बना हुआ था वह विलीन हो गया। उपस्थिति से किसी को कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोजन तो असत्य प्रकाशन से है। इससे आम-जनता में झूठा भ्रम फैलता है। जनता में कुछ भी भ्रम फैले मगर अपने ग्रामीण भक्तों के दिलो पर तो इसका अच्छा प्रभाव पडता था। वे तो जाहोजलालीयुक्त समाचार पढकर अपने दायरे में मजबूत बधे रहेंगे।

व्याख्यान समाप्त होने पर आचार्यश्री तुलसी की इजाजत लेकर एक स्थानकवासी जैन खडा हुआ जिसे वक्ता के रूप मे पहले से ही चुन लिया हुआ था। उसने आचार्यश्री तुलसी को सम्बोधित करके स्पष्ट शब्दो में यह जाहिर किया कि महाराज ! आप भी दिल्ली में विद्यमान हो और आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भी। अत दोनों के दयादान के सम्बन्ध में चर्चा हो जानी चाहिये ताकि जनता का भ्रम दूर हो जाय। प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी और श्री डालमिया की उपस्थिति में उस व्याख्यान सभा में यह स्पष्ट कर दिया गया कि आचार्यश्री तुलसी जीव-रक्षा और सहायता कार्य में पाप मानते हैं। एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिए उद्यत है। एक तीसरा दयालु परोपकारी और नि स्वार्थ व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता है। वह उपदेश देकर अथवा उसका हाथ पकड़कर उसे

की गोली चलाने के वक्त पिस्तौल छीन लेने वाले को क्या फल होता ? पाप या पुण्य ? और भूखे की भूख बुझाने के लिए रोटी खिलाने पर क्या होता ? पाप या पुण्य ? रक्षा और सहायता मे पाप की प्ररूपणा करने के लिए सिह और मास के कुदृष्टान्त देकर जनता को भ्रम मे डालने की व्यर्थ चेष्टा की जाती है। जो लोग रक्षा और सहायता मे सर्वथा पाप मानते हैं पुण्य का अश भी नहीं मानते वे लोग ऐसी कुतर्के करके लोगो के दिमाग खराब करते हैं। भाई शुभकरणजी का दिमाग भी ऐसी अनिष्ट धारणा के कारण विकृत बना हुआ था अत उन्होने अपने लेख मे पूछा है कि इन आचार्यो ने कितने जीवो की रक्षा की है। ये सब आचार्य रक्षा करना परम धर्म मानते थे और मानते हैं।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने उसी दिन अपने व्याख्यान मे इस लेख का स्पष्टीकरण किया। आचार्यश्री छापाबाजी के धधे मे नहीं पडते। उनके पास जो आता है उसे समझा दिया करते हैं। आचार्यश्री ने प्रवचन मे स्पष्टतया खुलासा किया कि जीव रक्षा करना परम धर्म है। हा उसमें विवेक परम आवश्यक है। हम साधु लोग भी प्राणी-रक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिए शास्त्रो ने जो मर्यादाए बाधी हैं उनका उल्लघन न करते हुए निर्दोष साधनों से हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति मे सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड जाय तो ध्यान खोलकर उसका कष्ट छुडाकर वापस ध्यान मे आकर बैठ जाय। इसमे किसी प्रकार का दोष नहीं है। यह तो हृदय की विशालता है। आत्मवत् सर्वभूतेपु' का पदार्थपाठ है। जिन लोगों का हृदय पत्थर का बना हुआ है वही यह कह सकते हैं कि 'रक्षा करना पाप है। मरने वाला अपने कर्मों को भुगत रहा है अपना पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा है तुम बीच मे पड कर उसमे बाधा क्यो देते हो'। यह कथन शास्त्र और अनुभव-विरुद्ध है।

उसी दिन यह तय किया गया कि दोनो सम्प्रदायो के आचार्य दिल्ली मे विद्यमान हैं क्यो न दयादान सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा कर ली जाय ? आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के पूर्ववर्ती आचार्यश्री जवाहर अनेक बार थलियों मे खासकर इनके गढ सरदारशहर मे तथा श्री सुराणा के चूरू म भी दयादान सम्बन्धी प्रश्नो पर चर्चा करने के लिए चेलेज दे चुके थे। किन्तु छिप तौर से अपनी मान्यताओ का प्रचार करने वाले सामने आकर कब चर्चा कर सकते हैं ? चेलेज का कभी उत्तर नहीं दिया गया। मौनधारण ही उत्तम अस्त्र माना गया।

उक्त निर्णय के अनुसार कुछ स्थानकवासी जैन भाई आचार्यश्री तुलसी के पास श्री रामकृष्ण डालमिया के बगले पर पहुँचे जहा वे भाषण कर रहे थे। कोलकाता के तेरापथी भाइयो का श्री डालमिया से व्यापारिक सम्बन्ध है इसी नाते इस बगले पर आचार्यश्री तुलसी अपने दलबल के साथ आये हुए थे। सब आगन्तुक लोग व्याख्यान मे बैठ गये।

व्याख्यान मे श्रोताओ की उपस्थिति देखकर अखवारी दुनिया को वास्तविक ज्ञान हुआ। वेचारे अखवार वाले क्या जाने कि हम जो खवर प्रकाशित कर रहे हैं वह कितने अशों मे सत्य है। उनके पास जो कुछ लिखकर भेज दिया जाता है उसे प्रकाशित कर दिया करते हैं। यह उनके लिए शक्य भी तो नहीं है कि हर वात की असलियत का पता लगाकर खवर छापा करे। अखवारो मे आचार्यश्री तुलसी के प्रवचनो की धूम के समाचार पढकर जिन लोगो को हैरानी हो रही थी उनका मन प्रत्यक्ष मे उपस्थिति देखकर सतुष्ट हो गया। उनके मन का समाधान हो गया कि वास्तव म कितनी उपस्थिति होती है और अखवारो में कितनी वढा चढाकर लिखी जाती है। उन्हे यह भी पता लग गया कि आचार्यश्री तुलसी के प्रचार विभाग के व्यक्ति वडे चतुर होशियार और एडवरटाइजिग मे महाकुशल हैं। तिल को ताड़ और ताड को तिल वना देना उनके वाये हाथ का खेल है। यह उसी प्रचार विभाग का कौशल है कि सारे भारत मे दिल्ली के दैनिक पत्रों के द्वारा तेरापथ का नाम खूव प्रसारित किया गया। दूर स्थित लोगो को क्या पता कि सचाई क्या है ? अखवार पढकर अन्दाजा लगाने वालो के लिए सचाई तक पहुँचना कठिन है।

उस दिन आचार्यश्री तुलसी के व्याख्यान में उनके भक्तों के अतिरिक्त श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन प राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री राजकृष्णजी उपस्थित थे जिनको खासतौर पर वुलाया गया था। स्थानकवासी भाइयों के पहुँचने पर श्री डालमिया को भी वुला लिया गया था। इनके अतिरिक्त दिल्ली का कोई दीगर व्यक्ति व्याख्यान में न था। अखवारी खवरें पढकर मन में जो उपस्थिति का कल्पना-चित्र वना हुआ था वह विलीन हो गया। उपस्थिति से किसी को कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोजन तो असत्य प्रकाशन से है। इससे आम-जनता मे झूठा भ्रम फैलता है। जनता मे कुछ भी भ्रम फैले मगर अपने ग्रामीण भक्तो के दिलों पर तो इसका अच्छा प्रभाव पड़ता था। वे तो जाहोजलालीयुक्त समाचार पढ़कर अपने दायरे में मजवूत वधे रहेंगे।

व्याख्यान समाप्त होने पर आचार्यश्री तुलसी की इजाजत लेकर एक स्थानकवासी जैन खड़ा हुआ जिसे वक्ता के रूप म पहले से ही चुन लिया हुआ था। उसने आचार्यश्री तुलसी को सम्वोधित करके स्पष्ट शब्दों में यह जाहिर किया कि महाराज ! आप भी दिल्ली मे विद्यमान हो और आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भी। अत दोनों के दयादान के सम्बन्ध में चर्चा हो जानी चाहिये ताकि जनता का भ्रम दूर हो जाय। प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी और श्री डालमिया की उपस्थिति में उस व्याख्यान सभा में यह स्पष्ट कर दिया गया कि आचार्यश्री तुलसी जीव-रक्षा और सहायता कार्य में पाप मानते हैं। एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिए उद्यत है। एक तीसरा दयालु परोपकारी और नि स्वार्थ व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता है। वह उपदेश देकर अथवा उसका हाथ पकड़कर उसे

हिसा से रोक देता है और मारे जाने वाले की रक्षा कर देता है तो इस रक्षारूप पवित्र और अहिसक कार्य को आचार्यश्री तुलसी पापयुक्त और हिसामय कार्य बताते हैं। रक्षा करने वाले को पापरूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थियो और रेल-दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियो की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने मे पाप बताते हैं। साधु से इतर सब प्राणी असयती हैं अत उनकी रक्षा करना या उनको कुछ भी सहायता पहुँचाना पापकार्य है आदि आचार्यश्री तुलसी की प्ररूपणा और मान्यता है। जबकि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इन कर्मो मे धर्म-पुण्य मानते हैं। शुभ निष्ठा या शुभ योग तो हर काम मे होना ही चाहिये। तभी वह धर्म-पुण्य की कोटि मे गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभ निष्ठा या शुभ योगपूर्वक भी यदि ये कार्य किये जाय तो इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय में केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है अन्य सब कुपात्र हैं। जबकि दोनों आचार्य एक ही शास्त्र को मानते हैं तब प्ररूपणा और आचरण मे इतना भेद क्यों ? महाराज ! यह अच्छा अवसर है। सयोग से दोनो एक ही शहर मे हैं। अत चर्चा करके इस विवाद को मिटा दीजिये।

स्थानकवासियो की ओर से जो कहना था वह कह दिया गया। हा शुभकरण सुराणा के लेख का भी जिक्र किया गया और ऐसे भद्दे निन्दात्मक और आक्षेपात्मक लेख से आपस मे कड़वास और मनोमालिन्य उत्पन्न होते हैं अत ऐसे लेख प्रकाशित नहीं होने चाहिये आदि बातें भी कही गईं। आचार्यश्री तुलसी ने स्पष्टीकरण किया कि इस लेख के जिम्मेवार सुराणा ही हैं हमारा इसमें कोई हाथ नहीं है (इस स्पष्टीकरण से स्थानकवासियो में मन को कुछ सन्तोष हुआ)। श्री सुराणा ने ऐसा लेख प्रकाशित करके हमारे खयाल से तेरापथ की कुसेवा ही की है। जिसके लिए आचार्यश्री तुलसी को अफसोस जाहिर करना पड़ा। श्री शुभकरण सुराणा की उस वक्त खोज की गई मगर वे सभा से नदारद थे। गये हुए सब लोग श्री सुराणा का चेहरा देखना चाहते थे। किन्तु श्री सुराणा वहा उपस्थित न थे।

आ श्री तुलसी के पास जाने वाले सज्जनो को जाने के पूर्व आ श्री गणेशलालजी म और कविवर श्री अमरमुनि ने खूब शिक्षाए दी थीं कि 'देखो अपराधी पर भी दया की वर्षा करने के अपने गुण को न भूलना। जैन धर्म की यही शिक्षा है कि अपराधी के अपराध को भी क्षमा कर देना और उस पर दया की वर्षा करना। तथा यह भी सूचना कर दी थी कि बडी सभ्यता और शिष्टता से पेश आना। तुम जाने वाले अपने जोश को यहीं ठण्डा करके ठडे दिमाग से बात करना। लडाई-झगडा या क्लेश बढ़ाने के लिए नहीं जा रहे हो मगर विवाद का शमन करने की दवा करने जा रहे हो। ऐसा न हो कि विवाद और अधिक बढ़ जाय।

उक्त मुनिराजो की शिक्षाओ से सबका मन शान्त था। केवल मानवसुलभ औत्सुक्य के कारण श्री सुराणा को देखना चाहते थे। मगर उनमें वह शौर्य कहाँ जो वहाँ उपस्थित रहते। थे वह दिल्ली मे ही ऐसा सुना गया था। उत्सुकों की उत्सुकता बनी ही रही वह पूर्ण न हुई। खैर !

स्थानकवासियों के वक्तव्य पर आचार्यश्री तुलसी कुछ भी नहीं बोले। उनकी तरफ से बोलने के लिए श्री जैनेन्द्रजी राजेन्द्रजी और डालमियाजी उपस्थित थे ही। उनको इस आशका से पहले ही बुला लिया गया था कि कहीं कुछ रगडा न हो जाय। जाने वालो के मन मे रगडे-झगडे की कोई भावना न थी। मगर श्री सुराणा के लेख से उन्हे आशका हो गई थी जो कि निरी झूठी आशका-मात्र थी। उक्त तीनो व्यक्तियों ने भी ऐसे खोटे लेख की निन्दा की और आपस मे प्रेमपूर्वक बर्ताव की अपील की तथा चर्चा या एकत्र प्रवचन किस प्रकार हो इसका निर्णय करने के लिए रात्रि को दोनो ओर के कुछ सज्जन श्री राजकृष्णजी के मकान पर इकट्ठा हो यह तय हुआ। स्थानकवासी भाइयों की इच्छा यह थी कि दया दान के सम्बन्ध मे किसी मध्यस्थ की मध्यस्थता में लेखी या मौखिक चर्चा हो जाय और वे गये भी इसीलिए थे। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी और राजेन्द्रजी की इच्छा दोनो आचार्यों का एक साथ भाषण कराने की थी। आचार्यश्री तुलसी एक शब्द भी नहीं बोले और चुपचाप बैठे रहे।

दिन के निश्चय के अनुसार रात्रि को निश्चित स्थान पर चुनिन्दा व्यक्ति इकट्ठे हुए। स्थानकवासी अपनी बात पर अड़े थे कि दया-दान के सम्बन्ध मे चर्चा हो जाय और तेरापथी इस बात पर अडे हुए थे कि हमे किसी बात की शका नहीं है। जिसे शका हो वह हमारे आचार्य के पास आकर पूछ ले। बड़ी देर तक इस मुद्दे पर वार्तालाप होता रहा। कोई भी अपनी बात छोडना न चाहता था। तब रात करीब के बारह बजे श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने एक सुझाव रखा कि 'एक मध्यस्थ समिति बनाली जाय और उसके मार्फत जिसे प्रश्न पूछना हो वह पूछले। इससे चर्चा और शास्त्रार्थ मे जो एक दूसरे को विजित पराजित करने की भावना रहती है वह टल जाती है और शुद्ध सैद्धान्तिक चर्चा हो जायगी। दया-दान के सम्बन्ध में किस आचार्य की क्या मान्यता है यह जनता के सामने आ जायगा। श्री जैनेन्द्रकुमारजी के इस प्रस्ताव को स्थानकवासी भाइयों ने मान लिया किन्तु तेरापन्थी भाई इस पर भी राजी न हुए। उनका तो एक ही कक्का था कि हमे कुछ शका ही नहीं है और न कुछ पूछना ही है। अत इस प्रकार की समिति की क्या आवश्यकता है ? जिसे शका हो वह हमारे आचार्यजी के पास आकर पूछले। इस पर श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने बड़ी नाराजगी जाहिर की और कहा कि 'मेरे प्रेम में अभी खामी है अत मेरा सुझाव पसन्द नहीं किया जाता है। अच्छा है अब इस बात को यहीं पर खत्म किया जाय। आप लोगो को जिस प्रकार जँचे करें। जब भाते

तेरापन्थियों पर बात टूटने की नौबत आ गई तब बड़ी मुश्किल से समिति के निर्माण पर वे राजी हुये।

समिति के निर्माण की बात स्वीकार करके भी अपनी तरफ का एक सदस्य उसमे शामिल करने की बात पर अड़ गये। श्री जैनेन्द्रकुमारजी तथा श्री राजेन्द्रकुमारजी की सम्मत्यनुसार स्थानकवासी भाई अपनी ओर से एक सदस्य समिति मे रखने पर बडी खुशी से सहमत हो गये। किन्तु तेरापन्थी भाई इस समिति से अलग रहना चाहते थे। वे किसी प्रकार की पकड मे न आना चाहते थे। श्री जैनेन्द्रकुमारजी तथा स्थानकवासी भाइयो का यह निश्चित मत था कि बिना एक तेरापन्थी सदस्य के समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा। एक तेरापन्थी सदस्य के उसमे शामिल होने से समिति द्वारा किया हुआ कार्य तेरापन्थियो के लिये भी बन्धनकारी होगा तथा इसमे सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायगा।

अन्त में रात के डेढ बजे जबकि बात टूटने की अणी पर थी हमारे तेरापन्थी भाई अपना एक सदस्य समिति मे देने के लिए राजी हुये। इस प्रकार बडे मन्थन के बाद इस समिति का निर्माण हुआ। समिति की कार्यसीमा इतनी ही बाधी गई कि दोनों आचार्यो को ठीक रूप मे प्रश्न पहुँचा दिये जाय तथा प्रश्नो की मर्यादा दया-दान तक सीमित रखी जाय। समिति अपनी मोहर-छाप लगाकर दयादान सम्बन्धी प्रश्नो के उत्तर प्रकाशित करदे ताकि जनता निर्णय कर सके कि किस आचार्य के क्या मन्तव्य हैं। समिति के पास जिधर से भी प्रश्न आवे वे समिति के प्रश्न गिने जायेगे और उनका उत्तर दोनो आचार्यों को देना होगा। इस प्रकार समिति का निर्माण हो गया और कार्य आगे चला। अन्त में हमारे तेरापन्थी भाइयों का भी प्रश्न पूछने का मन हो गया और उन्होंने छ प्रश्न पूछे।

अब हम थोड़ा इस बात पर विचार करे कि क्यों हमारे तेरापथी भाई समिति के निर्माण पर और उसमे अपना सदस्य शामिल न करने की बात पर इतना अड़े रहे ? इस में क्या रहस्य था ? पाठको को यह ज्ञात हो चुका है कि स्थानकवासी भाई आचार्यश्री तुलसी के पास चर्चा का निमत्रण देने गये थे। इस पर श्री जैनेन्द्रजी आदि बीच मे पडे और वे चर्चा या शास्त्रार्थ मे होने वाली जय पराजय सम्बन्धी कडवास को मिटा कर आपस मे प्रेमपूर्ण चर्चा कराना चाहते थे उनका तो यह भी खयाल था कि दोनो आचार्यों का एकसाथ जाहिर व्याख्यान कराया जाय और जनता के समक्ष अपना-अपना मन्तव्य रखा जाय। श्री जैनेन्द्रजी का मनोगत भाव चर्चा की अपेक्षा दोनो आचार्यों को निकट लाने की तरफ अधिक था। हमारा खयाल है उस वक्त तक श्री जैनेन्द्रजी और प राजेन्द्रजी तेरापथ की मान्यता से अवगत न थे। वे इतना मात्र जानते थे कि तेरापथ श्वेताम्बर समाज का एक फिरका है। छोटी मोटी बातों में कुछ अतर होगा। उन्हे तब यह ज्ञात न था कि तेरापथ जैन धर्म के प्राणभूत अहिंसा

सिद्धान्त मे मौलिक मतभेद रखता है। 'साधु से इतर प्राणी जो कि असयती हैं उनके रक्षण-पोषण या किसी प्रकार की भौतिक सहायता करने में सर्वथा पाप का बध होता है'- तेरापथ की इस विचारधारा से वे कतई अपरिचित थे। अत उनका यह विचार ठीक था कि छोटी-मोटी बातो को गौण करके निकट आने से आपसी सम्बन्ध अच्छे बनेंगे। मगर आपसी अच्छे-बुरे सम्बन्ध का यह प्रसग ही न था। आपस में जो कडवास मालूम देती है वह वैयक्तिक कारणों को लेकर नहीं है किन्तु सिद्धान्तो को लेकर है। स्थानकवासी और तेरापथी आपस मे एक ही हैं। दोनो की एक ही जाति हैं और एक ही घर मे कोई स्थानकवासी है तो कोई तेरापन्थी। स्त्री तेरापन्थी है तो पुरुष स्थानकवासी। एक भाई तेरापन्थी तो दूसरा स्थानकवासी। इस प्रकार न केवल एक गाव मे दोनो रहते हैं किन्तु घर मे भी साथ रहते हैं। प्रश्न तो मान्यता का है। तेरापन्थी जीव-दया मे पाप मानते हैं। मुख्य वस्तु तो यहा है। यही बात एक दूसरे को अलग करती है। जब तक इसका निर्णय न हो तब तक निकट जाने से भी क्या लाभ हो सकता है ? आपस मे दिलों को तोडने वाली जो वस्तु मौजूद है उसे मिटाये बिना वास्तविक एकता कैसे हो सकती है ? हमारे तेरापन्थी भाई रक्षा और सहायता मे पाप मानते हैं यह निश्चित बात है।

इस कथन में जहा-जहा रक्षा या सहायता शब्द का प्रयोग किया गया है या किया जायगा वहा-वहा इनका अर्थ यह समझा जाय– 1 रक्षा का अर्थ है साधु से भिन्न प्राणी के प्राण बचा लेना अच्छी निष्ठा से और अच्छे साधन से वह भी नि स्वार्थ भावना से किसी बदले की इच्छा के बिना केवल आत्मवत् सर्वभूतेपु के सिद्धान्त से अनुप्राणित होकर। और 2 सहायता का मतलब है साधु से भिन्न मनुष्य पशु-पक्षी आदि प्राणियो की कष्टमय अवस्था में भोजन वस्त्र अथवा अन्य कोई प्रकार की मदद करके उनका कष्ट मिटा देना। जैसे कोई भूखा मनुष्य है तो उसे रोटी देकर शाति पहुँचाना प्यासे को पानी द्वारा प्यास बुझाना मार्ग भूले हुए को मार्ग बताकर सहायता करना। ससार मे प्राणी की अनेक प्रकार की आवश्यकताए हैं उनमें से भली कही जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति मे मददगार बनना। बुरी इच्छाओं की पूर्ति मे मददगार बनने की बात मे पुण्य होने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। उनमे तो पाप ही होता है यह सर्वमान्य बात है। किन्तु जीवित रहना पेट-भर भोजना करना बदन पर लज्जा ढाकने के लिए वस्त्र होना बीमारी में दवा होना और अक्षरज्ञान करना आदि साधारण आवश्यकताए हैं। इनमें आवश्यकता पड़ने पर मददगार होना सहायता का अर्थ है। धर्मकार्य में सहायता देने के फल में कोई मतभेद नहीं है। मतभेद तो सासारिक कार्यो में मदद करने के फल में है। इसी प्रकार असयती के प्राणरक्षण के फल में मतभेद है।

हमारे तेरापन्थी भाई यह कह दिया करते हैं कि हम भी रक्षा और सहायता में धर्म-पुण्य

हैं। किन्तु इन शब्दो का अर्थ उनकी मान्यतानुसार इतना ही है कि किसी को अपनी तरफ से न मारना ही रक्षा है। किसी के द्वारा मारे जाते हुए को बचा लेना या बचाने की भावना करना हिसा है पाप है। बस अपना पाप टालना चाहिये। दूसरे को बचाना धर्म नहीं है यह पाप है। इसी प्रकार अन्न-वस्त्र-मकान आदि की सहायता करना भी पाप है। सहायता का अर्थ इनके अनुसार धर्म-मार्ग मे लगा देना भूखा हो या प्यासा हो तो उसे सथारा करा देना धर्म है। अन्न पानी देना धर्म नहीं। यह तो भोग मे सहायता है योग मे नहीं। इस प्रकार की भौतिक सहायता का फल कर्ता को पाप-रूप ही लगता है।

यह तेरापथ की मान्यता है। इस मान्यता को ये बड़ी चतुराई से जनता के सामने रखते हैं। इनके पूर्वाचार्य स्पष्ट शब्दो मे जीवरक्षा और सहायता मे पाप बता गये हैं किन्तु आचार्यश्री तुलसी तथा इनके एक-दो विद्वान साधु बडी कुशलता से इस विषय को पब्लिक के समक्ष उपस्थित करते हैं। एकाएक अपनी मान्यता को अपरिचित व्यक्ति के सामने नहीं रखते न ही पूछने पर स्पष्ट शब्दो मे उत्तर देते हैं। कइयो को कह देते हैं हम कहाँ जीवरक्षा या सहायता के कार्य में मना करते हैं। कइयो को कहते हैं हम तो इनमे धर्म मानते हैं। कइयो को कहते हैं यह लौकिक फर्ज है कर्तव्य है अत जैसे विवाह-शादी करते हो और उसमें पुण्य-पाप की बात नही पूछते उसी प्रकार इन लौकिक कार्यों का फल क्यो पूछते हो ? तुम जानो तुम्हारा काम जाने। कइयो को कहते हैं कि सासारिक कार्यों का फल पाप ही होता है आदि। विविध प्रकार के लोगों के समक्ष रखने के लिए विविध प्रकार के उत्तर निश्चित किये हुए हैं। जैनो के समक्ष कहेगे क्या साधु ये कार्य कर सकता है ? यदि नहीं तो गृहस्थ द्वारा करने मे पुण्य कैसे होगा ? इत्यादि अनेक प्रकार के तरीकों से अपनी गूढ मान्यता को छिपाने की इनकी चेष्टा देखकर स्थानकवासी भाई इस बात पर राजी हो गये कि चलो चर्चा न सही हमारे प्रश्नों का उत्तर ही सही कुछ-न-कुछ बात इसमें से भी निकल ही आयेगी।

श्री जैनेन्द्रजी जैसे प्रामाणिक और प्रख्यात व्यक्ति की दरमियानगिरी मे आचार्यश्री तुलसी की मान्यता जनता की नजरों में आ जाय यह भी कम लाभ नहीं है। विविध तरीकों से दया-दान सम्बन्धी उत्तर दिये जाते हैं कम-से-कम लिखित रूप में एक प्रकार का उत्तर तो प्राप्त हो जायगा। और यह भी इन्हीं के एक जिम्मेवार प्रतिनिधि की सही के साथ। तथा स्थानकवासियो पर जो यह आक्षेप किया जाता है कि ये ईर्ष्या या द्वेषवश तेरापथियो पर यह लाछन लगाते हैं कि वे जीवरक्षा और दान सहायता आदि में पाप मानते हैं कम से कम उनके दिये उत्तरों से ही यह आक्षेप स्वय खण्डित हो जायगा इत्यादि लाभ समझकर स्थानकवासी भाई समिति के निर्माण और उसकी कार्य-मर्यादा से सहमत हो गये।

किन्तु तेरापथी भाई अपनी मान्यताओ को जगत् के सामने रखने में हिचकते थे। वे नहीं

चाहते थे कि हमारी ये पाप-मान्यताए दुनिया की नजरो मे आए। वे ससार को धोखे मे रखकर ऊपर से नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की बाते करके अपनी मान्यताओ को छिपाये रखना चाहते थे। इसी कारण समिति के निर्माण और उसमे अपना एक सदस्य सम्मिलित करने को वात पर घटो अडे रहे। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी की अडिग वृत्ति के सामने झुककर मजवूरन इस समिति मे सम्मिलित होना पड़ा। जो लोग प्रथम दिवस की श्री राजकृष्णजी के मकान पर होने वाली मीटिग मे उपस्थित थे वे सव इस हकीकत को भली प्रकार जानते हैं। श्री जैनेन्द्रजी तथा प राजेन्द्रजी की सहायता से दया दान सम्बन्धी प्रश्नो के उत्तर आचार्यश्री तुलसी से प्राप्त हो गये इससे एक दृष्टि से प्रसन्नता है। किन्तु वास्तविक प्रसन्नता तव होती यदि ये उत्तर स्पष्ट शब्दो मे मिलते। ये उत्तर पहेलियो मे हैं जिन्हे साधारण जनता नहीं समझ सकती।

स्थानकवासियो के द्वारा किये गये इतने प्रयत्नो के बावजूद भी आचार्यश्री तुलसी भावो को छिपाने की अपनी कला मे सफल रहे। उत्तरो को पढकर स्थानकवासी वड़े दग रह गये थे कि परोपकार के इन कामों मे सौ परसेण्ट पाप मानते हुए भी आचार्यश्री तुलसी उत्तर देने की कला मे वडे चतुर निकले। किस कौशल से किस प्रकार की भाषा मे भावा को छिपाने मे सफलता प्राप्त की है यह सचमुच महान् आश्चर्य की वात है। उत्तरा के पूर्व एक छोटी-सी भूमिका लिखकर सफाई पेश की गई है। यह सफाई ही यह बताती है कि दाल मे कुछ काला है। सफाई की क्या आवश्यकता थी ? यदि प्रश्नो का उत्तर स्पष्ट होता तो पाप या पुण्य शब्द के द्वारा उत्तर मिलता। किन्तु पाप शब्द में उत्तर देना इष्ट न था क्योकि लोक-भय सिर पर मडरा रहा था और पुण्य शब्द मे फल मजूर न था क्योकि पाप-फल होने की धारणा है। आचार्यश्री तुलसी के प्रत्येक उत्तर की इस पुस्तिका मे समीक्षा की गई है। जिसे पढकर पाठक सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं।

अव थोड़ा आचार्यश्री तुलसी की मान्यताओ का आभास कराया जाता है जिनकी रोशनी में उनके उत्तर पढने से वास्तविकता तक पहुँचा जा सकेगा। उनके मान्य ग्रथो के उद्धरण से उनकी मान्यताए वताई जाती हैं जिससे कथन की प्रामाणिकता मे किसी प्रकार की शका की गुजायश न रहेगी।

चोरी जारी ठगाई मदिरापान वेश्यागमन परपीड़न मास-भक्षण वेईमानी आदि बुरे कार्य माने जाते हैं और उक्त कार्य करने वाले को पापरूप फल होना माना जाता है। इस वात मे किसी का मतभेद नहीं है। चाहे धार्मिक दृष्टि से देखा जाय चाहे नैतिक दृष्टि से इन कामो को बुरा माना जाता है। धार्मिक दृष्टि से ऐसे कार्यो का कर्ता अपना परलोक भी विगाडता है और इहलोक में भी निन्दा का पात्र होता है और दु ख उठाता है। किन्तु जो लोग

धर्म या परलोक को नहीं मानते वे उक्त कामो को लोक-व्यवस्था की दृष्टि से बुरा कहते हैं और उनका करना निषिद्ध ठहराते हैं। इसके विपरीत ईमानदारी से आजीविका चलाना स्वस्त्री मे सतोष धारण करना ठगाई न करना मदिरापान के बजाय दुग्धपान करना परप्राणी को साता उपजाना मास-भक्षण के स्थान मे निर्दोष अन्न ग्रहण करना मार्ग भूले हुए को मार्ग बताना माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और विनय करना गृहस्थ अतिथि का सत्कार करना भूखे को भोजन देना और प्यासे को पानी पिलाना अतिथि का सत्कार शरणार्थी की मदद करना बीमार को दवा देना और अनपढ को अक्षरज्ञान कराना आदि भले कार्य माने जाते हैं। और इनका फल पुण्यरूप माना जाता है। इस लोक और परलोक मे इनका फल सुखरूप होता है। यह सर्ववादीसम्मत सिद्धान्त है। किन्तु हमारे तेरापथी भाइयो की तथा उनके गुरु आचार्यश्री तुलसी की मान्यता जगद्-विलक्षण है। पाठको के आश्चर्य की सीमा न रहेगी जब वे यह जानेगे कि उक्त दोनो प्रकार के भले-बुरे कार्यो का फल इनकी फिलासफी में एक ही प्रकार का है। चोरी करो तब भी पाप और ईमानदारी से पैसा पैदा करो तब भी पाप। परस्त्री-गमन करो तब भी पाप और स्वस्त्री-सतोष धारण करो तब भी पाप। मास-भक्षण मदिरापान में भी पाप और अन्न-ग्रहण और दुग्धपान में भी पाप। माता-पिता के पैर दबाने में भी पाप और उनको गालियॉ सुनाने मे भी पाप। मतलब कि ससार के हर कार्य में पाप ही पाप है। सासारिक किसी भी कार्य मे पुण्य का अश भी नहीं है। ऊपर जो भले कार्य गिनाये गये हैं उनका फल भी सोलह आना पाप है और जो बुरे कार्य गिनाये गये हैं उनका फल भी सोलह आना पाप। अन्धेर नगरी अनबूझ राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' वाली कहावत यहाँ सोलह आना लागू होती है। तेरापथियो की यह निश्चित मान्यता है कि पचमहाव्रतधारी साधु ही सुपात्र है। साधु के सिवा अन्य सब मनुष्य और प्राणी कुपात्र हैं। उनकी रक्षा और सहायता करना गोया कुपात्रपन म वृद्धि या सहायता करना है। ससार *बढ़ाना है। निवृत्ति मे धर्म है। सासारिक प्रवृत्ति मे एकान्त (सर्वथा) पाप है।* निष्काम बुद्धि से सासारिक प्रवृत्ति में भी पाप है। जैसे परोपकार से प्रेरित होकर औषधालय अनाथालय अपगशाला पाठशाला आदि खुलवाना माता-पिता की अन्न वस्त्र देकर या हाथ पैर दबाकर सेवा करना इत्यादि। इनकी मान्यता का स्वारस्य यह है कि लोक-यात्रा मे सहायता करना सर्वथा पाप है पुण्य का अश भी नहीं। इन भले कार्यो का फल सौ परसेण्ट पापरूप है। एक परसेण्ट भी पुण्यफल नहीं होता। ससार के कामों मे धर्म या पुण्य बताने वाले मूढ़ और गवार हैं। ऐसी इनकी स्पष्ट मान्यता है।

बलात्कार से या एकेन्द्री जीव को मारकर पचेन्द्रिय का रक्षण करने की बात तो केवल लोगो को भडकाने के लिए कहा करते हैं। मारने वाले को समझा बुझाकर या शुद्ध साधन से

किसी प्राणी को बचा लेने मे भी ये पाप मानते हैं। जबकि असयती (साधु के सिवाय) का रक्षण करने मे ये सर्वथा पाप मानते हैं तब बलात्कार या रक्षण के तरीके मे किंचित् आरम्भ की आड लेकर अपना बचाव करने की व्यर्थ चेष्टा क्यो करते हैं ? केवल लोकभय से भयभीत होकर कहते हैं। क्यो जी बलात्कार करके या एकेन्द्रिय जीव की हिसा करके पचेन्द्रिय जीवो का रक्षण करना कहाँ तक न्याय है ? जब उन से कहा जाता है कि अच्छा बलात्कार न किया गया और समझा बुझा कर किसी मनुष्य या गाय को बचा लिया गया तब क्या फल हुआ ? अथवा शुद्ध अहिसात्मक साधन से किसी की प्राण-रक्षा और अन्न-वस्त्र आदि द्वारा सहायता की गई तब क्या फल हुआ ? तब कह देते हैं कि असयती का रक्षण करना मात्र पाप है। फिर बलात्कार या एकेन्द्रिय की बात तो केवल चालाकीमात्र ही रही न ? इसी प्रकार यह भी कहते हैं कि हिसक को उपदेश देकर पाप टालना चाहिये। यदि हिसा करने वाला मनुष्य हुआ तब तो उसे समझा बुझाकर हिसा से विरत कर दिया जा सकता है। किन्तु मोटर की झपट में आते बालक को छुडाने मे या नदी के पूर मे बहते हुए बालक की रक्षा तो हाथों द्वारा ही की जायगी। क्या यह बलात्कार है ? और क्या यह शक्य है कि मोटर और पूर को उपदेश दिया जाय कि बालक को मत मारो ? मगर इन सब थोथी बातो के पीछे हमारे तेरापन्थी भाइया की यह मान्यता ही पोषण प्राप्त करती है कि असयती जीव के जीवन की वाछा करना पाप है। हिसक का पाप छुडाने में ये धर्म मानते हैं मगर हिंसक के द्वारा मारे जाते हुए प्राणी की रक्षा करने की भावना मे और कार्य में भी ये पाप मानते हैं।

दान के विषय में भी यही बात है। साधु को अन वस्त्र आदि देने मे ये धर्म मानते हैं। और साधु के सिवाय अन्य सबको अन-वस्त्र मकान आदि देने मे या इनके द्वारा सहायता करने में पाप मानते हैं। माता-पिता भी साधु न होने से कुपात्र हैं। और कुपात्र होने से अन्न वस्त्रादि द्वारा या अन्य साधनो से उनकी सेवा-शुश्रूषा करने में सर्वथा पाप मानते हैं।

दया और दान के विषय मे ऐसी स्पष्ट और निश्चित मान्यता होने पर भी हमारे तेरापन्थी भाई और स्वय आचार्यश्री तुलसी यह कहते हुये नहीं सकुचाते कि ईर्ष्या और द्वेष के कारण स्थानकवासी हम पर यह दोषारोपण करते हैं कि तेरापन्थी जीवरक्षा और सहायता मे पाप मानते हैं। पाप स्वय मानते हैं और इनके पुरातन और आधुनिक ग्रन्थों में पापफल होने की हजारों बाते अंकित हैं। यहा तक कि मिथ्या कल्पना इनको करनी पड़ी है कि पानी छानकर पीया जाता है वह जीवरक्षा के लिये नहीं किन्तु लिया हुआ व्रत पालने की दृष्टि से। इसी प्रकार सामायिक में श्रावक पूजनी रखता है वह जीवरक्षार्थ नहीं किन्तु खाज खुजलाने के लिए। अहो ! इनको रक्षा से कितना द्वेष है ! फिर भी जब आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज या अन्य कोई जानकार व्यक्ति इनकी पोल खोलता है तब बड़े भिड़ते

आरोप करते हैं। अभी दिल्ली म भी ईर्ष्या-द्वेष का दूसरो पर आरोप करके अथवा इस एकता के जमाने मे ऐसी बातें क्यो की जाती हैं। आदि बडी भली बातें बनाकरके आचार्यश्री तुलसी अपना बचाव कर गये। बचाव का एक तरीका यह भी अख्तियार किया हुआ है कि विरोधी लोग हमारा विरोध करने के लिए हमारे नाम पर झूठी मान्यताए लादते हैं आदि।

अब पाठक इनके ग्रन्थो के उद्धरण पढकर स्वय इस बात का निर्णय करे कि इनको बदनाम इनके ग्रन्थ कर रहे हैं या कोई अन्य ? तथा यह भी निर्णय करले कि आचार्यश्री तुलसी ने स्थानकवासी समाज के प्रश्ना का उत्तर देने मे अपनी मनोगत मान्यताओं को किस चतुराई से छिपाने की कोशिश की है।

श्वे तेरापथ समाज मे इस समय मुनिश्री नथमलजी और नगराजजी विद्वान् और दर्शनिक गिने जाते हैं। उक्त दोनो मुनियों ने तेरापथ सिद्धात पर प्रकाश डालने के लिये कई पुस्तिकाए लिखी हैं। कुछ अरसे पहले तक तेरापथी साधु इस प्रवृत्ति में छूट से भाग न लेते थे। किन्तु अब समयानुसार इतना परिवर्तन किया है।

आचार्यश्री तुलसी के चरणकमल चचरीक टमकोर वाले मुनिश्री नथमलजी लिखित अहिंसा (जैन सिद्धातानुमोदित विवेचन) नामक पुस्तिका में अहिसा का स्वरूप बताते हुए कहा है-

अहिसा हिसा से विरत होन वाले की अपनी आत्मा के हित के लिए है न कि दूसरे जीवो की रक्षा के लिए। उससे दूसरे जीवो की रक्षा अवश्य होती है परन्तु वह रक्षा अहिंसा नहीं है। (पृ 1)

अहिंसा का उपदेश हिसक को हिंसा के पाप से निवृत्त करने के लिए दिया जाता है जीवो को बचाने के अभिप्राय से नहीं। (पृ 1)

'केवल जीव का बचना ही अहिंसा नहीं चूकि बलात्कार से प्रतिहिंसा जागरूक हो जाती है और परिग्रह से हिंसा का अविनाभाव सम्बन्ध है। (पृ 1)

अहिंसा और दया एक ही है क्योंकि अभयदान ही अहिंसा है और वही दया है। (पृ 2)

'बड़े जीवो के लिए छोटे जीवो का नाश करना दया नहीं। (पृ 2)

'एक बार फिर उसी बात को दोहराने की आवश्यकता है कि हिंसा तथा अहिंसा अपनी आत्मा की हैं पर की नहीं। क्योकि किसी को कष्ट देने से अपनी आत्मा का ही अधःपतन होता है उसका नहीं और कष्ट न देने से अपनी आत्मा का ही उत्थान एव कल्याण होता है किसी दूसरे का नहीं। हाँ पर-दया भी है किन्तु है वही जिसमें दूसरे को हिंसा के पाप से बचाया जाता है। किसी ने हिसा प्रवृत्त मनुष्य को उपेदश देकर हिंसा से निवृत्त किया

उसकी आत्मा हिसा के पाप से बच गई वह पर-दया है किन्तु मरता हुआ जीव बच गया वह पर-दया नहीं। (पृ 6)

'यद्यपि यह भी उल्लिखित है 'सब जीव जीने की इच्छा करते हैं मरने के इच्छुक नहीं। इसलिए घोर प्राणीवध को भिक्षु वरजते हैं। परन्तु उक्त वाक्य से यह नही पाया जाता कि जीव मरने के इच्छुक नहीं। अत हिंसा का परित्याग करना चाहिये। किन्तु यह तो हिसा छुड़ाने का सरल तरीका है। इस उपदेश से हिसा से घृणा और हृदय मे कोमल भावो का सचार कराया जाता है। (पृ 7)

'बलात्कार मे अहिसा का अभाव है। अहिसा मे बलात्कार को स्थान नहीं है। बलात्कार केवल हिंसा का प्रतीक है। बलात्कार और अहिसा का जातीय विरोध है। जैसे कोई पुरुष किसी निर्बल को मारने का प्रयत्न कर रहा है। उसी समय कोई निष्पक्ष दयालु पुरुष उधर चला आया। आँखो के सामने होने वाली दुर्घटना को देखकर उसने अपने शक्ति-सम्पन्न प्रभुत्व से उसे रोक दिया और उस निर्बल की जान बचा दी। विचारको का कर्तव्य है कि इस दिशा की ओर अपनी विचारधारा को दौडकर सत्य की खोज करे कि उसके प्राण बच गये वह अहिसा है या हिसा की ही प्रबलता ? यदि इसे अहिसा मानली जाय तो फिर अहिंसा का आत्मा से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। मारने वाले की भावना चाहे द्वेष के समुद्र मे गोता लगाती ही क्यो न रहे बस केवल छूट जाना ही अहिसा है। यह बात सगत नहीं है। अत वह अहिसा नहीं हिसा ही है। (पृ 8-9)

'हा यदि इस प्रकार के कार्य को अहिसा नहीं कहकर दुनिया का व्यवहार या दुनियावादी कर्तव्य कहें तो हमें कोई ऐतराज नहीं किन्तु उसको अहिसा कहना सर्वथा असगत एव अक्षम्य है। (पृ 10)

'यह प्रश्न भी निरर्थक होगा कि यदि इसे अहिंसा नहीं मान ली जावेगी तो फिर सहयोग की भावना ही नहीं रह सकती। ध्यान रखो सहयोग को कायम रखने के लिए अहिंसा का स्वरूप नहीं बदला जा सकता अन्यथा असत्य से छुटकारा हो नहीं सकता। (पृ 10)

'पर-दया में दूसरे की आत्मा को पाप से बचाने के प्रसग में उपदेश ही एकमात्र साधन है। इसके सिवाय और कोई दूसरा साधन नहीं है। (पृ 19)

अहिसा का दूसरा साधन मौन है। (पृ 21)

'लोक दृष्टि जिसे दया कहती है तत्त्व दृष्टि उसे हिसा भी कहती है– जैसे किसी भूखे मरते हुए को खाने के लिए कुछ दिया। लोक-दृष्टि कहती है– उसकी आत्मा को शान्ति मिली अत यह दया है। तत्त्व दृष्टि कहती है– जिसको खाद्य पदार्थ दिया गया वह पूर्ण अहिसक (नवकोटि से अहिसा का पालन करने वाला) नहीं बल्कि हिंसक है और छ प्रकार

हैं और ईर्ष्या-द्वेष का जीवो का शस्त्र है। हिसक का पोषण करना अहिसा नहीं हो सकती। प्रत्युत छ काय के शस्त्र को तीक्षण करना है। सवाल उठता है वर्तमान मे हिसा नहीं करता है तो फिर वह हिसक क्यों ? इसका उत्तर स्पष्ट ही है कि जब तक तीन करण एव तीन योग से हिंसा का त्याग नहीं तब तक वह अहिसक नहीं बन सकता। (पृ 23)

'कहा जा सकता है तत्त्व-दृष्टि का उक्त निर्णय साधारण जनता की दृष्टि मे कर्णकटु एव अप्रिय प्रतीत होता है तो फिर इसके प्रचार से क्या लाभ ? ठीक किन्तु तत्त्व-दृष्टि पदार्थों का विश्लेषण कर उनके सत्य-स्वरूप को सामने रख देती है। वह लोकप्रियता के लिए उसके स्वरूप का विपर्यास नहीं कर सकती। तो फिर सत्य-स्वरूप का प्रचार दोषयुक्त क्यो ? 'नहि भेषजमातुरेच्छानुकूलम्' - दवा रोगी की इच्छानुकूल नहीं होती कटु होती है। किन्तु उसमे रोग मिटाने की क्षमता है तो क्या उसका प्रचार करना अन्याय है ? इससे परोपकार की भावना नष्ट हो जाती है इत्यादि शकाओ का निराकरण सहयोग भावना की भाति स्वत कर लेना चाहिये। दीन एव दु खी के दु:ख को दूर करने मे गृहस्थ अपने गृहस्थपन का कर्तव्य समझता है दया धर्म नहीं। (पृ 23)

'भोजन के द्वारा किसी को सन्तुष्ट किया गया तो उसे अहिंसा तत्त्ववदी दया नहीं कह सकता। वह भलीभाँति जानता है कि हिसक शरीर की अशक्तता को दूर करने म अहिसा नही और जहाँ अहिसा नहीं वरन् हिंसा का अनुमोदन है वहाँ दया कैसे हो सकती है ? (पृ 25)

असजती जीव को जीवणो वछे ते राग मर्यों वछे ते द्वेष तरयो वछे ते श्री वीतराग देव को धर्म (भिक्षुस्वामी) इस त्रिपदी मे राग-द्वेष के स्वरूप का निरूपण है। असजती वही है जो कि पूर्ण अहिसक नहीं। उसके जीने की कामना करना और तत्सम्बन्धी खाद्य पेय परिधेय आदि जुटाना राग है। (पृ 27)

'द्वेष की भाति राग भी हिसा है। 'स्वामीजी का अभिप्राय है कि द्वेष से भी राग अधिक हानिकार है। (पृ 27-28)

'चोरी करने वाला चोर है– वैसे चोरी कराने वाला भी चोर है। चूकि उसके द्वारा उसे चोरी का प्रोत्साहन एव अनुमोदन मिलता है। अपनी भाति अपने सजातीय हिसक अन्य शरीरो का भी भरण-पोषण करना हिसा है। (पृ 32)

'कतिपय लोगो का मन्तव्य है कि बड़े जीवों के लिए पृथ्वी पानी आदि के जीवो का वध होने पर भी वह दया है जैसे कोई आदमी प्यास से व्याकुल है उसे पानी पिलाने में। परन्तु कुशाग्रता से विचार करने पर ये भ्रममूलक विचार सत्य साबित नहीं हो सकते। (पृ 83)

इस अहिंसा' नामक पुस्तिका के मुखपृष्ठ पर 'जैन सिद्धान्तानुमोदित विवेचन' वाक्य भी लिखा है। जैन होने के नाते इस पुस्तिका मे लिखे विचार पढकर किस विचारवान् जैनी का दिल दुख से न भर आयेगा। लेखक ने जैन धर्म के विरुद्ध विचारो को जैन सिद्धान्तानुमोदित बता कर अपने नाम के साथ-साथ जैन धर्म को भी बदनाम किया है। ये विचार जैन धर्म के नहीं हैं। जैन धर्म रक्षा दया सहयोग और परोपकार मे धर्म पुण्य मानता है। अपनी मनगढन्त और भ्रामक धारणाओं को जैन धर्म के नाम पर लादना बडा अन्याय है। इन विचारो की क्या आलोचना की जाय ये स्वय अपनी आलोचना हैं। लेखक ने अपने बुद्धिचातुर्य का उपयोग दया और परोपकार की भावना को नष्ट करने के लिए किस खूबी से किया है। इस प्रकार की लोकहितघातक विचारधारा से जैन धर्म लज्जित होता है मानवता लज्जित होती है और जगत् मे धर्म शब्द बदनाम होता है कि उसके नाम से कैसी-कैसी विचारधाराए प्रचलित हैं।

ऊपर के उद्धरण पढकर पाठक अच्छी तरह समझ चुके होगे के साधु के सिवा सब असयती हैं छ काय के शस्त्र हैं हिसक हैं अत उनका रक्षण पोषण आदि पाप है। जीव के बच जाने पर इनको कितना रोष है कि बलात्कार और छोटे जीवो की घात से बड़े जीवा की बात बता कर मूल प्रश्न को भुलावे में डालने की चेष्टा की गई है। जबकि स्पष्ट लिख रहे हैं और मान रहे हैं कि जीव बचाना दया नहीं है। तब बलात्कार आदि का नाम लेकर वस्तुतत्त्व को उलझन मे क्यो डाला जाता है ? बिना बलात्कार और बिना छोटे जीवो की हिंसा के भी जीवरक्षा मे पाप मानते हैं क्योकि असयती जीव हिसक हैं और उनकी रक्षा या सहायता करना पाप है तब फिर बलात्कार आदि का नाम लेकर जनता मे अपनी सफाई क्या पेश करते हैं ? यदि समझा-बुझाकर या शुद्ध अहिंसक साधन से असयती का रक्षण-पोषण और सहाय्य आदि को धर्म-पुण्य मानते होते तब तो बलात्कार का नाम लेना ठीक था। केवल जनता को गलत मार्ग में घसीटने के लिए बुद्धिरूपी शस्त्र का घातक उपयोग किया गया है। लोहे के शस्त्र से भी ये घातक सिद्धान्त बडे विनाशकारी हैं।

जैन धर्म अन्न वस्त्र और परिधेय आदि द्वारा सहायता करने मे और मरते जीव की रक्षा मे धर्म पुण्य मानता है। तेरापथी रक्षा और परोपकार को दुनियावी कर्तव्य मानते हैं और दुनियावी कर्तव्य के पालन का फल सर्वथा पापबध होना मानत हैं।

माता पिता अध्यापक दश-नेता श्रावक अणुव्रती सघ का सदस्य आदि सब असयती हैं अत हिसक हैं छ काय के शस्त्र हैं। भला ऐसे हिंसकों की शुश्रूषा और सहायता करना तेरापथ के मत में धर्म कैसे हो सकता है ? इसी प्रकार गायों से भरे बाडे में आग लगने पर द्वार खोल कर गायों की रक्षा करने मे न तो किसी पर बलात्कार होता है और न छोटे जीवो का घात ही होता है फिर भी चूकि गाये असयती हैं– साधु नहीं हैं अत उनको बचाना सर्वथा

पाप है। मोटर की झपट या अन्य किसी प्राकृतिक कारण से मौत के मुख मे फसे हुए की शुद्ध साधन से रक्षा करने मे भी पाप मानने वाले वलात्कार शब्द को क्यों लज्जित करते हैं ? वलात्कार के विना रक्षा करने में भी पाप मानते हैं फिर वलात्कार की आड़ मे अपने पाप को क्यो छिपाया जाता है ?

इस प्रकार के घातक और अमानवीय विचारों को यदि ये लोग अपने तक ही सीमित रखते तव भी ठीक था। किन्तु वड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि 'हमारे ये विचार कर्णकटु और अप्रिय प्रतीत होते हैं फिर भी इनका प्रचार दोषयुक्त क्यो ? दवा रोगी की इच्छानुकूल नहीं होती तो क्या उसका प्रचार करना अन्याय है ? 'इससे परोपकार की भावना नष्ट हो जाती है तो क्या किया जाय। हम अपनी व्याख्या नहीं बदल सकते।

इन मिथ्या विचारो का जैन धर्म के नाम के साथ प्रचार किया जा रहा है। प्रचार भी बडे व्यवस्थित ढग से हो रहा है। कारण कि लक्ष्मी की कुछ कृपा इन भाइयो पर अधिक है। लक्ष्मी इन से बडी प्रसन्न हैं क्योंकि दूसरे की भलाई के लिए एक पाई खर्च करना भी ये लोग पाप मानते हैं। केवल अपने पथ का प्रचार करने में लक्ष्मी का उपयोग जरूर करते हैं। इस उपयोग का फल पाप मानते हैं या क्या ? ज्ञानी जाने ! दीन-दुखियों के लिए लक्ष्मी का उपयोग करने में तो सर्वथा पाप मानते हैं यह ऊपर के उद्धरणो से सपष्ट है।

जवकि तेरापथी अपने मिथ्या सिद्धान्तो का प्रचार कर रहे हैं तव आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज या अन्य कोई भावनाशील व्यक्ति इनकी कुधारणाओ से सावधान रहने के लिए जनता को आगाह करते हैं तव क्या बुरा करते हैं ? हमारी समझ मे नहीं आता कि इस प्रकार की विचारधारा के प्रचार से ये लोग किसका भला करना चाहते हैं ? हमारे खयाल से इस विचारधारा के प्रचार से देश का वडा अहित हो रहा है। भारत के करीव करीव सव प्रांतों मे इस विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है कि ससार के सव कामो मे पाप है। राजनीति समाजनीति लोक-व्यवस्था समाज व्यवस्था आदि धर्म से सर्वथा भिन्न हैं और इन का पालन-पोषण करने वाला पाप करता है हिंसा करता है आदि। समिति के प्रश्नों का उत्तर आचार्यश्री तुलसी ने व्यवहार की कोटि मे पुण्य होना मान कर दिया है। किन्तु इस पुण्य का अर्थ पाप ही है। जिसे इन्होंने पुण्य कहा है उसका फल पाप प्रकृति के रूप मे ही वधना मानते हैं। छलपूर्वक पुण्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

जैन धर्म का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। अगर किसी को मारना या सताना पाप है तो वचाना और सुख पहुँचाना पुण्य है यह सामान्य नियम रथ्यापुरुष भी समझता है। यह अनुभवसम्मत है इसमें शास्त्रीय प्रमाणा की आवश्यकता नहीं। यदि किसी को सताने से हमारी आत्मा मलिन होती है तो किसी को सुख पहुँचाने से उज्ज्वल होती है यह सर्वसम्मत

है। दूसरो को सुख पहुँचाने से आत्मा का पतन होने की वात कहना शास्त्र व अनुभव विरुद्ध है। हाँ यदि सुख पहुँचाने म हमारा कोई स्वार्थ निहित हो या अशुद्ध साधनो से सुख पहुँचाया जाय तव तो आत्मपतन की वात समझ मे आ सकती है। किन्तु क्रोध मान माया लोभ से रहित भावना से शुद्ध साधन से किसी प्राणी की प्राणरक्षा करना या भौतिक साधन से उसकी सहायता करना पाप-कार्य कैसे है ? और ऐसे काम से आत्मपतन कैसे होता है ? आत्मोत्थान के कार्यो को आत्मपतन के कार्य वताना विचित्र दार्शनिको का ही काम हो सकता है।

हमारे तेरापथी भाइयों और अहिंसा' के लेखक मुनिश्री नथमलजी की यह धारणा है कि 'किसी जीव को वचाने की या उसकी मदद करने की मन मे भावना लाना राग-भावना है। जव किसी जीव के प्रति हमारे मन मे राग होता है तभी उसकी रक्षा या सहायता करने की भावना उत्पन्न होती है। जिस प्रकार द्वेष वधन का कारण है उसी प्रकार राग भी। जैसा कि ऊपर के उदाहरण मे वताया गया है राग रेशम की गाँठ है। इस से वचना वडा कठिन है। प्राण-रक्षा करना लोक-दृष्टि है। जीव के ससार-समुद्र से तैरने की कामना करना ही शुद्ध व तात्त्विक दृष्टि है।

वस हमारे भाइयो की विचार-शक्ति इसी वात को समझने मे कुण्ठित हो गई है। भीखणजी महाराज ने शुरू मे इस वस्तु को समझने मे महान् भूल की अपने गुरु आचार्यश्री रघुनाथजी महाराज के वहुत समझाने पर भी न माने और गुरु का अविनय और आज्ञा भग करके इसी विना पर अलग हुए। उनको यह मनोभ्रम हो गया था कि हिंसक को हिंसा से छुडाना तो धर्म है क्योकि इससे वह हिंसा से वच जाता है। किन्तु हिंस्यमान (जिसकी हिंसा की जा रही है) को वचाने की कामना करना धर्म नहीं पाप है। कारण कि जिसको वचाया जा रहा है वह अहिंसक अर्थात् साधु नहीं है। दूसरी वात वचाने या सहायता करने से उसके प्रति रागभाव आ जाता है। रागभाव पाप है। इसी मनोभ्रम के आधार पर भीखणजी महाराज अपने गुरु से पृथक हुए और अलग सम्प्रदाय कायम करने में जुट गये। धर्म के नाम पर भारतीय लोगो को गुमराह करना साधारण काम है। कैसी भी विचारधारा हो धर्म के नाम से उसका प्रचार चल निकलता है। भोले भाले अपठित और व्यापार में निरत रहने वाले अनेक ग्रामीण लोग इनके वहकावे में फस ही गये। जैसा कि सन्त भीखणजी के जीवन चरित में उल्लिखित है 'वह अधकार युग था। लोगो को वास्तविक धर्म प्रकाश का वोध न था' अत इनके चगुल मे फस गये।

अपने शरीर की विकार पुष्टि के लिए रक्षण-पोषण और सार सभाल करना रागभाव है और पाप भी। इसी प्रकार अपने शरीर के भावी सुख की कामना से कुटुम्बियों का पालन पोषण और सरक्षण राग हो सकता है। किन्तु नि स्वार्थ भाव से आत्मौपम्य व सिद्धान्त

से दूसरे जीवों का रक्षण या सहाय्य राग कैसे है ? राग तो निज स्वार्थ से ताल्लुक रखता है। जगत् को सुखी बनाने की भावना मे राग कैसा ? यह तो अपनी सकुचित शरीर-भावना से ऊँचा उठ कर विशाल चैतन्य में तदाकार होने की उच्चतम भावना है। इसमे राग होने की मिथ्या कल्पना करना मनोभ्रम मात्र है। यह राग नहीं किन्तु मैत्रीभाव और शुद्ध प्रेमभाव है। मान लीजिये हम किसी अपरिचित बालक को आपत्ति में से बचा रहे हैं या किसी गाय को आततायी के चगुल से छुड़ा रहे हैं तो इसमें रागभाव कैसा ? क्या अपरिचित बालक और गाय हमारे रिश्तेदार हैं जो उनके प्रति राग होने की कल्पना की जाती है ? नहीं उनके प्रति हमारी मैत्री-भावना है और इसीलिए हम इनका रक्षण और वक्त पर पोषण करना अपना धर्म समझते हैं। इसम किसी प्रकार का पाप होने की गुजायश नहीं है। शारीरिक रक्षण और पोषण होगा तब तो आगे उसको धर्ममार्ग पर लगाने का अवसर भी आ सकता है।

जैन धर्म की उक्तियाँ पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि 'सब जीव जीने की इच्छा रखते हैं'। इसका अर्थ यही हुआ कि जीने में मदद करना अच्छा काम है धर्म है पुण्य है। अब प्रश्न यह रहा कि जिसकी रक्षा की जा रही है वह सयमी नहीं है असयमी है या ससार के व्यवहार मे निरत है। तो इसकी जिम्मेवारी उस पर है। बचाने वाले की इसमें क्या जिम्मेवारी है ? उसकी जिम्मेवारी तो बचाने या सहाय्य करने तक सीमित थी। उस वक्त उसको मैत्रीभाव उत्पन्न हुआ और रक्षा या सहायता कर दी। इस पवित्र भावना से उसे लाभ हो चुका। हम किसी की रक्षा या सहायता करते हैं वह इस भावना से नहीं करते कि भविष्य में यह प्राणी पाप या असयम का सेवन करे। हमारी भावना उसको बचाने और मदद करने तक सीमित है। वह अपने जीवन से धर्म या पाप का सेवन करेगा इसकी जिम्मेवारी उसी पर है। बचाने वाले पर नहीं। हमें दया या मैत्रीभाव पैदा हुआ और रक्षण तथा सहाय्य कार्य कर दिया। रक्षण और सहायता कार्य की भावना पापरूप कैसे हो सकती है ? कदाचित् गृहस्थ होने के नाते साधन के उपयोग में किंचित् आरम्भ सेवन हो सकता है। आरम को आरम्भ मानने में और उससे लगने वाली क्रिया से किसी को कोई ऐतराज नहीं है किन्तु रक्षा की भावना तथा चेष्टा पापरूप कैसे ?

वर्तमान समय मे जैन समाज मुख्य तीन फिरको में बटा हुआ है 1 दिगम्बर, 2 श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और 3 श्वेताम्बर स्थानकवासी। उक्त तीनों फिरके दया और दान की जैन धर्म सम्बन्धी मान्यता में एकमत हैं। मूल आगमों में तथा पिछले साहित्य मे कूट कूट कर रक्षारूप दया तथा दीन-दु खियो की सहायता करने के उदाहरण भरे पडे हैं। दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों के कथा-साहित्य में भी इस उदार धर्म की बड़ी पुष्टि की हुई मिलती है।

अहिंसा का विधिरूप और निषेधरूप दोनों प्रकार का अर्थ जैन धर्म को मान्य है।

अहिसा की ससारप्रसिद्ध व्याख्या - किसी को अपनी ओर से न सताना तथा सताये जाते हुए का रक्षण करना– जैन धर्म को पूर्णतया सम्मत है। किन्तु जैन धर्म के एक फिरके मे से निकला हुआ तेरापथ नामक एक छोटा-सा टुकडा अहिसा की व्याख्या वडी विचित्र करता है जिसका आचरण करने से ससार मे निर्दयता और अनाचार फैल सकता है। जैसे मोटर की झपट मे आते हुए नादान वालक को दिल कठोर करके देखते रहना निर्दयता नहीं तो क्या है ? और माता-पिता जैसे महान् उपकारी पुरुषो की सेवा-शुश्रूषा करने मे पाप मानने वाला और पाप मान कर सेवा से विरत होने वाला जगत् मे अनाचार नहीं फैलाता तो क्या करता है ? यदि अनाचार शब्द इसके लिए उपयुक्त न लगता हो तो किसी दूसरे शब्द का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु इस सत्य को स्वीकार करना पडता है कि साधु से अतिरिक्त की रक्षा और सहायता मे पाप की प्ररूपणा करने वाली विचारधारा से इस ससार मे महान् अनर्थ होने की सभावना है।

अहिसा की ससार-विलक्षण व्याख्या मे से ही यह सारी अनर्थ-परम्परा उत्पन्न हुई है। तेरापथ की अहिंसा की व्याख्या जगद्विलक्षण है यह वात स्वय उस समाज के सभापति स्वीकार करते हैं। देखिये -

अहिसा पुस्तिका की भूमिका मे श्री छोगमलजी चोपडा सभापति श्री जैन श्वेताम्वर तेरापथी सभा 201 हरिसन रोड कोलकाता लिखते हैं–

'जैन धर्म का मूल आधार अहिसा है। यद्यपि अहिसा को सभी धर्म किसी न किसी रूप मे मानते हैं किन्तु जैन धर्म की अहिसा की परिभाषा सव से उच्च है। जैन सम्प्रदायो मे भी श्री श्वेताम्वर तेरापथी सप्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावो पर आश्रित है। अत उक्त सम्प्रदाय की परिभाषा को देने के लिए इस ग्रथ को पाठको की भेंट किया जाता है।

आशा है विद्वान् लाग इस विषय में अपने भाव सार्वजनिक रूप से उदारतापूर्वक प्रगट करेगे।

ऊपर यह कहा गया है कि तेरापथी सम्प्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावो पर आश्रित है। पाठक जरा गौर करे कि इस शुद्ध आम्नाय का आविष्कारक कौन है ? भीखणजी महाराज की वुद्धि में विकार उत्पन्न हुआ और इस शुद्ध आम्नाय का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व की दिगम्बर श्वेताम्वर आम्नायें शुद्ध न थीं अत भीखणजी महाराज को अहिसा की व्याख्या वदलनी पडी। इसके बिना रक्षा और सहायता मे पाप मानने की उनकी मिथ्या धारणा को कोई आधार न था। इस केवल भावो पर आश्रित मनगढन्त व्याख्या से जैन धर्म कितना वदनाम हुआ है और जैनेतर समाजों में कितना नीचा देखना पडता है यह भुक्तभोगी ही जानता है।

जैन समाज के दिगम्बर और श्वेताम्बर साधु तथा गृहस्थ विद्वानो से हमारी हार्दिक अपील है कि वे इस मिथ्या विचारधारा की तरफ थोडा लक्ष्य करें। पाँच-सात वर्ष पूर्व तक यह विचारधारा थली की घनी रेत और मेवाड के घने पहाड़ो में दबी पडी थी। किन्तु अब आचार्यश्री तुलसी की महत्त्वाकाक्षा और आत्मप्रदर्शन की लालसा रेत और पहाड़ों को भेद कर भारत की राजधानी तक फैलने की कोशिश मे है। जैन धर्म के नाम से अहिसा को इस रूप मे रखते देखकर *जैन विद्वान चुप बैठे रहे यह शोभनीय नहीं है। विद्वानों का ध्यान इस तरफ नहीं* जाता है यह बडे खेद की बात है।

जब स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश मे जैन धर्म की मान्यता विकृत रूप में उपस्थित की थी तब तो जैन विद्वानों ने उस ओर ध्यान दिया था। किन्तु जैन नामधारी व्यक्ति जैन धर्म के प्राणस्वरूप अहिंसा को विकृत अधूरी और अनर्थकारी के रूप मे जगत् के सामने उपस्थित करते हैं तब हमारे विद्वान् चुप क्यों हैं ? जैन धर्म के नाम पर लगने वाले इस कलक को मिटाने के लिए विद्वानो को आगे आना चाहिये। एक बात की तरफ विद्वानो का ध्यान आकर्षित करना उचित ज्ञात होता है कि वे तेरापन्थ की मान्यताओं को बारीकी से देखने की कोशिश करेगे तब इस कार्य में सफल होंगे।

मुनिश्री नथमलजी लिखित 'धर्म और लोक-व्यवहार' नामक ताजा पुस्तिका के नमूने भी ध्यान मे लीजिये–

असयमी शरीर का खान-पान पालन-पोषण करना आदि असयम के पोषक हैं इसलिए अधर्म हैं। (पृ 7)

यहाँ स्पष्ट शब्दो मे साधु से इतर को दया-बुद्धि से प्रेरित होकर या माता पिता जैसों को उपकार-बुद्धि से प्रेरित होकर अन्न जल परिधेय आदि प्रदान करना या उनका पालन पोषण और सेवा शुश्रूषा करना अधर्म - पाप बताया गया है। फिर भी जब स्थानकवासी आचार्यश्री *गणेशलालजी महाराज अपने व्याख्यानो मे यह कहते हैं कि तेरापन्थी साधु के सिवाय किसी* प्राणी की रक्षा और सहायता मे पाप मानते हैं तब इस बात को यह कह कर उड़ा देने की चेष्टा की जाती है कि तेरापन्थियो के प्रचार और वृद्धि से ईर्ष्याभाव धारण करके उन पर यह झूठा दोषारोपण किया जाता है। धर्मरक्षक समिति' ने जयपुर मे तेरापन्थ की मान्यताओं को जनता की नजर मे लाने की दृष्टि से छपवा कर प्रकाशित किया था तब भी तेरापन्थ के आचार्यश्री तुलसी ने यह कहकर छुटकारा पाया था कि 'हमारी उन्नति से जलने वाले लोग हम पर झूठा दोषारोपण लगाते हैं। किसी की उन्नति से कोई क्यों जलने लगे ? यह तो बचाव करने का एक तरीका है। *निर्दयी विचारधारा का विरोध करना मानवीय कर्तव्य समझ* कर समिति ने उस पर प्रकाश डाला था। रक्षा और सहायता में स्वयं पाप मानते हैं किन्तु

दूसरे जब यह बात कहते हैं तब इनको बड़ी चिढ छूटती है। इसका उपाय एकमात्र ऐसी गदी और घातक मान्यता को तिलाञ्जलि देना ही है। दूसरो पर रोष करना नहीं। और थोडा नमूना देखिए–

'जैन मात्र असयती (गृहस्थ) के खाने-पीने को हिसा मानते हैं। एक गृहस्थ रोटी खाता है पानी पीता है वह धर्म नहीं पुण्य नहीं आत्म-साधना नहीं। तब फिर विपत्तिकाल मे अनुकम्पा कर उसे कोई रोटी खिलाये पानी पिलाये वह धर्म कैसे होगा ? परिस्थिति मे कोई अन्तर नहीं आया वह आपत्ति दशा से पहले भी गृहस्थ था असयती था और अब भी वैसा ही है। पहले भी उसका खाना-पीना धर्म नहीं माना जाता था और अब भी नहीं तब फिर खिलाने-पिलाने वाले को धर्म-पुण्य कैसे होगा ? महाव्रती साधु-सन्तो का खान-पान धर्म है इसीलिए उनको दान देने वाले को धर्म होता है। किन्तु जिसका खान-पान अधर्म है–हिसा है उसको देकर धर्म का लाभ कैसे लूटा जा सकता है ? शरीर के हित-चिन्तन मे आत्महित की बात कैसी ? वह तो शरीर पर ममत्व है। (पृ 7 से 9)

यहाँ लेखक ने जैन मात्र शब्द का प्रयोग करके दिगम्बर और श्वेताम्बर और स्थानकवासियों को अपनी घातक और निर्दयी मान्यता से सहमत होने के लिए घसीटने की कोशिश की है। तेरापन्थियो के सिवा कोई जैनी गृहस्थ के खान-पान को सर्वथा पाप नहीं मानते और न दूसरो को खिलाने-पिलाने मे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है विकार-पुष्टि के लिए खाना-पीना अधर्म है पाप है। किन्तु व्रत-नियम निभान और शरीर को टिकाये रखने के लिए निर्दोष भोजन-पान पाप नहीं है। मोक्षाभिमुखी सम्यग्दृष्टि श्रावक और प्रतिमाधारियो का खान-पान अधर्म नहीं है। उनका लक्ष्य मुक्ति बन चुका है। अनुकम्पा लाकर दूसरों की प्राणरक्षा और आर्त-रौद्र ध्यान मिटाने के लिए खिलाने पिलाने मे अधर्म या पाप होने की बात शास्त्र और अनुभव विरुद्ध है। भोग और स्वाद की पुष्टि के लिए खुद का खाना पाप है मगर दया बुद्धि से दूसरे को खिलाना पाप नहीं है। खाकर दूसरा क्या करेगा इसकी जिम्मेवारी खाने वाले पर है खिलाने वाले पर नहीं। उसे तो अनुकम्पा बुद्धि उत्पन्न हुई और उसे कार्यरूप में परिणत कर दिया इससे लाभ–पुण्य ही हुआ। जैसे कि नहीं मारने से आनुषगिक रूप से बचे हुए प्राणी के भावी कार्यों की हम पर जिम्मेवारी नहीं है।

भारत पाकिस्तान के बटवारे के वक्त अथवा भूकम्प आदि प्रकृति प्रकोप के वक्त जब मानव समाज महान् आपत्ति मे पड़ जाता है तब भोजन पान आदि द्वारा सहायता करने में लेखक ने अधर्म बताया है। और साथ ही यह भी कहा है कि 'परिस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। परिस्थिति में अन्तर आया अथवा नहीं यह बात तो वे भुक्तभोगी शरणार्थी भाई जानते हैं। और उनको खिलाने पिलाने से अधर्म - पाप होता है या धर्म - पुण्य यह बात भी उनकी

अतरात्मा वता सकती है। सेठ साहूकारो का विना परिश्रम का अन्न-जल खाने वाला और दूसरो की पीड़ा का अनुभव नहीं करने वाला व्यक्ति इसका अदाजा नहीं लगा सकता।

'शरीर के हित-चिन्तन मे आत्महित की वात कैसी ? वह तो शरीर पर ममत्व है।

लेखक खुद खाता है पीता है और परिधान भी धारण करता है फिर भी दूसरों को खिलाने पिलाने के वक्त शरीर के हित-चितन की वात आगे कर देता है। पौद्गलिक शरीर के पोषण मे पाप बताता है। क्या उनका खुद का खाना-पीना शरीर का—पौद्गलिक शरीर का—हित-चितन नहीं ? और क्या दूसरों को खिलाने-पिलाने वाले आत्मारहित मुर्दा पौद्गलिक शरीर को खिलाते-पिलाते हैं या आत्मायुक्त शरीर को ? जीवित प्राणी को खिलाते पिलाते वक्त पौद्गलिक का नाम लेकर उस आत्मा में होने वाली तुष्टि को उडा देना निर्दयी व्यक्तियों का ही काम हो सकता है। दयावान् ऐसी बात नहीं कह सकते। नि स्वार्थ भाव से दूसरों को खिलाने पिलाने मे उनके शरीर पर ममत्व होने का प्रसग ही नहीं है। मैत्रीभाव के विकास को ममत्व वताना अज्ञानता और दया पर द्वेष ही कहा जा सकता है। (पृ 12 13)

'सामाजिक प्राणी मोह मे फसे हुए हैं। 'धर्म और मोह के रास्ते दो हैं। 'व्यक्तियों के सामूहिक आपत्तियो के अवसर पर यदि कोई समर्थ व्यक्ति सहायता करे उसमें धर्म तो दूर किन्तु वह सामाजिक विशेपता भी नहीं है। 'वरावर के सामाजिक व्यक्ति को कृपा का पात्र मान कर सहयोग करना अहकार की पराकाष्ठा और ऐश्वर्य के मद से उत्पन्न हुए कुसस्कार हैं।

भूकम्प या गृहयुद्ध या इतर देश के आक्रमण जैसे अवसर पर किसी समर्थ व्यक्ति द्वारा अपने देश-भाइयो की सहायता करने में धर्म तो दूर किन्तु सामाजिक विशेपता भी नहीं है— यह है हमारे तेरापथी भाइयो की मान्यता ! बीच मे बड़ी चालाकी से बरावरी के सामाजिक व्यक्ति को कृपापात्र मान कर सहयोग को कुसस्कार वता दिया है जिससे पढने वाले के मन पर यह असर पड जाय कि बरावरी वाले को कृपापात्र मानना तो बुरी वात है। किंतु यह केवल शब्द- चातुरी है। यदि कोई बरावरी के व्यक्ति को कृपापात्र न मानकर आपत्तिग्रस्त समझ कर मैत्रीभाव से प्ररित हो कर उसकी सहायता करता है तव क्या फल होता है ? अधर्म या धर्म-पुण्य ? असयती की रक्षा में और सहायता मे सर्वथा पाप मानने वाले लोगो को अपने पाप छिपाने के लिए कितने तरीके अख्तियार करने पड़े हैं ! कभी बलात्कार कभी छोटा बड़ा जीव कभी दूसरों को कृपापात्र माने की बात और कभी बरावरी के व्यक्ति का नाम लेकर लुका-छिपी की जाती है।

मुनि नथमलजी कृत 'उन्नीसवीं सदी या नया आविष्कार' नामक पुस्तिका में से -

अ[illegible]मा[illegible]त चार वर्ष के गभीर अनुशीलन मन[illegible] और सर्वतोमुखी अन्वेषण के बाद

आचार्य भिक्षु ने धन-व्यय से की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक या राष्ट्रीय कार्य हैं आध्यात्मिक धर्म का इनसे कोई सम्बन्ध नही' -- इस सिद्धान्त को जनता के सामने रखा। इस ने धार्मिक जगत् मे बडी हलचल पैदा की। धार्मिक जगत् के लिए यह उन्नीसवीं सदी का सबसे बडा और नया आविष्कार था। (पृ 8)

यहाँ पर बेचारे धन को बीच मे लाकर अपने पापभावों को छिपाने की चेष्टा की गई है। क्या धन-व्यय के विना की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ पुण्यरूप हैं ? यदि नहीं तो धन का नाम लेकर बचने की कोशिश क्यो ? सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक और राष्ट्रीय हैं यह तो ठीक है। और इनका आध्यात्मिक धर्म से कदाचित् सम्बन्ध भी न हो तो न सही जो कि सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्थाओ का भी आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है तथापि 'तुष्यतु दुर्जन न्यायेन' यह मान ले कि आध्यात्मिकता से सार्वजनिक व्यवस्थाओ का कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि इनके कर्ता को पापरूप बधन क्यो ? पुण्यरूप बधन क्यो नहीं ? सामाजिक और राष्ट्रीय भले कामो का फल पापरूप मानना जगत् मे अन्धाधुन्धी फैलाना है। सचमुच भले कामो का फल पापरूप बता कर भीखणजी महाराज ने उन्नीसवीं सदी मे सबसे बडा और नया आविष्कार ही किया है !

यह हुन्डावसर्पिणी है इसमे जो-जो चमत्कार व आविष्कार न हो वे कम हैं। इस पचमकाल या कलियुग मे धर्म के क्षेत्र मे जो कमी थी वह इस आविष्कार ने पूरी कर दी। स्वभावत ही अधिकाश व्यक्ति निज स्वार्थ मे तल्लीन हैं फिर धर्मगुरु यदि दूसरो की भलाई या परोपकार में पाप बताने लगे तब तो बेडा पार है ! जो ऊँचा उठने का साधन है उसे नीचा गिरने का साधन बता कर भले कामो से बचते रहने का उपदेश देना एक अजीबोगरीब बात है।

'यह कतई गलत है कि तेरापथ के अनुयायी लौकिक कार्यो मे बाधा डालते हैं या म ना करते हैं। (धर्म और लोकव्यवहार पृ 23)।

तेरापथ के अनुयायियों द्वारा लौकिक कामा मे बाधा नहीं डालने की बात ऊपर कही गई। किन्तु इस पद्य की तरफ पाठको का ध्यान आकर्षित किया जाता है–

अव्रत में दान देवा तणो कोई त्याग करे मन शुद्ध जी।
त्यारो पाप निरतर टालियो त्यारी वीर बखाणी बुद्ध जी।

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति साधु के सिवाय अन्य किसी प्राणी को किसी प्रकार का दान देने का त्याग कर लेता है तो उसका सदा के लिए पाप टल जाता है। यदि इस पद्य का कर्ता तीन पाद तक रुक जाता तब भी ठीक था किन्तु आगे कहता है कि जो अव्रतदान का त्याग कर लेता है उसकी बुद्धि की भगवान् महावीर प्रशसा करते हैं। महावीर स्वामी को

अतरात्मा बता सकती है। सेठ साहूकारो का बिना परिश्रम का अन्न जल खाने वाला और दूसरों की पीडा का अनुभव नहीं करने वाला व्यक्ति इसका अदाजा नहीं लगा सकता।

'शरीर के हित-चिन्तन मे आत्महित की बात कैसी ? वह तो शरीर पर ममत्व है।

लेखक खुद खाता है पीता है और परिधान भी धारण करता है फिर भी दूसरो को खिलाने-पिलाने के वक्त शरीर के हित-चितन की बात आगे कर देता है। पौद्गलिक शरीर के पोषण मे पाप बताता है। क्या उनका खुद का खाना-पीना शरीर का–पौद्गलिक शरीर का–हित चितन नहीं ? और क्या दूसरों को खिलाने पिलाने वाले आत्मारहित मुर्दा पौद्गलिक शरीर को खिलाते-पिलाते हैं या आत्मायुक्त शरीर को ? जीवित प्राणी को खिलाते पिलाते वक्त पौद्गलिक का नाम लेकर उस आत्मा मे होने वाली तुष्टि को उड़ा देना निर्दयी व्यक्तियों का ही काम हो सकता है। दयावान् ऐसी बात नहीं कह सकते। नि स्वार्थ भाव से दूसरो को खिलाने पिलाने मे उनके शरीर पर ममत्व होने का प्रसग ही नहीं है। मैत्रीभाव के विकास को *ममत्व बताना अज्ञानता और दया पर द्वेष ही कहा जा सकता है।* (पृ 12 13)

'सामाजिक प्राणी मोह मे फसे हुए हैं। 'धर्म और मोह के रास्ते दो हैं। 'व्यक्तियों के सामूहिक आपत्तियो के अवसर पर यदि कोई समर्थ व्यक्ति सहायता करे उसमें धर्म तो दूर किन्तु वह सामाजिक विशेषता भी नहीं है। 'बराबर के सामाजिक व्यक्ति को कृपा का पात्र मान कर सहयोग करना अहकार की पराकाष्ठा और ऐश्वर्य के मद से उत्पन्न हुए कुसस्कार हैं।

भूकम्प या गृहयुद्ध या इतर देश के आक्रमण जैसे अवसर पर किसी समर्थ व्यक्ति द्वारा अपने देश-भाइयों की सहायता करने मे धर्म तो दूर किन्तु सामाजिक विशेषता भी नहीं है– यह है हमारे तेरापथी भाइयो की मान्यता ! बीच मे बड़ी चालाकी से बराबरी के सामाजिक व्यक्ति को कृपापात्र मान कर सहयोग को कुसस्कार बता दिया है जिससे पढने वाले के मन पर यह असर पड़ जाय कि बराबरी वाले को कृपापात्र मानना तो बुरी बात है। किंतु यह केवल शब्द- चातुरी है। यदि कोई बराबरी के व्यक्ति को कृपापात्र न मानकर आपत्तिग्रस्त समझ कर मैत्रीभाव से प्रेरित हो कर उसकी सहायता करता है तब क्या फल होता है ? अधर्म या धर्म पुण्य ? असयती की रक्षा मे और सहायता मे सर्वथा पाप मानने वाले लोगों को अपने पाप छिपाने के लिए कितने तरीके अख्तियार करने पडे हैं ! कभी बलात्कार कभी छोटा बड़ा जीव कभी दूसरो को कृपापात्र मानने की बात और कभी बराबरी के व्यक्ति का नाम लेकर लुका-छिपी की जाती है।

मुनि नथमलजी कृत 'उन्नीसवीं सदी या नया आविष्कार' नामक पुस्तिका में से

अनुमानत चार वर्ष के गभीर अनुशीलन मनन और सर्वतोमुखी अन्वेषण के बाद

आचार्य भिक्षु ने धन-व्यय से की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक या राष्ट्रीय कार्य हैं आध्यात्मिक धर्म का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं' -- इस सिद्धान्त को जनता के सामने रखा। इस ने धार्मिक जगत् मे बड़ी हलचल पैदा की। धार्मिक जगत् के लिए यह उन्नीसवीं सदी का सबसे बडा और नया आविष्कार था। (पृ 8)

यहाँ पर बेचारे धन को बीच मे लाकर अपने पापभावा को छिपाने की चेष्टा की गई है। क्या धन-व्यय के बिना की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ पुण्यरूप हैं ? यदि नहीं तो धन का नाम लेकर बचने की कोशिश क्यो ? सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक और राष्ट्रीय हैं यह तो ठीक है। और इनका आध्यात्मिक धर्म से कदाचित् सम्बन्ध भी न हो तो न सही जो कि सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्थाओ का भी आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है तथापि 'तुष्यतु दुर्जन न्यायेन' यह मान ले कि आध्यात्मिकता से सार्वजनिक व्यवस्थाओ का कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि इनके कर्ता को पापरूप बधन क्यो ? पुण्यरूप बधन क्यो नहीं ? सामाजिक और राष्ट्रीय भले कामो का फल पापरूप मानना जगत् मे अन्धाधुन्धी फैलाना है। सचमुच भले कामो का फल पापरूप बता कर भीखणजी महाराज ने उन्नीसवीं सदी मे सबसे बड़ा और नया आविष्कार ही किया है !

यह हुन्डावसर्पिणी है इसमे जो-जो चमत्कार व आविष्कार न हों वे कम हैं। इस पचमकाल या कलियुग मे धर्म के क्षेत्र मे जो कमी थी वह इस आविष्कार ने पूरी कर दी। स्वभावत ही अधिकाश व्यक्ति निज स्वार्थ मे तल्लीन हैं फिर धर्मगुरु यदि दूसरो की भलाई या परोपकार मे पाप बताने लग तब तो बेडा पार है ! जो ऊँचा उठने का साधन है उसे नीचा गिरने का साधन बता कर भले कामो से बचते रहने का उपदेश देना एक अजीबोगरीब बात है।

'यह कतई गलत है कि तेरापथ के अनुयायी लौकिक कार्यो मे बाधा डालते हैं या म ा करते हैं। ('धर्म और लोकव्यवहार पृ 23)।

तेरापथ के अनुयायियों द्वारा लौकिक कामो मे बाधा नहीं डालने की बात ऊपर कही गई। किन्तु इस पद्य की तरफ पाठको का ध्यान आकर्षित किया जाता है--

अव्रत मे दान देवा तणो कोई त्याग करे मन शुद्ध जी।
त्यारो पाप निरतर टालियो त्यारी वीर बखाणी बुद्ध जी।

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति साधु के सिवाय अन्य किसी प्राणी को किसी प्रकार का दान देने का त्याग कर लेता है तो उसका सदा के लिए पाप टल जाता है। यदि इस पद्य का कर्ता तीन पाद तक रुक जाता तब भी ठीक था किन्तु आगे कहता है कि जो अव्रतदान का त्याग कर लेता है उसकी बुद्धि की भगवान् महावीर प्रशसा करते हैं। महावीर स्वामी नो,

बीच में लाकर अपनी निकृष्ट मान्यता का समर्थन किया गया है। महावीर स्वामी ने दीन हीन और दुखियो को दान देने का कभी निषेध नहीं किया है। न त्याग करने त्रा उपदेश दिया है और न पापरूप फल ही बताया है। अव्रतदान का त्याग कराने वाले हीन दीन और आपत्‌ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता के कार्य मे बाधा डालने वाले गिने जायगे या नहीं ? फिर भी कहते हैं कि तेरापन्थ के अनुयायी लौकिक कामा मे बाधा नहीं डालते। अव्रतदान का त्याग करानेवाले तथा त्याग कर लेने का उपदेश देने वाले परोपकार मे अवश्य बाधक हैं। वर्तमान म दान देते हुए को मना नहीं किया जाता है यह बात ठीक है। किन्तु भूतकाल मे दान दिया हो। उसका पश्चात्ताप करने और भविष्य मे दान न देने का त्याग तो तेरापथी साधु कराते हैं न ! यह दान में बाधा नहीं तो क्या है ? यह सच है कि तेरापथी वर्तमान में मना नहीं करते। मगर मना न करने का यह तो अर्थ नहीं है कि वे लौकिक कामों का फल पापरूप नहीं मानते। लौकिक कार्यो का फल पापरूप सुन कर कौन उनमे प्रवृत्त होगा ?

उक्त पद्य में उपलक्षण से दान के साथ-साथ रक्षा परोपकार आदि भी पापकार्य हैं। इनका त्याग कर लेने वाले का भी पाप सदा टल जाता है। ऐसा अर्थ इसके गर्भ में छिपा हुआ है।

कुछ वर्ष पहले तक आम-जनता और विद्वद्वर्ग इनकी इन मान्यताओ से अनभिज्ञ थे। किन्तु जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने 'सद्धर्ममडन' और 'अनुकपाविचार' नामक दो महान् ग्रंथ लिखकर सबको अभिज्ञ बनाया है। इसके उपरान्त पिछले पाँच सात वर्षों में तेरापथ समाज की तरफ से स्वमान्यता दर्शक छोटी मोटी कई पुस्तकें राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। इससे अब ये मान्यताए छिपाई या टाली नहीं जा सकती। फिर भी आचार्यश्री तुलसी ने प्रश्नो के उत्तर इस विलक्षण ढग से दिये हैं कि जनसाधारण उन उत्तरो को पढ़कर यह अदाजा नहीं लगा सकते कि ये परोपकार का फल पापरूप मानते हैं। मानते पापरूप ही फल हैं किन्तु इसका नाम बदल दिया है। पाप को लोकभय से लौकिक पुण्य कह कर उत्तर दिया है। व्यवहार-पुण्य अर्थात् मूर्ख लोगों द्वारा नासमझी से पाप के कार्यों को पुण्य रूप मान लिया जाता है। वस्तुत वह है पाप ही। आचार्यश्री तुलसी तो परोपकार के इन कार्यों का फल पापरूप ही मानते हैं किन्तु व्यवहार की कोटि में अर्थात् मूर्खजनसम्मत व्यवहार मे इन कामो का फल पुण्यरूप माना जाता है। जैसे कि दीप जलाने को भी नासमझी से साधारण लोग पुण्य कार्य कह दिया करते हैं। वस्तुत दीप जलाना पुण्य कार्य नहीं है। इसी प्रकार औषधालय विद्यालय आदि कार्य पापमय हैं किन्तु लोग उन्हें पुण्यमय मानते हैं। कहने का भावार्थ यह है कि आचार्यश्री तुलसी की निजी मान्यता इन कामों का फल स्पष्टतया पाप होने की है। लौकिक व्यवहार पुण्य कार्य कहकर तो लोगो की धारणा बताई गई है।

वडे आश्चर्य की वात है कि स्थानकवासी समाज द्वारा नौ प्रश्न आचार्यश्री तुलसी की निजी मान्यता जानने के लिए पूछे गये थे न कि अन्य लोगो की मान्यता जानने के लिये। किन्तु लोकमय से निजी मान्यता को शब्दो की आड़ में छिपाकर अन्यथा प्रकार से उत्तर दिया गया है।

आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता' –इस वाक्य मे कितना अर्थछल है यह समझ लेने की आवश्यकता है। यदि आध्यात्मिक धर्मकार्य के विना लौकिक कार्यों में भी पुण्य होना ये मानते होते तव तो यह वाक्य उच्चारण करना उचित गिना जाता। किन्तु आध्यात्मिक धर्म के विना ये पुण्य होना नहीं मानते। 'पुण्य' धर्म के साथ ही हो सकता है। जहाँ धर्म है वहा पुण्य है और जहा धर्म नहीं वहा पुण्य भी नहीं होता। पाप ही पाप होता है - यह इनका निश्चित सिद्धान्त है। फिर भी लोगों को चक्कर मे डालने के लिए यह लिखना कि आध्यात्मिक धर्मक्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता मायाजाल मात्र है। इस वाक्य को पढ़कर कोई भी विद्वान् या साधारण व्यक्ति यही खयाल कर सकता है कि आचार्यश्री तुलसी परोपकार के कामों मे आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाला पुण्य होना नहीं मानते किन्तु दूसरी क्रियाओ के साथ होने वाला पुण्य मानते हैं। जबकि वास्तव में आचार्यश्री तुलसी अध्यात्म के साथ ही पुण्य मानते हैं। अन्यत्र पाप ही पाप मानते हैं।

इसके विपरीत जैन सिद्धान्त की यह मान्यता है कि आध्यात्मिक धर्मक्रिया के साथ भी पुण्य होता है और आध्यात्मिकता रहित लौकिक भली क्रियाओ के साथ भी। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव अध्यात्म क्रिया नहीं कर सकता मगर पुण्य उपार्जन कर सकता है। मिथ्यात्वी द्वारा उपार्जित पुण्य अध्यात्मरहित है फिर भी वह वास्तविक पुण्य है। यह व्यवहार कोटि का पुण्य नहीं है किन्तु नैश्चयिक पुण्य है। मिथ्यात्वियों मे अध्यात्म क्रिया होना समव नहीं है क्योकि आध्यात्मिक का मोक्षाभिमुख होना या आत्माभिमुख होने के साथ गहरा सम्बन्ध है जो कि मिथ्यात्वी मे नहीं पाये जा सकते। यदि मिथ्यात्वी जीव भी मोक्षाभिमुख या आत्माभिमुख गिना जायगा तो वह मिथ्यात्वी नहीं रहेगा समकिती हो जायगा। पुण्य एक प्रकार का बंधन है किन्तु वह धर्ममार्ग के पथिक के लिए भी उपयोगी होता है धर्ममार्ग में वाधक न होकर साधक भी होता है। इसी प्रकार जो धर्ममार्ग के पथिक नहीं हैं वे भी पुण्योपार्जन कर क सद्गति और सासारिक सुखमय सामग्री प्राप्त करते हैं। जैसे अभव्य जीव पुण्य द्वारा नव ग्रैवेयक तक पहुँच जाता है। यद्यपि वह धर्ममार्ग का पथिक नहीं है उसका ध्येय मुक्ति नहीं है फिर भी पुण्य द्वारा इतनी ऋद्धि और सुख प्रप्त कर सकता है।

इतना लिखने का साराश यह है कि जब अज्ञानी और अभवी तक पुण्य उपार्जन कर सकते हैं तो समकिती द्वारा की गई परोपकार रूप भली क्रियाओ का फल पापरूप कैसे हो

सकता है ? इन क्रियाओं का फल पुण्यरूप ही होता है। पुण्य बंधन अवश्य है किन्तु पाप रूप बंधन जैसा अध पतन मे पहुँचाने वाला बंधन नहीं है। पुण्यरूप बंधन से प्राप्त मानव शरीर मे मुक्ति की जा सकती है। जो पुण्य का सदुपयोग करता है उसके लिए वह मोक्षमार्ग में भी सहायक हो सकता है। अत पुण्य ससार अवस्था में सर्वथा त्याज्य नहीं है।

मुनिश्री नगराजजी लिखित 'युगधर्म तेरापथ' के नमूने भी देखिये–

'बचाओ की अपेक्षा मत मारो का प्रचार विशेष व्यापक है अत वही उपादेय है।

आत्मधर्म और समाजधर्म एक नहीं हो सकते।

'तमाखू के स्थान पर तमाखू और घी के स्थान पर घी दोनो का अलग-अलग महत्त्व है। पर दोनों को मिला देने से दोनो का महत्त्व नष्ट हो जाता है। ठीक इसी तरह सामाजिक और धार्मिक दोनो कार्यों का स्वतत्र महत्त्व है। दोनो को एक मानने से दोनो महत्त्वशून्य हैं। (पृ 9)

'यदि तुम ने किसी व्यक्ति को उपदेश द्वारा मछली खाने का त्याग करा दिया फलस्वरूप मछली बची वह धर्म नहीं है। (पृ 10)

'पूर्ण सयमी को देना ही आध्यात्मिक दान है क्योकि वह सयमवर्धक है। शेष दान सामाजिक कर्तव्य और अकर्तव्य मे अन्तर्निहित हैं। 'राजनीति और समाज नीति से धर्म सर्वदा पृथक है। (पृ 10)

इन उद्धरणों में भी बडी सफाई से अपनी पाप-मान्यता छिपाई गई है। प्रश्न तो यह है कि बचाओ की भावना मे तथा समाजनीति राजनीति के पालन मे पुण्यबंध हो सकता है या नहीं ? यह कौन जानना चाहता है कि ये आपस मे भिन्न हैं या एक। धर्म और समाजनीति आदि का जैसा सम्बन्ध है वैसा रहे। अन्तर् मे बचाओ की भावना मे तथा समाज व्यवस्था में पाप मानना और प्रकट मे धर्म के साथ इनका सम्बन्ध बताकर पाप फल होने की मान्यता छिपाना एकमात्र लक्ष्य है। सामाजिक और धार्मिक कार्यों का स्वतत्र महत्त्व रहे इस में कौन उलझन पैदा करता है। उलझन तो सामाजिक कर्तव्यपालन के फल के सम्बन्ध में है।

आचार्य सत भीखणजी' लेखक श्रीचद रामपुरिया के कुछ उद्धरण देखिये

अनुकपा की ढालो मे अहिंसा और दया का अपूर्व वर्णन है। अहिंसा और दया का आगम अनुसार, पर मौलिक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है और अहिंसा के एक अमर पुजारी (भीखणजी) की लेखनी से ही ग्रथित हो सकता है।" (पृ 62)

'चतुर विचारा की ढालों' 'दस दान की ढाल' और 'दान निषेध की ढाल' में दान विषय का अहिंसा ही की तरह सूक्ष्म विवेचन है। (पृ 63)

'स्वामीजी ने जैन धर्म के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया। आठ वर्ष के दीर्घ और गभीर शास्त्रीय चिन्तन और मनन के बाद उन्होंने शुद्ध धर्म को प्राप्त कर उसे जनता के सम्मुख

रखा। सैंकड़ो वर्षो से एक खास प्रकार की विचारधारा की आदी जनता इस अद्भुत प्रकाश को कैसे सहन करती ? (पृ 84)

स्वामी भीखणजी ने आठ वर्ष के दीर्घ और गभीर शास्त्रीय चितन और मनन के बाद जैन धर्म का जो शुद्ध रूप प्राप्त कर के जनता के समक्ष रखा वह यह है–

'जिन कार्यों मे स्वामीजी ने जिन-आज्ञा को प्रमाणित सिद्ध किया है उन मे से एक भी कार्य आप को विचित्र या अजीब नहीं दिखाई देगा और न जिन कार्यों मे स्वामीजी ने आज्ञा का अभाव बताया है उन में कोई ग्रहणीय। स्वामीजी को अच्छी तरह समझा जा सके इस लिए हम उस ढाल का भावार्थ यहा देते हैं-

1 ससार मे कार्य दो हैं एक अधर्मकार्य और दूसरा धर्मकार्य। धर्मकार्यों मे जिन-भगवान की आज्ञा है। अधर्म कार्यों मे नहीं। परमार्थ मे जिन-आज्ञा है अनर्थ मे जिन-आज्ञा नहीं।

10 मन वचन और काया से त्रिविध हिसा न करने को दया कहा है और सुपात्र को दान देना। दया और दान–मोक्ष के इन दो मार्गो मे भगवान् की आज्ञा है। हिसा और कुदान मे नहीं।

11 उपकार दो प्रकार के हैं। एक आध्यात्मिक उपकार दूसरा सासारिक उपकार। आत्मिक उपकार में आज्ञा है। सासारिक उपकार में नहीं। (पृ 93 94)

ऊपर लिखी पक्तियो मे सत भीखणजी ने जनता को अद्भुत प्रकाश प्रदान किया उसे वह सहन न कर सकी। कारण कि जनता सैकड़ो वर्षों से एक खास प्रकार की विचारधारा की आदी थी। यह बात लेखक ने वस्तुत सत्य ही कही है। भारत की जनता चाहे वह जैन धर्म को मानती रही हो चाहे वैदिक या बौद्धधर्म को अपने ऋषि मुनियो के मुख से सदा यही सुनती और आचरण करती रही है कि जीवरक्षा करना और आपद्ग्रस्तों की आपत्ति दूर करने मे सहायक होना महान् पुण्यकार्य हैं और उनका फल भी पुण्यरूप ही है। सैकड़ो वर्षों से नहीं किन्तु हजारो लाखो वर्षों से जनता परोपकार के कामों मे पुण्यफल मानने वाली विचारधारा की आदी रही है और है। सत भीखणजी के पहले इस विश्व में जितने भी धर्मनेता चाहे वे किसी भी मजहब में हुए हो किसी ने परोपकार के कामो मे कभी पाप नहीं बताया। परोपकार के कामों का फल पापरूप होता है– यह प्ररूपणा करके सचमुच सत भीखणजी ने जगत् को अद्भुत प्रकाश प्रदान किया है। मगर यह अद्भुत प्रकाश तेरापथिया को ही मुबारिक रहे। जगत् को इस प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। उसका यह सद्भाग्य है कि वह इस प्रकाश को नहीं अपना सका है। सर्वथा नकली सोने को खरा सोना कह कर लोगों को जँचाने की कला मे हमारे भाई कितने कुशल हैं।

'जिन कार्यो मे स्वामीजी ने जिन-आज्ञा का अभाव बताया है उन में कोई ग्रहणीय नहीं

अर्थात् स्वामीजी ने अपनी बनाई ढालों में बड़े विस्तार से इस बात का वर्गीकरण किया है कि कौन-से कामों में जिन-आज्ञा है और कौन-से कामो में नहीं। माता-पिता की सेवा जीव रक्षा और इतर परोपकार के कार्य स्वामीजी की लिस्ट में जिन-आज्ञा-बाहर के कार्य हैं। ये कार्य ग्रहणीय नहीं हैं। इन का फल पापरूप होता है।

न 1 में धर्मकार्य और अधर्मकार्य इस प्रकार दो प्रकार के कार्य बताये हैं। औषधालय अनाथालय विद्यालय खुलवाना सेवा-सुश्रूषा करना जीव-रक्षा करना आदि अधर्मकार्य में सम्मिलित हैं– ऐसी इनकी स्पष्ट मान्यता है। 'ये लौकिक उपकार के काम हैं धर्मकार्य नहीं हैं। धर्मकार्य न होने से इनका फल पाप है। सासारिक उपकार में भगवान् की आज्ञा नहीं है। चूकि धर्म आज्ञा में ही है अत आज्ञा-बाहर के कामों में फल सर्वथा पाप है। आज्ञा बाहर की करणी मे पुण्य नहीं होता पाप ही पाप होता है' –ऐसा इनका स्पष्ट मतव्य है। पुण्य जिन-आज्ञा की करणी में ही होता है। आदि।

किन्तु यह सब प्ररूपणा भीखणजी की मनोकल्पित है और जैन धर्म से विपरीत है। जैन धर्म मे परोपकार के कार्यों को अधर्मकार्य नहीं बतलाया गया है। तीन प्रकार के कार्य होते हैं 1 मुनिजनोचित - निरारभी कार्य 2 सज्जनोचित - किचित् आरभयुक्त कार्य 3 दुर्जनो चित - सर्वथा त्याज्य कार्य।

निरारभी कार्यों की भगवान् स्पष्ट शब्दों मे आज्ञा देते हैं - जैसे किसी को मत सताओ सब को सुख पहुँचाओ सत्य बोलो आदि। औषधालय अनाथालय आदि कामों में किंचित् आरभ होता है अत इन कामों में भगवान् मौन रहते हैं। न आज्ञा देते और न निषेध करते। आज्ञा देने से इन कामो में जो किंचित् आरभ होता है उसका अनुमोदन होने की सभावना रहती है। निषेध न करके मौन रहने का कारण यही है कि निषेध करने से जिन जीवों की इन कामों से भलाई होने वाली होती है वह रुक जाती है। जो कार्य त्याज्य हैं - जैसे चोरी जारी ठगाई आदि इन का भगवान् सर्वथा निषेध करते हैं क्योंकि इन से किसी का भला नहीं होता।

इससे हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि जिन कामों का भगवान् निषेध नहीं करते बल्कि उनके सम्बन्ध मे मौन रहते हैं वे काम गृहस्थावस्था मे त्याज्य नहीं हैं। और न उनका फल सर्वथा पाप ही होता है। भले कामों का फल पुण्यरूप होता है। इसलिए धर्मकार्य और अधर्मकार्य ऐसे दो विभाग करना ही भूल है।

इसी प्रकार केवल आज्ञा और मौन ये दो ही विकल्प मानना भी भूल है। एक और विकल्प है निषेध। जिन कामों की आज्ञा है वे सर्वथा धर्मकार्य हैं और जिन का निषेध है वे सर्वथा पापकार्य हैं। बीच की श्रेणी के काम - जैसेकि अन्न वस्त्रादि द्वारा दीन हीन-दुखियों

की सहायता करना पुण्यकार्य हैं और इन का फल भी पुण्यरूप होता है। इसी कारण भगवान् हाँ-ना न कहकर मौन रहते हैं। सत भीखणजी भगवान् की मौन को न समझ सके इसी कारण जिन कामों मे भगवान् मौन रहते हैं उनको सर्वथा पाप कार्य ठहरा दिया। इस वस्तु को न समझ सकने के कारण यह सारी अनर्थ परपरा फैली है। मौन को आज्ञा नहीं है' ऐसा सत भीखणजी द्वारा मान लिया गया है। हम कहते हैं कि मौन का अर्थ आज्ञा है' ऐसा क्यो न मान लिया जाय ? यदि आज्ञा नहीं है तो भगवान् निषेध क्यों नहीं कर देते ? अत यही समझ ठीक है कि मौन को मौन मानो निषेध मत मानो। जो तत्त्वज्ञ आज्ञा मौन और निषेध को समझ लेंगे वे तेरापथ की भूल को शीघ्र पकड लेगे। मौन के कामो को निषिद्ध कार्य मान कर सत भीखणजी ने जैन धर्म पर कलक लगाया है कि उसके नाम से मानव-समाज का एक टुकड़ा परोपकार के कामो में पाप मानने लग गया है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के तत्त्वावधान मे सपादित सूत्रकृताग के मौन सम्बन्धी उद्धरण से भले कार्यों का फल पाप सिद्ध नहीं हो सकता। वहा तो साधु का आचार बताया गया है न कि कार्यों का फल।

इसी प्रकार दूसरी भूल सत भीखणजी की यह हुई कि उन्होने साधु से इतर की रक्षा सहायता आदि में असयम का पोषण मान कर उन्हे पापरूप करार दिया है। चोर को रोटी खिलाने से चोरी मे सहायता तब गिनी जाती है जब खिलाने वाले की भावना उस से चोरी करवाने की या चोरी का धन लेने की हो। निष्काम भाव से दयाबुद्धि से प्रेरित होकर चार को रोटी खिलाने वाला चोरी मे सहायक नहीं होता। जुर्म भावना पर आश्रित होता है। 'साधु से इतर सब जीव असयती हैं अत उनका रक्षण-पोषण करना पाप है' --यह बात ऊपर के उदाहरण से कट जाती है। रक्षा और सहायता करने वाला व्यक्ति असयम के पोषण के लिए रक्षा या सहायता नहीं करता किन्तु उसका आर्त-रौद्र ध्यान मिटा कर उसे सुख-शाति पहुँचाने के लिए करता है। जबकि कर्ता की भावना शुद्ध है तब उसे इस क्रिया का फल पापरूप क्यों ? किसी क्रिया का फल उसके कर्ता के भावो पर आश्रित होता है न कि इतर बातों पर। जैसे हिसक की क्रिया उस के भावों पर आश्रित है न कि मारे जाने वाले के कर्मों या परिणामो पर। इसी प्रकार रक्षा और सहायता का फल भी कर्ता के शुद्ध भावो पर आश्रित है। शुद्ध भाव से दान सहायता आदि देने वाले को पुण्यरूप शुभ फल ही होगा। पात्रापात्र का विचार गौण और व्यावहारिक है।

यदि तेरापथ की अहिसा केवल भावो पर आश्रित है जैसा कि अहिंसा की भूमिका में श्री छोगमलजी चोपडा ने लिखा है तो निष्काम नि स्वार्थ और शुद्धभाव से जीव रक्षा करने

वाले और उन की इतर सहायता देने वाले को पापरूप फल कैसे हो सकता है ? शुद्ध भावों का अशुभ फल कैसे ? अहिंसा और हिंसा उसके कर्ता के भावा पर आश्रित है।

इसलिए असयम पोषण की बात ठीक नहीं है। यह सत भीखणजी की दूसरी महान् भूल है जिसके परिणामस्वरूप उनको अनेक मिथ्या कल्पनाए करनी पड़ी हैं। जीव रक्षा राग भाव नहीं है। यदि है तो भी प्रशस्त राग है जो ग्राह्य है। जैसे धर्म पर राग गुरु पर शिष्य का राग।

तीसरी महान् भूल तेरापथ ने सुपात्र-कुपात्र का गलत वर्गीकरण करके की है। 'साधु के सिवा सब कुपात्र हैं' यह मानना जैन धर्म की अवहेलना है।

आचार्यश्री तुलसी के पूर्ववर्ती और वर्तमान साधुओं द्वारा रचित ग्रन्थों के अनेक उद्धरण देकर यह बात और अधिक स्पष्ट की जा सकती है कि उनके मत में परोपकार के कार्यों का फल एकान्त पापरूप होता है किन्तु विस्तारभय से रुकना पडता है। आशा है इतने विवेचन के बाद पाठको को आचार्यश्री तुलसी की वास्तविक मान्यता समझ सकने मे सरलता रहेगी।

लोकभय से मान्यता छिपाना कायरता है। जैसी भी मान्यता है उसे मजूर करके उसे बदल लेना वीरता है। आशा है आचार्यश्री तुलसी तथा उनके अनुवर्ती इस कटु सत्य को गले उतारने की पूरी कोशिश करेगे। इस कटु सत्य के पीछे हमारी मगलकामना निहित है। आप हमारे भाई हैं निकटतम हैं। हम ही लोगो मे से निकले हुए हमारे भूले हुए बधु हैं। निकटतम होने के कारण ही हम आपकी मान्यताओं से पूर्ण परिचित हैं। हम अपना आध्यात्मिक और नैतिक कर्तव्य समझते हैं कि आपको सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जाय। विश्वास है कि हमारे अतरग मे रहे हुए मगल भावों को आप समझने की कोशिश करेगे और अपनी मिथ्या धारणाओं म परिवर्तन करके इह लोक और परलोक को सुधारेंगे इस पवित्र भावना के साथ यह कथन समाप्त किया जाता है।

21 12.50
सदर दिल्ली

निवेदक
पूर्णचन्द्र दक

समीक्षा

समीक्षक - प बसतीलाल न न्यायतीर्थ

(जैन सयोजना समिति के तीन सदस्यो द्वारा)

प्राक्कथन

(1) इसी अप्रैल मास मे दिल्ली मे जैन श्वेताम्बर तेरापथी आचार्यश्री तुलसीजी का पदार्पण हुआ था। कुछ अनन्तर स्थानकवासी सम्प्रदाय के पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी का भी शुभागमन हुआ। इससे जैन सिद्धान्त की अच्छी प्रभावना हुई और सार्वजनिक रूप से नगरवासियो का उस ओर ध्यान गया।

(2) लेकिन इसी के साथ यह भी ज्ञात हुआ कि जैन सिद्धान्त के प्रतिपादन में विशेषकर दया-दान सम्बन्धी मान्यता पर बीच मे कुछ उलझन और असलोप भी है। यह पत्रों और पर्चों में भी सामने आया और किचित् क्षोभ का भी कारण बना।

(3) फलत एक समिति का निर्माण हुआ जो एक-दूसरे की शकाओ को लेकर उभयपक्षो से उनके मतव्य प्राप्त करे और यदि आवश्यक हो तो अपनी ओर से प्रतिप्रश्नों का निर्माण करके विवादस्थ विषय को और भी स्पष्ट कर ले।

(4) समिति को अत्यन्त प्रसन्नता है कि उपर्युक्त दोनों पूज्य आचार्यों और दोनों पक्षों के प्रतिनिधि सदस्य श्री मोहनलाल कठौतिया एव श्री कुन्दनलाल पारख से उसे तत्पर और हार्दिक सहयोग मिला। समिति इस कृपा के लिए उनकी आभारी एव कृतज्ञ है।

(4) इसके साथ सम्पूर्ण प्रश्न और दोनो ओर से प्राप्त उत्तर अविकल रूप से प्रकाशित किये जा रहे हैं जिससे दोनो पक्षो की मान्यता स्पष्ट हो जाती है।

(6) समिति उन सब महानुभावों की ऋणी है जिन्होने सयम और सहिष्णुता या बल देकर समिति को अपना काम सुचारु रूप से सफल करने में सहायता पहुँचाई है।

(ह) राजेन्द्रकुमार जैन (ह) राजकृष्ण जैन (ह) जैनेन्द्रकुमार

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज
दिल्ली की ओर से
श्री कुन्दनलाल पारख द्वारा प्रेषित प्रश्न

नोट- नीचे लिखे प्रश्नो का उत्तर हा या ना मे अर्थात् यदि पुण्यफल हो तो पुण्य और पुण्यफल न हो तो पापफल के रूप म अपेक्षित है। टेढी-मेढी भाषा मे भावों को छिपाने की कोशिश न हो। 'पुण्य नहीं होता है' ऐसा लिखकर भाव न छिपाया जाय किन्तु 'पाप होता है' ऐसा स्पष्ट उत्तर होना चाहिए। कारण कि क्रिया का फल पुण्य न होने पर पाप होता है दो मे से कोई एक फल अवश्य होता है जो फल हो वह विधिरूप भाषा में स्पष्ट शब्दो में अपेक्षित है। कर्ता को क्रिया का कोई फल अवश्य होता है। यदि रक्षारूप शुभ भाव से निर्जरा होती हो तो वह बतावें। पुण्य पाप निर्जरा सवर जो-कुछ हो उत्तर मे दो टूक शब्द अपेक्षित हैं ताकि साधारण जनता बात समझ सके। धर्म गुरुओं के मुख से भले-बुरे कार्यों का फलाफल सुनकर साधारण जनता कार्य में प्रवृत्ति या निवृत्ति करती है। पुण्य पाप आदि शास्त्रीय शब्दों मे उत्तर अपेक्षित है। लबी व्याख्या मे उत्तर देकर प्रश्न को कुचक्र मे न डाला जाय किन्तु जनसाधारण वस्तुस्थिति समझ सके भुलावे में न पड़े ऐसी सद्भावना से उत्तर अपेक्षित है।

(1)

औषधालय विद्यालय अनाथालय शरणार्थी कैम्प आदि की अन्न वस्त्र औषध और मकानादि द्वारा शुभ भावना से सहायता करने वाले को पुण्य होता है या पाप ?

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज द्वारा प्रदत्त उत्तर

(1) औषधालय विद्यालय अनाथालय शरणार्थी कैम्प आदि की अन्न वस्त्र मकान औषध आदि द्वारा शुभ भावना में सहायता करने वाले को पुण्य होता है। पुण्य और पाप का बन्ध सहायता करने वाले की भावना पर मुख्य रूप से आश्रित [illegible] भावना से देने वाले को पुण्य हो

जैनाचार्य श्री तुलसीजी महाराज द्वारा प्रदत्त उत्तर

प्राग्-वक्तव्य

प्राय अधिकतर प्रश्नों मे पुण्य और पाप– इन दो शब्दो मे उत्तरो की माग है इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि में इनका क्या अर्थ है क्या स्थान है ? यह बताना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि साधारण लोग पुण्य शब्द का बहुत महत्त्व समझते हैं और पाप शब्द को बहुत घृणित मानते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि मे स्थिति ऐसी नहीं है। इसमे पुण्य और पाप का अर्थ होता है - बन्धन। पुण्य शुभ पुद्‌गलो का बन्धन है - सोने की बेडी है और पाप अशुभ पुद्‌गलो का बन्धन है - लोहे की बेड़ी है आखिर दोनो बेडियाँ हैं। आध्यात्मिक दृष्टि का ध्येय है - मोक्ष। वह इन दोनो के छूटने से होगा। जैन शास्त्रों मे अग्नि जलाना पाप बताया गया है। भगवान् महावीर का यह आशय आत्मसाधना की अपेक्षा से है। एक व्यक्ति मगल उत्सव के उपलक्ष्य मे दीप जलाता है यह लोकदृष्टि मे प्राय पुण्यकार्य माना जाता है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से वह पुण्यकार्य नहीं माना जाता। लोकदृष्टि मे पाप शब्द का व्यवहार बहुधा नृशसता चोरी व्यभिचार आदि कार्यो के लिए ही होता है। इससे यह स्पष्ट है कि जहा आध्यात्मिक दृष्टि से तत्त्व-चिन्तन के रूप मे पाप शब्द का प्रयोग किया जाता है वहा लोकदृष्टि से या व्यावहारिक दृष्टि से प्राय 'पाप' नहीं भी कहा जाता। जैसे भगवान् महावीर ने अग्नि जलाने को पाप कहा यह अध्यात्मदृष्टि का निर्णय है सूक्ष्म तत्त्व चिन्तन का निष्कर्ष है। अब कोई पूछे कि मागलिक दीप जलाने मे पुण्य है या पाप ? तो कहना होगा कि भाई ! लोकदृष्टि में यह पुण्यकार्य कहा जाता है आध्यात्मिक दृष्टि मे नहीं। आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार प्राणी का घात करना वनस्पति को छूना पाप है और लोकदृष्टि से देश रक्षा के लिए शत्रु से लड़ना मान्य व्यक्तियो को पुष्प मालाए पहनाना आदि पुण्यकार्य माने जाते हैं। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र म पुण्य और पाप शब्द का व्यवहार अपेक्षाकृत होता है। हमे उदारता के साथ प्ररूपक का दृष्टिकोण समझना चाहिए कि वह किस अपेक्षा से किस अर्थ म किस शब्द का प्रयोग कर रहा है। स्याद्वादी के लिए यह कोई समस्या नहीं है।

निम्न कतिपय प्रश्नों के उत्तरों का आशय समझने के लिए इस 'प्राग्वक्तव्य' का मनन करना अत्यन्त आवश्यक है।

(1) औषधालय विद्यालय अनाथालय आदि लोकधर्म के कार्य हैं इसलिए ये लौकिक पुण्यकार्य कहे जाते हैं। कर्ता को आध्यात्मिक क्रिया से साथ होने वाला पुण्य नहीं होता।

समीक्षा

स्थानकवासी सघ दिल्ली की ओर से पूछे गये प्रश्नो के तेरापन्थी आचार्य ने जो उत्तर दिये वे समिति ने स्थानकवासी सघ को नहीं बताये। इसी तरह समिति के वक्तव्य के अनुसार स्थानकवासी सम्प्रदाय के द्वारा दिये गये उत्तर तेरापन्थी सघ को नहीं बताये गये। दोनों ओर के प्रश्न और उत्तर अब जैन-सयोजना नामक पुस्तिका के द्वारा समिति की ओर स प्रकाशित किये गये हैं। उन्हे देखने से यह ज्ञात हुआ कि तेरापन्थी आचार्य ने स्थानकवासी सघ के द्वारा पूछे गये प्रश्नो के उत्तर देते हुए अपनी हमेशा की परिपाटी के अनुसार अस्पष्ट और गोल-माल भाषा का प्रयोग किया है। उत्तर देने की उनकी यह गूढ़ शैली चिरअभ्यस्त है। अत स्पष्ट शब्दो में उत्तर की माग करने पर भी उन्होने अपनी उसी शैली का अनुसरण कर साधारण जनता को भुलावे में डालने का एक और प्रयत्न किया है। समझ में नहीं आता कि वे अपने सिद्धान्तों को जनता के सामने रखने मे स्पष्ट भाषा का प्रयोग न करते हुए अस्पष्ट और गालगाल भाषा का व्यवहार क्यों करते हैं ? उनकी यह गूढ भाषा शैली यह बताती है कि वे अपने सिद्धान्तों को उनके असली रूप में जनता के सामने रखते हुए शरमाते हैं। अत भाषा के गूढ आवरण में उन सिद्धान्तो को छिपाने की चेष्टा करते हुए-से प्रतीत होते हैं। अस्तु, प्रयोजन इतना ही है कि उनके द्वारा दिये गये उत्तरों की भाषा और भाव इतने अस्पष्ट हैं कि सर्वसाधारण को उनकी मान्यता की स्पष्टता नहीं होती। अत सर्वसाधारण की जानकारी के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता है ताकि कोई भ्रम मे न पडे। इस आशय से उनके उत्तरों की समीक्षा की जाती है –

आचार्यश्री तुलसी के उक्त रेखाकित वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं (1) आध्यात्मिक क्रियाओ से अतिरिक्त क्रियाओं से भी पुण्य होता है आध्यात्मिक क्रियाओ से होने वाला पुण्य एक प्रकार का है और औषधालय आदि उक्त कार्यों से होने वाला पुण्य दूसरी प्रकार का। अत लोकधर्म के इन कार्यों में आध्यात्मिक क्रियाओं के साथ होने वाला पुण्य तो नहीं होता किन्तु दूसरी तरह का पुण्य अवश्य होता है। (2) पुण्य आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही होता है और उक्त क्रियाएँ लोकधर्म की हैं अत इनके कर्ता को किसी तरह का पुण्य नहीं होता पाप होता है।

उक्त दो अर्थों में से यदि आचार्य तुलसी का अभिप्राय पहले अर्थ से है तो बडी प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों की इन कार्यों म एकान्त पाप मानने की मान्यता से ऊपर उठकर इन्हें पुण्यकार्य मानने का सुसाहस व्यक्त किया है। "आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता यह वाक्य रचना यही सूचित करती है कि आचार्य

तुलसी को प्रथम अर्थ ही अभिप्रेत है। यदि उन्हे दूसरा अर्थ इष्ट होता तो निस्सदेह शव्द-रचना इस प्रकार की होती आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही पुण्य होता है इन क्रियाओ में पुण्य नहीं किन्तु पाप होता है' । ऐसा होने पर भी यदि उनका भाव दूसरे अर्थ से है तो कहना पड़ेगा कि उन्हे इन कार्यो मे पाप मानने की अपनी परम्परागत मान्यता को स्पष्ट रूप से जनता के सामने रखने का साहस नहीं हुआ है इसलिए आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता' ऐसे गूढ शव्दो की ओट मे जनता को भुलावे में डालने का प्रयास किया है। जव उनकी परम्परा इन लोकहित के कार्यो मे पुण्य नहीं मानती तो स्पष्ट शव्दो मे 'पुण्य नहीं होता पाप होता है ऐसा कहने मे क्यो हिचकिचाते हैं ?

अन्तरग में पाप मानते हुए भी आचार्य तुलसी ऐसे कार्यों के फल के लिए 'लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग करते हैं। यह शब्द द्रविड प्राणायाम की तरह निश्चित रूप से उनके शब्दकोष में पाप का ही पर्यायवाची है।

प्रश्न तो इतना ही है कि शुभ भाव से उक्त कार्य करने से पुण्यप्रकृति सातावेदनीय आदि का बन्ध होता है या असातावेदनीय आदि पापप्रकृतियो का। इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता' यह गोलमाल उत्तर देकर मूल प्रश्न को वैसे ही छोड दिया गया है। तेरापथ की मान्यतानुसार पुण्य एक ही प्रकार का है और वह आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही होता है। योग सहित क्रिया चाहे वह लौकिक हो या आध्यात्मिक उसका पुण्य या पाप-वन्धन-रूप फल अवश्य होता है। कर्मफल-वन्धन मे लौकिक या आध्यात्मिक भेद नहीं होता। अत जनहित के इन कार्यो को लौकिक पुण्यकार्य कहने वालो से यह पूछना है कि इन क्रियाओ से जो वन्ध होता है वह पुण्य के शुभ पुद्‌गलो का होता है या पाप के अशुभ पुद्‌गलो का ? तव तो बचाव का कोई रास्ता न होने से उन्हे अपनी मान्यता के अनुसार कहना ही पड़ता है कि जीव बचाना आदि जनहित के कार्यो से पाप के पुद्‌गलो का ही वध होता है। यह है उनकी मान्यता का सच्चा रूप।

अनुकम्पा करना - दीन-दुखियो की सहायता करना जैन धर्म का प्राण है। यह अहिंसा का विधि रूप है। साथ ही मैत्री भावना का सूचक है। इन कार्यों में पाप मानना जैन धर्म के सत्य सिद्धान्तो के साथ खिलवाड करना है।

(2)

(1) अनुकम्पा बुद्धि से प्रेरित होकर आग लगे मकान या बाडे के द्वार खोल कर मनुष्य गाय भैस आदि प्राणियो की प्राणरक्षा करना ऊपर से गिरते हुए अथवा मोटर की झपट में

आते हुए बालक को बचा लेना और गौरक्षा के लिए कसाई को उपदेश देना पुण्य का कारण है या पाप का ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(2) अनुकम्पा बुद्धि से प्रेरित होकर विपत्तिग्रस्त की रक्षा करना आग पानी या मोटर आदि किसी भी विपत्ति में फसे हुए की रक्षा करना धर्म है पुण्य है। रक्षा करने की बुद्धि होना उत्तम भावना है यदि उसमे किसी प्रकार का स्वार्थ निहित न हो। 'सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय' --जगत् के सब जीवों की रक्षारूप दया के लिये भगवान् ने प्रवचन फरमाया है। यहाँ दया शब्द के साथ रक्खण विशेषण विधिरूप अहिंसा का बोध कराने के लिये ही है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

आध्यात्मिक दृष्टि का मुख्य लक्ष्य आत्मशोधन है जीवन-मृत्यु नहीं। लोकदृष्टि का मुख्य लक्ष्य है - प्राणरक्षा। वीतराग भावना से आत्मशोधन के लिए उपदेश या प्रवृत्ति की जाती है वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। इसके अतिरिक्त केवल प्राणी को बचाने के लिए ही जो-कुछ किया जाता है वह लोकधर्म है अत यह आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाले पुण्य का कारण नहीं लौकिक पुण्यकार्य है। गौरक्षा को स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी ने भी सासारिक कार्य माना है। जैसे- 'कृषि गोरक्षा वाणिज्य सग्राम कुशील.....ये क्रियाए चाहे मिथ्यादृष्टि की हो या सम्यग्दृष्टि की हों ससार के लिए ही होती हैं इससे मोक्षमार्ग की आराधना न होना प्रत्यक्षसिद्ध है। (सद्धर्म मण्डन पृ 55)

समीक्षा

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य तुलसी प्राणरक्षा - जीवरक्षा को लोकदृष्टि का मुख्य लक्ष्य कहते हैं। शास्त्रकार तो कहते हैं 'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं' --सब जीवों की रक्षारूप दया के लिए भगवान् महावीर ने प्रवचन का प्रतिपादन किया है।' यहाँ शास्त्रकार तो जीवो की रक्षा को प्रवचन का हेतु - मूलाधार बता रहे हैं। क्या सकल जिन प्रवचन का मूल हेतुरूप जीव-रक्षण भी आचार्य तुलसी की दृष्टि में केवल लोकदृष्टि का ही कार्य है ? यदि ऐसा है तो यह कहना होगा कि आचार्य तुलसी की आध्यात्मिक दृष्टि भगवान् महावीर और गणधरों की आध्यात्मिक दृष्टि से भी विशेष उच्च कोटि की है !! हन्त !

अफसोस ! महाअफसोस!! जीव-रक्षण के पुनीत कार्य को अन्तर् से पाप मानना और ऊपर से लौकिक पुण्यकार्य कहना अहिसा की हिसा करना नहीं तो और क्या है ? आध्यात्मिकता के नाम पर ऊपर से गिरते हुए व मोटर की झपट मे आते हुए अबोध बालक को हाथ पकड कर बचा लेने में लौकिक पुण्य के सुनहले नाम से रूपान्तर में पाप मानना आध्यात्मिकता का अजीर्ण है और उसकी विडम्बना करना है। लौकिक कार्यों का फल इनके यहा पाप माना गया है।

अपने पक्ष के समर्थन मे आचार्य तुलसी ने स्वर्गीय पूज्य आचार्यवर्य श्री जवाहरलालजी म के वचनों को विकृत तथा अर्थान्तर कर के उद्धृत कर भ्रम पैदा करने का प्रयास किया है। पूज्य जवाहरलालजी म ने अनुकम्पा करके मरती हुई गाय के प्राण बचाने के कार्य को सासारिक कार्य कभी नहीं कहा। इस उत्तर में जो उनके वचनो का उद्धरण दिया गया है उसमें कृषि वाणिज्य आदि की तरह व्यवसाय (धन्धा जीविका-निर्वाह) के रूप म किये जाने वाले गोरक्षा-गोपालन को सासारिक कार्य माना है न कि मरती हुई गाय को अनुकम्पा-बुद्धि से बचाने के कार्य को। किसी के कथन को तोड़-मरोड कर अन्यथा रूप मे बताना सामान्य शिष्टाचार के भी विपरीत है। ऐसा कार्य शिष्टसम्मत कार्य नहीं है। किसी काम को आर्थिक दृष्टि से करने मे और परोपकार की दृष्टि से करने मे कर्ता की बुद्धि मे बड़ा अतर रहता है।

आग से जलते हुए ऊपर से गिरते हुए मोटर की झपट मे आते हुए बालक को जो व्यक्ति प्राणरक्षा में पाप मान कर और अपनी मानवसुलभ सहृदयता एव सदयता की अवहेलना कर चुपचाप देखा करता है वह पाषाणहृदय मानव कहलाने तक का अधिकारी नहीं हो सकता। इस पर भी यदि ऐसा व्यक्ति उस बालक को नहीं बचाने मे अपनी अहिसा की आराधना समझता है और अपने-आप को अहिसक मानने की प्रगल्भता बताता है तो यह बालको की-सी हठ नही तो और क्या है ?

तेरापन्थ समुदाय आध्यात्मिकता के नाम पर निर्दयता का पोषण और प्रचार करता है। इस पर भी यह दावा यह करता है कि ऐसा करने में ही अहिसा की आदि से अन्त तक आराधना है। यह तो अहिसा का उपहास है। अहिसा का ढोल पीटने वाले शुद्ध हृदय से अहिंसा के मर्म को समझें यही भावना है।

(3)

पितृभक्ति से प्रेरित होकर पुत्र द्वारा पिता के हाथ पैर दबा देने और प्रणाम करने में पुण्यबध होता है या पापबध ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(3) पितृभक्ति से प्रेरित होकर पुत्र द्वारा पिता के हाथ पैर दबा देने से और नमस्कार करने से पुण्य होता है— पुत्र द्वारा पिता की सेवा और नमस्कार करना पुण्य कर्तव्य है। इस कर्तव्यपालन से पुण्य होता है। पाप होने की बात कहना जैन धर्म की अनभिज्ञता प्रकट करना है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(3) पारिवारिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति पिता की भौतिक सेवा कर पितृ-ऋण चुकाता है इसमें कौन-सी ऐसी विशेषता है जिसे आध्यात्मिक कहा जाय ? आध्यात्मिक सेवा पिता की की जाए अथवा अन्य किसी की वह धर्मानुगामी पुण्य है। और पितृ-सम्बन्ध के नाते की जाने वाली शारीरिक सेवा या प्रणाम लौकिक पुण्य कार्य हैं।

समीक्षा

ऊपर प्रश्न तो किया गया है पुण्यबंध और पापबंध का और आचार्य उत्तर देते हैं कि इसमें क्या विशेषता है कि इसे आध्यात्मिक कहा जाय ? आध्यात्मिक कहने या न कहने का तो प्रश्न ही नहीं किया गया है। पिता की सेवा करने और उन्हें प्रणाम करने को भी ये आचार्य उन्हीं पेटेण्ट शब्दों में लौकिक पुण्यकार्य कहते हैं। अर्थात् उनका मानना है कि इसमें पुण्य का बंध नहीं होता है। जहाँ पुण्य का बंध नहीं होता वहाँ या तो अबंध होता है या पाप का बंध होता है गृहस्थ की अबंध अवस्था तो है नहीं अतः उनकी मान्यता है कि पाप का बंध होता है। कैसी विचित्र मान्यता है ! एक पुत्र पिता को दण्डों से मारता है वचनों से अपमान करता है उसे भी पाप होता है और एक विनयी पुत्र पिता की सेवा शुश्रूषा करता है उनका आदर करता है उन्हें प्रणाम करता है उसे भी पाप होता है। इस अंधेरी व्यवस्था का भी कोई ठिकाना है ? उववाई सूत्र में माता पिता की सेवा करने से 14000 वर्ष की आयु का देव होना बताया गया है। परम उपकारी माता पिता की सेवा-भक्ति करने और उन्हें प्रणाम करने में पाप की प्ररूपणा करना अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है।

(4)

प्रतिमाधारी श्रावक को मासखमण (एक मास का उपवास) के पारणे में शुभ भावना से शुद्ध आहार पानी देने से और अणुव्रती संघ के एक सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य को अन्न वस्त्र

औषध और मकानादि द्वारा स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर की गई सेवा से पुण्य होता है या पाप ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(4) प्रतिमाधारी श्रावक को मासखमण (एक मास का उपवास) के पारणे में शुभ भावना से शुद्ध आहार-पानी देने से धर्म भी होता है और पुण्य भी। शास्त्र में श्रावक को गुणरत्नों की खान कहा गया है और प्रतिमाधारी श्रावक के लिये श्रमणभूत जैसा उच्चतम विशेषण प्रयुक्त किया गया है। अत श्रावक को कुपात्र बताकर उसे दिये जाने वाले आहार-पानी का फल पाप बताना शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा है।

एक श्रावक (अणुव्रती) द्वारा स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर दूसरे श्रावक की अन्न वस्त्र औषध और मकानादि द्वारा सहायता करना पुण्य है पाप नहीं। यह प्राणी जगत् पारस्परिक सहयोग पर आश्रित है। निष्काम भाव से सहायता या सेवा करना जैन धर्मानुसार पुण्यकार्य है और पुण्यबंध का कारण है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(4) प्रतिमाधारी श्रावक और अणुव्रती संघ के सदस्य मोक्षार्थ दान के अधिकारी हैं ही नहीं। स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी ने भी यह माना है– 'जो जिस दान के लायक नहीं है वह उस दान का यहाँ अक्षेत्र समझा जाता है जैसे मोक्षार्थ दान का साधु से भिन्न जीव अक्षेत्र है। (सद्धर्ममण्डन पृष्ठ 135)। इसलिए इन कार्यों में धर्मानुबंधी पुण्य नहीं होता।

समीक्षा

तेरापन्थी सम्प्रदाय के मत के अनुसार केवल साधु ही सुपात्र है और सब कुपात्र हैं। प्रतिमाधारी श्रावक अणुव्रती संघ का सदस्य सब उसी तरह कुपात्र हैं जैसे चोर, जार ठग आदि। इस अंधेरी नगरी जैसी व्यवस्था के लिए क्या कहा जाय ! कहाँ तो प्रतिमाधारी श्रावक जिसकी शास्त्रकारों ने 'श्रमणभूत' (साधु समान) कह कर प्रशंसा की है और कहाँ चोर व्यभिचारी और ठग ? क्या दोनों कभी एकसमान हो सकते हैं ? 'अंधेरी नगरी अनबूझ राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' वाली कहावत ठीक ठीक ऐसा मानने वालों पर चरितार्थ होती है।

जैन सूत्रों मे साधु-साध्वी श्रावक और श्राविका को गुण-रत्नों का पात्र कहा गया है। ऐसी अवस्था मे यह कहना कि 'साधु थी अनेरो कुपात्र छे। अनेरा ने दीघा अनेरी प्रकृतिना बध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पाप नी छे' (भ्रमविध्वसन पृ 7)।

'कुपात्रदान मासादिक सेवन व्यसन कुशीलादिक -- ये तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर जार ठग ये तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्रदान भी मासादि सेवन व्यसन कुशीलादि की श्रेणी मे गणना करने योग्य हैं (भ्र वि., पृ 82)।

तेरापन्थ के प्रवर्तक भीषणजी के अनुगामी आचार्य जीतमलजी की कितनी भीषण प्ररूपणा है। शास्त्रवर्णित गुणरत्नों के पात्र और श्रमणभूत विशेषण से अलकृत प्रतिमाधारी श्रावक को चोर जार और ठग की तरह दान की अपेक्षा कुपात्र की श्रेणी मे रखकर उसे दान देने म मास-भक्षण और वेश्यागमन जैसा भयकर पाप मानना विवेकहीनता की पराकाष्ठा है। कोई भी थोड़ी भी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति उच्च गुणसम्पन्न प्रतिमाधारी श्रावक को कुपात्र नहीं मान सकता। अत ऐसे श्रावक को कुपात्र बताकर उसे आहारादिक देने में पाप बताना शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा है।

इसी तरह एक अणुव्रती सघ का सदस्य स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर दूसरे अणुव्रती (श्रावक) को अन्न वस्त्रादि द्वारा सहायता करता है तो जैन धर्म के अनुसार वह पुण्यकार्य है पापकार्य कदापि नहीं। ऐसा करने से पुण्यप्रकृति का बध होता है। पापप्रकृति का बध नहीं होता।

आचार्य तुलसी कहते हैं कि श्रावक और अणुव्रती सघ के सदस्य मोक्षार्थ दान के अधिकारी ही नहीं। यद्यपि 'तथा रूप श्रमण माहण को शुद्ध ऐषणिक दान देने से एकान्त निर्जरा होती है' इस भगवती सूत्र के पाठ में आये हुए 'माहण' शब्द (जिसका अर्थ है अहिंसा मे विश्वास रखने वाला) से श्रावक का भी ग्रहण किया जा सकता है। तथापि थोड़ी देर के लिए श्रावक को मोक्षार्थ दान का अधिकारी नहीं भी मानें तो भी प्रवचन-प्रभावना और स्वधर्मी वत्सलता के नाते सहायता का अधिकारी है ही ये समकित के लक्षण और आचार हैं। मैत्रीभाव और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त से भी श्रावक सहायता का पात्र है।

ठाणाङ्ग सूत्र म क्षेत्र-अक्षेत्रवर्षी मेघ की चौभगी बताई गई है। एक मेघ क्षेत्र मे बरसता है अक्षेत्र मे नहीं एक अक्षेत्र में बरसता है क्षेत्र में नहीं एक क्षेत्र मे भी बरसता है और अक्षेत्र में भी बरसता है और एक न क्षेत्र में बरसता है और न अक्षेत्र में। इसी तरह दाता पर यह चौभगी लागू की गई है। इस चौभगी के तीसरे अग का स्वामी महान् उदारचेता बताया गया है। जो प्रवचन की प्रभावना के लिए उदार भावना क्षेत्राक्षेत्र का भेद न करता हुआ मुक्तहस्त से दान देता है और ऐसे मुक्तदान के द्वारा कई अपात्रो को भी अपने दान से प्रभावित कर

शासन की प्रभावना करता है। चोर ठग वेश्या आदि को उनके पापकर्मों से छुड़ाने के आशय से दान देकर उन्हे पाप से बचा लेता है और अपने धर्म की प्रभावना करता है ऐसा व्यक्ति शासन की प्रभावना की उत्कृष्ट भावना से तीथङ्कर गोत्र तक बाध सकता है। तीर्थंकर गोत्र न बाधे तो अन्य पुण्यप्रकृतिया अवश्य बाधता है। जो जैन शास्त्र इस प्रकार से दान की प्ररूपणा करते हैं उनके नाम से ही साधु के सिवाय को कुपात्र मानना और उन्हे किसी भी भावना से देने म मास-भक्षण वेश्यागमन जैसा भयकर पाप मानना कितनी असगत मान्यता है!

(5)

नौ प्रकार का पुण्य केवल पचमहाव्रतधारी साधु को देने से ही होता है या इनसे नीचे की भूमिका वाले गृहस्थादि का देने से भी ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(5) साधु जैसे उत्तम पात्र को शुभ भावना से अन्न-वस्त्रादि देने से तीर्थंकर नामकर्म जैसी विशिष्ट पुण्यप्रकृतियो का बध होता है और साधु से इतर गृहस्थादि को भी शुभ भावना से देने से सातावेदनीयादि पुण्यप्रकृतियो का बध होता है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(5) प्रश्न की शब्द-रचना त्रुटिपूर्ण है क्योकि सब पुण्य दान से ही सम्बन्ध नहीं रखते। यहाँ दान सम्बन्धी जितने पुण्य बतलाये गये हैं जैसे - अन्न पानी स्थान वस्त्र पाट-बाजोट वे सब साधु-जीवन की आवश्यकताओ से सम्बन्ध रखने वाले ही हैं। अत यह स्पष्ट जाना जाता है कि यहाँ शास्त्रकार का दृष्टिकोण साधुओं के लिए ही है।

समीक्षा

आचार्य तुलसी का कथन है कि अन्न पानी स्थान वस्त्र शयन आदि सामग्री साधु जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखने वाली है। परन्तु यह बात नहीं है। इनकी आवश्यकता तो गृहस्थ को भी होती है और श्रावक को भी होती है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि ये साधु जीवन के लिए ही उपयोगी हैं अत साधुओ का ही देने से पुण्य होने का शास्त्रकार का दृष्टिकोण है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि गृहस्थ को तो इनके अतिरिक्त भी रुपया पैसा स्त्री आदि की आवश्यकता होती है अत रुपया पुण्य गाय पुण्य

आदि की भी पुण्यों में गणना की जानी चाहिए थी। इसका उत्तर यह है कि ये पुण्य साधु के लिये ही मानने के पक्ष में भी यही बाधा आ सकती है। साधु को पात्र औषध आदि देने से भी आप पुण्य मानते हैं परन्तु इन नौ पुण्यों मे पात्र पुण्य औषध पुण्य तो नहीं गिनाया गया है। जैसे उपलक्षण से साधु की सामग्रियो का ग्रहण किया जाता है इसी तरह उपलक्षण से गृहस्थ के लिए आवश्यक वस्तुओं का भी ग्रहण किया जाता है। अत आचार्य तुलसी की यह युक्ति कि इसमें साधु जीवन के लिए उपयोगी पदार्थों की ही गणना है अत उन्हे देना ही पुण्य है और साधु से इतर गृहस्थ या दीन-हीन आदि को देना पाप है थोथी और निस्सार है। अत यह मानना चाहिये कि साधु जैसे उत्तम पात्र को भी शुभ भावना से अन्न वस्त्रादि देने से तीर्थंकरनाम जैसी विशिष्ट पुण्यप्रकृतियों का बंध होता है और गृहस्थादि को शुभ भावना से देने से सातावेदनीयादि पुण्यप्रकृतियो का बंध होता है।

इस प्रश्न के उत्तर मे आ श्री तुलसी स्पष्ट स्वीकार कर रहे हैं कि साधुओं को देने से ही पुण्य होता है दूसरो को देने से पाप। अत उत्तरों मे प्रयुक्त लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग शब्द छल-मात्र है।

(6)

अहिंसा का अर्थ केवल न मारना ही है या मरते जीव को अनुकम्पा बुद्धि से बचा लेना भी ? *क्या साधु के अतिरिक्त अन्य किसी प्राणी की प्राणरक्षा करना हिंसा है ?*

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(6) अहिंसा का निवृत्तिरूप अर्थ किसी जीव की हिंसा न करना है और प्रवृत्तिरूप अर्थ मरते जीव की रक्षा करना है। जीवरक्षा की भावना अहिंसा है हिंसा नहीं। चाहे साधु की रक्षा की जाय चाहे *अन्य प्राणी की जीवरक्षा हिंसा नहीं अपितु विधिरूप अहिंसा है। मारना हिंसा* है तो रक्षा करना अहिंसा है। जैसे हिंसा में साधु-असाधु का भेद नहीं है वैसे ही रक्षा करने मे भेद नहीं है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(6) न मारना अहिंसा है ही इसके अतिरिक्त अनुकम्पा बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना भी अहिंसा है बशर्ते कि उसमें हिंसा और असंयम का पोषण न होता हो। अहिंसात्मक साधनों से होने वाली प्राणरक्षा हिंसा नहीं है चाहे वह किसी की भी हो।

समीक्षा

इस उत्तर मे आचार्य तुलसी अनुकम्पा-बुद्धि से मरते जीव को बचा लेने मे अहिसा तो मान लेते हैं परन्तु इसके साथ उनकी जो शर्त है वह यह सूचित करती है कि केवल साधु की प्राणरक्षा मे ही अहिंसा होना मानते हैं अन्य जीवो की प्राणरक्षा करने मे तो वे हिसा और असयम का पोषण मानते हैं अत उस प्राणरक्षा को भी पाप कहते हैं। साधु के सिवाय अन्य किसी भी जीव की प्राणरक्षा करना उनके मत मे एकान्त पाप है। जैसा कि वे कहते हैं असयती (साधु से इतर) जीव हिसक हैं। उन्हे बचाना छ काय के शस्त्र तीखा करना है।

सत्य दृष्टि से तो अनुकम्पा की भावना से नि स्वार्थ बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना अहिसा है। इसमे शर्त की अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार हिसा चाहे साधु की की जाय या अन्य किसी दूसरे प्राणी की वह हिसा ही है इसी प्रकार प्राणरक्षा करना अहिसा ही है चाहे वह साधु की प्राणरक्षा हो चाहे वह अन्य किसी जीव की हो वह अहिसा ही है। हिसा मे साधु-असाधु का भेद नहीं है इसी तरह रक्षा में भी साधु-असाधु का भेद नहीं है।

आचार्य तुलसी स्वय इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए यह स्वीकार कर लेते हैं कि अहिसात्मक साधनों से होने वाली प्राणरक्षा हिसा नहीं है चाहे वह किसी की भी हो। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कसाई गाय को मार रहा है तो उस कसाई को 'मत मार' का उपेदश देने रूप अहिसात्मक साधन से गाय की प्राणरक्षा करना हिसा नहीं है। हिंसा नहीं है - अर्थात् अहिसा है - धर्म है। इसी तरह किसी के पाव नीचे कोई कीडा दबकर मर रहा हो तो कीडे के प्राण की रक्षा के लिए उसे बता देने में कोई हिसा नहीं हैं क्योकि प्राणी बता देना तो अहिंसात्मक साधन है।

इसी प्रकार किसी प्यास के मारे मरते हुए व्यक्ति को किसी अनुकपाप्रेमी गृहस्थ ने नि स्वार्थ भाव से छाछ पिलाकर उसके प्राणों की रक्षा कर ली तो आचार्यश्री तुलसी के इस कथन के अनुसार वह प्राणरक्षा हिसा नहीं होनी चाहिए अर्थात् वह अहिंसा होनी चाहिये। कारण कि पानी पिलाकर प्राण बचाने मे तो पानी के एकेन्द्रिय जीवों का आरम्भ होता है जिससे वह हिसात्मक साधन हो जाता है। किन्तु छाछ पिलाने में किसी प्रकार का आरम्भ नहीं होता क्योकि छाछ प्रासुक है। तब भी आचार्यश्री तुलसी की व्याख्या इसे अहिंसा नहीं स्वीकार करती। क्योंकि जिसको छाछ पिलाकर बचाया जा रहा है वह सयती (साधु) नहीं है। साधु न होने से उसके प्राण बचाने में असयम का पोषण होता है। अत उनकी अहिंसा की पूरी व्याख्या उसमें लागू नहीं होती। कहने को तो आचार्यश्री तुलसी कह गये कि अहिसात्मक साधन से किसी भी प्राणरक्षा करना हिसा नहीं है किन्तु इस विश्व मे केवल साधु ही ऐसा है जिसमें इनकी शर्ते पूरी हो सकती हैं।

'चाहे वह किसी की भी हो' कहकर आचार्यश्री तुलसी ने शब्दछल किया है। जबकि वे म
हैं कि साधु से इतर की प्राणरक्षा करने में असयम का पोषण ही होता है।

जैन शास्त्र ऐसा नहीं मानता। कर्ता की भावना यदि शुद्ध है तो असयती का रक्षण
पोषण करना हिंसा नहीं है। तेरापथ की अहिंसा की व्याख्या मरते जीव को बचा लेने से क
सम्बन्ध नहीं रखती। वह तो निज का पाप टालने से सम्बन्ध रखती है। अत उक्त व
निरर्थक हैं।

(7)

(7) ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म समाजधर्म लौकिक उपकार सासारिक कर्तव्य आ
का पालन करने से पुण्य बध होता है या पाप ? ये कार्य मोक्षमार्ग में बाधक हैं या साधक
हो सकते हैं ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(7) शुभ योग से ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म समाजधर्म लौकिक उपकार सांसारि
कर्तव्य आदि लोकोपकार के काम करने से पुण्य होता है। कर्ता यदि विवेकपूर्वक उक्त य
का सदुपयोग करे तो ये मोक्षमार्ग में साधक हो सकते हैं।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(7) ग्राम धर्म आदि कार्यों मे जो जहाँ अहिंसात्मक होते हैं वे वहाँ पुण्य के कारण हैं अ
जहा हिंसात्मक होते हैं वहाँ पाप के। अत ये कार्य मोक्षमार्ग के साधक भी हो सकते हैं अ
बाधक भी।

समीक्षा

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भी आचार्यश्री तुलसी ने अपने असली भावों
वाक्कौशल से छिपाया है। उनके मत के अनुसार ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म समाजध
सासारिक भले कार्य आदि लौकिक धर्म हैं लोकोत्तर धर्म नहीं हैं। लौकिक धर्म के का
भगवान् की आज्ञा बाहर के कार्य हैं अत उनके सपादन में पुण्य नहीं हो सकता पाप ही हो
है। पुण्य तो लोकोत्तर धर्म सपादन करने में है। आचार्यश्री तुलसी प्राणरक्षा आदि को लौकि
पुण्यकार्य कहते हैं मगर उनका फल तो अशुभ कर्मवर्गणा का बध अर्थात् पाप ही बताते हैं

फिर भी आचार्यश्री तुलसी कहते हैं कि 'ग्रामधर्म आदि में जो जहा अहिसात्मक हैं वे वहा पुण्य के कारण हैं और जो हिसात्मक हैं वे पाप के कारण हैं'। यदि यह वात सत्य है तव तो नीचे दृष्टान्त में पापरूप फल न होना चाहिये।

जैसे किसी गृहस्थ के अनेक मकान खाली पडे हैं उनमें कोई रहने वाला नहीं है। दूसरी तरफ भूकम्प या अन्य कारणो से कुछ लोग गृहहीन हो गये हैं वे ठण्ड से तडप रहे हैं उनको मकान की परम आवश्यकता है। मकान मालिक गृहस्थ ने अनुकम्पा वुद्धि से प्रेरित होकर अथवा ग्रामधर्म नगरधर्म का पालन करने की दृष्टि से गृहहीन व्यक्तियो को रहने के लिए अपने मकान प्रदान कर दिये। इस कार्य में किसी प्रकार की हिसा नहीं है। मकान वने वनाये तय्यार हैं। आश्रितो के लिए नहीं वनवाये गये हैं। ऐसी हालत मे मकान प्रदान करने वाले गृहस्थ को पाप-फल क्यो होना चाहिए ? किसी भी हिसात्मक साधन का उपयोग नहीं किया गया है अत पुण्य फल होना चाहिये। यही वात वस्त्र के सम्वन्ध मे भी है। मगर उक्त कार्य सासारिक हैं तथा यह तो शरीररक्षण है आत्मरक्षण नहीं है इसमे असयम का पोषण होता है अत आचार्यश्री तुलसी की मान्यतानुसार अधर्म कार्य हैं। तथापि अहिसात्मकता का उल्लेख करते पुण्य का कारण होना वताया गया है इसमे गूढ माया है। यह अहिंसात्मकता अपना पाप टालने से सम्वन्ध रखती है न कि उन जीवों की सहायता करने के कार्यो से जिनको कि सहायता अपेक्षित है।

जवकि जैन धर्म की मान्यता अपने पाप टालने मे भी अहिसा मानती है और दूसरों की रक्षा या सहायता करने में भी।

(8)

क्या धर्म और राजनीति परस्पर वाधक हैं या एक दूसरे के साधक भी ? क्या धर्मात्मा राजनीति में भाग ले सकता है ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(8) राजनीति (लोक-व्यवस्था) और धर्म (श्रुत-चारित्र धर्म) जन समाज मे एक दूसरे के पूरक हैं। सुन्दर लोक व्यवस्था होने पर ही जनता द्वारा श्रुत चारित्र धर्म का पालन हो सकता है। राजनीति और धर्म एक-दूसरे के वाधक नहीं किन्तु पोषक हैं। जिस राजनीति में धर्म न हो वह राजनीति न होकर राक्षसी नीति होगी। धर्मशून्य राजनीति दानवी नीति है। धार्मिक सज्जन राजनीति मे भाग ले सकते हैं।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(8) राजनीति और धर्म दोनों परस्पर क्वचित् साधक भी हैं और क्वचित् बाधक भी। धर्मात्मा राजनीति में भाग नहीं ले सके इसका कोई कारण नहीं।

समीक्षा

इस उत्तर में भी आचार्यश्री तुलसी चतुराई कर गये। उत्तर को पढकर पाठक इसी नतीजे पर पहुच सकता है कि आचार्यश्री तुलसी राजनीति का धर्म से सम्बन्ध मानते हैं। किन्तु दरअसल बात यह नहीं है।

'राजनीति से धर्म जुदा है' - आचार्यश्री तुलसी कृत में आचार्यश्री तुलसी राजनीति का भूखे भेडियों की खुराक मानते हैं जिसे वे नोंच-नोंच कर खाते हैं। राजनीतिज्ञ लोगों को भी इन्होंने भूखे भेडियों की उपमा दी है। दिल्ली के पत्रकार सम्मेलन में दिया हुआ इनका वक्तव्य इस बात का साक्षी है।

स्वार्थी राजनीतिज्ञों की बात को आगे रखकर सामान्य राजनीति को पापमय बताना अज्ञानता है। प जवाहरलाल नेहरु की राजनीति जिसमें दुनिया के करोडों मानवों पर आन वाली आपत्ति को रोककर उन जीवों की आत्मा को शान्ति पहुँचाने की पवित्र भावना निहित है पापमय कैसे हो सकती है ?

आचार्यश्री तुलसी ने उस राजनीति को अपने मन में रखकर उत्तर दिया है जिस राजनीति में पाप टालने की ही बात है। जैसे दारू मत पीओ चोरी मत करो व्यभिचार मत करो आदि निषेधात्मक या त्याग रूप जितनी बातें हैं उनका प्रचार करने वाली राजनीति इनको अभीष्ट है और उसी राजनीति का ये धर्म से सम्बन्ध मानते हैं। किन्तु अन्न वस्त्र शिक्षा और औषधि आदि द्वारा जनहित के कार्य करने वाली राजनीति को ये पापमय मानते हैं। क्योंकि इसमें असयम का पोषण होता है। इस राजनीति में धर्मात्मा व्यक्ति भाग नहीं ले सकते। इस राजनीति का ये धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं। जिस राजनीति में पाप टालने की बात हो वह इन्हें अभीष्ट है। मगर जिसमें लोगों की रक्षा या सहायता (भौतिक साधनों द्वारा) की जाती है वह इन्हें इष्ट नहीं है उसमें पाप ही पाप है। खुराक मत्री शिक्षा मत्री स्वास्थ्य मत्री आदि अपने विभागों का जो काम करते हैं उनका फल सर्वथा पाप होता है ऐसा आचार्यश्री तुलसी का मन्तव्य है। जिस मत्री का काम अमुक काम मत करो का प्रचार करना है उसमें ये पुण्य मानते हैं।

इस भीतरी भाव को छिपाकर कितने सुन्दर उत्तर दिया गया है।

(9)

'जैनमात्र असयती (गृहस्थ) के खान-पान को हिसा मानते हैं' --इस वात से आप कहाँ तक सहमत हैं और क्यो ? तथा स्थानकवासी और तेरापथियो मे दयादान को लेकर क्या मतभेद हैं ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(9) जैन धर्म विवेकप्रधान धर्म है। अत जो गृहस्थ सज्जन आत्मविकास के क्षेत्र मे प्रगति करने के लिये भोजन-पान आदि का विवेकपूर्वक उपयोग करते हैं उनका खान-पान हिसा नहीं है। इसके विपरीत इन्द्रिय पोषण की भावना से अविवेकपूर्वक जो भोजनादि क्रिया की जाती है वह हिंसा है।

अस्तु, यह मानना कि 'जैनमात्र गृहस्थ के खान-पान को हिसा मानते हैं जैन सस्कृति की परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल है। खाने-पीने की अपेक्षा खाने पीने के पीछे रही हुई भावना में हिंसा अहिसा अधिक आश्रित है।

स्थानकवासी और तेरापथियों मे दयादान को लेकर जो मतभेद है वह सक्षेप म वताया जाता है -

(क) स्थानकवासी समाज साधु, सदाचारी गृहस्थ तथा सम्यगदृष्टि साधक को सुपात्र मानता है। तथा इन सब की शुभ भाव से सेवा-सत्कार तथा सहायता करने म धर्म एव पुण्य मानता है पाप नहीं। साधु के अतिरिक्त अन्य किसी गृहस्थ या दूसरे प्राणी को सकटकाल में अनुकम्पा-वुद्धि से अन्न-वस्त्रादि देने एव अन्य सुख-सुविधा पहुँचाने में पुण्य मानता है। जवकि तेरापथ समाज एकमात्र साधु को ही सुपात्र मानता है और साधु के सिवा सबको कुपात्र मानता है। फलत साधु को भोजन-वस्त्रादि देने-दिलाने मे धर्म तथा पुण्य मानता है और साधु के सिवा चाहे श्रावक माता पिता शिक्षक राष्ट्रनेता समाज-उद्धारक जन सेवक कोई भी हो उनकी सद्भावना से सेवा सहायता या अन्न-वस्त्रादि द्वारा सुख पहुँचाने में पाप मानता है। वह पाप भी साधारण नहीं किन्तु मास-भक्षण और वेश्यागमन जैसा भयकर !

'साधु थी अनरो कुपात्र छै। अनेरा ने दीधा अनेरी प्रकृति नो वध कह्या त अनेरी प्रकृति पापनी छै। (भ्र वि पृ 79)

'कुपात्र रूप कुक्षेत्र मे पुण्यरूप वीज किम उगे'। (भ्र वि पृ 80)

'कुपात्र-दान मासादिक सेवन व्यसन कुशीलादिक य तीनो एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर जार ठग ये तीनो समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्र दान भी मासादि सेवन

व्यसन कुशीलादि की श्रेणी मे गणना करने योग्य है। (भ्र वि पृ 82)

(ख) स्थानकवासी समाज मरते जीव को बचाने में विधिरूप अहिसा मानता है। अहिंसा का विकास दूसरों को न मारने तक ही सीमित नहीं है किंतु अपने प्राण समर्पित करके भी दूसरे के दु ख दूर करने और उनका रक्षण करने तक भी है। रक्षा करना हिसा नहीं है किंतु अहिसा है। हाँ रक्षा में विवेक आवश्यक है। जबकि तेरापथ समाज मरते जीव को बचाने मे पाप मानता है। किसी भी साधन से चाहे उपदेश से चाहे अन्य प्रयत्न से जीव बचाने म पाप मानता है। बचाने की भावना मोहराग है। असयती (साधु से इतर) जीव हिंसक हैं। उनको बचाना छ काय के शस्त्र तीखा करना है। बलात्कार आदि का नाम लेकर रक्षा को अनुचित बताने की चेष्टा करते हैं किंतु यह सब भुलावे मे डालने का प्रयत्न मात्र है। ये रक्षा-मात्र को पाप मानते हैं।

'साधु के अतिरिक्त सब प्राणी असयती होते हैं। असयती जीवों के जीने आदि की कामना करना एकान्त पाप है। (श्रीमदाचार्य भीखणजी के विचार रत्न पृ 53)

कुपात्र जीव ने बचाविया कुपात्र ने दिया दान जी।
ओ सावद्य कर्तव्य ससार नो भाख्यो छै भगवान् जी।
(अनुकम्पा ढाल 12 कड़ी 10)

आचार्य तुलसीरामजी महाराज

(9) जहाँ तक हमारा अनुभव है इस विषय में प्रत्येक जैन सम्प्रदाय एकमत है। कारण कि असयम के पोषण मे अहिसा नहीं होती।

तेरापन्थ के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण मे सर्वत्र आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है और स्थानकवासी सम्प्रदाय के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण मे आत्मशुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। तेरापथ सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओ मे आदि से अन्त तक अहिसा और सयम का पूर्णत निर्वाह होता है किन्तु स्थानकवासी सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओ मे अहिंसा और सयम की मर्यादा की उपेक्षा भी देखी जाती है। एक ओर जहाँ लौकिक दान-दया का विधान किया जाता है वहाँ दूसरी ओर इनको हिसात्मक माना जाता है। जैसे जलशाला बनाना अथवा अन्नशाला खोलना आदि दानो को बहुत जीवो का उपकारक मान कर इनकी प्रशसा करते हैं ये सच्ची बात नहीं जानते हैं वे उक्त दानो की प्रशसा के द्वारा बहुत प्राणियो का घात कराना चाहते हैं क्योंकि प्राणियो के घात के बिना जल-दान या अन्नदान नहीं हो सकता है। अन्नशाला जलशाला

आदि दानो में पुण्य होता है यह यदि साधु कहे तो अनन्त सूक्ष्म और बादर जीवो का सदा नाश हो और थोडे जीवों की थोडे काल तक तृप्ति हो इसलिए उक्त दानो में पुण्य होता है यह साधु न कहे। यदि इन दानो में पुण्य नहीं होता है ऐसा साधु कहे तो दानार्थी जीवा के लाभ में अन्तराय हो इसलिए मोक्षार्थी पुरुष उक्त दोनो मे पुण्य या पाप होना नहीं कहते हैं किन्तु किसी के पूछने पर मौन धारण करते हैं। यदि कोई अधिक आग्रह करे तो साधु को कहना चाहिए कि 'हम लोग 42 दोषो को वर्जित करके आहार लेते हैं अत ऐसे विषय मे मोक्षार्थी पुरुषों का अधिकार नहीं है। (स्थानकवासी सम्पदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के तत्त्वावधान मे सम्पादित सूत्रकृताग प्रथम श्रुत-स्कन्द तृतीय खण्ड पृ 59 60 61)

समीक्षा

'जहाँ तक हमारा अनुभव है इस विषय मे प्रत्येक जैन सम्प्रदाय एकमत है —यह आचार्य तुलसी का अनुभव ठीक नहीं है। क्योकि दिगम्बर श्वेताम्बर जैन ऐसा नहीं मानते। जैन धर्म विवेक-प्रधान धर्म है। जो विवेक-सम्पन्न गृहस्थ आत्म विकास के क्षेत्र मे प्रगति करने के लिए भोजन-पान आदि का अनासक्त भाव से विवेकपूर्वक उपयोग करते हैं उनका खान-पान हिसा नहीं है। इसके विपरीत इन्द्रिय पोषण की भावना से अविवेकपूर्वक जो भोजनादि क्रियाए की जाती हैं वह हिसा है चाहे वह साधु द्वारा भी क्यों न हो। खाने-पीने की अपेक्षा खान-पान के पीछे रही हुई भावना मे हिसा-अहिसा अधिक आश्रित है।

आचार्य तुलसी और उनके सम्प्रदायानुयायी गृहस्थ-मात्र के खान पान में असयम का पोषण मानते हैं। इसीलिए प्रतिमाधारी श्रावक को मासमखण एक मास के उपवास के पारणे मे शुभ भावना से शुद्ध आहार देने में भी असयम का पोषण मानते हैं और उसमे पापफल की प्ररूपणा करते हैं। इसी असयम पोषण का नाम लेकर वे शुभ भावना से अनुकम्पा बुद्धि से भूखे को निरवद्य भोजन देने मे और प्यासे की निरवद्य उपायो से प्यास बुझाने में भी सर्वथा पाप मानते हैं।

अहिसा की आत्मा रूप अनुकम्पा की हत्या करने पर भी अपनी अहिंसा और आत्मशुद्धि की प्रगल्भता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि 'तेरापन्थ के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में सर्वत्र आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है। और स्थानकवासी सम्प्रदाय के दान दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में आत्मशुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। तेरापन्थ की दया दान सम्बन्धी परिभाषाओ मे आदि से अन्त तक अहिंसा और सयम की पूर्णता का निर्वाह होता है किन्तु स्थानकवासी सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओं में अहिसा और सयम की उपेक्षा भी देखी जाती है।

सार्वजनिक दया-दान से द्वेष करने वाले समुदाय के आचार्य तुलसी जब दया-दान मे पुण्य मानने वालो के दृष्टिकोण की गलत आलोचना करते हैं और मजे की बात तो यह कि सार्वजनिक दया-दान का निषेध (अपलाप) करते हुए भी अपने को तथा अपने पथ के अनुयायियो को अधिक सच्चे दयालु और दानी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो वे 'उलटा चोर कोतवाल को डाटे' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

साधु के सिवाय अन्य जीव विषयक दया-दान में पाप बताने वाले सिद्धान्त तो आत्मशोधक हैं और सार्वजनिक दया-दान में पुण्य कहने वाले सिद्धान्त शरीर पोषक हैं आचार्य तुलसी की यह कैसी विचित्र परिभाषा है !

कष्ट से तडपते हुए और मरते हुए जीव को बचाने की क्षमता होने पर भी पाषाण का हृदय बनाकर उन्ह न बचाना और चुपचाप देखते रहना– क्या इसे ही तेरापन्थी आचार्य आत्मशुद्धि मानते हैं ? क्या यही आत्मशुद्धि का परिचायक है ? आत्मविशुद्धि शब्द की कैसी घोर विडम्बना !

अपने कष्टो की परवाह न कर प्राणो की बाजी लगाकर भी निस्वार्थ भाव से दु खी जीवों को दु खमुक्त करने वालो और दूसरे के प्राणो की रक्षा करने वालो की आत्मशुद्धि विशेष होती है या अपने प्राणो की रक्षा करने का प्रयत्न करने वाले एव दूसरों के कष्टों को चुपचाप देखने वाले व्यक्ति की आत्मशुद्धि विशेष होती है ? यह विचारक स्वय विचारे।

तेरापन्थ सम्प्रदाय साधुओं के सिवाय ससार के अन्य किसी जीव को दया दान का पात्र एव अधिकारी ही नहीं समझता। दया-दान के व्यापक क्षेत्र को इतना सकुचित रूप देने का अपराध करने पर भी अपनी मान्यताओ में अहिसा और सयम का आदि से अन्त तक निर्वाह होने की दाम्भिक डींग हाँकना कहाँ तक सगत है ?

मरते हुए जीव को चुपचाप देखते रहना कष्ट से तड़पते हुए जीवो को देखकर पत्थर का दिल कर लेना और उन्हे दु खमुक्त करने का प्रयत्न न करना क्या इसी मे आचार्य तुलसी अहिसा का निर्वाह मानते हैं ? यह अहिसा का निर्वाह नहीं उसकी हत्या है। विचारक विचारे।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के दयादान के दृष्टिकोण में प्राणरक्षा का और शरीर रक्षा का जितना ध्यान रखा जाता है उससे कहीं अधिक उन मरते हुए एव कष्ट पाते हुए जीवों को होने वाले आर्त रौद्र रूप अशुभ ध्यान से हटाकर समाधि में स्थापित करने का लक्ष्य रहता है। आचाराग सूत्र म भगवान् ने कहा है कि सब जीव जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता मरना सबको अप्रिय है अत मरते हुए जीव को दुःख होता है। दुःखी जीव आर्त और रौद्र ध्यान करता है जिसके कारण कर्मों का बन्ध होता है। उन दु खी जीवों को बचाने वाला व्यक्ति उनके प्राण और शरीर की रक्षा तो करता ही है परन्तु सबसे अधिक आर्त-रौद्र ध्यान

से बचाकर उसके आत्मा की रक्षा करता है। अत यह कहना कि 'स्थानकवासी सम्प्रदाय के दया-दान का दृष्टिकोण आत्म-शुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक भार दिया जाता है' मिथ्या है। आत्मौपम्य की भावना से प्रेरित होकर बचाने वाला मरते हुए जीव के प्राणों की रक्षा करता है। यह आत्मौपम्य की भावना आत्मा को शुद्ध बनाने वाली है। अत प्राणरक्षा मे आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय शुभ भावनामय दान-दया को हिंसात्मक नहीं मानता। जिस प्रकार रेल मोटर बैलगाड़ी आदि वाहनों में बैठकर मुनि-दर्शन के लिए आने वाले व्यक्ति का मुनि-दर्शन हिसक नहीं माना जाता जो कि उक्त वाहनों के उपयोग मे हिंसा अवश्यभावी है। उसी तरह दया-दान की भावना स्वय हिसात्मक नहीं है चाहे उसके व्यक्तीकरण के साधनो में आरम्भ हो। आरम्भ को आरम्भ मानना और शुभ दया-दान की भावना को निरवद्य मानना– यह स्थानकवासियों की सुसगत मान्यता है।

स्थानकवासी और तेरापन्थी के दया-दान सम्बन्धी दृष्टिकोण मे स्पष्ट रूप से यह भेद है

स्थानकवासी सम्प्रदाय साधु की ही नहीं ससार के सब जीवों की अनुकम्पा करने मे प्राणरक्षा करने मे धर्म और पुण्य मानता है जबकि तेरापथी सम्प्रदाय केवल साधु की प्राणरक्षा करने मे ही धर्म एव पुण्य मानता है और ससार के जीवो की प्राणरक्षा में मरते हुए को बचाने मे एकान्त पाप मानता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय दीन-हीन दु खी प्राणियो को भी अनुकम्पा दान का पात्र समझता है। उन्हे नि स्वार्थ और शुभ भाव से दान देने मे पुण्य मानता है जबकि तेरापन्थ सम्प्रदाय साधु के सिवाय सब जीवो को कुपात्र समझता है और दीन अनाथ गरीब रोगी आदि को निस्वार्थ भाव से निरवद्य दान देने में भी असयम का पोषण मानकर पाप की प्ररूपणा करता है।

इस स्पष्ट भेद को आचार्य तुलसी ने शब्दों के कैसे आवरण मे छिपाया है यह पाठक अब स्वय समझ सकेगे। शब्दों के मोहक आवरण को चीर कर विचारक जब उनके भावों पर विचार करेगे तो उनकी मान्यताओं का भीषण रूप अपने-आप प्रकट हो जावेगा। साधारण जनता इन भीषण मान्यताओं के चक्कर मे न फसे इसी आशय से यह समीक्षा की गई है।

श्वेताम्बर हो दिगम्बर हो बौद्ध हो या कोई भी सम्प्रदाय को मानने वाला हो जो कोई

श्री श्वेताम्बर तेरापन्थ जैन समाज, दिल्ली की ओर से श्री मोहनलाल कठोतिया द्वारा प्रेषित प्रश्न

(1)

जैन सिद्धान्तो मे विश्वास न रखने वाले व्यक्ति वैदिक बौद्ध ईसाई तथा इस्लाम सिद्धान्तो मे विश्वास रखते हुए अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हैं तो उस क्रिया से उनकी आत्मशुद्धि होती है या नहीं ? अर्थात् उनकी यह क्रिया धर्म है या नहीं ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

1-यदि वैदिक बौद्ध ईसाई तथा मुसलमान आदि शुद्ध रूप से अहिसा सत्य तथा ब्रह्मचर्यादि का पालन करते हैं तो उस क्रिया से उनकी आत्मशुद्धि होती है अर्थात् उनकी यह क्रिया धर्म है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिसा सत्यादि का पालन धर्म है। जैन बौद्ध वैदिकादि साम्प्रदायिक दृष्टि से लिये जाने वाले नामो का कोई भी महत्त्व नहीं है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई अहिंसादि क्रिया धर्म है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

1-अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य की साधना से प्रत्येक व्यक्ति की आत्मशुद्धि होती है उसकी वह साधना धर्म है चाहे वह किसी भी धर्म-सम्प्रदाय म विश्वास रखनेवाला क्यो न हो।

समीक्षा

जैन धर्म का दृष्टिकोण अति उदार और व्यापक है। उसमें किसी तरह की सकीर्णता *को अवकाश नहीं है। वह किसी सम्प्रदाय या जाति के माहात्म्य को स्वीकार नहीं करता।* वह किसी भी सम्प्रदाय या जाति का आग्रह नहीं रखता। किसी भी धर्म सम्प्रदाय का किसी भी देश या जाति का और किसी भी श्रेणी का व्यक्ति धर्म एव मोक्ष की आराधना कर सकता है। यह जैन धर्म की स्पष्ट उद्घोषणा है

सेयम्बरो य आसम्बरो य बुद्धो या अण्णो वि कोवि।
समभावभावी-अप्पा लहई मोक्ख न सदेहो।।

श्वेताम्वर हो दिगम्वर हा बौद्ध हो या कोई भी सम्प्रदाय को मानने वाला हो जो समभाव की आराधना करने वाला आत्मा है वह अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसमे तनिक भी सदेह नहीं है। जैन धर्म म अन्यलिग सिद्धा' का कथन किया गया है। इस पर से भी जैन धर्म की उदारता प्रगट होती है। जैन दृष्टि के अनुसार जो कोई भी व्यक्ति विवेकपूर्वक (सम्यग्ज्ञान सहित) अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि का पालन करता है वह धर्म और मोक्ष की आराधना करता है। इससे उसकी आत्मशुद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि की साधना यदि विवेकपूर्वक की जाती है तो ही वह धर्म हो सकती है अन्यथा नहीं। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रिया से ही आत्मशुद्धि हो सकती है।

अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य की साधना से प्रत्येक व्यक्ति की आत्मशुद्धि होती है उसकी यह साधना धर्म है' —यह आचार्य तुलसी का कथन जैन दृष्टि से विपरीत है। जैन दृष्टि से सत्यज्ञान के बिना जो क्रियाएँ की जाती हैं वे अन्ध क्रियाएँ हैं। उनसे आत्मशुद्धि नहीं हो सकती। मोक्षमार्ग मे उनका कोई मूल्य नहीं है। जब तक साध्य और लक्ष्य का सही सही निर्धारण नहीं हो जाता वहा तक की लक्ष्यहीन प्रवृत्ति का कोई महत्त्व नहीं होता। जो व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थल का ही निर्णय नहीं कर सका है उसके इधर-उधर भ्रमण करने का जैसे कोई महत्त्व नहीं होता इसी तरह लक्ष्यहीन क्रियाओ का भी कोई महत्त्व नहीं होता। क्रियाओं मे महत्त्व नही है। महत्त्व क्रिया के कर्ता की भावना मे है। कर्ता यदि अज्ञानी है तो उसकी क्रिया का क्या महत्त्व है ?

जिस व्यक्ति को आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं है जिसने सच्चा विवेक नहीं प्राप्त किया है जिसे आध्यात्मिकता और भौतिकता का भेद ज्ञान नहीं हुआ है जो धर्म के स्वरूप को नहीं जानता है तथा आत्माभिमुखी नहीं है वह चाहे जितनी बाह्य क्रियाएँ कर ले उनसे उसकी आत्मशुद्धि नहीं हो सकती है। उसकी वे क्रियाएँ सत्य लक्ष्य के अभिमुख नहीं होती अत उसकी विवेकहीन साधना को धर्म नहीं कहा जा सकता है मोक्ष दृष्टि में उसका कोई महत्त्व नहीं होता। वह पुण्य बध करके स्वर्गादि की प्राप्ति कर सकता है किन्तु भवछेद नहीं कर सकता। जो व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को समझ कर आत्मशुद्धि की भावना से सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि की साधना करता है तो उसकी साधना धर्म है इसमे कोई सदेह नहीं है। परन्तु यदि वह आत्मस्वरूप को नहीं जानता है उसमे सच्चा विवेक नहीं है तो उसकी अहिसादिक की साधना द्रव्य-साधना है। आत्माभिमुख साधना न होने से वह धर्म नहीं है। हाँ देह दमन आदि से पुण्य अवश्य हो सकता है। परन्तु एतावता उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। विवेकहीन साधना को कभी धर्म नहीं माना जा सकता।

वृक्ष पर लटक कर साधना करता था कोई काँटो पर सोता था कोई पचाग्नि जला कर तप करता था और इनमे ही धर्म मान लिया जाता था। उस समय पार्श्वनाथ भगवान् ने स्पष्ट प्ररूपित किया कि विवेकहीन सम्यग्ज्ञानरहित तपश्चर्या साधना - धर्म नहीं है। वह देह दण्ड मात्र है। उस से आत्मा का कुछ भी उत्थान नहीं हो सकता है। अत पार्श्वनाथ भगवान् ने विवेकमय साधना को ही धर्म बतलाया था। इससे यही सिद्ध होता है कि अहिसा सत्य आदि की विवेकहीन साधना धर्म नहीं है और जो विवेकपूर्वक अहिसा सत्य आदि की आराधना की जाती है वह धर्म है। शास्त्रकार ने इसी भाव को इस रूप में व्यक्त किया है -

मासे मासे उ जो बालो कुसग्गोणेव भुजए।
न सो सुअस्खायधम्मस्स कलमरहई सोलसि।।

अज्ञानी (विवेकरहित) जीव मास-मास-भर तक निराहार रहे और पारणे म कुश के अग्रभाग पर आ सके इतना ही स्वल्प आहार लेकर पुन मासमखण करे-- ऐसी कठोर साधना करने पर भी वह सुआख्यात धर्म की सोलहवीं कला (अश मात्र) को भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह है कि विवेकरहित ऐसी कठोर साधना भी धर्म की श्रेणी मे नहीं है। जब तक श्रद्धा शुद्ध नहीं है आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं है वहाँ तक उसकी प्रवृत्ति में धर्म नहीं हो सकता है। आगम मे कहा गया है कि -

नादसणिस्स नाण नाणेण बिणा न होन्ति चरणगुणा

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र-- ये तीनो ही मोक्षमार्ग हैं अर्थात् धर्म हैं। जिसे आत्मस्वरूप की सच्ची श्रद्धा नहीं है वह सम्यग्दर्शन वाला ही नहीं है सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के बिना क्रिया में सम्यकत्वता नहीं आ सकती अर्थात् सम्यक चारित्र नहीं हो सकता।

अज्ञानी जीव में सम्यग्दर्शन नहीं होता अत सम्यग्ज्ञान भी नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के अभाव मे उसकी क्रियाएँ सम्यक नहीं होती। अत वह कैसी भी क्रिया करे उसमें धर्म नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टि से क्रिया सम्यग्ज्ञान-दर्शन चारित्र रूप मोक्षमार्ग से बाहर है अत वह धर्म नहीं है। जो सम्यग्दर्शन सम्यगृज्ञान और सम्यक चारित्र के अन्तर्गत है वही धर्म है।

जैसे मिथ्यादृष्टि का जानना ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान है इसी तरह मिथ्यादृष्टि की अहिंसा आदि की साधना वस्तुत अहिंसादि की साधना ही नहीं है द्रव्यक्रिया मात्र है। जैसे विवेकहीन उन्मत्त मनुष्य कभी ठीक-ठीक बात भी कहता है तो भी उसका वह कथन

पागलपन ही गिना जाता है क्योंकि उसे सत्-असत् का विवेक नहीं है। इसी तरह मिथ्यादृष्टि (अज्ञानी) भी कमी अहिसा आदि की साधना करता है तो भी वह धर्म नहीं कहा जा सकता है क्योकि उसमें आत्म-विवेक नहीं होता है। तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा गया है-

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।

जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य दर्शनकारो ने भी ज्ञानसहित क्रिया को ही धर्म माना है। कठोपनिषद् आदि के उद्धरण दिये जा सकते हैं परन्तु विस्तारभय से यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं। विशेष जिज्ञासु 'सद्धर्ममण्डन' मे यह देख सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि आचार्य तुलसी बाह्य साधना मात्र से आत्मशुद्धि होना और धर्म होना मानते हैं यह जैन शास्त्र से विपरीत है। तेरापन्थ की यह मान्यता है कि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी भी अहिसा सत्य की आराधना करता है और उसकी यह आराधना धर्म है। यह मान्यता सर्वथा विपरीत है। जिसे सत्य-विवेक नहीं है वह सच्चे अर्थों मे अहिसादि की आराधना ही नहीं कर सकता है। अत विवेकहीन साधना मे धर्म मानना सर्वथा असगत है।

सत्य यह है कि विवेकपूर्वक सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि की साधना की जाय तो उससे आत्मशुद्धि होती है और वह धर्म है जैसाकि पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म ने अपने उत्तर मे स्पष्ट प्रकट किया है। आचार्यश्री द्वारा दिया गया उत्तर ही यथार्थ जैन दृष्टिबिन्दु को प्रकट करता है।

(2)

शुभ योग की प्रवृत्ति के बिना पुण्य हो सकता है या नहीं ? हो सकता तो वह किससे ? और उसका शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? यदि नहीं हो सकता तो शुभ योग की प्रवृत्ति से केवल पुण्य होता है या केवल निर्जरा होती है या ये दोनों साथ ही होती हैं ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(2) 'शुभयोग की प्रवृति के बिना' –इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक योगप्रवृति का निरोध दूसरा अशुभ योगप्रवृत्ति। योगप्रवृत्ति के निरोध को सवर कहते हैं। उसमे किसी प्रकार भी बध नहीं होता। अशुभ योगप्रवृत्ति से अल्पमात्रा में पुण्यबध होता है और अधिक मात्रा में पापबध। अत यह पापबध ही कहा जाता है। प्रथम गुणस्थानवर्ती जीवो मे शुभ योग भी होता है अत वे पुण्यबध कर सकते हैं। पुण्यबध के लिये यह नियम नहीं है कि वह धर्म के साथ ही हो। प्रत्येक ससारी जीव को प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मवर्गणा की अकाम निर्जरा होती है,

ही हो। प्रत्येक ससारी जीव को प्रतिसमय अनन्तान्त कर्मवर्गणा की अकाम निर्जरा होती है किन्तु मोक्षमार्ग मे उसकी कोई भी कीमत नहीं है। पुण्य और निर्जरा दोनो साथ होते हैं। किन्तु सम्यग्दृष्टि को पुण्यबध के समय सकाम निर्जरा होती है और मिथ्यादृष्टि को अकाम निर्जरा। वीतराग दशा को छोडकर केवल पुण्य का बध नहीं हो सकता।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(2) शुभ योग की प्रवृत्ति के बिना पुण्य नहीं होता क्योकि यह धर्म का अविनाभावी कार्य है। शैलेषी अवस्था में केवल निर्जरा ही होती है। अन्यत्र पुण्य और निर्जरा साथ ही हाते हैं। अर्थात् जहाँ पुण्य होता है वहाँ निर्जरा अवश्य होती है।

समीक्षा

शुभ योग की प्रवृत्ति क बिना पुण्य नहीं होता प्राय यह ठीक है परन्तु इसके लिए आचार्य तुलसी ने जो हेतु दिया है वह मिथ्या है। कहते हैं कि पुण्य धर्म का अविनाभावी कार्य है। यह कथन शास्त्र से असगत है। शास्त्रकारो ने धर्म के दो रूप बताये हैं जैसा कि स्थानाङ्ग सूत्र मे कहा गया है - दुविहे धम्मेपण्णत्ते त जहा सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव। श्रुत और चारित्र-रूप से धर्म के दो प्रकार हैं। जहाँ श्रुत और चारित्र है वहीं धर्म है। इसके अतिरिक्त धर्म नहीं रह सकता है। जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनमें श्रुत-चारित्र-रूप धर्म तो नहीं पाया जाता है परन्तु उन्हे पुण्य हो सकता है जिसके कारण वे नौ ग्रैवेयक तक जा सकते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव मे पुण्य तो होता है परन्तु श्रुत-चारित्रधर्म नहीं होता अत पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य बताना मिथ्या है।

आचार्यश्री तुलसी ने समिति के प्रतिप्रश्न न 2 का उत्तर देते हुए कहा है कि शुभ योग के लिए मोहकर्म का क्षय क्षयोपशम और उपशम होना चाहिए तो उनके कथनानुसार मिथ्यादृष्टि मे शुभ योग नहीं पाया जा सकता। क्योकि मिथ्यादृष्टि को मोह का क्षयादि नहीं होता। और शुभ योग के बिना पुण्य नहीं होता है तो मिथ्यादृष्टियो को पुण्यबन्ध किस से होता है जिससे वे नौ ग्रैवेयक तक जा सकते हैं ? अत आचार्य तुलसी के इन कथनों मे परस्पर विरोध और असगति है। आचार्य तुलसी की शुभ योग की व्याख्या भी असगत है और पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य कहना भी युक्तिशून्य है।

तेरापन्थ सम्प्रदाय ने शास्त्रप्रसिद्ध श्रुत-चारित्र रूप धर्म की उपेक्षा कर धर्म के दो नवीन भेदो की कल्पना की है। वे सवरधर्म और निर्जराधर्म से दो प्रकार का धर्म मानते हैं। धर्म के

ये भेद अपूर्ण और असगत हैं। विवक्षाभेद से धर्म के विविध भेद किये जा सकते हैं परन्तु वे भेद ऐसे होने चाहिए जिनमे धर्म का समग्र स्वरूप समाविष्ट हो सके। सवर धर्म और निर्जरा रूप धर्म के दो भेद करने से धर्म का समग्र स्वरूप समाविष्ट हो सके। सवरधर्म और निर्जरा रूप धर्म के दो भेद करने से धर्म का समग्र रूप उनके अन्तर्गत नहीं आ सकता है। जैन सिद्धान्त मे ज्ञान और क्रिया या सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यग् चारित्र को मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म माना है। इस समग्र धर्मस्वरूप का सवर और निर्जरा के अन्दर समावेश नहीं होता है। क्योकि सम्यग्ज्ञान या श्रुत रूप धर्म का निर्जरा मे समावेश नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि सवरज्ञान दर्शनपूर्वक ही होता है अत ज्ञान का समावेश सवर म हो जाता है तब तो मोक्षमार्ग का समग्र स्वरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र सवर मे ही समाविष्ट हो जाता है तो फिर सवर ही धर्म है ऐसा कहना भी पर्याप्त है। निर्जरा को अलग मानने की आवश्यकता नहीं। चारित्र मे ही इसका समावेश हो जाता है और चारित्र का अन्तर्भाव सवर मे हो ही जाता है। फिर इन दो भेदो की सार्थकता क्या हुई ?

तेरापन्थ मिथ्यादृष्टियों की निर्जरा को धर्म मान लेता है और उसे धर्म मानकर पुण्य को उस निर्जरा धर्म का अविनाभावी कार्य बताता है। इस निर्जरा धर्म की अपेक्षा यदि पुण्य को धर्म का अविनाभावी अग मान लिया जाय तब तो पाप को ही धर्म का अविनाभावी कार्य मानना पड़ेगा। क्योकि निर्जरा तो शुभ कर्मों की भी होती है और अशुभ कर्मों की भी होती है। जब अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है तब प्राय पुण्यबध होता है और जब शुभ कर्मो की निर्जरा होती है तब प्राय पापबध होता है। इस तरह निर्जरा के साथ जैसे पुण्य होता है वैसे ही पाप भी होता है। यदि निर्जरा की अपेक्षा पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य कहा जा सकता है तो उसी निर्जराधर्म की अपेक्षा पाप को भी धर्म का अविनाभावी कार्य क्यो नहीं कहा जा सकेगा ? इसलिए निर्जराधर्म की अपेक्षा से पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य बतलाना सर्वथा मिथ्या है।

(3)

क्या साधु धर्मशाला औषधालय अनाथालय आदि बनवाने का उनको चलाने के लिए धनराशि एकत्रित करने का इन प्रवृत्तियों मे दान देने का उपेदश कर सकते हैं ? यदि हॉ तो इसका शास्त्रीय आधार क्या है ? यदि नहीं तो क्यों ?

(3) धर्मशाला औषधालय अनाथालय जलाशयादि मे जो मानवहित या प्राणिहित रहा हुआ है उसके लिये साधु उपदेश दे सकते हैं। इन कार्यों के लिये अमुक साधन विशेष का ही अवलम्बन हो ऐसा कोई आग्रह नहीं रहता। अल्प मात्रा मे अनिवार्य आरम्भ होने पर भी गृहस्थ के लिये ऐसे कार्य वर्जित नहीं हैं। यदि गृहस्थ शुभ भावना से ऐसे कार्य करता है तो वह पुण्यबध का भागी होता है। जिस प्रकार रेल मोटर आदि वाहन मे बैठकर मुनि दर्शनार्थ आने वाले व्यक्ति को साधु पुण्यफल बताते हैं मुनि-दर्शन करने का साधु उपेदश देते हैं वैसे ही हीन-दीन-अनाथ-भूखे-प्यासे आदि की सहायता व भलाई करने का उपदेश साधु दे सकते हैं।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(3) उक्त प्रवृत्तियाँ हिंसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिसा और परिग्रह कृत-कारित-अनुमति से त्याज्य हैं। इसलिए वे इस विषय का उपदेश नहीं कर सकते। इस विषय मे स्थानकवासी आचार्यश्री जवाहरलालजी भी कहते हैं– 'सघ की समुचित व्यवस्था न होने के कारण साधु अपनी जवाबदारी श्रावक पर और श्रावक अपनी जवाबदारी साधु पर डालते हैं। जैसे पाठशाला चलाना गुरुकुल खोलना कार्यालय की व्यवस्था करना गोरक्षा अथवा अनाथरक्षा का प्रबन्ध करना आदि। ....यदि साधु इस सम्बन्ध में पड़ें और कहें कि हमारा काम गुरुकुल खुलवाने का व चलाने का है तो यह ठीक नहीं है। ....जिनमे अनेक आरम्भ आदि क्रियाए पडती हैं एसे उपकार के कार्य यदि साधु ही करने लग जायगे तो श्रावक लोग क्या करेगे ? जब श्रावको की जिम्मेदारी का काम साधु ने ले लिया तो क्या साधु के पचमहाव्रतों का पालन श्रावक करेगा ? (धर्म-व्याख्या पृ 51)

समीक्षा

'उक्त प्रवृत्तियाँ हिसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिंसा और परिग्रह कृत कारित-अनुमति से त्याज्य हैं अत वे इस विषय का उपेदश नहीं कर सकते' – आ तुलसी का यह कथन ठीक नहीं है। साधु-उपदेष्टा के उपेदश का अभिप्राय वस्तु स्वरूप-प्रतिपादन करने का होता है न कि किसी तरह की प्रेरणा करने का। उपदेष्टा अपने उपदेश मे अनेक बातो की चर्चा करता है। वह अल्पारम्भ-महारम्भ पुण्य और पाप आसव और सवर अणुव्रत और महाव्रत आदि की चर्चा करता है। उसका अभिप्राय तो विवेक कराना होता है। इसलिए तज्जन्य शुभाशुभ क्रिया से साधु-उपदेष्टा लिप्त नहीं होता। साधु उपदेष्टा विवेक कराने के लिए उक्त कार्यों मे रहे हुए मानवहित या प्राणिहित का उपेदश दे

सकते हैं। वे यह नहीं कहते कि इनके लिए तुम अमुक-अमुक साधनों का ही अवलम्बन लो। साधनो का आग्रह उपदेष्टा का नहीं होता। इन कार्यों मे रहा हुआ प्राणिहित अलग है और उसके लिए होने वाला आरम्भ अलग है। जैसे मुनि दर्शन की क्रिया अलग है और उसके लिए होने वाला आरम्भ अलग है। मुनि मुनि-दर्शन का उपदेश देते हैं इससे उन्हे आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता है। इसी तरह मुनि-उपदेष्टा यदि प्राणिहित का अलिप्त रह कर उपेदश करता है तो इससे उसे उन कार्यों मे होने वाले आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता।

आचार्य तुलसी ने स्वर्गीय जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के कथन का जो उद्‌धरण दिया है उसमे तो उक्त कार्यों मे रहे हुए प्राणिहित का उपदेश देने का कतई निषेध नहीं किया गया है। उसमे तो उक्त कार्यों का मुनि द्वारा सचालन करने का उनकी व्यवस्था करने का निषेध किया है। यह ठीक ही है कि साधु औषधालय का सचालन गुरुकुल का सचालन गोशाला का सचालन नहीं कर सकता है। इससे यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता है कि साधु इनमे रही हुई हित-भावना का उपेदश भी नहीं दे सकता है। अत स्व आचार्यश्री के कथन का उद्‌धरण दे कर आचार्य तुलसी ने जनता म भ्रम पैदा करने का प्रयास किया है। वह सर्वथा अनुचित है। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण समिति के प्रतिप्रश्न स 5 के उत्तर की समीक्षा मे है वहाँ देखे।

(4)

(4) धर्मशाला कुआ औषधालय अनाथालय विद्यालय आदि इसी प्रकार के अन्य सार्वजनिक कार्य करने तथा करवाने मे आध्यात्मिक धर्म है या नहीं ? यदि इन कार्यों में धर्म या पुण्य है तो (स्थानकवासी पूज्य श्रीलालजी महाराज की स्मृतिस्वरुप) आलोयणा' नामक पुस्तक के पृष्ठ 26 पर– 'कुआ बावड़ी सरदह तालाव निवाण देहरा उपासरा मस्जीत मुकरवा तीर्थ धाम पादुका छत्री यात्रा मैडी इत्यादिक ठाम-ठिकाना किया होय कराया होय करता प्रते अनुमोद्या होय अर्थे-अनर्थे धर्म अर्थे काम अर्थेइस भवे परभवे अनेरे अनत भवे तो अरिहत सिद्ध केवली भगवन्त की साख से मन-वचन काया करके त्रिविधे-त्रिविधे तस्स मिच्छामि दुक्कड। ऐसा लिखकर कूप तालाव आदि के करने कराने तथा अनुमोदन करने में 'मिच्छामि दुक्कड' नाम प्रायश्चित्त क्यो कहा ?

होता ही है। इसी तरह जहाँ (शैलेशी अवस्था को छोडकर) धर्म होता है वहाँ पुण्य अवश्य होता है इसका अर्थ यह नहीं कि जहाँ पुण्य होता है वहाँ धर्म अवश्य होता ही है।

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(4) यदि आध्यात्मिक धर्म का मतलब मोक्षाभिमुखी होता है तो मोक्षाभिमुखी व्यक्ति द्वारा किये गये धर्मशाला विद्यालय आदि मानवहित के कार्यो से भी आत्मोथान होता है। इसलिए उन्हे आध्यात्मिक धर्म मानने मे कोई भी आपत्ति नहीं है।

आलोचना मे जो 'मिच्छामि दुक्कड' दिया जाता है वह उक्त कार्यों मे होने वाले आरम्भ की अपेक्षा से दिया जाता है न कि उन कामो के पीछे रहे हुए मानव-हित या प्राणी हित के लिये। प्रतिक्रमण स्वाध्यायादि मे भी मिच्छामि दुक्कड दिया जाता है परन्तु वह दोष का होता है न कि गुणो का।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(4) इन कार्यों मे आध्यात्मिक धर्म नहीं लोक-धर्म है।

समीक्षा

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यो को 'लोक-धर्म कहते हैं। साधारण जनता समझती है कि 'लोक धर्म' का फल शुभरूप होता है परन्तु इन आचार्य और इनके सम्प्रदाय की दृष्टि मे लोक धर्म एकान्त पाप का कारण है। आचार्य तुलसी के पहले के आचार्य तो सार्वजनिक हितकार्यों में स्पष्ट रूप से पाप कहते थे परन्तु अब आचार्य तुलसी ने स्पष्ट रूप से पाप कहना तो बन्द किया और उसे लोक-धर्म का सुनहला नाम दिया । इस सुनहले आवरण के भीतर की वस्तु तो वही पुरानी ही है। अस्तु।

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यों को लोक धर्म कहते हैं और लोक-धर्म को पाप का कारण मानते हैं। यदि लोक धर्म, धर्म और पुण्य का कारण न होकर केवल पाप का ही कारण है तो लोक धर्म मे और दुष्कर्म मे क्या भेद है ? ज्ञान प्रचार के लिए पुस्तकालय खोलना भी पाप है और ज्ञान के साधन रूप पुस्तको को नष्ट करना भी पाप है। माता पिता आदि गुरुजनो की सेवा करना भी पाप है और उनको दु ख देना भी पाप है। राष्ट्र की सेवा करना भी पाप है और राष्ट्र-द्रोह करना भी पाप है। क्या अजीब-सी इनकी व्यवस्था है ! लोक धर्म को एकान्त पाप मानना जैन शास्त्रो से विपरीत है।

(5)

जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है या नहीं ? यदि वह क्रिया धर्म नहीं है तो (पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के तत्त्वावधान मे की गई) दूसरे सूत्रकृताग की हिन्दी टीका के पृष्ठ 152 पर 'जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है उसे धर्म कहते हैं। ऐसा क्यो लिखा गया ? यदि वह क्रिया धर्म है तो (पूज्य जवाहिरलालजी महाराजकृत) सद्धर्ममण्डन के पृष्ठ 134 पर 'शास्त्र मे साधु को दान देने से निर्जरा लिखी है और हीन-दीन जीवो को दान देने से पुण्यबध कहा है' ऐसा लिखकर पुण्य और निर्जरा (धर्म) की भिन्नता क्यो बताई ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(5) जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है किंतु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। धर्म के बिना भी पुण्य हो सकता है। अत सद्धर्ममडन और सूत्रकृताग मे दर्शित धर्म पुण्य में कोई विरोध नहीं है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

5 जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है।

समीक्षा

'जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है– आचार्य तुलसी का यह कथन असगत है। प्रथम प्रश्न के उत्तर की समीक्षा मे यह स्पष्ट दिखा दिया है कि पुण्य धर्म का अविनाभावी कार्य नहीं है। धर्म के बिना भी पुण्य हो सकता है जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है किन्तु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। सूत्रकृताग की हिन्दी टीका के पृ 152 पर जो लिखा है वह ठीक ही है।

'जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है उन्हें धर्म कहते हैं –इसका अर्थ यह है कि शैलेशी अवस्था को छोडकर अन्यत्र जहाँ भी धर्म है वहाँ पुण्य की उत्पत्ति अवश्य होती है। इसलिए जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है उन्हे धर्म कहते हैं यह कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ कहीं भी पुण्य होता है वहाँ धर्म होता ही है। जैसे जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ अग्नि होती है वहा धुआ

पुण्य और धर्म अलग-अलग हैं। धर्म के साथ (शैलेशी अवस्था के अपवाद को छोड़कर) पुण्य अवश्य होता है परन्तु पुण्य के साथ धर्म होता ही है–यह एकान्त नियम नहीं है। अत सद्धर्ममण्डन मे जो लिखा है वह भी सगत है और सूत्रकृताग मे जो लिखा है वह भी सगत है। दोनो मे कोई विरोध नहीं है।

धर्म और पुण्य मे कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है और अविनाभाव सम्बन्ध भी नहीं है। हाँ जहाँ धर्म होता है वहाँ शुभ योग होने से प्राय पुण्य होता है। परन्तु पुण्य के साथ धर्म होता भी है और नहीं भी होता है। यहाँ धर्म शब्द का अर्थ श्रुत-चारित्र रूप धर्म है।

(6)

हीन दीन दु खियो की सहायता की जाती है उन्हे अनुकम्पा दान दिया जाता है यह श्रुतधर्म है या चारित्रधर्म ? अथवा सवरधर्म है या निर्जराधर्म ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(6) दीन-हीन दुखियो की सहायता की जाती है उन्हे अनुकम्पा-दान दिया जाता है उसका फल कर्ता या दाता की भावनानुसार धर्म भी हो सकता है और पुण्य भी। सवर निर्जरा तत्व है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(6) उक्त प्रवृत्तियाँ उक्त धर्मो मे समाविष्ट नहीं होती किन्तु लौकिक धर्म हैं।

समीक्षा

'उक्त प्रवृत्तियाँ न श्रुतधर्म हैं न चारित्रधर्म न सवरधर्म हैं न निर्जरा धर्म –इसका अर्थ है कि ये प्रवृत्तियाँ पापमय हैं –ऐसा आचार्य तुलसी का अभिप्राय है। इस विषय में पहले पर्याप्त कहा जा चुका है। आचार्यश्री गणेशलालजी म ने यथार्थ कहा है कि दीन हीन दुखियों की सहायता की जाती है उन्हें अनुकम्पा-दान दिया जाता है उसका फल कर्ता या दाता की भावनानुसार धर्म भी हो सकता है और पुण्य भी हो सकता है।

समिति की ओर से प्रेषित प्रतिप्रश्न

(1)

पुण्य तथा पाप के लक्षण क्या हैं ? (शास्त्राधार से)

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रतिप्रश्नो के उत्तर

(1) पुण्य और पाप शब्दो का प्रयोग दो अर्थों मे किया जाता है। जब इन का प्रयोग कर्म-प्रकृतियों के साथ होता है तब अनुकूल प्रकृतियो को पुण्य कहा जाता है और प्रतिकूल प्रकृतियो को पाप। पुण्य प्रकृतियाँ 42 हैं और पाप प्रकृतियाँ 82 (प्रज्ञापना पृ 23)।

जब इनका प्रयोग क्रिया के साथ होता है तो आत्मा को अधोगति मे ले जाने वाली क्रिया पाप कही जाती है और शुभ गति के साथ-साथ आत्मशुद्धि की ओर ले जाने वाली क्रिया को पुण्य कहा जाता है।

जैनाचार्य श्री तुलसीजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रतिप्रश्नो के उत्तर

(1) सत्प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलो को पुण्य कहते हैं। असत्यप्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलों को पाप कहते हैं।

समीक्षा

समिति ने शास्त्राधार से पुण्य और पाप की स्पष्ट व्याख्या पूछी है ताकि उसके आधार से विवादास्पद विषयो का विचार किया जा सके। जैसे जीवरक्षा प्राणरक्षा करना पाप है या पुण्य ? यह विवादास्पद विषय है। तेरापन्थ सम्प्रदाय प्राणरक्षा करने मे एकान्त पाप कहता है। वह इसमे पुण्य होना नहीं मानता है जब कि स्थानकवासी सम्प्रदाय प्राणरक्षा को पुनीत कार्य समझ कर उसमे पुण्य होना मानता है। आचार्य तुलसी का यह उत्तर उस विषय का कुछ भी स्पष्ट निर्देश नहीं करता है। वे कहते हैं कि सत्प्रवृति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलो को पुण्य कहते हैं ? यह तो ठीक है परन्तु सत्प्रवृत्ति वे किसे मानते हैं ? मरते हुए जीव का

बचा कर उसे आर्त-रौद्र ध्यान से बचाना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? मोटर की झपट में आते हुए बालक को हाथ पकड़ कर बचा लेना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? गुण्डे के द्वारा धर्मभ्रष्ट की जाती हुई सती महिला को उसके शील की रक्षा के हेतु उसके पजे छुड़ाना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? प्यास के मारे मरते हुए जीव को निरवद्य उपायों से बचा लेना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? दीन-हीन प्राणियो को अनुकम्पा बुद्धि से दान देना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ?

तेरापन्थी सम्प्रदाय इन सब को असत्प्रवृत्ति मानता है तभी तो इन कार्यों मे वह एकान्त पाप की प्ररूपणा करता है। एकान्त पाप का फल नरकादि दुर्गति की प्राप्ति है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय उक्त कार्यों को सत्प्रवृत्ति मानता है। इन से पुण्य होना मानता है। पुण्य का फल स्वर्गादि की प्राप्ति है।

(2)

शुभ योग अशुभ योग और शुद्धोपयोग के क्या लक्षण हैं ? (शास्त्राधार से)

आ श्री गणेशलालजी म

(2) मन वचन और काया के जिस व्यापार से पुण्य-प्रकृतियों का बध हो तथा आत्मा उत्थान की ओर जाय उसे शुभ योग कहते हैं। जिस से पाप-प्रकृतियो का बध हो तथा आत्मा अधोगति की ओर जाय उसे अशुभ योग कहते हैं। योग की शुभाशुभता भावना पर ही आश्रित है। शुद्धोपयोग की चर्चा का इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध ज्ञान-चेतना के साथ है।

आ श्री तुलसीजी म

(2) शरीर-नाम कर्म के उदय वीर्यान्तराय कर्म के क्षय क्षयोपशम तथा मोहकर्म के उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाली आत्म-प्रवृत्ति को शुभ योग कहते हैं।

शरीर-नाम-कर्म के उदय वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा मोहकर्म के उदय से होने वाली आत्म प्रवृत्ति को अशुभ योग कहते हैं।

आगम में 'शुद्धोपयोग' नामक कोई पृथक तत्त्व नहीं बतलाया है। शुद्धोपयोग सत्प्रवृत्यात्मक माना जाय तब तो वह अबध हो ऐसा हो नहीं सकता क्योकि जहाँ सत्प्रवृत्ति होती है वहाँ पुण्य-बध अवश्य होता है। शुद्धोपयोग यदि अबध अवस्था है तो वह सवर का ही दूसरा नाम है।

समीक्षा

शुभ योग की व्याख्या मे आचार्य तुलसी ने शरीर-नाम कर्म के उदय वीर्यान्तराय कर्म के क्षय क्षयोपशम के साथ मोह-कर्म के उपशम क्षय क्षयोपशम को भी आवश्यक बताया है लेकिन यह व्याख्या शास्त्रो मे या टीकाओं म कहीं नहीं की गई है। योग की व्याख्या म सर्वत्र शरीर-नाम-कर्म का उदय और वीर्यान्तराय कर्म का क्षय क्षयोपशम ही आवश्यक कहा गया है जैसा कि ठाणाङ्ग सूत्र की टीका म कहा गया है -

वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितो जीवपरिणामविशेषो योग

तथा च -

मणसा वयसा काएण वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो।
जीवस्स अप्पणिज्जो स जो सन्नो जिणक्खाओ।।

शरीर-नाम-कर्म के उदय से द्रव्ययोग होता है और वीर्यान्तराय कर्म के क्षय क्षयोपशम से होने वाली शक्ति को भाव योग कहते हैं। योग की शुभता के लिए सम्यक्त्व होना ही चाहिए– ऐसी कोई बात नहीं है। मिथ्यात्व गुणस्थान में भी शुभ योग हो सकता है। शुभ योग के बिना पुण्य नहीं होता यह तेरापन्थी सम्प्रदाय मानता ही है। अभव्य जीव जिनके सदा मिथ्यात्व ही रहता है वे भी पुण्य बन्ध करते हैं जिसके कारण वे स्वर्ग म (नौ ग्रैवेयक तक) जा सकते हैं। अभव्य और मिथ्यात्वी का यह पुण्यबन्ध शुभ योग के बिना नहीं हो सकता। अत मिथ्यात्वी मे भी शुभ योग पाया जाता है। अत आचार्य तुलसी के द्वारा की गई यह व्याख्या ठीक नहीं है। क्योकि मिथ्यात्वी जीव के मोहकर्म का उपशम क्षय और क्षयोपशम आदि नहीं हो सकता है।

मिथ्यात्वी के मोहकर्म का क्षय क्षयोपशम या उपशम नहीं होता है तदपि उसमे शुभ योग पाया जाता है अत आचार्य तुलसी ने शुभ योग की जो व्याख्या की है वह गलत है। इसके लिए कोई शास्त्रीय आधार नहीं दिखाई देता।

योग की व्याख्या करते हुए तत्त्वार्थसूत्र मे कहा गया है

काय-वाङ्-मन कर्म योग। स आस्रव।
शुभ पुण्यस्य। अशुभ पापस्य।

अर्थात्- मन वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहते है। यह योग आस्रव है। शुभ योग पुण्य का कारण है और अशुभ योग पाप का कारण है।

इस पर से भी यह प्रतीत होता है कि पुण्य का कारण शुभ योग है। पुण्यबध तो मिथ्यात्वी जीव भी कर सकता है अत उसका कारण शुभ योग भी उसमे रहना चाहिए। जब मिथ्यात्वी मे भी शुभ योग हो सकता है तो आचार्य तुलसी ने शुभ योग की व्याख्या करते हुए 'मोहकर्म क उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाली आत्मप्रवृत्ति' कहा है यह कैसे सगत हो सकता है ?

आचार्य तुलसी समिति की ओर से अन्तिम पूरक प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वय लिखते हैं - 'किसी भी प्रवृत्ति मे अशुभ योग माना जाता है वह हिसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उसम हिसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है।

इसका अर्थ यह है कि मिथ्यात्वी जीव मे भी जो हिसा-बचाव आदि की भावना या प्रवृत्ति है वह शुभ योग है यह स्वय आचार्य तुलसी स्वीकार कर लते हैं। मिथ्यात्वी जीव भी सदा चौबीस ही घण्टे हिंसा तो करता ही नहीं है। जब-जब वह हिसा से बचता है तब तब उसमे शुभ योग हो सकता है। यह आचार्य तुलसी के इस कथन से सिद्ध होता है। इस प्रकार आचार्य तुलसी के इन उत्तरो में परस्पर विरोध है। एक जगह वे शुभ योग मे मिथ्यात्व का क्षय-क्षयोपशम-उपशम आवश्यक मानते हैं दूसरी जगह वे जहाँ कहीं भी हिंसा बचाव की भावना या प्रवृत्ति रहती है उसे शुभ योग मानते हैं। इस तरह मिथ्यात्वी मे भी शुभ योग सिद्ध होता है।

आचार्य तुलसी के वचनो से ही उनके द्वारा की गई शुभ योग की व्याख्या गलत सिद्ध होती है। प्रश्न में शास्त्राधार से उत्तर की माग की गई है। आचार्य तुलसी ने अपनी व्याख्या के लिए कोई शास्त्रीय आधार नहीं बताया है। सत्य तो यह है कि उसके लिए कोई शास्त्रीय आधार है ही नहीं।

(3)

क्या पुण्य तथा पाप का शुभ अथवा अशुभ योग के साथ कार्य कारण सम्बन्ध है ? यदि है तो किस प्रकार से ? अर्थात् कौन-कौन कारण हैं और कौन कौन कार्य हैं ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(3) साधारणतया अशुभ योग को पाप का कारण माना जाता है और शुभ योग को पुण्य का। किन्तु यह ऐकान्तिक नियम नहीं है। पुण्य के साथ पाप का और पाप के साथ पुण्य का भी बध होता है। उपरोक्त व्यवहार का कारण आधिक्य है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(3) पुण्य तथा पाप का शुभ अथवा अशुभ योग के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध है। शुभ-अशुभ योग कारण हैं और पुण्य-पाप कार्य। जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र मे लिखा है -

शुभ पुण्यस्य-अशुभ पापस्य।

समीक्षा

इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य तुलसी यह स्वीकार कर रहे हैं कि शुभ योग पुण्य का कारण है और अशुभ योग पाप का। शुभ योग पुण्य का कारण है तो मिथ्यात्व अवस्था में पुण्य होता है अत वहाँ भी शुभ योग होता है यह इससे सिद्ध होता है अत दूसरे प्रश्न के उत्तर मे उन्होने शुभ योग की व्याख्या मे मोहकर्म के क्षय-उपशम-क्षयोपशम की आवश्यकता बताई है वह निराधार है।

आचार्य तुलसी ने अशुभ योग की व्याख्या मे मोहकर्म का उदय कहा है। जहा मोहकर्म का उदय है वहाँ अशुभ योग होता है। मिथ्यात्वी जीव के सदा मोहकर्म का उदय रहता है तो वह नौ ग्रैवेयक तक कैसे जा सकता है ? अशुभ योग से तो नहीं जा सकता है। पुण्य के बल से ही वहाँ जा सकता है। और शुभ योग के बिना पुण्य नहीं होता है। अत मिथ्यात्वी में शुभ योग सिद्ध होता है। इसलिए आचार्य तुलसी की अशुभ योग की व्याख्या भी गलत है।

(4)

लोकदृष्टि तथा आध्यात्मिक दृष्टि की क्या परिभाषाएँ हैं ? क्या ये दृष्टियाँ पृथक हैं ? या परस्पर उनमे अपेक्षा अथवा सगति है तो क्या ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(4) सासारिक लोगो की दृष्टि को लौकिक दृष्टि कहते हैं। यदि उसमें लोक कल्याण की भावना है तो वह उपादेय है अन्यथा हेय। आत्म कल्याण की भावना को आध्यात्मिक दृष्टि कहा जाता है। शास्त्रीय पद्धति पर विचार किया जाय तो कल्याण के पथ में प्रवृत्ति होने पर दोनों दृष्टियों में कोई भेद नहीं है। उनमें कर्म निर्जरा का तारतम्य हो यह दूसरी बात है किन्तु मार्ग एक ही है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(4) ससार की व्यवस्था चलाने के लिये जो प्रवृत्ति होती है तद्विषयक दृष्टि लोक दृष्टि है। जिस प्रवृत्ति से आत्म-शुद्धि होती है - मोक्ष की आराधना होती है तद्विषयक दृष्टि अध्यात्म-दृष्टि है।

लोक-दृष्टिगत अहिसात्मक कार्य जब अध्यात्म-दृष्टि मे गिन लिये जाते हैं तब दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे से पृथक कही जाती हैं। किंतु जब उन कार्यो को लोक-दृष्टि मे गिनकर कथन किया जाय तब वहाँ-वहाँ दोनों दृष्टिया की सगति भी हो सकती है। अत इन दोनो दृष्टिया की सगति या असगति दोनो दृष्टिकोणो पर ही अवलम्बित हैं।

समीक्षा

आचार्य तुलसी ने इस उत्तर मे द्रोणाचार्य की तरह शब्द व्यूहरचना का प्रदर्शन किया है। जिस प्रकार द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को छिपाने के लिए विषम व्यूहरचना की थी इसी तरह अपने दया दान में पाप मानने के भीषण मतरूपी जयद्रथ को छिपाने के लिए आचार्य तुलसी ने शब्द व्यूह की रचना की है। अपना अभिप्राय स्पष्ट और विस्तृत समझाना चाहिए परन्तु शायद ऐसा करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल मालूम होता है। अस्तु !

प्रश्न मे लोक-दृष्टि और आध्यात्मिक दृष्टि की परिभाषाएँ पूछी गई हैं और साथ ही यह स्पष्ट पूछा गया है कि क्या ये दोनो दृष्टियाँ पृथक-पृथक हैं या इनमें परस्पर अपेक्षा या सगति भी है। है तो क्या ? आचार्य तुलसी ने दोनों दृष्टियो की अपनी परिभाषाएँ तो दे दी हैं लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया कि ये दोनों दृष्टियाँ परस्पर सापेक्ष हैं या नहीं ? इस प्रश्न को उन्होंने केवल शाब्दिक उलझन में डाल दिया है।

'लोक-दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य जब अध्यात्म दृष्टि में गिन लिये जाते हैं तब दोनों दृष्टियाँ एक-दूसरे से पृथक कहीं जाती हैं' —आचार्य तुलसी के इस कथन का अर्थ यह मालूम होता है कि मरते हुए जीव को दया लाकर बचाना दु खियों को दु ख से मुक्त करना दीन-हीन व्यक्तिया को दया लाकर सहायता पहुँचाना आदि लोक दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य हैं। इन्हें जब आध्यात्मिक दृष्टि मे गिन लेते हैं तब ये कहते हैं कि नहीं भाई लोक-दृष्टि और चीज है और आध्यात्मिक दृष्टि और चीज है ! इसका मतलब यही हुआ कि आचार्य तुलसी की दृष्टि म लोक-दृष्टि और अध्यात्म दृष्टि में पूर्व पश्चिम की तरह परस्पर विरोध है। इन दोनों में परस्पर कोई सगति या अपेक्षा नहीं हो सकती। उनकी दृष्टि में लोक दृष्टि पाप का कारण है और अध्यात्म दृष्टि पुण्य का कारण है। इसीलिए वे जीवरक्षा करने में दु खियों को

दु ख-मुक्त करन मे दीन-हीन की दया लाकर सहायता पहुँचाने मे पाप की प्ररूपणा करते हैं। वे कहते हैं कि ये लोक दृष्टि के कार्य हैं। उनके मत के अनुसार आध्यात्मिक दृष्टि के कार्य ही पुण्य के कार्य हैं और लोक-दृष्टि के कार्य पाप के कार्य हैं। अर्थ यह हुआ कि आध्यात्मिक दृष्टि और लोक-दृष्टि में वही अन्तर है जो विष और अमृत मे है। इन्होने लोक दृष्टि का अर्थ ही यह किया कि ससार की व्यवस्था चलाने के लिए जो प्रवृत्ति होती है तद्विषयक दृष्टि लोक-दृष्टि है। ससार की व्यवस्था चलाना उनके मत के अनुसार पाप का कारण है। ससार की व्यवस्था चलाना आध्यात्मिक कार्य नहीं है और जो आध्यात्मिक कार्य नहीं है उससे पुण्य नहीं हो सकता ऐसी उनकी मान्यता है। तात्पर्य यह हुआ कि उनके मत से लोक-दृष्टि पाप है और आत्मा के लिए विष-रूप है। वे स्वय कहते हैं कि लौकिक पुण्य मे और धार्मिक पुण्य मे इतना भेद है जितना आक दूध और गाय दूध मे है। खैर।

आचार्य तुलसी जिन अनुकम्पा रूप दया दान को लोक दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य कहते हैं वस्तुत वे केवल लोक दृष्टिगत ही नहीं हैं वल्कि आध्यात्मिक भी हैं। जैन सिद्धान्त का यह आदर्श सूत्र है

मिती में सव्वभूएसु वेर मज्झ न केणइ
(मेरी सव जीवा के साथ मैत्री है किसी के साथ द्वेष नहीं है।)

सव जीवो के साथ मैत्रीभाव रखने के लिए जैन धर्म का स्पष्ट सदेश है। क्या कोई सच्चा मित्र अपने दूसरे मित्र को दु खी देखकर चुपचाप रह सकता है ? यदि वह सामर्थ्य होते हुए चुपचाप उसके दु ख को देखता रहता है तो क्या वह उसका सच्चा मित्र है ? कदापि नहीं ! अत मरते हुए जीव को वचाना दूसरा के दु खो को दूर करने के लिए प्रयत्न करना मैत्री और अनुकम्पा (दया) का सूचक है। मैत्री और अनुकम्पा की भावना आत्मा की विशुद्धि करने वाली है। अत जीवरक्षा आदि के कार्य आध्यात्मिक भी हैं।

आगे चलकर आचार्य तुलसी कहते हैं कि किन्तु जव उन कार्यों को लोक-दृष्टि मे गिनकर कथन किया जाय तव वहाँ वहाँ दोना दृष्टियो की सगति भी हो सकती है। आचार्य तुलसी के इस वाक्य का क्या अर्थ है कुछ स्पष्ट नहीं होता। 'सगति' शब्द का अर्थ होता है साथ-साथ रह सकना या साथ साथ चल सकना। इसी आशय से प्रश्न भी किया गया है कि क्या लोक-दृष्टि और आध्यात्मिक दृष्टि साथ साथ रह सकती हैं ? क्या व एक दूसरे की अपेक्षा रखती हैं या सर्वथा पृथक हैं। लोक दृष्टि और अध्यात्म दृष्टि परस्पर भिन्न हैं यह तो वे पहले वता चुके हैं। यहाँ उन्होने उनकी सगति वताने की कोशिश की है लेकिन उनका प्रयोजन हल नहीं हो सकता है। आचार्य तुलसी 'वहाँ वहाँ दोना दृष्टियो की सगति भी हो

सकती है —यह कहकर यह प्रकट कर रहे हैं कि लोक-दृष्टि के क्षेत्र मे लोक-दृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि के क्षेत्र मे अध्यात्म दृष्टि सगत है। इसका अर्थ तो यही हुआ कि दोना दृष्टियाँ परस्पर पूर्व-पश्चिम की तरह विरोधिनी हैं। शीत उष्ण की तरह इन मे विरोध है। यह तो विसगति हुई सगति कैसे ? क्यो न आचार्य तुलसी ने स्पष्ट ही कह दिया कि 'दोनो दृष्टियों मे कोई सगति नहीं है। दोनो परस्पर विरोधिनी हैं। लोक-दृष्टि म पाप है। अध्यात्म-दृष्टि मे धर्म है पुण्य है। जीव-रक्षा दया दान लोक-दृष्टि मे हैं अत इन मे पाप है।

अपना यह स्पष्ट अभिप्राय आचार्य तुलसी ने कैसे गूढ शब्दो की ओट में छिपाया है यह स्पष्ट ही है।

'जीव-रक्षा करने मे पाप है' —अपनी इस भीषण मान्यता को छिपाने के लिए ही आचार्य तुलसी ने यह शब्द-व्यूह रचा है। जैसे द्रोणाचार्य निर्मित व्यूह मे छिपने पर भी किसी तरह अन्ततोगत्वा जयद्रथ को बाहर आना पड़ा और अर्जुन के गाण्डीव का शिकार बनना पड़ा। इसी तरह अन्ततोगत्वा आचार्य तुलसी का अभिप्राय तो किसी भी तरह प्रकट होगा ही और उसे सत्य सिद्धान्तो की युक्तियो से बाधित होना ही पड़ेगा।

(5)

क्या यह ठीक है कि उपदेश मे तात्पर्य मात्र वस्तु के स्वरूप प्रतिपादन से है एव कृत कारित और अनुमोदना आचरण के प्रकार हैं। अर्थात् जो जिस तत्त्व का प्रतिपादन करता है वह उस सम्बन्ध की क्रिया-विक्रिया आदि से अलिप्त ही रहता है ? तीर्थंकर अथवा शास्त्रकारों के उपदेशो मे सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। उनका समन्वय अन्यथा कैसे होगा ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(5) उपदेश से तात्पर्य स्वरूप-वस्तु का प्रतिपादन है। मुनि वस्तुस्वरूप का वर्णन करके हेय उपादेय और ज्ञेय का बोध कराता है। मुनि-दर्शन का उपदेश या समर्थन करके और शिष्य को आहारादि लाने की आज्ञा देकर साधु तज्जनित क्रिया का समर्थक नहीं बनता। महाव्रती साधु जब दानादि का उपदेश करता है तब उसकी भावना प्राणी-हित की ओर रहती है। दान से पूर्व होने वाली आरम्भादि क्रियाओ मे उसकी अनुमोदना नहीं होती। दान की भूमिका और है और आरम्भ की भूमिका और। दोनों को एक मानकर प्राणिहित की उपेक्षा करना अथवा साधु से इतर को दानादि द्वारा सहायता करने का त्याग कराना जैन संस्कृति की परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। जो लोग -

अव्रत में दान देवातणों कोई त्याग करे मन शुद्ध जी।
त्यारो पाप निरन्तर टालियो त्यारी वीर बखाणी बुद्ध जी।।

कहकर साधु से इतर जनो की अन्न-वस्त्रादि द्वारा होने वाली सहायता के मार्ग मे बाधक बनते हैं वे सूत्रकृताग सूत्र के 'जेय दाण पससति' पद के उत्तरार्द्ध 'जे य ण पडिसेहन्ति विति छेम करन्ति ते' अर्थात् जो दान का निषेध करते हैं वे वृत्ति - आजीविका का छेद करते हैं। क्या अव्रत मे दान न देने का उपेदश करने वाले तथा अव्रत-दान का त्याग कराने वाले जीवो की वृत्ति का छेद नहीं करते हैं ? भगवान् महावीर के जन-कल्याण के महान् आदर्श का अपलाप नहीं करते हैं ?

'जे य दाण पससन्ति वहमिच्छन्ति पाणिणो' का भावार्थ दान से होने वाले जनहित के सम्बन्ध मे मौन होना नहीं है अपितु उस से पूर्व दानशाला आदि बनाने मे होने वाली आरम्भिक क्रिया के सम्बन्ध में मौन रखने की ओर सकेत है।

यदि साधु से इतर को दान देने का निषेध करते समय आरम्भ को ही मुख्य रक्खा जाता है एव जनहित के मार्ग मे बाधाओ का पहाड़ खड़ा किया जाता है तो प्रश्न है कि कोई भी महाव्रती साधु मुनि-दर्शन के लिये न उपदेश दे सकता है और न समर्थन कर सकता है और न हर वर्ष दर्शन कराने का नियम ही दिला सकता है। क्योंकि मुनि-दर्शन के लिये उड़कर तो नहीं आया जा सकता ? रेल मोटर बैलगाड़ी आदि किसी साधन का उपयोग करना पडता है और उसमे आरम्भ होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। क्या इस दशा में मुनि-दर्शन की प्रेरणा देने वाले को गमनागमनादि क्रियाओ म होने वाले पाप का भागी होना पडता है ? क्या इस प्रकार के आरम्भ की भूमिका को लक्ष्य में लेकर मुनि-दर्शन की प्रेरणा से निवृत्त होने का कोई शास्त्रीय आधार उपस्थित है ? प्रस्तुत प्रसग पर से उत्तर मिलता है कि मुनि-दर्शन की क्रिया अलग है और रेल-मोटर से आने-जाने वाली क्रिया अलग। साधु की अनुमोदना मुनि-दर्शन मे है किन्तु उसके लिये होने वाले आरम्भ मे नहीं है। इसी प्रकार दानशालादि बनाने में होने वाले आरम्भ के लिये मुनि की अनुमोदना नहीं है। उसकी अनुमोदना केवल दानादि द्वारा होने वाले प्राणीहित मे है।

मुनि दर्शन और अनुकम्पा दान में पुण्य-पाप की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। यदि साधु मुनि दर्शन की बात कह सकता है तो अनुकपा-दान की बात भी कह सकता है। शास्त्र म आग लगाने वाले को महारभी और बुझाने वाले को अल्पारभी कहा गया है। तथा महारभ और अल्पारभ के कार्यों का वर्णन है। श्रावक महारभी कार्यों का त्यागी होता है और अल्पारभ के कार्य करता है। उपदेष्टा या शास्त्र अल्पारभी कार्यों के पाप के भागी नहीं हो सकता उसका

काम विवेक कराना है। जो जितना आचरण कर सके उतना अच्छा। अनासक्त वक्ता द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्व में आसक्त श्रोता फस भी सकता है और निवृत्त भी हो सकता है। इस म वक्ता का क्या दोप है वह तो वस्तुस्वरूप का वर्णन मात्र करता है।

हा यदि वर्णन करते समय वह स्वय उस मे फस जाय तब तो वह सच्चा उपदेष्टा नहीं रह जायगा। भले-बुरे का अल्पारभ के कामो का और महारभ के कामो का तथा पुण्य और पाप का विवेक कराना साधु का कर्तव्य है। यदि साधु या शास्त्र यह कार्य न करेंगे तो कौन करेगे ? एतावता विवेक कराने मात्र से तज्जनित क्रिया मे होने वाले सूक्ष्म पाप के भागी वे नहीं बन जाते। दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भारतीय परम्परा मे दोनों प्रकार की दृष्टियाँ मिलती हैं। मीमासक वेद-वाक्य को क्रियापरक मानते हैं और वेदान्ती वस्तुस्वरूपपरक। जैन दृष्टि वेदान्त से मिलती-जुलती है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी म

(5) उपदेश का तात्पर्य स्वरूप-प्रतिपादन से भी होता है और प्रेरणात्मक योगदान से भी।

स्वरूप-प्रतिपादन करने से तो वह उस सम्बन्ध की क्रिया से अलिप्त रहता है किन्तु उपदेश से यदि क्रिया की प्रेरणा दी जाती हो तो प्रेरक अलिप्त नहीं रह सकता।

तीर्थंकरो के उपदेश में स्वरूप प्रतिपादन तो प्रत्येक वस्तु का हो सकता है किन्तु असत् क्रिया की प्रेरणा नहीं होती अत समन्वय कैसे हो यह प्रश्न ही नहीं उठता।

समीक्षा

समिति ने यह प्रश्न इस अनुसन्धान में पूछा है कि तेरापन्थी आचार्य तुलसी ने श्वेताम्बर तेरापन्थ जैन समाज दिल्ली की ओर से प्रेषित प्रश्न न 3 का उत्तर देते हुए यह कहा है कि 'उक्त प्रवृत्तियाँ (धर्मशाला औषधालय अनाथालय आदि) हिसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिसा और परिग्रह कृत कारित-अनुमति से त्याज्य हैं इसलिए वे इस विषय का उपेदश नहीं कर सकते।

तेरापन्थी आचार्य का अभिप्राय यह है कि इस विषयक उपदेश देने से साधु को हिंसा और परिग्रह का अनुमोदन लगता है। इस का अर्थ यह हुआ कि ये उपदेष्टा को उपदेश विषयक क्रिया विक्रिया आदि से अलिप्त नहीं मानते। ऐसा मानने से तो जैसा कि समिति ने प्रश्न किया है - तीर्थंकर और शास्त्रकारों को अनुमोदन का पाप लगाना चाहिए क्योंकि इनके उपदेशों मे सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। तब तो ये कह देते हैं कि तीर्थंकरों के

उपदेश मे स्वरूप-प्रतिपादन होता है अत उन्हे अनुमोदना नहीं लगती है। इसी तरह साधु भी यदि केवल स्वरूप-प्रतिपादन करता है तो उसे तज्जन्य क्रिया-विक्रिया का अनुमोदन कैसे लग सकता है ?

आ श्री तुलसी भी यह मान रहे हैं कि उपदेश का तात्पर्य स्वरूप-प्रतिपादन से भी होता है और प्रेरणात्मक योगदान से भी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि साधु अनाथालय औषधालय धर्मशाला आदि मे रहे हुए प्राणिहित के स्वरूप का प्रतिपादन करता है तो वह ऐसा करता हुआ ऐसा उपदेश देता हुआ तज्जन्य क्रिया-विक्रिया से लिप्त नहीं होता अर्थात् उसे अनुमोदना का पाप नहीं लगता। हाँ यदि साधु स्वय उसम आसक्त हो जाय तो वह सच्चा उपदेष्टा ही नही रहता।

साधु के उपदेश का तात्पर्य प्रेरणात्मक योगदान से नहीं होता। जैसे किसी साधु ने किन्हीं अव्रती गृहस्थों को अणुव्रतो का उपेदश दिया। इसका अर्थ यह नहीं होता कि उस साधु को अणुव्रतो मे खुले रहे हुए सावद्य कर्मो का अनुमोदन भी लगा। यदि साधु के उपेदश का अर्थ प्रेरणात्मक योगदान लिया जाय तब तो गृहस्थ को अणुव्रत और दूसरे व्रत प्रत्याख्यान कराने पर साधु को उसके खुले रहे हुए सावद्यकर्मो का अनुमोदन भी लगेगा ही। इसलिए साधु के उपदेश का तात्पर्य केवल स्वरूप-प्रतिपादन होता है। अत वे अल्पारम्भ-महारम्भ पुण्य पाप के कार्यों का प्रतिपादन कर सकते हैं। साधु रोगी की सेवा करने का दु खियो को दु ख से मुक्त करने का अनाथो की रक्षा करने का इधर-उधर भटकते हुए को शाति देने का उपदेश दे सकता है। साधु को इन कार्यों के साधनों से प्रयोजन नहीं होता। वह तो प्राणिहित का समुच्चय रूप से उपदेश दे सकता है। जिस प्रकार साधु मुनि-दर्शन का उपेदश दे सकता है उसी तरह प्राणिहित के लिए भी उपेदश दे सकता हैं। मुनि-दर्शन के लिए भी रेल मोटर आदि साधन का उपयोग करना पड़ता है और उसमें आरम्भ होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। ऐसा होते हुए भी मुनि जैसे मुनि-दर्शन का उपेदश दे सकता है वैसे ही प्राणिहित के लिए भी उपदेश दिया जा सकता है। जैसे मुनि-दर्शन की क्रिया अलग है और यातायात में होने वाला आरम्भ है इसी तरह औषधालय धर्मशाला अनाथालय आदि में रहा हुआ प्राणिहित अलग है और उनमें होने वाला आरम्भ अलग है। मुनि दर्शन के उपदश देने वाले को जैसे यातायात के आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता वैसे ही औषधालय आदि में रहे हुए प्राणिहित के लिए उपेदश देने से तज्जन्य आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता है।

अत यह मानना चाहिए कि मुनि इन कार्यों में रहे हुए प्राणिहित का अनासक्त भाव से उपेदश दे सकता है।

उपेदशो मे सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। तब तो वे कह देते हैं कि तीर्थंकरो के (6)

धार्मिक पुण्य एव लौकिक पुण्य में क्या परस्पर विमुखता है ? यदि उनकी भूमिका में *कुछ समानता है तो वह क्या ?*

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(6) जैन शास्त्रो में धार्मिक पुण्य और लौकिक पुण्य नामक दो पुण्य हैं ही नहीं। कर्ता कोई भी क्रिया करता है चाहे वह धार्मिक हो चाहे लौकिक यदि उसका फल पुण्य होगा तो आत्मा के साथ पुण्य रूप कर्मवर्गणा का बध होगा। लौकिक पुण्य की कर्मवर्गणा अलग है और धार्मिक पुण्य की अलग ऐसा विभाजन जैन शास्त्रो में है ही नहीं। पुण्य एक ही प्रकार का होता है। शास्त्र-प्रसिद्ध 42 पुण्य प्रकृतियाँ धार्मिक और लौकिक दोनो प्रकार के मनुष्यो को बाधती हैं। यह नहीं कि साधु को एक प्रकार का पुण्य लगता है और श्रावक आदि को दूसरे प्रकार का। अत पुण्य का यह विभाजन केवल भ्रम मे डालने के लिये किया जाता है।

जो लोग दया दान में पाप मानते हैं किंतु उसको स्पष्ट रूप मे कहने का साहस नहीं *कर सकते और प्रतिकूल जनमत से डरते हैं वे ही जनहित में होने वाले वास्तविक पुण्य को* अन्दर मे पाप मानते हुए भी बाहर से उसके लिये लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग करते हैं। वे लौकिक पुण्य मे और धार्मिक पुण्य मे इतना भेद मानते हैं जितना आक-दूध और गाय दूध में है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है *कि उनके मत मे लौकिक पुण्य पाप का ही दूसरा नाम है।*

जिस प्रकार आक का दूध पीने से प्राण चले जाते हैं उसी प्रकार सावद्य अनुकम्पा करने से पापकर्म का बध होता है। सावद्य अनुकम्पा का स्वरूप बताते हुए वे लिखते हैं - श्रीकृष्ण भगवान् नेमीनाथ को वन्दन करने के लिये जा रहे थे। मार्ग में एक अति वृद्ध और अशक्त मनुष्य को ईंटे ढोते हुए देखा। उसे सहायता देने के लिये उन्होने भी एक ईंट उठाई। देखा-देखी उनके सेवकों ने भी वैसा ही किया और वृद्ध की सारी ईंटें घर पहुँच गयीं। श्रीकृष्ण का यह कार्य सावद्य अनुकम्पा है।

आक दूध पीता थका जुदा होवे जीव काय।
त्यो सावद्य अनुकम्पा किया पापकर्म बधाय।।

कृष्णजी नेमी वदन ने जाता एक पुरुष ने दुखियो जाणी।
सहाय दियो अनुकपा कीधी एक ईंट उठाए उनके घर आणी।।
या अनुकपा सावध जाणो।।51।।

(तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक भिक्खुजीकृत अनुकम्पा ढाल)

परन्तु जैन शास्त्र उपर्युक्त सेवाकार्य को पुण्य मानता है पाप नहीं। उसकी दृष्टि मे वह आक-दूध न होकर गाय का दूध है। यहाँ पर कुछ लोग एक तर्क उठाते हैं कि यह सेवा शरीर-पोषण रूप है आत्म-पोषण रूप नहीं। किंतु जैन शास्त्रानुसार इस प्रकार के रक्षारूप सेवा-कार्य का अर्थ केवल शरीर-पोषण नहीं अपितु शारीरिक दु ख मिटाने के साथ उस पीडित आत्मा के आर्त-रौद्र ध्यान को हटाकर उसकी आध्यात्मिक सेवा करना भी है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(6) पुण्य पौद्गलिक बन्धन है। वह न तो धार्मिक होता है न लौकिक। धार्मिक या लौकिक क्रिया होती है। लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य मे परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी। अहिसात्मकता ही दोनो की समानता का कारण है।

समीक्षा

'लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य म परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी – यह भी आचार्य तुलसी का अस्पष्ट उत्तर है। उन्हे यह बताना चाहिये था कि अमुक-अमुक रूप मे तो इन दोनो मे विमुखता होती है और अमुक अवस्था मे विमुखता नहीं भी होती है।

प्रश्न का उत्तर इस ढग से देना चाहिये ताकि उसका साफ साफ स्पष्टीकरण हो जाय। लेकिन स्पष्ट उत्तर न देना ही शायद आचार्य तुलसी की लाक्षणिक विशेषता प्रतीत होती है इसलिये उन्होने किसी भी प्रश्न का उत्तर साफ-साफ शब्दो मे नहीं दिया।

आचार्य तुलसी के सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि पुण्य धार्मिक कार्यों से ही होता है लौकिक कार्यों से तो पाप ही होता है। फिर भी आचार्य तुलसी ने औषधालय विद्यालय अनाथालय आदि को लौकिक पुण्य कार्य कहा है। उन्होने स्थानकवासी सघ के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि प्राणी को बचाने के लिए जो-कुछ किया जाता है वह लोक धर्म है अत यह आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाले पुण्य का कारण नहीं लौकिक पुण्यकार्य है।

आचार्य तुलसी से यह पूछना है कि उन्होंने प्राणी की रक्षा को लौकिक पुण्य कार्य कैसे माना है ? जबकि उनकी मान्यतानुसार प्राणरक्षा म पुण्य नहीं होता तब वे उस लौकिक पुण्यकार्य भी कैसे कह सकते हैं ? लोक तो इन क्रियाओ में पुण्यबन्ध होना मानता है इसलिए वह इन्हे पुण्यकार्य कह सकता है। परन्तु वे तो इस में पाप मानते हैं तो वे लौकिक पुण्यकार्य क्योंकर कह सकते हैं ? उनकी मान्यता के अनुसार लौकिक पुण्यकार्य पाप के कारण है।

उपेदशो मे सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। तब तो वे कह देते हैं कि तीर्थंकरो के (6)

धार्मिक पुण्य एव लौकिक पुण्य में क्या परस्पर विमुखता है ? यदि उनकी भूमिका में कुछ समानता है तो वह क्या ?

आ श्री गणेशलालजी महाराज

(6) जैन शास्त्रो मे धार्मिक पुण्य और लौकिक पुण्य नामक दो पुण्य हैं ही नहीं। कर्ता कोई भी क्रिया करता है चाहे वह धार्मिक हो चाहे लौकिक यदि उसका फल पुण्य होगा तो आत्मा के साथ पुण्य रूप कर्मवर्गणा का बध होगा। लौकिक पुण्य की कर्मवर्गणा अलग है और धार्मिक पुण्य की अलग ऐसा विभाजन जैन शास्त्रो मे है ही नहीं। पुण्य एक ही प्रकार का होता है। शास्त्र-प्रसिद्ध 42 पुण्य प्रकृतियाँ धार्मिक और लौकिक दोनो प्रकार के मनुष्यो को बाधती हैं। यह नहीं कि साधु को एक प्रकार का पुण्य लगता है और श्रावक आदि को दूसरे प्रकार का। अत पुण्य का यह विभाजन केवल भ्रम मे डालने के लिये किया जाता है।

जो लोग दया-दान मे पाप मानते हैं किंतु उसको स्पष्ट रूप मे कहने का साहस नहीं कर सकते और प्रतिकूल जनमत से डरते हैं वे ही जनहित मे होने वाले वास्तविक पुण्य को अन्दर में पाप मानते हुए भी बाहर से उसके लिये लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग करते हैं। वे लौकिक पुण्य में और धार्मिक पुण्य मे इतना भेद मानते हैं जितना आक-दूध और गाय दूध मे है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मत मे लौकिक पुण्य पाप का ही दूसरा नाम है।

जिस प्रकार आक का दूध पीने से प्राण चले जाते हैं उसी प्रकार सावद्य अनुकम्पा करने से पापकर्म का बध होता है। सावद्य अनुकम्पा का स्वरूप बताते हुए ये लिखते हैं - श्रीकृष्ण भगवान् नेमीनाथ को वन्दन करने के लिये जा रहे थे। मार्ग में एक अति वृद्ध और अशक्त मनुष्य को ईंटें ढोते हुए देखा। उसे सहायता देने के लिये उन्होंने भी एक ईंट उठाई। देखा-देखी उनके सेवकों ने भी वैसा ही किया और वृद्ध की सारी ईंटे घर पहुँच गयीं। श्रीकृष्ण का यह कार्य सावद्य अनुकम्पा है।

आक दूध पीता थका जुदा होवे जीव काय।
त्यो सावद्य अनुकम्पा किया पापकर्म बधाय।।

कृष्णजी नेमी वदन ने जाता एक पुरुष ने दुखियो जाणी।
सहाय दियो अनुकपा कीधी एक ईंट उठाए उनके घर आणी।।
या अनुकपा सावध जाणो।।51।।

(तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक भिक्खुजीकृत अनुकम्पा ढाल)

परन्तु जैन शास्त्र उपर्युक्त सेवाकार्य को पुण्य मानता है पाप नहीं। उसकी दृष्टि म वह आक-दूध न होकर गाय का दूध है। यहाँ पर कुछ लोग एक तर्क उठाते हैं कि यह सेवा शरीर-पोषण रूप है आत्म पोषण रूप नहीं। किंतु जैन शास्त्रानुसार इस प्रकार के रक्षारूप सेवा-कार्य का अर्थ केवल शरीर-पोषण नहीं अपितु शारीरिक दुख मिटाने के साथ उस पीड़ित आत्मा के आर्त-रौद्र ध्यान को हटाकर उसकी आध्यात्मिक सेवा करना भी है।

आ श्री तुलसीरामजी महाराज

(6) पुण्य पौद्‌गलिक बन्धन है। वह न तो धार्मिक होता है न लौकिक। धार्मिक या लौकिक क्रिया होती है। लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य में परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी। अहिंसात्मकता ही दोनो की समानता का कारण है।

समीक्षा

'लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य मे परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी' – यह भी आचार्य तुलसी का अस्पष्ट उत्तर है। उन्हे यह बताना चाहिये था कि अमुक-अमुक रूप मे तो इन दोनो में विमुखता होती है और अमुक अवस्था मे विमुखता नहीं भी होती है।

प्रश्न का उत्तर इस ढग से देना चाहिये ताकि उसका साफ साफ स्पष्टीकरण हो जाय। लेकिन स्पष्ट उत्तर न देना ही शायद आचार्य तुलसी की लाक्षणिक विशेषता प्रतीत होती है इसलिये उन्होने किसी भी प्रश्न का उत्तर साफ-साफ शब्दों में नहीं दिया।

आचार्य तुलसी के सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि पुण्य धार्मिक कार्यों से ही होता है लौकिक कार्यों से तो पाप ही होता है। फिर भी आचार्य तुलसी ने औषधालय विद्यालय अनाथालय आदि को लौकिक पुण्य-कार्य कहा है। उन्होने स्थानकवासी सघ के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि प्राणी को बचाने के लिए जो-कुछ किया जाता है वह लोक धर्म है अत यह आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाले पुण्य का कारण नहीं लौकिक पुण्यकार्य है।

आचार्य तुलसी से यह पूछना है कि उन्होंने प्राणी की रक्षा को लौकिक पुण्य कार्य कैसे माना है ? जबकि उनकी मान्यतानुसार प्राणरक्षा में पुण्य नहीं होता तब वे उसे लौकिक पुण्यकार्य भी कैसे कह सकते हैं ? लोक तो इन क्रियाओं में पुण्यबन्ध होना मानता है इसलिए वह इन्हे पुण्यकार्य कह सकता है। परन्तु वे तो इस में पाप मानते हैं तो वे लौकिक पुण्यकार्य क्योंकर कह सकते हैं ? उनकी मान्यता के अनुसार लौकिक पुण्यकार्य पाप के कारण हैं।

एक व्यक्ति प्राणी का घात करता है वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति प्राणी को बचाता है वह भी लौकिक कार्य करता है अर्थात् वह पाप का कार्य करता है।

एक व्यक्ति गरीबो का शोषण करता है वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति गरीबों का पोषण करता है वह भी पाप करता है। एक व्यक्ति दुःखी जीवों को दुःख देता है वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति दुःखी जीवों को दुःख से छुड़ाता है वह भी पाप करता है। *यह है आचार्य तुलसी की विचित्र पाप-व्यवस्था।*

(7)

धर्म क्या स्थितिबद्ध है ? फिर गति या विकास से उसका क्या सम्बन्ध है ?

आ. श्री गणेशलालजी म.

(7) सातवाँ प्रश्न स्पष्ट है। यदि स्थिति शब्द से अस्तित्त्व लिया जाता है तो उसका परिवर्तन के साथ कोई विरोध नहीं है। जैन दृष्टि के अनुसार उसी को सत् माना जाता है जिस मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनो तत्त्व विद्यमान् हैं।

यदि स्थिति का अर्थ मर्यादा है तो धर्म की कुछ मर्यादाए त्रैकालिक और शाश्वत हैं और कुछ देश-कालादि की दृष्टि से परिवर्तनशील हैं।

आचार्यश्री तुलसीरामजी म.

(7) धर्म अपने-आप मे पूर्ण है, गति और विकास अपूर्ण, सापेक्ष हैं। धर्म मे गति या विकास कहा जाता है वह धार्मिकों की अपेक्षा से अथवा यो भी कहा जा सकता है कि धर्म के मौलिक नियम स्थितिबद्ध हैं और औपचारिक नियमो मे गति और विकास भी।

(8)

धर्म और कर्म को क्या परस्पर की अपेक्षा है ? है तो किस रूप में।

आ. श्री गणेशलालजी म.

(8) धर्म का अर्थ है मोक्षमार्ग। इसकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। किन्तु इस स्तर तक पहुँचने के लिये सत्कर्म (शुभ क्रियाए) भी उपयोगी हैं इसलिये उपादेय भी हैं जब तक कि अन्तिम ध्येय तक न पहुँचा जाय।

इस विषय मे साधु और श्रावक का भेद नहीं है। जिस प्रकार साधु की शुभ क्रियाएं मोक्ष

के लिये उपकारक हैं उसी प्रकार गृहस्थ की शुभ क्रियाए भी। अतएव शुभ भावना से की जाने वाली - अनुकपा-दान माता-पिता की सेवा रोगी की परिचर्या भूखे को भोजन व्रत-पालन आदि श्रावक की शुभ क्रियाएँ भी धर्म का अग हैं। इस प्रकार जैन दर्शन धर्म और सत्कर्म म किसी प्रकार का विरोध एव असगति नहीं मानता अपितु जीवन-यात्रा में एक-दूसरे को परस्पर पूरक एव पोषक मानता है।

आ श्री तुलसीरामजी म

(8) धर्म और कर्म (क्रिया) परस्पर क्वचित् सापेक्ष क्वचित् निरपेक्ष हैं। धर्म सत्प्रवृत्त्यात्मक कर्म-सापेक्ष है और कर्म अपनी विशुद्धता के लिये धर्म-सापेक्ष है।

समीक्षा

'धर्म सत्प्रवृत्त्यात्मक कर्म सापेक्ष है और कर्म अपनी विशुद्धता के लिए धर्म सापेक्ष है' मगर सत्प्रवृत्त्यात्मक कर्म किसे कहना चाहिए इसी मे तो विवाद है। आचार्यश्री तुलसी माता-पिता की सेवा और एक गृहस्थ की दूसरे गृहस्थ द्वारा सहायता आदि रूप प्रवृत्ति को सत्प्रवृत्ति नहीं मानते। भौतिक साधनो से जो सहायता की जाती है उसे आचार्यश्री तुलसी असत्प्रवृत्ति मानते हैं। साधु द्वारा जो जो क्रियाए की जाती हैं उन्हें सत्प्रवृत्ति मानते हैं। किन्तु गृहस्थ द्वारा की जाने वाली रक्षा सहायतादि रचनात्मक प्रवृत्तियो को असत् मान कर उनका फल पापरूप मानते हैं।

समिति की ओर से अन्तिम पूरक प्रश्न

1 औषधालय विद्यालय और अनाथालय खोलना या सचालन करना तथा आग लगे मकान या बाड़े के द्वार खोलकर अनुकम्पा बुद्धि से मनुष्य गाय आदि प्राणियों की रक्षा करना आदि कार्यों के द्वारा होने वाला लौकिक धर्म शुभ योग है या अशुभ योग ?

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज का पूरक प्रश्न का उत्तर

आपके प्रश्न मे प्रयुक्त किया गया 'लौकिक धर्म शब्द कुछ भ्रामक सा है। यदि इसका अर्थ वही है जिसे तेरापथ मानता है तो हम इन क्रियाओ के लिये इस शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहते। तेरापन्थ के अनुसार लौकिक धर्म एकान्त पाप का कारण है। यदि उस शब्द को अलग रखकर पूछा जाता है तो हमारा उत्तर है कि अनुकम्पा-भाव से किये गये उपरोक्त कार्य शुभ योग हैं। हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि पुण्य और पाप प्रकृतियों का एकान्त बध नहीं होता (देखिये हमारे उत्तर न 2-3)। शुभ और अशुभ का व्यवहार पुण्य और पाप की अधिकता के कारण समझना चाहिए। इति।

जैनाचार्य श्री तुलसीरामजी महाराज का पूरक प्रश्न का उत्तर

आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार माना जाता है कि जहाँ-कहीं भी आरम्भ हिंसा आदि प्रवृत्तियाँ हैं वे शुभ योग नहीं होतीं किंतु हाँ प्रत्येक अशुभ योग की प्रवृत्ति मे भी प्रसगोपात्त शुभ योग हो सकता है। किसी भी प्रवृत्ति मे अशुभ योग माना जाता है यह हिंसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उस में हिंसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है। जहाँ व्यवहार का प्रश्न होता है समाज की सुख सुविधा की अपेक्षा होती है वहाँ मानदण्ड होता है सामाजिक दृष्टिकोण। उसमें शुभ योग अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। फिर भी यदि शाब्दिक अर्थ लें जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति तो व्यवहार की भूमिका में ये सब शुभ योग माने जा सकते हैं।

(श्री मोहनलाल कठोतिया द्वारा प्राप्त)

पूरक प्रश्न की समीक्षा

आ श्री तुलसी ने कहा है कि किसी भी प्रवृत्ति म अशुभ योग माना जाता है वह हिसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उसमे हिसा-वचाव आदि की जितनी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है।

इस कथन के द्वारा आचार्य तुलसी यह स्वीकार कर लेते हैं कि औपधालय विद्यालय अनाथालय खोलने या चलाने मे और जीव को वचाने मे जो आरम्भ होता है वह अशुभ याग है और उसमे हिसा का वचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है। जव इन कार्यो मे शुभ योग मान लिया जाता है तो इन कार्यो मे पुण्य होता है यह स्वत सिद्ध हो जाता है क्याकि जहाँ शुभ योग है वहाँ पुण्य का वन्ध होता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय भी इन कार्यों मे जो आरम्भ होता है उसे आरम्भ और पाप का कारण मानता है परन्तु इन से जो मानव हित होता है उसे पुण्य का कारण मानता है। तेरापन्थी आचार्य तुलसी ने भी इन कार्यों म होने वाली आरम्भातिरिक्त प्रवृत्ति को शुभ योग स्वीकार कर लिया है। शुभ योग का अर्थ है पुण्य का कारण। अत आचार्य तुलसी के वचना से ही यह सिद्ध हो जाता है कि अनाथालय विद्यालय औपधालय प्राण-रक्षा आदि कार्य पुण्यवन्ध के कारण हैं।

जिस प्रकार मुनि-दर्शन शुभ योग है और उसमे होने वाला यातायात का आरम्भ अशुभ योग है इसी तरह अनाथालय विद्यालय प्राणिरक्षा आदि कार्यो मे होन वाला आरम्भ अशुभ योग है और आरम्भातिरिक्त हित-प्रवृत्ति शुभ योग ह। वह पुण्य का कारण है।

आचार्य तुलसी कहते हैं कि 'जहाँ व्यवहार का प्रश्न है वहाँ मानदण्ड होता है सामाजिक दृष्टिकोण। उसमे शुभ योग अशुभ योग जैसी व्यवस्था नहीं है। आचार्य तुलसी का यह कथन जैन शास्त्रो से सर्वथा प्रतिकूल है क्याकि जैन सिद्धान्त यह मानता है कि जब तक अयागी अवस्था प्राप्त नहीं होती तव तक चाहे व्यवहार की क्रिया हो चाहे धार्मिक क्रिया हो वह या तो शुभ योग स होती है या अशुभ योग से होती है। इसके अतिरिक्त तीसरा विकल्प हो नहीं सकता। अत 'शुभ योग अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है' — यह कहना जैन सिद्धान्त स अनभिज्ञता प्रकट करना है।

आगे चलकर वे कहते हैं - 'यदि शाब्दिक अर्थ ल जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति तो व्यवहार की भूमिका मे ये सव शुभ योग माने जा सकते हैं'। इस कथन मे आचार्य तुलसी ने औपधालय विद्यालय प्राण-रक्षा आदि को अच्छी प्रवृत्ति - सत्प्रवृत्ति मान लिया है। और समिति के प्रतिप्रश्न न 1 का उत्तर देते हुए उन्होंने 'सत्प्रवृत्ति से आकृष्ट कर्मपुद्गलों को

पुण्य कहते हैं —यह पुण्य की व्याख्या की है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि विद्याल औषधालय प्राण-रक्षा आदि सत्प्रवृत्ति रूप होने से पुण्य के कारण हैं।

आचार्य तुलसी व्यवहार की भूमिका म इन औषधालयादि प्रवृत्तिया को शुभ योग मा लते हैं। बडी प्रसन्नता की बात है कि आचार्य तुलसी ने अपने पूर्वाचार्यों की मान्यता विपरीत जाकर भी इस सत्य को स्वीकार कर लिया है।

जैन सिद्धान्त निश्चय और व्यवहार को परस्पर सापक्ष मानता है। वह व्यवहार व मिथ्या नहीं कहता है। इसीलिए व्यवहार को असत्य से पृथक माना है। जैसे सत्य मनोयोग असत्य मनोयोग मिश्र मनोयोग और व्यवहार मनोयोग सत्य भाषा असत्य भाषा मिश्र भाष और व्यवहार भाषा आदि से स्पष्ट है कि व्यवहार मिथ्या नहीं है।

यदि वास्तविक दृष्टि से विचार करें तो लौकिक और धार्मिक दोना तरह की प्रवृत्ति क आधार व्यवहार-दृष्टि से ही है। निश्चय-दृष्टि से तो आत्मा अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति और अनन्त सुखरूप है। वह निरञ्जन और निर्विकल्प है। वह अयोगी है। वह न पुण्य करता है और न पाप करता है। यह जो पुण्य पाप योग आदि की प्रवृत्ति है वह सब व्यावहारिक ही है। साधु, साध्वी श्रावक श्राविका आदि तीर्थ भी व्यवहार ही है। व्यवहार की भूमिका मे ही सही आचार्य तुलसी ने औषधालय विद्यालय अनाथालय और प्राणरक्षा को शुभ योग म मानकर सत्य को अपनाया है। इसके लिए उन्हे धन्यवाद है।

स्पष्ट रूप मे न सही अस्पष्ट रूप म ही प्रत्यक्ष म न सही परोक्ष मे ही मन मे न सही शब्दो म आचार्य तुलसी ने अपनी परम्परागत मान्यता में सशोधन किया है यह स्थानकवासी सिद्धान्तो की विजय है। काश! आचार्यश्री तुलसी स्पष्ट रूप मे इस सत्य को स्वीकार करें।

समीक्षक प बसतीलाल न व्याकरणतीर्थ

पूरक प्रश्न की समीक्षा

(समीक्षा-प पूर्णचन्द्र दक)

पूरक प्रश्न के उत्तर पर थोडा और विचार किया जाता है। जैन सयोजना समिति के विद्वान् और विचारक सदस्य प श्री राजेन्द्रकुमारजी ने पूर्ण स्पष्टीकरण के अभिप्राय से अन्तिम पूरक प्रश्न पूछा है। समिति के कार्यमन्त्री श्री अजयकुमार ने भूमिका मे इस बात का जिक्र किया है। प राजेन्द्रकुमारजी जैन धर्म के मर्मज्ञ तथा शास्त्रार्थ या चर्चा करने में बड़े कुशल हैं। प जी ने आर्यसमाजियों के साथ शास्त्रार्थ करके उनका परास्त किया है। पण्डितजी इस बात का अन्तिम और स्पष्ट उत्तर प्राप्त करना चाहते थे कि लौकिक कार्यों का फल पुण्य रूप होता है या पाप रूप। इसी आशय से बड़ी बुद्धिमानीपूर्वक इस प्रश्न की रचना की गई थी।

यह प्रश्न और इसका उत्तर खास महत्त्व रखते हैं। किसी भी चर्चा मे अन्तिम प्रश्न का बडा महत्त्व होता है। और उससे भी अधिक उसके उत्तर का। यदि आचार्यश्री गणेशलालजी म तथा आचार्यश्री तुलसी के बीच दया-दान को लेकर शास्त्रार्थ होता और उसमें जय पराजय का निर्णय देने का प्रसग उपस्थित होता तो अन्तिम उत्तर का कितना महत्त्व होता!

जय-पराजय की भावना को मन मे स्थान न देकर केवल सत्य-असत्य का निर्णय करने की भावना से भी अन्तिम पूरक प्रश्न के उत्तर का बडा महत्त्व है। प्रश्नोत्तर का सिलसिला इसलिए प्रारम्भ किया गया था कि जनता इस बात का निर्णय कर सके कि दया और दान के सम्बन्ध म आचार्यश्री गणेशलालजी म तथा आचार्यश्री तुलसी के क्या विचार हैं।

समिति के मान्य सदस्यो ने भी इस बात का प्राक्कथन मे इस प्रकार जिक्र किया है

'जैन सिद्धान्त के प्रतिपादन मे विशेषकर दया दान सम्बन्धी मान्यताओ पर बीच मे (दोनो आचार्यों के बीच) कुछ उलझन और असन्तोष भी है। वह पत्रा और पर्चो मे भी सामने आया और किंचित् क्षोभ का भी कारण बना। फलत समिति का निर्माण हुआ जो एक दूसरे की शकाओ को लेकर उभयपक्षो (उभयपक्ष के आचार्यो से उत्तर प्राप्त कर) से उनके मन्तव्य प्राप्त करे और यदि आवश्यक हो तो अपनी ओर से प्रतिप्रश्ना का निर्माण करके विवादस्थ विषय को और भी स्पष्ट करले।

आठ प्रतिप्रश्नो के पश्चात् पूरक प्रश्न इसलिए आवश्यक हो गया कि दया दान के सम्बन्ध मे पुण्य-पाप फल की मान्यता आचार्यश्री तुलसी के उत्तरो में स्पष्ट नहीं हुई। इस अतिम प्रश्न की रचना ही यह बताती है कि वह आचार्यश्री तुलसी से सम्बन्ध रखता है। किन्तु इसका भी उत्तर आचार्यश्री तुलसी ने कितने छल स दिया है यह स्पष्ट है। इस उत्तर को श्री जैनेन्द्रकुमारजी तक न समझ पाय और उन्होने यह मान लिया कि आचार्यश्री तुलसी विवादग्रस्त कार्यो का फल एकान्त पाप रूप नहीं मानते। उनम कुछ पुण्य मानते हैं। किन्तु हमारी श्री जैनेन्द्रकुमारजी से सविनय प्रार्थना है कि वे बारीकी से तेरापथ की मान्यता का अध्ययन करेगे तो उन्हे असलियत का पता लग जायगा। रक्षा और सहायता के कामा म तेरापथी न तो शुभ योग मानते हैं और न पुण्य।

इस प्रश्न का सीधा उत्तर 'शुभयोग है अथवा अशुभ योग है' इन दोनों म से किसी एक विकल्प से देना चाहिए था जैसा कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने 'हमारा उत्तर है कि अनुकपा भाव से किये गये उपरोक्त कार्य शुभ योग हैं दिया है।

आचार्यश्री तुलसी ने इन शब्दो म उत्तर दिया है— आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार माना जाता है कि जहाँ कहीं भी आरभ हिसा आदि प्रवृत्तिया हैं वे शुभ योग नहीं होते, तथा किसी भी प्रवृत्ति में अशुभ योग माना जाता है यह हिसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है।

उसमे हिसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है। इस शब्द-रचना से जो भावार्थ निकल सकता है उसके अनुसार तो ऊपर समीक्षा की जा चुकी है।

किन्तु इस शब्द-रचना के अतर म अनन्त आवरणो के भीतर जो बात छिपी हुई है वह प्रकट की जाती है।

तेरापथ की अहिसा का अर्थ है अपने-आप को पाप से बचाना। तेरापथी किसी जीव को अपनी ओर से नही मारता है सो अपना पाप टालने के लिए न कि सामने वाले जीव की रक्षा के लिए। सामने वाले जीव की रक्षा करना अहिसा नहीं किन्तु इनके मत से हिंसा है। सामने वाला जीव असयती है। असयती की रक्षा से असयम का पोषण होता है। असयम हिसा ही है। रक्षा का अर्थ अपनी ओर से किसी जीव को न मारना है। किसी मरते जीव को बचाना रक्षा नहीं हिसा है। किसी जीव को बचाने की भावना करने मे भी तीसरे करण (अनुमोदन) मे हिसा लगती है। जीव बचाने की चेष्टा म तो प्रत्यक्ष हिसा लगना मानते हैं। इनकी मान्यता का साराश यह है कि निज से किसी को न मारना अहिसा है। न मारने से अपने-आप ही जीव बच जाते हैं। बचाने की भावना से जीवरक्षा करने पर असयम के पोषण मे अनुमोदन व योगदान हो जाता है और जिसको बचाया जाता है उनके प्रति रागभाव भी आ जाता है। राग भी बधन है। और इतना चिक्कना बधन है कि द्वेष से भी अधिक घातक फल देने वाला है।

इस मूलभूत बात को ध्यान म रखकर अब इनके 'उसमें हिसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है' वाक्य पर मनन कीजिये।

साधारण विचारक यही सोच सकता है कि औषधालय विद्यालय और अनाथालय खोलना या सचालन करना तथा आग लगे मकान या बाडे के द्वार खोलकर अनुकपा बुद्धि से मनुष्य गाय आदि प्राणियो की रक्षा करना रूप कार्य के लिए जो भावना या प्रवृत्ति की जाती है उसी को लक्ष्य करके आचार्यश्री तुलसी ने 'उसम हिसा बचाव आदि की जितनी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है' वाक्य का प्रयोग किया होगा। किन्तु वस्तुत यह बात नहीं है। अनुकपा-बुद्धि से मनुष्य गाय आदि प्राणियों की रक्षा करन की भावना या प्रवृत्ति करना तेरापथ की मान्यता के वि[illegible]। कारण कि म[illegible] गाय आदि असयमी हैं।

तब यह प्रश्न उठता है कि आ[illegible] तुलसी [illegible] का प्रयोग किया है उसका कोई हेतु तो होना चाहिये। [illegible]दि की [illegible] बताया है वह किस दृष्टि से है ?

अपना पाप टालने मे हिसा-बचाव की भावना या प्रवृत्ति होती है उसी से इन का प्रयोजन है और उसी वस्तु को लक्ष्य मे लेकर यह वाक्य लिखा गया है। किन्तु इस वाक्य को पढ कर पाठक भ्रम मे पड जाते हैं कि आचार्यश्री तुलसी मान तो रहे हैं कि औषधालय आदि कार्यो मे जितना हिसा-बचाव है वह शुभ योग है और जितना आरम्भ है वह अशुभ योग है।

ये काम आज्ञा बाहर हैं। अत अधर्म कार्य हैं। अधर्म कार्य के करने की भावना या प्रवृत्ति मे ये पडना ही नहीं चाहते। तब इन कार्यो म हिसा-बचाव आदि का प्रश्न ही नहीं उठता। अत पाठक हिसा-बचाव शब्द से यह न मान बैठे कि आचार्यश्री तुलसी उपरोक्त कामों में कुछ पुण्य तो मानते हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमारजी इसी बात को न समझ पाये अत उनका खयाल हो गया कि तेरापथी भी इन कामो मे कुछ पुण्य तो मानते हैं। जबकि रक्षा और सहायता के कार्य या भावना म वे किचित् भी पुण्य नहीं मानते। सर्वथा पाप मानते हैं। अपनी आत्मा के द्वारा किसी जीव को न सताने मे धर्म-पुण्य मानते हैं। सताये जाते हुए की रक्षा या सहायता करने मे सौ परसेट पाप मानते हैं-- यह प्रकट सत्य है। इनके ग्रथ इस बात के साक्षी हैं। उनमे ये बातें विस्तार से चर्ची हुई हैं। भौतिक साधनो से बचाने की बात चल रही है यह ध्यान रहे।

हमें इस बात की बडी प्रसन्नता है कि प श्री राजेन्द्रकुमारजी इस बात को स्पष्ट रूप से समझ गये कि आचार्यश्री तुलसी विवादग्रस्त कार्यो का फल सर्वथा पाप मानते हैं तथा इन कार्यो मे शुभ योग होना भी नहीं मानते।

इस बात को लेकर इन दोनों विद्वानों म मतभेद हो गया। मतभेद का आभास इस बात मे भी मिलता है कि प्रश्नोत्तर प्रकाशित करने के लिए वक्तव्य लिखने का भार प राजेन्द्रकुमारजी को सौंपा गया था। वह वक्तव्य जैन सयाजना मे प्रकाशित नहीं किया गया है। प राजेन्द्रकुमारजी ने अपने वक्तव्य मे यह जाहिर करना उचित समझा था कि आचार्यश्री तुलसी के उत्तरो से यह ज्ञात होता है कि इन की मान्यता विवादग्रस्त कार्यो का फल पापरूप होने की है। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी को यह बात अच्छी न लगी। समिति के सदस्य द्वारा ऐसा लिखा जाना किसी को राजी और किसी को नाराज करना है। श्री जैनेन्द्रकुमारजी किसी को राजी-नाराजी न करना चाहते थे अत श्री राजेन्द्रजी का वक्तव्य अप्रकाशित ही रहा। अथवा लिखा भी न गया हो और मन मे पैदा होकर मन ही मे विलीन हो गया हो। किन्तु ऊपर की हकीकत सत्य है कि इस बात को लेकर दोना म मतभेद था।

ऐसा भी सुनने मे आया है कि श्री जैनेन्द्रजी ने सयोजक के नाते कुछ वक्तव्य लिखा था जिसमे दोना आचार्यो को प्रसन्न रखने की चेष्टा थी। मगर उसे श्री राजेन्द्रजी ने काट

पसन्द नहीं किया। वे अपना विरोध नोट करवाना चाहते थे। अत मे बिना वक्तव्य के ही प्रश्नोत्तर प्रकाशित हुए हैं।

पूरक प्रश्न के उत्तर में आचार्य तुलसी ने शब्दान्तर से स्पष्ट रूप मे यह मान लिया है कि *विवादग्रस्त कार्य अशुभ योग हैं। आचार्य तुलसी के शब्द देखिये– 'फिर भी यदि शाब्दिक* अर्थ लें जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति तो व्यवहार की भूमिका मे ये शुभ योग माने जा सकते हैं। इसका मतलब यह है कि वास्तव मे - निश्चय से तो इन कामो में अशुम योग होता है। फिर भी यदि शाब्दिक अर्थ ले तो शुभ योग माने जा सकते हैं। अर्थात् दुनिया अपनी अज्ञानता से इन कामो मे शुभ योग और पुण्यफल मानती है अत कहा जा सकता है कि इन मे शुभ योग है। आचार्यश्री तुलसी की ऐसी मान्यता नहीं है।

'सामाजिक दृष्टिकोण मे शुभ योग अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है' लिखकर तो आचार्यश्री तुलसी ने हद कर दी है। अपनी पुरानी मिथ्या परपरा का समर्थन करने के लिए कितने असत्य का सहारा लेना पडता है इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। सामाजिक *दृष्टिकोण मे यदि शुभ योग और अशुभ की व्यवस्था नहीं है तो क्या सामाजिक कामो का कुछ फल ही नहीं होता ? क्या ये कार्य निष्फल हैं ?* क्या समाजिक कार्य करने मे मन वचन और काया नहीं लगाने पड़ते ? सामाजिक कार्य किसी भावना से ही किये जाते हैं। कर्ता का व्यापार मन से वचन से और काया से होता है। उस व्यापार के पीछे शुभ या अशुभ कुछ तो विचार रहता ही है। आचार्यश्री तुलसी ऐसी बात कह गये जिसे पढ़ कर विचारवान् व्यक्ति कठिनाई से अपनी हसी रोक सकेगा।

एक सीढी चूकने पर मनुष्य का टिके रहना बडा कठिन है। परोपकार के कामा मे असयम का पोषण और राग-भाव की कल्पना करके आचार्यश्री तुलसी बुरी तरह फस गये हैं। अपने पूर्वाचार्यों की अपेक्षा तेरापथ की मान्यता के व्यक्तिकरण के तरीके मे जिस प्रकार आचार्यश्री तुलसी ने परिवर्तन किया है उसी प्रकार अर्थ मे भी परिवर्तन करेगे तब वे विद्वत्समाज मे सम्मानित हो सकेगे।

आचार्यश्री ! आपके लक्ष्मीपति अनुयायियों के प्रभाव से प्रभावित होकर लोग आपके समक्ष कुछ नहीं कहते। मगर आप की मान्यताओ के कारण लोगों के भाव अच्छे नहीं हैं। जैन धर्म पर भी लोग इस कारण आपेक्ष करते हैं। आप साधु हैं पचमहाव्रतधारी हैं। इतनी स्पष्ट पाप-मान्यता को आप कब तक छिपाने मे सफल होते रह सकेंगे ? इसके लिए आप को मन *की बाते छिपानी पडती हैं। मन मे कुछ और होता है और शब्द कुछ और निकलते हैं।*

जो मन मे सोइ बैन में जो बैनिन सोई कर्म।
कहिये ताको सतवर जा को ऐसो धर्म।।

यह सत का लक्षण है। किन्तु अपनी पाप मान्यता को छिपाने के लिए आपको इस दोहे के विरुद्ध आचरण करना पडता है। ठेठ भीखणजी महाराज से ही यह परिपाटी चली आ रही है कि कुयुक्तिया के जरिये अथवा शब्दछल और अर्थछल से अपनी मिथ्या धारणाओ को छिपाते भी रहना और पुष्ट भी करते रहना। आप युवक हैं नई रोशनी मे आये हैं अत आप से आशा है कि इस परिपाटी को खत्म कर देगे। इसम आपका तेरापथी समाज का और दुनिया का भला है।

आचार्य महाराजश्री तुलसीरामजी के उत्तरो की समीक्षा

(समीक्षक-बच्छराज सिघी, सुजानगढ)

जैन सयोजना समिति दिल्ली द्वारा प्रकाशित जैन सयोजना नामक एक पुस्तिका से ज्ञात हुआ कि श्वेताम्बर जैन समाज के स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज और तेरापथ के आचार्यश्री तुलसीजी महाराज के दरमियान दया-दान के विषय पर दिल्ली मे प्रश्नोत्तर चले। प्रश्नोत्तरा मे श्री तुलसीजी महाराज ने गृहस्थ के लिये नि स्वार्थ परोपकार और सेवा के कार्य करने मे यानी दया-दान मे एकान्त पाप और अधर्म मानने वाले अपने सिद्धान्तो को कैसी शब्द-चातुरी से जनसाधारण के समक्ष ढकने का प्रयन्त किया है। इस लेख मे यही हमारे विचारने का प्रयोजन है।

सब से पहिली बात तो यह है कि स्थानकवासी समाज ने प्रश्नो के नीचे जो नोट दिया है उस मे यह स्पष्ट अनुरोध है कि उत्तर देने में टेढ़ी मेढ़ी भाषा में भावा को छिपाने की कोशिश न हो पुण्य पाप निर्जरा सवर जो-कुछ हो उत्तर में दो-टूक शब्द अपेक्षित हैं। लम्बी व्याख्या मे उत्तर देकर प्रश्न को कुचक्र मे न डाला जाय आदि। परन्तु आचार्यश्री तुलसीजी महाराज ने समस्त प्रश्नों के उत्तर देने में स्थानकवासी समाज के अनुरोध की अवहेलना की है। असली भाव प्रकाश मे न आवे जैसे उत्तर देने का प्रयास किया है। तेरापथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्यश्री भीखणजी महाराज से लगा कर आज तक जिन परोपकार कार्यों के करने मे तेरापथी एकान्त पाप होना मानते और कहते आये हैं - उनमें अब पाप शब्द के स्थान पर 'लौकिक पुण्यकार्य ऐसा एक नया शब्द रच कर जनसाधारण के समक्ष रखना यह एक भुलावे मे डालने का प्रयास नहीं है तो क्या है ? मन में जिसको पाप समझते हैं उसको कहने मे लौकिक पुण्यकार्य कहना कहाँ तक ठीक है ? वह पाठक स्वयम् समझें। आचार्य महाराज को यदि कोई पूछे कि पाप का फल क्या है ? तो अवश्य ही वे कहेंगे कि कष्टभोग ओर दुर्गति। परन्तु यदि कोई पूछे कि इस लौकिक पुण्यकार्य का क्या फल है तो यदि सच कहेगे तो यही कहेगे कि दुखभोग और दुर्गति। लौकिक पुण्य शब्द कहने मात्र से ही अपनी मान्यता के अनुसार वे ऐसा नहीं कह सकते कि इस लौकिक पुण्यकार्य का फल सुखभोग

और सद्गति होगा। तो फिर पाप शब्द के स्थान मे पुण्य शब्द रख देने का अर्थ ही क्या हुआ ?

(1) पहिले प्रश्न मे लिखा है कि औषधालय विद्यालय अनाथालय आदि की अन्न वस्त्र औषध और मकानादि द्वारा शुभ भावना से (यानी गृहस्थ निःस्वार्थ भावना से) सहायता करे तो पुण्य होता है या पाप ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्यश्री तुलसीजी महाराज लिखते हैं कि औषधालय विद्यालय आदि लोक-धर्म के कार्य हैं इसलिये लौकिक पुण्यकार्य कहे जाते हैं इनके कर्ता को आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता। स्थानकवासी समाज के प्रश्न मे स्पष्ट माग है कि ऐसे परोपकार के कार्यो को निःस्वार्थ करने मे गृहस्थ को पुण्य होता है या पाप ? उनकी माग यह नहीं है कि इनके कर्ता को आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य होता है या नहीं होता।

आचार्यश्री तुलसीजी महाराज को अपनी मान्यता के अनुसार स्पष्ट कहना चाहिये था कि पाप होता है जैसा कि इनके पूर्वाचार्यो ने बराबर कहा है। तेरापथ मजहब के प्रवर्तक प्रथम आचार्यश्री भीखणजी महाराज तथा चौथे पट्टधर आचार्यश्री जीतमलजी महाराज की रची हुई पुस्तको और ढालो मे अनेक स्थानों मे परोपकार और सेवा के कामो के करने मे गृहस्थ के लिये पाप होना बताया है। जिन मे से कुछ प्रमाण यहाँ दिये जा रहे हैं।

'साधु थी अनेरा कुपात्र छै। अनेरा ने दीधा अनेरी प्रकृतिनो बन्ध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पापनी छै।

(आचार्यश्री जीतमलजी कृत 'भ्रम विध्वसनम्' पृष्ठ 79)

अर्थात्- साधु के सिवाय बाकी सब मनुष्य कुपात्र हैं। उन्हे दान देने से पाप होता है।

'कुपात्रदान कुक्षेत्र कहया कुपात्ररूप कुक्षेत्र ने पुण्य बीज किम उपजे ?

(भ्रमविध्वसनम् पृ 80)

अर्थात्- कुपात्र को दान देना तो खराब खेत मे बीज बोना है। वहाँ पुण्य बीज कैसे उत्पन्न हो सकता है ? यानी नहीं होता।

'कुपात्रदान मासादिक सेवन व्यसन कुशीलादिक यह तीनो एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर जार ठग यह तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्र दान भी मासादि सेवन व्यसन कुशीलादि की श्रेणी में गणना करने योग्य है।

(भ्रमविध्वसनम् पृष्ठ 82)

उपर्युक्त कथनों से यही सिद्ध होता है कि तेरापथी साधुओ के सिवाय ससार के सब मनुष्य कुपात्र हैं और कुपात्रदान मासादिक सेवन व्यसन कुशीलादि तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर, जार ठग यह तीनो समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्रदान भी

मासादि सेवन व्यसन कुशीलादि की श्रेणी मे गणना करने योग्य है।

'साधु के अतिरिक्त सब प्राणी असयती होते हैं। असयती जीवो के जीने आदि की कामना करना एकान्त पाप है।

(श्रीमदाचार्य भीषणजी के विचार रत्न पृष्ठ 23)

'जितरा उपकार ससार रा ते तो सगला ही सावध जाणो हो। (आचार्यश्री भीषणजी रचित अनुकम्पा' ढाल 4 कडी 19)

अर्थात्-ससार के जितने उपकार हैं वे सब सावद्य (हिसायुक्त) पाप पूर्ण हैं।

नीचे ससार के उपकारो को बताते हैं

कोइ लाय सू बलताने काढ बचायो बले कुए पड़ताने बचायो।
बले तलाब मे डूबताने बाहर काढे
बले ऊचाकी पड़ताने झेले तायो।।
ओ उपकार ससार तणोछे ससार तणो उपकार करेछे।
तिणरे निश्चय ही ससार बधे ते जानो।

(अनुकम्पा ढाल 11 कड़ी 12)

अर्थात् अग्नि मे जलते हुए जीवो को कोई बाहर निकाल कर बचावे कुए मे गिरते हुए को बचावे। यह सब ससार के उपकार हैं। इनके करने से निश्चय ही भवभ्रमण की वृद्धि होती है। ऐसे पापकारी कार्यो से प्राणी दुर्गति में भटकता है।

कोई मात पितारी सेवा करे दिन रात
मनभाना भोजन त्याने कराई।
बले खाधे कावड़ लिया फिरे त्यारी
बले दोनो वक्ते स्नान कराई ताई।।
ओ उपकार ससार तणो छै।

(अनुकम्पा ढाल 11 कड़ी 188)

अर्थात् कोई गृहस्थ दिन रात माता पिता की सेवा करता है। उन्हें रुचि के अनुसार भोजन कराता है कावड मे उठाये फिरता है दोनो वक्त स्नान कराता है तो यह सब उपकार ससार के हैं जो दुर्गतियो मे भटकाने वाले हैं।

गृहस्थने औषध भेषज देईने अनेक उपाय करी जीव बचावे।
यह ससार तणो उपकार किया में मुक्तिरो मारग मूढ बतावे।।

(अनुकम्पा ढाल 8 कडी 5)

अर्थात् औषधादि देकर अथवा अन्य उपायो से गृहस्थ का जीवन बचाना ससार बढाने वाला पापकारी उपकार है। मूढ लोग इसको मुक्ति का मार्ग यानी धर्म बता रहे हैं।

दुखिया और दरिद्री देखी अनुकम्पा उणरी मन आणी।
गाजर मूलादिक सचित खुवावे वले पावे उणे काचो पाणी।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो।

(अनुकम्पा ढाल 1 कड़ी 16)

अर्थात् दरिद्री और दुखिया को देखकर उनकी अनुकम्पा करके गाजर आदि वनस्पति खिलावे और पानी पिलावे तो यह पापकारी दया है।

व्याधि अनेक कोढादिक सुणने तिण उपर वैद चलाई न आवे।
अनुकम्पा आणी साझो दीधो गोली चूरण दे रोग गमावे।।

(अनुकम्पा ढाल 1 कड़ी 24)

अर्थात् कुष्ठादिक कठिन रोग से पीडित रोगियो को सुनकर कोई वैद्य दयाभाव से उनको गोली-चूर्ण देकर रोग रहित कर दे तो यह दया पापकारी दया है।

लाय लागी जो गृहस्थ देखे तो तुरत बुझावे छ काय ने मारी।
यह सावद्य कर्तव्य लोक करे छे तिण में धर्म कहे सागधारी।।

(अनुकम्पा ढाल 8 कड़ी 52)

अर्थात् लाय (आग) लगी हुई गृहस्थ देखता है तो फौरन वह छ काय पृथ्वी आदि के जीवो को मार कर उसे बुझाता है। ऐसे पापपूर्ण कार्य को त्यागधारी साधु धर्म कहते हैं।

कुपात्रदान में पुण्य परूपे तिणसू लोक हणे जीयाने विशेषो।
कुगुरु एहवा चाला चलावे ते भ्रष्ट हुआ लेई साधुरो भेषो।।

(अनुकम्पा ढाल 13 कड़ी 6)

अर्थात् कुपात्रदान मे पुण्य बताने से लोग जीवा को विशेष मारते हैं। पुण्य बताकर यह लोग साधु के भेष में भ्रष्ट होते हैं।

कुपात्र जीयाने बचाविया कुपात्र ने दिया दान जी।
ओ सावद्य कर्तव्य ससारो भाष्यो छे भगवान्जी।।

(अनुकम्पा ढाल 12 कड़ी 10)

अर्थात् कुपात्र जीवो को मरने से बचाना कुपात्र को दान देना यह ससार का पापमय कार्य है।

असजती जीवरो जीवणो, तो सावद्य जीतब्य साक्षातजी।
तिणने देवे ते सावद्य दान छे तिणमें धर्म नहीं अशमातजी।।

(अनुकम्पा ढाल 12 कड़ी 40)

अर्थात् असयमी यानी तेरापथी साधु से अन्य सबका जीवन पापमय है। उनको देना एकान्त पापमय दान है। उसमे धर्म का अश मात्र नहीं है।

असजती ने दान दिया में धर्म पुण्य काई थापो रे ?
श्री वीर कह्यो भगवती माही निर्जरा नही एकान्त पापोरे।।

(चतुरविचार की ढाल 1 कड़ी 23)

अर्थात् हे लोको ! असजती को दान देने मे क्यो धर्म या पुण्य बता रहे हो ? भगवान् ने इसको एकान्त पाप कहा है।

असजती रा जीवन मध्ये धर्म नही अश मातजी।
दान देवे छे तेहने ते पण सावद्य साक्षातजी।।

(अनुकम्पा ढाल 13 कड़ी 62)

ससार तणो उपकार किया मे केई मूढ मिथ्यात्वी धर्म बतावे।
श्री जिन मार्ग ओलखिया विन मन माने जू गोल चलावे।।
ससारो उपकार किया म जिन धर्मरो नहीं अश लिगार।
ससार तणा उपकार किया में धर्म कहे तो मूढ़ गवार।।

(अनुकम्पा ढाल 11 कड़ी 37-39)

अर्थात् ससार का उपकार करने मे धर्म बताने वाले व्यक्ति जिन धर्म को नहीं जानते। वे मूढ मिथ्यात्वी गवार है।

श्रावक तो असजती अव्रती छे ते रुड़ी रीति पहिचानो रे।
श्रावक ने दान दे तिणरी करे प्रशसा ते परमार्थरा अजाणोरे।।

(चतुर विचार ढाल 3 कड़ी 38)

अर्थात् श्रावक (गृहस्थ) तो असजती अव्रती है यह अच्छी तरह समझ लो उनको दान देने की जो प्रशसा करते हैं वे अज्ञानी हैं।

श्रावक (गृहस्थ) को जो भी द्रव्य साता पहुँचाई जायगी वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मे असयम को ही उत्तेजना देने वाली होगी क्याकि श्रावक का खाना-पीना व्यापार-धन्धा करना स्त्री-सेवन करना वाल वच्चो का पोषण करना उपभोग परिभोग की चीजो का सेवन करना देना आदि सव प्रवृत्तियाँ उसके जीवन के अधर्म पक्ष - असयम पक्ष का ही सेवन हैं। (श्रीमदाचार्य भीषणजी के विचार रत्न पृष्ठ 60)

केईएक अज्ञानी इम कहे छ काया काजे हो देवा धर्म उपदेश।
एकण जीव ने समझाविया मिट जावे हो घणा जीवारा क्लेश।।
छव काय घरे शान्ति हुवे एहवा भाषे हो अन्यतीर्थी धर्म।
त्या भेद न पायो जिनधर्मरो ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म।

(अनुकम्पा ढाल 5 कड़ी 16-17)

अर्थात् किसी मरते हुए जीव को वचाने के लिये कोई उपदेश देवे तो उपदेशदाता मिथ्यात्वी अज्ञानी और अशुभ कर्म वाधने वाला है।

गृहस्थ के पग हेटे जीव आवे तो साधुने वताणो कठे नहीं चाल्यो।
भारी करमा लोकाने भ्रष्ट करण ने ओपिण घोचो कुगुरा घाल्यो।।

(अनुकम्पा ढाल 8 कड़ी 38)

गृहस्थ के पैर के नीचे कोई छोटा जीव दव कर मरता हो तो साधु को वताना नहीं चाहिए। जो वताते हैं वे कुगुरु हैं।

ऐकेन्द्री मारी ने पचेन्द्री पोषे तो निश्चय ही बान्धे कर्मों रे।
मछ गलागल ते चोडे माडीयो पाखन्डियो रो धर्मो रे।।

(अनुकम्पा ढाल)

जो अनाज खिलाकर पशु पक्षी मनुष्य का रक्षण-पोषण करता है वह निश्चय ही पापकर्म बाँधता है। पाखण्डी इसमे धर्म मानते हैं।

राका ने मार धींगा ने पोषे आ तो वात दीसे घणी गहरी।
इण माही दुष्टि धर्म परूपे तो राक (गरीव) जीवों के शत्रु हैं भारी।।

(अनुकम्पा ढाल 13 कड़ी 4)

गरीव वनस्पति आदि स्थावर जीवा को मार कर शैतान पचेन्द्रिय जीवों का जो पालन करते हैं वे राक (गरीव) जीवा के शत्रु हैं।

ज्यू छ कायना हिंसक भणी जे नर पोषे जाण।
ते बेरी षट कायनो प्रत्यक्ष हिय पिछाण।।8।।

हणणहार षट कायनो तसू पोषे किये सूर।
तिण कारण जीवा तणो बेरी ते भरपूर।।9।।

(भिक्षुजश रसायन ढाल 18)

अर्थात् छ काय के हिंसक का पोषण करके सबल बनाने वाला छही काय का शत्रु है।

जो आरभ सहित जीवणो असजतीरो अम्भ।
जिण वाछयो एह जीवणो तिण वाछयो आरम्भ।।8।।

(भिक्षुजशरसायन पृष्ठ 66)

अर्थात् असजती का जीवन आरम्भ (18 पाप) सहित होता है इसलिए उसके जीवन की कामना करना आरम्भ का अनुमोदन करना है।

सावज दान सरधायवा दिया भिक्षू दृष्टान्त।
खेत बायो एक करसनी पाको खेत अत्यन्त।।1।।

इतले धनीरे बालो हुवो दुखणो आयो देख।
किणहिक ओषध दे करी सातरो कियो विशेष।।2।।

ताजो हुवो तिण अवसरे खेत काटयो धरी खन्त।
साज देने वालाने सही लागे पाप एकान्त।।3।।

कहे पापहुवे खेत काटिया तो काटण वाला ने सोय।
साझ देईनें साझो कियो तिणने पिण पाप जोय।।4।।

(भिक्षुजश रसायन ढाल 18)

यह एक दृष्टान्त है जिसमे श्री भीषणजी ने यह कहा है कि इलाज करके जिसने किसान का फोड़ा (नेरू) ठीक किया प्रकारान्तर से उसने किसान को एकेन्द्रिय काय (अनाज) के जीवो को काटने मे सहायता दी। इसलिये खेत काटने का पाप उस इलाज करने वाले को भी हुआ। 'साझ देहने साझो कियो तिणने पिण पाप जोय'। आश्चर्य तो इस बात का है कि किसी जीव को बचाने से वह बचा हुआ जीव भविष्य में जो पाप करेगा उस पाप का साझीदार तो बचाने वाले को यह लोग बनाते हैं परन्तु यदि बच जाने वाला बचकर

कोई धर्म करता है तो उसका साझीदार बचाने वाले को नहीं बनाते।

(2) दूसरे प्रश्न के उत्तर मे आचार्यश्री तुलसीजी महाराज न प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर आध्यात्मिक दृष्टि और लोक-दृष्टि के बहाने लोक धर्म और लौकिक पुण्यकार्य कहकर सही उत्तर टाल देने का प्रयास किया है। देते तो केवल यही कहते कि ऐस समस्त कार्य तो पाप के कारण हैं या पुण्य के कारण हैं। तेरापन्थ सम्प्रदाय की यह निश्चित मान्यता है कि आध्यात्मिक क्रिया के अतिरिक्त कहीं भी पुण्य नहीं होता। ऐसी अवस्था में यह फिर लौकिक पुण्य कहाँ से आया ? यह पाठक स्वय विचार ले।

(3) तीसरे प्रश्न का उत्तर भी वही पिता की भौतिक सेवा और आध्यात्मिक सेवा कहकर वही लौकिक पुण्यकार्य बताना शब्दो का भुलावा है।

(4) चौथे और पॉचव प्रश्न के उत्तर मे भी वही बात है जैसी अन्य म है।

(6) छठे प्रश्न के उत्तर मे आचार्यश्री तुलसीजी महाराज लिखते हैं कि अनुकम्पा बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना भी अहिसा है बशर्ते कि उसमे हिसा और असयम का पोषण न होता हो। अहिसात्मक साधनो से होने वाली प्राणरक्षा हिसा नहीं है चाहे वह किसी की भी हो। कैसी भेदभरी चतुराई का उत्तर दिया है आचार्य महाराज ने। जो व्यक्ति तेरापन्थ के सिद्धान्तो को भलीभाति नहीं जानता वह लख ही नहीं सकता कि इसम क्या चतुराई है। आचार्य महाराज ने जो शर्त रखी है कि 'उसम हिंसा और असयम का पोषण न होता हो। यही चतुराई है। तेरापन्थ की यह स्पष्ट मान्यता है कि मरते जीव (पशु, पक्षी और ससारी मनुष्य) को कोई भी व्यक्ति अहिसात्मक साधनो से नहीं बचा सकता। तेरापन्थ की मान्यता म जीव बचाने मे असयम और हिंसा का पोषण होना निश्चित है। आचार्य महाराज से हमारा निवेदन है कि कृपा करके आप एक भी उदाहरण देकर बताव कि अमुक प्रकार स अहिंसात्मक साधना से मरता हुआ पशु, पक्षी और गृहस्थ मनुष्य बचाया जा सकता है।

(7) सातवे प्रश्न का उत्तर भी आचार्यश्री तुलसीजी महाराज न वही भेदभरी चतुराई स दिया है कि 'जो जहाँ अहिसात्मक होते हैं वे वहाँ पुण्य के कारण है । तेरापन्थ की मान्यता के अनुसार लौकिक उपकार और सासारिक कर्तव्य आदि अहिसात्मक हो ही नहीं सकता। यह उत्तर भी भुलावे में डालने वाला है। इसके लिये भी आचार्य महाराज स अनुरोध है कि कृपा करके उदाहरण देकर बतावें कि लौकिक उपकार और सासारिक कर्तव्य अमुक तरह से अहिसात्मक हो सकते हैं। भूख प्यास से मरते हुए को अन्न पानी की सहायता से बचाना विपत्ति मे पडे हुए की सहायता करना रुग्ण माता पिता आदि पूज्यजनो की सेवा सुश्रूषा करना रोगियों की चिकित्सा का प्रबन्ध करना शिक्षा के लिए पाठशाला का प्रबन्ध करना सब के साथ कर्तव्य के अनुसार बरताव करना आदि कार्य ही लौकिक उपकार और सासारिक

कर्तव्य हैं। इनमे से कौन-सा कार्य अहिसात्मक हो सकता है ? आचार्य महाराज कृपया वतावें।

(8) आठवे प्रश्न के उत्तर मे भी वही बात है। आचार्य महाराज का दृष्टिकोण समस्त उत्तरो मे यह रहा प्रतीत होता है कि लोगो के समक्ष जो उत्तर दिया जाय वह ऐसे शब्दों में दिया जाय जिसमे लोग यह भी न लख पाव कि तेरापन्थ की मान्यता ऐसे परोपकार और सेवा के कामो के करने में पाप मानने की है और उत्तर भी हो जावे। इसीलिये तो पाप शब्द के स्थान मे लौकिक पुण्यकार्य शब्द की नई रचना की है और लोक धर्म और आध्यात्मिक धर्म का भेद किया है।

(9) नौव प्रश्न का उत्तर भी गलत दिया गया है। क्योकि श्वेताम्बर जैन होने के नाते मैं कह सकता हूँ कि श्वे जैनी गृहस्थ के खाने-पीने को सर्वथा पाप नहीं मानते। व्रत नियम निभाने तथा लोक कल्याण करने के लिए शरीर टिकाये रखने की भावना से खाने वाले गृहस्थ का खान पान पाप का कारण नहीं है। उससे पुण्य हो सकता है। विकार पुष्टि के लिए खाना-पीना पाप हो सकता है उसमे किसी का विवाद नहीं है। तथा स्थानकवासियो का दृष्टिकोण वताने मे भी आचार्य महाराज ने उनके साथ न्याय नहीं किया है। स्थानकवासी प्रकट रूप परोपकार के (दया-दान के) कामा मे पुण्य मानते हैं और आप पाप। फिर भी उनके लिए शरीर-पोषण और शरीर-रक्षण की बात कहना सत्य से परे है। जहा तक मैं समझता हूँ, स्थानकवासियो का दया दान सम्बन्धी दृष्टिकोण जैन धर्म के सर्वथा अनुकूल है। जवकि आप का जैन धर्म से सर्वथा विपरीत है।

समिति के सदस्यो से निवेदन

जैन सयोजना समिति दिल्ली के विद्वान सदस्यों ने आखिर इन प्रश्नोत्तरो से क्या निर्णय किया यह इस 'जैन सयोजना' पुस्तिका मे वताया हुआ नहीं है। अत अनुरोध है कि वे भी अपना निर्णय देकर जनसाधारण की जिज्ञासा को पूरा करे कि उनकी राय मे ससार के उक्त परोपकार और सेवा के कार्यों के करने मे एक सद्गृहस्थ को क्या फल होता है ? धर्म पुण्य या पाप !

द वच्छराज सिंघी

1/11/50

निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति उपासक सघ के लिए पूज्य श्री 1008 श्री गणेशलालजी म सा द्वारा निर्दिष्ट आदेश के आधार पर बनाई गई योजना

पूर्व वचन

जन-समाज को मोक्षमार्ग मे सस्थापित करने हेतु श्रमण भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म का उपेदश देकर भव्य प्राणियों पर परम उपकार किया है। उस उपदेश के आधार पर आज इस पचम काल मे भी निर्ग्रन्थ श्रमण सघ बड़े ही आनद के साथ चल रहा हैं। इस सघ की साधना प्रणाली बडी ही कठिन होने से परम आत्मबली पुरुष ही इस साधना प्रणाली में प्रवेश कर सकता है।

इस सघ का मुख्य लक्ष्य आत्मसाधना करना है - वह अपनी साधना सुरक्षित रखते हुए जन समाज मे भी धर्म प्रचारार्थ कुछ प्रयत्न कर सकता है लेकिन अपनी मर्यादाओ के बाहर होकर धर्मोपदेश देने का इस सघ को अधिकार नही है परन्तु श्रावक धर्म की आराधना करने वाला श्रावक सघ का विशाल क्षेत्र है। वह अपने हर उपयुक्त साधन से धर्म प्रचार करने में स्वतन्त्र है।

वीतराग भगवान का धर्म सर्वत्र फले तथा जन-जन नैतिक आदर्श के साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी कुशलतापूर्वक प्रवेश कर सके एतदर्थ परम प्रतापी चारित्र चूड़ामणि पुरुष आचार्यश्री गणेशलालजी म सा ने निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति के उपासक सघ में अलग-अलग वर्ग की रचना का अपनी मर्यादा म जो निर्देश दिया - उसके आधार पर श्रमण सस्कृति उपासक सघ ने विशेष रूप से निम्न वर्गों का निर्वाचन किया है -

1 सामान्य वर्ग 2. नैष्ठिक उपासक वर्ग 3 सम्यक शिक्षक वर्ग 4 प्रचारक वर्ग 5 ब्रह्मचारी वर्ग

कोई भी सदाचारी व्यक्ति इस सघ मे प्रवेश पाकर उपर्युक्त वर्ग में से ऐच्छिक वर्ग को स्वीकार कर सकता है।

इस युग मे चिन्तनशील विचारों के आधार पर पूज्यश्रीजी महाराज द्वारा दीर्घ दृष्टि से दिया गया यह मार्गदर्शन विश्व के लिए बडा ही हितप्रद सिद्ध होगा।

नाम - इस सघ का नाम निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति उपासक धर्म दान सघ रहेगा।

उद्देश्य - इस सघ का उद्देश्य निम्न प्रकार होगा -

1 स्थानकवासी समाज मे श्रद्धा प्ररूपणा मे जो अनैता दृष्टिगोचर हो रही है उसमें एक समता लाना।

2. चारित्रशुद्धि के लिये शिथिलाचार एव स्वच्छदाचार को रोकना और शुद्धाचार की तरफ प्रवृत्ति करना तथा कराना।

3 धार्मिक शिक्षण मे वृद्धि हेतु निर्धारित पाठयक्रम के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में अनुकूल स्थानो पर शिक्षा की व्यवस्था करना।

4 जैन धर्म का व्यापक प्रचार करना।

5 समान श्रद्धा श्रमण व समान आचार-विचार वालों मे परस्पर ऐक्य बढाने का यानी सगठित करने का प्रयत्न करना।

सघ प्रवेश का प्रतिज्ञा पत्र

पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री के मर्यादा अनुसार निर्दिष्ट वर्ग मे उत्कृष्ट सद्भावनाओं के साथ प्रवेश करता हुवा उसके निर्धारित प्रत्येक नियमों को पूर्ण रुप से विना तर्क विना शर्त सहर्ष पालन करूगा।

आज से यह जीवन आचार्यश्री के चरणों मे समर्पण है। वे मेरे लिए अपनी सीमा में जैसा सोचेगे व करेगे उसी मे मैं अपना सर्व हित समझूगा। उनकी प्रत्येक आशा को मैं विना किसी उज्र के शिरोधार्य करूगा। मेरी त्रुटियो पर या सघ का धाराधोरण टूटने पर मैं आचार्यश्री के चरणों मे आलोचना रखूगा पर आचार्यश्रीजी जो भी प्रायश्चित्त आदि व्यवस्था देगे वे सब मुझे स्वीकार होगी।

मैं यह प्रतिज्ञा पत्र स्वस्थ चित्त से सोच-विचार कर विना किसी दबाव के लिख रहा हू।

नियम

1 इस सघ का एक प्रमुख होगा।

2 प्रमुख का चुनाव ब्रह्मचारी वर्ग मे से होगा।

3 साधु मर्यादा के अनुसार निर्वद्य कार्य सचालन आचार्यश्री के अभिप्रायानुसार प्रमुख करेगा और शेष सघ प्रमुख के स्वय के हाथ में रहगे।

4 प्रमुख का कार्यकाल पाच वर्ष तक रहेगा। किसी कारणवश पाच वर्ष के पूर्व पृथक होना चाहे तो एक महीने के पूर्व सकारण त्याग पत्र पेश करना होगा तथा जब तक दूसरा प्रमुख न चुन लिया जाय तक तब अपने पद का कार्य करते रहना होगा।

5 विशेष परिस्थिति में पाच वर्ष के पूर्व तथा पाच वर्ष के बाद भी प्रमुख का चुनाव हो सकेगा।

6 प्रमुख द्वारा कोई गलती हो जाय तो उसकी शुद्धिकरण करने के लिए अपनी आलोचना आचार्यश्री के सामने रखना होगा और आचार्यश्री जो प्रायश्चित्त दें उसे स्वीकार करना होगा।

7 प्रमुख का विशिष्ट कारण के सिवाय प्राय करके आचार्यश्री की सेवा मे रहना होगा।

8 आचरण सबधी नियम जो ब्रह्मचारी वर्ग के लिए हैं वे नियम प्रमुख के लिये भी लागू होगे।

9 धर्म प्रचार का प्रसग उपस्थित होने पर विचारने के लिए जहा भी भेजा जावे वहा जाना होगा।

10 समस्त वर्गो के नियमो में परिवर्तन परिवर्धन व सशोधन आदि करने का अधिकार यथास्थान प्रमुख को होगा।

11 इस सघ मे प्रविष्ट होने वाले को सर्वप्रथम एक प्रतिज्ञा पत्र भरना होगा।

सामान्य वर्ग

1 आचार्यश्री की सम्यक्त्व ग्रहण करना व वीतराग के मार्गानुसार कोई भी ऐच्छिक नियम लेना।

2. आचार्यश्री के आदेश-उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा रखना।

3 सद् से गुरु अर्थात् निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग एव श्रमणी वर्ग की मर्यादानुसार उत्कृष्ट भावों से सेवा करना।

अरिहतो महदेवो जावजीवाए सु साहुणे गुरणो।
जिण पण्णत तत इय सम्मत मए गहिय।।

1 अरिहत वीतराग सवज्ञ देव को धर्मदेव मानना।
2. अरिहत कथित महाव्रत आदि पर चलने वाले कचन कामिनी के त्यागी आचार्य को मुख्य रूप से गुरु मानना और आचार्यश्री के आज्ञानुसार चलने वाले उपाध्याय एव साधु-साध्वी का आचार्य पद में समावेश हो जाता है।
3 सवज्ञ प्ररूपित सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मार्ग को सद्धर्म मानना।

नैष्ठिक वर्ग

1 सामान्य वर्ग के नियमो के पालनपूर्वक सात कुव्यसनों का त्याग करना होगा।
2 प्रतिदिन कम से कम 11 नवकार मत्र का स्मरण करना।
3 प्रार्थना के रूप मे नित्य कोई-न-कोई प्रार्थना अवश्य करना।
4 प्रतिमाह एक उपवास या एक आयबिल अथवा दो एकासन या एक दया अवश्य करना।
5 यथाशक्य धार्मिक अध्ययन की रुचि बढाना।
6 प्रतिदिन कम से कम मोटे रूप में हिसा झूठ चोरी अब्रह्मचर्य क्रोध इर्ष्या द्वेष मान लोभ इत्यादि अठारह पापो का त्याग करना।
7 रिश्वत घूस नहीं लेना। कालाबाजार अनुचित लाभ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं करना। खाद्य वस्तुओ में मिलावट नहीं करना। नाप तोल मे कम नहीं देना और अधिक नहीं लेना। किसी भी वस्तु के गुणों को कम-ज्यादा नहीं बताना।
8 सटटा जुवा फीचर आदि प्रवृत्तिया से दूर रहना। मादक द्रव्य का सेवन नहीं करना। पूर्ण शाकाहारी जीवन का पालन करना।
9 यथासम्भव स्वदेश निर्मित वस्तुओं से भिन वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना।
10 जिस कार्य से देश जाति और धर्म का कल्याण को ऐसा कार्य नहीं करने का पूरा ध्यान रखना।
11 बाल विवाह लड़के की आयु 18 वर्ष और लड़की की आयु 14 वर्ष से कम हो। अनमेल विवाह वर और कन्या की आयु मे 14 वर्ष से अधिक अन्तर हो में सम्मिलित नहीं होना।
12 बालक तथा बालिका का सबध करने के लिए किसी भी प्रकार की मागनी नहीं करना। विवाह मे विशेष-आडम्बर नहीं करना। सादगी का ध्यान रखना।
13 मृत्युभोज मे शामिल नहीं होना।

14 किसी भी भोज मे जूठा नहीं छोडना।
15 स्नेही व कुटुम्बीजनो की मृत्यु होने पर मास से अधिक नहीं रखना।
16 मानव मात्र के साथ भ्रातृभाव रखना।
17 काम वश खेल तमाशे नाटक आदि नहीं देखना।

सम्यक् शिक्षण वर्ग

1 सामान्य वर्ग और नैष्ठिक वर्ग के नियमों के पालनपूर्वक पाच अणुव्रतो का पालन करना।
2 तीन वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का अखण्ड पालन करना।
3 कालोका सामायिक करना। अधिक न बन सके तो पाक्षिक प्रतिक्रमण अवश्य करना।
4 रात्रि भोजन नहीं करना।
5 नाटक सिनेमा नहीं देखना।
6 धार्मिक अध्ययन नियत समय पर करना।
7 मुनि व आचार्यजी की उपस्थिति मे प्रतिदिन उनके दर्शन अवश्य करना।
8 अवकाश के दिन व्याख्यान सुनने व धर्मचर्चा आदि करने का प्रयत्न करना।
9 सोते समय व उठते समय व नवकार मत्र व दो लोगस्स का ध्यान करना।
10 गन्दे व अपशब्द कभी किसी को न बोलना।
11 क्रोध व द्वेषवश किसी को ताड़न तर्जन नहीं करना।
12. धार्मिक अध्ययन-अध्यापन करते समय तथा गुरुओं के सन्मुख बोलते समय यतना का पूरा ध्यान रखकर उत्तरासन या मुहपत्ति का अनिवार्य रूप से उपयोग करना।
13 सोलह वर्ष से कम उम्र वाले ब्रह्मचारी को महीने में दो एकासन और 16 वर्ष से अधिक उम्र वाले को महीने में दो उपवास या दो आयबिल अथवा चार एकासन अवश्य करना।
14 सवत्सरी पर्व के दिन कम से कम उपवासयुक्त अथवा दयावा पालन अवश्य करना।
15 साल-भर में एक बार आचार्यश्री के दर्शन अवश्य करना।
16 नियत कोर्स की परीक्षा की तैयारी करके परीक्षा देना।
17 किसी पर झूठा आरोप नहीं लगाना। न झूठा मुकदमा करना। न झूठी साक्षी देना।
18 नियमभगादि का दड सहर्ष स्वीकार करना।

19 आचार्यश्री श्रावकोचित जो उपदेश दें उसका पूर्णतया पालन करना और विशिष्ट आदेश-उपदेश को भी जीवन मे लाने का यथासाध्य प्रयत्न करना।
20 ब्रह्मचर्य अवस्था मे धार्मिक अध्ययन-अध्यापन की तरफ विशेष लक्ष रखना।
21 साधु-साध्वियों के प्रति पूर्ण भक्तिभाव का व्यवहार रखना।

प्रचारक वर्ग

प्रचारक को यावज्जीवन निम्न नियमों का पालन करना होगा -

1 सप्त कुव्यसनो का त्याग करना।
2 बने वहा तक रात्रि भोजन नहीं करना। यदि ऐसा न मिले तो तिथियों का तो अवश्य रात्रि भोजन का त्याग करना।
3 प्रत्येक मास मे एक बार या दो बार आचार्यश्री के दर्शन करके धर्म तत्त्व का प्रशस्त पथप्रदर्शन पाना।
4 अपने ग्राम या शहर में साधु-साध्वी हो तो उनके नित्यप्रति दर्शन करना तथा समय पर प्रवचन व ज्ञानचर्चा आदि का लाभ लेना।
5 प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक का काल धर्म-जागरण मे लगाना।
6 सोते समय व उठते समय चार लोगस्स का अवश्य ध्यान करना तथा भोजन के समय नवकार अवश्य गिनना।
7 व्यापार की अनैतिकता से बचने की अवश्य कोशिश करना तथा गन्दे शब्दों का कभी प्रयोग न करना।
8 धार्मिक अध्ययन करते समय व गुरुजनों के सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन लगाये बिना नहीं बोलना।
9 बने वहा तक गरीबों पर मुकदमा नहीं करना तथा झूठी गवाही व झूठा आरोप नहीं देना।

प्रचारक वर्ग के प्रचारकालीन नियम

1 प्रचारकाल में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2 जहा अन्य स्त्रियाँ निवास करती हो ऐसे मकान में नहीं रहना।
3 स्व स्त्री से विकारोत्पादक कथा वार्ता न करना।

4 चमडे के वन्द जूत यानि वूट नहीं पहनना।

5 वो विहार का पालन करना व सचित वस्तु न रखना।

6 प्रतिदिन पाचों विगय साथ नहीं लगाना।

7 रगीन वस्त्र नहीं पहनना। घडी के अलावा कोई जेवर न रखना और न पहिनना।

8 पर-स्त्री से विना भाई-वहिन की साक्षी के धर्मोपदेश आदि कोई भी वात न करना।

9 कोई भी प्रकार का सुगन्धित तेल इत्तर शरीर पर नहीं लगाना।

10 रोगादि विशेष कारण के विना स्वस्त्री का भी स्पर्श न करना और न एक आसन पर ही बैठना।

11 व्यापार आदि सासारिक प्रवृत्ति विल्कुल नहीं करना।

12 सादी वेष-भूषा के अलावा कोट पतलून नेकर टोप आदि का उपयोग न करना।

13 भोजन करते समय पूर्ण मौन रहना।

14 धर्म प्रचार मे पुस्तको आदि प्राप्त साधनो को प्रचारकाल पूर्ण हो जाने के बाद जहा से लिए हो वहा पहुचाने का ध्यान रखना।

15 शिक्षा व उपदेश देते समय तथा पठन-पाठन के समय व अन्य किसी भी समय किसी भी व्यक्ति को ताडन-तर्जन नहीं करना और न आक्षेपात्मक कठोर भाषा का उपयोग करना।

16 विकारोत्पादक कथा वार्त्ता न करना व स्त्रियो के अगोपाग आदि नहीं देखना अर्थात विकार पैदा हो ऐसी शकास्पद प्रवृत्ति से भी दूर रहना।

17 अपने स्थान पर सूर्यास्त तक मात्र को नहीं जाने देना।

18 नैतिक व धार्मिक उत्सव व मितिठ के अलावा विवाह ओसर मोसर आदि के प्रसग पर सम्मिलित नहीं होना।

19 प्रतिदिन कालोकाल सामायिक के साथ 14 नियमों को ध्यान मे लेना। और सोते समय व उठते समय चार लोगस्स का ध्यान करना।

20 प्रतिदिन सायकाल प्रतिक्रमण करना।

21 प्रचारकाल मे एक साथ तीन से अधिक प्रचारक ब्रह्मचारी नहीं रहना।

22 साल भर में इच्छानुसार दो मास या एक मास अथवा 15 दिन या आठ दिन धर्म प्रचार के लिये देना।

23 प्रत्येक साल में एक बार या दो बार आचार्यश्रीजी के दर्शन करना और धर्म तत्त्व का पथ प्रदर्शन करना।
24 धार्मिक अध्ययन आदि करते समय व धर्मोपदेश देते समय तथा गुरुजनो के सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन अवश्य रखना।
25 किसी पर झूठा आरोप व आक्षेप नहीं लगाना। झूठी साक्षी नहीं देना।
26 सप्त कुव्यसनो का त्याग करना।
27 भोजन करते समय नवकार अवश्य गिनना।

ब्रह्मचारी वर्ग

1 आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2 पूर्ण ब्रह्मचारी को पाच मूलव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के लिये निम्न विशिष्ट गुणो का पालन करना होगा।
3 स्त्री पशु और नपुसक जिस मकान में रहते हों उस मकान में न रहना। मकान के अभाव मे कभी अपवाद रूप से रहना पडे तो बात दूसरी।
4 विकारोत्पादक सासारिक कथा-वार्ता न करना।
5 स्त्रियो के अगोपाग न देखना।
6 पदा टाटी दीवार आदि के अन्तर से स्त्री पुरुष के रतिक्रीड़ा सबधी वार्त्तालाप न सुनना।
7 पूर्व से तजे हुए विषय सबधी विचारो का स्मरण न करना।
8 प्रतिदिन पाचो ही विगय न लगाना।
9 रगीन व सीते हुए वस्त्र नहीं पहिनना।
10 जूते बूट आदि नहीं पहिनना।
11 चौविहार का पालन करना व सचित्त का त्याग करना।
12 विना कारण गृहस्थ के घर न बैठना।
13 अकेली बाई के घर मे बिना किसी भाई व बहिन की साक्षी के भोजनादि न करना तथा उपदशादि न देना।
14 धर्म प्रचार के विना अपने स्थान को छोडकर विना कारण बाहर न जाना।
15 धर्म स्थान मे भी भाई की साक्षी के विना केवल बहिन को उपदेशादि नहीं देना।

16 रात्रि को आम जनरल स्थान के सिवाय अन्यत्र व्यक्ति के घर धर्मचर्चा व धर्मोपदेश के लिए नहीं जाना।
17 अपने स्थान पर सूर्योदय से सूर्योदय तक हरी मात्र को नहीं जाने देना।
18 केशों में व शरीर में शृगार के लिये तेल इत्र आदि किसी भी प्रकार के सुगन्धित पदार्थों का उपयोग न करना।
19 केशों का साल में एक बार यथाशक्ति लोच करना।
20 यदि लोच न हो सके तो महीने में एक बार से अधिक क्षुर मुडन नहीं करना।
21 जटा व दाढी को अधिक न बढाना तथा केशों की छटनी सवारना आदि न करना।
22 अपने न्याती गौती आदि सबधियों के साथ सासरिक कोई सबध न रखना।
23 स्त्री मात्र का सघटटा साक्षात् व परम्परा से भी न होने पावे इसका पूरा ध्यान रखना।
24 जिस पाल जाजम आदि पर स्त्री बैठी हो उस पर कतई न बैठना।
25 लज्जा निवारणार्थ तथा शरीर रक्षार्थ चोल पटटक अथवा खुली लाग की धोती व पछेवडी गुत्थी बनियान के सिवाय अन्य सिले वस्त्र नहीं पहनना।
26 नैतिक व धार्मिक उत्सव व मिटिंग के अतिरिक्त विवाह औसर गौसर आदि के अवसर पर व राजनीतिक जलसों पार्टियों आदि में सम्मिलित नहीं होना।
27 धर्म प्रचारार्थ व गुरु-दर्शनार्थ भी विशिष्ट परिस्थिति के बिना वाहन आदि का उपयोग नहीं करना।
28 100 हाथ वस्त्र से अधिक वस्त्र न रखना।
29 किसी भी गृहस्थ की नेश्राय का यानी नित्य प्रति गृहस्थ के काम में आने वाला वस्त्र ओढने बिछौने आदि के काम में उपयोग न करना।
30 नित्य प्रति नियत समय पर आगमिक वाचन चिन्तन मनन आदि रूप स्वाध्याय करना।
31 शास्त्रोक्त 20 प्रकार के धोवन में मर्यादाकाल में जीवोत्पत्ति की शका न करना।
32 विशिष्ट प्रसग के बिना एक ग्राम में एक साथ तीन ब्रह्मचारी से अधिक नहीं रहना।
33 श्रावण और भाद्रपद को छोडकर शेष दस महीनों में ज्यादा से ज्यादा एक ग्राम में एक महिने से अधिक न रहना।

23 प्रत्येक साल में एक बार या दो बार आचार्यश्रीजी के दर्शन करना ओर धर्म तत्त्व का पथ-प्रदर्शन करना।
24 धार्मिक अध्ययन आदि करते समय व धर्मोपदेश देते समय तथा गुरुजनो के सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन अवश्य रखना।
25 किसी पर झूठा आरोप व आक्षेप नहीं लगाना। झूठी साक्षी नहीं देना।
26 सप्त कुव्यसनों का त्याग करना।
27 भोजन करते समय नवकार अवश्य गिनना।

ब्रह्मचारी वर्ग

1 आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2. पूर्ण ब्रह्मचारी को पाच मूलव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के लिये निम्न विशिष्ट गुणो का पालन करना होगा।
3 स्त्री पशु और नपुसक जिस मकान में रहते हो उस मकान मे न रहना। मकान के अभाव में कभी अपवाद रूप से रहना पड़े तो बात दूसरी।
4 विकारोत्पादक सासारिक कथा-वार्ता न करना।
5 स्त्रियो के अगोपाग न देखना।
6 पदा टाटी दीवार आदि के अन्तर से स्त्री पुरुष के रतिक्रीड़ा सबधी वार्तालाप न सुनना।
7 पूर्व से तजे हुए विषय सबधी विचारों का स्मरण न करना।
8 प्रतिदिन पाचो ही विगय न लगाना।
9 रगीन व सीते हुए वस्त्र नहीं पहिनना।
10 जूते बूट आदि नही पहिनना।
11 चौविहार का पालन करना व सचित्त का त्याग करना।
12 बिना कारण गृहस्थ के घर न बैठना।
13 अकेली बाई के घर मे बिना किसी भाई व बहिन की साक्षी के भोजनादि न करना तथा उपदेशादि न देना।
14 धर्म प्रचार के बिना अपने स्थान को छोड़कर बिना कारण बाहर न जाना।
15 धर्म-स्थान मे भी भाई की साक्षी के बिना केवल बहिन को उपदेशादि नहीं देना।

16 रात्रि को आम जनरल स्थान के सिवाय अन्यत्र व्यक्ति के घर धर्मचर्चा व धर्मोपदेश के लिए नहीं जाना।

17 अपने स्थान पर सूर्योदय से सूर्योदय तक हरी मात्र को नहीं जाने देना।

18 केशों मे व शरीर में श्रृगार के लिये तेल इत्र आदि किसी भी प्रकार के सुगन्धित पदार्थो का उपयोग न करना।

19 केशा का साल में एक बार यथाशक्ति लोच करना।

20 यदि लोच न हो सके तो महीने मे एक बार से अधिक क्षुर मुडन नहीं करना।

21 जटा व दाढी को अधिक न बढाना तथा केशो की छटनी सवारना आदि न करना।

22 अपने न्याती गौती आदि सबधियों के साथ सासरिक कोई सबध न रखना।

23 स्त्री मात्र का सघटटा साक्षात् व परम्परा से भी न होने पावे इसका पूरा ध्यान रखना।

24 जिस पाल जाजम आदि पर स्त्री बैठी हो उस पर कतई न बैठना।

25 लज्जा निवारणर्थ तथा शरीर रक्षार्थ चोल पटटक अथवा खुली लाग की धोती व पछेवडी गुत्थी बनियान के सिवाय अन्य सिले वस्त्र नहीं पहनना।

26 नैतिक व धार्मिक उत्सव व मिंतिग के अतिरिक्त विवाह ओसर मोसर आदि के अवसर पर व राजनीतिक जलसो पार्टियो आदि मे सम्मिलित नहीं होना।

27 धर्म-प्रचारार्थ व गुरु-दर्शनार्थ भी विशिष्ट परिस्थिति के बिना वाहन आदि का उपयोग नहीं करना।

28 100 हाथ वस्त्र से अधिक वस्त्र न रखना।

29 किसी भी गृहस्थ की नेश्राय का यानी नित्य-प्रति गृहस्थ के काम में आने वाला वस्त्र ओढने बिछौने आदि के काम मे उपयोग न करना।

30 नित्य-प्रति नियत समय पर आगमिक वाचन चिन्तन मनन आदि रूप स्वाध्याय करना।

31 शास्त्रोक्त 20 प्रकार के धोवन मे मर्यादाकाल मे जीवोत्पत्ति की शका न करना।

32. विशिष्ट प्रसग के बिना एक ग्राम में एक साथ तीन ब्रह्मचारी से अधिक नहीं रहना।

33 श्रावण और भाद्रपद को छोड़कर शेष दश महीना मे ज्यादा से ज्यादा एक गाव में एक महिने से अधिक न रहना।

23 प्रत्येक साल मे एक बार या दो बार आचार्यश्रीजी के दर्शन करन का पथ-प्रदर्शन करना।
24 धार्मिक अध्ययन आदि करते समय व धर्मोपदेश देते समय तथा सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन अवश्य रखना।
25 किसी पर झूठा आरोप व आक्षेप नहीं लगाना। झूठी साक्षी नहीं दे
26 सप्त कुव्यसनों का त्याग करना।
27 भोजन करते समय नवकार अवश्य गिनना।

ब्रह्मचारी वर्ग

1 आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2 पूर्ण ब्रह्मचारी को पाच मूलव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के लिये 1 विशिष्ट गुणो का पालन करना होगा।
3 स्त्री पशु और नपुसक जिस मकान में रहते हो उस मकान मे न रहना। मक के अभाव मे कभी अपवाद रूप से रहना पडे तो बात दूसरी।
4 विकारोत्पादक सासारिक कथा-वार्ता न करना।
5 स्त्रियो के अगोपाग न देखना।
6 पदा टाटी दीवार आदि के अन्तर से स्त्री पुरुष के रतिक्रीड़ा सबधी वार्तालाप न सुनना।
7 पूर्व से तजे हुए विषय सबधी विचारो का स्मरण न करना।
8 प्रतिदिन पाचो ही विगय न लगाना।
9 रगीन व सीते हुए वस्त्र नहीं पहिनना।
10 जूते बूट आदि नहीं पहिनना।
11 चौविहार का पालन करना व सचित्त का त्याग करना।
12 बिना कारण गृहस्थ के घर न बैठना।
13 अकेली बाई के घर मे बिना किसी भाई व बहिन की साक्षी के भोजनादि न करना तथा उपदेशादि न देना।
14 धर्म प्रचार के बिना अपने स्थान को छोडकर बिना कारण बाहर न जाना।
15 धर्म स्थान मे भी भाई की साक्षी के बिना केवल बहिन को उपदेशादि नहीं देना।

16 रात्रि को आम जनरल स्थान के सिवाय अन्यत्र व्यक्ति के घर धर्मचर्चा व धर्मोपदेश के लिए नहीं जाना।

17 अपने स्थान पर सूर्योदय से सूर्योदय तक हरी मात्र को नहीं जाने देना।

18 केशो मे व शरीर मे श्रृगार के लिये तेल इत्र आदि किसी भी प्रकार के सुगन्धित पदार्थो का उपयोग न करना।

19 केशो का साल मे एक बार यथाशक्ति लोच करना।

20 यदि लोच न हो सके तो महीने मे एक बार से अधिक क्षुर मुडन नहीं करना।

21 जटा व दाढी को अधिक न बढाना तथा केशो की छटनी सवारना आदि न करना।

22 अपने न्याती गौती आदि सबधियो के साथ सासरिक कोई सबध न रखना।

23 स्त्री मात्र का सघट्टा साक्षात् व परम्परा से भी न होने पावे इसका पूरा ध्यान रखना।

24 जिस पाल जाजम आदि पर स्त्री बैठी हो उस पर कतई न बैठना।

25 लज्जा निवारणर्थ तथा शरीर रक्षार्थ चोल पटटक अथवा खुली लाग की धोती व पछेवडी गुत्थी बनियान के सिवाय अन्य सिले वस्त्र नहीं पहनना।

26 नैतिक व धार्मिक उत्सव व मितिग के अतिरिक्त विवाह ओसर मोसर आदि के अवसर पर व राजनीतिक जलसो पार्टियो आदि मे सम्मिलित नहीं होना।

27 धर्म-प्रचारार्थ व गुरु-दर्शनार्थ भी विशिष्ट परिस्थिति के विना वाहन आदि का उपयोग नहीं करना।

28 100 हाथ वस्त्र से अधिक वस्त्र न रखना।

29 किसी भी गृहस्थ की नेश्राय का यानी नित्य-प्रति गृहस्थ के काम में आने वाला वस्त्र ओढ़ने-विछौने आदि के काम में उपयोग न करना।

30 नित्य-प्रति नियत समय पर आगमिक वाचन चिन्तन मनन आदि रूप स्वाध्याय करना।

31 शास्त्रोक्त 20 प्रकार के धोवन मे मर्यादाकाल मे जीवोत्पत्ति की शका न करना।

32 विशिष्ट प्रसग के विना एक ग्राम में एक साथ तीन ब्रह्मचारी स अधिक नहीं रहना।

33 श्रावण और भाद्रपद को छोडकर शेष दश महीनो में ज्यादा से ज्यादा एक गाव मे एक महिने से अधिक न रहना।

34 नमस्कार करने वाले को जयजिनेन्द्र आदि सुबोध शब्द के अलावा सावदय आशीर्वाद आदि न देना।

35 पूर्वदीक्षित ब्रह्मचारी उत्तरदीक्षित ब्रह्मचारी से ज्येष्ठ समझा जायगा और छोटे यानी कम समय का ब्रह्मचारी बडे यानी दीर्घकाल के ब्रह्मचारी को नमस्कार करे यानी चरण-स्पर्श विनय-भक्ति करने का पूर्ण ध्यान रखे।

36 सर्वथा प्रकार से त्रस जीवो की हिसा नहीं करना। बने जहा तक स्थावर जीवों की सप्रयोजन भी हिसा न होवे इसका खयाल रखना।

37 स्त्री-पुरुष व पशु जाति धन धान्य वस्त्र पात्र खान-पान जमीन जायदाद आदि समस्त भोग्य-उपभोग्य वस्तुओ के लिये कतई झूठ न बोलना और न चोरी करना।

38 अपने धन धान्य जमीन-जायदाद आदि से ममत्व हटाना और उस सपत्ति को ब्रह्मचारी वर्ग की व्यवस्था या तत्सबधी सस्थाओ को दान देना।

39 पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण आदि दिशाओ मे गमन करने के विषय में जनरल नियम के साथ नित्य-प्रति भी योग्य नियम लेना।

40 सर्वथा प्रकार से सावद्य व्यापार का त्याग करना।

41 प्रतिदिन प्रात काल सामायिक और सायकाल प्रतिक्रमण करना।

42. प्रत्येक तिथि 2 5 8 11 14 15 को पाचो ही आश्रवो का सर्वथा प्रकार से त्याग करना और आहार के लिये जो गृहस्थ कहे वहा सतोष वृत्ति के साथ भोजन के पूर्व पाच नमस्कार का ध्यान करना।

43 यथाशक्ति महीने म दो प्रतिपूर्ण पौषध करना।

44 विशेष परिस्थिति के बिना न स्वय भोजन बनाना न बनवाना बल्कि दाता के घर मे जैसा उपलब्ध हो उसमे सतोष करना।

45 भोजन करते समय बिल्कुल मौन रखना।

46 यथासाध्य अपना कार्य अपने ब्रह्मचारी वर्ग के सदस्यों के अलावा दूसरों से न कराना।

47 परस्पर समाषण मे व प्रवचन में कटु य अशोभनीय तथा व्यक्तिगत आक्षेपात्मक भाषा का प्रयोग न करना।

48 दीक्षा महोत्सव तपोमहोत्सव व चातुर्मासादि के लिये आमन्त्रण पत्रिका आदि न छपवाना।

49 साधु-साध्वियो के प्रति विधियुक्त पूर्ण भक्तिभाव का व्यवहार रखना।

50 ब्रह्मचारी वर्ग का कोई भी सदस्य नियम भग आदि की कोई भी त्रुटि कर बैठे तो उसे प्रेम से समझा कर सन्मार्ग पर लाना। अगर न समझे तो प्रमुख को सूचित कर दना होगा। परन्तु उसको अन्यत्र नीचा दिखाने हेतु अपवाद न करना।

51 नियमभगादि का प्रायश्चित्त जो दिया जावे वह स्वीकार करना।

52 एक साल मे एक महीना सम्यक शिक्षण वर्ग को शिक्षा के लिये देना। अगर प्रमुख की कोई विशेष आशा हो जाय तो शिक्षण के लिये कम या ज्यादा समय दे सकेगा या नहीं भी दे सकेगा।

53 इस वर्ग के सदस्या को अपने उपयोग के लिए स्वावलम्बी होने के निमित्त नियत समय पर सूत कातना वस्त्र बुनना आदि कार्य भी प्रमुख की आज्ञा बिना नहीं किया जा सकेगा।

54 वीतरागदेव की कामना के साथ उपासना नहीं करना तथा अन्य देव की किसी भी प्रकार से उपासना नहीं करना और डोरा तावीज जन्त्र मन्त्र टाणा-टोणा नहीं करना।

आचार्यश्री गणेशीलालजी महान् सत थे। आचार्यश्रीजी को श्रमणो का सगठन प्रिय था। मगर वे सगठन को साधन मानते थे साध्य नही। वे जैसा तैसा सगठन नही चाहते थे। वे सच्ची साधुता के दृढ हिमायती थे। इसलिए वे उसी सगठन के हिमायती थे जहा शुद्ध सयम पालन हो सके और अनुशासन कायम रहे। उनकी दृष्टि से श्रमण सस्कृति का रक्षण और उसके आधार पर आत्मोन्नति तब ही सम्भव है जब चारित्र पालन मे मनसा वाचा कर्मणा के पवित्र भाव हो।

— इसी पुस्तक से